
आरसी

आरसी

श्रीआरसीप्रसादसिंह

तरुण-मंडल
मुजफ्फरपुर

प्रकाशक
श्री युगलकिशोर झा,
ज्योतिषाचार्य्य
तारामण्डल : मुजफ्फरपुर

प्रथम संस्करण
मूल्य सात रुपये
फरवरी १९४२

मुजफ्फरपुर
बोस प्रेस
श्री युगेश्वर सिंह

और, सच पूछिये तो वह कृति ही नहीं—जिसमें कर्त्ता का अस्तित्व पग-पग पर कुतूहल न करता हो।

न मालूम, किस मंगल-मुहूर्त्त में प्रथम बार किसी विरही का कण्ठ फूटा था!

तब से अनन्त वर्ष बीत गये।

और, आज भी मानव-कुल की वही वेदना, वही उत्कण्ठा और वही अनुभूतियाँ।

कौशल ने कला का रूप धारण किया।

समस्याएँ बढ़ चलीं।

मानव-हृदयका जो आवेग इतने दिनों तक दुर्भेद्य चट्टानों में आबद्ध था—सहसा, किसी मंगल-प्रभात में भागीरथी के समान फूट पड़ा!

सीमाहीन ।

और, इसीलिये तो—

कला को किसी सीमा में बाँध देना दुनिया की सबसे बड़ी बेवकूफी है !

वह तो मुक्त नभ का एक पंछी है ।

जिसे, क्षण-भर के लिये भी पिँजड़े में डाल दिया जाय, तो तड़प-तड़प कर जान दे दे !

कला वह पहाड़ी झरना है, जसे कंकड़ों और पत्थरों से रोकना सम्भव नहीं ;

और, रोकने पर भी तो वह रुक नहीं सकता ।

कला वह चाँदनी है, जो, धरातलपर उतर कर भी अपनी हँसी से फूलों को खिला जाती; किन्तु, अपनी मुस्कान को पृथ्वी की मलिनता में धो नहीं देती ।

और, न कहीं अपनापन ही खो देती !

फिर, कलाकार ।

वह दूर रह कर भी दुनिया से उतना ही निकट है । अस्पृश्य है । अबोध है ।

संसार उसे नहीं पहचानता ; परन्तु, वह संसार के रोम-रोम को जानता है ।

दुनिया उसे छू नहीं सकती ; परन्तु, वह दुनिया के अङ्ग-अङ्ग को अपने विद्युत-स्पर्श से चंचल कर रहा है ।

वह कवि है ।

कविता मानव-जीवन का सर्वश्रेष्ठ अवदान है ।

और, जीवन स्वयं कविता ।

जीवन और कविता में रूप और छाया का सम्बन्ध है ।

जब-तक हृदय है, कविता है ।

और, कवि अमर है ।

जिस दिन कविता का लोप होगा, संसार का हृदय-स्पन्दन एकाएक रुक जायगा ।

इसमें सन्देह नहीं ।

रचना वह आइना है, जिसके आगे रचयिता अपना मुँह छिपाये भी नहीं छिपा सकता ।

सच्ची कला वही है, जो मनोभावों का निश्छल प्रतिबिम्ब होने का दम भरे ।

विशुद्ध कलाकार कभी वंचक हो ही नहीं सकता ।

अश्रु प्रलय और हास्य सृष्टि हैं ।

तुम हँसो, दुनिया हँसेगी ;

तुम रोओ—फिर भी दुनिया हँसेगी ।

अन्तस्तल के कीमती आँसुओं को प्रशंसा के दो-चार शब्दों पर बेच देना एक घृणित व्यवसाय है ।

कविता ने प्रेम का जन्म दिया ; और, प्रेम ने सौन्दर्य की उत्पत्ति की ।

सौन्दर्य कोई विशेष गुण नहीं ; प्रेम की आँखों से जिसे देखो—वही सुन्दर है ।

सत्य और शिव तो पीछे से आते ।

प्रकृति का सन्देश अनुराग है—विराग नहीं ।

सृष्टि से विरक्ति, सृष्टिकर्त्ता के प्रति उदासीनता का व्यवहार प्रदर्शित करना है । और, सौन्दर्य की उपेक्षा, ईश्वर का तिरस्कार है ।

ईश्वर-द्रोही और विरागियों में कोई मौलिक अन्तर नहीं ।

पृथ्वी का एक-एक कण प्राणियों को प्रेम का पाठ पढ़ाता है ।

जीवन का दूसरा नाम नवीनता है ।

यौवन उसका तेज और जरा मृत्यु।

कायर वह, जो तरङ्गों के भय से किनारे पर ही बैठा-बैठा रुदन करता है। और, मूर्ख वह, जो पानी में पैठ कर भी डूब जाता है।

सफल तैराक उसीको कहते हैं, जो संसार-सागर को हँसते-हँसते पार कर जाता है।

दुनिया एक ऐसी गाँठ है, जिसे सुलझाने की जितनी कोशिश करो—उलझन बढ़ती ही जायगी।

काल एक ऐसा सर्प है, जिसका काटा फिर पानी नहीं माँगता।

नीबू की एक-एक बूँद की तरह हमें दुनिया के एक-एक सुख को निचोड़ कर, स्वाद का उपभोग कर लेना चाहिये।

संसार में इतना दुःख है कि यदि आशा का सहारा न मिले, तो, यह पापी कब न कष्टों से ऊब कर आत्म-घात कर ले।

यह भी एक विचित्रता ही है कि विश्व के विष-वृक्ष से नारी के अमृत-फल ने जन्म लिया।

शराब और आबेहयात मुर्दों के लिये भले ही फायदेमन्द हों; परन्तु, जवानी तो खुद ही दीवानी है! उसे इन चीजों की जरूरत कब?

यह तो वह साकी है, जो अगर एक बार झूमे तो उसके दामन की हवा से सारी दुनिया हँस-हँस कर पगली बन जाय।

यही मैंने कहा।

मुजफ्फरपुर।
फरवरी, १९४२।

श्री भारतीप्रसाद सिंह

* सूचीपत्र *

आह, प्राण तुम कितने शीतल
ये कुसुम के बाण कोमल
मञ्जुल मन्दार मुकुल
हो गया है भोर पीतम
तुम न जानो प्रिय मुझ पर
गाल मेरे छू न ले
गूँथ लो हे बालिके
आज मेरा मरण देखो
प्रिय मुझे तू भूल जाना
मिल गये पथ में कभी यदि
बल और बुद्धि
उलटा - पुलटा
कवि और वेदना
भाई नेपाली प्रिय उदार
जवानी का लड़कपन
आँधी और पानी
मेरे दिनकर मेरे उदार
मेरी हँसी
पढ़ना
लक्ष्मी - पूजा
सुविधा
नेह की भीख
स्वदेश - शिक्षा
देह - राज्य
रुकती न हँसी
चलते समय
दिलरुबा
नील गगन का उत्पल
कल खिली थी कामिनी
प्रेम - देव - निवेदिता
शरत - संगीत
हिना

उलटी नगरी
आवाज
बच्चे की शादी
गिरते हुए पत्ते से
मिथिला
स्वर्ण - सीख
मेघ - नगर - निवासीनी
विश्व - सुन्दरी
प्रेयसी
हर रोज
वलाका
शेफालिका
दुनिया
जीवन - कथा
अनाहूत
दिलदार
विहार का भूकम्प
छिन्नपत्र
जंगल में अमंगल
उमङ्ग
प्रणय - मिलन
हृदय का भार
पश्चात्ताप
पंडितजी
दाल में टाँग
विराग - राग
मोती भैया
मधुमय
अनुभव
दो भाई
आँखमिचौनी

चौचन्दा
प्रणय - याचना
वर्षा - संध्या
प्रणय - निवेदन
सुरा - सुन्दरी
चिर - यात्री
वन - गमन
राजकुमार
निद्रा
जीवन का झरना
जन्म
वर्षा - संगीत
मोह
कलरव
जीवन - वसन्त
राजा साहब
मरण - पथिक
वन्दी की वेदना
देवता के द्वार पर
चंदा मामा
पर्वत की चिन्ता
रूप की हाट
शैशव और यौवन
ठोकर
राजा - रानी
आज - कल
तरुणी
भावी साहित्यिक
लूसी का बच्चा
सौन्दर्य
आरसी

आरसी

अथ

मेरे जय-श्री-चुम्बित शिर पर
जादू-सा यह.
मेरा युग चढ़ कर
है बोल रहा—तू लिख दे, कवि !
लिख, अथ;
इस प्रथम पृष्ठ पर
पहला अक्षर !

×

देख रहा मैं
मेरे सम्मुख खुली हुई है
जो अपनी ही
जीवन-पुस्तक ।
जिसमें अब तक,
वर्ष-मास के पृष्ठ, दिवस की
सरस पंक्तियाँ,
रँगे, बँधे, काले, उभरे,
और उन्हीं में मैं खोया,
भूला, भटका,
रहा खेलता बेसुध ।
जैसे,
मधुप लगाता चक्कर
चारो ओर कमल की
एक बूँद मधु की आशा में,
एक बूँद की केवल !

×

सत्य नहीं है क्या सुन्दर ?
इतना जो सौन्दर्य
उमड़ता
राशि—राशि
अम्बर से पृथिवी तक
क्या मिथ्या है ?
फिर शिव कहाँ ?
एक सत्य ही;
शाश्वत;

×

नश्वर शिव, नश्वर सुन्दर ।
बलि हों जिसपर
शिव, सुन्दर शत-शत !
करूँ सत्य से द्रोह,
अशिव से मोह,
और क्या सुन्दर का

पार्थिव पूजन ?
मेरी कला सत्य की वाणी,
और, विश्व का दर्पण !
आत्मा की ध्वनि,
जिसमें जग की आत्मा !
यहाँ सत्य के सिवा
और नहीं कुछ भी;
नहीं, नहीं,
स्वयं सत्य ही शिव, सुन्दर !

×

सोच रहा,
मेरा ही स्वर तो
है युग का स्वर !
यह दिनकर,
यह पूर्ण कलाधर,
विस्तृत अम्बर,
भूधर,
सर, सरिता, सागर,
व्यक्त नहीं करते क्या मेरी
मन की प्यास,
हृदय की भाषा,
आत्मा का स्वर ?
तो, फिर निष्फल;
यत्न विफल !
यह सम्बोधन, बन्धन;
कविर्मनीषी, व्यर्थ निवेदन !

×

यह ध्वनि, प्रतिध्वनि,
निखिल कर्म-कोलाहल जग का,
मेरी ही ध्वनि !
विपुल विश्व के निर्जन वन में
गूँज रही है निशि-दिन
प्रतिक्षण,
मेरे ही प्राणों की अन्तर्ध्वनि
प्रतिध्वनि बन कर ।
बहते हैं नद-निर्झर
मेरी ही उद्दाम वासना
ले कर,
वर्षा के आँसू, वसन्त का
हास और तरु-मर्मर
पतझड़ का,
मेरी ही इच्छा से पुष्पित
वन के लता-पुष्प रंगीन,
चपल समीर,
खिलतीं कलियाँ, हिलती डाली,
महासिन्धु गम्भीर;
चपला चपल, मनोहर सुरधनु,
द्रुम-द्रुम नित्य-नवीन !
सबके मन में,
प्राण-प्राण में,
मेरा ही सुख-दुख,
व्याकुलता,
हास्य-रुदन, आनन्द ।
प्रतिबिम्बित सबके नयनों में
मेरा ही सुख !
सबके तन में मेरा ही तन;
बहता जिसमें
मेरे ही यौवन का

कल-कल, छल-छल,
शोणित उष्ण, अधीर;
अस्थि, मांस, मज्जा !
जिसका एक तार हूँ,
बजती
वही विश्व-वीणा विराट
भुवन-भुवन में
दिवा-रात्रि
निर्बाध,
ये तार भिन्न, पर
भिन्न नहीं स्वर;
राग एक, उँगलियाँ एक ही,
और एक ही वादक,
चिरमादक।

×

हाँ, तो यह मेरी पुस्तक का
प्रथम पृष्ठ है;
और, काँपता मेरा कर,
थर-थर।
आज, लेखनी रही सिहर !
लिख न सकूँगा।
बाहु-पाश में खींच रहा
सौन्दर्य मुझे,
ओ वर्त्तमान के कलाकार,
रच, रच !
नूतन युग में नवल सृष्टि !
कर ध्वंस पुरातन,
निर्भय हो मेरा वन्दन गा,
कह मेरी जय !

और, वहीं से एक क्षीण स्वर
उठता है,
बच, बच !
हतभागा मानव,
मरु की मृगतृष्णा से !
इतने में
सच, सच !
कहता कौन पुकार
एक ही बार,
आत्मा में,
यह किस द्रोही का हुहुंकार ?
क्या वही सत्य है ?
कर न सकोगे क्षमा मुझे क्या ?
नहीं ?
सार्वभौम कवि,
हे सुन्दर !
उचित नहीं यह अवसर।

×

अथ;
मैं देख रहा, मेरे आगे
जो फैल रहा है इतना पथ
वामन-पद-सा;
और, क्षुद्र यह
मेरे लघु जीवन का रथ !
जिसमें जुते अश्व
मेरी युग-युग की
आकांक्षाओं के श्लथ !
मैं प्यासा हूँ;
युग से जीवित,

किन्तु, एक शव !
चिर अशान्त,
मैं भ्रान्त,
पथिक श्रम-खिन्न, क्लान्त ।
युग से जाग रहा हूँ,
प्रहरी मैं ।
जग मुझसे जीवन पाता,
मैं जीवन पाता हूँ जग से !

×

ग्रन्थ नहीं मानव !
सत्य नहीं केवल,
यह अनुभव !
व्यक्ति नहीं, जन-रव !
अग्नि के पुष्पों का उत्सव;
सूखे पत्ते नहीं;
हृदय के हरित-ललित पल्लव,
जो खिल आये हैं
वसन्त के प्राणों में अभिनव !
पुस्तक का जीवन,
जिसमें जग की भूख-प्यास,
आनन्द-वेदना,
आशा और निराशा,
बन आये हैं मेरे गीत,
ये प्रीत,
जनम-जनम के मीत !

×

कभी एक क्षण भी
मैं भूल न पाता
काल-स्रोत में मेरा जीवन
एक क्षुद्र बुद्बुद !
जिसका नर्तन,
केवल दो क्षण !
महाकाश में तड़ित-स्फुरण
जो है पल-भर,
नश्वर,
कल्प-कल्प जिस महाकाल का दुर्मद,
पद-पद !
महाप्रलय दृक-पात;
और ये लक्ष-लक्ष मन्वन्तर
रोम-रोम में जिसके लटके,
निरवलम्ब-से;
अन्धकार में भटक रहे हैं
कोटि-कोटि तारों के जुगनू ,
जग-मग कर पल-भर
मिट जाने, एक-एक बार,
रह जाती है अमिट मरण की रात !
जिसके एक श्वास से तत्क्षण
महासूर्य भी बुझ जाता है,
अचल रहे झंझा में कैसे
दीपक का विश्वास ?
व्यर्थ, जलने का विफल प्रयास !
और, यहाँ तो एक कीट, नर
क्षुद्र, क्षुद्रतम;
उस असीम की व्यापकता में,
सर्वभक्षिणी,
जहाँ बिन्दु में सिन्धु समाया,
रज-कण में पर्वत,
क्षण में युग,

आरसी

एक व्यक्ति का जीवन ही क्या ?
क्या अस्तित्व ?
जलना-बुझना, विभव-तिरोभव,
मरण और जीवन,
एक साथ ही, मूल्य यहाँ
कुछ भी न आयु का !
और न कोई आदि-अंत में अंतर ।
शब्द-कोष में मेरे
जन्म-मृत्यु का अर्थ एक ही ।
इस विराट मानवता-नद का,
एक सलिल-कण
मैं,
जिसका जीवन
स्वयं मरण,
जो आदि,
और जो स्वयं अन्त !
मेरी जय भी एक पराजय,
मेरे विचार,
यह विज्ञापन, यह अहंकार,
पल भर का
यह मेरा प्रचार !
मैं प्रलय,
मिटा कर मिट जाऊँगा
दावानल-सा,
मैं स्वयं नाश का एक अंश ।
मैं ले आया हूँ
हाय, सृष्टि के साथ
ध्वंस !

×

यह अथ है,
और यही इति भी !
इतने दिन तक,
जो थे अपने
मेरे सपने,
जानें, अब वे जायेंगे
किन मदमाती आँखों में
घर करने ?
मेरे विचार विचरेंगे
देश-देश में गुणानुवाद,
करते मेरा प्रचार !
मेरी पीड़ा, मेरी हार !
यह अबोध बालक-सा
मेरा मिट्टी का संसार !
अर्थ-हीन क्रीड़ा,
महाविश्व के सागर-तट पर,
बालू के महलों का
निष्फल व्यापार,
एक लहर आती, जिसको
धो देता
पल में पारावार !
मेरी स्पृहा, कामना, ईर्ष्या,
लज्जा, मद, अनुभूति, कल्पना,
प्रेम और आनन्द,
आज पराये हुए,
हाय, जो पुरवासी,
वे परवासी !
अब न किसी पर रहा आज से

आरसी

मेरा किंचित अधिकार !
मेरे सुख से सुखी,
दुःख से दुखी,
आज अखिल संसार !
सोने का जो स्वर्ग बसाया था,
जो मन का महल बनाया,
वह उजाड़-सा आज हो गया !
पृथिवी का सम्राट
लुटा कर राज-मार्ग पर,
चिर संचित रत्नों का कोष,
मान, विपुल ऐश्वर्य
और धन;
बना उदासी, भिक्षु,
अकिंचन ।
शुष्क विलोचन,
रिक्त हस्त, औ शून्य प्राण-मन;
चला प्रवासी,
हे पुरवासी,
ले प्रणाम,
तू भूल मुझे जा,
आज सदा के लिये,
नाम, घर, परिचय मेरा;
मेरी आकृति भी ।
मैं अज्ञात ।
कुछ भी आज न मेरा ध्येय,
मैं अज्ञेय ।
मेरी वाणी,
गूँज रही जो गृह-गृह में यह,
हो कल्याणी ।

लो मेरा अभिमान ।
और मुझे दो अपना पद-रज,
आशीर्वाद,
मुझे कराओ अपने पावन
चरणामृत का पान ।
मृत्यु-गरल दो दान ।
मैं न चाहता शाश्वत जीवन,
यौवन, धन, सम्मान ।
तुम मेरे भगवान !
रहो सुखी, सानन्द;
तुम्हारी ही प्रसन्नता
मुझको दे सुख,
गौरव, श्री, आह्लाद ।
मिट जायें ये गान,
मिटने दो अरमान ।
भूल रहा मैं स्वयं,
तुम्हें क्यों हो फिर मेरा ध्यान ?
तुम्हें सतावे कभी न मेरी
व्यथा, न आये स्मृति भी ।
मेरी कला अमर क्यों हो ?
जब मैं नश्वर हूँ स्वयं,
नहीं क्या नश्वर मेरी कृति भी ?
जा, विदा आज मेरे साथी,
युग-युग के बन्धु,
अधर के हास,
दृगों के अश्रु,
मत हो उदास,
जा भूल मुझे, जो भूल हुई,
यह मेरा चिर अज्ञातवास !

मदनिका

[वसन्त ऋतु की प्रथम पूर्णिमा। रात्रि का अन्तिम प्रहर। आकाश में चन्द्रमा, पृथ्वी के धरातल से अनुमानतः बीस अंश का कोण बनाता-सा। संसार के किसी निर्जन भाग में एक उपवन, जिसमें नाना-प्रकार के पुष्प, लतिकाएँ, वल्लरियाँ, वृक्ष। मध्य में एक सरोवर, जिसके स्वच्छ जल में निशाकर का प्रतिविम्ब वैसा ही स्पष्ट, जैसे किसी निर्मल दर्पण में सुन्दरी का मुख। तरंगों पर किरणें काँपती-सी और दूर के तट-प्रान्त में किसी तरुण धीवर की बाँसुरी, बेसुरी, श्रुति-मधुर; किन्तु, अज्ञात रागिनी में बजती-सी कोमल। जलाशय के चारो ओर भिन्न-भिन्न जाति के पृथक-पृथक कुसुमोद्यान; सुरभित, विकसित, हरित-पल्लवित। उत्तरी भाग में एक देव-मन्दिर, स्फीत, महिमोज्ज्वल और उसके द्वार से सरोवर के जल तक, स्फटिक की सोपान-राजि, जिसपर चन्द्रमा का सम्पूर्ण प्रकाश दुग्ध-सा तरल। मन्दिर के वाम पार्श्व में मालती का एक निकुंज, स्वर्गीय, जिसमें प्रवेश करने के लिए ज्योत्स्ना व्याकुल। भीतर चमेली के फूलों की शय्या पर एक अनिंद्य सुन्दरी, निद्रा और जागृति के बीच में; केशराशि कुछ उलझी; कुछ सुलझी। लोचन, अर्द्धनिमीलित। बाहु-लता अलस-भाव से, एक दक्षिण कपोल के नीचे और दूसरी आगे की ओर, निर्बन्ध फैली-सी। शृंगार और मुद्रा, ठीक कवि जयदेव की नायिका-सी। वस्त्र, इतना महीन, इतना असंगत और शरीर की कान्ति से इतना मिलता कि प्रायः नहीं ही के समान। भ्रू, लीला से विभ्रम और वक्षस्थल, कंठ तथा नाभि के निम्न-तम प्रदेश को मिलाती-सी, वकुल की नवीन मालिका। पद-नखों में अगुरु-परिमल और अधरों पर पराग की लालिमा। निःश्वास स्वाभाविक और शेष सभी साधारण।

सहसा देव-मंदिर का द्वार खुलता और उसमें एक से अधिक रमणियाँ, न जानें, कहाँ से आकर प्रवेश करतीं, चंचल, अधीर एवं उनके साथ ही मलयानिल का एक सरस झोंका आता और प्रतिमा का नख से शिख तक, स्पर्श कर, कक्ष की प्रत्येक दिशा में झूमने-सा लगता।

तरुणियों के वेश तितलियों-से इन्द्र-धनुषी; रूप स्पृहणीय, प्रकृति चपल। अकस्मात उनके कंठ खुलते एक ही बार; जैसे दिवाकर की रश्मियों से पद्मिनी के प्रतिदल। और, मधुर-सम्मिलित स्वर में उनका गीत—

जागो, कल-हासिनि, जागो !
स्वप्नों की मोहक माया से,
मधु की तन्द्रालस छाया से,
जीवन की जड़ता त्यागो;
जागो, मृदु-भाषिनि, जागो !

[गीत शेष नहीं होता। रमणियों के कल कण्ठ-कोलाहल से, कुंज में मदालस लेटी युवती मदनिका के लोचन एक बार, चौंक कर खुल पड़ते और तुरत बन्द भी हो जाते। एक जृम्भा, एक अँगड़ाई और वह करवट बदल लेती। गायन चलता ही रहता।]

जागो, वन-वासिनि, जागो !
.........तुम जागो, हे.........

[और इसके बाद सभी सुन्दरियाँ नाचती, गाती, तालियाँ, बजाती और पैरों की पायल को झनकारती कुंज के द्वार पर पहुँचतीं और एक वृत्त बना कर, परस्पर एक-दूसरे का हाथ पकड़ कर, नृत्य करने लगतीं, साथ ही गातीं भी।]

.........तुम जागो, हे.........
मदिरा की मादक विस्मृति में,
व्याकुल मधुऋतु की संसृति में;
नव-नव विनोद अनुरागो,
जागो, अभिलाषिनि, जागो !
.........तुम जागो, हे.........

[किशोरियाँ आगे नहीं गा सकीं, क्योंकि इसी बीच मदनिका की आँखें खुल गयी थीं और कुतूहल-पूर्ण दृष्टि से उन्हें देख रही थी, देख-देख कर मुस्करा रही थी। मदनिका ने वस्त्र भी नहीं सँभाले, केश-गुच्छों को भी संयत नहीं किया। वक्ष की वकुल-माला शय्या के किसी वीरुध से फँस कर टूट गयी। वह उठी और उसके उठते ही तत्काल सुन्दरियों का कण्ठ मूक। वायु-मण्डल स्तब्ध।]

मदनिका

यह कैसा कोलाहल, सखियो !

[युवतियाँ खिलखिला उठती हैं। कुंज-कुटीर मुखर हो जाता है। सुन्दरी-दल मदनिका को चारों ओर से घेर कर बैठ जाता है। सभी, नाना-प्रकार की भाव-व्यञ्जित मुखाकृतियों से उसे रिझाने की चेष्टा करती हैं। मदनिका विहँस पड़ती है। और तत्क्षण सम्पूर्ण कुंज में उन्मादक खिलखिलाहट।]

मञ्जुलिका

जागो, राजकुमारी !
इस वसन्त की यौवन-निद्रा से। सारे संसारी
जागे।

माधविका

जड़-चेतन स्वप्नों की शय्या तज कर कोमल
करते मंगल कलरव मधु के उषा-काल में उज्वल !

मदनिका

हाँ, ऋतुपति के नव-प्रभात में आज अपूर्व-मनोहर
छाया सखि ! आलस्य, न जानें, क्यों सारी रजनी-भर
सोती रही निकुंज-भवन में ? प्रथम दिवस यह अभिनव
नव-वसन्त का आज। कोकिला का एकान्त कुहू-रव
वन-उपवन में मुखरित होता। आम्र-वृक्ष में अंकुर,
नव पल्लव, फूटी मंजरियाँ; बौर-गंध से आतुर
दक्षिण पवन डोलता मादक।

मञ्जुलिका

आज, मदन का उत्सव;
मधु का पर्व पुनीत।

मदनिका

मनाओ, तुम भी सुख चिर-अभिनव !

मञ्जुलिका

और, सखी ! तुम ?

मदनिका

[हास्य और कौतुक-पूर्वक]

मैं सोऊँगी पुनः बसन्त-शयन पर
सुषमा औ प्रमाद की निद्रा में। अलि, निशि-भर, दिन-भर
सोने दो मुझको। न जगाओ।

मञ्जुलिका

यह तो आज असम्भव;
सजनि, तुम्हारे बिना पूर्ण कैसे होगा मदनोत्सव ?

मदनिका

मुझे छोड़ दो। ले न सकूँगी भाग पर्व-पूजन में।

मञ्जुलिका

कारण ?

मदनिका

हाय, अकारण ही क्यों आज, न जानें, मन में
एक श्रान्ति-सी विकल। चाहती मैं विश्राम अपरिमित;
इस कोकिल-कलरव-कूजित कानन में निद्रा इच्छित !
श्रम से देह क्लान्त, मंजुलिके !

मञ्जुलिका

[कातर होकर सविनय]

नहीं, नहीं; सुकुमारी !
निरुत्साह मत करो हमें तुम।

माधविका

निर्भय, स्वेच्छाचारी
हम अनङ्ग की सहचरियाँ। करतीं कौतुक-लीला
उर-उर में मानव के प्रति-दिन, प्रति-क्षण लज्जा-शीला।

झंकृत करतीं मधुर कामना का नूपुर चिर शोभन
रसिकों के मानस में।

मंजुलिका

भरतीं हृदय-हृदय में वेदन;
एक पिपासा उन्मन-उन्मन। विकल वासना का स्वर।
पतझड़ में मधुमास और मधु में पत्रों का मर्मर।
रोमाञ्चित करतीं तरुओं की लतिका के यौवन से।
वन-वन को उन्मत्त बनातीं मधु के आलिङ्गन से।
सरस-स्निग्ध, देतीं सरिता को हम तरङ्ग। सागर को
राका का उच्छ्वास; नीलिमा विपुल-गहन अम्बर को।
मर्मर-राग विजन-कानन में, कोमलता किसलय में;
हम ले आतीं राशि-राशि अनुराग-विनोद प्रणय में।
पुष्पों में रस, रस में अनुपम स्वाद, वृक्ष में पल्लव
नूतन, पल्लव-दल में पेलवता, अशेष, चिर-अभिनव!

मदनिका

फिर भी, इस वसन्त के वन में, तुमने मुझे जगाया
जीवन की जड़ निद्रा से क्यों सहसा?

मञ्जुलिका

[भ्रू, नेत्र, स्मिति और करों के सम्मिलित अभिनय से]

वन में पाया
आज अचानक मधु का यह संकेत। निशीथ-समय था।
जग की पलकों पर माया थी, स्तब्ध समस्त निलय था।
हमने देखा, वृद्ध शिशिर को, जाते निर्जन पथ में;
क्षीणकाय, क्षय-ग्रस्त, पीत-मुख, भग्न मनोरथ-रथ में;
रुक-रुक कर, झुकता-सा कटि से; एक दृष्टि से सकरुण,
विजन मार्ग में पीले पत्तों पर एकाकी अशकुन
वह संसार देख कर, जिसमें उसका गौरव-शासन,
रहा अभी, पल-भर पहले तक। किसने यों निर्वासन
दिया शीत के स्वामी को?

माधविका

तत्काल उसीके सम्मुख
हुई शंख-ध्वनि किसी नवागत विजयी की। यौवन-सुख
सिंह-नाद कर उठा जगत में। जय का घोष निराला
गूँजा दिशा-दिशा में निर्भय। नव वसन्त की ज्वाला
जगी प्रबल दावाग्नि-सदृश, प्रत्येक प्रान्त, गिरि, वन में;
अरुण ध्वजा चमकी दिगन्त में।

मञ्जुलिका

और, एक ही क्षण में,
परिवर्तित हो गया विश्व। बज उठी बाँसुरी विष की
सघन आम्र-कुंजों में सुरभित, सरस-मधुर यह किसकी?
स्वर्ग-लोक के अन्तःपुर से, हम उतरीं भूतल पर
आकर्षित-सी विवश; मार्ग में स्वर्गंगा के जल पर
खेती यौवन की नौका मरकत-नीलम से निर्मित;
मन्द-मन्द मारुत-प्रवाह पर बहती सुख से पुलकित!

माधविका

और, यहाँ हमने देखा यह मर्त्यों का क्रीड़ास्थल!
चिर-श्मशान-सा, दैन्य-दुखी, कंकाल-सदृश, कृश-दुर्बल;
युद्धानल प्रज्वलित, धूम्र से आच्छादित भू-मण्डल;
शस्त्रों का विस्फोट, सैनिकों का चीत्कार, अशृङ्खल!
रुदन और हा-हा-रव, शोषण, उत्पीड़न, निष्कासन,
हमने देखा गृह-गृह में शिशुओं का करुणा-क्रन्दन!
संत्रासन, उन्माद विभव का, जनता का आन्दोलन;
जलन-बुभुक्षा उदर-उदर में; नगर-नगर में गर्जन!

मदनिका

हाय, न जानें, कितने युग बीते कितने मन्वन्तर,
मैं इस मर्त्य-लोक में आयी प्राणों की निधि खो कर।
दूर-दूर जग से इस नीरव-कुंज-भवन में, मोहक
एकाकिनी सदा रहती हूँ बेसुध, सालस, मादक

बिस्मृति की यौवन-निद्रा में। किन्तु, इसी बेला में
तुम प्रतिवर्ष जगातीं मुझको। मद की अवहेला में,
मैं उठती हूँ जाग तृषा से। और, शीघ्र सो जाती
फिर निदाघ के प्रखर प्रभंजन चलते ही अलसाती,
तप्त ज्येष्ठ की दोपहरी में, निशि के नीलांचल में,
वर्षा के घन-चन्द्रातप में, श्वेत शरत-कुन्तल में,
मैं कुहेलिका-सी दिशि-दिशि में, तुहिन-बिंदु-सी उज्वल,
छा जाती हूँ प्रति प्रभात में दूर्वादल पर श्यामल!
और उठा लेती हैं मुझको रवि-किरणें फिर कोमल!
किन्तु, न आज चाहता उठने को, मेरा अन्तस्तल;
कर न सकोगी क्षमा मुझे क्या?

मञ्जुलिका

नहीं, नहीं; सुकुमारी!
अग्रिम वर्ष करोगी इच्छित; सखि, इस वर्ष हमारी
पूर्ण करो अभिलाषा। आओ, हम सब मिल कर गायें;
यह प्रमाद अब छोड़ो मन का, जीवन का फल पायें!

माधविका

कहो, वीण ले आऊँ?

[सभी सुन्दरियाँ एक स्वर में]

हाँ-हाँ, तुम वीणा ले आओ;

[उनमें से एक]

माधविके, तुम वंशी में दो स्वर।

[माधविका उससे]

तुम मुरज बजाओ!

मञ्जुलिका

आज हमारी वनकन्या गायेगी, तुम भी गाओ;
राजकुमारी को वसन्त का कोई गीत सुनाओ!

माधविका

क्या न मदनिका गायेगी?

मञ्जुलिका

हाँ, हाँ, गायेगी वह भी!
बड़ी बनी वाचाल, अरी! पल-भर तू चुप तो रह भी!

[मदनिका 'नहीं-नहीं' कहती ही रहती और सखियाँ हाथों में वीणा रख देतीं। एक तरुणी उसके तारों को झंकार देती। मदनिका काँप उठती। और, स्वयमेव उसकी उँगलियाँ वीणा के तारों पर चलने लगतीं। मदनिका अपलक, अवाक, विस्मित और सखियाँ झूम-झूम कर गाने लगतीं। पुनः गीत, पुनः नूपुर का झङ्कार।]

गाओ, यौवनमयि, गाओ!
.........तुम गाओ, हे....!

मृदु मलयानिल के प्राणों से,
सरिता के कल-कल गानों से,
अपना कल कण्ठ मिलाओ;
गाओ, यौवनमयि, गाओ!
....तुम....गाओ, हे.........!

सुमनों के सुरभित परिमल से,
अनुराग-रँगे नव द्रुमदल से,
जीवन की प्यास बुझाओ;
गाओ, यौवनमयि गाओ!
....तुम....गाओ, हे.........!

[राजकुमारी मदनिका की चेष्टा में तनिक भी अन्तर नहीं होता। दृष्टि वैसी ही, भाव वैसे ही, केवल उँगलियाँ वैसे ही, तारों पर फिसल रही हैं। सुन्दरियाँ दूसरा गीत गाती हैं।]

इन नयनों को मत रोको;
........तुम रोको, हे....!
इनमें मदिरा का विभ्रम है;
इनमें अतृप्त सुख का श्रम है!
उस जादू को मत टोको;
........तुम टोको, हे....!

नयनों में एक पिपासा है;
दो बूँदों की अभिलाषा है !
तुम एक बार अवलोको;
·······अवलोको, हे·······!

[गीत सुन कर मदनिका के नेत्र, जैसे, चंचल हो उठते । उनमें लज्जा की अरुणिमा, इस कोर से उस कोर तक, लहरा जाती । भाव-मुद्रा में भी चपलता का आभास स्पष्ट दृष्टिगोचर होता । सुन्दरियों का उत्साह पूर्ण रूप से बढ़ जाता । वे फिर गाने लगतीं ।]

बोलो हे रूपसि, बोलो;
·······तुम, बोलो, हे·······!
चिर-मूक प्रेम की भाषा है;
अधरों को मधु की आशा है !
अपना अन्तर्पट खोलो;
·······तुम, बोलो, हे·······!
ज्योत्स्ना के उज्वल हासों में,
रजनी के मृदु निश्वासों में,
तितली-सी कोमल डोलो;
·······तुम, बोलो, हे·······!

[गीत शेष होते-होते, इस बार, मदनिका के हृदय का आवेग निर्झरिणी-सा फूट पड़ता है । वह विह्वल होकर सखियों की बाँह पकड़ लेती, जैसे सुध-बुध खो रही हो और तरुणियाँ उसे सँभाल कर, आसन पर, बिठला देतीं । मस्तक पर शीतल चन्दन का लेप कर देतीं और अंचल का व्यजन बना कर प्राणों में ठँढक पहुँचातीं । और, तब उन्मादिनी मदनिका धीरे-धीरे मंजुलिका की गोद में लेट जाती । सुन्दरियाँ प्रसन्न, हँसमुख; जैसे उन्हें मनोवांछित वस्तु प्राप्त हो रही हो । मदनिका मदालस]

मञ्जुलिका

उठो, उठो हे रूप-गर्विते ! वन में जीवन छाया;
देखो, जग में मदिर सिहरता नव वसन्त है आया !

मदनिका

[उसी मूर्च्छना के आवेश में]

क्या वसन्त है आया सचमुच ?

मञ्जुलिका

हाँ, वसन्त की माया
भुवनमोहिनी आज जगत में छाई । प्रेयसि, पाया
पृथिवी ने सौंदर्य नवल, कुसुमों ने नूतन सौरभ;
आज, प्रकृति के लीला-गृह में दीप जला कोमल-प्रभ !

मदनिका

समझी मैं सखि, इसीलिए तो, कहती, मुझको छोड़ो;
मुझे न खींचो कोलाहल में ।

मञ्जुलिका

प्रिये, न बन्धन तोड़ो
निर्मम बन कर आज प्रेम-कौतुक का ।

मदनिका

फिर क्या करता
सखि, वसन्त ?

मञ्जुलिका

मत पूछो, सुन्दरि ! विकल, प्रमत्त, सिहरता,
वन-वन में वसन्त फिरता है । किन्तु,व्यर्थ;वह निष्फल !

मदनिका

तुम मुझको उन्मत्त बना दोगी ।

मञ्जुलिका

रूपसि, तुम पागल
कर दोगी सारी पृथिवी को, कण-कण को उच्छृङ्खल;
तृण-तृण को अपने श्वासों से रोमांचित, मद-विह्वल !

माधविका

खड़ा प्रतीक्षा में वसन्त है कुंज-द्वार पर नीरव;

मदनिका

एकाकी क्या भर न सकेगा वह जगती में अभिनव
पुलक-वेदना ?

मञ्जुलिका

नहीं, सुहासिनि ! जग के आक्रन्दन में
मधु-प्रवाह आकण्ठ डूब-सा रहा। किसीके मन में
उठती नहीं उमंग। विकल-सा दक्षिण पवन अचल है !
पुलिन-पुलिन पर रोदन करता सखि, द्विरेफ का दल है !
द्रुम के नव पत्रों पर आयी अभी न मोहक लाली;
डोल रही कानन में हरिणों की टोली मतवाली
उत्कण्ठा से। मधुर न लगता कोकिल-गण का कूजन
कुंजों में। छाया अनन्त है उदासीनता उन्मन
वीथि-वीथि में। आज तुम्हारे बिना शून्य-सा गृह-गृह !

मदनिका

[आश्चर्य और व्यंग्य से]

कैसे सखि, हो गया आज यह मानव इतना निस्पृह,
तृषित बुभुक्षित युगयुगान्त से जो ?

मञ्जुलिका

यह तो दानव है !
हाय, आज जो देख रहीं तुम, वह मानव का शव है
भूतल पर निश्चेष्ट पड़ा, हो रहा रक्त उत्सव है !
गृद्ध-शृगालों का यह मरघट में अनन्त वैभव है !

मदनिका

और, नारियाँ ?

मञ्जुलिका

उनके नयनों में न आज वह रस है;
कुटिल दृगों के बाण विफल हैं; चितवन व्यर्थ, विवश है !
यौवन में न नवल उद्दीपन, अलकों में आकर्षण;
अंगों में न तरंग तरुण, मुस्कान नहीं प्रिय दर्शन !
एक शुष्क मरु-भूमि बना जग, विरस, दग्ध, अति विस्तृत;
जलता है जीवन सखि, जिसमें प्रतिक्षण, प्रतिवासर, मृत !
रंगभूमि को छोड़ पुरुष ने समरस्थल अपनाया;
और, अलग, नारी ने अपना ही संसार बसाया !

मदनिका

किन्तु, सखी ! मन्मथ के रहते यह कैसे हो सम्भव ?

मंजुलिका

निश्चय ही सुकुमारि ! मान स्मर सकते नहीं पराभव;
किन्तु, आज उनके भी पाँचों बाण अधीर-विकुंठित !
पुष्पों की प्रत्यंचा मर्माहत रोती भू- लुण्ठित
निस्सहाय-सी बिना तुम्हारे।

माधविका

पर्वत का वक्षस्थल
वेध, फूट पड़ने को व्याकुल-सा तुषार- निर्झर चल;
वन-तरुवर-समेत उड़ने को तत्पर नभ में भूधर;
शत-शत धाराओं में बहने को उद्यत-सा सागर
उमड़-उमड़ कर। कल कूजन करने को खग-कुल विह्वल।
वन-वन में गुंजन भरने को प्रस्तुत-सा मधुकर-दल
पुंज-पुंज। मलयानिल बहने को कुंजों में चंचल-
रुका। सरोवर में खिलने को उत्कण्ठित शत-शत दल
शतदल के।

मदनिका

ठहरो, माधविके ! काँप रहा मेरा मन
किस अज्ञात-पुलक से इस मधुऋतु में निर्जन प्रतिक्षण
आज, न जाने, क्यों ? सुदूर में बजता किसका कंकण ?
कौन भाल पर प्राची के करता सिंदूर समंकन ?

मञ्जुलिका

ललिते, आयी उषा तुम्हारा करने को पद-पूजन !
नव-अनुराग-राग से रंजित;

मदनिका

तो, क्या मुझको तत्क्षण
होगा उद्यत होना।

मञ्जुलिका

हाँ, हे चिर तरुणी, चिर बाला,
आओ, हम वसन्त के वन में गूँथें प्रिय वर माला
नव चम्पक के पुष्पों की।

माधविका

नव-नव कोरक का परिमल
बाँधो बाहु-पाश में; सुन्दरि, हँसो उत्संगित खल-खल !

मदनिका

क्या तात्पर्य तुम्हारा, समझी मैं न; विनोदिनि, बोलो;

मञ्जुलिका

सखी, समझ जाओगी तत्क्षण, अवगुण्ठन तो खोलो !
क्या वसन्त जायेगा यों ही ? विकल अनंग उदासी !
किस तरु-वन में खोजेगा पथ मलय समीर प्रवासी ?
तुम युग-युग की हो आकांक्षा आदिकाल से उन्मद.
मदन मनोरथ करती हो आ रही पूर्ण, रस-नीरद
उमड़ाती अम्बर-मण्डल में पृथिवी के। एकाकी
पंचविशिख भी जगा न सकते यौवन-तृषा धरा की ?

माधविका

तुमने ही तप-भंग किया था कौशिक का वनवासी
बन त्रिलोक-सुन्दरी मेनका। हरि-हर भी अविनाशी
फिरे तुम्हारे पीछे पागल-से त्रिभुवन में। निपतित
हुए विधाता भी प्रमाद-वश कमलासन से कम्पित।
दिनकर और चन्द्रमा को भी गिरना पड़ा गगन से,
सुरपति का डोला सिंहासन, सुन्दर स्वर्ग-भवन से !
जिस दिन निकली विकल रागिनी, स्मर के अन्तःपुर से,
अहे मदनिके, चपल तुम्हारे चरणों के नूपुर से,
उस दिन तपी विरागी भी हो गया घोर अनुरागी;
जन्म जन्म की पुण्य-साधना एक निमिष में भागी !
शत सहस्र वर्षों की अनुभव-योग-तपस्या दर्पित
हुई तुम्हारे एक चकित इंगित पर सस्मित; अर्पित !
तुम्हीं बनी थीं सीता, राधा, द्रुपदसुता, व्रजनारी;
तुम बनकर उर्वशी मर्त्य में आयी थीं सुकुमारी !
फेंका ऋषियों ने वल्कल-पट, देवों ने पीताम्बर;
दूर किया तुमने अपने ही हाथों से आडम्बर !
स्पर्श किया जब-जब सखि, तुमने अंगुलि से जग का तन,
खींचे तार वीणा के, चंचल चरण तुम्हारा नर्तन;
तब-तब नाची सृष्टि निखिल, द्रुत उसी अनाहत स्वर में !
एक पिपासा की ज्वाला तुमने फूँकी घर-घर में !
मार्ग-मार्ग में लीला-कौतुक, कुंज-कुंज में क्रीड़ा !
विजन-विजन, उपवन-उपवन में जागी मनसिज-पीड़ा !

मञ्जुलिका

शत-शत मदनों का उन्मादन, शत वसन्त का यौवन;
शत-शत मलयानिल का सौरभ, शत सुमनों का वेदन;
प्रतिपद में संनिहित तुम्हारे; प्रति चितवन में कम्पन !
एक श्वास में मृत्यु, तुम्हारे एक स्पर्श में जीवन !

मदनिका

वह युग था विचित्र, जब पुरुषों का था यह सिंहासन;
रंग-महल से समर-भूमि तक पुरुषों का ही शासन !
पुरुषों के हाथों में असि थी, और उन्हीं की वाणी !
नारी थी निःशस्त्र, कहाती अन्तःपुर की रानी
बनी वन्दिनी कारागृह में। यौवन की मृदु-वीणा
बजती थी आनन्द राग में, नारी प्रणय-प्रवीणा !
पुरुषों ने विद्रोह किया था वैभव की माया से;
दूर-दूर भागा-सा फिरता था विलास-छाया से !
तब नारी आगे बढ़ आई, नर को भुज-बन्धन से
बाँधा, देकर उसे प्रेम का स्थान, हृदय में, मन से !
किन्तु, आज का युग परिवर्तन; काल चक्र अति चंचल;
नारी ने ही सुलगाया है जगती में द्रोहानल !
नर के हाथों में रक्खा निर्मोह, सुतीक्ष्ण हलाहल;
पुरुषों के समकक्ष खड़ी हो, दिया उन्हें प्रोत्साहन;
लिया मुक्ति का मन्त्र, निमन्त्रित किया युद्ध-आवाहन !
मृगनयनी के दृग में लज्जा का न सराग-नियन्त्रण;
पुरुषों ने वैराग्य लिया, निष्काम, भूल आमन्त्रण !

मञ्जुलिका

सत्य । उठो, हे मुग्ध मदनिके ! आज तुम्हारी बारी ।
अब तुम अपना अस्त्र सँभालो, केशर-शर सुकुमारी !
भरो कोकिला के कण्ठों में पंचम स्वर अति कोमल;
महा-सिंधु में ज्वार, करो तुम नद-निर्झर को चंचल !
मलय-समीरण को सौरभ दो; विहग-वृन्द को वाणी !
पक्ष भूधरों को दो; मुखरित हो जाये पाषाणी;
तरुओं को पल्लव-दल कोमल, लतिका को आलिङ्गन;
पुष्पों में मकरन्द भरो तुम, दिशि-दिशि में उन्मादन !
शुभ्र-चन्द्रिका में शीतलता, पावक में दाहकता;
तुम कण-कण, रज-रज, तृण-तृण को दो अनंत मादकता !
पत्र-पत्र में कम्पन, जग के रोम-रोम में जीवन;
तुम वसन्त में उद्दीपन दो, यौवन में उन्मादन !
हृदय-हृदय में भरो पिपासा; मन-मन में संवेदन;
पुष्प-पुष्प में प्राण और प्राणों में मूर्च्छित सिहरन !
दिगदिगन्त में हास भरो तुम, गृह-गृह में रति-ज्वाला;
क्रीड़ा, कौतूहल, लीला-रस; राग-रंग मतवाला !
भावों में उल्लास, कल्पना को उमंग दो नव गति;
शाखा-शाखा में आंदोलन; गन्ध-मत्त हो ऋतुपति !
अंगों में यौवन-विलास दो; एक लालसा सालस !
प्रेम-प्रीति की एक वासना; विरत न हो जग मानस !
प्रखर पिपासा दो अधरों को, नयनों को अभिलाषा;
आशा दो उर-उर को, नूतन सुख-सुषमा जिज्ञासा !
तुम मन्मथ के कुशल करों में पुष्प-बाण दो कोमल;
उन बाणों में भरो और अपने दृग का विष परिमल !

मदनिका

एवमस्तु; शृङ्गार सजाओ मेरा हे सुन्दरियो
आज, करूँगी विजय नृत्य मैं मधुवन में अप्सरियो,
मूर्च्छित कर पृथिवी का मानस, वेध जगत-अन्तस्तल,
मैं गाऊँगी गीत, करूँगी नृत्य, अशेष, विचंचल !
रोमांचित कर अतनु स्पर्श से विश्व-प्राण को थरथर !

[राजकुमारी मदनिका सावेग उठती । उसके अधर काँपने लगते । श्वास चपल होते । चरण चंचल । वक्षस्थल का वाम भाग विवसन; सखियाँ वन-कुसुमों से उसका शृंगार करतीं । नूपुर अंजन, अंगराग, परिमल; सभी पुष्पों के । और, तब······]

मञ्जुलिका

हे त्रिलोक विजयिनी; गर्विते !

मदनिका

[अधरों पर उँगली रख, कुछ सोच कर]

किन्तु····

मञ्जुलिका

··· किन्तु, क्या ? ···

मदनिका

[वाणी में असीम व्याकुलता भर कर]

·······जब से,
गत वसन्त के दग्ध अन्त में, पान किया था तब से,
एक घूँट भी नहीं; विरस अधरों के आकुल तल से !

मञ्जुलिका

फिर क्या सखी, चाहती हो तुम ?

मदनिका

[हाथों से इशारा कर]

प्रतिक्षण प्राण विकल-से !
एक पात्र कादम्ब !

मञ्जुलिका

मात्र इतना ही ? सखियो, लाओ;
लाओ, आज तनिक पगली को मधु का पान कराओ !

[माधविका दौड़ कर, एक स्वर्णिम पुष्प-पात्र में परिमल का सार भर कर ले आती और विमुग्ध मदनिका के कम्पित करों

में रख देती। मदनिका एक ही घूँट में उसे निःशेष कर, पात्र फेंक देती। अंग-प्रत्यंग में उसके, विद्युत की मादकता छा जाती। कपोल से ले कर, कर्ण के मूल-प्रदेश तक अरुण हो जाता। वह शराबी-सी, लड़खड़ाती खड़ी होती। पैर डगमग, आँखें लाल; जैसे—उड़हुल के फूल।]

मदनिका

[स्फुटित कण्ठ से]

चलो, चलो, मंजुलिके! आओ, माधविके, सब आओ!

[मंजुलिका, माधविका और अन्य सभी सुन्दरियाँ उल्लास से प्रफुल्लित होकर मदनिका का हाथ पकड़ लेतीं। और, उसे खींचे, लिए, कुंज के बाहर, आ जातीं। और, तब.....सर्वत्र एक अद्भुत उन्मादना,....कौतुक का प्रवाह,... विलास की लीला,....]

[सभी एक ध्वनि में]

आओ, आओ, सखियो! आओ, झूला आज लगाओ
इस कदम्ब की नव शाखा में; हम मिल नाचें, गायें!
मधु के इस हिन्दोल-पर्व में रस का उत्स बहायें!

[नवीन कदम्ब की हरित-पल्लवित डाली से, लता-वल्लरियों से निर्मित एक हिन्दोल लगता है। किशोरियाँ कुमारी मदनिका को उस पर बैठा कर, झूले को चारों ओर से घेर लेती हैं। मदनिका धीरे-धीरे गुनगुनाने लगती और उसीके स्वर में अपना कण्ठ मिला सखियाँ गाने लगतीं।]

झूलो, चिर-सुन्दरि, झूलो!
तुम झूलो, हे.........
निशि का यह अन्तिम क्षण है;
यौवन का मधुर मिलन है!
मधुऋतु-सी मन में फूलो;
तुम फूलो हे..........
झूलो, मृदु अप्सरि, झूलो!

[हिन्दोल आप ही चंचल हो जाता। क्रमशः उसकी गति में वेग आता। तीव्र से तीव्रतम। और सुन्दरियाँ गातीं।]

किरणों की कोमल उँगली से,
सुषमा की मोहक अवली से,
तुम जग का उर-उर छू लो;
तुम छू लो, हे..............
झूलो, हृदयेश्वरि, झूलो!

[हिन्दोल अपने सम्पूर्ण वेग में। मदनिका उन्मत्त-सी। अधरों पर मन्द-मन्द मुस्कान। केश-कलाप वायु में फैले, लहराते, झूले की गति के साथ ही इस ओर से उस ओर। और शेष सभी सुन्दरियाँ वसन्त के अनन्त विभ्रम में कौतुक-लीला-विनोद से नृत्य-निरत। संगीत-मग्न।

सहसा पूर्व के सुदूर क्षितिज पर लाल रंग का एक तेजोमय प्रकाश-पिण्ड। धीरे-धीरे वह अनन्त महासमुद्र से निकल, आकाश में सुस्पष्ट लक्षित होता। और दिशा-विदिशाओं में कोमल-अरुण किरणों का माया-जाल फूट-फूट कर फैल जाता।

मदनिका अपनी बाहुओं को दिगन्त में फैला कर हिन्दोल पर खड़ी हो जाती। प्रकाश की स्निग्ध किरणें उसके कृष्ण-कुंतलों पर पड़तीं और उन्हें सुवर्ण के रंग में रँग देतीं। कुमारी का वासन्ती अंचल लहरा उठता। और हिन्दोल की गति बढ़ते-बढ़ते आकाश के एक छोर से दूसरे छोर तक पहुँच जाती।

तत्काल मलयानिल चलने लगता। कोकिला कूजन करने लगती। वृक्षों के पल्लव मर्मर-ध्वनि में गाने लगते। मृग-दल चौकड़ियाँ भरने लगता। और दिगन्त के एक छोर पर दिखाई पड़ता एक अपरूप किशोर, हाथों में पुष्प-बाण, पाँचों खिंचें, धनुष चढ़ा, उड़ने को उद्यत।

और इसके बाद का वर्णन महाकवि तुलसीदास ने रामायण के किसी काण्ड में कर दिया है। दुबारा लिखने की आवश्यकता नहीं।]

बैलगाड़ी

जा रही है गाँव की कच्ची सड़क से
लड़खड़ाती बैलगाड़ी !
एक बदकिस्मत डगर से,
दूर, वैभवमय नगर से,
एक ही रफ्तार धीमी,
एक ही निर्जीव स्वर से,
लाद कर आलस्य, जड़ता और
दुख का बोझ भारी !
आ रहे प्रतिदिन वहाँ के
अन्न, रस, मधु, वायु सुन्दर;
लौट जाती शाम को है
वह यहाँ का दैन्य भर कर !
एक सौदा है यही, जिसमें
लगी है शक्ति सारी !
एक यह दुनिया, जहाँ है
बिजलियों से रात जगमग !
एक वह, दिन भी अँधेरा,
कर रहे हैं पैर डगमग !
दौड़ता जीवन, उड़ाती रेल,
मोटर, ट्राम, लारी !

×

राह सदियों की पुरानी,
और युग-युग से कहानी,
आ रही है एक ही वह
धूप-वर्षा, आग-पानी !
दूर से अपने वतन को
जा रहा है एक प्राणी !
प्यास से है कण्ठ सूखा,
आह, वह कितने दिनों का,
कौन जाने, आज भूखा !
प्राण में ज्वालामुखी है;
किन्तु, है मुख में न वाणी !
जा रहे हैं आज खींचे
ये विवश-से जिन्दगी के बैल दो,
नर और नारी !

×

एक ही वह लीक पकड़े,
रूढ़ियों को और जकड़े,
जो हजारों साल से हैं,
आ रही चिरकाल से हैं;
—जा रही है, जा रही है !
और, उस सुनसान मरघट से
सदा यह आ रही है—
'जागता या सो रहा है ?
होश क्यों तू खो रहा है ?
सच बता, क्या रो रहा है ?
जाग तो, उठ, खोल आँखें;
क्यों विकल तू हो रहा है ?
ओ मुसाफिर ! ओ मुसाफिर !
है कहाँ मञ्जिल तुम्हारी ?'

×

बैल ये हारे, थके हैं,
हाल, कल-पुर्जे घिसे हैं,
चल रहे हैं ऊँघते-से
राह में रुक-रुक, कहीं पर

तोड़ दें दम ये न जैसे !
स्वेद से है देह लथपथ,
खून से भींगा मनोरथ,
और अपने आँसुओं से,
जो हुई कीचड़ धरा पर,
पाँव उसको है रहा मथ !
किन्तु, गाड़ीवान निष्ठुर
ऐंठता है पूँछ, चाबुक
मारता ही जा रहा है !
पन्थ ऊबड़ और खाबड़,
तंग, चारों ओर डाबड़ !
है कहीं मिट्टी पकड़ती,
तो कहीं दलदल जकड़ता,
और वह ललकारता है—
'आह,यह कैसा लड़कपन?
आ,अरे,ओ,चल,बढ़े चल!'
जा रही गाड़ी अकेली,
एक भी साथी नहीं है !
सृष्टि यह चुपचाप, दारुण
एक सन्नाटा यहाँ है ।
है खुला आकाश, दोनों
हाथ भूतल के बँधे हैं !
माँगता है एक मुट्ठी प्राण,
यह अन्धा भिखारी !

×

और जो लेटा हुआ है,
बैलगाड़ी पर सिहरता,
जानते हो कौन है वह ?
एक युग से मौन है वह !
वह न कुछ भी बोलता है,
वह न तिल-भर डोलता है,
साँस अन्तिम ले चुकी जो,
सभ्यता वह है हमारी !

×

आज मुर्दे-सी पड़ी है,
देह लकड़ी-सी कड़ी है,
तुम उसे जिन्दा समझते,
किन्तु वह कब की मरी है !
लाश जो उसकी सड़ी है,
और बदबू से भरी है;
आज गाड़ीवान चञ्चल,
वह निठुरता जा रहा है,
लाश को ले जायगा घर,
रोशनी का नाम मत हो,
घोर अँधियाली जहाँ पर,
पोंछ कर सिन्दूर, कोई
तोड़ कर की चूड़ियों को,
छिन्न तरु-सी आ गिरेगी,
रो रही नारी चिपट कर,
हाय, पैरों से लिपट कर,
किन्तु, जिसकी आँख में,
चिनगारियाँ-सी भर उठी हैं,
है खड़ी पत्थर बनी वह,
क्यों उसे उस पार भेजा ?
वज्र-सा माँ का कलेजा !
किन्तु, वे नादान बच्चे,
पूछ मत, वे कौन हैं ?
हिलते नहीं,डुलते नहीं जो,

एक कोने में अचल-से,
देखते हैं एकटक, उस ओर
आहट-सी जहाँ पर !
और गाड़ीवान निर्मम
जानता मजबूरियाँ वह,
और अपनी बेकरारी !

×

कौन-सा इन्साफ है यह ?
रे कहाँ का न्याय है यह?
क्या यही है सत्य तेरा ?
झूठ पर ही जो टिका हो,
क्या यही है मर्म तेरा ?
पाप ही घोंटे गला,
जिसका वही है धर्म तेरा ?
यह असर गहरा हुआ है,
मन्दिरों में इसलिए तू
भ्रान्ति पर ठहरा हुआ है !
यदि नहीं तो तू कहाँ है ?
बन गया पाषाण निर्मम,
सिर्फ पूजा के लिए तू ?
आज जो जय बोलता है,
मूर्ख, तेरी आँख में जो
धूल हरदम झोंकता है !
सुन रहा यश-गान अपना,
तू प्रशंसा सुन रहा है !
किन्तु, सुन पाता नहीं तू,
कौन तेरे द्वार पर ये
एक दाने को तरसते,
पेट की डफली बजा,
मासूम जो रोते बिलखते,
सीढ़ियों पर सर पटक कर,
गीदड़ों की मौत मरते,
रोज हाहाकार करते !
मात्र बस कङ्काल हैं जो
ये फटे बेहाल हैं जो,
माफ करना, चाहता जी
मैं कहूँ शैतान तुझको,
बोल ओ भगवान ! क्या है
यह न तेरा ही पुजारी ?

×

रात जाड़े की कँपाती,
हड्डियों को भी चबाती,
बर्फ-सी ठण्ढी हवा है !
मौत की भी क्या दवा है ?
देख कर इतना अँधेरा,
आज लगता है कि आये
ही नहीं जैसे सबेरा !
एक वह मनहूस पंछी
चीखता उल्लू अभागा,
गूँजती आवाज उसकी,
गूँज उठते खेत, जंगल,
दूर, दरिया का किनारा !
आह, इतने में अचानक
टूटता है एक तारा,
और, सब फिर शेष होता,
और फिर खामोश सारा !
डूब जाता चाँद भी है
शर्म से अम्बर विहारी !

बिन्दो रानी

(१)

बिन्दो रानी, बिन्दो रानी ! आज तुम्हें लख इस पनघट पर,
किस अतीत की धुँधली रेखा खिंच आयी मेरे दृग-पट पर !
जब नटखट बचपन में अपने खिल उठता तेरी आहट पर;
खड़े खड़े कितने क्षण बीते इस सरिता के सूने तट पर !
भूली है न अभी तक अपनी वह नादानी, बिन्दो रानी !
यह दुनिया है एक कहानी—एक कहानी, बिन्दो रानी !

(२)

माना, आज न मेरे-तेरे बीच खड़ी है कोई टाटी;
दूरी प्रेम-मिलन की आसानी से जा सकती है काटी !
फिर भी काँप रहा मन मेरा; यही प्रेम की क्या परिपाटी ?
ना— ना; यह न कभी होने का ! घाट न, यह घटियों की घाटी !
मैं पापी; कुछ ज्ञात नहीं, अभिलाषा-भाषा, बिन्दो रानी !
गरल-पात्र में बुझा रहा हूँ अमृत-पिपासा, बिन्दो रानी !

(३)

यहाँ ठिकाना किसका ? कोई आता है—कोई जाता है !
आँखमिचौनी का फल आखिर एक वेदना ही पाता है !
सुन, झौओं के झुरमुट में वह बैठा पंछी क्या गाता है ?
साँझ-सबेरे का यह डेरा; चार घड़ी का ही नाता है !
ढलता चन्द दिनों में वैभव; मान जवानी, बिन्दो रानी !
वह न मानता बिनती-मिन्नत; आना-कानी, बिन्दो रानी !

(४)

ढुलकाओ मत नीर दृगों से; उठती एक अनागत पीड़ा !
आज, युगों के बाद किसीने जैसे क्लान्त हृदय को चीरा !
धीरे-धीरे चित्र किसीका करता कल-कुञ्जों में क्रीड़ा !
और, वही बन जाता पल में यौवन के नयनों की व्रीड़ा !
मुझको जहर पिला दो; लेकिन, मैं न हिलूँगा, बिन्दो रानी !
इस जीवनमें—क्षमा करो; फिर कभी मिलूँगा, बिन्दो रानी !

(५)

अपने को ही कर दे अर्पण, ऐसा कौन जगत में दानी ?
इस रहस्य की घन कुहेलिका कौन देख आया है प्राणी ?
यहाँ जिन्दगी का मतलब सब लगा लिया करते मनमानी !
देख,—नदी वह बहती जाती; कहां मिलेगा ऐसा पानी ?
पछताना है आजीवन बस, एक भूल पर, बिन्दो रानी !
इस सरिता का जल न ठहरता किसी कूल पर, बिन्दो रानी !

मनुहार

री जगत की तृष्णिका, आशा-लता, अभिराम;
नियति-ग्रीवा-हार की यति-हीन मुक्ता-दाम !
चाहती अब और क्या सखि, कौन-सा आधार ?
लाज लगती, क्षुद्र-सा देते तुझे उपहार !

भले आई तू सलोनी, मौन मेरे द्वार !
लचक, लज्जावती-लतिका-सी सकुच, सुकुमार !
कुटिल भौंह-कमान को अलि, कान तक यों तान,
तोड़ने आई बता तू आज किसका मान ?

चमक चलती, ठमक मग में जब बजा मंजीर,
झमक, झमका वसन-भूषण से विनम्र शरीर;
गमक उठतीं गेह-गलियाँ; दमक द्युति में भोर,
सजनि, तेरे दृष्टि-पथ का मदिर-मूर्च्छित छोर !

खिड़कियों से, घर, छतों से, विकल हो, खो धीर,
निकल पड़ती हैं अमित आँखें चुआती नीर;
मृदुल पद रखती, निरखती, तू उन्हें चितचोर,
मन्द मुसक्याती चली जाती कहाँ किस ओर ?
रात-दिन में कौन जाने देखने मुख-चन्द,
खुल झरोखे कहाँ कितनी बार होते बन्द !

आज खुल कर खिल रही है चाँदनी मधु-बाल ;
दुग्ध-शय्या पर शिथिल-सा सुप्त जग सुविशाल !
मैं अटा से सखि, हटा कर स्वप्न-स्मृतियाँ भग्न ,
मग्न-सा हो रहा तेरी छवि-घटा में नग्न !

ढूँढ़ता उस ओर वन में पवन अपने प्राण ;
इधर तेरे रूप-रस का कर रहा मै ध्यान !

भले प्यारी, आ गई तू सहज गति से शान्त ;
सकल जग में ज्योति भरती करुण-कोमल-कान्त !
आ, अरी ! मेरे हृदय में मिटा ले विश्रान्ति—
अश्रु-जल से बहा दे सखि, भावना की भ्रान्ति !

शर्वरी में शिशिर की हिम-बालिका प्रच्छन्न ,
कर रही सूचित किसी का आगमन आसन्न !
ले करों में क्षीण दीपक, खोल उत्सुक द्वार ,
मैं तभी से सजनि, तेरे स्वागतार्थ तयार !

पुष्प-पल्लव से सजी नववाटिका सुकुमार ,
गूँथ दे मेरे रँगीले आँसुओं के तार।
वासना में प्यास ना ; ना हास में वह गन्ध ;
आज भर दे हृदय में लय-वेदना निर्बन्ध !

फेंक, ज्ञानालोक प्रतियुग साधनों में अन्ध !
सखि, झुका दे प्रार्थना-सा विश्व का शिर स्कन्ध !

जन-वाणी

एक हमारी वाणी,
जो अखण्ड भारत की वाणी !
युग की वाणी,
जन की वाणी,
कोटि-कोटि कण्ठों की वाणी,
कोटि-कोटि जन-गण की वाणी,
निखिल राष्ट्र की वाणी ,
निखिल जाति की वाणी ,
अखिल धर्म की वाणी ,
अखिल कर्म की वाणी !
एक हमारी भाषा,
जो अखण्ड भारत की भाषा !
युग की भाषा,
जन की भाषा,
कोटि-कोटि कण्ठों की भाषा,
कोटि-कोटि जन-गण की भाषा,
निखिल राष्ट्र की भाषा,
निखिल जाति की भाषा,
अखिल धर्म की भाषा,
अखिल कर्म की भाषा !

×

वह मेरी वाणी,
वह मेरी भाषा !
जिसमें मेरी क्षुधा-पिपासा,
आने वाले युग की आशा !
जिसमें मेरा ज्ञान, योग, स्मृति ;
मेरी संस्कृति !
जन-गण-नायक, त्राता ,
भारत - भाग्य - विधाता ,
जो जननी, माता !
जिसमें मेरा ईश्वर !
जिस पर
यह जीवन निर्भर !

हास्य और क्रन्दन,
प्रेम और वन्दन,
मर्त्य और नन्दन!
तप, साधन, चिन्तन,
तन - मन,
चिन्ता-धारा,
भाव, भक्ति, आराधन, पूजन,
जीवन और मरण,
सारा का सारा!

×

निस्सन्देह स्वदेश देह; पर,
जनता की आत्मा तो स्वर!
लो शरीर, लो प्राण;
किन्तु, तुम कण्ठ करो निर्बन्ध!
सुन रे, अन्ध!
रामायण के एक चरण पर
कोटि राज्य न्योछावर!
करके भी अधिकार देह पर
कर सकते क्या आत्मा पर शासन?
लो चाहे, सर्वस्व;
दया कर, पर, रहने दो स्वर!
चिर-दलितों का स्वर,
चिर-मूकों का स्वर!
जिसमें तुलसी, चन्द, बिहारी,
सूर, देव, विद्यापति,
केशव, हरिश्चन्द्र औ मीरा,
नानक तथा कबीर,
प्रेमचन्द, जयशंकर,
शुक्ल, द्विवेदी;

वह मेरा स्वर,
शाश्वत, सुन्दर,
गूँजे घर-घर,
मेरी भाषा, मेरी वाणी,
धन्य-धन्य वह चिर-कल्याणी!
अमर रहे साहित्य;
सरस-सुवासित,
करे प्रकाशित,
जग-जग का जीवन उद्भासित,
चिर-ज्योतिर्मय,
ज्यों नभ में आदित्य!
वह स्वर अक्षय,
उस वाणी की जय,
जिसके कोटि-कोटि सुत जीवित,
जाग्रत,
बल, साहसमय, धीमय,
करते विचरण निर्भय!
उसको क्या भय?
क्या संशय?
बोल रहा है युग जब तक इस स्वर में,
चलती है लेखनी एक भी,
एक क्षीण भी ध्वनि आती है
कहीं किसी कोने से,
और खड़ा है अचल हिमालय
उन्नत-शिर, अभिमानी!
है गंगा में पानी,
बनी रहेगी तब तक रानी,
चिर-कल्याणी,
मेरी भाषा, मेरी वाणी!

मौन मिलन

(१)

प्रिय, किस छद्म-वेश में प्रतिदिन प्राणों में तुम आते हो ?
विविध रूप धारण कर मुझको निशि-वासर भरमाते हो !
नाम धाम सब ने बतलाया ;
किन्तु, तुम्हारा भेद न पाया !
प्राण कपोत फँसे मेरे, यह
तुमने कैसा जाल बिछाया !
इन्द्रधनुष की छवि-से मेरी आँखों में घुल जाते हो !
प्रिय,किस छद्म-वेश में प्रतिदिन प्राणों में तुम आते हो ?

(२)

पुलक स्पर्श पा कभी तुम्हारा मैं मन-ही-मन खिल जाता !
वाणी मूक,कण्ठ स्वर गद्‌गद; हृदय विकल हो हिल जाता !
मार्ग-मार्ग में तरु की छाया ;
पता तुम्हारा पल्लव लाया !
भिन्न-भिन्न छवि धर तुम आये;
पर, मैंने पहचान न पाया !
पत्थर में भी आसक्तों को रूप तुम्हारा मिल जाता !
पुलक-स्पर्श पा कभी तुम्हारा मैं मन-ही-मन खिल जाता !

(३)

मर्मर-वन में जबकि तुम्हारी वेणु-रागिनी बज उठती !
ऋतुपति की मधुशाला सहसा एक बार फिर सज उठती !
नन्दित हो जाती पथ कणिका ;
छू अवयव पद-पारस मणि का !
चौंक-चौंक उठते कर अनुभव
प्राण किसी की मृदु पग-ध्वनि का!
वह अदृश्य, अस्पृश्य, सुखद रव विह्वल हो रज रज उठती!
मर्मर-वन में जबकि तुम्हारी वेणु-रागिनी बज उठती !

(४)

मेरी उर वीणा के स्वर में क्या जानूँ, क्या गाते हो ?
पता नहीं, इस गुप्त मिलन में प्रिय ! तुम क्या सुख पाते हो !
सारा विश्व सुप्त जब रहता ;
हिम निशीथ निद्रा में बहता ।
कोई स्वप्न विकल मानस में,
आकर प्रणय-कहानी कहता !
मैं सचेष्ट होता हूँ, जब तुम मुझे प्यार कर जाते हो ;
मेरी उर वीणा के स्वर से क्या जानूँ, क्या गाते हो ?

(५)

दुर्गम यह आदर्श शैल-पथ, नहीं शिखर पर चढ़ पाता !
प्रिय, यह ऐसी अग्नि-परीक्षा में न स्वर्ण-सा कढ़ पाता !
सन्ध्या के मेघों से लघु वय,
लिख जाते तुम अपना परिचय ।
किरण-तूलिका से भर देते
मेरे दृगमें आकुल विस्मय !
ऐसी वह दुर्बोध चपल लिपि, मैं न उसे भी पढ़ पाता ;
दुर्गम यह आदर्श शैल पथ, नहीं शिखर पर चढ़ पाता !

अचिरागता

आती है पद्मज, उषा-बाल ;
गन्धाकुल, पावन-प्रणय-मग्न,
ज्योतित जग-प्रांगण में विशाल !
पल-पल-पल वर्तुल, वर्द्धमान,
ज्योत्स्ना-सी शीतल, गति मराल !
मधु-अधरों पर ताम्बूल-राग ,
सस्मित मुख,नत चितवन अराल !
चित्रों-सा चित्रित तनु विचित्र,
आयत पाटल-लोचन विलोल,
वासना-निवृत, विह्वल, अधीर,
कुंकुम-प्रसिक्त, निस्तल कपोल ।
एकाकी, रोहित, शशि-प्रसन्न ,
शारद, सुहासिनी, अमृत-वेलि,

आरसी

कल - वेणी - बन्धन - भार-विनत ;
करती कलियों से कलित केलि।
अप्सरा-सदृश कृश, मदालसा,
स्वर्णिम दुकूल फहरा अछोर,
वर-व्योम-श्याम में ऊर्ज-शान्त
नूपुर-सुर-आतुर, नृत्य-भोर।

स्नेहार्द्र, पुलक, अपलक, अनन्त,
प्राणों में लय का ऋजु प्रसार;
ऊरी-कस्तूरी तिलक-भाल,
वह वनकन्या-सी चिर-कुमार।

रे कब से उत्सुक खड़ी-खड़ी
नवजीवन-सागर के प्रतीर,
अपना ही निरख रही चञ्चल
यौवन-उशीर-वासित शरीर।

आती मृदु मादक-सी हिलोर
प्राची से उठ-उठ इसी ओर;
वह अरुण किरण की करुण कोर
वसुधा को क्षण में गयी बोर।

कुड्मल, प्रसून विकसित अन्यून
कासारों में किंजल्क-जाल;
किन कणनों से कण-कणित हुआ
मेरे जीवन का चक्रवाल?

कल तुहिन-शयन पर नील नयन
सोये थे स्वप्नों के प्रतीक;
नीरव, विभ्रम-सा आ किसने
खींची गालों पर स्वर्ण-लीक?

गत वयःसन्धि, सरसांग-यष्टि,
क्षीणोदर, पीनोन्नत उरोज;
आगुल्फ-विलम्बित केश-राशि,
गर्वित, सलज्ज आनन-सरोज!

मंगला-मुखी-सी मन्द-मन्द
ले केसर-चन्दन-भरी थाल,
किसके पूजन-हित चली पहन
कलखग-कूजन की गीति-माल?

आयी रे! आयी खोल द्वार—
निर्जन वनान्त का अन्तराल,
चिर नूतन-चेतन-कन बिखेर
यह जीवन-जागृति की सकाल।

जिन्दा भूत

साधू बाबा एक कहीं से मेरी बस्ती में आये;
भस्म रमाये, तिलक लगाये, जटा निराली फैलाये!
मरघट में ही डेरा डाला; क्योंकि, भूत जो थे बसमें!
बात-बात पर लट्ठ चलाते, दिन भर खाते थे कसमें!
बाबाजी तगड़े-मुस्तण्डे; और गाँववाले भोले!
खाते, पीते, मौज उड़ाते, जीभ खींच ले, जो बोले!
दूध, दही, रुपये औ पैसे रोज बरसते रहते थे;
चरणामृत लेतीं लुगाइयाँ, लोग गालियाँ सहते थे!
जो न चढ़ाता कुछ भी, उसको शाप भयानक थे देते;
इसे डरा कर, उसको ठग कर, धमका कर ले ही लेते!
सचमुच उनकी फर्माइश से तंग गाँववाले सब थे;
लेकिन, कौन नहीं दे, उनके काम सभी जो बेढ़ब थे!
आखिर रामदेव ने सोचा, यों डरकर कब तक रहना?
जब न सामने आता कोई, मुझे पड़ेगा ही कहना!
चालाकी से बोला—बाबा! मैंने देखा है सपना;
देवल भगत स्वयं ही आकर रूप दिखाते हैं अपना!
लम्बी दाढ़ी, काली मूँछें, ताड़ों—सी ऊँची मूरत;
बड़े-बड़े थे दाँत-कान, थी खौफनाक उनकी सूरत!

बोले मुझ से, जाकर कह दो फौरन ही उस लम्पट से;
डेरा-डंडा कूच करे वह, जल्दी ही इस मरघट से !
और नहीं तो फिर मानेंगे हम न किसी के कहने से !
हमको कष्ट बहुत होता है उस तेली के रहने से !
'कौन ?' कहा साधू बाबा ने, कौन भगत वह देवल है ?
रामदेव ने कहा— 'अरे, वह एक भूत ही केवल है !'
'जाओ बच्चा !' बोले बाबा–'हमको नहीं भूत का डर !
भूत-वूत क्या करें हमारा ? वे सब तो नौकर-चाकर !'
'अच्छा, बाबा !' रामदेव ने कहा 'काम मेरा कहना !
मगर, रात में महाराज, सच कहता हूँ, बच कर रहना !'
बाबाजी फिर हँसे जोर से, रामदेव भी मुसकाया ;
आधी रात हुई, मरघट में एक भूत सचमुच आया !
बाबाजी ने देखा उसको और उसे फिर ललकारा !
किन्तु, भूत वह बड़ा विकट था बाबाजी को धर मारा !
हलवा, मोहन-भोग उड़ा कर पेट हुआ था जो हंडा !
पड़ने लगा उसी पर अब तो हाथ, लात; जूता, डंडा ।
बाबाजी चिल्लाये—'छोड़ो ! मुझे छोड़ दो, दया करो !'
भला भूत भी कहीं छोड़ता ? नकियाया वह, 'मरो-मरो !'
मार-मार कचमूर निकाला, बाबाजी गिर पड़े वहाँ !
और भूत हो गया अँधेरे में गायब जानें न कहाँ ?
बड़े सबेरे ही जब उठ कर रामदेव घर से आया,
सूनी कुटिया में बाबा का सिर्फ कमण्डल ही पाया !
खूब हँसे सब लोग जान कर रामदेव की यह करतूत;
मरे हुए भूतों से ज्यादा खतरनाक यह जिन्दा भूत !

सब से अच्छा

सब से अच्छा है मेरा घर ;
है मेरा घर, है मेरा घर !

जिस घर में उत्पन्न हुआ मैं,
पाकर जिसे प्रसन्न हुआ मैं,
जहाँ भरी मैंने किलकारी,
बोली बोली प्यारी - प्यारी,
माँ की गोद, दुलार पिता का,
भाई-बहनें, बाबा - काका,
जहाँ मिला सोने का पलना,
घुटने टेक चला था पड़ना,
बचपन का सुख मैंने लूटा,
पहली बार कंठ था फूटा,

सब से न्यारा, सब से सुन्दर,
सब से अच्छा है मेरा घर !

×

सब से अच्छा गाँव हमारा ;
गाँव हमारा, गाँव हमारा !

जिसकी शाला में पढ़ कर मैं,
जिसकी मिट्टी में बढ़ कर मैं,
इतना बड़ा हुआ हूँ, भाई !
बचपन से तरुणाई आई !
जिसका अन्न, जहाँ का पानी,
पी कर मैंने की मनमानी,
लोटा हूँ जिसकी धूलों में,
घूमा हूँ जिसके फूलों में,
दिन बीते हैं जहाँ हमारे,
खेल-कूद में सुख के सारे !

सब से सुन्दर, सब से न्यारा,
सब से अच्छा गांव हमारा ।

×

सब से अच्छा जिला हमारा ;
जिला हमारा, जिला हमारा,

जिसकी नदियाँ, झील, सरोवर
जिसके जंगल, खेत, मनोहर !

भाँति-भाँति के पेड़ खड़े हैं;
फल-फूलों से हरे-भरे हैं!
बाग-बगीचे, पर्वत-घाटी,
सुन्दर सड़कों की परिपाटी!
तरह-तरह के बसे शहर हैं;
रेल-तार, बिजली के घर हैं!
धनी, गरीब, महंथ, भिखारी;
रहते जहाँ कृषक-व्यापारी!
सब से सुन्दर, सब से न्यारा;
सब से अच्छा जिला हमारा!

×

सब से अच्छा प्रान्त हमारा;
प्रान्त हमारा, प्रान्त हमारा!
जिसका है इतिहास पुराना,
धर्म अनेक, वर्ण हैं नाना!
भाषा, वेश, भाव हैं कितने!
राजा, रंक, राव हैं कितने!
आपस में सब मिले-जुले हैं!
पढ़ने को कालेज खुले हैं!
और न्याय के लिये अदालत;
बदमाशों के लिये हवालत।
कवि, नेता, वैज्ञानिक, दानी;
बड़े-बड़े हैं पंडित, ज्ञानी।
सब से सुन्दर, सब से न्यारा,
सब से अच्छा प्रान्त हमारा!

×

सब से अच्छा देश हमारा,
देश हमारा, देश हमारा!
देश हमारा भारतवर्ष,
हम चाहें इसका उत्कर्ष!
भूमि जहाँ की देवालय है!
सब से पहले सूर्योदय है!
जहाँ चाँदनी प्रथम उतरती;
सोने की जिसकी है धरती!
चिड़ियाँ हैं दिन-रात चहकती!
और, आम की बौर महकती!
बारह मास और ऋतुएँ छै!
मीठी-मीठी हवा जहाँ है!
सब से सुन्दर, सब से न्यारा,
सब से अच्छा देश हमारा!

निर्वास

कैसे अलि, भाया यह उपवन?
वैभव-समाधि पर ऋतुपति की
यह पतझड़ का सैकत-नर्तन!

तू नन्दन-वन की मोहमयी
सुन्दरी परी शोभाशाली;
तेरी चितवन से किस प्रकार
मदिराकुल होता वनमाली!
रोता है यहाँ अतीत-स्वप्न;
विधवा का आहत उर उन्मन!
होता है यहाँ सदैव अरी,
अपमानित घड़ियों का क्रन्दन!

वे दिन हाँ, वे दिन चले गये;
निर्मोह काल से छले गये!
अलि, पले गये जिन हाथों से,
उन हाथों से ही दले गये!

मरु का तरु-फल-जल-हीन देश ;
जलता पावक-कण क्षण-अनुक्षण !
लुट गया धरा का हरित वेश ;
अब यहाँ न कोई आकर्षण !
कैसे सुख की हो रही चाह ?
इन कुश-वृन्तों पर कुटिल आह !
माधवि ! सह लोगी क्यों कर इस
प्रज्वलित चिता का रक्त-दाह ?

पावस-दिनान्त में घनाकार
जब भू को छू लेता अपार,
वन-वन में अपना उदाहार
ढूँढ़ेगा नूपुर - झनत्कार ;—
तब तू प्रिय की सुध में विभोर,
किस सुरधनु का धर स्वर्ण-छोर,
झूलोगी बङ्किम अङ्ग - न्यास
उच्छ्वसित मेघवन में सहास ?

सखि, सूल केतकी का हुलास ;
शूलों में गुरुतर अगुरु - वास !
अब छोड़ कंटकों के दुख में
वह कल्पविटप-कल्पना उदास !
प्रतिफलित व्यथा के रागों में
है पल्लव का मर्मर - वेदन ;
दुस्तर है तेरे लिए सजनि,
इस कुटिल जाल का परिभेदन !
बहती करील के नयनों से
निशिवासर अविरल अश्रु धार !
शाखा-शाखा पर नाच रही
शुचि की तीखी-तीखी बयार !

कहती न रेणु व्रज-वेणु-कथा,
गोपन-बाला का नृत्य-रास !
अब तो कालिन्दी-कुंजों में
खंजरी बजाता सूरदास !
बिलखाती शून्य क्षितिज-पट पर
सुन, वनदेवी की विरह-साँस ;
पूछते मृगों से मधुप - निकर
सरसीरुह-मुकुलों का विकास !
उँगलियाँ जायँगी छिल तेरी ;
अलि, छू न कौमुदी-कुमुद-कली !
शिंजन किस गोपा का मधु यह ?
देखी वृन्दा की गली-गली !
आते ही नित्य शर्वरी के
जगती झिल्ली - वेदना घोर ;
काकली नहीं कल कोकिल की ;
कारण्डव का खर रव कठोर !

श्रीहत, अभाव, क्रन्दन-कानन ;
दल-दल पर प्रलय-शिखा-कम्पन !
निःस्वन वनराजि - वनाली में
तू ला न सकेगी उद्दीपन !
उदरों में क्षुधा-होम-ज्वाला ;
विज्ञापित उर पर नियति-व्यंग !
ऋजु रुज-भुज-बन्धन में जकड़े
जन-मन-खजन के अङ्ग-अङ्ग !
इस रुद्रलोक में अनाहूत
अस्तित्व क्षुद्र तेरा आया ;
किस वनवासी के संकेतों ने
अलि, तुझको है बौराया ?

सखि, यहाँ सिसकता है, वंशी—
को ध्वनि-धारा में मलय-गीत ;
ध्वंसावाहन पर विस्मृति के
रो-रो उठता जीवन अतीत !
मिँहदी अधरों की लाल लाज ;
दक्षिण-पथ का मधु-गन्ध-साज !
अलि, आज यहाँ रोता अतीत ,
इस विस्मृति-वन में आ न आज !

घनश्याम

सजल, हे सुन्दर, हे घनश्याम ;
उतरो मेरे आँगन में
कर लो क्षण-भर विश्राम !
नीलाम्बर में नीलाम्बर-सा लहरा कर ,
उमड़-उमड़, घन ! घुमड़-घुमड़, घहरा कर ;
तुम आते हो ,
बरसाते हो ;
जीवन - जल की धारा !
बरस-बरस जाते हो जग में
जग - लोचन के तारा !
आकुल कूल - किनारा !
हे असीम के अश्रु , गगन के शोक ,
किसीके विरह - विषाद ;
प्रलय - घन के अनन्त आह्लाद !
करो निनाद, विश्व के उर में
भरो विजय का भाव ;
आत्म - गौरव, पौरुष - सम्मान ;
वीर - रण - गान !
उठो, उठो; कर शंख-घोष,
जग जायँ विश्व के प्राण !
अभ्र - भेदी हुङ्कार ;
काँपता किसलय का संसार !
तुम्हारे क्षितिज - कंठ में मंजु
डोलता इन्द्र-धनुष का हार !
अन्तरिक्ष के यमुना-तट पर ;
बजी मुरलिका—कलिका थर-थर
चपला की सुकुमारी ;
ओ बनवारी, नटवर !
वारि - धूम - गिरिधारी !
नर्तन कर अशेष अम्बर में ,
भर-भर अमृत माधुरी स्वर में ;
करते किसका आह्वान ?
फैला देते हो नव जलधर !
राशि-राशि तरु-लता-तृणों पर ,
हरित-भरित, कर कुसुमित,
शीतल - निर्मल ,
उज्वल मुक्ता - दाम ;
हे सुन्दर घनश्याम !

×

दूर देश के मेरे पथिक सलोने !
चले कहाँ इस भाँति करुण-स्वर से तुम रोने ?
इन्द्रचाप-से सुन्दर, सज कर,
अहे अशनि-ध्वनि, गरज-गरज कर !
वायु - वेग से, शून्य व्योम में,
किधर उड़े जाते तुम अपना गौरव खोने ?
कहाँ पहुँच कर,
कहो, कौन से जग में जा कर ,
किस निर्मम के वज्र-वक्ष से टकरा कर ,
हाय ! चले तुम आज प्रणय के मोती बोने ?
अश्रु-वारि से
प्रिय, किसका पाहन - उर धोने ?
कौन सुनेगा वहाँ तुम्हारी
करुण कहानी ?
मन की वाणी, व्योम-विहारी !
केवल एक निराशा ;
दूर, क्षितिज के शून्य छोर पर,
करुणा-कातर,
क्रन्दन करती अन्तःपुर में,

आकुल खिन्न पिपासा !
यहाँ किसको इतना अवकाश ?
कभी जो बैठ तुम्हारे पास,
सुने, दो क्षण भी हाय, सप्रेम
तुम्हारे जीवन का इतिहास ?
खोओ यों न तपस्वी ! अपने
नयनों का अनमोल रतन-धन !
हृदय-हीन जग के मरु-वन में,
तृष्णा के कानन में !
यदि विषाद ही तुम्हें सुहाता,
और, रुदन ही भाता,
तो, आओ प्रियवर ! आ जाओ ;
मेरे इस एकान्त भवन में,
एकाकी, चिर-शून्य सदन में ;
चिल्ला कर या मौन भाव से,
स्नेह - चाव से,
जितना जी चाहे,
तुम रोओ वारिद, रोओ !
बिलख-बिलख कर, फूट-फूट कर,
निशि - दिन, आठों याम ;
हे सुन्दर घनश्याम !

×

किस पावन प्रदेश से चल कर,
पवन-अंक में सादर, पल कर ;
एक निमिष में,
तुम दिशि-दिशि में,
घेर गगन, घिर-घिर दिगन्त में,
जाते हो हँस कर !
बादल !
कृष्ण - कमल से महाव्योम के
सरवर में सुन्दर ;
कज्जल !
फैला कर निज कोटि - कोटि
नीलाभ दलों को ऊपर !
कितने पर्वत, देश, पार कर,
सागर - प्रान्तर,

तुम आये हो हे पथ-चारी !
मंगल-ध्वनि करने आँगन में मेरे,
आज सबेरे ;
वन-विहङ्ग-कुल के गीतों में,
अपना सुमधुर कंठ मिला कर,
प्रेमभरी रस-कजरी गा कर
किसे सुनाने ?
कहो, कहाँ वह तरुणी शैल-कुमारी ?
सावन के मन - भावन,
हे मेरे वनमाली !
रूप तुम्हारा चित्र विचित्रित ;
लीला सदा निराली !
आओ !
मन का भेद बताओ ;
आज सुनाओ !
आज, सुनाओ मेघ ! मनोहर
मेघ ! प्रिया का उन्मन ;
विरही का सन्देश करुण-तम,
प्रेम मिलन !
वह गोपन अनुराग हृदय का
पुनः प्रणय का राग ;
फिर से आये नूतन पल्लव,
जीवन के तरुओं में,
और, पुनः हो जाय अंकुरित
दूर्वादल अभिराम ;
हे सुन्दर घनश्याम !

×

अतिथि, आज मेरे नभवासी ;
विद्युत-हासी !
सुनो, सुनो, तुम चले यहाँ से प्रिय,
यों ही मत जाओ !
आओ, मेरी पूजा पाओ ;
कर लो कुछ विश्राम !
श्रान्त पांथ हे, निरवधि युग से

मांप रहे तुम महाकाल का
वक्ष वृकोदर !
आओ, सत्वर ;
व्यजन-पवन से श्रम-कण सदय, सुखाओ !
सुख पाओ तुम, चिर-सुन्दर !
तुम्हें पुकार रहे हैं चातक ;
मंजु - नृत्य कर रहे कलापी !
जलद बनो न किसी के प्राणों के तुम घातक ;
लोग कहेंगे तुमको पापी !
उतरो, उतर पड़ो अम्बर से ;
व्याकुल वसुधा में, बादल !
शुष्क जलाशय ;
तृषित भील, नद, नदी, रसालय !
वट, अर्जुन, अश्वत्थ, उदुम्बर ;
पुलकित तनु - रोमांकुर, कातर ,
देख रहे हैं दीन-भाव से आज तुम्हारी ओर ;
हे चित--चोर ,
आम्र--मंजरी, शालि--पर्ण की माला ;
कृषक--बधू, वनदेवी, निर्झर--बाला !
उत्कण्ठित--आकुल जगती के प्राणी ;
हे अभिमानी !
बरसो तुम, बरसाओ जल घनघोर !
विकल राधिका, गोप--गोपिका ;
सूख रही व्रज की हरियाली ;
नव - कदम्ब की डाली - डाली !
हुलस उठे कालिन्दी का मन ,
विकसित हो जाये वृन्दावन ,
कुंज - कुंज से उमड़े रस की
धारा चंचल-शीतल !
जीवनमय धरणी - तल !
मधुर - मधुर गिरि - वन - उपत्यका ,
सुमधुर गोकुल - ग्राम ;
हे सुन्दर घनश्याम !

गतागत

(१)

जा-विदा ; बन्धु , वन्दे !-विदेश ;
वर्षा-विशेष यह वर्ष - शेष !
अन्तर्हित नभ से इन्द्रचाप ;
कुण्ठित केका - कोकिल - कलाप ;
शम्पा - चम्पा - लतिका ललाम !
छवि सघन घनों की सजल श्याम ;
उड़ता अब उज्वल काश-केश ;
जा-विदा ; बन्धु , वन्दे !-विदेश ;
विश्रान्त भ्रान्त झंझा-समीर ;
गम्भीर नदों का धीर नीर !
जल - पंक - पिंजरावृत शरीर
उन्मुक्त आज रे विश्व-कीर !
कट गया धरा का कठिन क्लेश ;
जा-विदा ; बन्धु, यह वर्ष-शेष !
सुख-दुःख-समन्वित चतुर्मास
हे अतिथि, तुम्हारा जग-निवास ,
सूना सरवर, सूना तड़ाग ,
वह घनाह्लाद—वह मेघराग !
सुन, यह किसका निःस्वन प्रवेश ;
जा-विदा , विदा-जा ; वर्ष शेष !

(२)

स्वागत, सुदमंगलमय सहर्ष ,
हे नूतन ऋतु, हे नवल वर्ष !

बिखरे चरणों पर मुक्तमाल ;
दल-दल पर दूर्वादल-प्रवाल !
फैला ज्यों नव रवि-रश्मि-जाल ,
ये चहक उठे वन-विहग-बाल !
पा प्रथम तुम्हारा पुलक-स्पर्श
स्वागत—सहर्ष, हे नवल वर्ष !

यह शरत्सुन्दरी की प्रसन्न
आनन - श्री छायापथ - प्रपन्न ;
आली शेफाली की सुगन्ध
उमड़ी हरियाली में अबन्ध ;
छलका कवि का यौवन-विमर्श ,
स्वागत—सहर्ष, हे नवल वर्ष !

उतरा वन-गिरि से सुख-प्रपात ,
रे मन्द-मन्द दक्षिणी-वात ;
यामिनी चारु चन्द्रिका-स्नात ;
मंगल संध्या—मंगल प्रभात !
यह नवजीवन का नवोत्कर्ष ;
स्वागत—स्वागत, हे नवल वर्ष !

(३)

इस शारद-सुषमा में सकाल
जागो, जीवन के स्वर्ण-काल !
नव ध्येय, चाह नव, नवोत्साह ;
नव-नव भावों का नव उछाह !
रे भेद पुरातन दोष-कोष ,
गूँजे नवयुग का शंख-घोष !
फूलो, वन-वन की डाल-डाल
इस शारद-सुषमा में सकाल ;

ले द्वेष-प्रेम, संघर्ष-हर्ष ,
इतिहास बना अब विगत वर्ष ;
आ, नव पल, नव क्षण, दिवस-मास;
नव प्रगति-ह्रास, नव अश्रु-हास !

चमका, प्राची में ज्योति-भाल ;
जागो, मेरे नव उषाकाल !

हो मंगलमय भावी विधान ;
जाग्रत स्वदेश - गौरव महान !
मंगलमय कण-कण, हृदय, प्राण ,
नव मंत्र, तंत्र नव, ज्ञान-ध्यान !
खोलो, भविष्य का अन्तराल ,
मेरे नित-नूतन क्रान्ति-काल !

आषाढस्य प्रथम दिवसे

(१)

मेरे मानस के राजहंस ;
भावुक, मराल वंशावतंस !
लो, आया फिर आषाढ़-मास ,
कल जलधर-पूरित दिशाकाश !
हो गई पुरातन स्मृति नवीन ,
दृग में सुरेन्द्र-धनु-रेख क्षीण !
घनश्याम क्षितिज का बना अंश ,
मेरे मानस के राजहंस !
यह प्रथम मास का प्रथम दिवस ,
वनवासी कान्ता-विरह-विवस !
जा रहा यक्ष का मेघ-दूत
अलका, मधु-दक्षिण-गन्ध-पूत !

क्या आज तुम्हीं केवल नृशंस ?
मेरे मानस के राजहंस !
उड़ चल, रे उड़ चल बद्ध-माल,
पाथेय चंचु का कमल-नाल !
नव-जीमूतों का असमवाय,
कैलास-शिखर तक हो सहाय।
सुन, वारिवाह का राग ध्वंस,
मेरे मानस के राजहंस !

(२)

वह कौन रूप दृग के समक्ष ?
हे चिर-विरही, चिर-क्लान्त यक्ष !
अभिशाप, दण्ड वह वर्ष-भोग्य,
तुम निर्वासन के नहीं योग्य !
अब भी रोता गिरि-चित्रकूट,
रोती उज्जयिनी फूट-फूट !
मृग-यूथ सिसकते लक्ष-लक्ष,
हे चिर-विरही, चिर-क्लान्त यक्ष !
आता प्रति वत्सर शुभाषाढ़,
गोदा-क्षिप्रा में पूर्ण बाढ़ !
मुकुलित होते जम्बू-रसाल,
वन-कुटज-ककुभ-ताली-तमाल !
उड़ता अम्बर में मोर-पक्ष,
हे चिर-विरही, चिर-क्लान्त यक्ष !
तब से कितने युग गये पार,
प्रति वर्ष बरसता घनासार !
यह युग-युगान्त का विप्रयोग,
होगा समाप्त कब पाप-भोग ?
अब भी अलका का शून्य कक्ष,
हे चिर-विरही, चिर-क्लान्त यक्ष !

(३)

अस्नात, मलिन-मुख, निराहार,
अलि, बहा रही क्यों अश्रु-धार ?
लख पुनः प्रथम तोयद-समाज,
हो गई कल्पना सजल आज;
बीते अनन्त दिन, युग सहस्र,
फिर भी न स्खलित अभिसार-वस्त्र!
अब भी वैसे ही निर्विकार,
अलि, बहा रही क्यों अश्रु-धार ?
दे गये कभी क्या तुम सँदेश,
आमुञ्च प्रिया का करुण वेश ?
निष्प्रभ कपोल, जो मुक्त केश,
गिनती उँगली पर दिवस शेष !
अब भी वैसे ही निर्विकार,
घन, किसे खोजते बार-बार ?
वह एक-वेणि, दुख-दग्ध-बाल,
दुस्सह-अभेद्य वर विरह-जाल !
यह कल्पान्तर-निर्वास, हन्त !
होगी कब इसकी अवधि अन्त ?
अब भी वैसे ही निर्विकार,
कवि, कौन गीत गाते उदार ?

कवि-श्री

(१)

आया बन जग में प्रातः-रवि

मैं भारत-भाग्य-विधाता कवि !
तोड़ता अलस जग-जाल जटिल ;
सुकुमार, स्नेह-धारा-उर्म्मिल !
मैं पुरुष-पुरातन, प्रेम-दान ;
चिर-कविर्मनीषी, सृष्टि-प्राण !
बरसाती लौह-लेखनी पवि ;
मैं विद्रोही इठलाता कवि !

सुरतरु-सा कर सौरभ-प्रसार ,
सौन्दर्य-पिपासाकुल, उदार ;
शाश्वत, अनन्त, अच्युत, अक्षर ;
मैं चिर-अनादि, अतुलित,निर्जर !
सिकता पर अंकित करता छवि ;
मैं नवयुग का निर्माता कवि !

छन्दों में बाँध मरुत, सागर ;
नाचता नित्य मै नट-नागर !
शशि,उडु,ग्रह क्रम-क्रम से सभ्रम
करते मानस में संचंक्रम !
प्राणों की अपने देता हवि ,
मैं भारत-भाग्य-विधाता कवि !

(२)

आँधी-सी मेरी गति अशान्त ;
मैं कुवलय-कोमल, कुमुद-कान्त !

विग्रह, विनाश, मूर्च्छा, प्रमाद ;
मैं अमृत-कल्पना, विष-विषाद !
उद्भासित, शासित दिग्दिगन्त
मेरी प्रतिभा से शुचि-ज्वलन्त !
आक्रान्त कर रही प्रान्त-प्रान्त ;
आँधी-सी मेरी गति अशान्त !

मैं प्रलय-प्रभंजन, शुभ-मुहूर्त ;
मंगल, मराल-वाहन, अमूर्त !
मैं धूमध्वज, मैं मकर-केतु ;
आकाश-विहारी, सिन्धु-सेतु !
मैं निष्ठुर, निर्भय, मदोन्भ्रान्त ;
प्रतिभा से मेरी दिशाक्रान्त !

उद्धत, अनियन्त्रित, महावीर ;
सुमनाधिराज, मैं सुनाशीर !
युग-युग प्रसिद्ध, युग-युग प्रशस्त ;
मैं अमर-वाक कवि वरद-हस्त !
चीत्कार-चकित, निर्द्वन्द्व, भ्रान्त ;
मैं आँधी, झंझारव अशान्त !

(३)

मैं अनुपम, निरुपम, निर्विकार ;
पाटल-पलाश-पेलव, कुमार !

सुख-दुःख-स्वप्न-सस्मित, विभोर ;
रहता मैं चिर-शिशु,चिर-किशोर !
मृग - सा कस्तूरी - गन्ध - अन्ध
फिरता वन-वन में मैं अबन्ध !
वाणी - नन्दित मन्दार-हार ;
मैं विश्व - विमोहन कलाकार !

भावों का बहता जब समीर ,
आता नयनों में छलक नीर ;
मैं अपने गीतों से अधीर
गूँजित कर देता वन - कुटीर !
इस भवतोयधि-जल में अपार
मैं नाविक कवि, निरुपम, उदार !

मैं चिर-सुन्दर, चिर-मधु, अनन्त ;
मधुमत्त मधुव्रत, मधु-वसन्त !
यौवन - प्रकर्ष; उन्माद-हर्ष !
पारस-सा मेरा स्वर्ण-स्पर्श !
मैं जगद्वन्द्य, जग-मुक्ति-द्वार ;
कवि चिदानन्द, उज्वल, उदार !

प्रिया की बिदाई

उषे, बिदाई दो ; देखो,
जाये न मचल अधखिली कली !
निशि-भर कर अभिसार हाय, अब
रजनीगन्धा प्रिया चली !
सारी रात जाग, हो आयी
घूम - घूम, फिर गली - गली !
होते ही अब प्रात जा रही
मेरी लीलालसा लली !

स्वागत, सन्ध्या में तमोमयी—
आईं मृदु मंजरियाँ मंजुल,
भर अंजलियों में रस - संकुल ;
कुछ पुनर्वार, कुछ नई - नई !
निकली नर्त्तकियों - सी चंचल
नेपथ्य - मञ्च से लाख - लाख !
लद गई निमिष में ही कोमल
मुकुलों से द्रुम की शाख-शाख !

सीरी - सीरी शीतल समीर ;
कल स्वप्नों से संसृति अधीर !
सोया प्रियतम अलसित, प्रशान्त ;
तुम क्यों इतनी अलि, मदोन्भ्रान्त ?
जगती हो एकाकिनी विकल
ले पलकों पर वेदना - भार !
कृष्णाभिसारिका - सी चंचल
क्यों छेड़ रही हो बार-बार ?

अलि, नलिनी - कारा - बद्ध मधुप ;
क्या इसीलिए यह समाहार ?
चलता कण - कण को आन्दोलित
कर रभस - विभासित वन - विहार !

फूटी है एक - एक कलिका
के प्राणों से शत-शत उमङ्ग !
बह चली विश्व के आँगन में
सौरभ की मतवाली तरङ्ग !

सुरभित पृथिवी, सुरभित अनन्त ;
रजनी का मौक्तिक अलक-जाल !
मुसकाया किरणों के पथ से
दिशि - दिशि का वर्तुल चक्रवाल !

ऊपर से हिमकर ढाल रहा
वसुधा पर पावन सुधा - धार !
नीचे से भर - भर तुम देतीं
प्याली पर प्याली निर्विकार !
मैं पी - पी कर उन्मत्त बना ;
इतना मादक—इतना अपार !
प्रेयसि, प्राणों का सजल गीत
साकार बना अब निराकार !

डाली - डाली पर सिहर उठे
अज्ञात - स्पर्श से पात - पात !
अलसाया लेने को झपकी
कल कल्लोलों से शिथिल गात !

री, रो दीं क्यों ? किस चिन्ता से
तरलार्द्र तुम्हारा वदन-प्रान्त ?
क्या रुक न सकोगी क्षणभर भी
इस सुख-शय्या पर कुसुम-कान्त ?
माँगती बिदाई कुसमय में
सखि, ऐसा क्यों यह करुण वेश ?
ठुकरा कर मेरे प्यारों को
जा रहीं आज, वह कौन देश ?
ठहरो तो क्षण-भर तनिक और ;
गुंजित होने दो दिशि-दिशान्त !
सिहरा क्यों अलि, जीवन-प्रदीप ?
लो, आया—वह आया निशान्त !
खिली किन्तु, खिलकर इच्छा की
कहाँ पूर्ति होने पाई !
हाय, देव ! क्यों मुरझा कर
झड़ जाने की बारी आई !
वृन्त - विहीन पड़ी सूने में,
नियति - चक्र में गई दली !
उषे, बिदाई दो, लो मेरी
रजनीगन्धा प्रिया चली !

लहर

(१)

री लोल लहर, तुम लहर-लहर !
आमन्द्र घनों-सी घहर-घहर,
किसकी यौवन-मदिरा पी-पी
उठ-उठ गिरती हो हहर-हहर !
री लोल लहर, तुम लहर-लहर !

(२)

आँसू-फुहियों की ले अछार,
झाऊ-वन-शोभित कल कछार,
तुम किस मोहन के बिछुड़न से
गिरतीं-पड़तीं खा-खा पछाड़ ?
आँसू-फुहियों की ले अछार !

(३)

कुछ पता न, किसको सुमर-सुमर,
झुक झूम-झूम, रुक घुमड़-घुमड़,
क्यों चूम-चूम लेतीं तरु के
चरणों को मर-मर उमड़-उमड़ ?
कुछ पता न, किसको सुमर-सुमर !

(४)

सर-हृदय-दोल पर दोल-दोल,
कुछ प्रणय-ग्रन्थि से खोल-खोल,
नीले वितान में अम्बर के
क्यों रह-रह जातीं बोल-बोल ?
सर-हृदय-दोल पर दोल-दोल !

(५)

चंचल मीनों से खेल-खेल,
कितने ही सुख-दुख झेल-झेल,
क्यों दौड़-दौड़ पड़तीं आगे
उफने फेनों को ठेल-ठेल ?
चंचल मीनों से खेल - खेल !

(६)

ताली-कुञ्जों के आस-पास,
भर मौलसिरी का वास-हास,

तुम करती रहती हो प्रतिपल
बुद्‌बुद-बालों से रास-लास!
ताली-कुञ्जों के आस-पास!

(७)

बुल्लों का वैभव बिखराती,
पग-पग पर बल खाती, गाती,
आती-जाती भँवरों में पड़
भ्रमरों-सी भरमाती, माती।

मधु-मिसरी-सी मिलती-घुलती,
लज्जापट में मुँदती-खुलती;
घिरती पुरवैया नैया-सी,
तिरती-फिरती, हिलती-डुलती।

कुमुदों को मधुरस पिला-पिला,
कल कमलनाल को हिला-हिला,
सूखी डाली को जिला-जिला,
मुरझे फूलों को खिला-खिला।

राधा-माधव के चुम्बन-सी,
क्रीड़ा-विनोद, आलिङ्गन-सी;
अपनी ही काया में लिपटी,
माया के छाया कानन-सी।

रोती-धोती, विह्वल होती,
देह-गेह की सुध-बुध खोती;
बोती जल के वक्षस्थल पर
राशि-राशि हिम-उज्वल मोती।

कितनी स्मृतियों का भार लिये,
बिरहानल-दग्ध दुलार लिये;
सुकुमार प्यार के तारों पर,
उद्‌गारों के गुञ्जार लिये।

तुम मचल-मचल गिरती-पड़ती,
आपस में ही लड़ती-मरती;
कुल-कुल आकुल-आकुल व्याकुल,
मानस की पीड़ाएँ हरती।

बढ़-बढ़ आती हो छहर-छहर,
टकरा कर तट से सहर-सहर;
मुग्धा-सी चौंक, उझक पीछे,
रुक-रुक,टुक झुक-झुक,ठहर-ठहर!

री लोल लहर, तुम लहर-लहर!

शंखनाद

अरे मदोन्मत्त वीर!
जीर्ण चरण-चिह्न छोड़,
पारतन्त्र्य पाश तोड़,
फूँक विजय-शङ्ख घोर,
दौड़ वायु-सा, विशाल!
लाँघ उदधि, झील, ताल।
गगन-वक्ष चीर-चीर,
अरे मन्दोन्मत्त वीर!

सुप्त शूर, ओ अजान!
खोल युग्म नेत्र देख,
क्रान्ति-सूर्य-रश्मि रेख,
पाप-पुण्य को न लेख,
मिटा निबिड़ अन्धकार,
स्वप्न-देश को उजाड़।
जाग हुआ शुभ विहान,
सुप्त शूर, ओ अजान।

अरे युवक-दल उदण्ड!
मोह-जाल तोड़-फाड़,
मत्त द्विरद को पछाड़,
क्रुद्ध सिंह-सा दहाड़,
प्रबल शत्रु दर्प नष्ट
कर, प्रशस्त मार्ग भ्रष्ट!
विघ्न-शीश खण्ड-खण्ड!
अरे युवक दल उदण्ड!

शक्ति-सिन्धु ओ अनन्त!
चूम शून्य क्षितिज-छोर,
गरज मचा अमित रोर,
फैल जा ससृष्टि बोर—
अवनि-कक्ष को उछाल,
महा गर्त्त में कराल!
पाट शीघ्र ले दिगन्त!
शक्ति-सिन्धु ओ अनन्त!

जादू का देश

(१)

यह जादू का देश सनेही, इस जग का विश्वास नहीं;
इस मरीचिका के मरु-वन में मिटी किसी की प्यास नहीं!
जलती यहाँ चिता की ज्वाला,
जला कल्प-कुसुमों की माला;
इस नगरी की रीति निराली,
पन्थ निराले, वेश निराला!
रात-दिनों की आँखमिचौनी, पाया अमर प्रकाश नहीं;
यह जादू का देश सनेही, इस जग का विश्वास नहीं!

(२)

समझे कौन यहाँ की भाषा, उन्मत्तों की वाणी है;
प्रलय-अवधि तक अन्त न हो जो, ऐसी अकथ कहानी है!
डाल-डाल पर फूल खिले हैं;
पथ मन के अनकूल मिले हैं!
ध्यान नहीं यात्री को मोहित,
शूलों से मृदु-चरण छिले हैं!
बच कर चले रूप-चितवन से, यह भी तो नादानी है;
समझे कौन यहाँ की भाषा, उन्मत्तों की वाणी है!

(३)

यह जादू की नगरी, इसमें पथिक! हाय, कैसे आये?
भटक पड़े किस स्वप्न-जगत से? यह कैसी ममता लाये?
कामरूप, अनुरूप देश यह;
सुन्दरता का अग्नि-वेश यह!
इस पथ का प्रिय, अन्त नहीं है;
निर्जन जनपद, वन अशेष यह!
यहाँ पांथशाला न, जहाँ राही क्षण-भर भी रुक जाये!
यह जादू की नगरी, इसमें पथिक! हाय, कैसे आये?

(४)

बीच डगर पर खड़ी जोगिनी, बड़ी चतुर जादूगरनी!
कैसे भूल सकोगे प्यारे, निठुर ठगों की यह धरणी!
वन-वन में सौरभ-नव छाया;
तरु-तरु पर समीर बौराया!
तृण तृण पर वंशी के स्वर-सी
फैली यह जादू की माया!
पार करोगे कैसे सागर अगम, तुम्हारी यह तरणी!
बीच डगर पर खड़ी जोगिनी; बड़ी चतुर जादूगरनी!

(५)

इस नगरी को तुच्छ न समझो; बड़ा विकट आकर्षण है!
भटकाने को यहाँ अनेकों खाई हैं, पर्वत-वन है!
बोल रही बुलबुल मदमाती;
डाल-डाल पर कोयल गाती!
यहाँ उर्वशी छिप कुंजों में
चल-चितवन के तीर चलाती!
नन्दन-वन है, परियों का दल, दुर्बल मानव का मन है;
इस नगरी को तुच्छ न समझो; बड़ा विकट आकर्षण है!

(६)

एक इशारे पर जी उठना; एक इशारे पर मरना !
इस दुनिया की चाल अनोखी; मृदु मुस्कानों से डरना !
कौन न यहाँ पहुँच कर खोया ?
खाकर चोट व्यथा की रोया ?
किसने प्रिय, अन्तिम दिवसों में
अघ का भार न खर-सा ढ़ोया ?
यमुना-तट है, कुंज-भवन है, झूम-झूम गिर-गिर पड़ना !
एक इशारे पर जी उठना; एक इशारे पर मरना !

(७)

इस नगरी में आवें वे ही, जो इसका दुख मान सकें !
परिचित हों इस पगडण्डी से, इस जादू को जान सकें !
ऐसा रे यह जग निर्मोही ;
चढ़े, गिरे कितने आरोही !
सुना, यहाँ मिट गये हजारों ;
लाखों ही लुट गये बटोही !
इस वन से वे ही जन निकलें, जो निज को पहचान सकें !
इस नगरी में आवें वे ही, जो इसका दुख मान सकें !

(८)

यहाँ चिरन्तन वन्दी रहना, कुछ न किसी से कहना है ;
तोते-सा पिंजड़े में आठो - पहर वेदना सहना है !
यहाँ एक तिनके - सी तिर कर,
जाना है कष्टों से घिर कर ;
खो जाना भँवरों में पड़ कर ,
फिर न लौटना पीछे फिर कर !
इस जादू के पानी में यों ही आजीवन बहना है !
यहाँ चिरन्तन वन्दी रहना , कुछ न किसी से कहना है !

(९)

अलकापुरी, स्वर्ण की लंका; कंचन का माया - मृग है !
डोल रहा मन सीता का भी, ऐसा तो चंचल दृग है !
ऐसा पन्थ न चलना प्यारे !
तुझे लक्ष्य-च्युत कर जो मारे ;
बड़े - बड़े ऋषि-मुनि सिर धुनते ;
यहां स्वयं विधि-हरि - हर हारे !
एक भूल पर गिरा स्वर्ग - सिंहासन से राजा मृग है !
अलकापुरी, स्वर्ण की लंका; कंचन का माया मृग है !

(१०)

रूपराशि पर मत ललचाना, छवि पर मत वलि हो जाना !
लूट न ले कोई धन तेरा, भय है कहीं न खो जाना !
दो ही दिन के लिये बिलम कर ,
तुम परदेसी - पाहुन प्रियवर ;
उलझ न जाना किसी रूपसी के
कल अलक - पाश में सुन्दर !
कड़ी धूप, तरु - छाया शीतल; कहीं न थक कर सो जाना !
रूपराशि पर मत ललचाना छवि पर मत वलि हो जाना !

(११)

इस वन में आकर प्रिय, किसने खोया अपना ज्ञान नहीं ?
उस माया - रानी पर किसने दिये शलभ- से प्राण नहीं ?
अब भी अगणित जीव विलपते ;
मोह - तृषा की माला जपते !
कितने योगी योग - भ्रष्ट हो ,
नरक - कुण्ड में पड़े तड़पते !
ऐसा कौन तपस्वी जग में, टूटा जिसका ध्यान नहीं ?
इस वन में आकर प्रिय, किसने खोया अपना ज्ञान नहीं ?

(१२)

मिटते और बिगड़ते रहते प्रेम यहाँ जलधारा - से ;
जीवन - मृत्यु ढुलकते रहते इस जगती में पारा - से !
निशि-दिन यहाँ सजग हो रहना ;
सब से दूर, अलग हो रहना !
उड़ जाने को प्रतिक्षण तत्पर
तुम चिर-- मुक्त विहग हो रहना !
यहाँ स्नेह के वन्दी पाते मुक्ति न ममता- कारा से !
मिटते और बिगड़ते रहते प्रेम यहाँ जलधारा - से !

(१३)

अश्रु बहाते वन के राजा, भटक रही वन की रानी ;
इस फन्दे में फँसे सभी आ, नृप-दरिद्र, बुध - अज्ञानी !
पल-पल क्षण-क्षण यहाँ मरण है !
हाय, पतन भी हृदय-हरण है !

आ जाते चुम्बक भी खिँच कर,
ऐसा तो यह वशीकरण है!

नाव रहे पानी में बेशक, पर न नाव में हो पानी!
अश्रु बहाते वन के राजा, भटक रही वन की रानी!

(१४)

कब डोलेगी मही, हिलेगा कब अनन्त आकाश, सखे!
कब डूबेगा सूर्य, उगेगा चाँद, चले वातास, सखे!

जादू की बस्ती ही ठहरी;
मोहन की माया यह गहरी!
वर्ष, मास, वासर, क्षण गिनते
बीत चली जीवन की लहरी!

अद्‌भुत देश, जगत वीराना, काँप रहा निःश्वास, सखे!
कब डोलेगी मही, हिलेगा कब अनन्त आकाश, सखे?

(१५)

प्रेम न करना, प्रेम जहर है; यहाँ न इसकी रीति भली!
कीटों औ काँटों से सेवित यहाँ प्रणय की कुसुम-कली!

ऐसी आग, जले निशि-वासर;
कर दे भस्म सुवर्ण-कलेवर!
मरना तुम न किसी विषकन्या का
विषमय विष-चुम्बन ले कर!

गैल-गैल मोहक इस जग के; और मोहिनी कुंज-गली!
प्रेम न करना, प्रेम जहर है; यहाँ न इसकी रीति भली!

(१६)

शूलों की शंका मत प्यारे, फूलों से ही बचे रहो;
जीत सकोगे सहज-समर यह, प्रियतम! ऐसी चाह न हो!

डर है, तो उलझन का केवल;
यहाँ प्रणय में बसता कौशल!
प्रेम-पन्थ पर पैर न देना;
बन्धु, प्रेम होता है चंचल!

फिसले पैर, पड़े खाई में; नरक-पवन का वास सहो!
शूलों की शंका मत प्यारे, फूलों से ही बचे रहो!

आभास

मेरी साँसों से शूल खिला करते हैं;
दुख भी मेरे अनुकूल मिला करते हैं!
आँसू से मेरे हरी धरा की डाली;
पत्थर में भी मृदु फूल खिला करते हैं!

मैं कविता का शृङ्गार किया करता हूँ,
मैं भावों से अभिसार किया करता हूँ!
टकराती मेरी लहरें जग के तट से;
सागर-सा हाहाकार किया करता हूँ!

कवि हूँ, यों-ही कुछ गान किया करता हूँ;
मैं नवयुग का निर्माण किया करता हूँ!
जादू से मेरे विवश धरातल-वासी;
मैं सब की यों पहचान किया करता हूँ!

मैं सब से आँखें चार किया करता हूँ;
पर, किसी-किसी को प्यार किया करता हूँ!
मुझसे प्रसन्न क्यों रहें न मेरे सहचर?
मैं बिजली का संचार किया करता हूँ!

मैं चित्र तुम्हारा आँक लिया करता हूँ;
खिड़की से तुमको झाँक लिया करता हूँ!
पर, वही सामने जो तुम आ जाते हो;
मैं लज्जा से मुँह ढाँक लिया करता हूँ!

मैं अलियों को आह्वान किया करता हूँ;
कुछ अपने पर अभिमान किया करता हूँ!
मुझको न एक ही तरु की सुरभि सुहाती;
मैं फूल-फूल का पान किया करता हूँ!

मैं कब किसकी परवाह किया करता हूँ?
दुख से, पीड़ा से आह किया करता हूँ!

आरसी

जो मुझे बुलाता, मुझे चाहता दिल से ;
मैं भी बस, उसकी चाह किया करता हूँ !

मैं इन बूँदों को पाल लिया करता हूँ !
यों दिल की कसर निकाल लिया करता हूँ !
मस्ती में मेरी फर्क जरा भी आता ;
मैं कभी-कभी कुछ ढाल लिया करता हूँ !

है स्वर्ग एक मेरी दुनिया का कोना ;
मेरे अन्तर में अम्बर को भी खोना !
पारस-सा मेरा परस, सरस मधुऋतु-सा ;
मिट्टी भी होती मुझको छू कर सोना !

मैं काच लुटा कर कीच लिया करता हूँ;
दृग-जल से अन्तर सींच लिया करता हूँ !
मत देखो मेरी ओर, चलो तुम बच कर ;
मैं सबको बरबस खींच लिया करता हूँ !

मैं जहाँ पहुँचता, तुम्हें वहीं पाता हूँ ;
प्रिय, प्रकट कहीं तो गुप्त कहीं पाता हूँ !
मैं मुकुर—जगत का मुखड़ा मुझमें देखो ;
मैं अपने को ही देख नहीं पाता हूँ !

मैं इस जग में इस तरह जिया करता हूँ ;
हर वक्त मौत से खेल किया करता हूँ !
गाने की आदत रही न मुझमें ऐसी ;
मैं कभी-कभी गुनगुना लिया करता हूँ !

फाल्गुनी

(१)

फागुन का अलमस्त महीना, हँसती आई होली है ;
मस्ती का त्योहार निराला, अलमस्तों की टोली है !
मिल कर आज, सभी जन आओ ;
भर भर रंग अबीर उड़ाओ !
लाओ झाल, मृदङ्ग, बाँसुरी ;
आओ, गाओ और बजाओ !
देखो, कुंकुम रंगों से यह भरी हमारी झोली है !
फागुन का अलमस्त महीना, हँसती आई होली है !

(२)

आज, न कोई दुःख-वेदना, आज न कोई भी गम हो ;
नीच-ऊँच, धनवान-भिखारी, राजा-प्रजा एक-सम हो !
आज, सभी मिल खाओ, खेलो ;
आफत को उस पार धकेलो !
जो आ जाय गले से मिल लो ;
जो मिल जाय, उठा लो; ले लो !
सारी दुनिया एक तरफ हो, एक तरफ केवल हम हों ;
आज, न कोई दुखः-वेदना, आज न कोई भी गम हो !

(३)

आज छिड़ी आनन्द-रागिनी, सुख का मधुर तराना है ;
द्वार-द्वार पर गाते पुरजन; घर-घर सुख का गाना है !
डाल-डाल पर बुलबुल बोले ;
कोयल-परी सुधा-रस घोले !
बाकी रहे उमंग न कोई ;
जो कुछ होना हो, सो हो ले !
वृन्त-वृन्त पर फूल विहँसते, सारा जग दीवाना है ;
आज छिड़ी आनन्द-रागिनी, सुख का मधुर तराना है !

(४)

चहक रहे पंछी पेड़ों पर, सुख की स्वर्ण-घड़ी आई ;
आज, खुशी की मधुर चाँदनी चारों ओर भरी, छाई !
मिलन-मोद के रूप निराले ;
हँसी-खुशी में सब मतवाले !
रोती चिन्ता फूट-फूट कर,
पड़े शोक के दिल पर छाले !
मिलते आज सभी नर बिछुड़े, पिता-पुत्र, भाई-भाई !
चहक रहे पंछी पेड़ों पर, सुख की स्वर्ण-घड़ी आई !

(५)

आज तीन के बदले तेरह खून माफ हैं प्रिय, तेरे,
नई जवानी, नये हौसले ; आज नहीं बाधा घेरे !

जीवन प्रेम प्रलाप नहीं है ;
अलमस्ती अभिशाप नहीं है !
स्वयं पिलाने आई साकी ,
फिर तो पीना पाप नहीं है !
धरा छोड़ नभ में उड़ जाऊँ, यह उमंग मन में मेरे !
आज तीन के बदले तेरह खून माफ़ हैं प्रिय, तेरे !

(६)

नाचो, गाओ और बजाओ ; सबको आज प्रणय-वर दो ;
आज सभी को प्रेम-रंग में रँग दो, रँग से तर कर दो !
रह न जाय कोई घर खाली ;
गली-गली में बहे पनाली !
खिल-खिल हँसो, हँसाओ, आओ ;
बोलो मुसका, दो करताली !
राह-बाट, घर-घर, आँगन को रंग अबीरों से भर दो !
नाचो, गाओ और बजाओ ; सबको आज प्रणय वर दो !

(७)

कहाँ गईं हे राधे, देखो ; इधर तुम्हारे श्याम खड़े ।
फाग खेलने आये तुमसे , तुम से भी दिलदार बड़े !
भर लाओ जल्दी पिचकारी ;
भाग न जाय कहीं बनवारी !
होली आज खेल लो जी भर ,
जुड़ी मण्डली व्रज की सारी !
धूम मचाओ, आओ, निकलो ; उत्सुक गोप-कुमार अड़े !
कहाँ गईं हे राधे, देखो ; इधर तुम्हारे श्याम खड़े !

(८)

आज चेतनों की क्या गिनती, पागल बना अचेतन भी ;
धूल उड़ाता खेल रहा फूलों से मत्त समीरण भी !
नव-वसन्त के मादक छिन ये ;
जीवन के दिनमान कठिन ये !
सफल आज ही हुए साल के
अरे, तीन सौ पैंसठ दिन ये !
बना आज मस्ती का पुतला लघुतम एक रजकण भी !
आज चेतनों की क्या गिनती , पागल बना अचेतन भी !

(९)

बच न सकोगे आज सलोने, मिलें न क्यों गाली तानें ?
आज खोल लो क्षण भर मुझसे; कल की गति ईश्वर जानें!
कितने दिन पर फागुन आया ;
जगती ने नव-जीवन पाया !
रँग लो बन्धु, बसन्ती चोला ;
धो लो धूल-मलिन यह काया !
पहुँचा ही तो हूँ तेरी अब मीठी मधुर चपत खाने !
बच न सकोगे आज सलोने, मिलें न क्यों गाली तानें ?

(१०)

ओ रमेश, तेरा तो उत्सव ही यह क्यों फिर तू डरता ?
दरवाजे को खोल जरा—हैं, तू तो रे भय से मरता !
यह कैसी तेरी नादानी ?
ले ले अरे, सनेह-निशानी !
कागज के तू फूल नहीं, जो
गल जाये छूते ही पानी !
बन्द किया खिड़की को काहे, कोने में छिप क्या करता ?
ओ रमेश, तेरा तो उत्सव ही यह क्यों फिर तू डरता ?

(११)

बन्धु, होलिका-दहन; उसीमें मन के मैल जला आओ !
निखर उठे जिससे लाली, वे कपड़े सभी धुला लाओ !
कुंकुम उड़े, धमार मचाओ ;
झूम नशे में तुम इतराओ !
आज न कोई कैद, न बन्धन ;
जो जिसके जी में, वह पाओ !
कड़ियाँ तोड़, सड़क पर दौड़ो; नंगे पैर उछल जाओ !
बन्धु, होलिका-दहन; उसीमें मन के मैल जला आओ !

(१२)

अरे सलीम, जोन औ गैरे; तुम दोनों क्यों भाग रहे ?
इस होली से तेरा भी कुछ प्रेम रहे, अनुराग रहे !
तेरे अंगूरी गालों पर ,
घुँघराले काले बालों पर ,
मल मिलेगी क्या अबीर भी
इन गोरे चिकने गालों पर !
आओ इधर , पास में बैठो, जीवनमय यह फाग रहे !
अरे सलीम, जोन औ गैरे; तुम दोनों क्यों भाग रहे ?

(१३)

आज पारसी, बौद्ध, यहूदी, हिन्दू , मुस्लिम, क्रिस्तानी;
एक धर्म है, एक कर्म है ; एक सभी हिन्दुस्तानी ।

अङ्ग, बङ्ग, गुजरात, बिहारी ;
कच्छ, आन्ध्र, पंजाब, कुमारी !
सबके तन पर आज रंग की
एक-एक उड़ती पिचकारी !
आज न कोई काला गोरा, ब्राह्मण-शूद्र, मूर्ख-ज्ञानी !
एक धर्म है, एक कर्म है; आज सभी हिन्दुस्तानी !

एक बार

जिस डाली से बीती बहार
कहती—न बहा री, अश्रुधार ;
मतवाली दुनिया है असार ,
जीवन के बस, लघु दिवस चार ;
उसकी ही कलियाँ एक बार ,
बन मुरझा जाने दे उदार !

×

जिन अधरों पर तीखा विषाद
छाया ही रहता सतत्काल ;
जीवन में जिनपर कभी नहीं
उमड़े मृदु चुम्बन-चिह्न लाल ;
उसपर ही मधु स्मिति एक बार ,
बन खिल जाने दे हे उदार !

×

जिन अलकों में कितने अजान
प्रेमी के उलझे व्यथित प्राण ,
जिनकी मृदु छवि ने लिये छीन
कितनों के पूजा-ज्ञान-ध्यान ;
उनकी ही कल लट एक बार ,
बन बल खा जाने दे उदार !

×

जिन सुमनों पर भ्रमरी अधीर
रोती नयनों से बहा नीर ;
जिनसे प्रति दिन प्रातः समीर
कह जाता दिल की कसक-पीर ;
उसका ही परिमल एक बार ,
बन उड़ जाने दे हे उदार !

×

जिन नयनों में है दिवारात्रि
लहराता रत्नाकर अनन्त ;
देखा पतझड़ के बाद पुनः
जिनने न कभी मधुमय वसन्त ;
उनमें ही प्रिय-छवि एक बार ,
बन खो जाने दे हे उदार !

×

जिस वीणा की अति तीक्ष्ण तान
करती न किसी को बेकरार ;
सोई है जिसकी भग्न वेणु ,
टूटे हैं जिसके तार - तार ;
उसकी ही ध्वनियाँ एक बार ,
बन मँडरा लेने दे उदार !

×

जिन गालों पर अभिराम हास्य
कोई न कभी भी सका देख ;
उमड़ी न किसीकी प्रेम-जनित
बीड़ा की जिनपर अरुण रेख ;
उनपर आशा-द्युति एक बार ,
बन झिलमिल करने दे उदार !

×

जिस मरुथल पर निर्जन अपार
बहती है नित जलती बयार;
जिसपर रिमझिम बरसी न कभी
जलधर की निर्मल वारि-धार;
उसपर ही जलकण एक बार,
बन लुट जाने दे हे उदार!

उपेक्षिता

(१)

अलि, व्यथा किसीने कब मेरी पहचानी ?
मैं आप बनी हूँ अपनी प्रणय - कहानी!
करता अग-जग उपहास कथा सुन मेरी;
हो जाती निष्फल मेरी करुणा-वाणी!
दुख अपना सबसे चलूँ स्वयं ही कहती;
समझो मत मुझको तुम ऐसी दीवानी!
अलि, व्यथा किसीने कब मेरी पहचानी ?

(२)

प्रति वर्ष सजल आषाढ जगत में आता;
अम्बर में उज्वल राजहंस-दल छाता!
मैं मेघदूत से विकल पूछती जा कर;
कोई न कहीं से क्या सन्देश पठाता ?
रो पड़ता बादल किन्तु, हाय उत्तर में।
मैं यक्ष-प्रिया, उन्मन अलका की रानी;
अलि, व्यथा किसीने कब मेरी पहचानी ?

(३)

उन्मत्त बना कर मुझे चला कुसुमाकर;
लौटा गवाक्ष से मलयानिल टकरा कर!
कुछ गा कर उड़-उड़ जाते पंचम स्वर में;
निर्भय विहंग आँगन में मेरे आकर!
फिर भी उर मेरा अम्बर-सा ही सूना;
सुनता न दया कर कोई करुण कहानी;
अलि, व्यथा किसीने कब मेरी पहचानी ?

(४)

मेरे वियोग की बडवानल - सी ज्वाला;
जलती मैं जिसमें निशि-वासर सुर-बाला!
हो गई आयु भी शेष प्रतीक्षा में अब;
हा! सूख गई चाहों की मेरी माला!
मैं पाल रही प्राणों में ऐसी पीड़ा;
हँस देते जिसको सुन कर जग के ज्ञानी;
अलि, व्यथा किसीने कब मेरी पहचानी ?

(५)

यह प्रेम-नगर; काँटों की राह निराली;
छिलती तलुवों की मेरी मिँहदी-लाली!
पी ली वह हाला मैंने आज प्रणय की;
निशि-वासर रहती बेसुध मैं मतवाली!
जग के अधरों पर हास्य खेलता मादक;
मेरी आँखों से बहता प्रतिक्षण पानी;
अलि, व्यथा किसीने कब मेरी पहचानी ?

(६)

युग बीत गया; पर रोती यहाँ अकेली!
मैं पथिक-वधू-सी निर्जन में अलबेली!
कर दिया भ्रमर ने कम्पित जिसको छू कर;
मैं कानन की हूँ वह अधखिली चमेली!
दे एक घूँट भी मधु का अपने कर से;

अलि, मिला न अब तक कोई ऐसा दानी ;
यह व्यथा किसीने कब मेरी पहचानी ?

(७)

मेरे नयनों में श्रावण की जल-धारा ;
तज गया विपिन में मुझको मेरा प्यारा !
दर्शन भी जिसका हाय न मंगल-सूचक ;
मैं एक वही एकाकी सन्ध्या-तारा !
जो प्रेम-मुद्रिका देती मेरा परिचय ;
खो दी हा ! मैंने वह भी एक निशानी ;
अलि, व्यथा किसीने कब मेरी पहचानी ?

(८)

मेरा विषाद अविशेष, अमर, अविनाशी ;
ये प्राण हुए अब मेरे मृत्यु-विलासी !
जग रहता पागल-सा जिस सुख के पीछे ;
मैं भी उसकी ही एक बूँद की प्यासी !
क्या जानें, कब समझेगी इसको दुनिया !
मैं सदा रही वनफूलों-सी अनजानी !
अलि, व्यथा किसीने कब मेरी पहचानी ?

(९)

जग फेंक रहा पी-पी कर मधु का घट भी ;
पर, बचा न मेरे लिये हाय, तलछट भी !
भर लाते अपनी चंचु विहग भी जल से ;
हा ! सूख गया मेरे-हित सरिता-तट भी !
मैं हूँ वसन्त में वह करील की छाया ;—
रहते सुदूर जिससे भूतल के प्राणी ;
अलि, व्यथा किसीने कब मेरी पहचानी !

(१०)

धुल गया अश्रु से मेरे दृग का अंजन ;
है अस्त-व्यस्त मेरी वेणी का बंधन !
होता न मधुप-श्रेणी का गुंजन जिसमें ;
मैं वह किंशुक का गंध-रहित हूँ कानन !
आशा में पावन चरण-धूलि की किसकी ,
मैं चिर दिन से हूँ पड़ी यहाँ पाषाणी !
अलि, व्यथा किसीने कब मेरी पहचानी ?

(११)

जग के ललाट पर श्री-रेखा, हरि-चन्दन ;
मैं विकल कपोती करती कातर-क्रन्दन !
जग दूर हटा देता काँटों-सी मुझको ;
मैं लिपट हाय ! चरणों से करती वन्दन !
मधुवन में मेरे आग लगाई जिसने ;
वह कौन हृदय ऐसा कठोर अभिमानी ?
अलि, व्यथा किसीने कब मेरी पहचानी ?

(१२)

कर देगा जग को मेरा स्पर्श अपावन ;
होगा भुजंग-सा मेरा प्रेमालिङ्गन !
जिसके अधरों का रस भी होता विष-सम ;
मैं जग की ऐसी कणिका एक अकिंचन !
निर्माल्य बनी पूजा के पहले ही जो ,
मैं कुसुम-बालिका वही एक कल्याणी !
अलि, व्यथा किसीने कब मेरी पहचानी ?

यौवन-लहरी

उठ चल-चल, ओ यौवन-लहरी !
क्यों ठहरी, री क्यों तू ठहरी ?
सोयी है, सोयी कब से तू
आलस की गोदी में विभोर !

क्या जानें, उठती छू अछोर
किस ओर? किधर? कैसी हिलोर!
सुन नवयुग का भी घोर शोर
छोड़ी न जटिल निद्रा गहरी—
तूने अपनी निद्रा गहरी!
री लहरी, ओ यौवन-लहरी!

यह भावों का मेला-ठेला,
मधु-विष, जलाग्नि का हेल-मेल!
अरमानों का रेलम-पेला;
नित नव उमङ्ग, नव हँसी-खेल!
नव राग-रङ्ग, नूतन तरङ्ग,
प्रति अङ्ग-अङ्ग, प्रति घड़ी-घड़ी,
फिर नहीं मिलेगी घड़ी-घड़ी!
री लहरी, ओ यौवन-लहरी!

परवाह नहीं, तू एक—एक
जल ज्वाला में हो जाय राख!
तेरे पद-चिह्नों पर दौड़ें
दस-बीस नहीं, बस लाख-लाख!
हाँ, लाख-लाख जन सिक्त करें
निज शोणित से मां की उजड़ी,
फुलवारी पतझड़ से उजड़ी!
री लहरी, ओ यौवन-लहरी!

वह वहाँ देख, वह वहाँ देख;
अभिनव प्रभात की कनक-रेख;
जल जाय पुरातन रूढि मूढ़;
मत शकुन लेख; तज मीन-मेख!
चल पड़ झटपट आँखें मल-मल;
क्यों बनती जान-बूझ बहरी—
हाँ, समझ-बूझ कर भी बहरी!
री लहरी, ओ यौवन-लहरी!

सागर-सी लहर-लहर जग में
मद-धार बहा दे द्वार-द्वार!
उस प्रलय-छटा-सी छहर-छहर,
तू घहर-घहर फिर एक बार!
वैसी न कभी घहरे आगे,
जैसी न कभी पहले घहरी—
हाँ, कभी न जो पहले घहरी!
री लहरी, ओ यौवन-लहरी!

२५

ज्यों-ही खोल भवन का द्वार,
निकला कर गृह से शृङ्गार;
प्रथम प्रात ही देखा मैंने,
पथ पर एक खड़ा भिक्षुक;—
अपनी कृशकाया ले कर!
किया विनत अभिवादन मौन;
चौंक पड़ा मैं — 'रे तू कौन?
यात्रा-भ्रष्ट किया खल, तूने
अशुभ कलेवर से अपने;
भाग, सामने से सत्वर!'
वक्र-दृष्टि लख कर मेरी,
'दाता! जो इच्छा तेरी!'
लौट पड़ा निरुपाय भिक्षु वह
'जय हो!' आर्त्त-गिरा से कह;
विहँस पड़ा मैं सुन वह स्वर!

उस दिन, ठीक उसी दिन हो,
डोल उठी भयभीत मही;
अलसाई, उन्माद-भरी-सी
दोपहरी में जाड़े की;
हिली धरा शंकित थर-थर!
अपने उस उजड़े घर में,
वैभव-बल के खँड़हर में;
मैं ही केवल एक बचा था,
बैठा था चिन्तित बाहर;
विह्वल था मेरा अन्तर!
इतने में सहसा उस बार,
कोई जैसे गया पुकार;
'जय हो!' नयन खुले जो, देखा
दूर किसी की आकृति—सा,
और, वही सूना खँड़हर!

२६

मन्द पवन का विहरण कल—
अहा, एक ही झोंके में यह
सिहर उठा सारा वन-तल!
सरिता का फेनिल कल-कल,
वारि-वीचियों का छल-छल;
काँप रहा पीपल-द्रुमदल का
अन्तस्तल दुर्बल, पल-पल!
शुभ्र, कपास-धवल, कोमल;
बादल-दल निर्जल, निर्मल;
वराकाश में काश-कुसुम-से
उड़ते हैं उज्वल, उज्वल!

२७

आज, धान के खेतों से,
यह किसके संकेतों से,
उमड़ पड़ा सागर सौरभ का
अवनि-गगन को कर प्लावित;
ओत-प्रोत अलि, जग-जीवन!

मन्दिर का वह शंख-निनाद;
तोड़ रहा निशि-स्वप्न-विषाद!
आज, प्रात-ही जगा गई सखि,
यह किसकी कोमल पद-ध्वनि;
उठ सखि, उठ, आया नव क्षण!

नव - पाथोद - राग गम्भीर;
मथित आज उन्मद नद-नीर!
काट किया एकत्र नाव में
पकी-पीत मंजरियों को;
हमने हँसियों से सत्वर!

अमित शस्य, तृण, विपुल पलाल;
खिले चतुर्दिक स्वर्ण-मृणाल!
आज, हमारे खलिहानों में
छाया धन अलकापति का,
राशि-राशि, सुन्दर-सुन्दर!

किन्तु, व्योम में क्षण-प्रतिक्षण;
उमड़-उमड़ ये सावन-घन!
कहते, आज डुबो देंगे हम
इस विस्तृत वसुधा-तल को
जल की धारा से अविरल!

हे असीम उर के आह्लाद !
ले लो यह वैभव - उन्माद ;
हम भी आज तुम्हारे सँग ही
रो लेंगी सूने घर में
बहा दृगों से जल छल-छल !

२८

प्रेम, पुष्प-सा ही खिल कर ,
प्रणय-वेदना में मिल कर ,
जगत-तपोवन में तू मुरझा
जाना एकाकी-अविचल ; —
एक कसक का अनुभव ले ।

यहाँ वासना का अभिनय ,
तेरा क्या होगा परिचय ?
जल जायेगा क्षण में निर्मम,
मृत्यु-चिता की ज्वाला से ;—
तू न प्रलय का वैभव ले !

लक्ष्य रहे वह ध्रुव-तारा,
मोह-निशा तम में प्यारा ,
आँखों का आलोक लुटा दे ,
अन्तर की ज्योतिर्धारा —
देगी स्वयं पन्थ-निर्णय !

आज, विकल तरु का मर्मर ,
फूट चला गिरि से निर्झर ।
प्रेम, जगत के हास-अश्रु का
स्वर्ण-वल्लरी की छवि में ;—
कर ले अर्थ-हीन संचय !

यह मरु का विस्तीर्ण प्रदेश ,
जलते किसलय-कुसुम अशेष ;
यहाँ न आना प्रिय, तृष्णाकुल
स्नेह-सलिल की आशा में ;—
कटु-कंटक-पथ से चल कर !

किसी शिशिर-संध्या में म्लान ,
उठ निसर्ग से पुलकित-प्राण ;
अपनी तृप्ति-रहित आकाँक्षा
ले कर उड़ जाना सुकुमार ;—
उल्का-सा भू पर जल कर !

हलधर

मैं हलधर हूँ, मैं बलधारी !
लेकर मैं हाथों में मूसल ,
रख कंधों पर लोहे का हल ;
चलता मैं क्रोधित हो ज्यों ही ,
मच जाती वसुधा में हलचल !
मेरी भौंहों में बल लख कर
शंकित हो जाते त्रिपुरारी ;
मैं हलधर हूँ , मैं बलधारी !

मैं युग-युग में अवतार-ग्रहण ,
करता जग में जीवन-धारण ;
मैं क्रान्ति-यज्ञ का अग्रदूत ,
मैं पौरुषमय, विप्लव-वाहन !
मेरी हड्डी से वज्र बना ,
वह जो वृत्रासुर-संहारी ;
मैं हलधर हूँ, मैं बलधारी !

तुम कहो मुझे ही दीवाना,
जिसका जी चाहे मनमाना!
पर, वह भिक्षुक हूँ मैं, जिसको
अब-तक न किसीने पहचाना!

मैं हृदय-रक्त से सींच रहा
इस जग की सूखी फुलवारी;
मैं हलधर हूँ, मैं बलधारी!

निर्झर में मेरा ही पानी;
वन-वन में मेरी ही वाणी!
लहराता खेतों में मेरी
ही रानी का अंचल धानी!

मैं ही इस दुनिया का राजा,
मेरी ही यह दुनिया सारी;
मैं हलधर हूँ, मैं बलधारी!

मैं ऊसर में बोता मोती,
फिर किस्मत क्यों मेरी रोती?
मेरे मिट्टी के खेतों में
नित सोने की वर्षा होती!

मैं उस मिट्टी का हूँ मालिक,
जिस मिट्टी पर मैं बलिहारी;
मैं हलधर हूँ, मैं बलधारी!

मैं हल ले कर जिस रोज चला,
सारे जग का हो गया भला;
मेरे ही श्रम की रोटी पर
यह वैभव का संसार पला!

मेरा ही अन्न, जिसे खा कर
हो गई देह जग की भारी;
मैं हलधर हूँ, मैं बलधारी!

मेरे तन पर ये महल खड़े;
मस्जिद औ मन्दिर बड़े-बड़े!
इन महलों के नीचे मेरे
ही अस्थि और कंकाल पड़े!

वे ईंट इसी दिल के टुकड़े;
मेरे अरमानों की क्यारी;
मैं हलधर हूँ, मैं बलधारी!

मैं लोट रहा हूँ धूलों में;
बहता सुख-दुख के कूलों में!
जग को फूलों में बिठला कर
मैं स्वयं खड़ा हूँ शूलों में!

ऐसी तो मेरी अलमस्ती;
यह मस्ती है मुझको प्यारी;
मैं हलधर हूँ, मैं बलधारी!

जीते जो मेरा शोणित पी,
मुझको न समझते जो पशु भी;
फूले न समाते मग में जो,
मेरी चमड़ी के जूते-सी!

चेतें वे सारे मतवाले,
अब सँभलें वे अत्याचारी;
मैं हलधर हूँ, मैं बलधारी!

मुझको किसने लाचार किया?
सूना मेरा घर-बार किया!
मेरे भारत को मरघट कर
अपना लन्दन गुलजार किया!

मेरे आँसू के भाफ-तेल से
चलती यह किसकी गाड़ी?
मैं हलधर हूँ, मैं बलधारी!

मेरा अब कौन कहाँ ईश्वर ?
जब भाग्य बना मेरा पत्थर !
मैं आप विधाता हूँ अपना ;
मेरा भगवान गया है मर !
मैं आज आग से खेलूँगा ,
पथ छोड़ें मेरा नर-नारी ;
मैं हलधर हूँ, मैं बलधारी !

वह शिखर हिमाचल मेरा ही;
यह सागर का जल मेरा ही !
यह भारत, सोने का भारत,
वह विस्तृत भूतल मेरा ही !
वे चीजें भी मेरी अपनी ,
तुम कहते जिसको सरकारी;
मैं हलधर हूँ, मैं बलधारी!

मैं अपने मन का गाता हूँ;
मैं अपने मन का पाता हूँ !
मैं खोद-खोद कर मिट्टी को
सोई तकदीर जगाता हूँ !
सर्वस्व गँवाया हो जिसने ,
मैं एक वही हूँ व्यापारी;
मैं हलधर हूँ, मैं बलधारी !

मैं सोया था सब कुछ खो कर ;
अब जाग गया खा कर ठोकर !
मैं विकट, महाबल, मैं असंख्य,
मैं आज उठा हूँ फिर सो कर !
निर्घोष किया है अब मैंने ,
अब आई है मेरी बारी !
मैं हलधर हूँ, मैं बलधारी !

मैं आज आप अपना सेवक ,
अपना कृतान्त, अपना पालक !
अधिकार किसीका क्या, मेरा
बन जाये जो खुद संरक्षक ?
दृग खोलें अब मेरे शासक ,
कर ली है मैंने तैयारी ;
मैं हलधर हूँ, मैं बलधारी !

देखा था त्रेता ने अविकल
तब एक बार मेरा भुज-बल ;
अब एक बार फिर देख, सजग
हे वर्तमान युग उच्छृङ्खल !
ली अँगड़ाई मैंने, तत्क्षण
निकली रोओं से चिनगारी;
मैं हलधर हूँ, मैं बलधारी !

स्याही ने मुझे भुलाया है,
मेरे हल को ठुकराया है !
दुनिया की कलम मुझे देती
धोखा—यह कैसी माया है !
अब देखें वे मेरा साहस ,
मेरे हल को सब संसारी ;
मैं हलधर हूँ, मैं बलधारी !

मलय-पवन का प्रथम स्पर्श

आज, प्रगल्भ पवन ने खोला प्रिय! मेरे गवाक्ष का द्वार ;
सिहर उठा आचरण-शिखर मैं रोमाञ्चित,पुलकित,साभार ।
प्रथम स्पर्श वह उसका कोमल, मंजुल,शीतल,सरस,उदार ;
किसी कुमारी के आलिंगन सा कर गया तड़ित-संचार ।

थी प्रसुप्त हेमन्त-अंक में शिथिल प्रकृति युग-कर्दम श्रान्त ;
बना दिया किन धृष्ट करों ने क्षण में हाय , उसे विभ्रान्त ?
यह किसका आतङ्क विश्व में ? किसके गौरव से आक्रान्त ?
हुआ पीत क्यों एक निमिष में कानन का करुणानन-प्रान्त ?

झूम रहा पल्लव-ज्योत्स्ना में बना द्रुमाली का हिन्दोल ;
मुदित गुवाक, अवाक केतकी, हँसती बेली-जुही अमोल ।
समशीतोष्ण, लोलपद, उत्सुक, चिर-हिमाद्रि वातायन खोल ,
सहसा आ छू गया कपोलों को अमन्द मारुत हिल्लोल ।

नाच रही वासन्ती वन में, करती वनबाला अभिसार ;
द्वार-द्वार पर सजते अभिनव आम्रांकुर के वन्दनवार ।
विश्रब्धा सी कुहू-काकली, मुग्धा सी कलिका सुकुमार ;
मधुमक्षिका गन्ध वीथी में भरती मृदु गुंजार अपार ।

किये देवदूतों ने मुखरित कलरव से पर्वत, नद, ताल ;
बिछते राजमार्ग पर ऋतुपति के नव सुमन, नवीन मृणाल ।
शोभित शुभ सौभाग्यबिंदु से वनरानी का भाल विशाल ;
फूट पड़ी सुख से मेरे भी उर की डाल-डाल तत्काल ।

उमड़ा यौवन की मादकता लेकर मृदुल वसन्त-समीर ;
दक्षिण-पथ के मर्मरवन से अल्हड़, अस्थिर, अन्ध, अधीर ।
उड़ा अबीर, गुलाल-लालिमा, कुसुम-रङ्ग कुंकुम का चीर ;
मद्यप-सा लड़खड़ा पड़ा मन मेरा, डोला सकल शरीर ।

रोम-रोम में नव उद्दीपन, अंग अंग में ऊर्जित काम ;
पुलक-पुलक में मोह-मूर्च्छना, प्राण-प्राण में गति उद्दाम ।

इन्द्रिय-इन्द्रिय में व्याकुलता, पद-पद पर औत्सुक्य, विराम ;
याम-याम पर चित्रलिखित से रूप विचित्र, अनन्त, ललाम ।

यह गुदगुदी, मौन सम्भाषण, अलस लालसा लीलाभ्यस्त !
मदिरावेशोन्मत्त हृदय के भावों को कर रहा निरस्त !

एक अलौकिक, एक अनिर्वचनीय माधुरी रस संन्यस्त
यह मलयानिल इतना पागल, इतना कल, इतना अलमस्त ।

आया झोंका किसी ओर से, मचल पड़ा चंचल का प्यार ;
अस्त व्यस्त हो गया माधवी का अंचल, कवरी-श्रृङ्गार ।
भ्रष्ट स्वप्न-सा हुआ तिरोहित शिशिर-तुषार-हार नीहार ;
आज प्रगल्भ पवन ने खोला जब मेरे गवाक्ष का द्वार ।

३१

चाँदी की झीनी चादर में
लिपटी रे यह नारी ;
किस स्वप्नलोक से उतरी
सुकुमारी रजत - कुमारी ?

सीपी में उर्वी-नभ की
मोती - सी झिलमिल सरसी ;
सरसी के निर्मल जल में
फूलों-सी पड़ती बरसी ।

छवि की नीलाभ पियाली में
लाली - सी उतराती ;
माधव के पुनर्मिलन की
सुध रह-रह कर फिर जाती !

शीतल मरकत-मणि-द्योतित
स्वर्गंगा की छाया - सी ;
मधु - विभावरी में छाई
यह ज्योतिमती माया - सी !

रे किस निधुवन से अविरल
परिश्रान्त, विकल, कृश, हारी ;
लेटी तृण, तरु, मरु, पथ पर
यह नवबाला सुकुमारी ।

अनुभूति

कौन हृदय के निभृत कोण में रह-रह कर है मचल रहा ?
भिँगो रहा मानस की पलकें कब से अविरल अश्रु बहा !
कौन पहन कर झूम रहा है धूमिल-सी सन्ध्या की चीर ?
कौन आह, मेरे अन्तर में चुभा रहा है शत शत तीर !
बिखर पड़े क्यों टूक-टूक हो आज अचानक ही हिय हार ?
मिट्टी में मिल गया हाय ! क्यों मेरा सोने का संसार ?
किसके मुरली-रव को सुन कर मचा हुआ है हाहाकार ?
फीके क्यों पड़ते जाते हैं मेरी हृत्तन्त्री के तार !
किससे जाकर पूछूँ अपने मानस की मैं गोपन बात ?
कौन बतावेगा मेरे प्रिय जीवन-धन का पथ अज्ञात ?
भरी जवानी में ही मैं हूँ बैठा आज, विराग लिये !
किन्तु, दया कर कभी उन्होंने फिर क्या दर्शन-दान दिये ?
कौन यहाँ है, जिसे सुनाऊँ जा कर अपनी अमित व्यथा !
कौन सकेगा सुन यह मेरी उर की दारुण करुण-कथा ?
ऐ निष्ठुर, क्यों सता रहा है ? बता आज, तू ही मुझको !
मेरी ऐसी दीन दशा पर तरस न आती क्या तुझको ?
रुला चुका हाँ, मुझे बहुत, अब आ जा प्राणों के आधार !
इन प्यासी आँखों में भर जा तू अपना सौन्दर्य अपार !
जिससे अन्तर में न एक भी बाकी रह जाये अरमान !
फिर न देखने के हित तुझको उठे हृदय में कभी उफान !

३३

करो न मेरे मन का मंथन !
रोम - रोम में कर कोलाहल ,
भरती हो जो इतनी हलचल ,
अधर अमृत के पायी जो हैं ,
कर लेंगे क्या पान हलाहल ?
विषमय मत होने दो जग को ,
खोलो यह भुजंग का बन्धन !

द्विविधा में यह विकल हृदय है ,
यही तुम्हारा क्या परिचय है ?
एक पलक में प्रिये, तुम्हारी
मेरे कल्प-कल्प का लय है !
तुमने सारा जीवन मथ कर
दिया वेग, फेनिल आलोड़न !

असहनीय यह अन्तर्ज्वाला ,
अग्नि-शिखा की यह वरमाला !
रत्नों से घर अपना भर कर
मेरा उर सूना कर डाला !
अब तो मेरी जलन स्वयं ही
बन जाती आँखों में अंजन !

३४

लो, देखो, काँपीं वृन्तों पर
शतदल की कोमल कलियाँ !
विहँस उठीं दल-दल पर झलमल
कर अनन्त मुक्तावलियाँ !
छाया चहुँ ओर हिमानी का
शीतल - करुणामय अञ्चल ;
लाईं भर किसने कुञ्जों से
सौरभ की मञ्जुल डलियाँ !

यह निहार या नव परिणीता
ऊषा का घन अवगुन्ठन ;
धूमिल जिसके रूप-जाल में
ऊँघ रहीं सूनी गलियाँ !
जग के पलकों में झलकी
निशि-अलकों की दीपित बेणी ;

बिखरा दीं सरिता ने तट पर
लहरों की गीताञ्जलियाँ !
जागीं रे, जागीं त्रिभुवन में
जीवन की पावन कलियाँ !
तरु-तरु पर, डाली-डाली पर
राग-रङ्ग की रँगरलियाँ !

३५

एक बार तुम मेरे स्वर से
अपना कंठ मिला कर गा लो !
यह मेरी गीतों की माला,
इसमें मेरी यौवन-ज्वाला !
व्यर्थ न जीवन के पृष्ठों को
मैंने है काला कर डाला ।
मेरे जीवन के तारों से
तुम भी अपना तार मिला लो ।
गाना तो है एक बहाना,
याद तुम्हारी यों आ जाना !
आँसू से गीले हैं अक्षर,
अपना समझ इसे अपनाना !
मेरी आँखों के पानी से
तुम भी अपनी प्यास मिटा लो !
हार बनाओगे, तो जीवन
होगा इनका सफल चिरन्तन;
ठुकरा दोगे, चरण तुम्हारे
कर देंगे इनको चिर पावन !
यदि न प्यार कर सको इन्हें,
तुम चरणों से भी तो ठुकरा लो ।

३६

यह तुम्हारी भूल है;
प्यास को जो तृप्ति समझो,
यह तुम्हारी भूल है !
एक दिन उर में लगाया;
अश्रु-जल से सींच कर
जिसको विशद तुमने बनाया !
आज तो वह प्रेम-तरु ही
हो चुका निर्मूल है !
रूप का सागर उमड़ता;
और, तृष्णा से विकल इस
पार यह संसार मरता !
व्योम में बादल गरजते,
वायु भी प्रतिकूल है !
शूल का भी ध्यान है कुछ ?
मन, तुम्हें इस देश का,
इस मार्ग का भी ज्ञान है कुछ ?
हो गये तुम मुग्ध जिसपर,
वह न सुन्दर फूल है !

सत्य की खोज में

विश्व सुप्त, नीरव निशीथ, उत्तुंङ्ग स्तब्ध प्रासाद-शिखर ।
कंचन-परिनिर्मित प्रकोष्ठ में जलता मणि प्रदीप सुन्दर ।
लेटीं अर्द्धनग्न सुन्दरियाँ कोमल शय्या पर चंचल ।
ओ सिद्धार्थ ! जरा देखो तो राहुल-जननी का अंचल !
स्वर्ग-सदन, उपलब्ध इन्द्र-सुख, ऋद्धि-सिद्धियों का नर्तन;
फिर भी नियति-चक्र से फिरता राजकुमार भिखारी बन ।
किस वीभत्स दृश्य से इतनी विरति-भावना है जागी ?
छोड़ भोग क्यों रमे योग में तुम मेरे ओ बैरागी ?

देखी यौवन की क्षणभंगुरता, विनाश की कल क्रीड़ा!
महामरण का खर रण-ताण्डव, जरा-मृत्यु की भय-पीड़ा!
खोजा चिर रहस्य कानन में, तापस भी बन कर देखा।
देव, मिली पर वट तरु के ही तले मुक्ति की वह रेखा।
मिटा पाटलीपुत्र, गया वह; कपिलवस्तु सी कल्याणी।
कह तूने मृगदाव, भुलाई तो न तथागत की वाणी?
चला अशोक, शोक है छाया वैशाली के शहरों में।
गूँज रहा वह गान किन्तु, अब भी सागर की लहरों में!
जकड़ा था जब जीवन जंजीरों से, कर्दम-छंदों से।
ओ विद्रोही! द्रोह किया तुमने शास्त्रों से, वेदों से!
कर दी प्लावित सारी वसुधा विश्वप्रेम की धारों से!
दिग्विजयी! जग जीता तलवारों से नहीं, विचारों से!
खण्डित कर जड़ता मानस की, दूर क्षणिक ममता-माया,
भूमण्डल पर कर दी तुमने सत्य-अहिंसा की छाया!
यद्यपि तुम गांधी बन बैठे हो आंगन में, घर-घर में!
ढूँढ़ रहा मैं तुम्हें आज भी सारनाथ के खँड़हर में!

दुख-सुख

मेरे इस जीवन में रे सुख सपना, दुख ही दुख है;
दुख ही है वैभव मेरा; दुख ही बस, मेरा सुख है!
अपने इस वैभव पर मैं हँसता, इतराता, गाता!
अपने इस स्वर्ण-धरोहर पर फूला नहीं समाता!
क्या जानें, कितने तप का पावन वरदान - सरीखा
तूने भर दिया हृदय में हालाहल दुख का तीखा।
फिर क्यों न इसे शंकर-सा मैं भी निज कंठ लगाऊँ?
युग-युग के साधन-फल को किस लिये आज ठुकराऊँ?
मेरे दुख की प्याली से सुख छलका-छलका पड़ता!
कितना आनन्द सिहरता, कितना उन्माद बिखरता!
इन मादक-सी लहरों में मेरा अवसादों का मन
मधुकर-सा खोज रहा है चिर सुख का कोई मधुकण!
सुख में चंचलता, छलना; दुख करुणा का सावन-घन!
सुख सुरापान की विस्मृति; दुख में संज्ञा, स्मृति, जीवन!
यह रे संज्ञा ही ऐसी, जो पता बताती तेरा।
दे सुख की भूली बातें दुख छीन न ले तू मेरा!
आने दे, आती हैं जब दुख की मतवाली घड़ियाँ!
करने को इनका स्वागत क्या कम हैं आँसू-लड़ियाँ!
सर्वस्व लुटा मैं दूँगा काँटों की एक कसक पर!
उमड़ा विषाद का सागर; लाऊँगा आहें भर-भर!
यह दुख ही है, जो तेरी रह-रह कर याद दिलाती;
घन अन्धकार में भी जो इक ज्योति जगा-सी जाती।
फिर क्यों न इसे ही फूलों-सा मैं गलहार बनाऊँ?
दुख के एकान्त सदन में अपना त्योहार मनाऊँ?
मेरे आँगन में दुख का अक्षय भाण्डार भरा है!
जिसकी शय्या पर मेरा सुख-आहत हृदय पड़ा है!
इन निधियों को मैं दोनों हाथों से आज लुटाता;
फिर भी न कहीं इन रत्नों का मुझको अन्त दिखाता।
परवाह उसे क्या सुख की, जिसने बेचैनी पाली!
खाली न रहे उर का घट, उठने दो टीस निराली!
जिसके आक्रन्दन-स्वर में खो जाये रे उत्सव - रव!
वेदना - उत्स बह आये घाटी से दुख की अभिनव!
पानी का कैसा पानी? आँखें ही बनीं कटारी!
ले आई महामरण का सन्देश वही, बलिहारी!
उठ जाये कहीं न पहले ही जग से उसकी प्यारी,
मर रहा, देखता जा, यह पीड़ा का प्रेम-पुजारी!

३९

प्रात का करुण-किरण-गण बन,
खिला सुमनों-सा मेरा मन।

सकल नर-जीवन के साधन
करें नित तेरा आराधन;
चरण-तल में अपने पावन
मिला रजकण-सा मेरा मन।

सुरभि से जिसकी जगवन्दन
विनन्दित हो नन्दन-कानन;
मलय-वलयित तन में नूतन
हिला चन्दन - सा मेरा मन।

४०

आज, मृत्यु की महानिशा में आया मेरा मतवाला ;
मुझे पिपासा नहीं अमृत की, लाओ जहर भरा प्याला !
शिथिल पड़े हिय-बन्धन सारे,
टूट रहे रवि, शशि, ग्रह, तारे;
इस उत्सव में महामरण के
हाला नहीं, हलाहल ला रे !
प्यारे, फूँक रहा अन्तर में महानाश लोहित ज्वाला !
आज पिपासा नहीं अमृत की, लाओ जहर-भरा प्याला !
सुख, वैभव, विश्राम मुझे क्या ?
अरे, मुरत का नाम मुझे क्या ?
मैं अनन्त पथ का हूँ यात्री ;
सुरा-सुधा से काम मुझे क्या ?
तन प्रमत्त, उन्मत्त हृदय मन; यौवन घन काला-काला !
आज पिपासा नहीं अमृत की, लाओ जहर-भरा प्याला !
जागा स्वर निनाद प्रांगण में ;
निखिल भुवन के जीवन-कण में !
रण-ताण्डव कर उठा भयंकर
महोल्लास, लो, भैरव-रण में !
फूटा ध्वंस-कंठ से शत-शत रुद्र-गीत-स्वर विकराला !
आज पिपासा नहीं अमृत की, लाओ जहर-भरा प्याला !

नवकलिका

मैं छोटी अधखिली कली हूँ; रूप नहीं, रस-राग नहीं।
मेरे नीरस-से जीवन में सौरभ नहीं, पराग नहीं।
इन अधखुली अलस पलकों में मद का वह विस्तार नहीं ;
सीखी नहीं प्रेम-परिपाटी, प्यार नहीं, अभिसार नहीं।
उठती है गुदगुदी न उर में किसी वेदना से अज्ञात ;
नहीं किसी के मधुर स्पर्श से रोमाञ्चित हो जाता गात।
आता चिर-चञ्चल मानस में नहीं किसी का मादक ध्यान ;
सतत-प्रतीक्षा, प्रेम-परीक्षा, दीक्षाओं का मुझे न ज्ञान।
अन्तर के एकान्त निलय में विप्रयोग की आग नहीं ;
मेरी अल्हड़-सी दुनिया में मस्ती का वह फाग नहीं।
यहाँ न लाती याद किसी की अपनी सूरत दीवानी ;
बरसाता आहों का बादल भूतल पर न कभी पानी।
उमड़ी है न अभी गालों पर मतवाली मोहक लाली ;
रहती अपने ही बचपन में भूली सी भोली-भाली।
कभी किसी के विरहानल में विह्वल होते प्राण नहीं ;
दृग में तीर कमान, अधर पर भेद-भरी मुसकान नहीं।
हिम के शीतल गहन गर्त में ज्वालामुखियाँ सोती हैं ;
अरे, जगाओ तुम न अभी शिशु की क्रीड़ायें होती हैं।
गोधूली के धूमिल पट में सन्ध्या की श्री छिपी हुई ;
विकल झाँकती लाज-विटप से इच्छाओं की छुई-मुई।
गूँथो मत माला में, दिन हैं अभी खेलने-खाने के ;
हाय, न हिय का हार बनाओ मुझे किसी अनजाने के।
फूटे कैसे कण्ठ, चल रही जब यह आँख-मिचौनी सी !
कहीं न छू दो तुम बिखरी मेरी विभूतियाँ मौनी-सी।

अभी जरा ठहरो ! न भरी है मेरे यौवन की प्याली ;
मैं छोटी अधखिली कली हूँ, मुझे न छेड़ो वनमाली।

आमन्त्रण

वीणा की स्वर लहरी - सा जीवन - संगीत भुलाकर
आओ, हे कविवर ! आओ , स्वप्नों के पर फैला कर।
कल किरणों-सा ऊषा की जीवन - जलनिधि के तीरे
उतरो, हे कविवर ! उतरो, अम्बर से धीरे - धीरे।
फूलो वसन्त - विटपों - सा सुख-दुख की घड़ियाँ भूलो।
झूलो, हे कविवर ! झूलो, जग - हृदय-दोल पर झूलो।
विहगों-सा मुक्त गगन में, कल छन्दों - सा कविता में ,
तैरो, हे कविवर ! तैरो, तुम भावों की सरिता में।
बरसाओ घन-सा अविरल सर्वत्र रसों की झड़ियाँ।
गूँथो, हे कविवर ! गूँथो, आँसू - मोती की लड़ियाँ !
इस स्नेह- हीन मरुथल पर करुणा का श्रोत बहा दो।
ला दो, हे कविवर ! ला दो, फिर भू पर नवयुग ला दो।
निकलो कर प्लावित जग को, बन शान्ति-सुधा की धारा।
डूबे, हे कविवर ! डूबे, जिसमें क्लेशों की कारा।
प्राणों की भेंट चढ़ा दो प्रिय मातृ - मूर्ति पर पावन।

देखो, हे कविवर ! देखो, इस ओर व्यथित जन क्रन्दन।
मधु ज्योत्स्ना की वर्षा में खुल-खुल कर अहा ! नहाओ।
गाओ, हे कविवर ! गाओ, दो-चार गीत तुम गाओ।
सौन्दर्य - महासागर की लहराती - सी लहरों पर
खेओ, हे कविवर ! खेओ, कल्पना - तरी को सुन्दर।
रंगों से चित्रित कर दो बादल के कनक - परों को।
चूमो, हे कविवर ! चूमो, विभावरी के अधरों को।
ले नव - संदेश दिवानिशि घर - घर में निर्भय डोलो।
खोलो, हे कविवर ! खोलो, द्रुत द्वार स्वर्ग का खोलो।
लगने दो अपने होठों से यौवन - मद का प्याला।
पहनो, हे कविवर ! पहनो, निःस्वार्थ स्नेह की माला।
वंशी की टेर सुनाओ छिप कुञ्जों में नटवर - सा।
नाचो, हे कविवर ! नाचो, फिर एक बार तुम हर-सा।
अभिशाप - ताप जो आये, तन पर सहर्ष सब झेलो।
खेलो, हे कविवर ! खेलो, सस्मित मुख शिशु-सा खेलो।

४३

तुम्हारे बालों का मृदु जाल,
घने बालों का लहरा जाल।
खो गया उसमें शुक अनजान,
सुकेशिनि, मेरा शुक नादान।

बिछा कर चल-चितवन-कण स्वादु,
रखा था फैला अपना जाल।
न जानें, उतर कहाँ से मौन,
खो गया मेरा प्रिय शुक-बाल ?

दीन मीनों-सा होकर म्लान,
हाय, कैसे क्षण में अनजान।

तुम्हारे बालों का शैवाल,
शयन-श्लथ बालों का शैवाल।
फँस गया उसमें कम्बु - कुमार,
सुकेशिनि, मेरा कम्बु - कुमार।

लहरियों से कर लोल - किलोल,
खेलते शैवालों - से बाल—
तुम्हारे आनन - सर में सुमुखि,
विचुम्बित कर कल-अधर-प्रवाल।

न जानें, आ कैसे इस पार,
फँस गया मेरा कम्बु - कुमार ?

४४

आई—वह आई !
'कुहू-कुहू', 'कू-कू' रव करती,
प्राणों में मादकता भरती,
हिय की विरल शान्ति को हरती,
फिर आई, फिर - फिर आई !

आई—वह आई !
कुञ्ज-कुञ्ज में काली-काली,
अपनी ही धुन में मतवाली,
पुलकित कर तरु, डाली-डाली,
फिर आई, फिर - फिर आई !

आई—वह आई !
नव स्वर, नव गति नवल ताल पर,
अलस-पुलक-दल-पुञ्ज माल पर,
मधु रसाल पर, आल-बाल पर,
फिर आई, फिर - फिर आई !

आई—वह आई !
गाती, पिघलाती, सरसाती,
जल-थल में मृदु रस बरसाती,
दरसाती नव छवि, हरसाती,
फिर आई, फिर - फिर आई !

४५

आई रे, आई आज प्रात,
सखि, आज प्रात ही अरुण-गात,
वह आशा-विटपों से अमन्द,
मधुमत्त, निरामय, मलय-वात !

लाई रे, लाई सरल-मौन
वन-कुसुमों का मकरन्द - सार ;
कोमल-कल स्तवकों से पराग
फैला कर निर्जन में अपार !

पाई रे, पाई वह विभूति
मैंने अपनी खोई अनन्त !
नव-पिक-कूजन से गूँज उठा
मेरा मादक जीवन - वसन्त !

छाई रे, छाई बन बहार
आँखों में प्रिय की छवि अजान ;
मैं भूल गई, वह भूल गई
क्षण में अपना भी प्रथम गान !

४६

आज, नवऋतु के मनोरम प्रात में
जग उठीं, हाँ, जग उठीं ये बेलियाँ !
मुकुल-संकुल-सुरभि-वासित वात में
झूमतीं, करतीं अमित अठखेलियाँ !

निरख वासर, लाज से आईं उतर
तारिकाएँ, नभ-निशा-अभिसारिका ;
उदित रवि के विदित रथ को घेर कर
चल पड़ीं चल विश्व की नीहारिका !

विपुल-पुलकावलि-रुचिर-चिर-सुमन से
लद गईं उर-तरु-विपिन की डालियाँ !
आलियाँ आईं मचलती विजन से,
आ गईं सुकुमार वेला - वालियाँ !

नवल इच्छा, नव स्पृहा, जृम्भा नवल,
ले रही नव तृष्णिका अँगराइयाँ !
पूर्व-स्मृति ने सत्य-स्थितियों से विफल
स्वप्न की भर दीं असीम तराइयाँ !

हँस पड़ीं दृग खोल कर अज्ञात में
मृदुल आशा की अनन्त नवेलियाँ !
आज, नवऋतु के मनोरम प्रात में
जग उठीं, हाँ, जग उठीं नव बेलियाँ !

४७

आज, अवाई है ऋतुपति की सरस समीरण डोल रही !
स्वागत के हित मीठे स्वर में कल विहगावलि बोल रही !
नीरव वन में हरसिँगार-से,
परिमल झड़ते पवन-भार से,
कुसुम-कली भी लज्जा तज कर,
लगी खेलने मधु-कुमार से;
कल-कुञ्जों में छिप कर परभृत-प्रिया अमृत-रस घोल रही !
आज, अवाई है ऋतुपति की सरस समीरण डोल रही !
बौर-गन्ध से शिथिल डाल पर,
मञ्जु-मञ्जरित मधु-रसाल पर;
थिरक रही वन श्री सहास
चंचल चरणों से ताल-ताल पर !
नील-कमल-कलिका निज उर के बन्द द्वार को खोल रही !
आज, अवाई है ऋतुपति की सरस समीरण डोल रही !
क्या बहार छाई कानन में ?
बरस रही मधु-छवि मधुवन में !
एक नवीन उमंग—सरसता
आई सारे जन के मन में !

'पिया पिया' रट सतत पपीहा पिय का हिया टटोल रही !
आज, अवाई है ऋतुपति की सरस समीरण डोल रही !

४८

जागो, ओ अमिताभ, अजय !
जीवन के रक्तिम प्रभात में
जागो हे शुभ स्वर्णोदय !
अरे, हुआ यह कैसा क्षण में
कोलाहल जग के प्रांगण में ?
उठो, पुकार हुई करुणा की ;
ऐ मेरे सैनिक निर्भय !
खिंची कराल मरण की रेखा ;
लोप हुई लोलुप मधु-लेखा ;
महानाश के पथ पर पल-पल
बढ़ो, बढ़ो ऐ मृत्युञ्जय !
दूर क्रूर कर निशा-कालिमा ;
फैला दो नव-उषा-लालिमा ;
दौड़ो, अग्रदूत ओ मेरे
उदधि-पर्वतों पर निर्दय !
ऐ अनन्त ! ओ ज्वालामय !

४९

सूनी यह कवि की समाधि है पथिक, यहाँ इस तरु के नीचे।
सोया है अनन्त निद्रा में एक शिशु हृदय लोचन मींचे।
जहाँ बने रवि-शशि ही प्रहरी;
वट-पीपल की छाया गहरी।
सरिता-जलका कल-कल छल छल,
लोल लहर की लीला-लहरी।
अलग-बगल घिर आईं घासें, लगा पंछियों का है मेला।
करता चिर विश्राम वहीं यह कवि अबोध भी श्रान्त, अकेला।
अरे, लीन यह किस विचार में
अपने वैभव के मजार में ?
दूर नगर के कोलाहल से
इस उजड़े झंखाड़-झाड़ में।
शिथिल शक्तियाँ,थकीं इन्द्रियाँ अविरत कर्म-चक्र में पिस कर।
आज, मृत्यु ने दिया उसे नव जीवन, नव मन, नया कलेवर।
महानिशा यह कितनी सुखकर !
चिदानन्दमय, निर्भय, सुन्दर।
युग-युग की अनुभूति सो रही
दो मुट्ठी बालू के भीतर।
ठहरो; एक नजर देखो तो, यदि चाहो—कुछ पल, क्षण ही कुछ;
पथिक, यहीं उसकी समाधि है-जो था कभी तुम्हारा भी कुछ !

५०

पत्थर की पूजा कर, उसको
भक्त बना देते ईश्वर !
मन का ही विश्वास, देखता
कण में भी जो रत्नाकर !
मेरे हृदय - देवता में तो
रक्त, मांस, मानस, अन्तर !
वह क्या पत्थर हो सकता है,
मानव जो, मानव सुन्दर !
यदि पत्थर ईश्वर हो सकता,
मानव उससे भी बढ़ कर !
क्यों पूजा मेरी निष्फल हो ?
क्यों मेरी पीड़ा नश्वर ?

विहार के आँगन में

(१)

तुम मुर्दों के देश, उलूकों के बीहड़ आवास;
तुम समाधि पर सिसक रहे दीपक के क्षीण प्रकाश!
ऐ वैभव की मृदुल गोद में पाले हुए फकीर;
पापों के प्रतिरूप, पतन के मूर्तिमान इतिहास!
उषा के तारक-बाल उदास!

पुरा प्राची के गौरव - चिह्न;
भूत ऐश्वर्यों के आख्यान!
विश्व के जन - कलरव से दूर
किसी विरही के आकुल गान!
शीर्ण स्वप्नों के धुँधले चित्र,
नियति की व्यङ्गमयी मुस्कान!

तुम पतझड़ में पीले पत्रों की मर्मर - झंकार!
तुम अनन्त उत्थान - पतन के भीषण उपसंहार!
ऐ सदियों के दास, प्रणय में खोये - से उन्माद;
उतरे हुए नशे के बाकी केवल एक खुमार!

(२)

कहाँ आज वह अमित धरा का बल-वैभव - विस्तार?
वसुधा का सुख - स्वर्ग और छवि का असीम भांडार!
कहाँ, कहाँ वह आज महा-महिमा-मण्डित भू लोक?
नन्दन - वन का द्वार, प्रकृति के यौवन का शृङ्गार!
भूतियों का वह क्रीड़ागार!

खेलती थी वसन्त के साथ
स्वयं श्री जहाँ सदा साभार;
माधवी - कुंजों में नित प्रात
गूँथती उमा सुमन के हार!
बजाती वीणा वीणापाणि
द्रुमों की छाया में सुकुमार!

कहाँ, आज वह भव्य पुरातन-काल, हेम का धाम?
किशोरियों की नूपुर - ध्वनि - मुखरित पनघट अभिराम?
कहाँ विश्व - जननी का अनुपम वह स्वर्णालंकार?
भाल जगत का, पूर्व - गगन का वह नक्षत्र ललाम!

(३)

वह अक्षय मद - पान कहाँ रे, जब थे तुम आजाद!
वे मदमस्त झूमती आँखें, यौवन का उन्माद!
कहाँ होम की धूम - शिखा - आच्छादित वह आकाश?
पलती थी जब ले स्वतंत्रता - लता खून की खाद!
अलक्षित थे जब दुःख-विषाद!

आज उन वीरों के यश-पुंज
बने हैं स्वप्नों के आख्यान;
अलौकिक उनके कार्य - कलाप
हाय रे चरवाहों के गान!
समझता गौरव अपना विश्व
उन्हीं का करने में अपमान!

कहाँ इन्दिरा का निकेत वह, ऊर्वी विपुल - प्रमाण?
अग्निमुखी, फट पड़ो—मिटा दो मिट्टी में अज्ञान!
असहनीय हो हा हृदय पर आज पराजय - भार;
एक बार कल्पान्त और फिर नूतन जग - निर्माण!

(४)

कहाँ गया वह आज तपस्या - तप्त तरुण - रण - रोष?
जरासन्ध का प्रबल पराक्रम, विकट विजय - घन - घोष!
पौरुष का प्रमाद था लुटता जिस गृह में पूजान्त;
आज, उसी में उन्नति - पथ पर कायरता का कोष!
हमारे ही कर्मों का दोष!

कभी जो बौद्ध-विहार पुनीत,
वही अब मरु - सा बना उजाड़;
ढो रहे पशु - से नर - कंकाल
आज पृथ्वी पर अपना भार!
जहाँ घर - घर में अमृत - प्रवाह,
वहीं अब दुर्लभ अन्नाहार!

देव, जरा हममें अब कर दो प्राणों का संचार!
तार - तार हिल जायँ हृदय के, उमड़े पारावार!
उड़ें महाहव में यौवन के लक्ष - लक्ष अंगार;
एक बार फिर भारत - रण में वे अजेय हुङ्कार!

(५)

विस्मृत कर दी हमने गरिमा, अपना महिमादर्श !
वलि हो जाते मातृभूमि - हित जब सानन्द सहर्ष !
हम खो चुके उमंगें मन की, वह वासन्ती रंग ;
लुप्त हुई वह अमर कहानी, मिटा अग्नि उत्कर्ष !
ऋणी था जिसका भारतवर्ष !

मोह - निद्रा में विपुल - प्रगाढ़
आज सोये हैं सारे शूर,
नपुंसकता, जड़ता आलस्य,
बढ़ रही अकर्मण्यता क्रूर !
न मुख पर ओज, न तनु में शक्ति,
उड़ा वह प्रभुता का कर्पूर !

आदिकाल से तुम विद्रोही, रणचण्डी के भक्त,
कैसे आज कहो तो, इतने बने वासनासक्त ?
सुन अनन्त आह्वान समर का, कोलाहल - निर्घोष
उष्ण - तप्त हो उठता क्षण में क्यों न तुम्हारा रक्त ?

(६)

हे चिर - सुप्त वीर, अब जागो अपनी आँखें खोल ;
देखो, आज बहा जाता जग किन लहरों में लोल !
गत दिवसों का स्वप्न मनोहर, कवि - कल्पना - विभोर
ओ मृत्युंजय, अन्धकार में तुम क्या रहे टटोल ?
कौन देगा प्राणों का मोल ?

आज ताण्डव - प्रसन्न नटराज;
खड़ी रण में ले नग्न-त्रिशूल !
चले जय - यात्रा में उद्‌बुद्ध
दारु के पुतले लघुता भूल !
नरों के यौवन - नद का वेग ;
निशा तिमिरान्ध, दिशा प्रतिकूल !

अरे ! यहाँ संघर्ष - विघर्षण, घात और प्रतिघात ;
जीवन तथा मरण का उत्सव, आरोहन - भूपात !
गाओ मत विक्षिप्त, शिशिर में मादक मेघ-मलार,
आज बीसवीं सदी, न छेड़ो तुम त्रेता की बात !

(७)

अरे, याद आता क्या तुमको अपना वह व्यापार ?
वह अशोक सम्राट भिक्षु, वह निखिल धर्म - प्रस्तार !
जब कि सुप्त था बाल - विश्व बेसुध तन्द्रा में घोर ;
अभय किया था विजय - घोष तुमने ही पहली बार !
उठा सुन जिसे काँप संसार !

तुम्हें क्या वह नालन्दा याद,
निखिल मानव-कुल का अभिमान ;
गया में बोधिवृक्ष के तले
हुआ था जहाँ बुद्ध को ज्ञान !
सकल सुन्दरताओं की खान ;
राजगृह का वह राजोद्यान !

भूल गये क्या अरे, मौर्य वंशों का प्रबल प्रताप ?
कोटि-कोटि कण्ठोद्‌घोषित वह समर-राग - आलाप !
सुरसरि की चंचल लहरों पर धनुषों की टंकार ;
दिग्विजयी नृप चन्द्रगुप्त का वह विभु कीर्त्ति-कलाप !

(८)

यही 'अहिंसा परमो धर्मः' का है जन्मस्थान ;
यहीं कहीं प्रतिध्वनित हुआ था स्मृतियों का कल गान !
अरे, यही थी महावीर की पावन क्रीड़ा-भूमि;
और दिया था कभी इसीने जग को विद्या-दान।
दिखाया था उन्नति-सोपान !

यहीं के तपोवनों से कभी
उठे थे गौतम के उपदेश;
प्रथम-चुम्बित था नभ का भाल,
मुक्ति-पथ के सुवर्ण-सन्देश !
भगाई जन्म-मरण की भीति ;
जरा के दुर्जय कष्ट अशेष !

किन्तु, कहाँ वह देश, आज वह गंगा की शुचि धार ?
था न कहीं लवलेश जहाँ पर दुःख-क्लेश का भार !
वह शिक्षा-गुरु, त्याग-तपस्या का अनुपम उद्देश्य;
जिसकी कीर्ति कथा है गाता सादर वागाधार !

(९)

तुमने देखा है गुप्तों का वह साम्राज्य विशाल;
खेल रहा था जग जब वैभव-लहरी पर उत्ताल !
जिनके एक इशारे पर ही आशंकित, भयभीत;
थर्रा उठते थे पत्रों-से स्वर्ग, नरक, पाताल !
सभय झुक जाता भव का भाल !

लौटती थी जिसके पद-तले
राज्य-लक्ष्मी दासी-सी क्रीत;
कि जिनके सिंहासन के पास
खड़ा रहता था काल सभीत !
गगन में गूँज रहे हैं आज;—
आज भी जिनके गौरव-गीत !
जिनकी छत्रच्छाया में आ कितने देश-नरेश,
एक-एक कर जुटे आर्त्त हो शरणागत, हतवेश !
और किया था आत्म-समर्पण चरणों में जग-वंद्य;
साक्षी है अब तक भी जिसका सुबृहत मगध-प्रदेश !

(१०)

अरे, जहाँ मदमस्त डोलते थे निर्भय मृगराज;
लुण्ठित होते थे धरती पर कितने मणिमय ताज !
वज्रनाद करते थे सौ-सौ केसरियों के झुण्ड;
वहीं देख लो आज शृगालों का अविखंड स्वराज !
हाय, रे कुटिल काल निर्व्याज !
जहाँ कल व्योम - विचुम्बी हर्म्य,
वहीं पर खँडहर आज उजाड़;
जहाँ कल लुटता स्वयं धनेश,
वहीं दुख-दैन्यों की भरमार !
क्षुधा की ज्वाला से लाचार
तड़प मर जाते नर-परिवार ।
और वहीं पर मचा रहे हैं शोर भयानक श्वान;
मड़राते नित शशक - लोमड़ी के समूह नादान !
अरे, कहाँ वे आज तुम्हारी प्रलयंकर हुङ्कार ?
कहाँ, कहाँ वह शक्ति विजयिनी, वह पौरुष, विज्ञान ?

(११)

जरा याद तो करो अरे, सन सत्तावन का काल;
जब कि देश में नाच रही थी नंगी क्रान्ति कराल !
धधक रही थी धक-धक कर सर्वत्र गदर की आग;
तुम भी तो तब कूद पड़े थे ले कर में करवाल !
मचा वैरी-दल में भूचाल !
कटा कर अपना शीश सहर्ष
बुझाई रणचण्डी की प्यास;
रुधिर की धारा से भर गया
तुम्हारे अंचल का आवास !
दिया, कर अजा सुतों की भेंट
भैरवी के मुख पर उल्लास !
इतने पर भी मिटा जालिमों के दिल का न मलाल;
ले आये निज क्रूर करों में दमन - चक्र तत्काल !
भय क्या, तुम भी झूल गये बस, फाँसी पर सानन्द;
और, किया यों उन्नत अपनी जन्मभूमि का भाल !

(१२)

तुम क्या जानो, हममें भी हैं प्रतिहिंसा के भाव;
उमड़ उठा है शताब्दियों का पुनः पुराना घाव !
फड़क उठे नस - नस में बरबस कसक और विद्रोह;
एक उमंग उठी है उसपर मर मिटने का चाव !
और, वलि होने के बर्ताव !
दृगों में अंकित है अद्यापि
पाटलीपुत्र भुवन - विख्यात;
अरुण तरुणों की लीला-भूमि ;
प्रात, वैशाली का सुख - स्नात !
उठा जाती है दिल में टीस
पुरातन की वह बीती बात !
देखो, कहीं न गुम हो जाये आज हमारा होश;
पी विस्मृत - मदिरा हम होवें फिर न कभी खामोश !
जिससे उठें पुनः जीवित हो हम नवयुग में आज;
अपने इन मिट्टी के पुतलों में भर दो वह जोश !

(१३)

उठो, सिराज - मीर के शोणित की ओ बूँद अनन्त !
अपनी इस प्रभात - तन्द्रा का आने दो अब अन्त !
आज, जागरण का मुहूर्त्त, जीवन - ध्वनियों से वज्र
पल में प्रलयंकर - सा तुम भी दो अब गुँजा दिगन्त !
आज, वन - वन में नवल वसंत !
उठो अब तुम भी लोचन खोल,
अरे, ओ अमरों की सन्तान;
पूर्व की सीमा पर स्वर्णाभ—
उषा की मन्द - मधुर मुस्कान !
छिड़ी जग में विहगों की तान,
उठो, आया लो कनक - विहान !

एक बार फिर भैरव - स्वर से तुम कर दो हुङ्कार !
युद्ध - क्षेत्र में आकर तुम साक्रोश उठो ललकार !
फिर देखो, होते हैं कितने कुँअरसिंह बलिदान,
आज तुम्हारे पावन चरणों पर ऐ वीर - विहार !

५२

मेरे जीवन का क्षण प्रतिक्षण
गुन गाता तेरा मन ही मन !
बन जाय भले ही तू निष्ठुर;
हो जाएँ निष्फल भाव प्रचुर !
पर मेरा उर तो प्रेमातुर,
चिर विधुर-विधुर, चिर मधुर-मधुर !
हूँ तुझे निरखता मैं जिस क्षण,
हो जाता प्रमुदित मन ही मन !
तू नभ-शशि, मैं भू का चकोर;
कैसे फिर पहुँचे प्रेम-डोर ?
लख-लख किरणों की ओर, भोर
कर दूँ मैं सारी निशि अगोर !
दर्शन बिन तेरे क्षण प्रतिक्षण
मैं रोता रहता मन ही मन !
इतना सुख, इतना हास-लास,
फैला है मेरे आस - पास;
पर, पा न तुझे सब कुछ उदास-
सा लगता यह वैभव-विलास !
मेरे जीवन का क्षण प्रतिक्षण
गुन गाता तेरा मन ही मन !

५३

जागो, भविष्य के कर्णधार;
सुन लो—नवयुग कहता पुकार!
यह विप्लव का नव प्रात, शान्त;
दिग्चक्र वक्र, विभ्रांत, क्लान्त ।
रे अस्थिशेष, दुर्बल स्वदेश;
कर क्षण भर भी तो दृगोन्मेष !
काटो संकट-पर्वत अपार;
मेरे भविष्य के कर्णधार !

सन्देश आज लाया अतीत,
विस्मृत जीवन का विजय-गीत;
करता विग्रह-विद्रोह कौन ?
गृह में ही क्यों प्रच्छन्न मौन !
रे हार नहीं—यह सुमन-हार;
भावी भारत के कर्णधार !

हाँ, पुनः संघटित, पुनः पीन,
सर्वस्व समर्पित—तपोलीन;
फिर से जीवित, फिर से नवीन,
ठुकरा दिवसों को विगत, दीन;—
जागो, बस, जागो एक बार
हे नव भारत के सूत्रधार !

५४

दिया प्रकाश विमल दीपक ने;
कज्जल दिया नयन - रञ्जन !
घर-भर ही फैला प्रकाश, पर
फैल गया घर - घर अञ्जन !

५५

जागा, हाँ, जागा पुनः रुद्ध;
जीवन का विस्मृत गीत क्रुद्ध !

खुल गया मुक्ति का तुंग द्वार ;
वह स्वर्ण-करों का मधु-प्रसार !
फिर से, हाँ, फिर से झंकृत रे
हो गये हृदय के तार-तार !

चौंका सुन जिनको क्षुब्ध, लुब्ध
मेरा अतीत का गीत रुद्ध !

आई हिल-मिल मादक बयार
कलियों को करती लाड़-प्यार ;
झलकी, वह झलकी एक ज्योति
उज्वल भविष्य के आर-पार !

जगमग-जगमग यौवन प्रबुद्ध !
जागा, रे जागा गीत क्रुद्ध !

कायरता युग-युग की मलीन,
खोई ममता-मति दीन-हीन ;
हिल उठीं जड़ें रे जड़ता की,
आया ज्यों ही झोंका नवीन !

अन्तर में वह्नि के भाव शुद्ध
जागा, ले जागा गीत रुद्ध !

टूटा प्राणों का जटिल ध्यान ;
भावुकता का सुख-स्वप्न-यान !
छिड़ गई भैरवी के स्वर में
लो, महाप्रलय की तीक्ष्ण तान !

हाँ, सर्वनाश का तुमुल युद्ध
जागा, रे जागा पुनः क्रुद्ध !

५६

आज, यदि तू पास होता !
प्राण, तो, मेरे प्रणय का
और ही इतिहास होता !

नयन धो देते पदों को
अश्रु-जल से पंथ-श्रम हर ;
गति हृदय की शून्य-सी
निस्पंद हो जाती निमिष-भर !

मृत्यु में भी नवल-जीवन
का मुझे आभास होता ;
आज, यदि तू पास होता !

हास से सुखमा-सुखों के
मुखर होती विपुल क्षोणी ;
अधर-मधु में घुल व्यथा भी
अमृत बन जाती सलोनी !

श्वास से तेरे विरह-
पावस मिलन-मधुमास होता ;
आज, यदि तू पास होता !

देखते रहते विलोचन
अचल-अपलक प्यार पा कर ;
हास बन जाता अधर पर
वेदना भी उमड़ आ कर !

रुदन अपनापन लुटा कर
मृदु-मलय-वातास होता ;
आज, यदि तू पास होता !

मिलन-मंगल-गीत गाता
पुलक-उर उच्छ्वास मेरा ;

चकित खुल पड़ता प्रभाती-
गान से जग का सबेरा !
उड़ न सकता यह विहग ,
इतना विपुल आकाश होता ;
आज, यदि तू पास होता !
फूल - वन में नाचती
नभ से उतर राका-कुमारी ;
मधुमयी होती धरित्री ,
रसमयी यह सृष्टि सारी !
एक ही सुख-स्वप्न नूतन ,
एक नव-उल्लास होता ;
आज, यदि तू पास होता !

५७

मुख को समझ शिलीमुख
सरसिज लगे प्रेम से मँड़राने !
और समझ कर उषा-अरुणिमा
लगे चकित खग-कुल गाने !
ज्योति-शलभ का पुंज समझ कर
दीप - शिखा जलने आया !
कुमुद - वृन्द राका की प्रिय
शशिकला समझ कर मुसकाया !
किया अमृत के लिये उसी दिन
देवों ने सागर - मंथन !
जिस दिन पहली बार विहँस कर
तूने खोला अवगुन्ठन !

५८

नारी, तुम एक पिपासा हो ;
तुम एक पिपासा हो केवल !
मृग-दल प्रमत्त फिरता वन-वन,
मिलता न किन्तु, जलका लघु-कण;
तृष्णा के मरु-जग में निर्जन
दुस्तर मरीचिका हो चंचल !
तुम एक पिपासा हो केवल !
शलभों का यौवन प्रतिपल-क्षण ,
जलता कर जिसका आलिङ्गन ,
अस्पृश्य रूप का आकर्षण,
वह निर्मम ज्वाला हो उज्ज्वल;
तुम एक पिपासा हो केवल !
अधरों में यदि है अमृत मधुर ,
तो, है पाषाण तुम्हारा उर ;
चरणों में बजता मृदु नूपुर ,
सम्पूर्ण दृगों में तीक्ष्ण गरल ;
तुम एक पिपासा हो केवल !
युग-युग की उत्सुक जिज्ञासा ;
नीरव, अज्ञात, जटिल-भाषा !
विभ्रम, अपूर्ण नर की आशा ;
दुर्बोध साधना हो निष्फल !
तुम एक पिपासा हो केवल!
मानव का सारा ज्ञान विकल ,
तव पद-तल में भुज-बल, कौशल ;
निस्सार अपरिमित जिसका जल,
वह सिन्धु कामना का निस्तल ;
तुम एक पिपासा हो केवल !

सुख का आकाश-कुसुम कोमल ,
कल्पों से कल्पित चित्र सचल ;
इस विश्व-सरोवर में निर्मल
दुष्प्राप्य वासना का उत्पल !
तुम एक पिपासा हो केवल !

५६

नित एक विहग संध्या को ,
जानें न, कहाँ से आकर ?
अपना आवास बनाता
मेरे उर की डाली पर ?
सो रहता रे उन्मन - सा
कल-रव कर सुख से क्षण-भर ;
वह श्रान्त पथिक परदेशी
यौवन की निद्रा से जड़ !
मैं पीड़ा के अंचल से
ढँक देता उसका लघु तन ;
लघु - लघु भावों की लहरें
करतीं उसका आलिङ्गन !
ज्यों - ज्यों गम्भीर निशा रे
होती जाती क्षण, प्रति-क्षण ;
त्यों - त्यों वह कसता जाता
मेरे प्राणों का बन्धन !
मन में वह सिमट समाता
मेरे श्वासों से शीतल ;
वह विहग कभी फैलाता
अपने पंखों को दुर्बल !
मैं प्रगल्भता पर उसकी
पुलकित-सा और चकित-सा ;
मेरे एकाकीपन से वह
मन - ही - मन विस्मित - सा !
मेरी जागृति पर करता
सपना रे अपना निर्मित ;
अज्ञात देश का वासी
वह मेरा अतिथि अपरिचित ।
मैं बेसुध ही रहता जब ,
वह जग पड़ता चिर-सुन्दर ;
रे एक बार उड़ने को
तत्पर तत्काल चहक कर !
अपनी अबोध भाषा में
क्या गाता वह, क्या जानें ?
मेरे निस्सङ्ग हृदय को
किसका सन्देश सुनाने ?
जानें न, कहाँ से आकर
संध्या को नीड बनाता ?
वह एक विहग नित प्रातः
जानें न , कहाँ उड़ जाता ?

६०

थोड़ा-सा भी सुख पाया है
यदि, प्रिय, तुमने जीवन में ;
तो, उसको सम-भाजित कर दो
भूमण्डल के कण - कण में !
दुःख अपरिमित मेरु-सदृश भी
तुम्हें मिला यदि जीवन में ,
तो, सदैव वाडव - सा उसको
रखो छिपा कर ही मन में !

लघुता की इच्छा

(१)

'तुम्हें चाहिये क्या हे सागर ?'
'प्रभो, मुझे लघुतम कर दो ;
इस अपार महिमा को मेरे
एक बूँद जल में भर दो !

एक बूँद जल, जिसको पा कर
इतना बड़ा हुआ हूँ मैं ;
एक बूँद जल, जिसको ले कर
जग में खड़ा हुआ हूँ मैं !

निष्फल यह जल-राशि, किसी की
जिससे कभी न प्यास मिटी ,

जीवित ही जैसे पृथ्वी पर
मृत-सा पड़ा हुआ हूँ मैं !

किसी तृषार्त्त कण्ठ में पहुँचूँ
एक बूँद बन कर—वर दो ;
जीवन सफल बने यह मेरा ;
प्रभो, मुझे लघुतम कर दो !'

(२)

'तुम्हें चाहिये क्या हे कानन ?'
'देव, मुझे मधुकण कर दो ;
मेरे मानस का सारा रस
एक फूल में ही भर दो !

एक फूल, जिसका सौरभ ले
उर में आज चला हूँ मैं ;
एक फूल, जिसके कारण
शूलों पर हाय, पला हूँ मैं !

यह अशेष वन-राजि विफल,
जिससे न किसी का हुआ भला ;

हो-हो हरा ग्रीष्म-पावस में
सौ-सौ बार जला हूँ मैं !

किसी देवता की पूजा में
कभी निवेदित हो—वर दो ;
मुक्ति-लाभ कर पाये जीवन ;
देव, मुझे मधुकण कर दो !'

(३)

'तुम्हें चाहिये क्या हे अम्बर ?'
'नाथ, मुझे सीमित कर दो ;
इस अशेष संसृति को मेरे
एक क्षुद्र घट में भर दो !

एक क्षुद्र घट, जिसे गँवा कर
चिर-दिग्भ्रान्त बना हूँ मैं ;
एक क्षुद्र घट, समा न जिसमें
निर्जर-प्रान्त बना हूँ मैं !

अन्तरिक्ष वह व्यर्थ, विश्व के
लिये जहाँ पर स्थान नहीं ;

महा - शून्य संसार-चक्र में
पिस कर श्रान्त बना हूँ मैं !

किसी मार्ग के खोये धन को
अन्तर में रख लूँ—वर दो ;
काम कभी आ सकूँ किसी के ;
नाथ, मुझे सीमित कर दो !'

चातकी

(१)

अरी, कौन तुम प्रेम-योगिनी ? कौन मौन-मन कानन में ?
द्रवीभूत कर दिया तुहिन-सा मेरा मानस-तल क्षण में !
अहा कहा क्या सजनि, पी कहाँ? हाय पी कहाँ ? पिया कहाँ ?
पगली री, मैं क्या बतलाऊँ—खोज रहीं तुम किसे यहाँ ?
कौन तुम्हारा पिया ? कहाँ वह ? कैसा उसका वज्र-हिया ?
वनवासिनि, कब किसने तुमको, यों प्रियतम का पता दिया ?

(२)

आया नव ऋतुराज निराला आज साज षोडश श्रृङ्गार !
सहकारों ने किया निधारण मंजरियों का वन्दनवार !
राशि-राशि लद गई फलों से आली, महुओं की डाली !
वन-वन में बहार बन निर्भय विचरण करता वनमाली !
इस उत्सव में, राग - रङ्ग में, चहल-पहल, कोलाहल में ;
बाले, एक तुम्हीं हतभागी रतिपति के क्रीड़ा-स्थल में !

(३)

अन्तर की प्रज्वलित वह्नि से जब व्याकुल तुम होती हो !
बैठ किसी कोने में तरु के तार स्वरों से रोती हो !
मेरे उर के वरुणालय में करुणामृत बरसाती हो !
ये आँसू हैं अथवा मोती ? तुम रोती या गाती हो ?
जान चुका सजनी, अब जग ; बस, रहने दो रोना अपना !
अरी बावरी, तुम रो - रो कर करो न मेरा सुख सपना !

(४)

फागुन की उन्मादमयी इस दुनिया में सखि, मस्तानी—
कहो न अपनी दर्द - भरी तुम कसक-कहानी दीवानी !
यहाँ जुड़ा है आज रँगीले अलबेलों का ही मेला !
करते फाग-धमार खेलनेवाले नित रेलमपेला !
इस बेला में—इस मेला में, घड़ियों में प्यारी न्यारी ;
कौन सुनेगा आज तुम्हारी क्रन्दन - ध्वनियाँ सुकुमारी !

(५)

होली के हुरदङ्ग - दङ्ग में पी कर अरमानों की भङ्ग—
आज बना हूँ मैं प्रमत्त, नयनों में चढ़ा नशे का रङ्ग !
ढालूँगा शीराजी—मिसरी रव मत घोलो, चाह नहीं !
मत पूछो जीने - मरने की बात; आह, परवाह नहीं !
मुसकाओ मतवाली, बरसों - बाद; न बरसो आज अजान !
तुमुल-नाद में झाँझ - डफों के होगी व्यर्थ तुम्हारी तान !

(६)

हँसो—हँसेगा तुरत तुम्हारे साथ हँसी का जग सारा !
एकाकिनी बहाना होगा किन्तु, यहाँ पर जल - धारा !
परम्परा सखि, यही विश्व की ; कहते इसको ही संसार !
यों ही क्या कुछ कम दुख जग में ? अश्रु-वेदना-पारावार !
अरी, जरा चुप रहो; न झुलसे फूली - सी यह फुलवारी !
बोलो मत आँसू की बोली ; शपथ तुम्हें मेरी प्यारी !

(७)

यह जग-दर्पण-सा ; देखोगी इसमें अपनी ही छाया !
भावों का प्रतिविम्ब; नहीं कुछ मूक मुकुर की है माया !
तुम रोतीं उस ओर—और हम इधर अहा, सुख उत्सव-मग्न ;
मायामयि, क्यों आज तुम्हारा हृदय काच-सा होता भग्न ?
समझ रहा मैं सब कुछ ; फिर भी बेहोशी है—क्षमा करो !
उद्वेलित उर की उबाल में मत हिम-शीतल सिसक भरो !

६३

यह वसन्त है या जागी मेरी अपनी ही तरुणाई ?
पुष्पों का यौवन है आया ;
रूप, गन्ध, रस का जग छाया !
मंजरियों का मृदु सौरभ-मधु
तरु से कोकिल का स्वर लाया !
मलयानिल है या मेरी अज्ञात-प्रिया की अँगड़ाई ?
लो, खिल गये द्रुमों के प्रतिदल ,
विहगों का कल-कलरव कोमल ;
अपने ही प्राणों के मद से
कस्तूरी-मृग मन का चंचल !
हँस मेरे जीवन की कलिके ! पगली, तू क्यों कुम्हलाई?

६४

माधव-निशीथ का यह समीर;
जानें, किस पीड़ा से उन्मन ?
जानें, किस चिन्ता से अधीर ?

यह चाँद किसी जादूगर-सा
जग पर प्रभाव निज रहा डाल;
चाँदनी स्वप्न से भरी हुई ;
जैसे हो जीवित इन्द्रजाल !
कल-रव किस रूपवती का यह
आता सुदूर से हृदय चीर ?
माधव-निशीथ का यह समीर !

शव-सा निश्चल, निस्पन्द जगत;
दिन का कोलाहल-कर्म श्रान्त !
जड़-से विमूक, निश्चिन्त, शिथिल,
पृथिवी-तल का प्रत्येक प्रान्त !
कर रहा सजल मेरा मानस
किसके नयनों का अश्रु-नीर ?
माधव-निशीथ का यह समीर !

मेरे अन्तर में जिस प्रकार
है सजग किसी का रूप कान्त;
इस निर्जनता को भेद रहा
वन का कोई पत्ती अशान्त !
यह स्पर्श किसी का मधुर-मधुर;
रोमांचित-सा सारा शरीर !
माधव-निशीथ का यह समीर !

चंचल हो जाते हैं पल्लव;
मिलनातुर हो उठती तरङ्ग !
बजता कीचक का मुरली-रव;
सौन्दर्य-स्वराहत मैं भुजङ्ग !
कल-कल स्मृति की लघु-लहरों से
जीवन-सरिता का विकल तीर;
माधव-निशीथ का यह समीर !

शत-शत कण्ठों का एक कण्ठ;
शत-शत श्वासों का एक श्वास !
एकान्त क्षितिज की सीमा पर
यह व्योम-धरा का बाहु-पाश !
कर में कल-कल्पित केश-गुच्छ;
ज्यों, सौरभ से शीतल समीर !
माधव-निशीथ का यह समीर !

६५

जानें, किस सुख से पारा-सा
मेरा हृदय सिहरता ?
यह जग के जीवन-तल पर
ढुलका-ढुलका-सा पड़ता !
किसकी करुणा की किरणें
मुझको छू देतीं सहसा ?
मैं घूम रहा हूँ निशि-दिन
किस रूप-परिधि में ग्रह-सा !

मेरी पीड़ा से परिचित
वह कौन वियोगी-सा है ?
मेरा मन जिसकी स्मृति में
रहता नित रोगी-सा है !
विस्मय-विमूढ़-सा किसकी
मिथ्या पद-ध्वनि पर चंचल ?
छाया कोलाहल श्रुति में
किसके नूपुर का कोमल ?

विजना

अगुरु-विपिन में रुरुओं का गुरु भीरु विचारु विहार !
मलय-प्रवाहित, रभस-विभासित मृगमद का संचार !
अमलिन नलिनाकर - पुलिनों पर मधुकर के गुंजार !
क्या न तुम्हारे उर में करते अभिनव प्रेम - प्रसार ?

तमीभूत नीहारावृत सहरजनी में, उस पार,
चिर-वियुक्त प्रिय चक्रवाक - मिथुनों का हाहाकार,
चढ़ तुषारवर्षी हिमकर की किरणों पर अनुदार,
छू लेता है क्या न तुम्हारे अन्तरतर के तार ?

सजा मदन - तोरण पर मंजरियों का वन्दनवार
करते जब वन - वन में वितरित सौरभ का सहकार,
अमृतावरज, सुदूरागत मधु—मुरली की झंकार
क्या न गूँजती मृदुल तुम्हारे कानों में प्रतिबार ?

नूपुर - ध्वनि, हिन्दोल - प्रगति पर कर लय का प्रस्तार
जब शत - शत कलकंठ उठाते मादक, मधुर मलार !
प्रोषितपतिका - सी विरहानल - दग्ध, शयित साभार
उठ कर क्या न किसी परदेसी का करतीं सत्कार ?

हिला मृणाल, खिला नद, नालों को कर एकाकार,
आता वाष्पाकुल वर्षा का प्रथम - प्रथम आसार !
पुरवा के झोंकों में उठते केकी - भेक पुकार !
क्या न तुम्हारे जीवन में तब उठता दारुण ज्वार ?

छिपा प्रेयसी को अपने कल उज्वल पंख पसार,
कपीतनों की छाया में करते कपोत अभिसार !
किसी अगम अज्ञात वेदनाहत हो बारम्बार,
हिल उठते हैं क्या न तुम्हारे तब एकान्त - विचार ?

सह न पल्लवों के जब विह्वल अधरों का सम्भार,
नत हो जातीं केलिकला - रत वल्लरियाँ सुकुमार !
तरल तरङ्गों के इंगित पर खोल हृदय का द्वार,
क्या न कभी तुमसे आ कोई जतला जाता प्यार ?

खा शीतल दक्षिण - मारुत का कोमल मन्द प्रहार,
लिपट ललित लतिकाएँ जातीं तरु से किसी प्रकार !
शून्य दृगों में कभी तुम्हारे सुधबुध सभी बिसार,
खिल उठती तब क्या न किसी की मंजुल छवि साकार ?

स्पर्शाकुल, आतुर प्रियतम के कररुह - क्षत उपहार,
उमड़ा देते छुईमुई के उर में लाज अपार !
कर तब स्मरण किसी सहृदय की खीझ - भरी मनुहार,
क्या न ढुलक आते कपोल पर अश्रु - बिन्दु दो - चार ?

शेफाली - वन - श्री सुहासिनी, मन्दारों का हार,
बेले का मेला, चीना का नित्य नवीनाचार;
सरिता के चंचल वक्षस्थल पर रति - सीकर स्फार
करते क्या न तुम्हारा निर्जन - नन्दित मनोविकार ?

६७

जलते रहे रात भर विरही
तारों के जो दीप-शलभ ,
और रहा जगमग करता
जिनकी आभा से सारा नभ !

जानें, किस प्रेमी प्रदीप की
विकल प्रतीक्षा में अब तक ?
लो, देखो जल गया पूर्व के
अम्बर में रवि का दीपक !

निकल-निकल कर अन्धकार
के विवरों से शलभों का वर्ग ,
एक-एक कर आया जलने ,
करने प्राणों का उत्सर्ग ?

और, निमिष में सारा नभ
हो गया शून्य, भूतल विपन्न;
बढ़ चला और भी प्रोज्वल हो
हँसता सुख से दीपक प्रसन्न !

६८

फिर घिर आये मेघ तुम्हारी याद लिये !
तड़प उठी फिर बिजली एक विषाद लिये !

यह घटा तुम्हारे बालों - सी छाई है !
यह हवा तुम्हारे श्वासों - सी आई है !
छलका यह किसके यौवन का मधु-प्याला ?
इतनी मस्ती जो उठा यहाँ लाई है !

मैं बैठा हूँ जीवन में उन्माद लिये !
ये घिर आये मेघ तुम्हारी याद लिये !

इस बदली के दिन में चुप के तुम आईं !
सपने में भी, बोलो तो, क्यों शरमाईं !
बूँदें जो दो—चार पड़ीं चू नभ से,
लो, देखो, तत्क्षण ये आँखें भर आईं !

ये गगन-गगन में कम्पन और निनाद लिये !
फिर घिर आये मेघ तुम्हारी याद लिये !

दुनिया में बरसात, यहाँ घर जलता !
मेरे दिल को कोई निर्मोह मसलता !
बेहोश बना जो छीन रहीं स्मृति अपनी,
इतना भी मेरा सुख तुमको क्या खलता ?

मैं कहाँ तुम्हें ढूँढूँगा अपवाद लिये ?
ये घिर आये मेघ तुम्हारी याद लिये !

मुरझे प्राणों का पुष्प खिला हैं जाते !
प्यासी दुनिया को अमृत पिला हैं जाते !
मैं भूल न जाऊँ निष्ठुरता तव जिससे,
प्रति वर्ष मेघ ये याद दिला हैं जाते !

तुम दूर हँसी अपना चिर-आह्लाद लिये !
ये रोते हैं मेघ तुम्हारी याद लिये !

६९

कैसे इस तम में तुम जाओगे प्रियतम ?
बीती रजनी न अभी ममता की निर्मम !
यह निशीथ का समीर ;
चंचल, मादक, अधीर !
पुलकाकुल जीवन-वन स्वप्नों से अनुपम !
कैसे इस तम में तुम जाओगे प्रियतम ?

शान्त हो न पाई प्रिय, हृदय-दीप-ज्वाला;
निष्फल ही होगी क्या अश्रु - मुकुल-माला?
कोमल वय, काल क्रूर;
खींचो मत, हो न दूर
युग-तन से तृष्णा का यह दुकूल काला !
शान्त हो न पाई प्रिय, हृदय-दीप-ज्वाला !

खोलो मत वातायन, अन्धकार - माया !
होगा गृह-दीपक भी लुप्त, शून्य छाया !
रजनी यह म्लान-मुखी ;
जिसमें चिर-अज्ञ सुखी !
बन्धन से हीन करो तुम न प्राण-काया ;
खोलो मत वातायन, अन्धकार - माया !

पूर्व में उगा विवेक का न एक तारा ;
माया में खोया-सा सोया जग सारा !
विशिथिल कर बाहु-पाश,
श्वास-सुरभि, चपल हास;
तोड़ोगे किस प्रकार मोह-तिमिर-कारा ?
पूर्व में उगा विवेक का न एक तारा !

छोड़ो हठ, रात्रि अभी शेष प्रीति-भाजन;
होने दो ऊषा का मंगल - नीराजन !

तरु-तरु पर कूजन नव ;
गृह-गृह में पूजन-रव !
चिर-दिन पर आये इस घर में तुम साजन !
छोड़ो हठ, रात्रि अभी शेष प्रीति-भाजन !

७०

प्रेयसि निशिगन्धे, हृदय खोल ;
इस प्रणय - वीथि में ऋतुपति की
होगा सखि, तेरा आज मोल !
प्रेयसि निशिगन्धे, हृदय खोल !

भर गया विश्व - उर का उपवन
मधु - सौरभ से संध्या - समीर ;
पल्लव - पल्लव से छलक रही
नव - उत्सव - सुख - लहरी अधीर !
लो, जगा वेणु-रव वन - वन में
अभिनव वसन्त का ललित-लोल ;
प्रेयसि निशिगन्धे, हृदय खोल !

यह विमल शर्वरी, मधु-निशीथ ;
तिरता नभ में राका - प्रवाल !
सपनों के फूलों से कोमल
लद-लद जाता जग का मृणाल !
आ भर दे मधुवन में गुंजन,
चुम्बन के मुकुलों से कपोल ;
प्रेयसि निशिगन्धे, हृदय खोल !

निर्जन मानस के तट पर तू
सखि, जगा वासना की हिलोर ;
अपने नूपुर की प्रतिध्वनि से
कर दे मेरा मृदु उर विभोर !
बेसुध इच्छा की लहरों में
बह - बह जाये सारा खगोल ;
प्रेयसि निशिगन्धे, हृदय खोल !

मेरी उत्कण्ठा आज प्रबल,
सिहरी न कामना की बयार ;
तू छू दे अपनी चितवन से,
जग जाय किन्नरों का विहार !
कूके पिक उधर निकुंजों में,
तू इधर प्यार से विहँस बोल ;
प्रेयसि निशिगन्धे, हृदय खोल !

जाग्रत कर अधरों पर कम्पन,
तन्द्रिल नयनों में सुख-तरंग ;
तू जगा कुंज-वन में स्पन्दन,
अन्तर में मधु - उत्सव - तरंग !
आ, चपल-नृत्य कर, लीला कर,
डाली-डाली पर, मंजु डोल ;
प्रेयसि निशिगन्धे, हृदय खोल !

मेरे उर पर लहराये सखि,
तेरे पराग का केश - पाश ;
तू सजा सुरभि से शयन - कक्ष,
भर दे मधु से मेरा निवास !
मेरे गवाक्ष से उतर मन्द,
रँग किसलय-तनु, मृदु रंग घोल ;
प्रेयसि निशिगन्धे, हृदय खोल !

हिरण्यमयी

हुई प्रकृति के साथ धरा पर एक बार ही तुम अवतीर्ण ;
भरती हो अब भी मादकता जरा - जड़ित नयनों में जीर्ण !
स्पन्दित हो उर-उर में आशा—अभिलाषा-सी, तृष्णा-सी,
विकल विश्व के मधु-अधरों पर सजग, चुम्बनों की प्यासी !

जैसे पतझड़ के पीले पत्रों की मर्मर - शय्या पर
तुम अपने वनान्त - रोदन से पिघला देती हो स्तर - स्तर ;
वैसे ही वसन्त के यौवन - वन में छेड़ मोहिनी तान
अणु-अणु में उँड़ेल देतीं, सखि,राशि राशि जीवन मद प्राण !

विलसित साँध्य-गगन-मण्डल पर अलसित-वदना गोधूली
अतिरञ्जित घन के प्राणों में व्यञ्जित करती जब तूली,
तुम निर्वाणोन्मुख दिनमणि के किरण-करों से करुण-उदास
लिख जाती हो पद्म - पलाशों पर गत वासर का इतिहास ।

तड़िल्लता में तुम सुहासिनी विहँस मन्द, कर मधुरालाप
खिल कर फिर मुरझा जाती हो इन्द्रचाप सी अपने आप !
तृण-तृण के चिर विधुर हृदय में भर अनन्त उन्मद वेदन—
अयि रहस्यमयि ! किस रहस्य का करती हो नितगति भेदन ?

युग-युग में ऋतु-ऋतु में नन्दन-कानन से अविराम, अकाम
अधःपतित हो चूर्ण - तूर्ण ताराओं - सी विह्वल, उद्दाम—
सजनि, टूट पड़ती हो किन आशाओं से पृथिवी की ओर
वज्रपात - सी धसक धरा में छूने किस अछोर का छोर ?

जवाकुसुम, चम्पक, शेफाली, अमर - वेलियों में सुकुमार
चलता दिनभर, रजनीभर तव दीपमालिका-सा अभिसार !
व्रतति-प्रतति में,गति-यति में कर प्रथम मिलन का मुकुल-विकास
फूट रहा शत - शत हासों में, सजनि, तुम्हारा ही उल्लास !

रागों में अनुरागों में तुम; तुम स्मिति-रोदन, वर-अभिशाप !
तुम पीयूष-गरल; शीतलता जल में, ज्वाला में उत्ताप !
निखिल जगत के रोम-रोम में जाग्रत होम-पूत पवमान ,
गाती हो गम्भीर गिराओं में किसकी महिमा के गान ?

कुहू शर्वरी की तनिमा में नित्य उर्वरी माया - सी
तुम विश्रान्त, शान्त हो क्षणभर छिप जाती हो छाया-सी !

स्वर्ण वर्ण नव-विभा-विभासित प्राची मन्दिर में सुन्दर
पुनः प्रकट होती हो ऊषा के मणिमय सिंहासन पर !

युवती के कपोल पर व्रीड़ा में करती कुछ क्रीड़ा-सी,
जगती हो अनङ्ग के अन्तर में उत्सुकता—पीड़ा-सी !
वनमाली के पीताम्बर पर पुलकित होतीं क्षण-प्रतिक्षण
मानवती ब्रजबाला के माधवमय उर का कर चित्रण !

पहन क्षितिज-माला ग्रीवा में गर्वोन्नत, सागर के पार
किसकी मिलनोत्कण्ठा में करती हो यौवन का प्रस्तार !
टेक रहा संसार तुम्हारे चरणों पर मस्तक अपना।
किन्तु कहाँ होता, प्रेयसि, प्रतिफलित हाय उसका सपना !

सरस स्नेहवर्षिणी तुम्हारी विनत दृष्टियों पर सुन्दर
कर देगा सर्वस्व समर्पित भूप - रङ्क, कवि-योगीश्वर !
ज्ञान - ध्यान - विज्ञान साधना, प्रणय-अर्चना, पूजा, मान
लोक-लोक में है त्रिलोक - सुन्दरी, तुम्हारा ही आख्यान !

दशों दिशाओं में विकसित है, सजनि, तुम्हारी मृदु मुसकान,
जन्म मरण—प्रति उपकरणों में करतीं गीति-गन्ध रस दान!
खोज रहे रुचिमान कल्पना के पर फैला भाव अजान ,
सुन्दरि, भुवन-भुवन में दीपित मधुर तुम्हारा छवि-उपमान!

मायामयि, एकान्त शून्य-सा अचल तुम्हारा रहे सुहाग ;
आँगन में मेरे कवि के भी छितरा दो कुछ विमल पराग !
करती रहो सदा यों ही तुम नृत्य अरी, अलबेली-सी ;
बनी रहो सुकुमारि ! विश्व के लिए सदैव पहेली-सी।

७२

कहा सदर्प रमा ने—इतने
धृष्ट तुम्हारे सेवक क्यों ?
तुम्हें दिया वाहन मराल का ;
मुझे असुन्दर पेचक क्यों ?

'देवि !' शारदा हँस कर बोली—
'तुम्हीं स्वयं 'इसके कारण !
धनिक किया अपने दासों को ,
मेरे भक्तों को निर्धन !'

७३

सपने में कर लेता दर्शन ;
पलकों के लगते ही सम्मुख
तू समूर्त हो उठता तत्क्षण !
जागृति में जो कुछ दुर्लभ था ,
सुलभ नहीं था, पार करे पथ ;
यह असीम जो ज्योतिर्नभ था !
अब तो खिँच दीपक ही आया
स्वयं शलभ पर होने अर्पण !
अनायास तू आ जाता है ;
मैं सुनता हूँ तेरा कलरव ,
तू हँसता है, मुसकाता है !
मुझको बाँहों में भर लेता ,
कर लेता मेरा आलिङ्गन !
उड़ अनन्त आनन्द-गगन में ;
हम ज्यों ही उन्मुक्त पहुँचते ,
सुख के सीमाहीन मिलन में ,
कौन तोड़ देता है निष्ठुर
अकस्मात मेरा भुज-बन्धन !
इतनी भी तेरी करुणा है
और नहीं तो चरण-धूलि भी
मिली किसीको,यह न सुना है !
इतना भी अधिकार न, जो मैं
छू ही लूँ तेरा सिंहासन !
इसमें क्या तेरा अनुशासन ?
तेरी लज्जा रह जाती है ,
रह जाता तेरा अवगुन्ठन !
तेरा ध्यान मुझे आता है ,
कर लेता हूँ तेरा चिन्तन !
मैं अवाक-सा , तू नत-लोचन ;
हो जाते व्यतीत बेसुध ही ,
प्रणय-मिलन के वे दो लघुक्षण!
इतना भी अवकाश नहीं जो ,
कर सकता तेरा पद-पूजन !
एक बार मैं तुझको पाऊँ ;
निद्रा में ही यदि आकर्षण,
तो चिर-निद्रा में सो जाऊँ ।
जिससे फिर न कभी हो तुझसे
जीवन में वियोग का वेदन !

७४

उलझीं मन की पाँखें मधु में ,
आज नींद से माती आँखें !
झुक-झुक पड़तीं पलकें बरबस ;
देह शिथिल, रोओं में आलस !
बढ़-बढ़ आतीं बेसुध बाँहें ,
सपनों से अकुलाती आँखें !
अंग-अंग में अँगड़ाई है ;
जानें, सुध किसकी आई है !
लाल-लाल, यौवन के मद से
मीना-सी, शरमाती आँखें !

७५

इस सुनसान विजन मरघट में
सिसक-सिसक तू क्यों रोती है ?

कौन चिता पर वह सोया है ?
क्या तेरा कोई खोया है ?
तेरे संग विकल कल-कल कर
सरिता का यह तट रोया है !

आँसू पोंछ, भाग्य ले अपना,
चल, अधीर तू क्यों होती है ?

अरी अभागिनि, यह मरघट है ;
घाट - घाट में अकुलाहट है !
चट - चट करती ज्वाला, आती
कहीं न कोई भी आहट है !

लाल लुटा कर अब भर लाती
आँखों में तू क्यों मोती है ?

रोते या आनन्द मनाते,
जल्दी - जल्दी पैर बढ़ाते,
देख, इधर आते हैं जो सब,
कुछ खोने को ही तो आते !

इस प्रकार दुनिया में, पगली,
तू न अकेली ही खोती है !

शाम हुई अब, तम छाता है,
पंछी नीड़ों में जाता है !
थका बटोही, अपने घर को
दूर देख कर घबराता है !

चल माँ, चल तू, यह दुनिया ही
बेसुध मरघट में सोती है !

तू किसकी चिन्ता करती है ?
आत्मा जो, न कभी मरती है,
हम मृत्युञ्जय वीर, अमृत वे,
मृत्यु स्वयं जिससे डरती है !

सुन, तेरे आँगन में कैसी
यह कल-कल जय-ध्वनि होती है !

कवि-प्रिया

मैं कवि हूँ; रूपसि, यह तेरी रूप - माधुरी की माया !
तू छवि, मैं नित पार्श्ववर्त्तिनी तेरी मोहमयी छाया !
मैं असहाय, करूँ क्या अंकित ? तू ही इंगित कर देती ;
तूली पकड़ चाहती जैसा मुझसे चित्र खिँचा लेती !
वीणापाणि - सदृश तू बैठी रहती मेरी वाणी पर !
स्वेच्छा के अनुसार विपञ्ची में रसना की, भरती स्वर !
मैं मौलिकता - हीन ; अमौलिक प्रेयसि, काव्य-कला मेरी !
शब्द - शब्द से, वर्ण - वर्ण से छलक रही ममता तेरी !
तेरी ही करुणा के जल से सिंचित स्नेह - लता मेरी !
अमर बनी तेरा जीवन - रस पी कर भावुकता मेरी !
यह प्रवाह, उद्वेग, मधुरता, भाव, कल्पना, कौतूहल ;
छल - छल करती सबमें तेरी प्रतिभा की धारा उज्वल !
तू सविता अमिताभ; सजनि, कविता मेरी निर्मल दर्पण ;
तेरा ही आलोक लोक को करता शोक - रहित अर्पण !
इतने मधुर बने हैं तेरे ही दर्शन से मेरे क्षण !
तू करती है प्रेम—इसीसे तो पाया यह आकर्षण !
चलते-चलते चमक, मचल कर पद - पद पर चलने वाली;
एक - एक अक्षर से विम्बित तेरे पद - नख की लाली !
तेरा ही कौशल है, यह जो मैंने यश - आदर पाया !
मैं कवि हूँ—यह भी तेरी ही रूप - माधुरी की माया !

७७

आया आज सरस - निर्वात,
यह शारद का विमल प्रभात ;
उठो प्रिये, मृदु लोचन खोलो;
आओ, जीवन - जागे पर
एक गीत गा लो तुम भी !

हुआ विश्व में कोलाहल ;
मचा चतुर्दिक चल - हलचल !
प्रिये, पढ़ा लो पिँजड़े के इस
तोते को प्रिय - पाठ अमर ;
प्रेम - मन्त्र पा लो तुम भी !

दादा गये दूर - परदेश,
प्रिये, खींच लाओ वह वेश !
आज शरत की सुषमा में यह
घर - घर कैसा मधु - गायन ?
आगमनी का स्वर उन्मन !

लोट - लोट - से पड़ते धान ;
किन्तु, विकल क्यों मेरे प्राण ?
कह दो अपने भैया से सखि,
आज न जायें हल लेकर
खेतों में, आया अगहन !

व्याकुल हरसिँगार का वास
उर में भर - भर रहा हुलास ;
आओ, एक गीत ही गा कर ;
मुझे भुला दो मेरे स्वर;
फूट पड़े, लो अगहन-धान !

गा रे तोता, प्रेम - पिरीत,
मेरे दादा का संगीत !
किसके लिये चलाऊँ चक्की,
पीसूँ आँटा करुणाकर,
और, पकाऊँ मैं पकवान !

७८

यह विरह का वेश है ;
प्राण, तुम सुख से रहो,
मुझको न कोई क्लेश है !

भूल मैं जग को गई उस दिन तुम्हारा प्यार पा ;
तुम मुझे ही भूल जाना अब बिदा का गीत गा !
विश्व के अनुकूल हो,
अन्तिम यही सन्देश है ;
यह विरह का वेश है !

पर्ण - गृह में वास करती आज वल्कल - धारिणी ;
हर्म्य-सुख को त्याग कर मैं कुटिल वन - पथ - चारिणी !
मुक्त जीवन, मुक्त यौवन,
मुक्त मेरा केश है ;
यह विरह का वेश है !

हास से मेरे समाती प्रिय, न फूली मालती ;
मैं विरह की सेज पर उन्माद अपना पालती !
ओस मेरे अश्रु, बादल
वेदना - उन्मेष है ;
यह विरह का वेश है !

जो तुम्हें दुर्लभ जगत में हाय, ऐसा सुख न हो ;
याद से मेरी कभी तुमको सलोने, दुख न हो !
जल चुके ये प्राण, केवल
स्मृति तुम्हारी शेष है ;
यह विरह का वेश है !

७६

काँप रही है गन्ध अभी से कलिका के प्राणों के भीतर !
बिन - रंजन अधरों पर लाली,
अलस-निमीलित, बिन-काजल ही
गोरी की आँखें हैं काली !
मँड़राते हैं, किन्तु, पास आ-आ कर रुक जाते हैं मधुकर !
छिपा मुग्ध मन में पराग है !
अरुण कपोलों पर विस्मय-सा
वक्षस्थल में भरी आग है !
छूते ही जल जाती उँगली, वह दीपक की लौ-सी सुन्दर !
प्रेमी फिर भी आ जाते हैं;
मधु के लोभी, झूम - झूम कर
रस के गीत सुना जाते हैं !
आलिङ्गन करने को आतुर पवन द्वार पर व्याकुल, थरथर !
कब आवेगा पागल यौवन;
कब सौरभ की एक लहर ही
कर देगी वन - वन को उन्मन !

×

हट जावेगा यह अवगुन्ठन,
खुल जावेंगे दोनों लोचन,
कलिका में ही इतना मद, तो
कैसा होगा वह दिन, वह क्षण !
फूट पड़ेंगे जब अन्तर से रस के श्रोत, अमृत के निर्झर !

८०

युग युग से जो तुम नीरव हो; क्या इसमें कोई रहस्य है ?
आता है सन्देश तुम्हारा,
कभी कभी मेघों के द्वारा,
मन का दीपक जल उठता है,
जल उठता ज्यों संध्या - तारा !
तुम देते जो मूक निमंत्रण, गूढ़ भेद इसमें अवश्य है !
मैं आकुल, तुम रहे निरुत्तर !
मौन - भङ्ग कब होगा प्रियवर ?
जब तब मैं शंकित हो उठता,
क्या सचमुच ही तुम हो पत्थर ?
यह कैसा एकान्त - वास प्रिय, यह कैसा चिर मदालस्य है ?

८१

मुझको तेरा प्यार मिला, जब आई हैं घड़ियाँ चलने की !
तड़पाया तूने जीवन - भर,
पाया कभी न तुझसे कण - भर !
अब आया है तू निष्ठुर, जब
रुक न हाय, मैं सकता क्षण - भर !
हँस ले तू मेरे आँसू पर, वेला यह न आज टलने की !
मुझे मौत ललकार रही है;
मेरी हिम्मत हार रही है !
मेरे रोम - रोम में तेरी
पग - पायल झनकार रही है !
तेरा दिल ठंढा होता हो, तो न सोच मेरे जलने की !
मैंने तेरा कुछ न लिया है;
प्रेम - सुधा का घूँट पिया है !
मैंने देखा सपने में, ज्यों
तूने मुझको याद किया है !
मैं न अगर आता, तो सचमुच क्या न बात होती खलने की ?

वसन्त और ग्रीष्म

चीख उठी कोयल वनरानी, गिरी धरा पर मधु - बाला;
रुके गान वनदेवी के, द्रुत पतित हुई भू पर माला !
चमकी विद्युत-द्युति अम्बर में, सुलगी ज्यों दाहक ज्वाला;
भाग चले तज नीड़ पपीहे, पड़ा मयूरों पर पाला !
आग लगी ऋतुपति के वन में, कोई भी ऐसा न मिला;
जलते पर जो जल बरसा दे, जले हुए को पुनः जिला !
भस्म हुई फूलों की दुनिया, राख बना मधुवन सारा,
जल-जल उठीं डालियाँ तरु की, मधुकर का जीवन प्यारा !
सूखे श्रोत तरंगी के भी, निर्झरिणी की जल-धारा;
वसुधा ने खोई हरीतिमा, दूर्वा ने दृग का तारा !
यह वसन्त की जलन देख कर किसे न होती आशंका !
अरे, बचाओ तो कोई भी, जलती सोने की लंका !
जाओ बन्धु, बिदा लो जग से आज साश्रु - लोचन मींचे !
कहीं तुम्हारा आश्रय होगा तरु-अशोक-वन के नीचे !
सागर तो दुर्जेय पड़ा है, किन्तु कौन भर कर सींचे ?
जलती फूलों का पंखुड़ियाँ कोमल, कौन पकड़ खींचे ?
सखे, दशानन की नगरी में हरा न कोई झील बचा !
भक्त - बिभीषण सा लंका में केवल एक करील बचा

८३

ढल रहा प्रतिक्षण गगन से
ज्योति का दिनमान हे प्रिय;
आज, ऋतुपति - कंठ से
गाओ न गौरव-गान हे प्रिय !

यह विजन गोधूलि-वेला, लुट चुका आनन्द मेरा ;
लुप रही जानें कहाँ, पी मधुकरी मकरन्द मेरा !

कुमुद - वन में ला सकोगे
क्या रजत-मुस्कान हे प्रिय ?
ढल रहा प्रतिक्षण गगन से
ज्योति का दिनमान हे प्रिय !

कौमुदी की यह न महिमा, कोकिला बेपीर बोली ;
प्राण-तरु की डालियों पर चिर-अमा को चीर बोली !

कर रहा विह्वल किसीका
स्नेह - स्वर - संधान हे प्रिय ;
आज, ऋतुपति - कंठ से
गाओ न गौरव-गान हे प्रिय !

हँस पड़ीं कुछ यों दिशाएँ, विश्व यों कुछ मुसकिराया ;
कण्टकित पल्लव-प्रतनु यह, उमड़ दृग में अश्रु आया !

कह रहा वह एक तारा ,
सुन, हृदय सुनसान हे प्रिय ;
ढल रहा प्रतिक्षण गगन से
ज्योति का दिनमान हे प्रिय !

सांध्य-जलदों से प्रलय का कौन वह संदेश लाया ?
हाय, किसने—किस निठुर ने नींद से मुझको जगाया ?

खींचता बरबस मुझे यों
कौन वह आह्वान हे प्रिय ;
आज, ऋतुपति - कंठ से
गाओ न गौरव-गान हे प्रिय !

रोक लो, किससे कहूँ यह, मैं विवश हूँ, अब न बोलो !
मोह यह ऐसा जगत का, मत हृदय की ग्रन्थि खोलो !

कौन ले निर्वाण - पथ में
मुक्ति का अवदान हे प्रिय ;
ढल रहा प्रतिक्षण गगन से
ज्योति का दिनमान हे प्रिय !

८४

पुष्प सोचता, होता मुझको
यदि सुवर्ण का सुन्दर तन !
मुझमें यदि सुगन्ध भी होती,
और सोचता यह कंचन !

केकी को चिन्ता है, उसको
मिला नहीं क्यों कोमल स्वर ?
और सोचता कोकिल, मैं क्यों
हुआ न केकी - सा सुन्दर ?

सागर क्षुब्ध, हाय क्यों इतना
खारा है यह मेरा जल ?
सरिताएं उद्विग्न, हुईं क्यों
हम न पयोनिधि-सी निस्तल ?

केवल है सन्तोष पङ्क को,
जो करता उत्पन्न कमल ;
यों, इस मरण-शील पृथिवी में
किसका जीवन पूर्ण-सुफल ?

८५

क्यों क्षमा का दान दूँ मैं ?
हाय, अपराधी स्वयं,
कैसे तुम्हें कल्याण दूँ मैं ?

आज, वन-वन में विहँसता फूल-सा मधुमास आया;
किन्तु, मेरे उर-विपिन में फिर न वह उल्लास छाया !
किस सुहासिनि से चुरा कर
प्रिय, तुम्हें मुसकान दूँ मैं ?
क्यों क्षमा का दान दूँ मैं ?

प्रेम का परिणाम प्रियतम, कोकिला से पूछ लेना ;
यों न आश्रम-वासिनी को चिर-विरह का शाप देना !
इस अपरिचित देश में प्रिय,
कौन - सा सामान दूँ मैं ?
क्यों क्षमा का दान दूँ मैं ?

'मैं न मानूँगा'—स्वयं ही मैं तुम्हें प्रियतम मनाऊँ ;
प्रिय, तुम्हारे रूठने में भी अतुल आनन्द पाऊँ !
खेल लो, खो दो, लुटा दो ,
कौन ऐसे प्राण दूँ मैं ?
क्यों क्षमा का दान दूँ मैं ?

आज तक पाया जगत ने कौन-सा धन हाय रो कर ?
प्रिय, किसीको अन्त में पहचानता यह विश्व खो कर !
बोलता न अशोक-तरु
किस मुद्रिका का ध्यान दूँ मैं ?
क्यों क्षमा का दान दूँ मैं ?

रूप की प्रतिमा न, यह तो शव उसी का ही महामय;
वासना-जग की नहीं प्रिय, मानती अनुनय, विनय, भय!
यह अमा की रागिनी ,
क्या पूर्णिमा का गान दूँ मैं?
क्यों क्षमा का दान दूँ मैं ?

८६

यह विरह की रात काली ;
हाय , मेरे लोचनों से
नींद कह , किसने चुरा ली ?

जग रही अपलक-जगत में आज मैं चिर-परिचिता-सी ;
जा गिरी किसके पदों पर अलि, निराश-निवेदिता-सी ?
तल्प प्राणों का चिता - सा
जल रहा क्यों नित्य आली ?
यह विरह की रात काली !

विश्व में नीहार बन कर भाव मेरे विपुल छाये ;
बुझ गया शत-बार संध्या-दीप जल-जल, प्रिय न आये !
आँसुओं से भींग कर
झुक चली निशि की फूल-डाली !
यह विरह की रात काली !

रुक रहा निःश्वास पद-पद पर प्रणय - संदेश ले कर ;
एक प्रिय में आज होने मैं चली परिशेष ले कर !
सुप्ति दे अपनी मुझे, तू
जाग अब ओ नींदवाली !
यह विरह की रात काली !

वेदना मेरी चिरन्तन, निर्झरी यह सदा - नीरा !
प्राण-धन को खो उन्हीं को पा गई मैं प्रेम - पीड़ा !
मृत्यु बन आई दृगों में
जागरण की खिन्न - लाली ;
यह विरह की रात काली !

आज पी कर गरल प्राणों ने अमृत का रूप देखा;
खिँच गई जब अरुण-अधरों पर मरण की नील-रेखा!

दूर की संगीत - ध्वनि - सी
स्मृति सिसकती प्रिय, निराली;
यह विरह की रात काली!

इस निशा में सो रहा निस्पन्द जब संसार सारा;
मैं बनी एकाकिनी पथ - भ्रष्ट नभ का पतित तारा!
विश्व के आनन्द - कानन
में प्रलय की पीर पाली;
यह विरह की रात काली!

८७

मलिन गगन में अशेष तारक;
हुआ अरुण-प्रभ विवर्ण दीपक!
सजग - मदालस जगत - नयन, यह
मधुर-मिलन का निशान्त, प्रियतम!
खिला क्षितिज पर प्रभात - पाटल;
प्रफुल्ल - आरक्त दशों दिशा-दल!
प्रेम के आकुल स्वप्न से जग,
चले चपल, तुम किस ओर दुर्दम?
स्खलित विचम्पक-उर-माल विदलित;
सुगन्ध - वेणी - प्रबन्ध विगलित!
विलग तुम्हारे सुवक्ष से हो
असह्य-सा यह दिवस - समागम!
अपूर्ण ही तो अभी पिपासा;
अमिट अधर पर अमर 'भिलाषा!
वासना के भुज - पाश को तज,
न दूर हो हे हृदयेश, निर्मम!

विकल पुलिन पर द्विरेफ का दल;
सुमन - सुरभि से समीर चंचल!
गीत - स्वर - सम्बल चंचु में भर,
दिगन्त - पथ में उड़े विहंगम!
खुले पलक-दल, अनन्त परिमल;
मुखर जगत का अपत्र उत्पल!
निशा - परी के कपोल से ढुल
गिरो न भू पर तुषार - कण-सम!
हृदय-रुधिर पी प्रसन्न - प्रमुदित,
निरख उदीची - वदन निलोहित;
न क्या रुकेगी सहास दो-पल
सँयोग की यह निशा मनोरम?
हटा न तन से तमिस्र का पट;
छलक हृदय का उठे प्रणय-घट!
सुसुप्ति का यह मदिर-शयन तज
दमन न मन का करो असंयम!

८८

कर रहा स्वागत शरत नव-वर्ष का उपहार लेकर;
प्राण, सुख के गीत गाओ; आज, आओ प्यार लेकर!
ऊषसी ने लो, सजाईं मोतियों से डालियाँ;
फूल जाओ, फैल जाओ स्वर्ग का मन्दार लेकर!
रश्मियाँ नूतन तरणि की रेशमी अनुरागिनी;
प्राण, अन्तर्तम सजाओ ज्योति - वन्दनवार लेकर!
आज, नव - कादम्ब हँसते, खिल उठी अपराजिता;
उड़ चलो घन - मुक्त नभ में स्नेह का संसार लेकर!
भूल आई चाँदनी बेसुध कहीं अवगुन्ठनी;
प्राण, जग से फूट निकलो प्रेम - पारावार लेकर!
देख लो प्रतिबिम्ब अपना, मुकुर अवनी ही बनी;
मान जाओ, सुख मनाओ, पर्व का उद्गार लेकर!
खोल दो उर - द्वार, आ कर अतिथि वनवासी खड़ा;
प्राण, कण-कण में समाओ व्योम का विस्तार लेकर!

प्रेम की गली

खिल गई अब चाँदनी यह, खिल गई दिल की कली ;
आज मेरी मिल गई वह प्रेम की भूली गली !
प्रेम के मद से बनी रे आज दुनिया बावली ;
हो गई यह चाँदनी भी प्रेम - मधु - पी सुनहली !
राग का सागर उमड़ता, भावना यह मन - चली ;
ये उमंगों की तरङ्गें आज करतीं रँगरली !
खोल दे खिड़की जरा, मिल जाय वह झाँकी कहीं ;
कामना होगी जहाँ यह, प्रेम क्या होगा नहीं ?
धूल को भी चूम लूँ, वह पंथ दे कोई बता !
प्रेम की आसक्ति है यह, कौन दे लेकिन पता ?
प्रेम की ऐसी गली रे आज, पागल प्राण हैं ;
छू दिया, ये जी उठे, अनजान हैं, नादान हैं !
एक प्रिय को जानता रे, प्रेम को पहचानता ;
लाख रोको, मन न मोहन का किसी विधि मानता !
इस गली में भय नहीं, शंसय नहीं, ना लाज है,
सरफरोशों का बड़ा ही यह अजब अन्दाज है !
कुंज में मुरली बजी, संसार मूर्च्छित हो गया,
प्रेम के बाजार में यह विश्व सारा खो गया !
आँख के चलते इशारे, आज वाणी मूक है;
इस गली में आ सभीसे प्राण, होती चूक है !
इस गली में डोलते रे कैस भी, फरहाद भी ;
मार डालो, मौत है, आबाद भी, बरबाद भी !
दो जहर भी नेह से तो, पी सकूँ, कुछ चाह है ;
प्रेम की गंगा नहा लो, प्रेम की यह राह है !
खो चुके इस राह में राही अनेकों भूल कर,
गिर पड़े भू पर गगन की डालियों से झूल कर !
इस गली में कह रही लैला खड़ी, मजनूँ कहाँ ?
माँगते रे नेह की हो भीख भी शाहेजहाँ !
प्रेम है, आनन्द है, उल्लास है, मधुमास है,
पास है प्रेमी भला जब, तब कहाँ वनवास है ?
बिक रहे प्रेमी-हृदय, यह प्रेम का बाजार है,
पा रहा असि - धार कोई, और कोई प्यार है !
प्रेम का दीपक मचलता, औ पतिंगे जल रहे ;
एक है पथ प्रेम का यह, पथिक कितने चल रहे !
नाचती राधा डगर में, बेचती गोपी दही ;
प्रेम ऐसी चीज ही है, जो न कर दे, कम वही !
प्रेम की दुनिया निराली, रंग क्या रे रूप क्या ?
डूबने वाले चले, फिर सिन्धु - नद क्या, कूप क्या ?
चाहिये पानी, चढ़ी है धूप, ऐसी प्यास है;
कौन किसकी जात पूछे, अब किसे अवकाश है !

९०

खिल गई मन की कली लो, खिल गई ।
और, उर परिमल - सुरभि से भर गया ।
मिल गई, मेरी प्रिया फिर मिल गई ।
और, उसका स्पर्श व्याकुल कर गया !

खुल गये, शत-दल हृदय के खुल गये ।
हो गये, हम एक दोनों हो गये ।
रंग - से तत्काल जल में घुल गये ।
गन्ध बन कर वायु में हम खो गये ।

मृत्यु की छाया अचानक पड़ गई ;
आह, मैं सुन घोष उसका डर गया !
झड़ गई कल की कली लो, झड़ गई !
मर गया मैं, आज मैं भी मर गया !

९१

सुमन कहते, रूप मुझमें और सुंदर गन्ध ;
मुग्ध जिसकी माधुरी पर यह जगत है अन्ध !
कर रहा गुणगान मेरी सुरभि का संसार ;
कौन जग में हृदय से करता न मुझको प्यार ?
अनिल कहता, है तुम्हारा व्यर्थ ही अभिमान ;
मैं न होता, तो तुम्हें कोई न सकता जान !
कौन घर - घर में तुम्हारी गन्ध ढोता मौन ;
मैं न तो तुमको भला पहचानता ही कौन ?

६२

मैं क्या सोच रहा हूँ मन में ?
प्राण, कभी क्या जान सकोगे
क्या अभाव मेरे जीवन में ?
रहता जो निशि-दिन मैं उन्मन ,
अपलक पथ की ओर विलोचन,
किस चिन्ता में प्राण हुए हैं
विकल, शून्य एकाकी जीवन !
मिटते - बनते स्वप्न, दूर उन
तंद्रिल तारों के कम्पन में !
उर के इच्छा-पुष्प सुगन्धित ,
हर्ष, अश्रु, उल्लास अपरिमित ,
जीवन में जो थे, मैं सबको
चरणों में कर चुका समर्पित !
अब पूछो मत, देव, शेष क्या
मेरे आकुल भुज - बन्धन में !
निशि-दिन,पल-छिन,साँझ-सबेरे,
याद तुम्हारी रहती घेरे ,
छाये रहते मेघ प्रेम के
सजल - श्याम मानस में मेरे !
मैं क्या जानूँ, अब विलम्ब है
कितना, क्या उन्मुक्त मिलन में ?
तोड़ जगत की निर्मम कारा ,
प्रेम-विहग अब बन्धन - हारा !
लगता मधुर विरह भी, जब से
दर्शन दुर्लभ हुआ तुम्हारा !
कब समझोगे तुम जीवन - धन,
है कितना उन्माद मरण में ?

६३

शीतल तुषार की ज्वाला से
मुख इन्दीवर का कुम्हलाया,
लो, हिम के ज्योत्स्ना - मण्डप में
सुषमा का चन्द्रातप छाया !
लगते ही भू की वायु तरल
हो जातीं गल किरणें कोमल ;
नभ की नीलम की सीपी में
दिन सोने का मोती उज्वल !
तन्द्रा, प्रमाद, जड़ता, तृष्णा ;
सुख-सौरभ से विह्वल कण-कण !
पृथिवी शस्यों से श्यामल - सी,
उत्तेजित मृगमद से कण - कण !
नव - ग्राम - वधू-सी उषा डाल
आई सलज्ज - श्री, अवगुण्ठन ;
विरही कदली का हृदय - पत्र
हो गया छिन्न, आहत, तत्क्षण !
गेहूँ - सरसों के खेतों में
अंकुरित हुई जग की आशा !
ये प्रेमी पक्षी सीख रहे
वृक्षों पर मानव की भाषा !
आः ! यह समीर किसकी उँगली-सा
सहसा बढ़ कर आया ?
रोमांचित तन गेरा समस्त ;
छूते ही थर-थर - सी काया !
चिर-तम में छिप अन्तर्तम के
सोये इच्छा के शत भुजङ्ग !
सहसा वसन्त के पुष्पों में
फिर फूट पड़ेंगे ये अनङ्ग !

९४

नई डाल पा कर नव तरु की
भूल न जाना, मधुबाले !
चार दिनों की मिली चाँदनी,
फूल न जाना, मधुबाले !
हम भी कभी तुम्हारे ही थे,
कभी यहाँ भी मधुऋतु थी !
अपनी इस उजड़ी दुनिया को
भूल न जाना, मधुबाले !
विस्मृति की तरंग उठती हो,
तुम्हें बहा ले जाय लहर !
याद रहे—ऐसी सरिता के
कूल न जाना मधुबाले !
जब सौरभ था, यौवन-मद था,
तुमने मधु का पान किया !
अब फिर इन घड़ियों में दे कर
शूल न जाना, मधुबाले !
तुम्हें मिला नव-पल्लव, नव द्रुम,
नव-नव कुसुमों का परिमल !
यहाँ धूल की गोद बनी, यह
भूल न जाना, मधुबाले !

९५

अब अनन्त,
शिशिर अन्त,
नव-वसन्त आया ;
उपवन — वन,
विमन - विजन
गुंजन मन-भाया !
मुकुल-मुकुल में विकास ;
दिशि-दिशि में स्वर्ण-हास !
नव - तरुवर
दल सुन्दर,
पिक ने स्वर पाया !
मंजर से डाल-डाल ;
झुकता रस से रसाल !
मन्द - पवन,
पावन बन,
जीवन-धन लाया !
गाओ अलि, आज गान,
मेरे भी जुड़ें प्राण !
चपल - विहग,
सरल सुभग,
अज-जग मुसकाया !

९६

साजन को आज मनाऊँ ;
मैं जीवन का फल पाऊँ !
चिर-दिन पर अवसर आया है ;
साजन मेरा घर आया है !
मैं मन की बात बताऊँ ;
साजन को आज मनाऊँ !
जीवन जो मुझको खलता था,
विरहानल में नित जलता था ;
अब मिलन-सलिल सरसाऊँ ;
साजन को आज मनाऊँ !

९७

रात भर सोई नहीं मेरी प्रिया ;
दीप भी तो रात भर जलता रहा !
भोर में मेरी प्रिया ने खो दिया ,
रात भर अभिसार जो चलता रहा !
बुझ गया दीपक प्रभाती-वात से ;
और, जीवन-तैल भी तो शेष था !
कूकती इस ओर आधी रात से ,
कोकिला का वह विरह-संदेश था !
एक आशा थी, जली जो रात-भर ;
पल-घड़ी को भी लगीं आँखें नहीं !
स्वप्न जो देखा कभी था प्रीतिकर ,
मिट गया वह चित्र खींचा था कहीं !
रात रो-रो कर दृगों में ही कटी ;
आँसुओं से सरस, अंचल सिक्त था !
व्योम में तारे, धरा जन से पटी ;
किन्तु, उर मेरी प्रिया का रिक्त था !
कौन ऐसी रात, हो घर को चला !
कौन ऐसा दिन, न वादा हो किया ;
सौत-सा हँस रात-भर दीपक जला ,
रात भर सोई नहीं मेरी प्रिया !

९८

रहता किस हृदय - कुसुम को
मेरा मन - मधुकर घेरे ?
किस निष्ठुर ने पहचाना
उन्मुक्त प्रेम को मेरे ?
मेरी आहों का शीतल
क्या पवन उसे छू आया ?
वह कौन अपरिचित - सा रे,
मन में जो आज समाया ?
किसका सौन्दर्य कमल - सा
मेरे आँसू में पलता ?
किसकी स्मृति का यह दीपक
मानस - मन्दिर में जलता ?
शत - शत भावों के निर्झर
करते मानस में कल - कल !
जिस में रे बूड़ रहा यह
मेरा अनन्त अन्तस्तल !
पलकें उठतीं, फिर गिरतीं ;
उर पुलकों से भर जाता !
किसका आलिङ्गन करने
बाँहों को विफल बढ़ाता ?
जानें, किस मीठी पीड़ा से
उन्मन - उन्मन - सा मन ?
मैं आकुल - आकुल रहता ,
चंचल - चंचल - सा जीवन ?

९९

चल सम्मुख विश्वास-चरण धर !
दुर्गम है यह जीवन का पथ ,
उर में शत-शत भग्न मनोरथ ,
पथिक श्रान्ति से खिन्न और श्लथ ,
भय से तो रे श्रेष्ठ मरण वर !
आशा से उन्नत, श्रद्धा-नत ,
प्रतिपल-क्षण जन-सेवा में रत ,
तू अजेय, पौरुषमय, अक्षत ,
हे विधि की भी स्वयं शरण, नर !

१००

चित्रकार, अपनी तूली पर
खींचोगे क्या मेरा पानी ?
जरा सोच लो और समझ लो;
कहीं न हो जाये नादानी !

काँप रहा उर, श्रमकण झलकें;
वारि - विन्दु नयनों से छलकें !
एक झलक, हाँ,एक झलक ही—
अभी अभी तो खोलीं पलकें !

जिस नट के सँग नियति-नर्त्तकी
आती जग के रंगमंच पर,
आज उसी विधि के प्रतिद्वन्द्वी
को लाओगे क्या प्रपंच पर ?

मुझे न लाओ प्रिय, प्रकाश में;
विभव-कीर्ति-मद के विलास में !
चौदह वर्ष बिता तो लेने
दो निर्जन अज्ञातवास में !

बीत चुका होता जो संकट,
तब तो कोई बात न होती !
भद्र, अभी तो यही सोचता—
दिवस न होता, रात न होती !

यह विस्तृत आकाश न होता !
कोई मेरे पास न होता !
रह जाता बस, वास धरा पर;
इसका कुछ इतिहास न होता !

वन के मूक सुमन-सा खिलता
अपनी ही सीमा में परिमित ;
काश, आज जो मैं भी होता
वैसा ही एकांत, अपरिचित !

आहिस्ते - से फिरें उँगलियाँ ,
घिरें न परियों की रँगरलियाँ !
यह छवि किसी कुसुम-सम कविकी,
चम्पा की कल-कोमल कलियाँ !

यह कैसी तसवीर ? जरा
दिखलाओ तो रंगों की सूची ;
अरे, न दिल से दर्द उठे तब,
रख दो कलम, फेंक दो कूची !

१०१

बहुत दिनों के बाद अचानक आज तुम्हारी सुध आई है !
बीत चुके हैं दिन पतझड़ के,
आँगन में मधुमास खड़ा है;
भाँति - भाँति के फल - फूलों से
अब तो वन का प्रान्त भरा है !
पर, मेरी पलकों में सावन; आँखों में बदली छाई है !
खिले पलाश, गुलाब विहँसता ;
अमलताश की डाली - डाली !
यौवन के मीठे सौरभ से
झुक आई महुआ मतवाली !
मुसकाई दुनिया टेसू की, मेरी अमिया गदराई है !
दूर बसी हो कितनी मुझसे ,
लेकिन, पास चली आई हो;
मेरे लिये एक सपना - सी
सुख की दो घड़ियाँ लाई हो !
यह वसन्त, जैसे, मेरे ही अङ्ग - अङ्ग की अँगड़ाई है !
वह सूनी - अनजानी दुनिया ,
जानें , कैसा तार लगा है !
किस बाजीगर - सा पल भर में
जादू का संसार जगा है ?
आज तुम्हीं सी निठुर तुम्हारी प्रिये, याद भी शरमाई है !

१०२

किरणें हुईं प्रखर-तर क्रमशः ;
दिन उदास, उन्मन, श्री-हत !
दौड़ रहा पागल - सा पथ पर
पवन प्रतीची का उद्धत !
यौवन का मध्याह्न शेष कर
पृथिवी ने ली अँगड़ाई !
जाग उठा वन - वन में मर्मर-
राग, आग - सी तरुणाई !
उपवन में उत्पात मचा,
आकाश प्रहृष्ट दिगम्बर - सा ;
उड़ते रज-कण कुञ्ज-वीथि में ,
जलता जीवन जर्जर - सा !
जग की जरा विवर्ण, अचेतन ;
मृत्यु - वेदना से विह्वल !
पेड़ों से गिरते हैं सूखे
पत्ते पीले - से ढलपल !
यह पतझड़ है, सृष्टि पुरातन .
जगती से मिट जाने को ;
एक बार नूतन वसन्त फिर
उत्सुक - सा है आने को !

१०३

प्रिय, तुम्हारा प्रेम आया !
कोकिला-सा आज, मधुऋतु में
मिलन - सन्देश लाया ;
प्रिय, तुम्हारा प्रेम आया !
कह गया कोई चपल चुपचाप फूलों की कहानी ;
शुष्क पत्रों पर मुखर हो उठी उर की मूक वाणी !
दग्ध प्राणों की लता ने
प्रणय का पीयूष पाया !
प्रिय, तुम्हारा प्रेम आया !
कौन-सी मसि-तूलिका यह, चतुर वह कैसा चितेरा ?
स्वर्ण-लिपि में लिख दिया प्रिय,रेणु-कण का भाग्य मेरा !
हो उठी जीवित पुनः
मूर्च्छित क्षणों की शैल-काया ;
प्रिय, तुम्हारा प्रेम आया !
दूत मेरे प्राण के ये डोलते कुछ बोलते - से ;
चिर-सुखों के द्वार को नव - ज्योति से भर, खोलते-से !
वन - विहंगों ने तुम्हारा
प्रिय, कुशल-मंगल सुनाया ;
जब तुम्हारा प्रेम आया !
वह उषा का स्वप्न था, मेरे मिलन का क्षण, सलोने !
मैं चली थी प्राणधन में क्षुद्रतम अस्तित्व खोने !
खोल वातायन मलय ने
प्यार से मुझको जगाया ;
प्रिय, तुम्हारा प्रेम आया !

१०४

तज अभिमानिनि ! मान,
बीत गई रजनी,
तारक निष्प्रभ नभ के ।
दीप-शिखा हुई मलिन,
विहग - कुल ,
करते कल - रव ,
तरु पर कोमल ,
ऊषा सस्मित
आती मृदु पद !

१०५

भर लो आज, हृदय की डाली; फूल-फूल को लो, चुन लो !
पद-पूजा कर लो प्रियतम की, हँस लो, वर लो, पर सुन लो !

यह वन की एकान्त वीथिका,
मार्ग विजन का संकटमय;
पर्वत अगम, अपरिचित वन - पथ,
खेल रही बाधा निर्दय !

भर दे साहस - रस प्राणों में, ऐसा भी कुछ गान रहे;
कूँजों में ही खो मत जाना, व्यालों का भी ज्ञान रहे !

फट न जाय साड़ी, मृदु अंचल
उलझ न जाये माली से;
लम्बे बाल, सजे घुँघराले,
फँस न जाँय तरु - डाली से !

चुनने आई फूल, भला तो खाली क्यों अरमान रहे ?
फूलों पर ही भूल न जाना, काँटों का भी ध्यान रहे !

घूम रहे मधु - चोर, बनी यह
दीवानी दुनिया सारी;
चले रूप का सौदा करने
रूप - राशि के व्यापारी !

खिँची कुसुम की हो प्रत्यंचा, औ केसर का बाण रहे;
सारा पात्र शेष मत करना, कीटों पर भी कान रहे !

एक शूल ही प्रिये, लोचनों
में खटका करता प्रतिक्षण;
पछताना पड़ता रो - रो कर
एक भूल पर आजीवन !

है आरम्भ किसीका, तो फिर वंचित क्यों अवसान रहे ?
परिमल पर ही मुग्ध न होना, विष की भी पहचान रहे !

प्रस्थान

पाया विभव विश्व का, फिर भी इतने से संतोष नहीं;
तृप्त मुझे कर दे जो, जग में ऐसा कोई कोष नहीं !
तृष्णा के मरु में चातक की प्यास मिटे कैसे कण से ?
हाय, वासना ही यह ऐसी, मेरा कुछ भी दोष नहीं !

कहता बन्दी भ्रमर पवन से, मैं तुझ-सा स्वच्छन्द नहीं;
रोती चम्पाकली विकल हो, मुझमें क्या मकरन्द नहीं ?
फूलों के कानन में चुपके आज कोकिला सुना गई;—
भूल न जाना यह जग नश्वर; इस जग में आनन्द नहीं !

सुन्दरता बिकती अब चाँदी के टुकड़ों पर मोल यहाँ;
यौवन बना खिलौना उसका, गाँठ सके जो खोल यहाँ !
प्रेम बना सुख दो घड़ियों का; रूप पण्य की वस्तु बना !
सौदा ले यह वही, सके जो ऊँची बोली बोल यहाँ !

कल के भूस्वामी को मिलता अब समाधि में स्थान नहीं;
कुसमय ही लुट जाती कलिका, पर माली को ध्यान नहीं !
यहाँ कपट के चुम्बन मिलते; चंचल चितवन के ग्राहक !
बाल-युवतियों के अधरों पर खिलती वह मुसकान नहीं !

जल-जल जाते शलभ-पुंज, पर दीपक को विश्वास नहीं;
उड़ जाता कलिका को तजकर मधुप, मुझे अवकाश नहीं !
हाय, नाश के पथ पर रुक-रुक श्वास-पथिक मेरा चलता;
मौत माँगने चला-किन्तु, मरने का भी अभ्यास नहीं !

विधि ने जिसे कुशलता से अनुपम छवि-यौवन-दान किया !
हाय, मृत्यु ने आज निठुर बन उसका ही अवसान किया !
फूल खिलाता आया जगमें, धूल उड़ाता चला वसन्त;
अन्त यही जीवन का; यह लो, मैंने भी प्रस्थान किया !

किया जगत की कारा में मैंने अपने को वाध्य यहीं;
दुर्लभ मुक्ति; तोड़ दूँ बन्धन, ऐसा भी कुछ साध्य नहीं !
ढूँढ़ा हाय, हृदय को लेकर देश-देश में प्रिय ! मैंने;
कर देता सर्वस्व - समर्पण, मिला न वह आराध्य कहीं !

१०७

रहती हो जब निकट पूर्णिमे !
तब मुख-चन्द्र तुम्हारा लख कर,
मैं उपमा देता हूँ उसकी,
नभ के पूर्णचन्द्र से सुन्दर !

किन्तु, दूर जब हो जातीं तुम,
कुहू-यामिनी ही सखि, केवल
निबिड़ विरह के शून्य तिमिर में
स्मरण दिलाता मुझको कोमल !

१०८

सारे विहार में जल - निमग्न,
अब देख प्रलय का नृत्य नग्न !
खुल खेल रहा उद्धत अकाल,
घर - घर में फैला मृत्यु - जाल;
उजड़े महलों में नाच-नाच,
उत्सव - किलोल करते पिशाच !
नगरों में निर्जन कम्प - भग्न,
अब देख प्रलय का नृत्य नग्न !
ये मनुज नहीं—पाषाण-मूर्ति !
दृग में न अश्रु, मन में न स्फूर्ति;
काटते अस्थि—चर्मावशिष्ट
नर श्वानों का जीवन निकृष्ट !
जग गया—गया जग ध्वंस-लग्न,
सारे विहार में जल-निमग्न !
तब तो था केवल सर्वग्रास ;
अब तिल-तिल पल-पल का विनाश!
तब उड़ते घर पर गृद्ध-चील;
अब घर ही रे बन गया झील !
सारे विहार में जल- निमग्न,
अब देख प्रलय का नृत्य नग्न !

१०९

यह करील का कानन राही, आमों के मत बौर माँग ;
यहाँ कहाँ ऋतुपति का मेला ; मत मंजर के मौर माँग !
जा, तू अपनी राह चला जा; सच तो यह, वह देश नहीं
जीवन - भर की एक कमाई ; भाई रे कुछ और माँग !
वही कमाई, कसक हृदय की, पीड़ा का आह्लाद माँग;
पथिक, यहाँ बुलबुल का रोना, उसी रुदन की याद माँग !
स्नेही शूल खिले अन्तर में, खटक रहे प्रेमी काँटे;
उसका ही सुख एक अनोखा, आज वही उन्माद माँग !

११०

उस दिन लिखने बैठा ज्यों ही
मैं अपना कुछ संस्मरण - सा ;
देखा, कोई मिला न मुझको
मन के लायक उदाहरण - सा !
खींची रेखा काली - काली ;
इसके बाद लिखूँ क्या आली ?
मिली न ऐसी बात निराली
सबको चौंका देने वाली !
उलट-पुलट कर फिर भी देखा,
कहीं गर्व की गन्ध नहीं तो !
करते द्वार किसीके उर का
बन्द न मेरे छन्द कहीं तो !
'देह-धरे' का क्या फल पाया ?
अपने ही घर में भरमाया ;
अब आई है याद किसी की,
सारा जीवन व्यर्थ गँवाया !
खोजा घट-घट में, मिल जाये
शुद्ध प्रणय का राग कहीं पर !
फूलों - भरा किसीका दामन
बेकसूर, बेदाग कहीं पर !
हाँ, चुप ही चुप रह लेने दो ;
दुख-सुख दोनों सह लेने दो !
ढूँढ़ो दोष न इन शब्दों में ;
कुछ मुझको भी कह लेने दो !
बुत की तसवीरों से चित्रित,
जीवन - पुस्तक - पृष्ठ नहीं जी !
ऐसा यह न असाधारण - सा,
ऐसा कुछ उत्कृष्ट नहीं जी !

कितने जीते, कितने मरते !
कितने आज नरक में सड़ते !
यह इतना विस्तीर्ण क्षेत्र है ;
किसकी खोज कौन हैं करते ?
अपनी कपट -कहानी कह कर
नहीं किसी को दूँगा धोखा ;
तुम भी सब्र करो; रक्खोगे
किनका-किनका लेखा-जोखा ?

१११

दुख तो मेरे पास बँधा है !
नीड़ बना अन्तर ही मेरा ,
पीड़ा का खग इसमें गाता ;
उड़ता कभी अगर क्षण-भर को ,
लो फिर लौट यहीं आ जाता !
मेरे जीवन के प्रतिक्षण से
एक-एक निःश्वास बँधा है !
हैं अनन्त मेरी इच्छाएं ,
लहरें हैं जितनी सागर में ;
मेरे दुःख असंख्य, अपरिमित ;
तारे हैं जितने अम्बर में !
मेरी इन फैली बाँहों में
युग - युग से आकाश बँधा है !
मैं न अकेला ही प्यासा हूँ ;
बन्धन में हूँ मैं न अकेला !
दृष्टि जहाँ तक जाती मेरी ;
यहाँ वन्दियों का ही मेला !
मेरे ही हाथों की कड़ियों से
जग का इतिहास बँधा है !

११२

चाँदनी भी जल रही है ;
साँझ से ही हाय, मुझ - सी
यह विरह - विह्वल रही है !
विश्व सारा सो रहा है ;
शून्यता में तुमुल जग का
कर्म - कलरव खो रहा है !
जग पड़ा निस्पन्द, मेरी
साँस केवल चल रही है !
चाँद पीला पड़ गया है ;
तारकों से कौन मुझको
मौन इंगित कर गया है !
मैं जगा हूँ स्वप्न से, जब
रात आधी ढल रही है !
हाय, दो ही एक क्षण में,
चाँदनी भी जा छिपेगी
छोड़ कर मुझको गगन में !
मैं अकेला ही रहूँगा ,
बात इतनी खल रही है !

११३

आज सहसा चरण मेरा आ यहाँ रुक - सा गया है !
जल रही है आरती ;
सौरभ अगुरु का आ रहा है !
और , जिसमें भस्म हो
विद्रोह मेरा जा रहा है !
आप ही शिर आज मन्दिर - द्वार पर झुक - सा गया है !
कौन सम्मुख हाय , प्रतिमा के
मुझे है खींच लाया ?
क्या यही है देवता मेरा ,
जिसे यों आज पाया ?
आज जीवन का सभी अभिमान ज्यों , चुक-सा गया है !

११४

हाय, न जानें, अब तक तूने फूलों को क्यों चुना नहीं !
बोले चक्रवाक, पिक जागे; अलि, क्या सचमुच सुना नहीं?

बहने लगा प्रभात - समीरण
मंजुल तरु को कर हृदयंगम ;
सिहरा वन , कोलाहल पथ में ;
दूर देश उड़ चले विहंगम !

होता अब विलम्ब पूजा में; अलि, क्या सचमुच सुना नहीं?
हाय, न जानें, अब तक तूने फूलों को क्यों चुना नहीं?

भरी अभी तक भी न अरे, यह
फूलों की तेरी लघु - डाली ;
क्या समझेगा तुझे देख कर
यों इन कुंजों में वनमाली ?

शेष सुमन-संचय कर सत्वर; अलि, क्या सचमुच सुना नहीं ?
हाय , न जानें, अब तक तूने फूलों को क्यों चुना नहीं ?

मन्दिर की निर्माल्य - सुरभि से
उमड़ पड़ा जग का वातायन ;
गृह - गृह में पुरवासिनियों का
उठा प्रभाती मंजुल गायन !

गूँजा प्राची में रवि-रथ-रव; अलि, क्या सचमुच सुना नहीं?
हाय, न जानें, अब तक तूने फूलों को क्यों चुना नहीं ?

कंचन-कूची फिरी-गगन में
ज्यों, जग पड़ी उषा की लाली ;
पनघट पर नव-वधू सलजित
पहुँची मन्द-मधुर गति-वाली !

देवालय में जगी शंख-ध्वनि; अलि, क्या सचमुच सुना नहीं?
हाय, न जानें, अब तक तूने फूलों को क्यों चुना नहीं ?

रजत - ज्योति तारों से छाये
हरश्रृङ्गार हरित कानन में ;
उड़े न कुन्तल, बजे न नूपुर ,
चल ऐसे तू इस मधुवन में !

काँपी लतिका पवन-श्वास से; अलि, क्या सचमुच सुना नहीं?
हाय, न जानें, अब तक तूने फूलों को क्यों चुना नहीं ?

चुन ले फूल तरणि ने जब तक
रश्मि - तार मृदु बना नहीं ;
एकाकिनी कुसुम - वीथी में
यों ही कुछ गुनगुना नहीं !

चल सत्वर, हो गई देर अब, अलि, क्या सचमुच सुना नहीं?
हाय, न जानें, अब तक तूने फूलों को क्यों चुना नहीं ?

११५

सपने में तुमको देखा है !
पुतलियाँ सजग हो पाई हैं ;
मैंने बाहें फैलाई हैं !
आहट पाते ही, देखो, ये
आँखें मेरी भर आई हैं !
उर के शतदल पर चरणों की
अब भी अंकित - सी रेखा है !
निःश्वास मिलन से सुरभित है ;
वह स्पर्श अधर पर सस्मित है !
संचित है तृषा कपोलों में,
सारा शरीर रोमाञ्चित है !
कवरी के कुसुम दलित अब भी,
स्वर में सुहाग की लेखा है ;

११६

मुझे भूल जाने में, जानें, तुम्हें कौन-सा सुख मिलता है ?

फूले बेल, अनार भरे ;
कचनार-लीचियों में फल आये !
झुकीं डालियाँ जामन की ,
कटहल फल गये, आम गदराये !

एक फूल भी वहाँ नहीं क्या ऋतु के उत्सव में खिलता है ?

केकी करते नृत्य, कोकिला
वन-वन में निज कलरव भरती;
गरज - गरज बादल घिर आते ,
कुंज - कुंज में हवा सिहरती !

क्या न एक पत्ता भी तेरे उपवन में प्रेयसि, हिलता है ?
यहाँ चली सुकुमार चरण धर
अपना मेरे उर - पल्लव पर,
छाले पड़े जीभ में, ज्यों - ही
बोली नाम किसीका ले कर !
वहाँ नहीं काँटों के पथ में क्या कोमल तलवा छिलता है ?

११७

पूछ लो मेरा पता प्रिय, पेड़ की पत्ती कहेगी !
आप ही मैं क्या कहूँ, यह वेदना जीने न देगी !
प्रिय, कभी जिन कंटकों को प्यार कर उर से लगाया;
फूल के बदले कुटिलतम शूल का ही स्नेह पाया!
वह कसक ही एक उनकी याद मेरी प्रिय, करेगी !
आप ही मैं क्या कहूँ, यह वेदना जीने न देगी !
जिन पदों की धूलि ही मेरे लिये बन गई चन्दन,
प्राण, करता निशि-दिवस मैं प्रेम से जिसका विवन्दन ,
ध्वनि वही मणि-नूपुरों की मौन परिचय कह सकेगी !
आप ही मैं क्या कहूँ, यह वेदना जीने न देगी !
पुतलियाँ जिनकी चपल चमकीं न मेरे आगमन से ,
स्मृति-सजल भींगीं न जिनकी अलस पलकें अश्रु कण से।
प्रिय, कभी आँखें वही तस्वीर मेरी खींच लेंगी !
आप ही मैं क्या कहूँ, यह वेदना जीने न देगी !

११८

मैं भूकम्प - प्रलय - जल - प्लावन;
मैं नवीन-युग का धाता हूँ ।
वर्तमान का मैं वरवाहन,
भूत - भविष्यत का ज्ञाता हूँ ।
रण-विद्रोह-क्रांति का उद्गम,
यौवन-धन - जीवन-दाता हूँ ।
हिल उठता है लोक - लोक,
जब मुसकाता मैं अँगड़ाता हूँ ।
देखे कौन पलट कर पीछे ?
दीवाना हूँ—मदमाता हूँ !
मुझे न ठोकर लगने की सुध ,
मैं भागा - भागा जाता हूँ !

मेरे आगे विजय - भावना ;
आशा का सागर लहराता ।
एक ठेस पर बैठ घरों में
मुझे न भाई, रोना आता ।
कुछ ऐसी ही मिलीं भुजाएँ ,
टकराने में भी सुख पाता ।
अरे, न पूछो मेरी किस्मत ,
लड़ते-लड़ते ही सो जाता ।
छोड़े शत-शत रजनी - वासर ;
वर्ष-मास-युग, सदियाँ छोड़ीं !
गिने कौन , कितने वन छोड़े ,
पर्वत छोड़ा , नदियाँ छोड़ीं !

महामंत्र - द्रष्टा पौरुष का ,
मैं स्रष्टा नूतन प्राणों का !
मैं उल्लास, सघन घन - गर्जन,
स्वाभिमान - उद्धत गानों का !
कायर को इतिहास बताता
उसके ही गत बलिदानों का !
मैं साग्निक, रण - क्षुब्ध देवता,
सूत्र राष्ट्र के व्यवधानों का !
अनुक्रमण करती है दुनिया,
मेरे साहस - चरणांकन का !

मैं शासक - त्रासक हूँ, नाशक
राज - तंत्र, प्रभुता-मंत्रण का !
सावधान ! अज्ञान तिमिर में
भव की तरी डुबोने वाले !
शोणित से दीनों के अपना
काला-सा मुख धोने वाले !
उठो, उठो ऐ चिर समाधि में
सुख की निद्रा सोने वाले !
कहाँ गया मस्ती का आलम ?
ओ गौरव - बल खोने वाले !
सुनो, सुनो उल्का के पथ में
धूमकेतु-सा मैं आता हूँ ।
मेरा काम न पीछे मुड़ना ;
मैं आगे आगे जाता हूँ ।

शेषासार

आज, विपिन में विकल कलापी, विह्वल कोकिलका आलाप ;
मौन चातकी, नीरव कानन; छाया वापी में उत्ताप !
उतरा यौवन-मद सरिता का; शम्पा का विलास-उल्लास !
करता रुदन कदम्ब, मौलश्री, श्रीहत शेफालिका उदास !
उत्पल का हिम-उपल-तल्प तज, मधुपों का उन्मन गुंजार ,
चला कहाँ, किस ओर आज लो, यह वर्षा का शेषासार !

उमड़ रहा उन्मुक्त व्योम में धवल बादलों का उन्मेष ;
यह क्या? जीवन का अन्तिम फल; मदवाही यौवन का शेष !
विश्व-विजय की चरम विफलता, गौरव का विदलित आवेश,
उड़ता काश-श्वेत केशों में अचिरागता जरा-सन्देश !
कल का ही सम्राट नवोदित शिशिर-विकम्पित हाथ पसार
विदा माँगता आज, सभीसे यह वर्षा का शेषासार !

भर कितनी सीपी में मोती, पूरी कर पल्वल की आस,
अन्नदान दे कृषक-गणों को, मिटा प्रखर प्यासों की प्यास,
फूलवती, फलवती धरित्री को कर, वन को सुषमावास
लाया था किसलय-किसलय पर ललित लवंगलता का हास !
आज वही तज अपना नन्दन-वन औ वनरानी का प्यार,
किस सागर के पार चला, लो, यह वर्षा का शेषासार !

आकुल कंठ, द्रवित उर, सूना आज मेघ का मन जैसे !
चतुर्मास - संयोग हाय अब भूला जा सकता कैसे ?
कहाँ सुन्दरी है अलका की ? भेजे कौन प्रिया के पास ?
शत-शत छन्दों में गाता हा, घन का एक-एक उच्छ्वास !
गले मल्लिका के मिल, भू पर उतर, व्यथा का कर संचार
रोता रिमझिम बूँदों के मिस यह वर्षा का शेषासार !

रोक रहा जनता का आग्रह, बाल-युवतियों का श्रृङ्गार !
घेर रही पथ शैल - श्रृंखला, रुके किन्तु कैसे ? लाचार !
अरे, उड़ाये जाता मारुत चरणों में निर्मोही के !
आज, पड़ा पाले में बादल अति प्रचंड विद्रोही के !
अखिल लोक की माया-करुणा मानस में उतरी साकार ;
छोड़ चला संसार आज प्रिय, यह वर्षा का शेषासार !

खोलो अपना हृदय-द्वार सखि, आने दो मृदु-मन्द बयार
धो दो आज विकार हृदय का, मन का चिर संचित कुविचार !
निरख इन्द्रधनु नयन जुड़ा लो, शुभ्र वलाका-पंक्ति निहार ;
अंतिम बार आज, बह जाने दो पृथ्वी का हाहाकार !
सुन लो, सुन लो एक बार फिर सजल जलद का हृदयोद्गार !
फिर न सजनि, इस वर्ष मिलेगा, यह वर्षा का शेषासार !

१२०

प्रेम की गली
मैं कहाँ दौड़ कर पगली-सी
भूल पथ चली !
हृदय में कौन , छेड़ता बीण ?
मैं उसी ध्वनि में विभोर, लीन !
दग्ध ज्यों दीन , जल-हीन मीन
तड़पती रेत में कुसुम - कली !
मुग्ध, विभ्रान्त, गति का न बोध;
बाधा कठिन , मार्ग में विरोध ;
जाना, जानें न कहाँ स्वर शोध ;
सुदूर आशा - रश्मि सुनहली !

१२१

तुम न आये, प्यार आया ;
तुम न आये प्राण, पर
प्रतिदिन तुम्हारा प्यार आया !
आ गया जग को खिला कर फूल-सा हँसता सबेरा;
गन्ध से भर विश्व-वन, नव-गीत से भर कंठ मेरा !
जो खुले लोचन, विलोका,
यह किरण का तार आया ;
तुम न आये, प्यार आया !
आज, अलिओं ने तुम्हारे प्रेम का संदेश लाया ;
कोकिलाओं ने चिढ़ा कर यों मुझे पागल बनाया !
मैं तुम्हें ही प्रिय, प्रणय के
पणय में लो, हार आया;
तुम न आये, प्यार आया !
व्योम से नक्षत्र करते नित्यप्रति संकेत नीरव ;
प्रिय, तुम्हारा स्नेह आता धर मनोहर वेश नव-नव !
खोल अन्तर्द्वार मेरा
मौन बारम्बार आया ;
प्रिय , तुम्हारा प्यार आया !
बादलों में चमक क्षणभर तुम छिपे क्या सोच मन में ?
खिँच गई उस एक क्षण में ही तुम्हारी छवि नयन में !
जी उठा संसार, करुणा
का सजल आसार आया ;
तुम न आये, प्यार आया !
उलझ जाती श्वास से मेरे विपिन की सुरभि फँस कर ;
लिपट जातीं बेलियाँ, कलियाँ बुलातीं मुझे हँस कर !
हृदय - पारावार में स्मृति-
पूर्णिमा का ज्वार आया ;
प्रिय, तुम्हारा प्यार आया !
चूम जाता छू कपोलों को मदालस मधु-समीरण ;
बाँध कर भुज-बन्धनों में चाँदनी गिनती विरह-क्षण !
तैरता बन इंदु नभ में
रूप वह साकार आया ;
तुम न आये, प्यार आया !
अश्रु मेरे गिर पड़े जब तृण-दलों पर ओस-कण बन ;
कर गया उनपर तुम्हारा ही चपल कल-हास नर्तन !
पोंछता दृग - आँसुओं को
कौन वह सुकुमार आया ;
प्रिय, तुम्हारा प्यार आया !

१२२

खुली - अधखुली
आँखें प्रेम की होतीं सदा
खुली - अधखुली !
प्यार , यौवन का मनोविकार ;
वेधता प्राणों के मृदु - तार ,
शर से सुमन के शत-शत बार ;
खिली - अधखिली
आहें प्रेम की होतीं सदा
खिली - अधखिली !
बंक भ्रुव पल-पल, पलकें अपल,
लीलायित अंग, हास कोमल !
सलज्ज स्वर, लुब्ध अधर चंचल;
सुनी - अधसुनी
बातें प्रेम की होतीं सदा
सुनी - अधसुनी !

१२३

मंजुला मृदु-भाषिणी यह ;
चाँदनी से सीखती हँसना अभी कल-हासिनी यह !

चूम जाता अधर- पल्लव मधु-वसन्त-समीर आ कर ;
प्यार कर जाता इसे प्रतिदिन प्रभात अधीर आ कर !
गुंजनों से प्राण भर देती भ्रमर की भीर आ कर ;
चातकी कहती व्यथा, सुनते कथा पिक-कीर आ कर !
फूल-वन में नाचती नव-वेश-छवि-विन्यासिनी यह !
मंजुला मृदु-भाषिणी यह !

कब खिलेगी मंजरी, कब सुरभि आयेगी निराली ;
कब झुकेगी मृदु-फलों के भार से सहकार-डाली !
कोकिला का कण्ठ-रव मुखरित करेगा कब वनाली ;
कब जगाने आयगा मधु-स्वप्न से अलि, अंशुमाली !
उँगलियों पर दिन मिलन के गिन रही वनवासिनी यह !
मंजुला मृदु-भाषिणी यह !

आज, हँस-हँस कर जगत को खिला देंगे गान मेरे ;
प्रेम बन कर स्थान उर-उर में करेंगे प्राण मेरे !
हास के सुरचाप से रँग जग-अधर वरदान मेरे ;
तितलियों-से कल्पना-वन में उड़ें उपमान मेरे !
गूँथती कुरबक- कुसुम से केश अनन्त विलासिनी यह !
मंजुला मृदु-भाषिणी यह !

आज, नभ की स्वामिनी जग-वृन्त पर अधिकार करती ;
उतर छाया-देश से भू पर सुरभि-संचार करती !
हिम-धवल गिरि - मल्लिका से सृष्टि का शृङ्गार करती ;
रंगिनी मेरी निशा-नीहार से अभिसार करती !
आज, द्राक्षा-कुंज में उत्फुल्ल-सी उल्लासिनी यह !
मंजुला मृदु-भाषिणी यह !

रागिनी मेरी कमल-वन का मुखर मुख-हास ले कर ,
फैलती जाती विजन वन में मलय-मधुमास ले कर ;
उड़ चली नन्दन-विपिन से अगुरु का निःश्वास ले कर ;
आज, आई स्वर्ग की छवि मर्त्य में अवकाश ले कर !
विरहिणी पाथोद-बाला-सी सतत उच्छ्वासिनी यह !
मंजुला मृदु-भाषिणी यह !

राह दो मधुबालिके हे, आ रही चंचल-कुमारी ;
लो, करो नर्तन कलापी, गीत गाओ वन-विहारी ;
शारदे, वीणा उठा; हो ध्वनित गिरि-वन-तटी सारी !
लाजवन्ती, राजकन्या, प्रियतमा , मेरी दुलारी ;
आज, आई लौट कर पुर में सुदूर-प्रवासिनी यह !
मंजुला मृदु-भाषिणी यह !

१२४

मेरे मानस में विकल आज किसकी स्मृति का यह बादल है ?
जलधर गम्भीर गरजता है ;
मेरा वातायन सजता है !
प्राणों में सुमधुर यह किसके
चरणों का नूपुर बजता है ?
मेरे आँसू से सजल आज किसकी आँखों का काजल है ?
रिमझिम-रिमझिम सुन पड़ता है ;
भर मेरा हृदय उमड़ता है !
सपने में जैसे कोई आ,
मुझको बाँहों में भरता है !
मेरे सिर पर छाया किसका यह इन्द्रधनुष का अंचल है ?
सहसा हृत-स्पन्दन रुकता है ,
आवेग तड़ित का चुकता है ;
मेरे अधरों पर विस्मय-सा
निश्वास किसीका झुकता है !
किसके कर-सा सुकुमार मुझे छूता समीर यह शीतल है ?

१२५

आलि, जीवन - धन न आया ;
व्यर्थ ही प्रिय - पंथ में
अपलक पलक-पल्लव बिछाया !
आलि, जीवन - धन न आया !
भार-सा लगता विभूषण, स्वर्ण - मणि - शृङ्गार मेरा ;
कौन लेगा नवल यौवन का विमल उपहार मेरा ?
हाय, मैंने व्यर्थ ही
चन्दन-अगुरु-मृगमद लगाया !
आलि, जीवन - धन न आया !
मृदुल कुरबक - कोरकों से गूँथ दी वेणी निराली ;
भाल में सिन्दूर की दे दी भला क्यों आज लाली ?
व्यर्थ ही गोधूलि में
मैंने सजनि, दीपक जलाया ?
आलि, जीवन-धन न आया !
हाय, संध्या भी गई, चल दी रसालस शर्वरी अब ;
व्योम के कल चित्रपट पर लो खड़ी ऊषा-परी अब !
व्यर्थ ही अबतक प्रतीक्षा
में करुण जीवन बिताया !
आलि, जीवन धन न आया !
मैं निराशा के उदधि में खो रही कन्दर्प-बाला ;
हो रही अलि, म्लान-सी मेरी मृदुल यह कुंद-माला !
किस सलोने के लिये
मैंने सजनि, नख-शिख सजाया ?
आलि, जीवन-धन न आया !
खो चुके रवि-चन्द्र कितने काल के मुख में समा कर ;
जल गई पतझाड़, जग में हँस गया मधुमास आ कर !
बीतते दिन-मास यों ही
किन्तु, खोया प्रिय न पाया !
आलि, जीवन - धन न आया !
इन्दु-किरणों से उतर नित, नृत्य मैं भू पर करूँगी ;
हाय, ढूँढूँगी उसे मैं, विरह में रो-रो मरूँगी !
आज, फिर मेरे हृदय में
एक यों उन्माद छाया !
आलि, जीवन - धन न आया !

१२६

बजता भविष्य में सुन, सुदूर
रणचण्डी का रणवाद्य क्रूर ;
आकाश प्रलय - तम - घनाछन्न ;
हिलती सभीत वसुधा विपन्न !
पी - पी धारावह रक्तासव ,
नाचता मत्त निष्ठुर भैरव !
ताण्डव - उत्सव - रत चन्द्रचूड़
हँसता भविष्य में सुन, सुदूर !
शस्त्रास्त्रों की ध्वनि में कठोर
गूँजता ध्वंस - चीत्कार घोर ;
बजता हिंसा का कुटिल राग !
विक्षुब्ध उदधि-मन्थन-विहाग !
असहाय सभ्यता का सिँदूर
पुँछता, शूरों से समर - क्रूर !
हो रहा भयंकर स्वर घर्घर !
स्वार्थान्ध जातियों में बर्बर !
करता कल नगरों को श्मशान
अन्यायी राष्ट्रों का विधान !
झंझा - तोपों में चूर - चूर ;
सुन, रे भविष्य में सुन, सुदूर !

१२७

क्यों फिर आती यों ही उमङ्ग
प्रिय के चरणों को परस-परस ?
दृग विफल,विफल स्नेहाश्रु-श्रोत ;
सब विफल युगों के दरस-परस।
वारिद के पंखों पर उड़ता
भावों का झंझावात सखी !
कोमल उर-कलिका पर होता
नित सौ-सौ वज्राघात सखी !
मैं रोक न सकता निर्निमेष
नयनों के जल की धार सरस !
क्यों फिर आती यों ही उमङ्ग
प्रिय के चरणों को परस-परस ?
जाग्रत है अधरों के ऊपर
इच्छाओं का गुञ्जार सखी !
सुनता कोई भी किन्तु, न
मेरे हिय का हाहाकार सखी !
बीते वियोग की घड़ियों में
ज्यों एक पहर, त्यों एक बरस !
क्यों फिर आती मेरी उमङ्ग
प्रिय के चरणों को परस-परस ?
डोलते जहाँ थे मधुपों - से
उन्मत्त अमित अरमान सखी !
अब वही चमन वीरान पड़ा;
मरघट-समान सुनसान सखी।
उठती दिल में धड़कन अधीर,
रह जाता है जी तरस-तरस।
क्यों फिर आती यों ही उमङ्ग
प्रिय के चरणों को परस-परस ?

१२८

वह एक रागिनी थी, जिसको
कुछ दिन से भूल गया हूँ मैं ;
जब फूल किसीका था, तब था ;
अब तो बन शूल गया हूँ मैं !
मुझपर यों आँख तरेरो मत ;
आहों को छू कर छेड़ो मत ;
ये बरस पड़ेंगे — बादल के
इन टुकड़ों को फिर घेरो मत !
जाने दो, उड़ने दो—जग के
पथ का हो धूल गया हूँ मैं ;
वह एक रागिनी थी, जिसको
सचमुच अब भूल गया हूँ मैं !
यह हृदय नहीं है, पत्थर है ;
प्राणों में झंझा का स्वर है !
जीवन बस, करुणा-नीरद के
दो बूँदों पर ही निर्भर है !
यह नीलकंठ-कवि अमर हुआ,
विष पी कर फूल गया हूँ मैं ;
वह एक रागिनी थी, जिसको
बिलकुल ही भूल गया हूँ मैं !
यह दुख न किसीको खल जाये ;
घर कोई सुख का जल जाये !
बचता हूँ अपनी छाया से,
जादू न किसीपर चल जाये !
सिर पर मयंक का ले कलंक
अम्बर में झूल गया हूँ मैं ;
वह एक रागिनी थी, जिसको
कुछ दिन से भूल गया हूँ मैं !

१२९

प्रियवर, इस निराश जीवन में
आशा की यह रेखा कैसे ?
श्यामल घन - परिपूर्ण गगन में
चमकी विद्युल्लेखा जैसे !
जैसे एक मास से लगभग,
मेरी विकट परिस्थिति डगमग;
वैसे ही मिल रहे आज इस
मग में कंकड़ - पत्थर पग-पग !
कैसे आयी याद अचानक
अपने इस मरणोन्मुख जन की ?
मत पूछो, इस समय अवस्था
क्या है मेरे पीड़ित मन की !
सब कुछ सहन किये जाता हूँ ।
विष के घूँट पिये जाता हूँ ।
मर्जी यही अगर मालिक की ,
किसी प्रकार जिये जाता हूँ ।
जीना क्या ? मैं बन्धु, व्यर्थ ही
जीने का अब दम भरता हूँ !
मरता भी तो नहीं; सिर्फ-बस ,
मरने का अभिनय करता हूँ ।
कितनी बार हृदय है रोया !
मधु के साथ पात्र भी खोया !
उठे उमङ्ग कहाँ से ? चिर
निद्रा में काव्य - देवता सोया !
गोया जकड़ गया हो जीवन
लौह - शृङ्खलाओं से दुर्दम !
डरा रही हे देव, आज मेरी
अपनी ही छाया निर्मम !

१३०

मंगल, चिर - मंगल हो !
प्रतिदिन हो मंगल - मय,
प्रति-पल चिर-उज्वल हो !
सुन्दर हो, सुन्दर - तर ;
अन्तरतर, रस - जलधर ,
जीवन का मधु-निर्झर
कल-कल, चिर-शीतल हो !
सुरभित, अभिनन्दित हो;
पूजित हो, वन्दित हो !
प्रतिपद हो गौरव-मय,
स्वस्थ सबल, निश्चल हो !
सुखमय हो, सुखमामय ;
तेजोमय , महिमामय !
प्रतिक्षण हो निर्भय,शुभ,
तन्मय, चिर - निर्मल हो !
परिणय अविनश्वर हो ,
उर - मुरली सस्वर हो !
परिमल-मय प्रेम-सुमन ,
श्रीमय, चिर - कोमल हो !
विकसित हो, प्रहसित हो;
सुख-मधुकर-मुखरित हो !
प्राणों के शतदल का
चिर-सस्मित प्रतिदल हो !

१३१

एक दिन हो जायगा जब पूर्ण
यह जीवन जगत में,
जानता हूँ प्राण, तब भी

शेष ही रह जायगी
अक्लान्त मेरी साधना जो !
प्रात में जो पुष्प खिलते ;
दिवस के अन्तिम प्रहर में
धूल में हो विवश मिलते!
किन्तु, वन से मिट न पाती
गन्ध की उन्मादना जो !
दीप जलता सरस-सुमधुर;
निवृत कर देता पवन का
एक ही आघात निष्ठुर !
किन्तु, तम में जगमगाती
ज्योति की यह भावना जो !
छेड़ तारों को विमादक,
जब जगा झंकार, रख देता
विपंची मौन वादक ;
गूँजती रहती हृदय में
विकल स्वर की मूर्च्छना जो !
जानता हूँ प्राण, तब भी,
एक दिन हो जायगा
जब पूर्ण यह जीवन जगत में ।

१३२

चल रे सुआ, आज पथ शेष ;
उड़ चल, तू उड़ चल वह देश;
जहाँ प्राण मेरे बसते हैं
भूल मुझे, अपने घर को;
उर मेरा करुणा - कातर !
कह देना अब आया पूस,
जल-जल उठी गाँव की फूस !
हाय, बाँध रक्खा प्रियतम को
किस सुकेशिनी ने अपने
केश-पाश में मृदु कस कर ?

हुआ असह्य विरह का क्लेश,
सुना उन्हें देना संदेश !
गूँज रहे प्रिय, भाव मल्लिका-
से ही पुंज - पुंज मेरे ;
हरी नीम की डाली पर !

आज न वे कोयल के बैन;
सुख के दिन न, न सुख की रैन !
एक उसी प्रियतम की दर्शन
आशा में अँटके ये प्राण ;
लगा ध्यान रजनी-वासर !

पड़ता मध्य - शिशिर का शीत;
मेरा हृदय विकल - भयभीत !
कब वसन्त आवेगा, फूटेगी
वन की पुष्पल मुस्कान ?
होगा मेरा प्रेम अमर !

फूल गई चन्दन की डाल,
कूक गई उसपर मधु - बाल !
धानों की पक गई डालियाँ,
सूख चली चम्पा नादान !
कह देना - आयें सत्वर !

१३३

किसी किशोरी का कम्पन ;
भर दो मेरे अंग - अंग में
बिजली का चंचल कम्पन !

आज प्राण उद्दाम सुखेच्छुक;
नयनों में छवि - सम्मोहन !
तन्तु-तन्तु मृदु - स्पर्श - कामना
से व्याकुल, कातर, उन्मन !
रख दो अधराधर अधरों पर,
होने दो मधु का वर्षण !
शिथिल बना दे शिरा-शिरा को
बाहु - वल्लरी का बन्धन ।

किसी किशोरी का चुम्बन ;
भर दो मेरे रन्ध्र - रन्ध्र में
मोती का फेनिल चुम्बन ।
आज प्रणय के मधु-मण्डप में
हुआ अमर का आमन्त्रण ;
दर्शन-क्षुधा जगी जीवन में ,
गूँज उठा उर का मधुवन !
कर दो मेरे श्री-ललाट पर
चरण - शोणिमा का अंकन;
अन्तःपुर में बजें तुम्हारे
कलनामय नूपुर - कंकण !

किसी किशोरी का यौवन;
भर दो मेरे रोम - रोम में
सरिता का दुर्दम यौवन !
आज रसालस दिवस,मिलन का
कण-कण में पुलकित कम्पन;
अवयव-अवयव में मादकता,
स्नायु - स्नायु में उद्दीपन !

मेरे हृदय - गगन पर आओ
तुम बन इन्द्रधनुष पावन;
प्लावित कर दे विश्व तुम्हारी
करुणा का मंजुल सावन !

१३४

बाँसुरी बजी !
रे, कहाँ चली तज लोक-लाज
आज मैं सजी ?
खींचता कौन जो, मैं अधीर ;
वक्ष कम्पित, कण्टकित शरीर !
तीर-सी निकल, मीड़ पर मीड़;
मैंने विभोर ओढ़नी तजी !
बन्ध उर ; पर , पैर में पर ;
गूँज स्वर-लहरी, प्राण थर-थर !
छोड़ घर, किस ओर, मैं निडर
जाती आप-ही निशि में लजी !

१३५

लाज की खिली कली
लाल - लाल गुलाब के
गाल पर आज , भली !
मिलन से अधरों के मधुरतम ,
अरुणिमा कपोलों पर अनुपम
उमड़ी , वासना उर में अगम ;
खुल गईं लटें नाज से पली !
आकुलित यौवन की छवि-गन्ध
अंग में , काँपता बाहु - बन्ध ;
हृदय की तृष्णा, कामना अन्ध ;
चितवन अदृश्य व्याज से चली !

त्रिकाल

(१)

प्रातः ;

जीवन का प्रातः। रवि निकला उदयाचल से स्वप्नों का सन्देश नवल ले। सुषमा के अंचल से राशि - राशि आनन्द तरंगित हुआ। विहग का कूजन दिशि-दिशि में आक्रान्त मुखर-मुख। किसने मृदु अवगुण्ठन हटा दिया कम्पित कर तन को, छू कर अपलक चितवन, लज्जावती-लता के आनन से? सम्पूर्ण कुसुम-वन विहँस पड़ा किसका दर्शन कर, प्रेमाँजलि का स्पर्शन? एक विचित्र पुलक प्राणों में, जैसे करते जल-कण शिशु - गुलाब की पंखुड़ियों पर जगमग कनक - करों की अरुण-ज्योति में। वसुधा के सुख-गुञ्जित सुधा-सरों की छवि में तिरतीं चपल मछलियाँ मृदु रंगीन मनोहर! गृह-गृह में नव-चेतन, उत्सव का मंगल - वीणा - स्वर मधुर-मधुर। कोमल-किरणों का स्पर्श सुखद उन्मादक वातायन का द्वार खोल कर आता सुषमा - साधक सुरभि-पवन-हिल्लोल। कुतूहल एक राग - संचारी आज, मूर्च्छना के तारों पर। विकल सकल वनचारी नव प्रकाश के प्राँगण में। आरक्त प्रफुल्ल दिशादल छवि - पराग से सुरभित ; माता का ममतामय अंचल पकड़-पकड़ चलता। शिशु भरता आँगन में किलकारी। करता दुग्ध-पान जननी का इधर स्नेह अविकारी, स्निग्ध, उष्ण, स्वादिष्ट और उस ओर कुमार विचंचल पढ़ता प्रेम - पाठशाला में, धृष्ट बढ़ाता अविकल परिचय अपना सखी-सखाओं से। सिखलाते गुरुवर अक्षर-ज्ञान प्रपंच-प्रचारित उस अबोध को। मधुकर देता रस-सन्देश प्रथम माधव का मादक। जाते बलिहारी परिवार-नगर-पुर-वासी-गण। दुलराते बालक के सस्मित कपोल को। कभी किलक कर धावित होता, रुन-झुन बजते पैरों में मंजीर निशिञ्जित। कभी खिसकता घुटनों के बल, पकड़ किसीकी उँगली करता मृदु-अभ्यास कभी चलने का। जग से पहली वह पहचान, दृगों में विष से आकुल-उत्सुक विस्मय। भर देता अपने कलरव से जीवन का देवालय। कभी बोलता तुतली भाषा में अस्फुट-सी वाणी, सुन कर जिसे लोटती वन की शय्या पर पाषाणी गद्‌गद - भावावेश - हर्ष में। भूल रहा जग - शैशव विश्व - हृदय-वात्सल्य पालने पर मृदु - कोमल, अभिनव चिर - प्रसन्न मुद्रा में पुलकित। वह भविष्य का सुन्दर इन्द्रधनुष लटका आशा के मोहक-रम्य क्षितिज पर। तपस्विनी के स्नेहाञ्चल से लिपटा-सा मृग - छौना, मुख में दर्भ-गुच्छ, रो-रो कर लेगा चन्द्र-खिलौना अपने हाथों में शिशु लोभी। चुपके काट चिकोटी भाग खड़ा होता कह— "मैया! कबै बढैगी चोटी?" ग्वालों के सँग धेनु चराता, रास मचाता व्रज में; वंशी बजा, नाचता पुलकित, यमुना - तट की रज में व्रज - वनिताओं के इंगित पर। करता माखन - चोरी, गोकुल-वृन्दावन की गलियों में, ऊधम, बरजोरी; पनघट पर उत्पात मचाता ; लेता लूट सुपावन दधि, मुग्धा गोपी - बालों का। वह चंचल मनमोहन! बन अबोध कहता जननी से—"सुन री, मेरी माई! अनुराधा ने देख वक्ष में मेरी गेंद चुराई!"

(२)

मध्या ;

जीवन की मध्या खर। यह उत्ताप भयंकर महा - तपन के पूर्ण - तेज का। चिन्ता के हिम - भूधर पिघल - पिघल कर बहते चंचल सरित - रूप में सुन्दर चिर - सुख की उर्वरा - भूमि से। चिर - उल्लास निरन्तर एक अलस प्राणों में छाया रहता। जीवन - वन में आता नव-मधुमास स - कौतुक। पृथिवी के कण-कण में चिर - अव्यक्त वेदना भर कर एक प्रणय की उत्सुक। मधु - वसन्त - लीला से शाखाओं पर छवि के पिकशुक आँखमिचौनी - क्रीड़ा करते कूक - चहक कर निशिदिन किस उमंग से? गोपनबाला की नूपुर - ध्वनि रिनझिन बजती उर में। चिर - नवीन जीवन की तरी निराली बहती यौवन औ विलास के कूलों से मतवाली! भरे लोचनों में विष सुन्दरियों के, जिसमें मन्मथ बुझा रहा है स्वयं कुसुम - शर। चलता यौवन का रथ राज - मार्ग पर ; विजय - पताका उड़ती नभ में उज्वल!

अन्तहीन मरु। तृष्णा, तृष्णा! कंठदग्ध परिनिश्चल
प्रखर पिपासा से। मरीचिका यह मायामय चंचल;
एक बूँद जल, इस मरु - वन में एक घूँट रस केवल!
मद - व्याकुल चलता कानन में तरुण - मत्त गज का दल
गर्जन करता, रौंद पदों से शिला - वृक्ष को। हलचल
मच जाती मृग - गण में। लेता व्याघ्र - युवक अँगड़ाई
वृहत शाल - तरु की छाया में। पड़ता शब्द सुनाई
महायुद्ध के शंख - घोष का। प्रति उपवन में, वन में
चक्र - वात निर्बन्ध अन्ध - गति। एकाकी निर्जन में
उठता सिंह दहाड़ क्षुधातुर, मानव - रुधिर - पिपासी;
रण - ताण्डव करता त्रिलोक में स्वयं रुद्र अविनाशी।
हिलता दक्षिण - पवन मन्द, पुष्पों की रेणु सिहरती
एक - एक किसलय के मानस में। सौरभ - मद भरती
चारु - चित्र सुषमा वसुधा की। शत-शत प्रेमी निर्झर
गाते गीत प्रणय का। ढलता स्वर्ण - सुरा का सागर
शुष्क - कंठ से। जन्म - जन्म की जगी वासना दुर्वह
चिर - अशान्त-सी। अंग-अंग में, रोम-रोम में दुस्सह
पुलक-तड़ित की दीप्ति। बाहुओं में अद्भुत रण-कौशल;
और हृदय में तीव्र वेग; उत्कण्ठा, मृदु - कौतूहल
रन्ध्र - रन्ध्र में। अन्ध - गन्ध से मृग-मद के मनमोहक
बेसुध - से खिँच रहे हिमाचल के यात्री आरोहक
वीर - यशी। कंटकमय पथ है, घोर विपिन, मरणान्तक;
चिन्ता नहीं, बढ़े जाओ तुम, अक्षय की सीमा तक!
कूद पड़ो निर्भय समुद्र में; उड़ो विमुक्त गगन में;
पक्ष खोल झंझा - सा विचरण करो सघन - घन - वन में;
तरुण-विहंगम-सा लाँघो नद - नदी - झील - वन - घाटी;
तोड़ो बन्धन परम्परा का शृङ्खल, खल - परिपाटी!
विकट महाभारत। अर्जुन ने किया प्रलय - आवाहन
कुरुक्षेत्र में। पाँचजन्य का हुआ निनाद विभीषण
रुद्र - रोष से! कालिंदी का वही अशेष विलासी
बना आज नरमेध - यज्ञ का साग्निक प्रथम, विनाशी!
यह यौवन है, कहते इसको ही तारुण्य कुशाँकुर—
तीक्ष्ण, तथापि अदृश्य; मचा संग्राम घोर देवासुर
अमृत - कलश के लिए। मोहिनी का सौंदर्य अपरिमित
मोह-भ्रान्त कर रहा प्रमथ का मन। वन-वन में अगणित
नर्तन करतीं आकांक्षाएँ रंग - बिरंगी, व्याकुल
नग्न। तितलियों - सी उड़ती सुकुमार, मनोहर, संकुल
पुष्प - पुष्प पर नव-नव इच्छा - निकर। मधुर मधु - गुंजन
पुलिन - पुलिन के नलिन - पुंज में। एक अकथ आकर्षण
युवती के प्रति। अतिरतिलोलुप ऊँघ रहे संसारी
वनच्छाय आतप में सुख से। पशुगण काननचारी
स्वेच्छा से विहार हैं करते। श्रमजीवी - गण कर्मठ
चला रहे हल खेतों में; पर, रोक रहा अभिनय-हठ
झोपड़ियों में बसती जो गृह - लक्ष्मी, उसका। घर - घर
जलता तृष्णानल से प्रतिपल। यह मध्याह्न प्रखरतर!

(३)

संध्या;

जीवन की संध्या। च्युत होता प्रखर दिवाकर
महा - गगन के स्वर्ण - शिखर से, जीवन - भर जल-जल कर
अपने ही यौवन की ज्वाला में प्रलयाग्नि - विदाहक,
तप्त - तेज, अविरल। उत्तेजक - तरुण रश्मि अनुग्राहक
क्षीण - मलिन निष्प्रभ-सी होती जाती अविरल, प्रतिक्षण
मृत्यु - मुखी प्राणी के जीवन-सी। वन - छाया उन्मन
खोज रही आश्रय तरुओं का। ज्योति - शिखाएँ शोभन
करतीं क्षत्रिय - वधुओं के प्रिय जौहर - व्रत का पालन
महाकाल की वदन - चिता में स्वयं कूद कर। अम्बर
जटाजूट - मण्डित योगी - सा ध्यानावस्थ, दिगम्बर,
नीरव, शान्त, सरल - मुद्रा में मुद्रित दृग। दिग्मण्डल
राशि - राशि द्विज-कुल के कोलाहल से अतिशय चंचल!
नलिनों के नयनों में पथ का अन्धकार - दल सारा
समा गया आ कर। अधरों पर कौन कुटिल हत्यारा
डाल चला नीलिमा मरण के चुम्बन की। प्रेमाहत
निकले कितने शिलीमुखों के दल व्याकुल मधु - शर क्षत
कमल - कोष से। और, वहीं पर कितनों ने रसना - वश
बन्द किया अपने को पलकों की कारा में सालस।
विजन - नदी का तट। सम्मुख भीषण कान्तार सुविस्तृत
क्षितिज-चरण तक। एक पार्श्व में खड़ा अजेय अनावृत
वट विशाल आकाश - विचुम्बित, जिसकी प्रबल पुरातन
दीर्घ - भुजाएँ चतुर्दिशाओं में फैलीं। खर - दूषण
करते जिस पर रुदन उलूकों के समूह भयकारक।
रूप देख कर निखिल धरित्री का यम - सा संहारक

त्राहि - त्राहि कर उठे प्राण जड़ - जंगम के अति भय से। जम्बुक करने लगे वनों में एकत्रित संशय से आर्त्त - नाद ! विकराल मृत्यु के नेत्रों से तारागण चमक उठे सर्वत्र गगन के तम में लुक - झुक। कंकण गिरा अचानक दिग्वधुओं के हाथों से चिर - पावन अमर-नियति सौभाग्य - चिह्न। सो रहा मरण का अंजन नेत्रों में संसार लगा।⋯वह बजा अमंगल नूपुर निशा - पिशाची के चरणों में। थर - थर पल्लव का उर काल - प्रेत के अट्टहास से। लौट रहे पशु अगणित खेतों की पगडण्डी पर चल कर, जंगल से परिमित पा कर भोज्य, जुगाली करते, शान्त - भाव से। जाते उनके पीछे झूम - झूम कर चरवाहे भी गाते वंशी ले सम्मिलित स्वरों में। ग्राम - डगर पर राही थका हुआ - सा चलता धीरे - धीरे। आयु - प्रवाही धारा एक फूटती नभ में काली - सी, जिसमें नर डूब - डूब कर मरने लगते। हा, असहाय चराचर ! खग - बालों के चंचु खुले ही रह जाते भोजन की आशा में; शिशु का पय - पालित मुख जननी के स्तन की माया में ही रह जाता निष्फल। नारी का जीवन विधवा - सा रोता आँखों में भर आँसू - मोती - कण। लेता पथिक प्रवासी दूरागत नीड़ों में डेरा मार्ग - व्यथा से विकल शान्त हो। जन - जाग्रति को घेरा ऊर्द्ध - श्वास ने। शनैः शनैः खो देता दिग्भूमण्डल अपने मृदुल हृदय की गति। मृत दिवा -कर्म - कोलाहल। सन्निपात - रोगी - सा अस्थिर विषम - प्रलाप अकारण कभी - कभी कर उठता वन में यों ही साँध्य - समीरण ! जैसे युवती सती अंक में ले कर मृत पति का शव करती भय-श्मशान में निर्जन करुण विलाप, अशुभ - रव, वैसे ही रच वह्नि - शयन का यह दिगन्त की बाला विधवा - सी रख मृतक- तरणि को, मृदुल गोद में, ज्वाला प्रकटित कर अपने शरीर से, करती हा - हा - क्रन्दन; छीन रहा सौभाग्य - कलित सिन्दूर कौन नर दुर्जन ? एक अतीत युगों का वृश्चिक - दंशन, हृदय विलोड़ित भीत कपोती - सा। भविष्य वह दुर्निवार, आशंकित प्राण-सिन्धु गम्भीर, भयानक; कल्प - कल्प-सा क्षण-क्षण; तट पर तुंग तरंगों का संघर्ष, भीम विस्फूर्जन ! मरण - चपल छन्दों में गाती विश्व - मातृका लोरी मुग्ध - राग ध्वनि से। रख देती तरुणी काल किशोरी जग के वृद्ध कपोलों पर अपना निःश्वास अगोचर; और, न उठता जाग पुनः जग एक बार फिर सो कर ! मरघट ! उड़ती राख, चिताएँ चटचट करतीं। कलरव विविध शान्त मस्तिष्क - प्रान्त में जग के। पापी मानव हो जाता बेहोश पान कर निद्रा - मदिरा। मेला उठता क्षण में मायावी का। यह प्रदोष की वेला !

अनुरोध

बैठ कर उन कुंजों के पास,
थिरकता जहाँ वसन्त-समीर;
हृदय में भर कर मदिरोल्लास,
चला चितवन के चंचल तीर;
वेध डालो शतदल-से प्राण;
सजनि, शतदल-से मेरे प्राण !

मृदुल-पद, आ पीछे से मौन,
मूँद आकर्ण दृगों के कोर;
विहँस, कह, मुझे बताओ कौन?
सकुच, फिर कन्धों को झकझोड़,
मसल डालो फूलों - से प्राण !
सजनि, फूलों - से मेरे प्राण !

सजल जलधर का गुरु गम्भीर
नाद सुन सोते-से उठ जाग;
असंयत अंचल, शिथिल शरीर,
बाहु से लिपट, लाज-भय त्याग,
कुचल डालो निष्ठुर-से प्राण !
सजनि, निष्ठुर-से मेरे प्राण !

स्तब्ध रजनी में जब विश्रान्त
सुप्त हो जाता है संसार;

रूठ, मुँह फेर, मचल, भ्रू ऐंच,
बहा आँखों से जल की धार,
भिगो डालो नीरस-से प्राण ;
सजनि, नीरस-से मेरे प्राण !

गगन-तरु से तारों के फूल,
तोड़ ले उषा-सुन्दरी मूक ;
बौर-सुरभित डाली से भूल
चूत की तुम कोयल-सी कूक,
गुँजा डालो निर्जन-से प्राण;
सजनि, निर्जन-से मेरे प्राण !

तुम्हारा कोमल उर सुकुमारि,
वहन कर सके न जब यह भार,
विश्व-कानन के किसी अशान्त
कोन में जता तनिक-सा प्यार !
भुला डालो कंचन-से प्राण ;
सजनि, कंचन-से मेरे प्राण !

१३८

कौन तुम मेरे नयन में ?
बादलों-से उमड़ आते
चिर-सजल पावस-गगन में !
कौन तुम मेरे नयन में ?

तिमिर-अंचल में छिपा कर शुक्र-शिशु को प्यार करती,
दिवस-पथ-श्रम-क्लान्त जग में जब मलिन संध्या उतरती,
हाय, हाहाकार कर
उठते विकल प्रत्येक क्षण में !
कौन तुम मेरे नयन में ?

कल-कपोलों से ढुलक, मरु में अमर अस्तित्व खोने,
आज, रोने आ गये हो, कौन तुम विरही सलोने ?
खोजते छवि किस प्रिया की
माधुरीमय अश्रु-कण में ?
कौन तुम मेरे नयन में ?

लोचनों के वृन्त पर खिल तुम हृदय के फूल मेरे,
आप ही मुरझा गये क्यों, देख लो ये मधुप घेरे !
सींचते हो वेदना की
वल्लरी इस विश्व-वन में !
कौन तुम मेरे नयन में ?

मार्ग अश्रुत, जग अपरिचित, विरह की बंशी बजा कर,
प्रिय-पथिक, सहसा कहाँ तुम चल पड़े मुझको रुला कर?
मौन वह इंगित तुम्हारा
हँस गया मेरे रुदन में !
कौन तुम मेरे नयन में ?

तुम अयाचित-वर-सदृश दृग-द्वार पर उद्भ्रान्त आते;
मुक्त कर जीवन-जटिल मुक्ता लुटा सुख कौन पाते ?
मृण्मयी शय्या तुम्हारी,
अन्त चिर केवल मरण में !
कौन तुम मेरे नयन में ?

मलय का वातास पथ में रुक रहा उच्छ्वास भर-भर;
किस व्यथा से हा ! न जानें विकल होता पत्र-मर्मर !
पलक भी लगने न देते
हाय, पल भर भी विजन में !
कौन तुम मेरे नयन में ?

जल उठी आकाश-गृह में शोभना नक्षत्र-माला;
आज, परदेशी कहाँ वह, कौन-सी वह देव-बाला ?
झोपड़ी के दीप-सी स्मृति
टिमटिमाती शून्य मन में !
कौन तुम मेरे नयन में ?

हिमालय

सुन, खड़ा वहीं मैं जहाँ कभी
थे जीवन्मुक्त मनुष्य सभी ;
अज्ञात जरा-भय मृत्यु - क्लेश ,
दारिद्र्य - दुःख, संकट अशेष !
वह धूमराजि होमप्रसूत
करती थी जग को शुद्ध-पूत ;
जिसके वन में मधुमय वसन्त
छाया ही रहता था अनन्त !
निःसृत हो जिससे साम-गान
करते नर को कल्याण-दान ;

हैं रचे गये उपनिषद यहीं ;
श्रुति,स्मृति,पुराण, बहु-विशद यहीं !
उठ तपोवनों से ओङ्कार
हरता वसुधा का विषम भार;
विज्ञानों का भांडार यहीं ;
ऋषि-मुनियों का आगार यहीं !
कुसुमित, समीर-सुरभित अ-न्यून
खिल-खिल हँसते पावन प्रसून ;
रे निखिल विश्व के गुरु महान,
हो गये यहीं पर ज्ञानवान ;
शुक, सूत, व्यास,गौतम,कणाद ;
थे इन्हीं शिलाओं के प्रसाद !

जगती में जितने बुध - समाज
हैं सभी इसीके ऋणी आज;
सोहं का निर्भय शंख - नाद,
षटशास्त्रों का अनुपम विवाद;
' मा भैः ' का उन्नत हुहुंकार,
वह अघमर्षण का सूत्रधार !
रे कभी उठा था यहीं अहा !
जग जिसपर अब तक मुग्ध रहा !

अब किन्तु, न वह मृदु-रंग-राग;
वह विश्व-प्रेम, सर्वस्व-त्याग !
तप-आतप-ज्वलितानन विशाल ;
शुचि के नव-रवि-सा दिव्य भाल !
रे आज कहाँ वह अन्तराल ?
मेरे मानस का मदु - मराल !
युग की अखण्ड-उत्सर्ग-ज्वाल,
प्रियतम स्वदेश का स्वर्ण-काल !
वह ब्रह्मचर्य - आश्रम पुनीत;
उस महा-पर्व का विजय गीत !

तुम क्या जानो मेरा विराग !
जलती अन्तर में कौन आग !
दिल में है कैसी कसक-टीस ?
मैं रह - रह जाता दाँत पीस ?
हाँ, कभी सुखी था, आज दुखी !
प्रज्वलित पिण्ड-सा अग्नि-मुखी !
कर उस अतीत की करुण याद,
होता मन में दारुण विषाद !
मैं बहा दृगों से अश्रु - धार ,
रोता ही रहता बेकरार !

जिसके आँगन में पुण्य - धाम
खेला करते थे कृष्ण - राम ;
जिसके कानन में वह महीप
सुर - धेनु - सुता को ले दिलीप

फिरता था निर्भय - निर्विकार ;
मेरे भव का वैभव अपार !

अज - मान्धाता - रघु-नल-नरेश-
पूजित, कल-कूजित रम्य-देश ;
वसुधा-तल का वह भाल देश ,
रे बना आज कंगाल देश !

शिशु-गौतम का क्रीड़ा-विहार ;
नन्दन-कानन का स्वर्ण - द्वार !

लख आज उसी का दीन-वेश ;
लगती रे जी को एक ठेस !

मेरे जंगल के अरे शेर ,
बोलो, कैसे हो गये भेड़ ?

किसने हा ! तुमको लिया लूट ?
कब भाग्य तुम्हारा गया फूट ?

फैले अब बहु-विधि आधि-व्याधि;
ले चुका अतुल-वैभव समाधि !
कैसे वह प्रतिमा हुई नष्ट ?
मेरे तापस का योग भ्रष्ट !

रोता खँड़हर में अब शृगाल ;
चौकड़ियाँ भरते शशक-बाल !
रे कहाँ गया वह स्वर्ण-काल ?
भारत-जननी के अमित लाल !

अब भी मुझमें है रुधिर शेष ;
पर्याप्त शक्ति, पौरुष अशेष !
अब भी मुझमें है वही टेक !
उस ज्योति-पुंज की रेख एक !

हो गये अभी तक बेर - बेर
कितने इस जग में उलट-फेर ;

सीमा - पथ कितने टूट चले !
निर्मोह - काल - घट फूट चले !

फिर भी मैं अविचल अटल खड़ा;
निरवधि-युग से हूँ यहाँ पड़ा !
हो गये विवर्तन नये - नये ;
आये कितने ही, चले गये !

जड़ किन्तु, न मेरी कभी हिली;
किसको रे मेरी आग मिली ?

मैं रहा युगों से देख - भाल
रे गृध्र - दृष्टि से जगत-जाल ;
जापान, कोरिया, रूस, श्याम !
जर्मनी, तुर्क, फारस, अनाम !

अवलोक रहा मैं निखिल मही ;
किस ओर कौन-सी धार बही !

किसमें है ऐसा बल अखण्ड ?
जो लेगा मुझसे लौह - दण्ड ?
मैं चला घूर्णि - संहार - पूर्ण
कर दूँ धरणी को चूर्ण-चूर्ण !

लोकालय को करता उजाड़ !
सह सकता मेरा कौन भार ?

मुझको लख झुकता देव-राज
गिरती असुरों पर प्रलय-गाज !

जब मैं अँगड़ाई लेता अघोर
उठता द्रुत वारिधि में हिलोर ;
तट बाँध तोड़ , कर कूल भंग ;
चलती शत-शत उच्छल तरंग !

कुंठित हो जाता महा - काल ;
ऐसा मेरा पौरुष कराल !

हरि-हर के होते विफल शस्त्र ;
मूर्च्छित अहीश के फरिण सहस्त्र !
उन्मत्त मृत्यु-सा दीर्घ-पेट ;
रख लूँ मैं जिसमें जग समेट !
मेरी इन दरियों में अशेष
खो जायें कितने प्रान्त-देश !
जब सह न सकी मम अतुल भार
खा कर विस्तृत पृथिवी पछार ,
उत्तर-दिशि को झुक गई अहा ;
सागर कबन्ध-सा लगा रहा !
मैं भूधर, मैं नग-पति ज्वलन्त ;
विस्तीर्ण भुजाओं से अनन्त ,
पकड़े रहता हूँ दिग्दिगन्त !
मेरी प्रभुता-बल का न अन्त !
उड़ जाय व्योम में महा-मही ,
रवि के आकर्षण से न कहीं ;
नित दाब अँगूठे से कठोर ,
मैं रखता जग का ओर-छोर !
ऊँचा कर अपना शिर प्रशस्त ,
मैं निरख रहा हूँ जग समस्त ;
पश्चिम की चलता अस्त-व्यस्त !
पूर्वीय-क्षितिज पर उदय-अस्त !
है उधर चीन का अमित छोर ;
इस ओर हिन्द-सागर-हिलोर !
मध्यस्थ किया करता सहास
मैं रुद्र - रोष से अट्ट - हास !
मेरे उपवन में झूल - झूल
हँसते ही रहते नित्य फूल ;
गाते गुन-गुन कर मधुप-बाल ;
हिलते ऋतुपति में नव-मृणाल !
क्रीड़ा करते चंचल कुरंग ;
भर वन-वन में मादक उमंग !
कलरव करते प्रतिदिन विहंग
मेरे आँगन में प्रात - संग !
नाचते शिखी, उन्मद - उलंग ;
कोकिला बजाती जल-तरंग !
फुत्कार छोड़ते हैं भुजङ्ग !
गरजते सिंह, बजते मृदङ्ग !
रे चारु-चीड़-द्रुम, शाल-माल ;
करते पथ में छाया विशाल !
वह मानस का कमनीय ताल ,
करते किलोल, जिसमें मराल !
चुगते नित मोती राजहंस ,
वह तो मेरा ही एक अंश !
मैंने देखे वत्सर अनन्त ;
कितने कल्पों का आदि-अन्त !
मेरे सम्मुख ही प्रलय हुआ ;
कितने राष्ट्रों का उदय हुआ !
कितने ही देशों का विकाश ,
कितने राज्यों का सर्वनाश ;
मैंने देखा उत्थान - ह्रास ;
आया जो जग में तम - प्रकाश !
पाषाणों पर इतिहास लिखा ;
लिख कर, लो, मैंने दिया दिखा !
फिर-फिर रण-रण संहार मचा ;
दुनिया में हाहाकार मचा !

वह आर्य-सभ्यता और रोम ;
कृतयुग-द्वापर का यज्ञ - होम !
कितने ग्रह , कितने सूर्य-सोम ;
मिट गये हाय नक्षत्र - तोम !

मेरे ही सम्मुख अस्थि - शेष
लुट गया हाय, मेरा स्वदेश !
क्षण भर का मेरा मदोन्मेष ;
हो गया शत्रुओं का प्रवेश !

जंगल में करता था निवास
जब सारा यूरप सूरदास ,
गृह कुधर-कन्दरा, वसन-हीन ;
आहार फूल-फल, मांस-मीन !

तब आया रे वह अनायास;
मेरे ही घर के आस - पास ,
किस अगम-लोक से रवि-प्रकाश ;
भर गया विश्व-भर में हुलास ।

मैं अजर-अमर हूँ , दिग्दिगन्त
मेरा प्रताप फैला अनन्त ;
मेरे भय से अहरह उदास
काँपता पीत-मुख महा -नाश !

वह प्रथम - प्रथम षटऋतु - विलास
देता मुझको ही नवोल्लास ;

मेरे ही शिखरों पर प्रभात
करता पहले रवि-रश्मि-स्नात ;
मेरे ही वन से विहग - गान
उठ-उठ कर करते शान्ति-दान !

जग में चिर - उन्नत रहा भाल
मेरा ही अब तक सतत - काल !

गा सके , कौन ऐसा उदार
मेरी अजेय महिमा अपार ?

बौने आल्पस की क्या बिसात ,
जो मुझसे आ कर करे बात !

ऐंडीज - ऐटलस आदि सभी ,
थे मेरी ही सन्तान कभी !

मैं महाकाय , दुर्गम, अघोर ;
बद सकता मुझसे कौन होड़ ?

मैं दिग्विजयी ; मैं धन-कुबेर !
मुझमें रत्नों की अमित ढेर !

उन्मुक्त - करों से लुटा आज
करता रंकों को महाराज !

मेरी गोदी में सुभग लाल
है खेल रहा नेपाल बाल ;
वह काशमीर, तिब्बत; भुटान ,
सब मेरे ही प्रिय-शिशु - समान;

मेरे आँगन में युक्त - प्रान्त,
सो रहा मृतक-सा शिथिल-श्रान्त;
बंगाल , उड़ीसा औ विहार
करता मैं सबको लाड़ - प्यार !

वह वीर - भूमि पंजाब - देश ;
बीते युग का भग्नावशेष !
सब पाते मेरी स्नेह - धार ;
मेरे उर का संचित दुलार !

गुजरात, सिन्ध, दक्षिण महान;
ये तो प्रिय - प्राणों के समान !
किम्बहुना , भारत ही विशाल
मेरा प्यारा है नौनिहाल !

सुरसरि की मुझसे निकल धार
हरती जगती का कलुष - भार;
वर - ब्रह्मपुत्र , यमुना अथाह;
वह सिन्धु और सरयू-प्रवाह !
गा - गा कर मेरा ही चरित्र
करती वसुधा-तल को पवित्र !

खा कर मेरी ठोकर कठोर ,
रुक जाता झंझानिल-झकोर ;
मैं उदधि-ऊर्म्मि-हिन्दोल-दोल ;
मधु-मलय-पवन-हिल्लोल - लोल !
सुन कर मेरे गुरु - सिंहनाद
भागते विश्व के मद - प्रमाद ;
द्रुम-दल-सा पल में ही सशोक
कँप जाता सारा मर्त्य - लोक !
आता न यहाँ साम्राज्यवाद ,
शिर पर शासन-दुख-दमन लाद ;
रज-रज में मेरा शुचि प्रभाव
भरता जीवन का ऐक्य-भाव ;
मेरे कानन में बैर भूल
खिल-खिल हँसते हैं शूल-फूल ;
वनराज-अजा चल राह-बाट
पानी पीते हैं एक घाट !
मैं हूँ अनादि, मैं हूँ अनन्त ;
मैं चिर-विद्रोही, चिर-ज्वलन्त !
मेरे विलोक कर नेत्र क्रुद्ध ,
हो जाता घन का मर्ग रुद्ध !
मैं अतुलित बलशाली अशान्त ,
मैं दुर्दम, मैं दारुण कृतान्त !
मैं भीम बुला कर वज्रपात
कर देता जग को भस्मसात !

१४०

सजनि, स्वर्ण के कलरथ पर ,
आती जब तू नभ-पथ पर ,
किन्नरियाँ बिखरा देती हैं
अंजलियों से शुचि-सुन्दर ;
राशि-राशि मुक्ता भर-भर !
करते खग कलरव जग-जग ,
जग-मग हो उठता मग-मग ;
नाच-नाच उठते पग-पग पर
पी पराग मादक मधुकर ;
जग का दुर्बल मानस हर !
पा कर स्पर्श कमल-कोमल ;
तेरे कर का महिमोज्वल ;
मुकुल-मुकुल खिलपड़ता,किसलय
किसलय हँस देता परिचय ;
भर दृग में आकुल-विस्मय !
कबरी खोल, उड़ा अंचल ,
फैला कर कुन्तल चंचल ;
चलती जब तू राज-मार्ग से
हो जाता रसमय, मधुमय ;
नवल सुरभि से विश्व-हृदय !
पाते ही गुपचुप आहट ,
देती प्रकृति उलट घूँघट ;
इधर - उधर सब ओर जगत में
छा जाता उत्सुक, उन्मन ;
शिशु-किरणों का मधु-गुंजन

आज जागरण का यह क्षण ;
मेरे जग का छायावन ।
लोट पड़ा इंगित पर तेरे
सुमनों का संसार प्रमन ;
कर अरविन्द - चरण-वन्दन !

वर्षा की पहली बूँद

यही वर्ष की पहली वर्षा ; वर्षा की यह पहली बूँद !
खोलो , खोलो लोचन वसुधे , बैठीं क्यों पलकों को मूँद ?
आज, तुम्हारे क्षितिज - वृत्त में छाये राजहंस अभिराम ;
अनिमन्त्रित ही आये गृह में देखो तो आहा, घनश्याम !
प्रथम विन्दु ही, किन्तु,चतुर्दिक उमड़ चली मधुरस की बाढ़ ;
आज, अतिथि बन सजनि, तुम्हारे गृह में आया नव आषाढ़ !

उठो, उठो, छोड़ो अवगुन्ठन; मुक्त करो कल केश-कलाप !
पहुँचा प्रथमासार धरा का धोने पाप - ताप - अभिशाप !
छूटे कारा से निदाघ की वन्दी प्रकृति , शैल , कान्तार !
आज, कान्त आये गृहवासिनि ; उठो,करो लीला-अभिसार !
अरी , माँग लो अपने प्रियतम से सुन्दरता का वरदान ;
हँस लो ,हँस लो आज सुहासिनि; कर लो नग्न, सुधा से स्नान !

जबकि दिखाना आज तुम्हें था अपने उर का प्रेम प्रगाढ़;
मानिनि , हाय मान कर बैठीं तुम लज्जा का घूँघट काढ़ !
छुईमुई-सी सकुची-सिकुड़ी बाल - मालती - सी मम्लान
किस अदृश्य की शून्य परिधि को निरख रहीं उत्सुक अनजान !
सुनो , व्योम के महावक्ष पर सदल बादलों का वह गान ;
कर लो, कर लो अहे सुहागिनि, प्रिय के प्रेम-वारिका पान !

अहा, किसी स्वर्गीय दूत-सी प्रथम बूँद यह पहुँची आज ;
नाच उठा संसार निखिल, आनन्दित सारा लोक - समाज !
अपराजिता अपरिचित, पुलकित चम्पक के सम्पुट-सौदाम ;
अंकुर फूट चले तन्वंगी तरुण - वकुल के ललित-ललाम !

ज्वाला-दग्ध हृदय तर करलो, शीतल कर लो उन्मद प्राण;
सुनो, सुनो नगराज-शिखर से जलधर का आकुल आह्वान !

सीमा रही न सुख की कृषकों के, बौराये पिक-शुक-बाल ;
झुकी रसालों की फल - वाली मंजर-बौर रसालस डाल !
आल - बाल केशर के सिहरे, हरे-भरे द्रुम-सुमन - शरीर !
ले आया मरकत सिंहासन उठा स्वर्ग से चपल - समीर !
एक बूँद की आशा में थी सहती जो प्रचण्ड शुचि-पीर ;
आज विकल हो दौड़ी सरिता बढ़ा मार्ग में भुजा-प्रतीर !

एक बूँद ही अभी, किन्तु फिर आवेंगे सहस्र पश्चात ;
अमृत सलिल से ओत-प्रोत हो जायेगा अवश्य तव गात !
बरसेगी अजस्र जल - धारा , जलमय होगा मरुदाकाश !
दूर तुम्हारा पातक होगा , चातक की मिट जाये प्यास !
उठो, उठो हे वासकसज्जे , अहा, पहन लो नव परिधान ;
इस बदली में कजली गाओ, छेड़ो तो विहाग की तान !

सचमुच आज तुम्हारे घर में आये ये मीठे मिहमान ;
एक बूँद में अखिल विश्व का लाये मंगलमय अवदान !
रजकण में सुमेरु गिरि, घट में रत्नाकर का गुरु विस्तार;
द्वार खड़े वसुमति, जीवन का लेकर गन्ध - हार उपहार !
अरी रूपगर्विते , सजातीं क्यों न विविध पूजा के साज ?
सारा पावस एक बूँद में फूट पड़ा लो, देखो आज !

विद्युत-वलय,वलाका - माला; विकल मरालों का मंजीर !
ले आया सखि, स्वर्ण-कलश में कौन त्रिपथगा का शुचि नीर ?
छोड़ो मत उच्छ्वास, मनाओ उत्सव-हास, न रहो उदास;
कहीं अयाचित परदेशी का बने न बाधामय निर्वास !
गाओ अब सोल्लास आगमन गीत, वरों को करो प्रणाम;
आज, तुम्हारे श्री निवास में अहा, स्वयं आये घनश्याम !

प्रेम - संगीत

प्राण, मरु में भी तुम्हारा स्नेह - जल बरसा करे ;
और यह चातक दिवानिशि बूँद - हित तरसा करे !
घास भी जिसकी कृपा से है नहीं वंचित कहीं ;
क्या कमी , जो यह पिपासित ओस भी पाये नहीं !

जो तुम्हें मिलता इसीमें प्राण , अति आनन्द है ;
जान लो , तो दुःख पाये—कौन ऐसा मन्द है ?
प्रिय, तुम्हारे मंजु मुख पर हास हो , उल्लास हो ;
और, तब मेरे अधर पर भी अमिट - सी प्यास हो !
हो घृणा मुझसे हृदय - धन , पास भी रहने न दो ;
क्यों न कह दो—दूर हो ; मैं मूक हूँ , कहने न दो !

प्रेम हो ऐसा कि पत्थर का कलेजा भी हिले ;
नेम हो कुछ यों कि ऊसर भी कमल-वन-सा खिले !
घाव , जो , उभड़े—भरे मत; रोज काँटों से छिले !
चाव वह, मुँह बन्द जिसका हो; न जो प्रिय से मिले !
आज चल कर ही रहेगा प्राण , जादू प्यार का ;
रोक लो चाहो अगर , उन्माद पारावार का !
आज , सरि में भी पिपासित मुग्ध मेरा मीन है ;
स्नेह है—सन्तोष है , बस , यह इसीमें लीन है !
विश्व की ममता भुला दूँ , स्वर्ग का वह पथ न दो ;
प्रेम को ठुकरा चलूँ मैं—मुक्ति का वह रथ न दो !

प्रेमियों के लिये जग में मान क्या, अपमान क्या ?
दे दिया जिसने सनम को दिल, रही फिर शान क्या ?
प्रेम ही सर्वस्व जिसका , जीत क्या, फिर हार क्या ?
जिस हृदय को खो चुका, अब और का अधिकार क्या ?
हार कर पाऊँ तुम्हें तो , हार में भी जीत है !
गा रहा वन्दी तुम्हारा प्रेम का संगीत है !
तृप्ति लूँ ऐसी न जग में , फिर न मधु की चाह हो ;
प्रेम की पीड़ा न हो—प्रिय - मिलन का उत्साह हो !
दर्द हो मेरे हृदय में ; एक अन्तर्नाद हो ;
और उर में प्रिय , तुम्हारे गर्व हो , उन्माद हो !
प्रिय, स्वयं कैसे कहूँ , किस - भाँति मैं तल्लीन हूँ ;
फूल हो , मैं धूल हूँ ; तुम विश्व - पति , मैं दीन हूँ !
यदि तुम्हें हो दुःख , चाहूँ फिर न मेरी याद हो ;
किन्तु , मेरा घर तुम्हारी याद में बरबाद हो !
माँगता यह प्रेम - भिक्षुक , कुछ अगर देना चहो ;
मैं मरूँ स्मृति में तुम्हारी—किन्तु, तुम सुख से रहो !
यह नहीं प्रियतम कि तुमको बैठ कर देखा करूँ ;
बस गये जब तुम हृदय में , और क्या लेखा करूँ ?
विश्व में करुणा-जलद तव घन-सजल रिमझिम करे ;
और यह मेरा पपीहा रात - दिन पी - पी करे !

कविगौरव

जिस प्रकार राकेश विभासित कर देता रज को भी म्लान;
हो जाता बालार्क करों से शैल - शिखर भी स्वर्ण-समान !
नव - वसन्त भर देता जैसे नीरस - तरुओं में भी प्राण ;
वैसे महा - असुन्दर को भी करता मैं सौन्दर्य—प्रदान !

अन्तरिक्ष जल देता नग को , नग से पाता पारावार ;
जहाँ विश्व की धाराएँ मिल कर हो जातीं एकाकार !
पुण्य - तोय जिस भाँति त्रिपथगा , उसी भाँति सारा संसार
मसि - सरिता में शुचि मेरी कर मज्जन पा जाता निस्तार !

भूल रहे सुख सुमन-सदृश ही शाखाओं से कुटिल त्रिशूल ;
निखिल भुवन की मूर्त्त कामना बनी पाद-पद्मों की धूल !
खिलते ज्यों कमनीय कल्पद्रुम में शत-शत विद्रुम के फूल;
त्यों-ही कविता-तरु में मेरे फल लगते इच्छा - अनुकूल !

आश्रय पाते जहाँ जगत के तिरस्कार , चिन्ता , अभिशाप;
शोक-दुःख - क्रन्दन मानस में करते नित आलाप-विलाप !
सम-विभाग से उटज-हर्म्य पर पड़ता ज्यों दिनमणि का ताप,
त्यों मेरे कल्पना - क्षितिज में नभ ही हो जाता सुरचाप !

मेघों का उन्माद, पिकी की रस-करुणा, कृषकों का स्वेद;
भव-विभूति, मूर्च्छना-वेदना, हर्ष-विषाद, गोदना—खेद !
मेरी भावुकता में न विषमता, मेरी कला न जाने भेद;
बन जाता उत्थान - मिलन मेरे नयनों में पतनोच्छेद !

प्रस्तर नर-प्रतिमा बन जाता कर पावन पद - रज का स्पर्श;
हो जाता माया लख मेरी विबुध - वरों को रोम-प्रहर्ष !
यह उसकी ही कृपा, मिला जो प्रतिभा का अद्भुत उत्कर्ष;
यौवन-गीत श्रवण कर मेरा कायर भी होता दुर्धर्ष !

मेरी रचना में यौवन की मादकता , उत्क्रान्ति—विकास ;
सृष्टि-विनाश, विलास मदन का; तत्त्वज्ञों का आत्म-प्रकाश !
प्रेम-प्रपंच, विमंच प्रलय का, भिक्षुक का मुख-चित्र उदास !
कनक - लेखनी छू कर मेरी उज्वल हो जाता इतिहास !

कर देता आमूल अन्त मैं जग - संघर्षण, कलह - प्रमाद ;
खिलती जग-अनुभूति-वल्लरी पा कर हृदय-रक्त का स्वाद !
हुआ कहीं उत्पन्न न अब तक मेरे नियमों का अपवाद ;
प्राप्त किया अमृतत्त्व पान कर जग ने मेरा काव्य - प्रसाद !

षोड़शी

षोड़शी तुम हो गईं अब पूर्ण हे सुकुमारि !
हो चला परिपूर्ण जीवन - वाहिनी का वारि ;
उमड़ श्रावण की नदी-सा निकल, बह, निर्बन्ध ;
सखि, तुम्हारे विकल यौवन का समागम अन्ध !
लालसा-रस से मदालस आज भूतल नारि ;
षोड़शी तुम हो गईं अब पूर्ण हे सुकुमारि !

आज, अपनी आयु का कर शेष षोड़श वर्ष ,
हे प्रिये ! तुमने किया आग्नेय गिरि का स्पर्श ;
एक कुज्झटिका; दिशाओं में तरल उल्लास !
धूम - मद - विस्फोट से आवृत धरा-आकाश !
हो रहा जीवन-शिखर से भू - पतित आदर्श
आज, अपनी आयु का कर शेष षोड़श वर्ष !

पार कर तुम आज वय के पंचदश सोपान
कर रहीं यौवन-सरोवर में सुहासिनि , स्नान ;
तैरतीं रति की लहर में राजहंसिनि - बाल ;
ये उमंगों की मछलियाँ नील, पीली, लाल !
काम के आवेग से थर-थर विकम्पित प्राण
पार कर तुम आज वय के पंचदश सोपान !

कर गया मन्मथ तुम्हारा सखि, स्वयं शृङ्गार ;
और, दक्षिण-वायु श्वासों में सुरभि-संचार !
मधुर-मधुऋतु ने किये झंकृत हृदय के तार ;
कोकिला ने दी तुम्हें स्वर-माधुरी सुकुमार !
चपल चितवन से तुम्हारी सिहरता संसार ;
कर गया मन्मथ तुम्हारा सखि, स्वयं शृङ्गार !

षोड़शी तुम हो गईं हे सुन्दरी सखि, आज !
मिल गया तुमको निखिल सौन्दर्य-जग का राज ;
चपल चरणों को मनाओ, गति करो गम्भीर !
कर उठें झंकार यों ही अब न चल मंजीर ;
और आने दो कपोलों पर गुलाबी लाज ;
षोड़शी तुम हो गईं हे सुन्दरी सखि, आज !

बालिका-सी शुभ्र-ज्योत्सना-कुञ्ज में सुकुमार !
रूपसी, तुम अब न गूँथो तारकों का हार !
उपवनों में उड़ रहीं जो तितलियाँ रंगीन ,
हाय, इनको तुम न छेड़ो, स्वप्न में ये लीन !
क्या कहेगा देख तुमको आज यह संसार ?
बालिका-सी शुभ्र-ज्योत्स्ना-कुञ्ज में सुकुमार !

ओढ़नी सिर पर सँभालो, बादलों - से केश ;
हीन वस्त्रों से न होने दो विमोहन वेश !
वक्ष पर रख लो सुमुखि, अंचल अचंचल मौन ;
आज तुमको कर रहा इंगित, न जानें कौन ?
तन्वि, सुन लो तो किसी के प्रेम का संदेश !
ओढ़नी सिर पर सँभालो, बादलों - से केश !

खिल रहे जो त्रिवलि-सरि में ये कमल के फूल !
आज, उनकी गन्ध से व्याकुल जगत के कूल ;
कंचुकी कस लो मृगेक्षणि, अंग में तत्काल ;
उड़ न जायें कोक के ये चारु - चित्रित बाल !
आज आना चाहते मधुकर विजन-पथ भूल ;
खिल रहे जो त्रिवलि-सरि में ये कमल के फूल !

षोड़शी तुम हो गईं सखि, सीख लो मनुहार ;
अब तुम्हें करना पड़ेगा अलि, किसी को प्यार !
खोल देगा एक दिन कोई तुम्हारा द्वार ;
कर सकोगी तब उसे कैसे न तुम स्वीकार ?
वह तुम्हारा आप ही बन जायगा आधार !
षोड़शी तुम हो गईं सखि, सीख लो मनुहार !

भय करो मत, हो गईं यदि आज आँखें चार ;
तन्वि, सुमनों से रचो तुम मृदुल शयनागार !
तुम किसीकी उँगलियों को दो न यों झकझोर ;
वह छिपा प्रेयसि, तुम्हारे प्राण में चितचोर !
हो सके जिससे सफल वन-वीथि में अभिसार ;
भय करो मत, हो गईं यदि आज आँखें चार !

देख कर प्रेयसि, तुम्हारी मन्द - मृदु मुस्कान !
गिर पड़े, लो, कुसुम-सायक के करों से बाण !
काम-लतिका-सा तुम्हारा मृदुल-मांसल अंग ;
आज, यौवन के जलद में इन्द्रधनुषी रंग !
हो रहा खण्डित वियोगी विश्व का अभिमान
देख कर प्रेयसि, तुम्हारी मन्द-मृदु मुस्कान !

कर रहा यौवन तुम्हारे भाल पर जय-घोष ;
मैं तुम्हें दूँ आज कैसे नग्नता का दोष !
आज, आँगन में तुम्हारे है मचा विद्रोह ;
जा रहा फिर भी न क्यों सुकुमारि मन का मोह ?
प्रेम-परिमल से भरो उर का विमल मधु-कोष ;
कर रहा यौवन तुम्हारे भाल पर जय-घोष !

षोड़शी तुम हो गईं, सम्पूर्ण मद - हिल्लोल ;
मार्ग में खेलो न कवरी-ग्रन्थि को यों खोल !
हाय, बन वाचाल लो मत तर्क का आनन्द ;
रूप-सरिता में न तुम अठखेलियाँ स्वच्छन्द !
आम्र-वन में मत लगाओ रेशमी हिन्दोल ;
षोड़शी तुम हो गईं, सम्पूर्ण मद-हिल्लोल !

साधना होगी, कहीं पूजा, तुम्हारा ध्यान ;
और कितने नर करेंगे सखि, तुम्हें आह्वान !
तरुण-दल में चल तुम्हारे रूप का गुण-गान ;
तुम न लोगी क्या प्रिये, प्रेमी-हृदय पहचान ?
दीप-सी छवि-ज्वाल पर देगा शलभ-जग प्राण ;
साधना होगी, कहीं पूजा, तुम्हारा ध्यान !

मदन-मंदिर में सुनाओ मिलन का संगीत ;
प्रेयसी, अज्ञात अपने देवता को जीत !
आरसी ले कर करों में रूप अपना देख ;
आज सखि ! एकान्त गृह में तुम लिखो रतिलेख !
गोपिका-सी श्याम को दो प्रेम का नवनीत ;
मदन-मंदिर में सुनाओ तुम मिलन-संगीत !

कर दिया अनुलेप रति ने सखि, स्वयं साकार
रक्त-चन्दन से कठिन कुच-कलश का विस्तार ;
चरण में जावक रचो, उर में विजय-आह्लाद !
और काजल लोचनों में, दृष्टि में उन्माद !
भर दिया बिम्बाधरों में अमृत रस का सार ;
कर दिया अनुलेप रति ने सखि, स्वयं साकार !

षोड़शी तुम हो गईं नख से लिखित उर-प्रान्त ;
तुम करो स्वागत, पथिक जो आय गृह में श्रान्त !
रूप-तृष्णा से पिपासित विश्व यह म्रियमाण ;
तुम उसे दो औ स्वयं अब तो करो मधुपान !
कटि सुरा-घट से विकुंठित, विनत, भाराक्रान्त ;
षोड़शी तुम हो गईं, नख से लिखित उर प्रान्त !

मलयानिल

हे मलय-वायु, ओ प्रात-पवन !
है कहाँ तुम्हारा सौम्य-सदन ?
किस प्रिया-विरह से कातर हो
तुम विचरण करते हो वन-वन ?
हे मलय-वायु, ओ प्रात-पवन !
तुम चंचल-पद से कभी दौड़ ,
ले सहकारों की गन्ध - बौर ,

लहरा जाते हो शस्यों पर
मृदु-मंजरियों का पहन मौर ;
तुम चंचल-पद से कभी दौड़ !

आहत अलियों को घेर-घेर ,
कलियों को रह-रह छेड़-छेड़ ,
खिल-खिल हँसते ही रहते हो
तुम मादकता से बेर-बेर ;
आहत अलियों को घेर - घेर !

वह स्वर्ग-सुन्दरी कहो, कहाँ ?
मन भटक रहा तव अहो, जहाँ !
तुम खोज रहे हो पागल-से
जिसको अवनी में जहाँ-तहाँ !
वह स्वर्ग-सुन्दरी कहो, कहाँ ?

प्रिय मन्द-मन्द बहते जाना ;
दुख-आपद को सहते जाना ,
गिरि-गह्वर से, वन-उपवन से
निज करुण कथा कहते जाना !
तुम मन्द-मन्द बहते जाना !

सरिता की तरल-तरंगों पर ,
जब नृत्य किया करते सुन्दर ;
क्या कहूँ, कौन-सा दृश्य वहाँ
समुपस्थित हो जाता मनहर ?
सरिता की तरल - तरंगों पर !

यह सनन-सनन सन-सन कैसा ?
परियों - सा छूम-छनन कैसा ?
बस, अहा ! एक ही झोंके में
यह सिहर उठा त्रिभुवन कैसा ?
यह पद - पद पर नर्तन कैसा ?

तुम दूर देश से आते हो ;
कुछ पता नहीं, क्या गाते हो ?
कल कुंज-कुंज में अँटक-अँटक
क्या पल भर किसे सुनाते हो ?
तुम दूर देश से आते हो !

यदि हो न बन्धु,कुछ तुम्हें क्लेश ,
तो, कभी प्रिया का ला सँदेश ,
भर देना मेरा भी सूना—
सा चिर-विरही अन्तर-प्रदेश !
हाँ, कभी प्रिया का ला सँदेश ?

शारदीया

शरत का यह निर्मल आकाश ;
शुभ्र, शुचि, नीलोज्वल आकाश !
तिर रहा राजहंस अभिराम;
कौन वह श्वेत, सरल, निष्काम ?

गगन के मानस का विस्तार ,
विभा - चंचल दिगन्त - आवार ;
पार कर अयुत - वारि - कान्तार
अचिर, अस्थिर, अशब्द, अविकार !
तिर रहा निराधार, निर्भार ;
हमारा राजहंस सुकुमार !

शरत का यह उर्म्मिल आकाश ;
श्वेत, मृदु, चिर - फेनिल आकाश !
डोलती रजत - तरी यह कौन ?
मौन-मृदु, मन्द-मन्द, मृदु-मौन ;
नील पुष्कर का पारावार ;
तरङ्गों का चल विपुलाकार !

फिसल - सी जाती बारम्बार
बुदबुदों पर मरकत-पतवार!
मचलती ज्योति-ज्वार में स्फार
हमारी रजत - तरी सुकुमार!

विश्व-सरसी में विमल - नवीन
आज, चंचल मानव-मन - मीन;
शरत सरसिज-सा विकसित, स्फीत;
मिलिन्दों का उन्मन संगीत!

आज रे उन्मद मद से प्राण;
लगे रवि-किरणों के सोपान!
भेद युग - तमसा का पाषाण
फूट निकला मेरा दिनमान!
हृदय, गाओ चिर-सुख के गान;
आज, उन्मद रे मद से प्राण!

आज रे अम्बर का उल्लास;
दिशाओं का विद्रुम - मधुहास!
खिला तृण-तृण में अंकुर मौन
प्रतीची से आया वह कौन?
तैरता जिस पर ऋजु वातास,
मंजु-मुखरित, हिल्लोल - हुलास;
आज, वन - वन में छायावास,
वापियों का उच्छल उच्छ्वास!
आज रे लाया कनक - प्रकाश
नील-नव अम्बर का उल्लास!

कौन यह, किसका नृत्य - अधीर
बज रहा मधुर-मधुर मंजीर?
स्पर्श से जिसके अलस समीर
पुलक-कम्पित उर, रोम, शरीर!
आज यह जलदों का अभियान
शरत - जलदों का निरवधि यान!
मकर-पथ में उन्मुक्त निदान
उड़ा नवऋतु का सुमन- विमान!
प्राण, गाओ चिर-सुख के गान;
आज नवऋतु के गौरव - गान!

खोल दो लोचन-उर के द्वार;
मुक्त जीवन - वेदन - सम्भार!
शिथिल कर दो चिर-कबरी-पाश;
आज रे अमित-अमित उल्लास!
स्वर्ण - सुषमा के ये दिन - रात,
चिरन्तन आभामय, अवदात;
व्योम से झड़ते सुख के फूल;
यहाँ रे आज कहाँ दुख-शूल?
आज, रस से छल-छल आकाश;
शरत का यह उज्वल आकाश!

१४७

हँस विदा माँगने आई वह;
विस्मित, दृग आये मेरे भर!
सस्मित-सा किया प्रणाम मुझे;
आकुल, मैं दे न सका उत्तर!
इतनी जल्दी में वह थी; मैं,
मैं कर न सका कुछ भी विचार!
वह चली गई, रह गया चकित
मैं केवल उसका मुँह निहार!

विच्छेद

आज खुशी से तज कर अपना सुख - संसार चले साकी !
छोड़ दौर तेरे सागर का हम उस पार चले साकी !
तूने जो मद - पान कराया, भूलेंगे अहसान नहीं;
अन्तिम बार प्रेम से कह 'वन्दे, सरकार!' चले साकी !

दुख है, सच, तेरे मैखाने को अब छोड़ रहे साकी !
जुग - जुग के सनेह की डोरी छिन में तोड़ रहे साकी !
जाना पड़ता, आज इसीसे तो जाते हम माँग विदा;
होंगे कितने साथी पथ में हमें अगोर रहे साकी !

उबले अब न किसीका शोणित; कोई कर न मले साकी !
आह न निकले किसी जिगर से, अनुपस्थिति न खले साकी !
खुश रह तू, तेरी मैफिल भी जिये, शाद मिहमान रहें;
हम दरवेश—लुटा कर सब कुछ अब परदेश चले साकी !

लिया, भिखारी को बस तूने जो कुछ कभी दिया साकी !
जब तक तेरी कृपा रही—दुनिया में जिया किया साकी !
क्यों किस्मत पर लुटी हमारी अब अफ़सोस किसीको हो ?
तेरी सुरा, सुराही तेरी; हमने सिर्फ़ पिया साकी !

ले कर जन्म एक दिन सहसा कौन न मौन मरा साकी ?
पिया ज़िन्दगी-भर, न हिया फिर भी तो कभी भरा साकी !
था विश्वास बड़ा ही हमको अपनी अजर - अमरता का;
हम तो उजड़ चुके ही, पर तेरा घर रहे हरा साकी !

जनम जनम तक तुझको दिल से याद करेंगे हम साकी !
तेरे लिये आज यह घर बरबाद करेंगे हम साकी !
फ़िक्र न कर कुछ अगर वतन का यह गुलशन वीरान बना;
किसी चमन को मर कर भी आबाद करेंगे हम साकी !

खो कर भी अस्तित्व, मुक्ति का नाद करेंगे हम साकी !
मौत कबूल, न किन्तु, कहीं फरियाद करेंगे हम साकी !
भले कैद में रख ले जाहिद, कस ले बन्धन में बस कर;
किसी हृदय को बँध कर भी आजाद करेंगे हम साकी !

समझ जगत ने किया तिरस्कृत कंटक—शूल हमें साकी !
तू क्यों शीश चढ़ाता ? कर दे पथ का धूल हमें साकी !
हम-से कितने फूल खिलेंगे तेरी इस फुलवारी में;
रो मत; रो मत; आह, दया कर जाना भूल हमें साकी !

हम न रहें, परवाह नहीं; तेरा अरमान रहे साकी !
यों-ही मधु के प्यासों का आदान - प्रदान रहे साकी !
भूले - भटके आ जायें जो, सचमुच तेरे द्वार कभी;
ध्यान हमारा रहे न यदि, तो भी पहचान रहे साकी !

कभी न मैंने मन्दिर - मस्जिद पर कुछ ध्यान दिया साकी !
किसी गरीब - अकिंचन भाई का अपमान किया साकी !
और न अपने भोले अन्तर्यामी को ही ठगा कभी;
यही कसूर कि आजीवन तेरा गुन - गान किया साकी !

याद रहेगी तेरी चितवन, तेरी अदब - अदा साकी !
बसी रहेगी आँखों में तेरी तस्वीर सदा साकी !
हुई वेदना—प्रदा स्वयं ही आज हमारी यह अनुभूति;
क्यों न मान लें—था न भाग्य में तेरा साथ बदा साकी !

१४६

एक कोमल बालिका;
नव शरत के जब प्रथम मधु-गन्ध - वासित प्रात में;
मलय-रथ पर तुम चलो मृदु-मन्द दक्षिण-वात में!
बिखर जाऊँ शुचि-पदों पर सुरभि का संसार ले कर;
प्राण, मैं शेफालिका!

एक विद्रुम - हासिनी;
आ किसी दिन अतिथि - से मेरे उटज के द्वार पर;
जब चकित-अभिमूक रह जाओ विफल सत्कार पर!
पथ तुम्हारा रोक लूँ निरवधि युगों का प्यार ले कर;
प्राण, मैं वन-वासिनी!

एक चल - पद - गामिनी;
जलद-वन में मार्ग-च्युत हो जब भटकते - से फिरो;
अश्रु - पारावार में लघु पर्ण - दल - से तुम तिरो!
व्योम से इंगित करूँ उन्मुक्त दीपाधार ले कर;
प्राण, मैं सौदामिनी!

एक विप्लव - वादिनी;
हुंकरित हो जाय अरि - जय-नाद से जग ध्वंस जब;
कर प्रकम्पित, शिथिल साहस, हो विमूर्च्छित शक्ति सब!
अग्रदूती बन बढ़ूँ द्रुत रण - मरण-शृङ्गार ले कर;
प्राण, मैं उन्मादिनी!

तू और मैं

तू अमल-कमल-कमनीय-नाल ;
मैं मदोन्मत्त कुञ्जर कराल !
तू अमित पथिक आश्रय-विहीन ;
मैं मरुस्थली जलती विशाल !
तू कंस क्रूर; मैं बाल-श्याम !
तू दशमुख लम्पट - राज चोर ;
मैं निशिचर - द्रोही वीर राम !

तू नव-कोमल किसलय-कुमार ;
मैं हूँ निदाघ का ज्वलित मास !
तू कोकिल का कल-कण्ठ-गान ;
मैं योद्धा का हूँ अट्टहास !
तू शान्ति और मैं घोर क्रान्ति ;
तू कविता के सुकुमार भाव ;
मैं विद्रोही की विकल भ्रान्ति !

तू शिशु अबोध की सरल हँसी ;
मैं विश्व-विदित भैरव-निनाद !
तू प्रणयी का संगीत मधुर ;
मैं पागल का भीषण प्रमाद !
तू प्यारी के प्रिय-भुज-मृणाल ;
मैं विश्व-शत्रु, तरवार - धार ;
हूँ रक्ताञ्जलि देता कराल !

तू चन्द्रमुखी का हृदय - हार ;
मैं रणचण्डी की मुण्ड-माल !
तू अलि-गुंजित नन्दन-निकुंज ;
मैं धू-धू करती चिता-ज्वाल !
तू जीवन-प्रद ; मैं मृत्यु-दूत !
प्रेतों - सा दाँतों को निपोड़
खिल-खिल-खिल हँसता मैं कपूत !

तू है मुट्ठी-भर शुष्क घास ;
मैं हूँ पावक - पर्वत विशाल !
तू क्षुद्र हृदय की एक आस ;
मैं सर्वनाश का कर कराल !
तू तुङ्ग शृङ्ग ; , मैं वज्रपात !
तू चुम्बन की बौछार सरस ,
मैं उल्काओं का अधःपात !

तू नव-दम्पति का केलि - भवन ;
मैं जम्बुक-रव-मुखरित मसान !
तू अमा-निशा-घन-अन्धकार ;
मैं कोटि - सूर्य जाजल्वमान !
तू व्याकुल-विह्वल-सिन्धुराज ;
मैं रणोन्मत्त रक्ताक्त पार्थ ;
निश्चित है तेरा निधन आज !

तू केशव का सुकुमार वक्ष ;
मैं भृगु का उद्धत पद - प्रहार !
तू शस्य-श्याम जन-पूर्ण क्षेत्र ;
मैं स्वर्ण-भद्र की प्रखर धार !
तू सहस्रबाहु; मैं परशुराम !
कन्धे पर ले निर्मम कुठार
निःक्षत्रिय करता जग तमाम !

तू दुर्योधन की क्षीण जाँघ ;
मैं भीमसेन का गदाघात !
तू है छोटा-सा शिलाखण्ड ;
मैं हर-हर करता जल-प्रपात !
तू व्याल और मैं पक्षिराज !
तू भयाक्रान्त दयनीय विहग ;
मैं क्षुधा-निपीड़ित निठुर बाज !

तू नूपुर की झंकार मधुर ;
मैं मृत्युञ्जय का नृत्य घोर !
तू वसन्त की धूमिल सन्ध्या ;
मैं तीक्ष्ण ग्रीष्म की उग्र भोर !
तू दास और मैं स्वामी ;
तू है दुर्बल कृशकाय दीन ;
मैं वीर धनुर्धर नामी !

तू वामा की बाँकी चितवन ;
मैं शंकर के आग्नेय नेत्र !
तू ताजमहल जग की विभूति ;
मैं शव - परिपूरित कुरूक्षेत्र !
तू सरल-प्रकृति; मैं महावक्र !
तू मनमोहन की मधु - मुरली ,
मैं उन हाथों का निठुर चक्र !

तू बचपन की बेहोश घड़ी ;
मैं यौवन के लघु दिवस मस्त !
तू अपराधी भय - भीत एक ,
जल्लाद विकट मैं खड्ग - हस्त !
तू शान्त और मैं प्रलय-रुद्र ;
तू निःसहाय नौका; अगाध
मैं उमड़ाता दारुण समुद्र !

तू बालक की हलकी पतङ्ग ;
मैं अंगद का गुरु चरण-चाप !
तू शकुन्तला एकाग्रमना ;
मैं दुर्वासाकृत घोर शाप !
तू कुसुम-कुंज; मैं काल-कीट !
मेरे भय से यह अखिल विश्व
रोता है छाती पीट-पीट !

तू मीनकेतु , कर-पुष्प - बाण ;
मैं महादेव का तृतिय नयन !
मैं मरघट में नित घूम - घूम
करता हूँ चिनगारियाँ चयन !
तू अज्ञाता का चिर - सुहाग ;
मैं विधि-विधान दुर्जय, कठोर,
हूँ सर्वनाश की निठुर आग !

तू अक्षय का यौवन अधीर ;
मैं महावीर की प्रबल गदा !
तू अन्ध - जगत; मैं धूमकेतु;
आता हूँ जग में यदा - कदा !
तू दीप-शिखा; मैं द्रुत समीर !
तू अनियन्त्रित शासक जघन्य;
मैं हूँ विद्रोही वीर - धीर !

तू माया का छाया - प्रपंच ;
मैं गौतम का सर्वस्व - त्याग !
तू मार - कुमारों का विकार ;
मैं हूँ शुक का निश्चल विराग !
तू रामानुज, मैं शक्ति-बाण !
फिर कहता हूँ—हो सावधान ;
रे सावधान; ले भाग प्राण !

तू असम विभाजन वैभव का ;
मैं घोर साम्यवादी प्रहृष्ट !
तू हत्यारा पापी समाज ;
मैं चपल नवीनोन्माद धृष्ट !
तू शून्य और मैं सृष्टि-सूत्र !
तू दक्ष-यज्ञ, स्वेच्छा - विचार ;
मैं वीरभद्र धुर्ज्जटी — पुत्र !

खोयी निधि

कहाँ गया मेरा शैशव ?
अतिशय चारु विहग-कलरव ?
लूट लिया किसने हा ! मेरे
जीवन का मधुवन अभिनव ?
चुपके-से आ चुरा लिया कब
किसने ऋतुपति का उत्सव ?
छीन सभी उल्लास हृदय के
किसने भरा नवल गौरव ?
यौवन का मादक आसव ?
कहाँ आज, वे दिन—राका में
जब अपना मृदु करपल्लव
अन्तरिक्ष की ओर बढ़ाता
निरख मनोभव का उद्भव !
चले गये किस ओर कितव-से
मुझे चकित कर वे अवयव,
कहाँ गया मेरा शैशव ?
किसने छीन लिया बचपन ?
कुन्द - रतन - सा सुन्दर-तन !
वह सुमधुर मुस्कान; जिसे लख
खिल उठते थे म्लान सुमन ;
वह पवित्र मुख-विधु, लख जिसको
पुलकित हो जाते पुरजन !
जिसकी आभा से आलोकित
रहता मेरा क्षुद्र सदन,
वे निरीह उत्पल - लोचन !
जो आनन्दित कर देते थे
क्षण ही भर में निखिल भुवन !

मेरे नयनों का सावन,
जिसके बिना आज है लगता
यह मृण्मय संसार विजन !
गन्ध - हीन वन, अन्ध - पवन ;
मेरी जननी का आँगन ;
स्नेह-मयी की गोद मधुर, वह
क्षुधा-विनोद, सरस व्यञ्जन,
छीन लिया किसने बचपन !

कहो, कौन वह महिमावान ?
किया आह, मेरे मधु - मंगल
दिवसों का किसने अवसान ?
निष्ठुरता से आ अनजान ?
लौटा दो सुकुमार, आज वह
मेरे आनन का उपमान ?
अनवधान विहरण, कल-कूजन ;
रुचि-रुचि भावों का सोपान !
दे दो, दे दो देव ! अरे वह
मेरे उपवन का पिक-गान !
सहज-सुलभ वह नयन-सरलता,
बाल - चपलता का उद्यान !
जब कदम्ब के विपुल - विटप से
झूला लगा छेड़ता तान,
कोमल स्वर - लहरी गतिमान !
पत्र-पत्र पर किसलय - प्राण ;
जिसे श्रवण कर हो जाता था
भग्न प्रकृति का दुस्तर ध्यान,
मुखर व्योम - वन्या सुनसान !
कुचल चला चरणों से मेरे

जीवन का वह प्रथम विहान ;
कहो, कौन वह महिमावान ?
जीवन का असीम विनिमय;
प्रथम-प्रथम जग का परिचय !
फूट पड़ा कण-कण पर मेरे
अधरों का उत्सुक विस्मय ;
तितली के सुरधनु - पंखों पर
वह त्रिलोक-विचरण निर्भय !
मेरे शिशु का सरल हृदय ,
स्मित की मंजूषा अक्षय !
चपला-चपल किलोल-माधुरी,
तुतले-बोल, सिता - आशय !
वह क्रंदन असुरासुर-वन्दित,
कपट-रहित नवनीत-विनय !
पुनः कौन भर देगा मेरे
उर में वह करुणा अव्यय ?
जीवन का नवीन विनिमय !

बदली

अब आये ये दिन बदली के सजनी , मेरा मानस बदला;
बदले रवि-शशि, दुनिया बदली, आया रूप धरा का गदला !
धूपछाँह की आँखमिचौनी, घड़ी - घड़ी की बूँदा - बूँदी,
घूँघट ज्यों ही हटा, घटा की नवल वधू ने पलकें मूँदीं !
छू दी इन्द्रधनुष के कर से किसने मेरे दृग की डोरी !
मेघपरी - सी नाच उठी इच्छायें आज साँवली - गोरी !
बादल गरजा, तड़पी बिजली, उछल पड़ा मैं घर से बाहर !
छिन छिन पल-पल की यह वर्षा, पहर-पहर का रौदी-दाहर !
स्वप्न - भङ्ग हो गया गगन का , महासिन्धु ने ली अँगड़ाई;
यह किसका संकेत, शिखर से निर्झरिणी भी दौड़ी आई !
रात सिसकती , घुप्प अँधेरा , ऊँघ रही है पत्ती - पत्ती ;
जल उठती जब-तब बाँसों पर लाल लाल जुगनू की बत्ती !
बना भुवन भूतों का डेरा, गली - राह में पानी-कादो !
शूल - फूल दोनों ही ले कर आया लो, अब सावन-भादो !

१५३

कोमल, मञ्जुल, वेणु-विनीत,—
माँ , तेरे आँगन से गूँजे
चरखे का पावन संगीत !
चर - चर - चर, चरमर—चरमर ;
मर - मर - मर, मरमर—मरमर !
घर - घर से गुञ्जित हो घर्घर-
घर्घर का शुचि राग पुनीत !
नाचे गौरव - चिह्न हमारा
विजय-विजय के स्वर में प्यारा ;
मोहन के इस कर्म - चक्र से
भागें जग के दैन्य सभीत !
हल हो तेरे सुत के कर में ;
सूत कातती हो तू घर में !
फिर भी रण में कौन भला इन
सुत - सुतों से सकता जीत ?
जगे, जगे, हाँ; जगे पुनः अब,
एक बार वह विपुल-कंठ - रव !
सत्य - सरल कर विधि की निर्मम
रेखाओं को भी विपरीत !

वसन्त

हुआ आगमन शुभ वसन्त का, प्रकृति - नटी ने जाना !
लिया साज निज रूप-रंग को, मन में अति सुख माना !
सघन आम्र - कानन में कोयल कुहू - कुहू है करती !
कलित कुंज में छिपे पपीहे की पी - पी सुन पड़ती !
कैसा मधुर मधुप का गुंजन औ कलियों का हँसना !
धीरे धीरे स्निग्ध सुशीतल मलय - पवन का बहना !
नाथ , कृपा तू ऐसी कर दे , मधुकर मैं बन जाऊँ !
गुन-गुन कर गुण गाऊँ तेरा , तुझको सदा रिझाऊँ !

१५५

मिल जाये मा, पद-रज-प्रसाद,
अपना पावन पद-रज-प्रसाद !

कितने वन, उपवन, विजन, देश,
नद, नदी, झील, सागर अशेष;
लंघन कर कितने शून्य स्थान,
निर्जन, गिरि, नगरी - पुर, श्मशान—

आया हूँ छूने पुण्य - पाद;
मिल जाये मा, पद - रज - प्रसाद !

खा कर ठोकर जग की अनेक
कुछ रहा न मानस में विवेक;
है टूट चुका वह स्नेह - ताग;
अब केवल ज्वालामय विराग !

जीवन में छाया है प्रमाद !
मिल जाये मा, पद - रज - प्रसाद !

मैं महा - मोह - माया - विभोर;
मेरे न अघों का ओर - छोर !
केवल तेरी ही कृपा - कोर
हर सकती यह दुर्भाग्य घोर !

अब झिल न सकूँगा यह विषाद;
मिल जाये मा, पद - रज - प्रसाद !

अपना ही भाराक्रान्त हाय,
मैं काँप रहा हूँ क्षीणकाय;
निरुपाय - वासना - गन्ध - अन्ध
मन दौड़ रहा मृग - सा अबन्ध !

कब से आता हूँ दुःख लाद;
मिल जाये मा, पद - रज - प्रसाद !

१५६

आज, कुसुमित मधु - कानन में
महोत्सव होता ऋतुपति का !
जुड़े हैं सकल सुमन - समाज;
निमन्त्रण आया है रति का !

पल्लवों की वीणा ले कर
बजाती हैं भ्रमरावलियाँ !
खोल हृत्पट अनन्त सौरभ
लुटाती हैं विकसित कलियाँ !

चतुर्दिक छाया है अस्फुट
गीति-स्वर-लहरी अम्बर में !
मग्न हो रहा विश्व सारा
माधुरी के मधु - सागर में !

फाग - सी मचा रहीं ऊधम
आम्र-कुञ्जों में पिक-परियाँ !
मन्द - मारुत के झोंकों में
बरस पड़ती हैं मञ्जरियाँ !

छिड़ रही है पञ्चम स्वर में
तान वन-विहगों की कोमल !
वहाँ—उस मृदु हरियाली में
प्रकृति का हिलता चल-अंचल !

परागों की मदिरा पी - पी
बनी हैं अलियाँ मतवाली !
बिछा कर गुलाल की चादर
विहँसती है वन की लाली !

आज नव कुसुमित कानन में
महोत्सव होता ऋतुपति का !

चलो, चल देखें सखि, सत्वर;
निमन्त्रण आया है रति का !

१५७

कुसुम - कली - सा मेरा मानस
विकसित कर मा, विकसित कर !
अपने पद - नख के सौरभ से
सुरभित कर मा, सुरभित कर !

झड़ - झड़ झड़ते हैं नादान,
नयनों के मग से ये प्राण ;
कभी भूल कर भी न खेलने
पायी होठों पर मुसकान ;
अपनी मृदु चितवन से उनको
सस्मित कर मा , सस्मित कर !

तेरा पावन प्रेम - प्रसाद,
पा विलीन हो सकल विषाद ;
विदलित हों मेरे प्रमादमय
जीवन के सारे अवसाद !
सरल, सुभग शिशु - सा मन मेरा
नन्दित कर मा , नन्दित कर !

कर दे मेरा विमल विकास ;
सुन्दरता , कोमलता , हास ;
गेह - गेह में जिससे फैला
दूँ मैं अपना सुभग सुवास ;
एक बार इस कलिका को भी
वन्दित कर मा , वन्दित कर !

कुहू - निशा की गतियाँ रोक,
बिखरा दे ऐसा आलोक,
तुरत तिरोहित होवें जिसमें
जीवन के सारे भय - शोक !
अपनी कंकण - किंकिणि से उर
मुखरित कर मा, मुखरित कर !

परिवर्तन

जब लाल लाल कर आँखें जग को अपनी दिखलाता,
हो ज्योतिर्हीन प्रभाकर तरु - ओटों में छिप जाता ;
तब धूसर सन्ध्या आती है तम का घूँघट डाले ;
छा जाते नभ में टुकड़े बादल के काले - काले !

फिर अन्तरिक्ष में हँसता, इठलाता शशधर आता ;
सारी वसुधा में अपनी चन्द्रिका - सुधा बरसाता !
है कण - कण में भर देता मदिरा का मतवालापन ;
मन में उन्माद मदन का , उर में सागर की धड़कन !

अवसान निशा का होते ही कनक - करों पर चढ़ कर
द्रुत खींच प्रकृति का अंचल लेता प्रभात है बढ़ कर !
दृग खोल विहँस उठता है संसार ललित लाली में ;
आ जाती नव - चेतनता पुष्पों में , तरु - डाली में !

खिल कर सुकुमार कली भी फिर धूल - धूसरित होती ;
हैं भ्रमर सभी रह जाते ढुलका नयनों से मोती !
पा स्पर्श पवन के कर का कितने प्रसून हँस देते ;
अपनी मृदु - मन्द सुरभि से श्रम पथिकों का हर लेते !

यों जब निदाघ ज्वालामय बिखरा पावस - कण जाता ;
चढ़ मारुत के कंधों पर घन बिरहा गाते आता !
टपका कर निर्मल जल की बूँदों को प्यारी - प्यारी
रँग हरे रंग से देता वसुधा की सारी साड़ी !

देखा है किसने दुनिया में सदा एक - सा जीवन ?
है रहा सर्वदा किसके वन में वसन्त - उद्दीपन ?
जो आज विश्व का स्वामी; कल पथ का वही भिखारी !
जो आज वन्द्य है , पाता कल वही निरादर भारी !

वह काल-चक्र है कैसा ? क्यों नियति- नटी का नर्तन ?
किसके बल पर है होता नित जग में यों परिवर्तन ?

यौवन-गीत

मा, मेरी ध्वंसक वीणा में यौवन का उद्धतपन भर दे;
स्वर के एक एक कम्पन में महानाश का नर्तन धर दे !

जिसकी तीक्ष्ण तान को सुन कर काँप उठें गिरि गह्वर सारे;
थर्रा दें दिगन्त को जिसके तारों के उन्मत्त इशारे !
जिसकी स्वर-लहरी पर नाचें टूक-टूक हो रवि, शशि, तारे;
प्रलय उपस्थित होवे जग में, नभ से गिरें ज्वलंत अँगारे !
थर-थर-थर वसुधा-हिय काँपे, पल में पट परिवर्तन कर दे !
मा, मेरी ध्वंसक वीणा में यौवन का उद्धतपन भर दे !

अट्टहास कर फिरें जगत में महानाश की पागल घड़ियाँ;
मृत्यु पिरोती घूमे चारो ओर अमित मोती की लड़ियाँ !
मेरे क्रोधानल की ज्वाला में स्वाहा हो सारी कड़ियाँ !
टुकड़े-टुकड़े हों जंजीरें; हथकड़ियाँ पथकी फुलझड़ियाँ !
तन में भीषण वह्नि फूँक दे; नस-नसमें पावक-कण धरदे !
मा, मेरी ध्वंसक वीणा में यौवन का उद्धतपन भर दे !

भागेगा भैरव कराहता मेरे तीखे उपहासों से;
आज सूख जायेगा सागर इन विदग्ध उर-उल्लासों से !
आग लगेगी नन्दनवन में, वन्दी सुर-दानव दासों-से;
महामरण भी काँप उठे मेरे कालान्तक निःश्वासों से।
विप्लव-वाहन क्रान्ति-कुमारोंको पुच्छल का उच्छल परदे;
मा, मेरी ध्वंसक वीणा में यौवन का उद्धतपन भर दे !

आज, उग्र झंकार पार कर क्षितिज शून्य-पथ से टकराये;
प्रलय-पयोधि-सलिल-सी स्वरकी लक्ष-लक्ष लहरें लहरायें!
भर जाये वसुधा के कोने-कोने में प्रतिध्वनि विकराली;
जिसके झोंकों में उतराये सर्वनाश की तान निराली !
गूँज उठे ब्रह्माण्ड भीति-भयहारी हुंकारों से—वर दे;
मा, मेरी ध्वंसक वीणा में यौवन का उद्धतपन भर दे !

देख शत्रु - दल शंकित होंगे मेरे ये उदण्ड भुज-दण्ड;
आहुति दे दूँगा चिताग्नि में जग की कायरता, पाखण्ड !
मेरे सम्मुख कौन टिकेगा रण में ? छीन काल का दण्ड
आज, करूँगा अट्टहास जब मैं विद्रोही वीर प्रचण्ड !
छाती में उच्छृङ्खल साहस, पग पग पर पागलपन धर दे;
मा, मेरी ध्वंसक वीणा में यौवन का उद्धतपन भर दे!
धधक उठेंगी एक साथ ही लाखों जग में आज चिताएँ;
धू-धू करके शून्य व्योम को चूमें अगणित अग्निशिखाएँ !
जलें हमारे पारतन्त्र्य की आज सभी धुँधली रेखाएँ;
मिट्टी में मिल जायँ रूढ़ियाँ, ग्रन्थि, पुरातन परवशताएँ !
जग की सारी महाशक्तियाँ सोई हैं, अब चेतन कर दे;
मा, मेरी ध्वंसक वीणा में यौवन का उद्धतपन भर दे ।

१६०

दूर करो हे दयानिधान,
क्षण में मेरे सब अभिमान।

अपनी ही गुरुता का जाल
बाँध रहा है मुझे कराल।
स्वयं दबे जाते हैं अपने
ही यश के भारों से प्राण;
दूर करो मेरा अभिमान ।

छल, स्पृहता, ईर्ष्या के चाव;
अहंभावना, कपट, दुराव;
अधःपतित मत करो मुझे तुम
बना विश्व में विज्ञ महान,
दूर करो मेरा अभिमान ।

विपुल प्रशंसाओं की ढ़ेर
लेगी मेरा जीवन घेर ।
अगम-अलक्षित-अविदित ही प्रिय,
रहने दो मेरा आख्यान;
दूर करो मेरा अभिमान ।

जैसे वन ही में खिल फूल
मुरझा जाते वन के फूल;
वैसे ही मेरा जीवन भी
खिल, मुरझा जाये अनजान,
दूर करो मेरा अभिमान ।

१६१

मेरा अन्धकारमय जीवन
आलोकित कर, आलोकित !
त्याग-तरणि का विमल प्रकाश
कर दे उर का तिमिर विनाश;
डूब जायँ उसमें प्रिय, मेरे
हिय के सारे प्रान्त असित !
चारु - चन्द्रिका - सा प्रोज्वल
झलके नव वैराग्य विमल ;
अन्तर के सारे प्रान्तर में
ज्योति जगा देवे प्रमुदित !
देख ज्ञान का अरुणोदय
भागें मृत्यु - जरा के भय ;
जगमग ज्योति जगे जीवन की
निर्जनता में मोह - ग्रसित !

१६२

कैसा है विचित्र व्यापार ?
ऐ नटवर, किस अमर कुशलता
से तू चला रहा संसार !
वसुधा के सारे रजकण में,
झील, नदी औ वन-उपवन में;
नक्षत्रों से पूर्ण गगन में
तेरा ही विस्तार !
विमल चन्द्र की मृदुल किरण में,
हँसते हुए सरोज - सुमन में,
दीप-शिखा के प्रति कम्पन में,
करता तू खिलवाड़ !
प्रणयी-जन के प्रेम-मिलन में,
करुणा-भरे व्यथित क्रन्दन में,
चिर - विरही के खोये धन में
तू ही तो है सार !
भौंरों के मृदु - मधु - गुंजन में,
कलियों के मुकुलित यौवन में,
नीर-हिलोरित अरुण नयन में
हँसता तू हर बार !

अरमान

आज, भरा नस नस में मेरी है मा का आकुल आह्वान ;
आन-बान पर मिट जाऊँ, बस, दिल में उठा यही अरमान !

जन्मभूमि की बलिवेदी पर अर्पण तन-मन प्राण करूँ,
मौत मिले यदि; चाह यही है मैं उसके ही लिये मरूँ !
हँसते हँसते फाँसी की डोरी से आह, लटक जाऊँ ;
अन्त-काल में भी स्वदेश को पर, स्वतन्त्र मैं लख पाऊँ !
सुख की सारी अभिलाषाओं को पल में कर दूँ कुर्बान ;
आन बान पर मिट जाऊँ बस, दिल में आज यही अरमान !

भारत-भू है पराधीनता की जंजीरों से जकड़ा ;
अगणित अबलाओं के करुणा-मय क्रन्दन से ध्वनित धरा !
दीन-हीन कृषकों की सुन कर करुण कथा, मुख देख उदास;
रोतीं दशों दिशाएं, फटता टूक - टूक होकर आकाश !
इनकी सेवा में ही रत हो तज दूँ आज अकिञ्चन प्राण ;
आन बान पर मिट जाऊँ, बस, दिल में उठा यही अरमान !

जिसकी कृपा-दृष्टि पर ही है अवलम्बित सब का जीवन ;
सेवा करने को रहता नित प्रस्तुत जिसका प्रति रजकण !
जिसके कृत-उपकारों से हैं भरे हमारे अधम शरीर ;
जिसके स्मरण-मात्र से केवल मिट जाती मानस की पीर !
उसी प्रेम-प्रतिमा पर कर दूँ न्योछावर मैं अपनी जान ;
आन-बान पर मिट जाऊँ, बस, दिल में आज यही अरमान !

जिस जननी के लिये हजारों वीर हुए रण में वलिदान ;
झंकारों पर तलवारों की करते थे जिसका यश-गान !
अपना सब कुछ खो कर भी था रखा सुरक्षित जिसका मान;
भरा हुआ था कूट-कूट कर रग-रग में जिसका अभिमान !
उसी पावनी मातृ-मूर्ति का मैं भी करूँ निरन्तर ध्यान ;
आन-बान पर मिट जाऊँ बस, दिल में उठा यही अरमान !

सब देशों से सुन्दर, सुखकर मेरा प्यारा भारत-देश ;
विश्व-गगन में चमके निशि-दिन बन प्रभात का प्रखर दिनेश !
सदा समुन्नति होवे इसकी, हो जाये कष्टों का शेष ;
भागे परवशता-पिशाचिनी, मिटें हमारे अगणित क्लेश !
इसके गौरव की रक्षा के हित हो जाऊँ मैं वलिदान ;
आन-बान पर मिट जाऊँ बस, दिल में आज यही अरमान !

१६४

तोड़ कर हृत्तंत्री के तार,
जगा कर उर के सोये भाव,
चुरा कर सारा संचित प्यार,
छेड़ कर दिल के उभरे घाव,

भुला कर तीव्र वेदना-व्याज,
विरह का वह दारुण उत्ताप ;
छिपा रोती आँखों की लाज,
कहाँ तुम चले आज चुपचाप ?

लुटा कर करुणा का चिर-कोष,
कामनाओं को कर वलिदान,
दिखा कर केवल अपना रोष,
विदा क्यों ली तुमने अनजान ?

निठुर, टुक सुन लो कुछ भी हाय,
तनिक ठहरो तो प्राणाधार !
छोड़ कर मुझको यों असहाय
चले मत जाओ करुणागार !

मातृभाषा

सुनते ही प्रिय-नाम मातृभाषा का सुन्दर ;
हो जाता है उदित हृदय में आशा-शशधर !
मानस-सर में मृदुल तरङ्गें उठने लगतीं ;
क्षण में नीरस मन को भी रसमय कर देतीं ।

जो थी तुलसी, चन्द, सूर, भूषण की प्यारी ;
थे रहीम, रसखान आदि जिसपर वलिहारी !
छवि ने सबको लुभा लिया जिसकी मनहारी ;
सचमुच भाषा सकल राष्ट्र की वही हमारी !

अङ्ग-अङ्ग सुन्दर हैं इसके अति मन-भावन ;
है तो क्षुद्र शरीर, परन्तु निरामय - पावन !
अलकों में नव-रत्न-जटित माणिक्य जड़े हैं ;
मनमोहक है छटा, अनोखे भाव भरे हैं !

संस्कृत-दुहिता कौन अपर भाषा हिन्दी-सम ?
हिन्द-देश के भाल सुशोभित है बिन्दी-सम !
हिन्दू - मुस्लिम सभी वर्ग से पूजी जाती ;
पृथक-पृथक घर वेश सभी के हिय हुलसाती !

यही मधुर-रस-युक्त काव्य-सुषमा-मय न्यारी ।
सकल दोष से रहित यही है हिन्दी प्यारी !
भरा ज्ञान-विज्ञान आदि से सब गुण-आगर ;
सरल, सुबोध, सुपाठ्य, सुधा-सम है यह नागर !

उठो विज्ञजन, उठो, अलसमय निद्रा तोड़ो !
भेद-भाव सब त्याग इसीसे नाता जोड़ो !
इसे शीघ्र ही सिंहासन पर तुम बिठला दो ;
विजय-केतु को हिन्दी का जग में फहरा दो !

इसी विजय से विजय तुम्हारी भी निश्चित है ;
हिन्दी-हित से हिन्दू और हिन्द का हित है !
यही मेल का पाठ, एकता सिखलावेगी ;
यही स्वराज्य - सुशासन भारत में लावेगी !

शरत्काल

शरत्काल सुन्दर आता है।
मेघ-विहीन हुआ अब अम्बर,
किरणें हुईं सूर्य की सुखकर।
गर्मी का प्रभाव जाता है;
शरत्काल सुन्दर आता है।
कलियों ने निज आँखें खोलीं;
भ्रमर लिये पराग की झोली,
अतिशय मधुर गीत गाता है;
शरत्काल सुन्दर आता है।
कभी धवल मेघों में छिप कर,
कभी प्रकट हो पुनः कलाधर
यों ही निशि-भर मुसकाता है;
शरत्काल सुन्दर आता है।
पुष्पों का सौरभ सँग ला कर,
मन्द-पवन चुपके-से आ कर
कानों में कुछ कह जाता है;
शरत्काल सुन्दर आता है।
नित प्रभात होते ही शशधर,
वसुधा का विस्तृत अंचल भर
रजत - मोतियों से जाता है;
शरत्काल सुन्दर आता है।
चाल हुई नदियों की मंथर;
सर का सलिल हुआ निर्मलतर;
मुकुर-तुल्य वह दिखलाता है;
शरत्काल सुन्दर आता है।
ओस-विन्दुओं से भय खा कर,
शिशु-गुलाब किस भाँति मनोहर;
पंखुड़ियाँ सिकुड़ा लेता है;
शरत्काल सुन्दर आता है।
विकसित हुए कमल सरवर में;
भ्रमरों का दल मीठे स्वर में;
गुनगुन कर उनपर गाता है;
शरत्काल सुन्दर आता है।
ठुमुक-ठुमुक करके वह खंजन;
हर लेता है सब जन का मन;
समय न यह किसको भाता है?
शरत्काल सुन्दर आता है।

१६७

करुणाकर, क्या कृपा करोगे?
टूट गया है जग से नाता,
मुझे नहीं अब कुछ भी भाता;
अन्त न कहीं पन्थ का पाता,
अपना पता कहोगे?
सुध-बुध रही न कुछ भी तन में,
खोज थका तुमको वन-वन में,
मन की बात रह गई मन में,
आ कर कभी मिलोगे?
माया-जाल अरे, मदमाता
देखो, चला यहाँ ही आता;
मैं भगता फिरता भय खाता,
अपना आश्रय दोगे?
जीवन भार हुआ है जग में,
चला अकेला जाता मग में,
ममता की बेड़ी है पग में,
मेरा हाथ गहोगे?

आभार

जी भर कर करने दे प्यार ;
आज, मुझे ए रे सुकुमार !
लिये कहाँ तक बोल, फिरूँगा
मधुर वेदना का यह भार ?
उमड़ रहा है अन्तस्तल में
स्निग्ध प्रेम का पारावार !
बहने दे अब करुणागार ;
कभी डूबता - उतराता मैं
लग जाऊँ तट के उस पार !
छुपा रहा है क्यों अंचल में
तू अपने यौवन का सार ?
टूटे - से जाते हैं मेरे
हृत्तंत्री के क्यों मृदु तार ?
बजने दे, बजने दे अविरल
गति से आज उन्हें इक बार ;
झंकृत हो जावे संसार !
मिटें हृदय के सभी विकार !
करें आज हम दोनों मिल कर
चल, अनन्त का नव - शृङ्गार ;
ले सुरभित - सुमनों का हार !
उधर महा - एकान्त कोण में
रचें सजनि, ऐसा अभिसार ;
पीने दे ऐसी तू मदिरा,
छोड़ जगत के सब व्यवहार ;
भुला स्वत्व के कलुष विचार ;
अपनापन विलीन मैं कर दूँ
तुझमें होकर एकाकार ;
जी भर कर करने दे प्यार !
व्याप्त हो रहा नभ - मण्डल में
करुण - हृदय का हाहाकार !
खुला चाहता क्षण ही भर में
मेरी आहों का भाण्डार !
रह - रह होता प्रेमाधार ;
प्राण - घनों के अन्तराल में
आशा - विद्युत का संचार ;
देर न कर, अब खोल शीघ्र दे
अन्तर का अपने शुचि-द्वार ;
निर्भय हो करने दे मुझको
उसमें आज विमुक्त - विहार !
जी भर कर करने दे प्यार !

कोयल - गीत

कोयल, कोयल ! क्या मुझको भी सिखला दोगी अपने बोल ?
क्या मेरे इन नयनों में भर दोगी अपनी छवि अनमोल ?
सजनि, तुम्हारे श्याम - परों में है कितना सौन्दर्य अपार !
किसको खोज रही हो तुम यों ले अपने यौवन का भार ?
अरी, तुम्हारी मृदु बोली में है उन्मादकता कितनी !
उन सौ - सौ मद-भरे दृगों में निरख न पायी मैं जितनी !
ऊषा की कमनीय छटा में, संध्या की मृदु - लाली में ;
अहा, ढालती हो जब मदिरा तुम पत्रों की प्याली में !
कैसे कहूँ, हृदय में उठती कितनी टीस - कसक, आली !
क्षण - ही भर में हो जाती हूँ मैं बेसुध - सी मतवाली !
पावस में जब रिमझिम बूँदें पड़ती रहतीं चारों ओर ;
तुम देती हो मिला निमिष में अवनि और अम्बर के छोर !
सिहर तुरत उठता है कण-कण; पत्ती-पत्ती आत्म विभोर !
एक - एक तरु लता-गुल्म में भर-भर जाती सरस-हिलोर !
मैं बैठी अनमनी किया हूँ करती उस निष्ठुर का ध्यान,
चुरा लिया जिसने चित मेरा किसी विजन-पथ में अनजान !

घोर-निशा में, सघन - विपिन में तुम तन्मय हो गाती हो !
'कुहू-कुहू' की कोमल ध्वनि में जब तुम कूक मचाती हो !
एक हूक - सी उठती तत्क्षण तब मेरे अन्तरतर में ;
कौन कहे , कितनी मादकता बसी तुम्हारे मृदु - स्वर में !
काली हो, फिर भी तुम इतनी आफत की परकाली हो !
भला क्यों न हो, जब निष्ठुर काकों के गृह की पाली हो !
लग जातीं जिसपर , बस उसके प्राणों को हर लेती हो ;
अलि , बतलाओ तो कितनों को नव-जीवन तुम देती हो ?
तुम्हें याद है, कभी तुम्हारे गीतों को सुन बचपन में,
ढूँढा करती जब मैं तुमको पगली-सी उपवन - वन में !
किस प्रकार सस्फूर्ति दौड़ती. भूल जगत की सुध-पहचान;
पार किये व्याकुल - सी कितने नंगे - पैर खेत-खलिहान !
किन्तु, आज वे सब सपना हैं, बीत गईं मधु की घड़ियाँ !
शेष बची हैं केवल नयनों में मोती की कुछ लड़ियाँ !
अब भी मदमाते वसन्त के साथ सजनि, तुम आती हो ;
बैठ सघन - कुंजों में छिप कर अपनी तान सुनाती हो !
एक बार, उस बीते युग की तुम फिर याद दिलाती हो !
आती हो, पर हाय! हृदय में क्यों तुम आग लगाती हो ?
सुनती हूँ, तुम भी बिछुड़ी हो, चरणों की ठुकराई हो !
गिरि - कानन में इसीलिये तुम उसे खोजने आई हो !
प्रेम-विह्वला ब्रजबाला-सी बहा दृगों से अविरल वारि ,
अपने करुणा के गीतों से उसे बुलाती हो, सुकुमारि !
मैं भी तो सखि, हूँ वियोगिनी ; छोड़ गये हैं जीवन-धन !
जिनके दर्शन की प्यासी मैं फिरती हूँ व्याकुल वन-वन !
क्या न दया कर पहुँचा दोगी मुझको भी प्रियतम के पास?
कब-तक सहूँ, तुम्हीं बोलो तो, जगती का निर्मम उपहास ?

ग्रीष्म-गरिमा

नव - वसन्त का यौवन बीता; लगे झुलसने वन-उपवन !
सूख चली हरियाली सारी; मुरझाने लग गये सुमन !
नहीं कहीं अब सुन पड़ते हैं कोकिल के वे कोमल बोल;
कहाँ तरंगित करता उर को मलयानिल का मन्द हिलोल !
नहीं झूमते मधुकर मधु से मत्त कुसुम की डालों पर;
नहीं रही वह छटा निराली अब सरिता, सर, तालों पर !
कहाँ गया तीसी का वैभव ? सरसों की पीली साड़ी ?
दूर्वादल की वह हरीतिमा ? पुष्पों की प्यारी क्यारी ?
सूख गया सरिता का पानी ; कुम्हला गये कमल के फूल ;
पवन-देव भी हुए प्रखरतर ; लगी सड़क पर उड़ने धूल !
कहाँ गई खेतों की शोभा ? महुआ का वह मधुर पथार ?
जहाँ बैठ कर प्रकृति - सुन्दरी करती थी अपना शृङ्गार !
शस्यहीन यह ऊजड़ धरती बनी हुई है आज मसान;
यही सोचती रहती निसदिन, बक आवेंगे बैल—किसान ?
कटी हुई फसलों से हैं अब भरे हुए सारे खलिहान;
साँझ - सबेरे जिन बोझों पर खेला करते शिशु नादान !
वही सूर्य, जो बने हुए थे कुछ दिन पहले मित्र - समान ;
हर दरिद्रता - दुःख जगत के करते थे सुषमा का दान !
आज बना कर रुद्र - रूप हैं पीड़ा सबको पहुँचाते ;
नभ के उच्च - शिखर पर चढ़ कर अंगारे हैं बरसाते !
दिन में चिता - ज्वाल - सी पृथ्वी मानो लगती है जलने ;
लू पावक - कण को बिखेरती 'हू-हू' कर लगती चलने !
उष्ण वायुमण्डल हो जाता ; शब्द - हीन सारा संसार ;
सो जाती दुनिया बेसुध - सी भूल कार्य के सारे भार !
तीव्र प्यास से 'त्राहि-त्राहि' रव मच जाता है चारों ओर ;
गर्म हवा की निष्ठुर लपटें देतीं सारे अङ्ग मरोड़ !
खग भी खा कर प्रखर सूर्य की ज्वालामय किरणों की चोट,
इधर - उधर हैं खोज रहे घबड़ाये - से पेड़ों की ओट !
जब परिश्रान्त-पथिक सह सकते हैं न शीश पर धूप कड़ी ;
कहीं सुखद छाया में तरु की बैठ बिताते दोपहरी !
तीक्ष्ण प्रभाकर की ज्वाला से व्याकुल पशु-गण अर्द्ध-जले,
करते हैं आराम सभी आ कहीं किसी वट - वृक्ष - तले !
वहीं, पास में गर्मी से घबड़ा कर चरवाहे भी मन्द ;
पशु की पीठों से लग कर हैं सो जाते गुप - चुप सानन्द !
पशु भी कभी ऊँघते, करते निज बच्चों को कभी दुलार;
तरु छाया करता है उनपर शत-सहस्र निज बाँह पसार !
संध्या होते ही दिनकर जब होते हैं पश्चिम में अस्त,
थके किसान लौटते निज गृह अपनी-अपनी धुन में मस्त !
तब, सब अपनी फुलवारी में अथवा सरिता के तट पर ;
या आमों की सघन कुंज में समुद टहलते हैं जी भर !

साँध्य-पवन की मृदुल थपकियाँ, चिड़ियों का मीठा कलरव ;
भर देते उल्लास हृदय में, और स्फूर्ति मन में अभिनव !
किन्तु, निशा के साथ भयानक आ मच्छर की दुर्जय फौज,
क्षण ही भर में छीन लिया करती है मन की सारी मौज !
एक - एक कर रोम - रोम से आ कर सभी लिपट जाते;
पता नहीं, यह किन पापों का प्रतिफल मानव-गण पाते ?
कपड़ा - ओढ़े गर्मी बढ़ती , आकुल हो उठता है गात ;
वसन - हटाये तो रजनी भर करते हैं मच्छड़ उत्पात !
यों उधेड़ - बुन ही में जाती बीत ग्रीष्म की सारी रात ;
पर, आँखें झँप जातीं क्षण भर को छू कर प्रभात का वात !
कभी कभी आँधी भी आ कर सब का दिल दहला देती;
आमों के सुन्दर पेड़ों को बस, झक-झोड़ हिला देती !
पहले तो मृदु मंजर ही थे, किन्तु हुए अब बड़े - बड़े;
खा मारुत के प्रबल झकोड़े चू पड़ते फल हरे - हरे !
तब, आबाल-वृद्ध सब के सब टिकुलों को चुन लाते हैं ;
चटनी बना - बना कर उनकी बड़े प्रेम से खाते हैं !
हुआ 'अगलगी' का अब दौरा, बढ़ा अग्नि का कोप अपार !
चाट लाल जिह्वा से अपनी किया हजारों घर को क्षार !
कभी कभी वर्षा भी आ कर शीतल - जल बरसा जाती ;
ग्रीष्म-ताप-सन्तप्त जीव को तनिक शान्ति तो मिल जाती !
मेघ-विहीन ललित-अम्बर हो; खुल-खुलकर हिमकर का हास;
ले सुवास फूलों की बहती मन्द - मन्द हो मृदु - वातास !
ललित लता की कलित कुंज हो, खिले हुए हों सुन्दर फूल;
कल-कल करती हुई मनोरम सरिता का हो निर्मल कूल !
नीचे दूबों की शय्या हो ; ऊपर नभ का तना वितान ;
ये सब ग्रीष्म-मास में किंचित करते हैं सुख-शान्ति-प्रदान !

१७१

चारु चन्द्रिका के सर में—
अहा, नहा लो हँस-हँस रूपसि ,
एक बार तुम आज उलङ्ग ;
परिहत-वसना तरल-तरङ्गों
पर फैला दो अपने अङ्ग !
स्वर्ग-परी - सी किरण-तरी पर
उतरो उज्ज्वल पंख पसार ।
तैरो सुषमा के सागर में
पहन तारिकाओं का हार ।
किरण-ऊर्मि-हिन्दोल-दोल पर
मधुबाला-सी तुम झूलो !
विरह-जल्पना, प्रणय-कल्पना ,
भीरु भावनाएं भूलो !
मन्द-मन्द मुसकिरा उझक कर
झाँको शशि-वातायन खोल !
महाज्योति की लहरों पर तुम
करो आज, लीलाएं लोल !
करो वहीं से जादू-टोना
फेंक रूप का मोहक जाल ।
अहा, खोल दो सखि, अपने नव
यौवन की नौका का पाल !

१७२

कैसे स्वागत करूँ तुम्हारा, कम्पित हो उठते हैं कर !
इच्छा होती, विनय करूँ कुछ, पर खुलते हैं नहीं अधर !
नयन, न जानें, क्यों झुक जाते; देख न सकते तेरी ओर ।
हृदय सिहर उठता है प्रति पल, मची हुई है हलचल घोर !
तुझे बुलाता उत्कण्ठित हो, किन्तु न मैं कर पाता तुष्ट !
भय है, यह तुझको न बना दे कहीं हाय मुझपर अति रुष्ट !
तेरे उर के महासिन्धु में मेरा छोटा जीवन - यान
कैसे उतरे, तुम्हीं बता दो, हे मेरे प्राणों के प्राण !
यह तो तेरी ही करुणा है; मुझे सदा करती जो त्राण !
कौन अन्यथा ऐसे जन की खोज-खबर लेगा, भगवान !
जो हो, एक क्षुद्र किंकर हूँ सब प्रकार से मैं तेरा !
यही निराशामय जगती में एक भरोसा है मेरा !

१७३

आज वीर ! अपनी जननी की क्यों न पीर तू हरता है ?
अरे अभागे, बोल ! मृत्यु से क्यों इतना भय करता है ?
चल, चल अब होने बलिदान ;
अपने को कर दे कुर्बान ;
पूरा कर मा के अरमान ;
क्यों कर्त्तव्य - क्षेत्र से पावन पीछे तू पग धरता है ?
अरे अभागे, बोल ! मृत्यु से क्यों इतना भय करता है ?
हुआ देख अब स्वर्ण - विहान ;
तज निद्रा , आलस्य महान !
कर उसके चरणों का ध्यान—
जिसकी अनुकम्पा से जग में तू सानन्द विचरता है !
आज वीर ! अपनी जननी की क्यों न पीर तू हरता है ?
प्राणों की ममता को छोड़ ;
रणचण्डी से नाता जोड़ !
चलता क्यों न समर की ओर ?
पर यह क्या ? रण-तूर्य-नाद से तू तो इतना डरता है !
हाय अभागे, नियत मरण से क्यों इतना भय करता है ?
रो - रो जननी रही पुकार ;
पैरों में बेड़ी का भार !
जग के माया - मोह बिसार ;
क्यों न जङ्ग के मैदानों में कूद तुरत तू पड़ता है ?
आज वीर ! अपनी जननी की क्यों न पीर तू हरता है ?

१७४

मैं हूँ उदण्ड विकराल काल ;
मतवाला पन्नग-पति विशाल !
मैं अति-प्रचण्ड उन्मत्त रुद्र ;
मैं प्रलय-क्षुब्ध विस्तृत समुद्र !
मैं महा-मृत्यु, मैं काल - दण्ड ;
मैं द्वादश-रवि-ज्वाला अखण्ड !

मैं अग्नि-दीप्त हुंकृति कराल ;
करवाल-कालिका मैं अराल !
मैं जगत-शत्रु, जिह्वा निकाल,
कर लेता भक्षण सृष्टि-बाल ;
मैं कालकूट, झंझा अघोर ;
मैं सर्वनाश-कारी कठोर !

नभ से तारों के फूल तोड़ ,
कितने उडुओं का मार्ग मोड़ ,
मैं ले उछालता दूर-दूर ;
मैं भीम, भयंकर, कुटिल, क्रूर !
मैं शैलराज, दुर्दम कृतान्त ;
मैं चिर-श्मशान-वासी अशान्त !

मैं अग्नि-काण्ड, ताण्डव-अकाल ;
मरुभूमि-दग्ध, मैं चिता-ज्वाल !
मैं विद्रोही की रण-कृपाण ;
करता रिपुओं का रक्त - पान !
मैं भव-नाशक - दावाग्नि-रोष ;
मैं मुण्डमाल, गाण्डीव-घोष !

१७५

नन्दन-वन से सरस सुमन मैं लाया था संचय कर,
श्रद्धा-सहित समर्पित करने के हित तुझको प्रियवर !
इच्छा तो थी, स्नेह - सलिल से पद तेरे धो डालूँ !
फिर, तेरी यह मधुर मूर्ति मैं हृदयासीन बना लूँ !
धड़क रहा था हृदय बेधड़क, काँप रहे थे युग कर !
साहस कर, किञ्चित आगे बढ़, झुका तदपि चरणों पर !
किन्तु, घृणा से ठुकरा कर फिर खींच लिये पद तूने !
रे निर्मोही, चला गया क्यों मुझको तज यों सूने ?
बैठ गया, पद - रज लपेट कर मैंने अपने माथ,
पुनः किया अनुसरण तुम्हारे पथ का सत्वर, नाथ !
घोर निराशा नाच रही थी मेरी चारों ओर ;
तमावृत्त था विश्व , राह का पाया कहीं न छोर !

१७६

बैठ इस निर्झरिणी के तीर
कौन यह गाता मधुमय गान ?
बहा नयनों से झरझर नीर
छेड़ता कैसी कोमल तान !
पकड़ कर कम्पित कर से बीन,
हिला निज कृश अधरों को आज;
कहो, क्यों अश्रु धार से दीन
धो रहे हो अन्तर की लाज ?
तुम्हारे स्वर में मिल कर कूक
कोकिला उठती है उद्भ्रान्त !
मचा देता है उर में हूक
पपीहा का 'पी-कहाँ' अशान्त !
पवन सन-सन कर गोल अमोल
कपोलों पर करता खिलवाड़ !
तरङ्गों से सरिता भी लोल
तुम्हें जतलाती पावन प्यार !
लताएं झूम-झूम कर चूम
प्रणय का करती हैं अभिसार ;
डालियाँ भी धीरे से घूम
तुम्हें पहनातीं किसलय - हार !
हाय, किस मर्म-व्यथा से घोर
सिहर उठता रे म्लान शरीर ?
एकटक नयनों से उस ओर
देखते हो किसकी तसवीर ?

कपालिका

कौन तू कराल सिंहवाहिनी सौदामिनी - सी
अरि - दल - बादलों के बीच में अरी, खड़ी ?
कौन तू विशाल विश्व - नाट्य - अभिनायक - सी
रण - रङ्गभूमि में सदर्प आज उतरी ?
कौन महामृत्यु - सी तू लोट के चिताओं पर
हँसती है मन्द - मन्द त्रिभुवन - सुन्दरी ?
डमरू बजाती डिम डिमिक दिगम्बर - सी
नाच रही कौन तू श्मशान में दिगम्बरी ?

उष्ण - उष्ण रक्त आज दुष्ट - दुराचारियों के
पी - पी के पिपासिते, न प्यास क्यों बुझाती री ?
अपने कुलिश - से कलेजे - से तू लगा - लगा
शिवे ; आज शवों को जुड़ाती क्यों न छाती री ?
प्रकट हुए हैं देख, कितने महिष, रक्त;
मार - मार क्यों न इन्हें हिय हुलसाती री ?
मचा है करुण हाहाकार - रोर चारों ओर,
सुन के पुकार दीन दौड़ क्यों न आती री ?

आ री आज शंकरी, निशंक री, परशु - पाणि;
क्रूर करवाल ले कराल कर - वर में।
तैर जा समुद्र, लाँघ झील - ताल, हाट - बाट;
सुलगा दे विप्लव की वह्नि घर - घर में।
तेरी ध्वंस - मूर्ति देख कायरता भाग जाय,
जाग जाय रुद्र स्फूर्ति शैल - स्फोट - स्वर में।
'क्रान्ति चिरजीवी हो' नगारा ये बुलन्द होवे
वन - वन, ग्राम - ग्राम, नगर - नगर में।

हर ले हमारी सारी शीतलता शोणित की,
निर्बल नसों में बल - पौरुषता भर दे !

साहस अटूट दे , न फलने दे बैर - फूट ;
लोचनों में कालकूट - सा भर जहर दे।
विश्व - विजयिनी शक्ति बाहुओं में , मानस में
जननी की भक्ति - पूत भावना अमर दे।
सिन्धु - सी तरङ्ग दे , अनङ्ग - सा अमोघ लक्ष्य ,
अङ्ग - अङ्ग में उमङ्ग यौवन की धर दे।

चल मदमत्त केसरी की पीठ पर चढ़ ;
कुंजों में चुन मत कुसुम बन बालिका।
तेरे पद - भार से पहाड़ - पाप डोल उठे ,
थर्थराय शक्ति वह सृष्टि - सूत्र - चालिका।
लक्ष - लक्ष प्राणों के दीप बाल मंगलमयि ,
मातृ - मूर्ति - मन्दिर में सजा दीप - मालिका।
भर-भर नर-रक्त-धार से कपालिका को ,
बोल हर-हर-हर ए री क्रूर कालिका।

हाँ, री ऐसा गरज कि पीपल के पात-सम
कायर नरों की क्षीण छातियाँ दहल जाँय।
चारों ओर आग तू लगा दे एक ऐसी आज ,
तूल के समान सारे लोक-जाल जल जाँय।
ललक ललक लोल लपटें ओ, लाल - लाल
सारे वायु - मंडल को पल में निगल जाँय।
हलचल मचे घोर शोर ऐसा जग-बीच ,
अरि-दल उपल - समान ही पिघल जाँय।

प्रकट त्र्यम्बक के अम्बक से हो तू अरी ,
तारों से, तारापति, तरणि विशाल से।
धारा से, धरा से, धाराधर से, धराधर से ,
शंकर भयंकर के ताण्डव के ताल से।
अनल, अचल, तल, हलाहल, जल से री ,
सागर से, अम्बर, दिगम्बर के भाल से।

हर - करताल से, उदण्ड मुण्ड - माल से ,
क्रान्तिकारी युवकों की क्रूर करवाल से।

दौड़ - दौड़ आँधी के समान वायु-मण्डल में,
शोणित की सरिता में नग्न स्नान कर तू।
जीवन - विपिन में री , फूँक दावानल - ज्वाल ;
लपटों में बैठ फिर स्वर्ण - सी निखर तू।
कर मांस - पिण्डों से तू पिण्ड - दान पितरों का ,
घूम - घूम पापियों के पापी प्राण हर तू।
वामन - सा पाँव को त्रिलोक में पसार कर ,
झूम - झूम चल आसमान - पथ पर तू।

लहरा दे शौर्य का समुद्र क्षुद्र वसुधा में ,
गौरव - सुमेरु पर फहरा दे पताका - सी।
तीर बन पैठ जा कृतान्त के शरीर में तू ,
चीर दे अमा की रात्रि ज्योतिमयी राका - सी।
ले कर अखण्ड न्याय - दण्ड दण्डधारियों के,
छत्र औ सिंहासन पै हूल जा शलाका - सी।
शूल बन किसीके , फूल धूल को बना दे आज,
भूल जा समूल मेल, खींच क्रान्ति - खाका - सी।

छोड़ वक्रतुण्ड रुण्ड - मुण्ड-माल धार दौड़ ,
वायु - सी विमुक्त अग्नि - रथ पै करालिनी।
नाच छम - छम - छम ताथेई - ताथेई - थेई ;
कर शंखनाद घोर शत्रु - उर - सालिनी।
उलीच - उलीच सींच रक्त से उमंग - भरी ,
जटिल जटा को मुक्त - कुन्तले, कपालिनी!
कूद कालदण्ड लिये अम्बर से लात मार ,
लोचन त्रिलोचन के खोल री कपालिनी।

विजया-दशमी

'साथ लेकर दैत्य की सेना सभी,
वीर महिषासुर प्रबल है आ रहा;
इस सुभग अमरावती को लूटने,'
—आ किसीने देवपति से यों कहा।

इस अचानक युद्ध के सम्वाद से
सुरगणों में खलबली-सी मच गई;
पर, व्यथा की एक भी रेखा नहीं
दृष्टि-गोचर शक्र के मुख पर हुई।

अधर, बाँहें युगल फड़के रोष से,
खींच असि को कोष से सत्वर लिया।
देख लो, अब उस भयानक वेश ने
कायरों का हृदय कम्पित कर दिया।

फिर विकम्पित समिति को करते हुए
वचन बोले क्षुब्ध स्वर से इन्द्र यों—
'ऐ सुरो, हो के अमर तुम इस तरह
हो रहे हो राक्षसों से भीत क्यों?

देवताओं को हरा दें युद्ध में,
हो उन्हें सकती कभी हिम्मत नहीं।
न्याय-पूर्वक देव-बल से भी भला
जीत सकता आसुरी-बल है कहीं?

देश में तेरे विपति मँड़राँय यों,
तुम महल में मुँह छिपा बैठे रहो;
कौन है ऐसा अभागा पातकी,
देश का कल्याण जिसके उर न हो।

हो सभी तैयार मिल कर शीघ्र ही
सैनिकों के अमित अपने संग में;
शत्रुओं के चूर कर अभिमान को
कुचल डालो जा उन्हें रण-रंग में।'

श्रवण कर सुर ये वचन सुरराज के
जोश से उन्मत्त मानों हो गये;
देश के प्रति प्रेम उनके हृदय में
जग गया, सद्भाव भी उपजे नये।

कर घनाधन अखिल विश्व-समूह को
युद्ध-हित वे शीघ्र ही प्रस्तुत हुए;
हो सुसज्जित शस्त्र से सब देवगण
देश-हित बलिदान होने चल दिये।

उधर से पहुँचे असुर भी आ वहाँ
ध्वंस करने इन्द्र की सुन्दर पुरी।
मच गई बस, मार-काट भयावनी
देव-दल औ असुर-दल में तब बड़ी।

यों रही कुछ काल तक रण की दशा,
देव मानों असुर को देंगे हरा;
अन्त में पर हार उनकी ही हुई;
हा, नियति का है नियम अति ही कड़ा।

विजय का डंका बजाया असुर ने;
छोड़ सिंहासन दिया सुरराज ने;
क्षीर-सागर में पहुँच अति दीनता—
से पुकारा आर्त्त देव-समाज ने।

देवपुर की दुर्दशा की बात सुन,
ज्ञात कर वृत्तान्त देवों का सभी;
क्रोध से उन्मत्त हरि अति हो गये,
दैत्य-गण का नाश भी आया तभी।

फिर अहो। प्रत्येक सुर के गात से
इक वहिर्गत ज्योति-सी अद्भुत हुई;

देखते - ही - देखते क्षण में वहाँ
बन गई इक मूर्ति अति तेजोमयी।
दश भुजाएं दीर्घ अति बलवान थीं;
विविध अस्त्रों से सुसज्जित थी अहो!
शक्ति ने अवतार अपना यों लिया
केसरी की पीठ पै आसीन हो।
थे मनोहर अङ्ग उसके किस तरह!
साथ ही अति मुग्धकारी कान्ति थी।
ओज था सर्वत्र ही कढ़ता वहाँ।
वदन पै कैसी विलसती शान्ति थी।
साथ ही लेकिन नयन-युग लाल थे;
सुगमता के संग भीषण रूप था।
अवतरित थी शक्ति नारी- वेश में;
क्या अलौकिक तेज-पुञ्ज अनूप था।
स्तुति लगे करने सभी सुरगण वहाँ;
तुष्ट होकर भगवती ने तब कहा—
'हे सुरो, निश्चिन्त हो जाओ सभी;
आज ही जाता असुर- गौरव ढहा।'
कह सुरों से भगवती ने इस तरह,
जा समर में प्रबल दैत्य - नरेश को
रोष से युद्धार्थ आवाहन किया,
तोड़ उसके गर्व के आवेश को।
निमिष भर में ही हजारों दैत्य-गण
खड्ग आदिक हाथ में ले आ जुटे;
समर करने के लिये रण-भूमि में
वे सभी चीत्कार करते आ डटे।
मातु दुर्गा ने सँभाली निज गदा;
तीर, धन्वा औ महा करवाल को।
पाटने अरिमुण्ड से भू को लगी;
काटने वह लग गई रिपु-जाल को।
इस तरह बहु-समय लौं अनवरत ही
युद्ध दोनों दलों में होता रहा;
अन्त में जयशालिनी दुर्गा हुई;
एक भी दानव नहीं जीता बचा।
दनुज महिषासुर सभी निज सैन्य के
साथ ही उस समर में मारा गया;
निर्जरों के भाग्य-रूपी भानु का
पूर्वदिशि में सुभग सुखदोदय हुआ।
इस तरह कर असुर-जन को ध्वंस ही
भगवती ने स्वर्ग देवों को दिया;
राज्य-सुख फिर मिल गया देवेन्द्र को,
मुदित विजया को मना सुर ने लिया।
बाद इसके राम ने अवतार ले
धन्य कोशल-पुरी को जब था किया;
वन गये थे मान आज्ञा पिता की,
जानकी को लंकपति ने हर लिया।
राम ने बहु-वनचरों को साथ ले
निशिचरों का तब किया था सामना।
अर्चना की भगवती की भक्ति से,
शत्रुओं पर कर विजय की कामना।
उस समय से हिन्दुओं में आज तक
यह प्रथा प्रतिवर्ष है आती चली;
लोग हैं विजया मनाते हर्ष से,
अर्चना जगदम्ब की करके भली।
आ यहाँ प्रत्येक आश्विन मास में
है दिलाती याद हमको राम की।

खींच देती एक वह तसवीर है
पूर्व पुरुषों के अनोखे काम की !
भर रही हिय में नवीनोल्लास को ,
दिव्य शिक्षा है सदा देती यही ;
राम-सम उपकार तुम सबका करो ;
धर्मपथ से पैर पीछे दो नहीं !
बालको, होता नहीं जिस देश में
जाति-पर्वों का यथोचित मान है ;
तब तलक उस देश अथवा जाति का
हो नहीं सकता कभी कल्याण है !
इसलिये अपने सुपर्वों को मना
भक्ति से उनका सदा आदर करो ;
निज हृदय में प्रेम, उच्चादर्श औ
राष्ट्र के सद्भाव को हरदम भरो !

१७६

कभी तुम्हीं - सी मैं चंचल ,
एक बालिका थी निर्मल ;
सदा खेलती ही रहती थी
कुसुम - कुमारों से सुन्दर;
कानन में मैं हँस-हँस कर !
न था राग, अनुराग न द्वेष ;
नहीं जानती थी भय-क्लेश !
सीखा था न किसी सहृदय पर
तान चलाना लोचन-शर ;
छिप-छिप कर बन निर्ममतर !
सुर-सरिता-सी कर कल-कल,
टलमल-टलमल, मचल-मचल,
पल-भर में ही भर देती थी
जननी का विस्तृत अंचल ;
अपने गीतों से कोमल !
फैला उर की सरस हिलोर ;
छू असीम - अम्बर का छोर ;
पलक-मूँदते ही ले आती
पारिजात का मृदु - परिमल;
लाँघ तुषारोज्वल बादल !
पा कर मा का निर्मल प्यार ,
प्रेम-पूर्ण शाश्वत व्यवहार ;
जग के ज्योतिर्मय आँगन में
करती थी अभिनव अभिनय;
खग-बाला-सी मैं निर्भय !
स्वर्ग - परी - सी मैं साभार ,
उतर किरण-रथ पर सुकुमार ;
सुन्दरता का श्रोत बहा
देती थी मरुथल पर अक्षय;
सिकताओं का भेद हृदय !

१८०

अलि, बह चली वसन्त-बयार !
पाकर स्पर्श पवन का थर-थर
काँप उठे द्रुमदल गिरिवर पर ;
वनदेवी हँस उठी पहन कर
कल - कुसुमों के हार !
झरझर कर झड़ पड़े वात से
पावन पीत - पराग पात से,
सिहर उठे स्मरशराघात से
उर के झीने तार !
अलि, बह चली वसन्त-बयार !

रामायण में पिकनिक

खोजि पवन-सुत सीतहिँ आई !
सबने उनकी करी बड़ाई !
बोले राम सुनहुँ हनुमाना !
का तुम लाये कुछ पहिचाना !
कहा पवन - सुत तब रघुनाथा !
हौं मैं लायो चूड़ा साथा !
मौनी माँहि बृच्छ पर रहऊ !
सीता सो उतारि मुहि दयऊ !
किन्तु दही मुहि दीन्हा नाहीं !
सो अब उपाय करु ताही !

जामवन्त तब कहउ बिचारी !
उठु हनुमान परसु तरकारी !
तब लगि तोहि परिसयहुँ भाई !
जब लगि मैं चट करिहुँ मिठाई !
इतने में मटुकी धरि माथा !
चले हरखि दधि लै रघुनाथा !

जब सब कपि दधि आवत देखा !
जीभ चुवत मन हरख बिसेखा !
लालच बस सब ही मे बन्दर !
कूदि तुरन्त चढ़े तेहि ऊपर !
बार - बार रघुबीर सँभारी !
तो भी मटुकी गिरी बिचारी !

लखि कपि की सैतानी सारी !
छरपेउ पवन - तनय बलभारी !
मुष्टि - प्रहार करन तब लागे !
ज्यों बिल्ली से चूहा भागे !

तैसे भाग चले सब बन्दर !
पैठि गये कित बिल के अन्दर !
जेहि कपि चरन देइ हनुमन्ता !
सो चलि जाइ पताल तुरन्ता !
तब रघुपति बोले मृदुबानी !
सुनि कै हनूमान हरखानी !
भये सांत सब कुपित कपिन्दा !
हुए अनन्दित बानर - बृन्दा !

पुनि निज कर से परसि कर, दधि चीनी औ आम !
लम्बी चादर तानि कै भोग लगाये राम !

प्रश्नोत्तर

घूम रहा था मैदानों में एक दिवस मैं प्रातःकाल;
तब तक फैला था न तरणि की अरुण-करुण किरणों का जाल !
प्रकृति - परी बोली मुसुका कर मुझसे—'अरे, पथिक नादान !
जाते हो इस ओर कहाँ तुम नंगे पैर और मुख म्लान ?'
मैंने कहा—'यहीं पर मेरा स्वास्थ्य खो गया है अनजान;
करता हूँ मैं आज उसीका इस पथ में सखि अनुसन्धान !'

एक दिवस कर रहा काम था दोपहरी में खेतों पर ;
बोली जलती - सी लू कानों के समीप आ सन-सन कर—
'कृषक, कहो इस कड़ी धूप में क्यों तुम झुलस रहे हो आज ?
क्या न कभी फिर होगा अपने इन प्राणों का कुछ भी काज?'
मैंने कहा कि इसी धूल में छिपे हुए हैं मेरे रत्न ;
प्रिये , उन्हें ही बाहर करने का करता हूँ आज प्रयत्न !

खेल रहा था सन्ध्या को मैं अपने बच्चों से सुकुमार ;
लौट रहे थे दूर देश से वन - विहगों के झुण्ड अपार !
बोले झिलमिल करते नभ के तारक-बाल सहित-उपहास—
'पागल, वे दिन गये, भूल अब बचपन के आनन्द-हुलास !'
मैंने कहा—'अरे, ये ही हैं मेरा प्रिय शैशव साकार !
दो दिन की दुनिया में कर लूँ क्यों न इसी जीवन को प्यार ?'

अग्नि-कामना

बनूँ शङ्कर के पावक नयन,
कि जिनसे जग हो जाता क्षार;
भस्म, जलकर हो गया मनोज,
तृणों-सा, जिनमें पड़ सुकुमार!
मिटे कितने अन्यायी, चोर;
नाम निज कलुषित जग में छोड़!

बनूँ मैं अथवा क्रुद्ध त्रिशूल
उन्हीं के कर का, हर कर शूल
मनुज के; पापों को मैं शीघ्र
करूँ इस जगती से निर्मूल;
शत्रु के वक्षस्थल को फाड़
मचाऊँ विप्लव, हाहाकार!

बनूँ मैं या उनका ही कोप
कि जिससे त्रिपुरासुर के प्राण,
फिरे जगती-तल पर असहाय;
न पाया किन्तु; कहीं भी त्राण!
हुआ हत क्षण में वही निदान;
नष्ट कर अपना गौरव, मान।

बनूँ अथवा डमरू का नाद
उन्हीं के, जिसको सुन कर विश्व
धीरता खो कर अपनी आह
शून्य में मिल जाता है निःस्व!
फैलतीं जिससे चारों ओर
नाश की लपटें दुस्सह घोर!

बनूँ अथवा मैं ताण्डव-नृत्य
उन्हीं शूली का महा-अकाण्ड;
कि जिसके ताल-ताल पर सभय
थिरकता है अनन्त ब्रह्माण्ड!
सहायक पा कर जिसको काल
खोलता अपना मुख विकराल!

बनूँ मैं चन्द्र-मौलि, विरुपाक्ष,
जटिल, धुर्ज्जटी, त्र्यम्बक, वाम;
पिनाकी, अष्ट-मूर्ति, त्रिपुरारि,
शूलधर, मृत्युञ्जय, निष्काम!
शम्भु, शिव, गंगाधर, सर्वेश,
अजय, हर, शर्व, भर्ग, भूतेश!

कभी मैं शान्त, कभी उद्भ्रान्त;
कभी सागर-सा क्षुब्ध, अशान्त!
कभी मैं दावानल-सा उग्र;
कभी शशिकर-सा कोमल-कान्त!
कभी बन जाऊँ नलिन-मृणाल,
कभी मैं प्राणान्तक करवाल!

कभी झंझा-सा करता शोर
कुसुम, पादप, दिगन्त झकझोड़,
करूँ मैं नभ में मत्त-विलास,
नाश बन संसृति में सोल्लास!
कभी सागर की, चारों ओर
फैल जाऊँ बन ध्वंस-हिलोर!

कभी प्राणों का छोड़ ममत्व
झड़ी-सी सावन की अविराम,
गिरूँ नभ से बन उल्कापात;
चूर्ण कर दूँ वसुधा अभिराम!
बता दूँ मैं जीवन का मोल,
बुला कर प्रलयंकर भूडोल!

स्वर्ण - भूधर को सत्वर ढाह
दहाड़ूँ हरि-सा क्रुद्ध - कराल ;
विश्व-पति का मैं आसन हिला
निकालूँ उसकी आँखें लाल !
सृष्टि को कर दूँ मैं बेहाल ;
पहन लूँ नक्षत्रों की माल !

व्योम के कंगूरे पर बैठ
करूँ मैं विद्रोही रण - घोष ,
दूर कर देवों का अभिमान,
लुटा दूँ अमर - पुरी का कोष !
हिलेगा कम्पित हो आकाश ;
अमृत भी होगा सत्यानाश !

आज, हिंसा - सा निर्भय - मत्त
करूँ मैं रुधिर - जलधि में स्नान ;
बुझाऊँ रण - चण्डी की प्यास ,
स्वयं मैं हो जाऊँ बलिदान !
हटा जग से क्लेशों का भार ;
शान्ति, सुख,लाऊँ अतुल-अपार !

१८४

चलाओ मत नयनों के तीर !
बढ़ती ही जाती है निष्ठुर,
प्रति पल हिय की पीर !
चलाओ मत नयनों के तीर !
छिन्न भिन्न हो गये पात-से ,
प्राण तुम्हारे शराघात से !
तड़प रहा हूँ मैं अशेष दुख—
आहत, महा - अधीर !
चलाओ मत नयनों के तीर !

१८५

अम्बर - पथ - गामिनि बाले !
इस सूची-भेद्य तिमिर में
जब निखिल विश्व है सोता !
श्रम-शयित-अलस पलकों पर
सपनों का नर्तन होता !
तू कहाँ चली है द्रुतपद
पहने दुकूल को काले ?
अम्बर - पथ - गामिनि बाले !

तेरे घन - केशों में ये
छिटके हैं मोती कैसे !
वरदान छिपे हों प्रियतम
के अभिशापों में जैसे !
सखि, उतर मौन धीरे - से
विश्राम तनिक तो पा ले !
अम्बर - पथ - गामिनि बाले !

व्याकुल वन, उपवन, गिरि में
किसको तू खोज रही है ?
किसके मरु - उर में सुरसरि-
धारा बन सजनि, बही है ?
क्यों पड़े हुए हैं कोमल
चरणों में तेरे छाले ?
अम्बर - पथ - गामिनि बाले !

छाई हैं तेरे मानस
में कैसी ये बेकलियाँ ?
जो भागी जाती है यों
मतवाली, तज यह दुनिया !

अह, तनिक प्रिये, तरु - गुल्मों
पर बैठ गान कुछ गा ले !
अम्बर - पथ - गामिनि बाले !
माना कि तुझे है निश्चय
उस दिव्य लोक में जाना ;
प्रियतम के साथ मचलना,
हँस-हँस कर गले लगाना !
पर, सजनि, ठहर, मुझको भी
आँखों से तनिक बुला ले !
अम्बर - पथ - गामिनि बाले !

१८६

सखि, कैसे मैं जाऊँगी ?
डर लगता है, आज पिया के
ढिग कैसे सो पाऊँगी ?
मैं भोली, रस - भेद न जानूँ !
अपने पिय को ना पहिचानूँ ;
सेज - गये जिय में भय मानूँ ,
कैसे भला मिलाऊँगी ?
सजनि, आज फिर उनसे कैसे
अपने नयन मिलाऊँगी ?
सुनती हूँ, वे बड़े सयाने ;
रसिक-शिरोमणि, चतुर पुराने !
भले सुना तू मुझको तानें;
किन्तु, न उन्हें लगाऊँगी;
सखि, उनको न गले से अपने
मैं तो कभी लगाऊँगी !
हाय, लाज से आज मरी री ;
फटी देख, मेरी चुनरी री !
क्यों धकेलती मुझे अरी री !
कह तो दिया, न जाऊँगी—
डर लगता है, मैं न पिया के
पास सजनि, सो पाऊँगी !

१८७

मचल - मचल क्यों चलतीं, आली ?
क्या न जानती हो इस पथ से
आते हैं नितदिन वनमाली ?
मचल - मचल क्यों चलतीं, आली ?
अन्धकारमय सूना मग है ,
तन्द्रालस यह सारा जग है !
फैली है न अभी वसुधा पर
मृदु ऊषा की मोहक लाली ;
मचल - मचल क्यों चलतीं, आली ?
कभी सुनाई देगा सखि, जब ;
उनके नूपुर का कोमल रव !
भूल अरी , जाओगी तत्क्षण
तब तुम यों चलना मतवाली !
मचल - मचल क्यों चलतीं, आली ?
बीहड़ बाट , घाट , पनघट में ,
घूँघट हटा , उठा घट, तट में ,
तुम न अकेली चलो नवेली ,
ले अपने यौवन की प्याली !
मचल - मचल क्यों चलतीं, आली ?

अग्नि-उमङ्ग

मा, मेरी नस-नस में भर दे मरने की मतवाली चाह;
जिससे जाग्रत हो अन्तर में यौवन का नवीन उत्साह!
मिटने की अब करूँ तयारी,
थर्रा जाये दुनिया सारी;
लख मेरा बलिदान विश्व के
होवें चकित सकल नर, नारी!
तिल-तिल कर मैं मर जाऊँ, पर कभी न निकले मुखसे आह;
मा, मेरी नस-नस में भर दे मरने की मतवाली चाह!
दूर करूँ जीवन की ममता,
कौन करेगा मुझसे समता?
कर दे मुझे मार्ग से प्रचलित,
किन बाँहों में ऐसी क्षमता?
भभक उठेगी चिर-प्रसुत अब बडवानल बन अन्तर्दाह;
मा, मेरी नस-नस में भर दे मरने की मतवाली चाह!
मुझे बना दे अब निर्मोही,
चढ़ने दे फाँसी पर यों ही!
जीवन के अवसान-काल तक
बना रहूँ फिर भी विद्रोही!
बरस पड़ूँ तारों-सा नभ से सृष्टि उठे तत्काल कराह;
मा, मेरी नस-नस में भर दे मरने की मतवाली चाह!
रौंदूँ वसुधा का वक्षस्थल,
फाड़ूँ दिवि का विस्तृत अंचल,
चूर-चूर हो जाय शैल-पति
वज्र-मुष्टि से मेरी अविकल!
कूद पड़ूँ मैं जग को ले कर सागर-जल में आज अथाह;
मा, मेरी नस-नस में भर दे मरने की मतवाली चाह!
सुन कर मेरा शंख-निनाद,
भागें उर के विषम-विषाद;
अरि-दल में मच जाय खलबली,
धुलें धरा के सकल प्रमाद!
मन में भय का लेश न हो, औ जीवन की न तनिक परवाह,
मा, मेरी नस-नस में भर दे मरने की मतवाली चाह!
साम्राज्य-वाद की छाती पर,
नौकर-शाही मदमाती पर,
खुल कर खेले लाल-क्रांति इन
पूँजीपतियों की थाती पर!
विकल-विश्व मेरे चरणों पर गिर कर माँगे आज पनाह;
मा, मेरी नस-नस में भर दे मरने की मतवाली चाह!
तम का अन्तस्तल बिदार कर,
क्रुद्ध-केसरी-सा दहाड़ कर,
अट्टहास कर टूट पड़ूँ मैं,
लौटूँ रिपु-दल को पछाड़ कर!
मैं बन कर भूकम्प विश्व को क्षण में कर दूँ आज तबाह;
मा, मेरी नस-नस में भर दे मरने की मतवाली चाह!
चू जायें सुमनों-से तारे,
विचलित हों रवि-शशि-ग्रह सारे!
मेरे भय से भूतनाथ भी
भीत फिरें अब मारे-मारे!
पृथ्वी पटक, दाब तृण मुख में, चकित खड़ा रह जाय वराह!
मा, मेरी नस-नस में भर दे मरने की मतवाली चाह!
उड़ें धज्जियाँ इन प्राणों की;
आहुतियाँ हों अरमानों की!
पर, न डिगूँ अब पथ से अपने,
मौत मरूँ मैं मरदानों की!
पुष्पों की वर्षा हो नभ से, बोल उठे विस्मित जग, वाह!
मा, मेरी नस-नस में भर दे मरने की मतवाली चाह!
चमके जग में ओज-सितारा,
कहीं न भय को मिले सहारा!
जहाँ आज मैं निकल पड़ूँ, बस
बहे वहीं जीवन की धारा!
छिन्न-भिन्न कायरता-उर हो, दूँ अरि का गौरव-गढ़ ढाह!
मा, मेरी नस-नस में भर दे मरने की मतवाली चाह!
जन्मभूमि पर बलि-बलि जाऊँ;
रण से मैं न पीठ दिखलाऊँ!
नहीं किसीके सम्मुख अपना
यह चिर-उन्नत शीश झुकाऊँ!
अन्तरतर में उद्वेलित कर नयी उमंगें, नयी उछाह,
मा, मेरी नस-नस में भर दे मरने की मतवाली चाह!
तेरे चरणों को नित ध्याऊँ;
नहीं तुझे मैं कभी भुलाऊँ।

अन्यायी के दमन - हेतु जब
तेरे पद - रज में मिल जाऊँ;
तू ही आगे - आगे चल कर मुझे बता देना तब राह,
मा, मेरी नस - नस में भर दे मरने की मतवाली चाह!
मैं न बनूँगा आज उदार;
लाऊँगा सागर में ज्वार!
आज करूँगा विकल - वन्दिनी
वसुधा का मैं द्रुत उद्धार!
रोके कौन, चला, लो देखो, यह नवयुग का प्रखर-प्रवाह;
मा, मेरी नस - नस में भर दे मरने की मतवाली चाह!

अवसाद

निठुर, रहने दो अपना प्यार;
मैं दुख-दग्ध; न दे दो मुझको
तुम सुख का संसार;
निठुर, रहने दो अपना प्यार!

यहाँ अँधेरे में ही लुटता
है सहस्र आलोक;
साथी हैं जीवन के मेरे
व्यथा, वेदना, शोक!
व्याल बन डँसता है उपहार;
निठुर, रहने दो अपना प्यार!

पाकर स्वाद दुःख का होती
तनिक न सुख की चाह;
निर्ममता ही सही, नहीं है
इसकी कुछ परवाह!
सिसकती स्वयं यहाँ मनुहार;
निठुर, रहने दो अपना प्यार!

भरा हुआ है यहाँ हृदय के
कण - कण में अवसाद;
कुचली - सी आशा-लतिका पर
सोया है उन्माद!
छिन्न अन्तर के सारे तार;
निठुर, रहने दो अपना प्यार!

देकर अपना वैभव, लूटो
मत मेरा दुख - भार?
मत छीनो मेरी यह मधुमय
पीड़ा को सुकुमार!
वेदना का यह पारावार;
निठुर, रहने दो अपना प्यार!

यहाँ सतत गिरता लोचन से
जल छल-छल कर आह;
देख रहा उच्छ्वास मरण का
कब से मेरी राह!
मचा है दारुण हाहाकार;
निठुर, रहने दो अपना प्यार!

प्रतिध्वनित होता है प्रतिपल
यहाँ अनन्त विषाद;
जगा सुषुप्त विरह को जाती
कभी किसीकी याद!
निःस्व जीवन पर दुस्सह भार;
निठुर, रहने दो अपना प्यार!

बैठ विश्व के किसी कोण में
करुण गीत दो चार;
गाने दो बस, और बहाने
दो आँसू की धार!
यही है मेरे सुख का सार;
निठुर, रहने दो अपना प्यार!

कभी किसीकी मीठी सुधि में
होने दो बेचैन ;
भले न उसको लख पायें ये
मेरे प्यासे नैन !
तड़पने, रोने दो अनुदार ;
निठुर, रहने दो अपना प्यार !
आज, हृदय के वन्दी-गृह से
करो नहीं उद्धार ;
हो जाने दो बन्द नियति के
अचल-दृगों का द्वार !
न खींचो मुझे आज उस पार;
निठुर, रहने दो अपना प्यार !
मूक - वेदना उर में करती
रहे सदा मनुहार ;
जगती की सारी सुख-निधियाँ ;
दूर रहे आधार !
रहे उठता प्राणों में ज्वार ;
निठुर, रहने दो अपना प्यार !
मुझे चाहिये नहीं तुम्हारे
जीवन का अधिकार ;
मिलन - दूत बन आये मेरा
आज यही व्यवहार !
मुझे है पीड़ा ही स्वीकार ;
निठुर, रहने दो अपना प्यार !

१६०

भारत मेरा आजाद रहे ।
हो मुक्त गुलामी से , जीये
युग-युग यह, आबाद रहे ।
भारत मेरा आजाद रहे ।
हों स्वतन्त्र, विचरें हम भू पर ;
जल-थल, पवन-गगन के ऊपर !
अमर हमारा प्रेम - क्षेमकर
'जय हो विप्लव - वाद ' रहे ।
भारत मेरा आजाद रहे ।
जीवन में एक लहर आये ;
मादकता प्राणों में छाये !
भगें विपक्षी दाएँ - बाएँ !
वतन हमेशा शाद रहे ।
भारत मेरा आजाद रहे ।
आयें टूक - टूक कर कड़ियाँ ;
लाल - क्रान्ति की उद्धत घड़ियाँ ।
सूखें माँ की आँसू - लड़ियाँ !
अरि का घर बरबाद रहे ;
भारत मेरा आजाद रहे ।
जोश नया पैदा हो तन में ;
टूट जायँ जंजीरें क्षण में !
प्रलय मचाता जग - प्रांगन में
विजय - दुन्दभी - नाद रहे ।
भारत मेरा आजाद रहे ।
शीश कटाने के हित तत्पर ,
वधिकों के कर से निर्ममतर
मातृभूमि के लिये सदा हम
उसके ही औलाद रहें ।
भारत मेरा आजाद रहे ।
गायें गौरव - गान हमारे ,
अनिल, चन्द्र, दिनकर, ग्रह, तारे;
दूर सदा जीवन के सारे ,

भय, विषाद, अवसाद रहे,
भारत मेरा आजाद रहे।

१६१

इस विशाल तरुवर की—
मैं भी सजनि, एक डाली हूँ
फल - पत्रों से हीन;
कि जिसकी आकाँक्षाएँ दीन
तड़पती रहतीं सदा मलीन।
अपने लघु - जीवन में—
पाया कभी न मलयानिल का
मैंने कुछ भी प्यार;
उसे,···जो स्वयं विश्व का भार,
कौन कर सकता है स्वीकार?
मेरे लिये न पतझड़—
के पश्चात कभी आया है
पावन - प्रिय ऋतुराज;
पल्लवों का न सजा नव-साज;
बहायी धो गालों की लाज।
मेरे पास न आकर—
कभी किया कोकिल ने अपने
पञ्चम स्वर में गान;
न बुलबुल ने ही छेड़ी तान।
किसी वन, झाड़ी से अनजान।
कभी गगन से बादल—
करुणा कर कुछ बरसा देता
लघु बूँदें दो - चार;
उन्हीं का शीतल स्पर्श उदार।
भुला देता मेरा दुख - भार।

१६२

आज, फिर वीणा तू न बजा।
उर की शिथिल भावनाओं को
प्रिये, न अब उमगा।
अपलक - दृग - दल से निर्मल जल
गिरा धरा पर अविरल छल-छल,
पीड़ित प्राणों का मृदु परिमल
धो - धो कर न बहा।
जीवन के मृदु तार चपलतर
सुमन - बाल - से नयन बन्द कर
सोये हैं, सोने दे पल भर;
छेड़ न इन्हें जगा।
भूल गया हूँ सुख की घड़ियाँ,
बिखर गईं आशा की लड़ियाँ;
फिर न दिखा स्मृति की फुलझड़ियाँ
उनकी याद दिला।
इन गीली पलकों में छिप कर
सिसक रही है व्यथा अश्रु भर;
छुईमुई है, इसको छू कर,
पल - भर में न लजा।
कतिपय कलित स्वप्न - शिशु सुन्दर
क्रीड़ारत हैं उतर मन्दतर,
मेरे कल - कल्पना - भवन पर;
हाय, न इन्हें भगा।
तम के घन - अंचल में सत्वर,
छिप जा अब तू प्रिये, मनोहर;
किसलय - लय में नूतन - स्वर भर
सकरुण गान न गा।

मरीचि

अयि प्रभात की मृदुल किरण !
अरुणाम्बर से नित सहज उतर ,
स्तब्ध प्रकृति से तुम हँस-हँसकर
समुद खेलती हो जब जी भर ,
पुलकित हो उठता कण-कण ।

नव किसलय-दल पर अविरल !
करती हो नर्तन करुणामयि ,
सस्मित-वदन मन्द मोहक गति ,
दिखला जाती हो अपनी छवि ,
तुहिन - विन्दुओं पर निर्मल !

क्या न दया कर आओगी ?
मेरे तमपूरित अन्तर में ,
ज्योति जगाने को पल भर में ,
ले वीणा अपने मृदु कर में
विरह गान कुछ गाओगी ?

अलिबाला के कानों में
तुम क्या कहती हो सजनि, विहँस
कलियों के कोमल गाल परस ,
क्यों भर-भर देती हो बरबस—
मादकता प्राणों में ?

तरु-पत्रों से जब छन-छन !
अहा, बरसती हो वसुधा पर ,
सुधा-धार-सी तुम द्रुत आकर ,
सुप्त सृष्टि उठती मुसुका कर
खोल प्रिये, निज अरुण नयन !

आओ, आओ चपल - चरण !
निबिड़ तिमिरमय लोक-विलासिनि,
उज्वल-हेमकूट-गिरि - वासिनि ,
हे त्रिभुवन-सुन्दरि, कल-हासिनि ,
अयि प्रभात की मृदुल किरण !

क्रान्ति-संगीत

आती है यदि अमर - लोक से महाक्रान्ति, तो आने दो;
शक्ति-शृङ्ग को खण्ड-खण्ड हो निर्झर-सा झर जाने दो!

नीचा कर लो व्योम-विचुम्बित अपने मस्तक को नगराज;
धूलि-धूसरित कहीं न कर दे टूट गगन से ध्वंसक गाज!
अधम नरेशो, फेंको शिर से तुम भी मनुज-रक्तमय ताज;
मिट्टी में मिल जाओगे फिर अरे, नहीं तो क्षण में आज!

मुक्त-हस्त हो मुझको इनका रत्नागार लुटाने दो;
आती है यदि अमर-लोक से महाक्रान्ति, तो आने दो!

ऐ विनाश की उद्धत घड़ियाँ, विष पी आज अमर हो लो;
शान्ति, रुधिर-सरिता में अपनी वदन-कालिमा तुम धो लो!
क्षुद्र सुधाकर, कालकूट में अमृत-विन्दु अब मत घोलो;
बन्द करो, मत द्वार कल्पने, स्वप्न-पुरी का तुम खोलो!

जीवन में वह एक निराली नव उमङ्ग छा जाने दो;
आती है यदि अमर-लोक से महाक्रान्ति, तो आने दो!

तारावलियो, टपको नभ से तुम भी आज, स्थान को छोड़;
छिप जाओ रजनी की तमसा - छाया में ओ दिनकर-चोर!
फूट पड़ो कण-कण से जग के ओ असीम यौवन-उल्लास;
दौड़ चलो, मुख खोल भीमतर सत्यानाश, हिला आकाश!
बाँध ग्रहों को लो अम्बर, ध्रुव को विचलित हो जाने दो;
आती है यदि अमर - लोक से महाक्रान्ति, तो आने दो!

मृत्युञ्जय, नाचो, कपालिनी हो शव-उत्सव में अनुरक्त;
रक्त-वारुणी पी ले जी भर अरी भैरवी, भैरव-भक्त!
गाओ तुम भी प्रेत-पिशाचो, फुल्ल हृदय से विप्लव-गान;
उठ, ओ वीरभद्र भयकारी, करो यहाँ से द्रुत प्रस्थान!

छेड़ न, मुझको भी अब जग में हाहाकार मचाने दो;
आती है यदि अमर - लोक से महाक्रान्ति, तो आने दो!

जग उपवन में तुम भी आओ, खेलो हे स्वातंत्र्य-वसन्त।
खिलो, खिलाओ नव-कलियों को चिर-पतझड़ का करदो अन्त!

शिशिर, न झुलसो आशातरु को, करो निदाघ, न अत्याचार
कोकिल गण, झूमो विटपी पर, मलयानिल, विचरो साभार !

नव यौवन को महा-जलधि की लहरों-सा लहराने दो ;
आती है यदि अमर - लोक से महाक्रान्ति, तो आने दो !
बढ़ो वीरवर, वलिवेदी की ओर, छोड़ कर कपट-विचार ;
बुला रहा वह कौन तुम्हें लो, देखो विद्रोही दुर्वार ?
होंगे डाँवाडोल धराधर, हिल जायेगा यह संसार ;
काँपेंगे दिग्पाल श्रवण कर क्षुब्ध तुम्हारी जय-हुंकार !

निबिड़-तिमिर में तड़ित रश्मि को आकर पथ दिखलाने दो ;
आती है यदि अमर-लोक से महाक्रान्ति, तो आने दो !

साकी

इस प्याले में थोड़ा - सा मद जरा और भर देना साकी !
जिससे फिर पीने की दिल में रह न जाय कुछ हसरत बाकी !
अधर अरुण हो जायँ, अहा छा जाये नस-नस में बेहोशी ;
जारी हो उद्दाम प्रलापों का प्रवाह ; टूटे खामोशी !
छलक पड़ें जिसकी कुछ बूँदें नयनों के मग से अनियारी;
भर जाये जीवन के कोने - कोने में सर्वत्र खुमारी !
अङ्ग - अङ्ग से लगें छलकने तरल तरंगें नवयौवन की ;
विस्मृति के नद में निमग्न हो जायँ चेतनाएँ सब मन की !
चढ़े मजे में नशा, बनूँ मैं जिससे तत्क्षण ही मतवाला ;
अपने ही हाथों से मुझको आज पिला दे वह तू प्याला !
लाखों वर्षों तक तेरा आबाद रहे हाँ, यह मैखाना !
ढलने दे, ढलने दे साकी, अब पैमाने पर पैमाना !

यह शोखी, ऐसी मादकता, इतना दीवानापन, मस्ती ;
पता नहीं था—साकी, तेरे दिल में भी दरिया-सी बस्ती !
एक-एक चितवन पर झुक-झुक मर-मर कर फिर जीनेवाले;
आये तेरी मधुशाला में आज अजब हम पीनेवाले !
ओ दिलदार, देर क्या ? बहने दे मदिरा का यहाँ पनाला;
हम अलबेलों के आगे अब ढरका दे ला ला गुल्लाला !
शाम -सुबह जो तेरे दर पे आ - आ जुड़ते अलमस्ताने;
क्या जानें कुरान का मतलब ? रामायन-पुरान के माने ?
जब तेरे कूजे से छल - छल छलक छलकती है अंगूरी ;
उतर बिहिश्त जमीं पे आता, हिल उठती धरणी की धूरी !
मरता है जन्नत हूरों पर ; उनकी जहर - भरी नजरों पर !
मैं मरता हूँ साकी, हा-हा मय पर, मय के कुछ कतरों पर !

इतनी प्यास कि बना हुआ हूँ अंधा मैं दो आँखों-वाला ;
तू भी क्या समझे कि किसी से पड़ा कहीं था तुझको पाला !
भले-बुरे का ज्ञान नहीं कुछ; पाप-पुण्य से टूटा नाता !
सारी दुनिया में तू ही तू सिर्फ नजर अब मुझको आता !
अजी, ढालता जा तू केवल; एक अदा से, अल्हड़पन से !
मन की बात पूछ ले अपने ही नाजुक औ कमसिन मन से!
इतनी प्यास और तू कहता बारम्बार और क्या लाऊँ ?
जी करता ऐसा कि सलोने, उठा तुझे भी बस, पी जाऊँ !
बूँद-बूँद से बुझ न सकेगी अन्तर की प्रलयानल-ज्वाला !
सागर भर अपने सागर में, देता जा प्याले पर प्याला !
एक बार, बस सिर्फ एक ही बार आज मुझको पीने दे ।
आया हूँ मैं आज मौत को जीत, मुझे पी कर जीने दे !

१६६

निर्मल तन दे मा, निर्मल तन;
विमल वालुकाओं - सा पावन !

सरिता - जल में धो उज्वल,
हिलमिल लहरों से चंचल,

कर अनन्त की ओर प्रवाहित
दूँ यह स्नेह - रहित जीवन ।

खो दूँ जिससे अपनापन ;
निर्मल तन दे, निर्मल तन !

निर्मल मन दे मा, निर्मल मन,
विहग-बालिकाओं - सा पावन !

तरु - कोटर से मन्द उतर,
तन्द्रालस जग के ऊपर,

अपने करुणा के गीतों से
कर दूँ ध्वनित विजन कानन !

रो रो कर तेरा आँगन,
निर्मल मन दे, निर्मल मन !

होली के अवसर पर

प्रिय, मधुमत्त समीरण के सँग आई है होली इस बार;
पुनः कर रही जीवन-उपवन में मृदु स्नेह-सुधा संचार!
इस पुनीत अवसर पर तुमको बोलो मैं क्या दूँ उपहार?
प्यार! विपुल उद्‌गार-भार में कैसे तुम्हें जताऊँ प्यार!

आह, एक उच्छिन्न स्वप्न-सी वे घड़ियाँ हो गईं व्यतीत!
विस्मृति के गम्भीर गर्भ में लिये जा रहा उन्हें अतीत!
आज होलिका ने फिर आकर बन्धु, दिलाई उनकी याद।
जीवन-धनका मिलन; साथ ही वह वियोग का विषम विषाद!

कैसा था मंगल-मुहूर्त्त वह, धीरे-से आ स्वर्गिक भोर;
हमें दिया था प्रथम प्रणय की मदिर लालिमा में जब बोर
सिहर उठा था गात पात-सा तरल तुम्हारा पाकर स्पर्श;
हास-विलास, हर्ष-उत्कर्षों में ही बीत चले दिन-वर्ष!

लगी हुई थी अकरुण विधि की लेकिन हमपर दृष्टि अदृष्ट
छीन लिया जिसने निर्ममता से हम दोनों का ही ईष्ट!
क्षणही भर में सखे, हमारा सुख-साम्राज्य मिटा डाला!
हरी-भरी आशा-लतिका पर पड़ा अचानक ही पाला!

आज, बन्धु! आँखों में आँसू, होठों पर हलकी मुसकान;
खेल रहे हैं आँखमिचौनी रुदन-हास्य, करुणा-अभिमान
रोते ही जीवन के मेरे काले क्रूर दिवस बीते;
कैसे स्वागत करूँ तुम्हारा प्रिय, इन हाथों से रीते!

बैठा हूँ मैं लिये तुम्हारे दर्शन की कब से मधु चाह!
पर सच कहना, क्या तुमको भी रहती कुछ मेरी परवाह
वैसे ही जा रहा बहा मैं अब भी सरि-सा चपल, अधीर;
क्या जानूँ, विश्राम मिलेगा कब असीम सागर के तीर?

पूछोगे उत्सुकता से तुम मेरे लघु मोती का मोल;
ठहरो; काल-चक्र ही देगा कभी हृदय-मंजूषा खोल!
वर्षों तक मैं ही ने जिसकी नैसर्गिक सुषमा लूटी;
देख रहा हूँ आज उसी शतदल की पंखुड़ियाँ टूटी!

कैसे कह दूँ एक साँस में अपनी करुण कथा सारी?
तुम्हें दिखा दूँ पल में कैसे हिय-कुटिया अपनी प्यारी?
चला गया है जबकि छोड़कर अतिथि कहीं यह भग्नावास?
किस प्रकार सुख से जीने का करूँ जगत में विफल प्रयास?

लोगे? क्या मैं आज तुम्हें दे दूँ अपना उपहार उदार?
इन नीरस सुमनों को पर क्या तुम कर सकते हो स्वीकार?
यद्यपि हैं ये तुच्छ; किन्तु हैं फिर भी हृदय खण्ड प्रिय-प्राण!
अपने विस्तृत करुणालय में इन्हें कहीं दे देना स्थान!

तुम सानन्द रहो निशि-वासर; मंगलमय होवे ऋतुराज!
चरणों में हे देव, तुम्हारे है सप्रेम अभिवादन आज!

१६८

मा, मेरी जीवन-कुटीर में अब तो आग लगा दो ना!
अपने ही हाथों से इसको पल में छार बना दो ना!
पल पल में बढ़ रहीं व्यथाएं,
किससे अपनी कहूँ कथाएं?
परम स्वार्थमय इस जगती में कौन सुने किसका रोना?
मा, मेरी जीवन-कुटीर में अब तो आग लगा दो ना!
सभी मार निज बैठे हैं मन;
कहीं दिखाई पड़ा न जीवन!
खलता है बेतरह मुझे यह अखिल विश्व का यों सोना।
मा, मेरी जीवन-कुटीर में अब तो आग लगा दो ना!
धक धक कर शत-शत ज्वालाएं
नभ को आज हार पहनाएं!
खिल-खिल कर मैं हँसूं वहीं पर खड़ी, रूप यह लख लोना;
मा, मेरी जीवन-कुटीर में अब तो आग लगा दो ना!
भस्म वासनाएं हो जायें,
मल समस्त मन के जल जायें!
रह जाये न कलुष-तम-पूरित अन्तर का कोई कोना!
मा, मेरी जीवन-कुटीर में अब तो आग लगा दो ना!

कामना

खिलो, तुम ज्यों वसन्त के फूल!
अपनी मृदु सौन्दर्य - सुरभि से हर लो हिय का हूल!
नाचो जगपति के आँगन में दुख की घड़ियाँ भूल!
विकसो कमल - कली-सा, कर दो दूर जगत के शूल!
सूख गये हैं आज हमारी सुख - सरिता के कूल!
तुम मुसुका दो, बरसे रिमझिम रस, सरसे सुख-मूल!
हँसो, हँसाओ, फूँक उड़ा दो भेद - भाव का तूल!
स्नेह - सलिल से प्लावित कर दो धरा, धुले पथ-धूल!
खिलो, तुम ज्यों वसन्त के फूल!

सरिता के प्रति

शैल - माल काट-काट ,
तुङ्ग शृङ्ग को सपाट ,
बीहड़, वन हाट-बाट ,
लाँघ अमित जनस्थान
कहाँ चली ओ अजान ?

तोड़ बाँध, तट कछार ,
बहा गाँव, गेह द्वार ,
सिर पर ले व्यथा-भार ,
गाती उत्फुल्ल गान—
कहाँ चली ओ अजान ?

धारण कर विरह-वेश ,
कितने पावन प्रदेश ,
मुखरित कर वन अशेष
उपवन, निर्जन श्मशान ,
कहाँ चली ओ अजान ?

कुल-कुल-कुल, कल-कल-कल ,
अचल - गर्भ भेद निकल ,
शिशुओं - सी मचल - मचल
गुँजा गहन - वन - वितान
कहाँ चली ओ अजान ?

पहन तुहिन - विन्दु - माल ,
खोल अलस पलक लाल ,
चूम अरुण किरण - जाल ,
होते ही तू विहान
कहाँ चली ओ अजान ?

उर में यौवन - उमङ्ग !
पुलकित नव अङ्ग - अङ्ग ;
फैला शत - शत तरङ्ग ,
अस्फुट कुछ छेड़ तान
कहाँ चली ओ अजान ?

२०१

मस्तक कटता है, कटने दो; तन को छलनी होने दो;
आज जरा अपने को शोणित की धारा में सोने दो !
वीर , तुम्हारी हुंकारों से जग रोता है , रोने दो ;
महाकाल को अखिल जगत में नाश-बीज तुम बोने दो !
किन्तु, देखना अरे, न निकले मुख से कायर-वचन कहीं !
देख समर का रूप भयंकर डिगे तुम्हारा मन न कहीं !
दुनिया पागल कहती है यदि, उसको पागल कहने दो ;
रग-रग में यौवन - गंगा को प्रबल वेग से बहने दो !
आज, वीर ! निज पद-प्रहार से रिपु-गौरव गढ़ ढहने दो !
किन्तु,न होना भीत विविध-विधि तनको आपद सहने दो !
तबतक चैन न लेना हरगिज जबतक होओ सफल नहीं;
आज तुम्हारी चरण-धूलि के नीचे लोटे विकल मही !
धरती हिलती है , हिलने दो ; नभ फटता है, फटने दो;
अपने विकट प्रहारों से इस जगजाल को कटने दो !
पर, ममत्व के धोखे में पड़ नहीं बाहु-बल घटने दो !
आज, जरा अरिकी गर्दन से अपनी असिको सटने दो !
आगे बढ़ते चलो वीर , मानस में मा ध्यान रहे ;
नस-नस में अभिमान रहे, मर-मिटने का अरमान रहे !

लालसा

चाहता नहीं हूँ धन-सम्पति कुबेर-सा मैं,
चाहता प्रताप नहीं प्रभो, देवपाल-सा !
चाहता नहीं हूँ धर्म-टेक धर्मराज-सा मैं ,
चाहता नहीं हूँ रुद्र-रूप करवाल-सा !
चाहता नहीं हूँ कर्ण-सा मैं वीर-दानी बनूँ ,
चाहता नहीं हूँ राज्य नाथ, कुरुपाल-सा !
बाँसुरी की तान से सुनाओ देव, गीता-ज्ञान;
सत्य कहूँ, जीवन की यही एक लालसा !

प्रार्थना

छल, प्रवञ्चना, मिथ्यादिक को कृपया दूर भगा देना !
पर-सेवा के सद्भावों को उर में नाथ, जगा देना !

जीवन के ये एक एक कण मातृ पदों में हो अर्पित ;
देश-भक्ति की विमल आग को अन्तर में सुलगा देना !

चलूँ कर्म-पथ पर सत्वर हो दिव्य सत्य-रथ पर आरूढ़ ;
अपनी अमर ज्योति से मेरी सारी भीति भगा देना !

परवा नहीं, करों में लोहे की घातक जंजीर पड़े !
पर, मानस में आजादी की पावन लगन लगा देना !

पड़ माया-जालों में यदि मैं विचलित हो जाऊँ पथ से ;
दिव्य ज्ञान गीता का तत्क्षण मुझमें तनिक जगा देना !

मुझे शक्ति दो वह, जिससे कर सकूँ देश का मैं उद्धार ;
किन्तु, साथ ही विश्व प्रेम में उर को नाथ, पगा देना !

२०४

सखि, सरसों की डाली में
झूल रहा है कौन सलोना
ले कर में फूलों का दोना ?
चला रहा है जादू — टोना
उस फैली हरियाली में !
उर में पुलक, पुलक में स्पन्दन ;
गिर गिर एक अपर के ऊपर ,
नयनों में प्रेमाश्रु - विन्दु भर ,
एक साथ ही शीश झुका कर ,
करते सब किसका अभिनन्दन ?
सरस वसन्त - समीरण में
उदधि-ऊर्मि-सा कम्प सृजन कर
उड़ता है किसका पीताम्बर ?
मचल-मचल उठता क्यों मधुकर
मादकता से मधुवन में ?

२०५

मूल कार्य का सारा भार,
पल भर दृग कर बन्द उदार ,
इन्हीं ताल - पत्रों की शीतल
छाया में सुस्ताने दे ;
श्रमकण सदय, सुखाने दे !
स्तब्ध विश्व, नीरव द्रुमपत्र ,
शान्ति खेलती है सर्वत्र !
बैठ इसी प्रिय - दोपहरी में
एक मल्लार उठाने दे ;
करुणा - रस बरसाने दे !
सायं - प्रातः, शिशिर-वसन्त ;
एक - एक कर दिवस अनन्त
बीत जायँ, पर मुझको यों ही
गीत यहाँ पर गाने दे ;
जी की जलन बुझाने दे !

सिखलाओ

मातृभूमि के लिये मुझे हँस - हँस कर मरना सिखलाओ !
जग में कभी किसीसे मुझको नाथ , न डरना सिखलाओ !

टूट पड़े मस्तक पर चाहे विपत्तियों का विकट पहाड़ !
किन्तु , भूल कर के भी पीछे पैर न धरना सिखलाओ !

इस नश्वर शरीर की ममता कभी न मुझको हो भगवन !
वलिवेदी पर निज प्राणों को अर्पण करना सिखलाओ !

परोपकार ही इस जीवन का एकमात्र व्रत हो मेरे !
किसी व्यक्ति से नहीं द्वेषवश मुझे झगड़ना सिखलाओ !

आज विश्व में जो फैले हैं ये सारे दुख दैन्य अपार !
इन्हें जगत से मूल-सहित प्रभु, क्षण में हरना सिखलाओ !

हिलमिल सभी परस्पर मानव रहें, नष्ट हो मिथ्याचार !
प्रेम - भाव प्रत्येक हृदय में मुझको भरना सिखलाओ !

समर्पण

नहीं करुणा की कोमल छटा
यहाँ पाओगे तुम हे नाथ !
नहीं मैं विमल भाव सुकुमार
अरे, लाया हूँ अपने साथ !

नहीं वीणा की मृदु झंकार,
न पल्लव की ही सुरभि अमन्द;
काव्य की कलित - कल्पना-युक्त
नहीं ये मेरे छोटे छन्द !

न बहती यहाँ रसों की धार;
नहीं हैं मधुर शब्द - विन्यास !
अरे, स्फुट भाषा में यह देव,
एक बालक का विफल प्रयास !

नहीं पाओगे इसमें कहीं
विमुग्धा का वह मुकुलित हास;
भूल जाओ सत्वर हे देव,
सुधा पाने की इसमें आस !

अरे, यह तो है तीखा गरल,
खेलता इसमें सत्यानाश;
हृदय-सागर को मथकर आज
किया है मैंने इसे प्रकाश !

नहीं है यह पुष्पों का हार;
विषम-वाणों की यह तो सेज !
भरा है ऊष्मा का सन्ताप;
और दिनकर का इसमें तेज !

किया है कालकूट ने इसे
अरे, निज नाशक शक्ति-प्रदान;
सिखाया विद्रोही ने इसे
विहँस कर हो जाना बलिदान !

भरी वाणी ने इसमें मंजु
विपञ्ची की अपनी मृदु तान;
दिया है देवों ने दुर्द्धर्ष
अमरता का इसको वरदान !

छिपा है इसमें मेरे क्षुब्ध
हृदय का प्रलयंकर अभिशाप;
पड़ी है इसमें मेरे देव,
क्रूर मानस की काली छाप !

यही है आह, हमारी विकल
भावनाओं का उग्र विलास;
कामनाएँ मेरी बीभत्स
इसीमें करतीं सतत निवास !

कहाँ कोमलता, कहाँ उमङ्ग ?
निराली चाहों की भरमार;
अरे, हाँ, सिकताओं की राशि
पड़ी है यहाँ, अजेय - अपार !

न पाओगे तुम यहाँ कठोर !
सरित का श्रुति-प्रिय कल-कल नाद;
भरे हैं शब्द - शब्द में यहाँ
देव, पागल के घोर प्रमाद !

यहाँ सावन - भादों - सी नहीं
बहाती हैं आँखें जलधार;
यहाँ तो ज्वालामय दिन - रात
बरसते हैं दृग से अङ्गार !

न दग्धों की उत्तप्त उसाँस,
डोलता यहाँ न मलय-समीर;
अर्द्ध-विकसित यौवन का नृत्य
एक होता है यहाँ अधीर !

किया है चपला ने शृङ्गार ;
भरा झंझा ने इसमें रोर !
दिया घन ने गर्जन गम्भीर,
और सागर ने ध्वंस - हिलोर !

छिपा है इसमें जग का सत्य ,
पातकी - जीवन का अभिमान ;
भरा है नस-नस में अवसान ,
और मर मिटने के अरमान !

सुनोगे क्या मेरा संगीत
प्रलय-तक तुम धीरज को धार ?
अरे, क्या कहते हो तुम मुझे
छेड़ने हृत्तन्त्री के तार ?

देव, निज खो दोगे अस्तित्व ,
सुनो मत आज हमारे गान !
अरे, यह कर दे कहीं न भङ्ग
तुम्हारा अटल, अगोचर ध्यान !

किन्तु, फिर भी तुमको हे नाथ ,
पड़ेगी सुननी यह कटु तान ;
भभकती ज्वालामुखी - समान
आज अन्तर से जो अनजान !

व्यथित अबलाओं के न दयार्द्र
आँसुओं की यह भीषण बाढ़ ;
दिया है रख इसमें सम्पूर्ण
कलेजा मैंने अपना काढ़ !

× × ×

गगन की छाया में हाँ, कभी
लखा था नृत्य तुम्हारा घोर ;
लेखनी से चित्रित कर वही
देव, लाया कवि एक किशोर !

उसीका लेकर वह उपहार
खड़ा है आज तुम्हारे द्वार ;
पहन लो, पहन समोद उदार
प्रसूनों का अपने ही हार !

नहीं तव दया - दृष्टि की चाह ;
चाहिये औ न तुम्हारा प्यार !
न अपमानों की ही परवाह ;
करो केवल इसको स्वीकार !

यही है मेरे मन की साध ,
इसीसे मुझे मिलेगी शान्ति ;
लालसा कहो, धृष्टता कहो ;
कहो तुम अथवा इसको भ्रान्ति !

× × ×

तुम्हारा ही ताण्डव - नर्तन
तुम्हें ही करता सभय समर्पण !

२०८

प्रिय, अब आ जाओ सत्वर !
इस नीरव रजनी में तुमको
कब से ढूँढ़ रही सुन्दर !

तुम्हें गहन कानन में निर्भय ,
दुर्गम गिरि-पथ में कंटकमय ,
आकुल-हृदय, विगत-जिय-संशय
खोज थकी हे करुणाकर !

इन पगली आँखों की वाणी
क्या समझे दुनिया दीवानी ?
मेरी यह कटु कसक - कहानी
कौन सुनेगा धीरज धर ?

प्रिय, दृग-पथ से शीघ्र शेषकर
सकल कामनाओं को, झर-झर
श्रवण-सुखद-गति मन्द-मनोहर
झर जाओ निर्झर बन कर !

प्राणों की प्रिय-ओस - बिन्दु पर
बन प्रभात का बाल-तरणि-कर
उतर अचिर अम्बर से द्रुततर
कर जाओ नर्तन पल भर !

उर के गहन तिमिर में आकर
प्रिय, विलिन हो जाओ सत्वर;
शुभ्र ज्योति फैला दो सुखकर
विमल प्रणय का दीपक धर !

मेरे मरु - मानस - प्रदेश में
विविध-व्याधि-भव-भीति-क्लेश में;
बरसा दो हे प्रिय, निमेष में
रिमझिम मृदु रस - धाराधर !

सारी अभिलाषाएँ मन की ,
जन्म-जन्म की प्यास नयन की ,
मिटे समस्त साध जीवन की
तव मृदु पद-ध्वनि को सुनकर !

विस्मृति का उन्माद भूल कर
करने दो किलोल अब जी भर;
एक बार प्रिय, पुनः परस्पर
मिल जाने दो अधराधर !

मेरे बिखरे उपहारों को ,
प्रिय, समेट इन उद्गारों को ,
टूटी वीणा के तारों को
ले उसमें भर दो नव स्वर !

उच्छृङ्खल

बढ़ चल, ओ उच्छृङ्खल कराल !
माता की ममतामयी मूर्ति पर
अपनी आहुति दे विशाल ;
बढ़ चल, ओ उच्छृङ्खल कराल !
जीवन अनित्य है, नित्य नहीं ;
फिर भय किसका है तुझे वीर ?
जल के लघु बुद्बुद के समान
जब मिट जायेगा यह शरीर,—
तब चल न सकेगी कपट-चाल ;
बढ़ चल, ओ उच्छृङ्खल कराल !
चंचल-जीवन का मोह भूल ;
पढ़ गीता के वे अमर मन्त्र !
(जिनपर करता संसार गर्व ।)
जग में तू भी होकर स्वतन्त्र ,
कर ले उन्नत निज अजिर-भाल ;
बढ़ चल, ओ उच्छृङ्खल कराल !
वह प्रीत - रीति, उल्लास-हास ;
मनुहार - भरा वह मधुर प्यार !
बाँकी चितवन पर वह निसार
होना प्यारी की बार बार !
जा भूल मृदुल वे अधर लाल ;
बढ़ चल, ओ उच्छृङ्खल कराल !
तज दे तू महलों का निवास ;
काँटों पर सोना आज सीख !
कब से रणचण्डी माँग रही
तेरे प्राणों की निठुर भीख !
जग के पाशों को काट डाल ;
बढ़ चल, ओ उच्छृङ्खल कराल !

जा भूल अरे, मधुमय विहाग ;
गा निर्भय तू वह मृत्यु-गीत ;—
सुन जिसको नर होता अधीर ,
रोती कायरता हो सभीत !
थर्रा उठता मदमत्त काल ;
बढ़ चल, ओ उच्छृङ्खल कराल !

वैभव की गोदी में समोद
सुख से पलना तू भूल-भूल ;
फाँसी की टिकठी से कठोर
जाकर निर्दय अब झूल-झूल !
जीवन की सब ममता निकाल ;
बढ़ चल, ओ उच्छृङ्खल कराल !

लड़ अन्तक से भी एक बार ;
मत हों तेरे भय-भीत प्राण ;
जीवन यदि जाय, चला जाये ;
पर, छोड़ न अपनी आन-बान !
ले खड़ा कौन यह विजय-माल ?
बढ़ चल, ओ उच्छृङ्खल कराल !

नभ में किसके ये अभय - वचन
रह-रह उठते हैं गूँज आज ?
रख लेना जननी के पवित्र
पय की रण में हे युवक, लाज !
माया का अब तोड़ जाल ;
बढ़ चल, ओ उच्छृङ्खल कराल !

धुँधली रेखाएँ मिटा जीर्ण,
लाना प्रवीर, वह युग नवीन !
तू मतवाली - सी तान छेड़
हाथों में लेकर प्रलय - वीण !
दल चरणों से करुणा - मृणाल ;
बढ़ चल, ओ उच्छृङ्खल कराल !

क्षण में प्रलयोदधि खौल उठे ,
चू पड़े व्योम से रवि प्रचण्ड ;
गिर जाये गलकर द्रुत सुधाँशु ;
तारक-समूह हों खण्ड-खण्ड !
विचलित दिग्मण्डल-दिशापाल ;
बढ़ चल, ओ उच्छृङ्खल कराल !

टूटें नभ से विद्युत असंख्य ;
हो जाये अम्बर भस्मसात ;
संसृति को कर कम्पायमान ;
पल-पल पर होवे वज्रपात ।
फट जाये दिवि का अन्तराल ,
बढ़ चल, ओ उच्छृङ्खल कराल !

जल जाये यह वसुधा विशाल ;
पल में फैले अब सर्वनाश ;
घूमे उन्मादी - सा अबाध
विद्रोही का यौवन - विकास !
धू-धू कर धधके चिता - ज्वाल ;
बढ़ चल, ओ उच्छृङ्खल कराल !

धूमिल दिगन्त को आज घेर
ले घन - प्रलयंकर अन्धकार ;
युग-युग का निश्चल मौन भंग
कर बरसे भूपर उपल-धार !
उमड़े सागर - जल महोत्ताल ;
बढ़ चल, ओ उच्छृङ्खल कराल !

अग्नि-गान

अरी, जाग तू अभ्यन्तर में महाक्रान्ति की आग निराली !
जिसकी लपटों में खो जाये सदियों की परवशता पाली !

खो जाये अभिशाप आपही आप पाप-प्रतिमा जीवन की ;
निखर उठें कंचन सी गीली घड़ियाँ इस पंकिल यौवन की !
जयोल्लास से हेम हास बन जाय काल की साँस भयंकर !
काँप शिराएँ उठें सृष्टि की गगन - गिराओं से प्रलयंकर !
युक्त युक्ति से स्रुति भगे, नव मुक्ति मार्ग दिख आये आली !
अरी, जाग तू अभ्यन्तर में महाक्रान्ति की आग निराली !

शान्ति-दंड टूटे, फूटे ब्रह्माण्ड निमिष में आज भांड सा !
प्रलय दृश्य हो जाय उपस्थित निखिल विश्व में अग्निकांड सा !
सिंहासन हिल उठे, जले पाखंड, खंड हो अत्याचारी !
भीति-भित्ति की नींव डिगे, भग जाये घृणित भाव व्यभिचारी!
एक एक हृत्कम्प बने भूकम्पों की लहरें मतवाली !
अरी, जाग तू अभ्यन्तर में महाक्रान्ति की आग निराली !

वज्र - घोष से रुद्र - रोष की अलसायी आँखें खुल जायें ;
क्षुब्ध जलधि-सी लहराती लपटों की लोल लहर बढ़ आये!
भय-मुद्रा से युग्म-नेत्र चढ़ आयें आज सुप्त जागृति के !
द्रोह-दीप्ति से उड़ें धज्जियाँ मोह-जाल की महानियति के !
अँगड़ाई ले निद्रा - निरता उठ बैठे काली विकराली !
अरी, जाग तू अभ्यन्तर में महाक्रान्ति की आग निराली !

चमक उठे विद्रोह मोह तम भेद भुवन में भानु-सरीखा !
रुद्ध-क्रुद्ध विस्फोट शेष - रव गूँजे गगन-गर्त्त में तीखा !
जाति-रंग के नीच क्षुद्रतम भेद - भाव दे भुला भवानी !
पीड़ा और निराशा के पलने पर नहीं झुला, कल्याणी !
मैं नाचूँ नटराज-सदृश, तू बजा कालिका-सी करताली !
अरी, जाग तू अभ्यन्तर में महाक्रान्ति की आग निराली !

आज सृष्टि-संहार भार ले शिर पर विषम बयार बहे री !
अनिल-गगन में, गिरि-उपवन में एक वही हुंकार रहे री !
ज्वालामुखी पहाड़ों सी धक-धधक उठे विनाश की भट्ठी !
कुहरे-सी फट छिन्न - भिन्न हो जाय आज धोखे की टट्टी !
पूर्व-गगन में अहा, दिखा दे—नव प्रभात की मोहक लाली !
अरी, जाग तू अभ्यन्तर में महाक्रान्ति की आग निराली !

आज, सर्वतोमुखी क्रान्ति की मूर्त्ति पड़े सब ओर दिखाई;
चिर समाधि हो भग्न, हृदय में करे नग्न ताण्डव तरुणाई !
परम्परागत लीक मिटे निर्भीक विचार - धार से क्षण में;
ज्वार रुके नियमोपनियम का, दिव्य स्फूर्ति उमड़े तन-मन में!
भगे मूकता, जगे देहली पर विप्लव की नाश - प्रणाली !
अरी, जाग तू अभ्यन्तर में महाक्रान्ति की आग निराली !

उर के तार-तार पर खरतर स्वर - समूह अनन्त मँडरायें !
अन्तहीन दिगन्त के मग में तेरी लाल शिखाएँ धायें !
ताल-ताल पर थिरक उठे निर्मोह काल का पद-संचालन ;
क्रंदन क्रंदन के स्वर में जग पड़े विजय-उद्घोष निरंजन!
फुल्ल - स्फुलिङ्गों के फूलों से भर दे दिगंगनाञ्चल खाली !
अरी, जाग तू अभ्यन्तर में महाक्रान्ति की आग निराली !

२११

हरिणी के दृग - सा चञ्चल ,
हरियाली में उछल - उछल ;
सजनि, धान के खेतों में वह
खेल रहा है कौन खिलाड़ी
अंजलि में मुक्ता भर - भर ?

हाय, अभी तो ये नवजात ;
देखा यौवन का न प्रभात ;
फिर क्यों वह सखि, मसल रहा है
उनके कोमल पत्तों को
अपने हाथों से निर्मम ?

आयेगा वह समय अवश्य,
पक जायेंगे जब सब शस्य ;
तब तक क्या न सजनि, रह सकता
है वह निष्ठुर दीन कृषक—
जी में अपने धीरज धर ?

ताण्डव

अर्द्ध - संध्या के धूमाच्छन्न
व्योम-प्रान्तर में आत्म-विभोर ;
रक्त-रञ्जित,तम-व्यञ्जित, तोम
घनों के अन्तराल में घोर ;—

कौन तुम उतर आज चुपचाप ,
नृत्य करते हो बन अभिशाप ?
काल का कोप, तरणि का ताप !

नाश की त्राशक घड़ियाँ आज
दिलातीं प्रलय-काल की याद ;
मदिर मूर्च्छित प्राणों के तार
हिला जाता विध्वंस - निनाद !

मेघ - मन्द्रध्वनि , मंत्रोच्चार ;
कर रहे बारम्बार अपार
हृदय में सिहरन का संचार !

निखरती है ललाट से एक
कोटि दिनकर-सी ज्योति अखण्ड;
सँजोता सर्वनाश के दिवस
'डिमिक' डमरू का नाद प्रचण्ड!

अरुण यौवन का तरुण विहार
जगा देता विप्लव—शृङ्गार ;
छेड़ उर के स्वप्निल उद्‌गार !

खिसकती धरा शून्य की ओर;
असह हो रहा पदों का भार !
देख शूली का विप्लव - नृत्य
कराहे आज भीरु संसार !

जरा - तन्द्रिल वसुधा को बोर
बालियों की झंकार कठोर ,
मिला देती भू - नभ के छोर !

चमक चपला-सी, चंचल, उग्र,
वक्ष पर पड़ी कराल, विशाल ;
प्रलय की कर चिर-नूतन सृष्टि
डोलती नर-मुण्डों की माल !

हृदय में छायी विपुल उमङ्ग !
हलाहल - नीलग्रीव , प्रत्यङ्ग !
आज रे कुंठित मदन उलङ्ग !

नासिका - रन्ध्रों से आग्नीध्र
त्वरित निर्गत हो श्वासोच्छ्‌वास,
अर्णवाणों पर लिखता विहँस
पाप-पंकिल भव का इतिहास !

स्वर्ण - शुभ - सेंदुर - सा सीमन्त,
अरण्यों में आनील दिगन्त;
चूर्ण - तम बरसा रहा अनन्त !

वज्र - सा उर को भेद अभेद
गूँजता खर शृङ्गी - रव-रोर ;
शून्य में फैला बाहु उदण्ड
नाचता मृत्युञ्जयी अघोर !

अगम मानस निर्मल, अविकार ;
निःस्व जग को निर्मोह उजाड़ ,
क्षार कर रहा आज अनुदार !

मोम के दीपक - सा सुकुमार
पतित हो भू पर, बन हिम-विन्दु
तुम्हारे प्रखर तेज से आह ,
वक्र हो गया पिघल कर इन्दु !

विकट वर-व्यालों की फुफकार

खोलती महामृत्यु का द्वार !
मचाती दारुण हाहाकार !

तुम्हारा रूप भयानक देख
अचानक छिपता विश्व सभीत ;
और, भय खाता काल कठोर !
अरे, यह कटि-प्रदेश में पीत—

सुशोभित बाघम्बर विकराल !
गले में रुद्राक्षों की माल !
और, ये नयन तुम्हारे लाल !

तुम्हारा एक - एक हुंकार
कायरों के हर लेता प्राण ;
तुम्हारा एक - एक भ्रू भङ्ग
विश्व- दीपक करता निर्वाण !

तुम्हारा यह विद्रूप स्वरूप,
युगान्तर का प्रतिबिम्ब अनूप ;
शवों से भरता कुम्भी-कूप !

निरख कर अंगारों - से नेत्र
नीच जग लोचन लेता मींच ;
प्रलापों का उद्दाम प्रवाह
मचाता हलचल जग के बीच !

उर्द्ध-शिख, विभव-विभाव त्रिभङ्ग,
कंठ-भुज भूषित, अमित भुजंग !
वारुणी का अधरों पर रङ्ग !

तुम्हारे अन्तर का उद्वेग ;
और, यह मन्द-मन्द मृदु हास !
तुम्हारा यह विक्षिप्त विलास !
चुतुर्दिक करता सत्यानाश !

विलसती मुख पर लोहित कान्ति;
क्रान्ति-सी वह विक्षुब्ध अशान्ति !
आह, भावों की भीषण भ्रान्ति !

धधकती वह्नि-शिखा विकराल
तुम्हारे मुख पर मानो, घोर ;
जाह्नवी की मस्तक पर श्वेत
राजती मत्त अकूल हिलोर !

भस्म - गजचर्मावेष्ट - शरीर ;
रुक्ष बालों की जटा अधीर !
अरे, ओ प्रलयंकर रणवीर !

तुम्हारी जलती साँस - उसाँस
उगलती महा-हुताशन-ज्वाल ;
तुम्हारा यह अकाण्ड करताल
लूटता कितनी मा के लाल !

नाच रे, नाच सदाशिव आज ;
नाच सह-पार्श्वद, साज-समाज !
अहे वैतालिक, हे नटराज !

तुम्हारा ही ताण्डव - नर्तन ;
प्रलय का है पट-परिवर्तन !
सृष्टि का नूतन आवर्तन !

२१३

तिमिर का जाल फटा !
क्षण ही भर में शिशिर - शीत का
प्रबल प्रकोप घटा !

दूर्वादल की मृदुल सेज पर
काँप उठीं भय से हो कातर,
तरल तुहिन - कणिकाएं थर - थर !
दिन का दिन पलटा !

अङ्गार

अरे, ये नव अङ्गार !
पतित हो छायापथ से आज ,
सजा कर लोहित साज ;
धरा पर करते हैं अभिसार ,
विपुल , निर्बन्ध , अपार ;
गरजते हैं ये बारम्बार ,
सृष्टि का कर संहार !

आज वन - वन में मेरे गान ;
अग्नि के तीखे बाण !
लगी तरु-तरु में दारुण आग;
चपल यौवन का राग !
जल रहा नन्दन-सुमन-समाज;
आज, जलता ऋतुराज !

न सरिता का ऊर्मिल संगीत ;
न पुष्पों की मुस्कान !
अरे, तुतले से अर्थ - विहीन
एक शिशु के ये गान ;
निकल अति-द्रुत गति से अनजान,
विचरते शुचि - महिमान;
पहन उस दिन जब तारक-माल
प्रलय था नाच रहा साकार ;
अलक्तक से सन्ध्या रक्ताक्त
कर रही थी अपना शृङ्गार !
गगन से टूट पड़े तत्काल
दहकते ये अङ्गार कराल !

निशा का इनमें है अवसान;
सिन्धु की मत्त तरङ्ग !
प्रखर दिनकर की उज्ज्वल दीप्ति;
पिनाकी का भ्रू - भङ्ग !
काल का अट्टहास उद्भ्रान्त ,
हृदय की अमित उमङ्ग !

दाव का दारुण ग्रीष्म-विकास ,
चिता की अन्तिम साँस ;
धूम खाण्डव का रक्त-विलास,
महा — बाडव का हास !
आज ये चपल-हुताशन-बाल ;
स्वस्ति, मेरी छवि - ज्वाल !

कमल-वन में ज्यों गुंजन - हार,
शैल-दरियों में रत्न अपार ;
अनिल से करते वीचि-विहार ,
विश्व-पलकों में स्वप्न असार ;
छिपे त्यों मेरे मादक गान
इन्हीं क्षारों में म्लान !

मुक्त जग का वह छाया-काल,
नवल-युग-चल-समीर-संचार;
उड़े, चंचल लघु-पालक-क्षार;
प्रकट होंगे तब ये अङ्गार !
विश्व पर तीखी चितवन डाल ,
लाल, दृग-मद से लाल !

पदों पर इनके शत-शत कोटि
मुकुट लोटेंगे सदा सभीत ;
दग्ध होगा भव-बन्धन-जाल ,
मुग्ध जग होगा सुन ये गीत !
बिखर जायेंगे शैल-प्रमाण
मार्ग में रेणु — समान !

जले जग - कल्मष, अत्याचार;
पाप , तृष्णा , पाखण्ड !
प्रलय का पर्व, नाश का रूप ;
जले द्वादश मार्त्तण्ड !
सृष्टि का आज अग्नि-उल्लास;
जले पाताल, जले आकाश !

मेंहदी की कुंजों में आज
भैरवी नृत्य करेगी नग्न ;
युगान्तर की वाणी से क्षुब्ध
ध्यान होगा युग-युग का भग्न!
वसुमती में आये रण-दूत
अरे, ये पुंजीभूत ;

आज, हर का कालानल-कोप;
मदन का तत्क्षण लोप !
भारती का पावक - शृङ्गार ;
प्रलय - आहव - हुंकार !
सँभालोगे कैसे अङ्गार
पल्लवों के संसार ?

छिपे तमसा में भीरु उलूक ;
सृष्टि विस्मित, जग मूक !
काँपते कायर के तनु - प्राण ;
आज, यह स्वर्ण-विहान !
शिखण्डी चकित प्रपंच-प्रवीण,
कौन षड्यंत्र नवीन?

सव्यसाची की धनु - टंकार ;
उमड़ता पारावार !
खोल रे जग-जीवन का द्वार ;
हृदय का कारागार !

सजायेंगे स्वर - वन्दनवार
आज,ये अग्नि-कुमार!

स्वप्न-मिलन

कुचले - से अरमानों को बेचैन हृदय में अपने
लेकर मैं तम की छाया में गूँथ रही थी सपने!
बादल के सुन्दर देशों में बजती थी रण-भेरी ;
कहती कुछ बीती बातें छाती की धड़कन मेरी !
आहों के आलिङ्गन में, निःश्वासों के विछलन में;
प्राणों की सेज बिछा कर मैं सोई थी निर्जन में !
मतवाली विरह-व्यथा ही मेरी सहचरी दुलारी ;
अन्तस्तल में मँड़राती थी बेसुध पीड़ा प्यारी !
शीतल समीर कह जाता था कोई करुण कहानी ;
उस अमर राज्य की मैं ही बस,रानी थी दीवानी !
उच्छ्वासों की मदिरा को होठों से आह, लगाये
अलसाये - से यौवन को अंचल की ओट छिपाये
मैं सिसक रही थी अपने लघु जीवन के पतझड़ पर ;
थी जोह रही ऋतुपति के आने का मंगल अवसर !
जगती के सारे वैभव मेरी बिखरी आहों पर
लुटते थे आँसू - मोती मनुहार-भरी चाहों पर !
मलयानिल के छन्दों में सुकुमार सुमन के ऊपर
इठलाती-सी सन्ध्या में बिखरा देती अपने स्वर !
मेरे आहत भावों में क्रन्दन विषाद का होता ;
सुख में विच्छेद-मिलन के उन्माद विश्व का सोता !
उद्गारों के कम्पन में वेदना कुहुकिनी मेरी
भर सूनी साँसें देती विस्मृति के पथ में फेरी !
उपवन में सौरभ-व्याकुल नव कलियों की लघु प्याली
आकर जब पवन अचानक कर जाता मधु से खाली,
मैं बैठ व्योम-गंगा के तट पर थी लहरें गिनती ;
नक्षत्र-लोक में तारों के मधु गीतों को सुनती !
यों लीन हुई जाती थी मैं दुख के वरुणालय में;
करुणा थी पड़ी मचलती मेरे इस भग्न हृदय में!

× × ×

इतने में मैंने देखा, दिनमणि का दीप जलाये
मेरी उजड़ी दुनिया में तुम स्वर्ण उषा-से आये !
सुख के अनन्त उपवन में मधुमय वसन्त-छवि छाई !
प्राणों की पंखुड़ियों में शशि की शीतलता आई !
सानन्द पान करती थीं सौन्दर्य-सुधा को आँखें;
कल्पना किन्नरी उड़ती फैला कर स्वप्निल पाँखें!
मैं सुध-बुध सब खो बैठी क्षण के उस प्रेम मिलन में,
संज्ञा के बन्धन श्लथ थे, फूली थी अपने मन में !

× × ×

यह क्या पर, निद्रा ही में धीरे से चुम्बन लेकर !
भागे बदले में निष्ठुर, तुम अमर-वेदना देकर !
मेरे इस सूनेपन में कोमल प्रतिध्वनि से आकर,
तुम चले गये अन्तर की सोई-सी पीर जगाकर !
जग उठी चेतना पल में, नयनों की आकुल व्रीड़ा !
मैं सिहर उठी, पीड़ा की जागी अन्तर में क्रीड़ा !
हो गये मूक से मेरी तन्त्री के तार मनोहर;
फिर आये शून्य क्षितिज से टकरा कर क्रन्दन के स्वर!

२१६

कहाँ खो गया मेरा हार ?
सखि, मेरा हीरे का हार !
नीरव, निर्जन यमुना-तट पर
वेणु बजाते बंशी - वट पर,
मिले अचानक नटवर-नागर
प्रियतम, प्राणाधार ;—
वहीं खो गया मेरा हार ।
भूल गई मैं सुध-बुध क्षण में ;
फूल उठे वे अपने मन में ,
लगा लिया तत्काल;—
दीर्घ भुजाओं में भर अपनी
छाती से सुकुमार ;—
वहीं खो गया मेरा हार ।

रहस्य

नील क्षितिज के अंचल में यह किसके वैभव की छाया ?
अखिल विश्व में फैली है यह कैसी कुहकमयी माया ?
स्वर्ण-उषा की लाली में उन तुहिन-विन्दुओं पर अभिराम
प्रतिदिन मैं अवलोकन करता किसकी मुख-छवि मृदुल ललाम!
दिनमणि की किरणों में किसकी विमल ज्योति देखी अम्लान ?
कण कण में है व्याप्त अरे, यह किसकी मन्द-मन्द मुस्कान ?
कौन वास करता है शिशु की अलसाई सी पलकों में ?
माणिक कौन पिरा देता है रजनी की घन-अलकों में ?
किसके सौम्य-वदन की आभा लख पड़ती है दिनकर में ?
किसका असीम सौन्दर्य अरे, छलका पड़ता सागर में ?
किसके लिये सजाती प्रमुदित प्रकृति-नटी अपना शृङ्गार ?
किसको प्रतिदिन देतीं कलियाँ अपने सौरभ का उपहार ?
किसका अनन्त यौवन बिखरा वन में, पर्वत - उपवन में ?
किसका मधु - संगीत सुनाई पड़ता है अलि-गुंजन में ?
विश्व - मंच पर किस नटवर की होती यह मादक क्रीड़ा ?
लज्जावती - लता में किसके नयनों की आकुल व्रीड़ा ?
किसकी एक झलक पाता हूँ चल - चपला के नर्तन में ?
किसका अमर प्रकाश दिखाई देता भुवन- विजन - वन में ?
सरिता की चंचल लहरों में, तरु-पत्रों के कम्पन में ;-
खेल रहा यह कौन अरे, संध्या के शान्त गगन-घन में ?
जल में, थल में, अनिल अनल में सतत थिरकता रहता कौन?
कह जाती कानों में प्रतिध्वनि किसका यह आवाहन मौन ?
नहीं जान पड़ता किंचित भी क्या है इस तट के उस पार ?
किसके एक इशारे पर यह नाच रहा सारा संसार ?
ये नक्षत्र, सुधाकर, दिनकर करते किसका अभिनन्दन ?
किसे रिझाते बाल-विहंगम प्रति-प्रभात गा-गा वन्दन ?
किसने उस लीला-मोहन की यह अद्भुत लीला जानी ?
बनी हुई है हाय, अभी तक भी यह दुनिया दीवानी !
एक निराशामय उलझन ही घेर रही अम्बर का छोर !
बिछा हुआ है यहाँ चतुर्दिक भ्रम का तमसा-जाल कठोर !
अन्तराल से जग-जीवन के एक बार आ जा सुन्दर !
हे असीम, क्या इस सीमा में बँध न सकोगे तुम पल-भर ?

वसन्त-विलास

(१)

आज, नव मधु का प्रात;—
आज रे मधु का पुलकित प्रात ;
अरुण-सस्मित, नत-भाल !
स्फीत मुक्ता - सा, मुख-जलजात ;
लाज से लोहित गाल !
प्राण, आया विस्मय-अवदात ;
सजल, चम्पक - सा गात !

माधुरी - अधरों पर मुस्कान ;
कुतूहल - कलित कपोल !
पुष्प - परिमल - पीतस परिधान ;
विलोचन उत्सुक - लोल !
उतरता सुरधनु-सा रुचिमान ;
स्वयं ही निज उपमान !

उमड़, बह, छू असीम का छोर ,
हिला किरणों का हार ;
चला विपुला वसुधा को बोर
लालिमा - पारावार !
नलिन - पुलिनों में भृङ्ग अपार
कर रहे कुंज - कुंज गुंजार !

मलय - मारुत में रुक, झुक-झूम ;
विजन-वन-वल्लरियाँ सुकुमार ;
मुखर कर देतीं धीरे चूम
शिथिल ऊर्वी के उर के तार !
स्पर्श से खिल उठती तत्काल ;
नवल ऋतुपति की किसलय-डाल!

(२)

आज, प्राची का हास ;—
आज रे प्राची का मधु-हास ;
वीचियों का उल्लास !
दृगों में छवि का छायाभास ;
ज्योति - चुम्बित आकाश !
भर रहा भव में भूति-हुलास ;
प्राण, रज-रज में सुख का श्वास !

समीरन आकुल, पुलक - अधीर ;
सजग जग, विपुल-प्रवाल !
गुँजा पल्लव-गृह, लता - कुटीर ,
तोड़ तन्द्रा का जाल ;
द्रुमों से उठ-उठ खग-कुल - रोर
फैलती जाती चारों ओर !

निराशा का नर्तन उद्दाम ;
व्यथा का रुदन - विलास !
अमुद्रित नयनों में अविराम
विरह का रूप उदास ;
स्वप्न-सा हुआ आज उच्छ्वास ;
प्रवासी का अज्ञात - निवास !

यूथिका - यौवन - वन में आज ,
प्रणय का जलता दीप !
मचलता दल-दल पर ऋतुराज ;
रोम - हर्षित तरु - नीप !
कल्पना के नीलम पर खोल ,
भाव उर के उड़ते अनमोल !

(३)

आज, नव - वन्दनवार ;—
आज रे गृह - गृह वन्दनवार ;

नृत्य - चंचल संसार !
डोलता वन - वन में मंदार ;
कौन चल - चरण उदार
खोल नन्दन का दक्षिण - द्वार
झाँकता बारम्बार ?

मदालस फाल्गुन का अभिसार ;
पिकी के मादक गान !
शिरीषों का वेणी - शृङ्गार ;
वकुल का नीरव 'ह्वान !
उठा अग-जग में अयुत अपार ;
स्वर्ण - सुषमा का ज्वार !

निरन्तर प्राणों में उन्माद ;
प्रेम की आज, उमङ्ग !
वीथि - वन - पथ में मधु - संवाद ;
वेणु की विकल तरङ्ग !
गन्ध-मूर्च्छित जगती का 'ह्लाद ;
कुहू - मुखरित दिगन्त-प्रासाद !

आज, वन-वन में मधु का हास ;
अमर मर्मर - निःश्वास !
कहाँ से आकर कनक - प्रकाश
भर गया जग का 'वास ?
गन्ध में पुलक; पुलक में प्राण ;
प्राण में शत - शत मान !

(४)

आज, पागल मन-प्राण ;—
आज रे पागल तनु - मन - प्राण ;
हृदय उन्मन अनजान !

विरह शत - कल्प -निशा अवसान ;
मिलन का यह दिनमान !
चुभ गये रोम - रोम में आन
कुसुमशर के केशर के बाण !

इसी मधु-मादक-क्षण में आज ,
मुस्किरा दो मधुबाल ;
एक चुम्बन, कौतुक का व्याज ;
इधर दो अधर - प्रवाल !
तुम्हारा यौवन - मद कर पान
सरस हो उठे हृदय-मन म्लान !

सुरभि-मधु-छाया-वन में 'कान्त ,
आज चंचल चित - चाह ;
हृदय-अम्बुधि-सा क्षुब्ध, अशान्त ;
रुधिर में ऊष्ण प्रवाह !
मत्त मानस मद-सा दिग्भ्रान्त ;
आज, उन्मद मेरा मधु-प्रान्त !

तुम्हारी मुख-छबि ही सुकुमारि ,
विश्व का प्राणाधार ;
तुम्हारा पावन लोचन - वारि ;
प्रणय - मंजुल उपहार !
तुम्हारे ही गौरव के गीत ;
आज, गाता जगती का 'तीत !

(५)

आज , आकुल संसार ;—
आज रे आकुल यह संसार ;
शालि - शाद्वल सुकुमार !
उमड़ता तरु - तरु से मधु - भार ;
मल्लिका के उद्गार !

रुद्ध क्यों रूपसि, तव गृह-द्वार ?
किंकिणी की नीरव झंकार !
राज - पथ में उड़ती मधु - गन्ध ;
पीत - पुष्पल रस - रेणु !
मदिर-मलयज़ , मृगनाभि अबन्ध ;
वासना - वीणा - वेणु !
बजा लो , लोक-लोक में मन्द्र
प्रथम मधु का यौवन-जय-तूर्य!
आज , माँगूँ यदि लीला - दान ,
विनत मत करो वदन-विधु-साज ;
आज , छलके यदि निधुवन-मान ;
न आये उमड़ दृगों में लाज !
तुम्हें हो आज न भय - संकोच;
लचक, बंकिम कटि, भ्रू में लोच !
जहाँ हिलते सरि - वर्ती वेत्र ;
मौलश्री - वन के पास !
हृदय से हृदय , नेत्र से नेत्र ;
मिला श्वासों से कम्पित श्वास !
जुड़ा लेने दो प्यासे प्राण ;
प्रिये , वर्षों से प्यासे प्राण !

(६)

आज , मोहन - शृङ्गार ;—
आज रे कर मोहन - शृङ्गार ;
मुकुल-घूँघट - पट खोल !
उड़ा दिशि-दिशि में मधु - प्रावार ;
रसालों का हिन्दोल !
नाचता पत्र - पत्र पर लोल
व्यस्त, व्याकुल-पद,चपल वसन्त ;
आज, श्यामा का कोमल कण्ठ ;
शुकों का प्रेमालाप !
प्यार भी होगा क्या अभिशाप ?
चन्द्रिका रवि का ताप ?
प्रिये, खिंच आया स्मिति-सुरचाप
आज अधरों पर अस्फुट आप ;
यही तो मानव का संसार ;
मर्त्य का कारागार !
प्रलय - तृष्णा का उदधि अपार ;
विरह में स्मृति आधार !
किसीसे कर लो क्षण-भर प्यार;
मृत्यु पर फिर किसका अधिकार?
जगत के अमित - अमित आघात
आज , आओ तुम भूल ;
मिलन का यह मधु-मत्त-प्रभात ;
वृथा चिन्ता के शूल !
प्रिये, जग में केवल आनन्द ;
आज, सुषमा के सौ-सौ छन्द !
यहाँ उड़ते सुख के मकरन्द !

(७)

आज , छाया मधुमास;—
आज रे छाया नव मधुमास ;
चतुर्दिक हर्ष - हुलास !
प्रवाहित मधु - उत्सव का उत्स ;
प्रेम - परिमल - सा हास !
मुक्त वातायन - पथ से मुग्ध
उमड़ती मृदु मृग-मद की वास !
स्निग्ध दूर्वादल, हरित प्रियङ्गु ;
विहँसते बहु वन - फूल !

मृगी - मृग - दल रोमन्थन - लीन
प्रकृति के रत्न - दुकूल !
आज, वन-वन में बहुल-विनोद ;
रभस-रति-सुख, आमोद-प्रमोद !

सजनि, झंकृत नस - नस के तार ;
मत्त यौवन का भार !
मञ्जरी - मधु का ऊर्मि-विहार ;
समीरन का संचार !
प्रणय के फूलों से लो, लाल
लद गई उर-उरहुल की डाल !

केतु यह ऋतु - पति का रंगीन ;
क्षितिज का हीरक छत्र !
नवल मन; नव तन, हृदय नवीन ;
द्रुमों में नूतन पत्र !
नवल कुसुमायुध, नवल वसन्त ;
आज, उर-उर में काम अनन्त !

(८)

आज, नव मधु के प्राण ;—
आज रे उद्वेलित नव - प्राण ;
अकुंठित उर के गान !
छोड़ सखि, यह वियोग-व्यवधान ;
हाय, मन्मथ के बाण
भग्न कर गये सुरों के ध्यान ;
योगियों का भी युग का ज्ञान !

आज, छाया मधुमास पुनीत ;
स्वर्ग का सुख - संगीत !
नवल ऋतु - नायक के संदेश
काट देते भव-बन्धन-क्लेश !

प्रबल भुज-पाशों का आश्लेष ;
आज, ले लो सखि, एक विशेष !

बाहु - लतिका ग्रीवा में डाल ,
उठा कल चिबुक कपोल ;
स्वयं - ही बन कोमल वरमाल ,
चला चितवन-शर लोल !
वेध डालो शतदल - से प्राण ;
तन्वि, मेरे विह्वल - से प्राण !

खुले, ढीले बालों का जाल ;
कसे - से कलश - उरोज !
रँगीले, गीले, गोरे गाल ;
कंटकित स्वयं मनोज !
तुम्हारा बन जाये आधार
पृथुल उरु मेरा ही सुकुमार !

आज , आये ऋतुपति के दूत ;
विवश,अन्तःपुर में मधु-पूत!
इधर देखो सखि , मेरी ओर ;
प्रणय-मधुवन में आत्म-विभोर!
कामना 'मृत से कर दूँ रिक्त
त्रिवलि-रोमावलि सिक्त !

हासमयि, लीलामयि, पिक - वाणि
गौर - तनु , कंचन-कांति !
तुम्हारे कुवलय - कोमल - पाणि ;
विधुर उर की चिर-शान्ति !
आज,मुख पर सखि,रख दो दग्ध
मदिर निज यौवन-सुरा प्रगल्भ!

उठा दे अणु - अणु में रोमांच
तुम्हारा अंगुलि - इंगित आज,

मुक्त कर दो शशि को अकलंक ;
आज , क्या अवगुण्ठन का काज !

चले, छू विरल-वसन तव देह
रक्त में विद्युत - वेग !

आज, उर-उर में रति की आग ;
केलि का कौतूहल , अनुराग !
विश्व-वन में मृदु - पुलक - प्रसार ;
गन्ध - मधु - मूर्च्छातुर संसार !

चुम्बनों से भर दो अभिसार ;
आज ये बिम्बाधर सुकुमार !

फिराओ आज न कान्त कपोल ;
फुल्ल - पाटल - सा चंचल हास !
छुड़ाओ मत इन्दीवर - वक्ष ;
कलित-कुन्तल-आकुल भुज - पाश !

मुग्ध तनु, कम्पित, इन्द्रियबन्ध ;
तुम्हारे यौवन - मद की गन्ध !

फुल्ल बाँहों का मुग्ध मृणाल ;
बाल - मुकुलों की माल !
खिली रोओं की पुलकित डाल ;
वदन जावक - से लाल !

सुनहली किरणों का दृग-पात ;
आज, उज्वल मधु-पात !

विप्रयोग

मैं पड़ी - पड़ी शय्या पर रोया करती हूँ निशि - भर !
क्या जानो तुम , मैं कैसे मरती हूँ निर्मम , तुम पर !
अविराम बहा करती है नयनों से जल की धारा ;
तो भी प्रिय, नहीं पिघलता क्यों प्रस्तर-हृदय तुम्हारा !
मैं बैठ अकेली बाला जीवन - जलनिधि के तट पर
रो - रोकर याद तुम्हारी करती हूँ निठुर , निरन्तर !
यदि यही तुम्हें था करना आखिर, यों मुझे सताकर
तो भागे फिर क्यों प्रियतम ! इतना तुम प्यार जताकर!
कहते थे—'प्यारी, तुम हो मेरे जीवन की रानी ;
सुख हो, सर्वस्व तुम्हीं हो; निधि हो, विभूति, कल्याणी !
निशिवासर तुमको अपने उर से मैं लगा रखूँगा ;
आँखों से कभी तुम्हें इन मैं दूर न होने दूँगा !'
तब थीं वे कैसी बातें ; अब कैसे आँखें फेरीं !
यह सोच और बढ़ जाती प्रिय, विपुल व्यथाएँ मेरी !
ना जानूँ, क्यों तुमने इस दासी को भुला दिया है ?
कुछ समझूँ भी क्या किस दिन मैंने अपराध किया है ?
तुम तो दिन बिता रहे हो निर्मोह , वहाँ पर सुख से ;
पर, यहाँ मरी जाती हूँ मैं अहह , विरह के दुख से !
सच कहती हूँ , मन मेरा तुममें ही अटक रहा है ;
ज्यों कोई दिल में रह - रह काँटों - सा खटक रहा है !
कह, कौन बता है सकता इस ज्वालामयी जलन में—
कितनी दाहकता दारुण बसती चिर-विरह - मरण में !
उलझे हो तुम न किसीकी कल अलकों की उलझन में,
देखी न कभी अपनी छवि यदि किसी चकित-चितवन में!
तो जान सकोगे क्यों मैं खद्योत - दीप को लेकर
ढूँढ़ा करती हूँ व्याकुल सर्वत्र तुम्हें रजनी - भर !

२२०

जन-सेवा ही मेरा व्रत हो !
मा, तेरे पावन चरणों में
मेरा जीवन सदा निरत हो !

धारण कर तटिनी का वेश
महा - शान्ति का ले सन्देश ,
मुखरित कर दूँ सारा देश ;
जन्मभूमि के धूलि - कणों में
मेरा यह मस्तक अवनत हो !

नटराज

शुक्ला-नवेन्दु - लेखा के कल रथ पर चढ़ दीवानी
है उतर रही मन्थर-गति अम्बर से रजनी-रानी !
शीतल समीर के झोंकों में किसलय - दल का कम्पन
निर्जन अरण्य - वीथी में करता आलस्य - विकीरण !
मधु - मदिर तिमिर-श्वासों की शय्या पर श्रान्त पथी सा
निस्पन्द थका सोया है शिशु-स्वप्न जगत - विटपी-सा !
पथ-भ्रमित चकित दूरागत वन - विहग वृन्द का क्रन्दन
धूमिल चक्रार्ध - क्षितिज में बढ़ता ही जाता क्षण-क्षण !
पर खोज जलद के झिलमिल नीलाभ उदधि के तीरे
उड़ रही सशंकित मन से छाया - छवि धीरे - धीरे !
शशि - श्वेत करों में लेकर नीहार - हार वरमाला
दृग बन्द किये बैठी है सुकुमार हिमानी - बाला !
मृदु अन्तराल से पेलव पल्लव के उझक - उझककर
है झाँक रही उन्मदना - सी प्रकृति-परी गिरिवर पर !
निर्झर झड़ बहा रहे हैं सौन्दर्य - सुधा की धारा;
प्रिय - पाण्डु - चूर्ण - वर्षा में हँस रहा धरातल सारा !

× × ×

सहसा यह कैसी ज्वाला प्राची में पड़ी दिखाई ?
तम - तोम - महातोयधि में किसने यह आग लगाई ?
झुलसा जाता है जिसकी ज्वाला में जग पत्रों - सा !
हो गया क्षीण चन्द्रानन ऊषा के नक्षत्रों - सा !
विकराल ज्वाल जलती है आग्नेय दृगों पर शंकित ;
उद्ग्रीव भाल पर जिसके सुस्पष्ट प्रलय है अंकित !
दुस्तर दिगन्त - सीमा पर चंचल - पद-चिह्नित लेखा
है खींच रही लपटों में मानो धूमाञ्जन-रेखा ;
आताम्र ज्योति की किरणें लोहित ललाट पर फैलीं ;
हैं सिखा रही अम्बर को रक्तिम विनाश की शैली !
हैं लेलिहान लक्षावधि उद्दीप्त देह से लिपटे ;
पावक-पर्वत में जैसे काले बादल हों चिपटे !
सुन वासुकि की फणियों का अन्तक स्वर घर्घर खरतर
है काँप रही भय से यह जगती-कपोतिनी थर - थर !

विध्वंस-राग प्राणों में आतङ्क मचा है जाता ;
पाताल हिला देता है गुरु चरण - चाप मदमाता !
उद्रिक्त भाव - भङ्गी से वंकिम कटाक्ष - निक्षेपण
कण-कण में भर देता है लघु-दीपशिखा की सिहरन !
कुसुमित कदम्ब-कानन में मच गया भीम- आन्दोलन ;
अलि भाग चले तज शिथिलीकृत कलियों का परिरम्भण !
चीत्कार उठी कर कोयल यूथी - कुंजों में विह्वल ;
चू पड़े केतकी - तरु से जल छल - छल करके अविरल !
कम्पित मेखला-वदन पर खिंच गई मृत्यु की छाया ;
खिल उठी शरत-सरसिज-सी द्रुत महानाश की काया !
अचिरागत प्रलय-निशा में गा-गा कर विप्लव - लोरी
आई त्रैलोक्य सुलाने रे माया - नटी किशोरी !
विस्तब्ध अब्धि - मन्दिर में जागी बडवाग्नि कराली ;
दुन्दुभि - निनाद-स्वर निन्दित दी काली ने करताली !
द्रुत खेल गई द्रोही के मुख पर मुस्कान निराली ;
दौड़ी क्षुधार्त्त चण्डी ले मरघट में खप्पड़ खाली !
विस्फोटक-त्रोटक ध्वनियाँ छाईं सर, गिरि - गह्वर में ;
चमका त्रिशूल बस,ज्यों ही त्रिपुरान्तक के कर - वर में !

× × ×

नाचो, हे नटवर! नाचो अविराम गगन - जल-थल में ;
सर्वत्र विचित्रित कर दो निज प्रलय - लालिमा पल में !
जिसकी मृदु-छवि पर उमगे तरुणों की अरुण जवानी !
झुक जाये वलि होने को सौ - सौ मस्तक अभिमानी !
दो बजा पुनः वह अपना डमरू, ओ डमरूवाला !
फिर एक बार दिखला दो वह रुद्र-रूप मतवाला !
लख जिसकी गति-विधियों को चिनगार उठे हिम से भी !
युग - युग समाधि में सोये हुंकार करें मुर्दे भी !
खोलो त्रिनयन को अपने फिर एक बार लोलेक्षण ;
जिसकी संहार - जलन में जल जाये पापी-जीवन !
घूमो, चण्डीश्वर, घूमो निर्भय निर्धूम चिता में ;
भर दो निज मादकता कुछ इस कवि की भी कविता में !
जिसकी तानों पर तीखी तुम भी फूलो, इठलाओ !
झूमो नटराज , नशे में; तुम रह - रहकर बल खाओ !
जिससे अकाण्ड-ताण्डव की सुधि भूलो तुम हे शंकर ;
मै करूँ आज पागल - सा वह अट्टहास प्रलयंकर !

बहिन के लिये

बहिन, कहूँ क्या आज अभागे हृदय की
कथा करुणतम? कहा न जाता तनिक भी।
भय है, कहीं न रो दो सुनकर! प्रियतमे,
इसीलिये हूँ मौन; समझ लो तुम स्वयं!
यदि भावुकता का किंचित भी लेश-सा
होगा तुममें, तो खुद ही परिकल्पना
किसी तरह तुम कर लो मेरे दुःख की
भीषण, जिससे झुलस रहा मैं नित्य-प्रति।
कुशल? कुशल तो विधवा के सिन्दूर-सा
किसी दूर प्रान्तर में जाकर छिप गया!
क्रूर काल के कशाघात से, क्षुद्रतर
जीवन-नौका भवसागर में कर रही
डगमग-डगमग! प्रबल भँवर के चक्र में
नाच रही; इस पापी जीवन—यान को
संचालित कर पाता हाय न! पन्थ का
कहीं पता है नहीं; दिशा का ज्ञान भी
अल्प; चतुर्दिक छाया दैत्याकार—सा
अन्धकार, रे महाघोर भ्रमजाल यह!
आज रक्षिका-बन्धन की तिथि; और, मैं
दूर बहिन, तुमसे सुदूर हूँ बहुत ही
विकल प्रवासी! घोर उदासी छा रही
मेरे हृदय-निलय में! किससे जा कहूँ,
दर्द बताओ दिल का? बोलो ना तुम्हीं!
प्रेयसि, आज तुम्हारा भैया शोक के
सागर में उतराता, तिरता, डूबता!
क्षमा करोगी, आ न सकूँगा गेह मैं
किसी तरह भी इस दिन!
बाँधोगी अरी,
कैसे कर में स्नेह-सूत्रिका, गाँठ दे!
पगली, क्या न पता है तुमको? हाय रे
अपने भैया की करतूतों का! सुनो;
जिस उर पर अधिकार तुम्हारा है अटल,
छीन रहा उसको अब कोई दूसरा!
दे न सकूँगा, निश्चय जानो; किन्तु, मैं
वंचकता का पाप न लूँगा! जानती
हो वह मेरी माया-रानी कौन है?
अरी तुम्हारी वही काव्य की प्रेमिका,
कविता-बाला; ओ हो! तुम तो हँस पड़ीं!
कहो, ठीक तो है न तुम्हारी राय में?
भोली, सम्मति दो, तो होवे; अन्यथा
जैसी प्रिये, तुम्हारी इच्छा!
फिर, वही
आक्रन्दन! क्या क्षमा करोगी तुम न? इस
सावन की अँधियाली काली रात में
बैठा अपने शून्य सीट पर देखता
कम्पित हाथ तुम्हारा, आईं मन्द-गति
तुम मेरे सन्निकट; वही उत्फुल्ल मुख!
पर, यह क्या? तुम लगीं पिरोने हाय क्यों
अश्रु-कणों का हार? पलक में भींग-से
गये सलोने अंचल, चंचल मोतियों—
की वर्षा से! बरस रहा उद्यान में
नीचे रिमझिम-रिमझिम बादल-दल सघन
अविरल; आता मन्द समीरण लद सरस
फुहियों से; छू देता अरुण कपोल को!
सिहर-सिहर मैं उठता; तत्क्षण ही मुझे
याद तुम्हारी लोनी-लोनी आ किये
देती विह्वल! क्या ही अच्छा, यदि न मैं

प्रिये, तुम्हारा अग्रज होता भाग्य - हत !
क्यों जलतीं तब तुम यों मेरे पाप की
ज्वाला में, चिर-पावन प्रतिमा प्रेम की ?
स्तब्ध निशा में जब यह विस्तृत मेदिनी
सो जाती है विहग - बाल - सी नीड में
निद्रा के, मृदु स्वप्न विचरते विश्व की
पलकों पर अविराम; न तो भी, क्या कहूँ,
मुझे न मिलती शान्ति ; मोहिनी - मंत्र-सा
दे जाता है जैसे कोई कान में
मेरे; तत्क्षण तन्द्रा से मैं चौंक कर
उठता हूँ, पर पा न किसीको पास में
रह जाता बस, निरख शून्य आकाश को
निर्निमेष !

उन्मत्त कहोगी तुम मुझे !
स्वीकृत ; हाँ, उन्मत्त सही मैं । किन्तु, क्या
तुम्हीं कहो, मैं करूँ ? तुषाराघात से
कुसमय में ही मेरी आशा की कली
वृन्तहीन हो गई । हाय, मैं लुट गया !
किस प्रकार सुन प्रिये, सकोगी अहह ! यह
अधः पतित हाँ, अपने ही लघु भार से
बन्धु तुम्हारा उदधि - मग्न है हो रहा
भग्न-तरी-सा; क्षमा करो, मैं विवश हूँ ;
कायरता ही सही, न मेरा दोष है !
सच कहता हूँ, मेरा जी है उचट गया
जग से; इच्छा होती है यही
कहीं किसी एकान्त स्थान में बैठ कर
बहा आँसुओं से दूँ उर के दाह को !
लेकिन, क्या निर्जन में जाने से कहीं
मिट पाती है जलन हृदय की ? सच कहो,
मेरी प्यारी, मैं पागल - सा हूँ बना ।
लिख न सकूँगा और अभी मैं; क्षमा करो ।
हाथ जोड़ता हूँ मैं फिर भी; स्नेहमयि,
कृपा करो ! बस, सदा तुम्हारा-'भग्न-उर' ।

विदा-काल

ममता-जल-सिंचित, अभिनन्दित,स्नेह-लता का वृन्त मरोड़,
कहाँ चले हो तनिक बता दो, तुम मुझसे चिर नाता तोड़ ?
एक कसक-सी स्मृति मानस में, अन्तर में पीड़ा का सार ;
इतना ही उपहार-भार दे चले आज किस ओर उदार ?
किसे ज्ञात था भला तुम्हारा यह निर्ममतामय व्यवहार ?
तुम जाओगे चले यहाँ से अपना सारा प्यार बिसार !
कभी याद आवेगा तुमको वह अतीत का पथ अज्ञात ;
जबकि,तुम्हारे साथ यहाँ पर विहँस उठा था प्रथम प्रभात !
कैसे भूला जा सकता है प्रिय, तुमसे यह क्षुद्र निवास ?
जिसके प्रति कण में प्रतिबिम्बित बन्धु, तुम्हारा मंजुल हास !
यद्यपि, जानता हूँ मंगलमय आज तुम्हारा है प्रस्थान ;
किन्तु,न जानें—क्यों फिर भी हो रही हृदय में व्यथा अजान!
कैसे कहूँ तुम्हें रहने को, कह न सकूँगा—हाँ, जाओ ;
दग्ध - हृदय को शान्त करूँ मैं, कैसे तुम्हीं न बतलाओ !
ज्ञान - मार्ग के पथिक, आज मैं कैसे तुम्हें सकूँगा रोक ?
उर पर पवि रख सहन करूँगा किसी प्रकार वेदना-शोक !
इस दरिद्र की पर्ण - कुटी से होगी विदा तुम्हारी आज !
रख लेना सहृदय, कुछ मेरे आँसू की बूँदों की लाज !
तुम नूतन - जीवन में करने जाते हो सानन्द प्रवेश ;
जाओ, सखे ! मुझे भी होता विपुल हर्ष - आह्लाद विशेष !
किन्तु, जहाँ भी रहो—रहें प्रिय,अस्थिर अपने भाषा-भाव;
पितृ-देश के लिये हृदय में भरी रहे मिटने की चाव !
सेवा का उन्मुक्त मार्ग है, जग को गौरव - दान करो ;
आवश्यकता पड़े तुम्हारी, भारत का कल्याण करो !
प्रियवर, मुझसे हुए अनेकों होंगे अनजाने अपराध ;
यत्न भूल जाने का करना उन्हें, यही है मेरी साध !
यदि बन पड़े कभी, तो मेरी भी सप्रेम कर लेना याद ;
देख तुम्हें नित सुखी - समुन्नत धुलता रहे वियोग-विषाद !

२२४

सोती - ही मुझको हाय छोड़,
जीवन - तरु - डाली को मरोड़;
अन्तर की सोई पीर जगा
परिचय देकर अपना कठोर;
सखि, भाग गया वह चतुर चोर;
सोती - ही मुझको हाय छोड़!

मैं यौवन - रस से शराबोर;
प्राणों में मादक - सी हिलोर!
बन्धन - विमुक्त था मन - तुरङ्ग;
टूटी थी उसकी बागडोर!
बेसुध था तन का पोर - पोर,
मैं यौवन - रस से शराबोर!

छाती से छाती मिली न थी;
अरमान - कली भी खिली न थी!
सुरभित - श्वासों की बातों से
अधराधर-लतिका हिली न थी!
गालों की लाली छिली न थी;
छाती से छाती मिली न थी!

इतने में देखा, वही चोर;
मेरी वीणा के तार तोड़,
उन्मत्त बना, सर्वस्व लूट,
तज मुझको सपनों में विभोर;
सखि, चला गया द्रुत किसी ओर;
इतने में देखा, वही चोर!

छाया था निर्मम अन्धकार;
पथ का न कहीं था आर - पार!
नीरव रजनी में साँय - साँय
करता था सम्मुख मरु अपार!
मैं खोज उसे सखि, गई हार!
छाया था निर्मम अन्धकार!

समझी तब उसकी कुटिल चाल;
मैं तो मन ही में थी निहाल!
क्या जानूँ, फूलों में छिपकर
बैठा है कैसा विषम व्याल?
पर, चला गया जब चुरा माल;
समझी तब उसकी कुटिल-चाल!

२२५

उन्माद - सरीखा घूम - घूम,
मरघट का मुख चूम - चूम;
मैं आज जला दूँ दग्ध देश;
तड़पें जिसपर हिमकर-दिनेश!
मादकता से झूम—झूम,
उन्माद—सरीखा घूम-घूम!

पुलकित हों उर के तार - तार;
काँपे वसुधा-हिय बार - बार;
यमदूतों - सा आँखें निकाल,
दूँ फूँक चिता की ध्वंस-ज्वाल!
मैं खाऊँ मुर्दे फाड़ - फाड़;
पुलकित हों उर के तार-तार!

मानव-मुण्डों से खेल - खेल,
कलमुँही शान्ति-मुख मेल-मेल;
सर्वत्र बिछा दूँ मृत्यु - जाल;
मैं भीम भयंकर कुटिल-काल!
सारी बाधाएं झेल - झेल,
मानव-मुण्डों से खेल-खेल!

२२६

उद्गीरित अशेष कंठों से
विजय-विजय का स्वर निर्दय हो !
तेरी स्वर्ण - देहली पर मा ,
आज विघोषित महाप्रलय हो !
जिसके सरस स्नेह-पय-पालित
मेरा यह तन-मन-धन-जीवन ;
आज, उसीके चरणों पर नत
हो जाये मतवाला यौवन !
अग्नि - पात्र में कुसुम - कुमारों
का स्वाहा हिम-तनु-प्रत्यय हो !
उद्गीरित अशेष - कण्ठों से
महाप्रलय का स्वर निर्दय हो !
रुकती जहाँ न ज्वाल दमन की;
पल भर ध्वनियाँ रुदन-मरण की!
आज, वहीं पर बलि दे आये
जननी सुत, स्त्री जीवनधन की !
उर्द्ध - ध्वंस के आमन्त्रण में
मोह और ममता का क्षय हो !
उद्गीरित अशेष कण्ठों से
महाप्रलय का स्वर निर्दय हो !
सर्वनाश के गरल - श्वास से
कुण्ठित जग का यंत्र-तंत्र हो !
पैंतिस कोटि मत्त प्राणों का
एक गीत हो , एक मन्त्र हो !
आज, शक्ति के रण-मण्डप में
शान्ति-क्रांति का शुभ परिणय हो;
उद्गीरित अशेष कण्ठों से
महाप्रलय का स्वर निर्दय हो !
झुके न झंझा के झोंकों में,
भर दो वह अदम्य साहस-बल !
कुचल चले अंगारों को , हँस
कण्ठ लगाये कुटिल हलाहल !
वर दे वर - दायिनि , सुत तेरे
जीवनमय, बलमय, निर्भय हों !
उद्गीरित अशेष कण्ठों से
विजय-विजय का स्वर निर्दय हो !

२२७

जाग तू ओ राष्ट्र - वाणी !
कंठ में ज्वालामुखी हो
और अन्तर में हिमानी !
ये लहू की होलियाँ जो ,
चल रही हैं गोलियाँ जो ;
बिजलियों को चीर आगे
बढ़ रही हैं टोलियाँ जो !
देख, लोहे के शिकंजों में
कसी आकुल जवानी !
आग में भी तू खड़ा रह ;
और फूलों से भरा रह !
आँधियों में मुसकुराता
तू हिमालय - सा अड़ा रह !
तू पराजित जाति के
अपमान की जलती निशानी !
मृत्यु से तुझको न भय हो;
वज्र - सा तेरा हृदय हो !
पद जहाँ पड़ जाय, तेरी
ही वहाँ निश्चय विजय हो !
शोषितों की , पीड़ितों की ,
तू सुना युग की कहानी !

आग तू ऐसी लगा दे,
और भय को तू भगा दे!
सो रहे निश्चिन्त जो,
ललकार कर उनको जगा दे!
क्या न तरुणों के लहू की
हो गई ठंढी रवानी?
दमन - दुर्दिन से न डर तू;
देश का दुर्भाग्य हर तू!
हो रही है हार मानव की
जहाँ, हुंकार कर तू!
शक्ति अपनी आज तुझको
भी यहीं है आजमानी!

२२८

मत रोक आज मुझको उदार!
मैं मत्त बना हूँ पी अपार!
चढ़ आईं आँखें लाल - लाल,
पुलकित रे उर की डाल-डाल!
मद ढाल-ढाल कर दिये रिक्त
रे नद-नद, सर-सर, ताल-ताल!
बदली करवट भर हुहुंकार;
मत रोक आज मुझको उदार!
ज्योतित कर फैला दिग्दिगन्त,
पुच्छल-सा पुच्छावलि ज्वलन्त;
पतिता पृथ्वी से शनैः शनैः
उठ रहा महा-नभ में अनन्त!
हरने जगती का भीम - भार;
मत रोक आज मुझको उदार!
गायेगा भैरव विजय - गीत;
मेरे गौरव का दर्प - स्फीत;
एकाकी लाऊँगा क्षण में
क्षिति को ससागरा आज जीत!
मैं मुक्त करूँगा स्वर्ग - द्वार;
मत रोक आज मुझको उदार!

२२६

मुझे चाहिये दुर्मद यौवन!
सुन्दरता हो या न, किन्तु
उच्छृङ्खल हो जीवन की धारा!
अगम-अगाध सलिल हो निर्मल,
अन्त-हीन हो कूल - किनारा!
कल-कल-छल-छल करती लहरें,
अमित उमंगों का नित - नर्तन;
जो मेरा अस्तित्व डुबो दे,
मुझे चाहिये ऐसा यौवन!
मुझे चाहिये दुर्दम यौवन!
पैदल कंटक - वन में दौड़े,
निर्मम शिला-खण्ड को तोड़े!
चीर चले सागर-सर - निर्झर,
वाधा से न कभी मुख मोड़े!
गिने न योजन - कोस, बने
स्वातंत्र्य-यज्ञ-पावक का ईंधन;
जो मेरी कायरता हर ले,
मुझे चाहिये ऐसा यौवन!
मुझे चाहिये केवल यौवन!
सुखमय करे सृष्टि को, क्षण में
करे नियम का सीमोल्लंघन;
कण-कण हो स्वच्छन्द, इसी जग
में नन्दन का हो अभिनन्दन!
पाँवों की बेड़ी को काटे,
मुक्त करे जीवन का बन्धन;
जो मुझको उल्लास-ज्योति दे,
मुझे चाहिये ऐसा यौवन!

२३०

वृथा जन्म, उसका जीवन !
मिटा सका जो मनुज न भू से
स्वेच्छाचार, दमन का शासन !
सभय चूमता जो पापी नर
चोर - डाकुओं का सिंहासन !
गिरे गाज उसके मस्तक पर
जिसका इतना अधःपतन हो !
गौरव के रजकण में अर्पित
जरा-जीर्ण जग का कण-कण हो!

वृथा धरा-अवतरण, मरण !
सह न सका जो समर-क्षेत्र में
कुसुम-शरीरों पर खरतर शर ;
अरे, मृत्यु वह क्या ? आई जो
पाप - पंक - पर्यंक - अंक पर !
शूर सदा मरते शर - शय्या
पर अपनी अन्तिम घड़ियों में ;
वहाँ एक बर्ताव बरतता
फुलझड़ियों में—हथकड़ियों में !

जग यह जन्म-मरण-रण भीषण !
यहाँ वही नर सदा जीतता,
जिसकी वीर भुजाओं में बल ;
दुर्बल भार जगत के ; रोते
कायर मन-ही-मन झख प्रतिपल!
छाती में हो साहस, उर में
पौरुष-सम्बल का अभिसंचय ;
विजय - द्रौपदी वरण करेगी
किसी धनञ्जय को ही निर्भय !

२३१

मुझे बना दे मा, निर्भय !
भर दे मेरे रोम - रोम में
विद्युत, उच्छृङ्खल साहस ;
फड़क उठे नव रस - प्रवाह से
जड़ जीवन, तन-मन, नस-नस !
जिससे तोड़ सकूँ कारा के
लौह-द्वार का हिम - प्रत्यय ;
गूँजे शत-शत प्राणों से, जय !
भारतेश्वरी की जय—जय !

बना हृदय सुकुमार, सदय !
जिससे पिसे न निर्बल मेरे
मत्त - प्रहारों से उद्धत ;
सुनूँ पीड़ितों की करुणामय
कातर ध्वनियाँ अप्रतिहत !
करे न असहायों के उर में
मेरा प्रबल भुजाबल घाव ;
भर दे मा, मेरे अन्तर में
तू सेवक के सुन्दर भाव !

बलमय, धीमय, तेजोमय !
प्रणय - सूत्र में गूँथ हृदय के
सारे पावन तारों को !
मोहनमाला - सी पहना दे
तू अपने ही प्यारों को !
एक बार भी मस्तक तेरे
चरणों में यदि झुक जाये,
तो यह तेरा सुत जीवन का
सुभग अमृतफल मा, पाये !

अज्ञात-यौवना

सजनि, कौन वह वंशीवट की शीतल छाया में सुकुमार
नाच रहा है मनमोहन - सा विश्व-विमोहन कर शृङ्गार ?
खींच रहा है बार-बार वह क्यों मेरे अंचल का छोर ?
संकेतों से बुला रहा है क्यों मुझको वह अपनी ओर ?
हाय, अभी तो भली-भाँति मैं निरख न पायी थी संसार ;
फिर क्यों भर दी उसने मेरी इन आँखों में लाज अपार ?
छीन सहज पद-चंचलता सखि, मसल मेंहदी से कर लाल ,
मेरे गोरे-गोरे गालों पर किसने मल दिया गुलाल ?
शैशव की निर्मल साड़ी पर हाय, चढ़ा यौवन का रङ्ग ,
अङ्ग-अङ्ग से छलक रही है क्यों अनङ्ग की तरल तरङ्ग ?
अलकों की अनुदार कुटिलता का पलकों में हुआ प्रसार ;
कैसे, कहाँ छिपाऊँ अपने विकच - कुचों का अरुण उभार ?
पता नहीं, किस आशंका से उठते आलि, न मेरे पैर ;
किस पाषाण-हृदय ने मुझसे हाय, निबाहा कब का बैर ?
मन्द-मन्द हँस रहा कौन वह छूकर मेरे गोल कपोल ?
किसने चुरा लिये वे मेरे बचपन के मधु-मिश्रित बोल ?
तान युगल भ्रू-चापों पर सखि, कुटिल-कटाक्षों के खर बाण
बैठा है छिप पलक-पल्लवों की ओटों में कौन सुजान ?
कभी-कभी नीरव-निशीथ में चुपके-से आकर अनजान ,
कोई परिचित - सा दे जाता सपने में क्यों दर्शन-दान ?
नस-नस में भर दी शीराजी मदिरा का मतवालापन ;
सरका दिया वदन पर धीरे से लज्जा का अवगुण्ठन !
सजनि, सँभाले भी न सँभलता यौवन-रस-बोरा यह गात ;
इन प्रगल्भ-सस्मित अधरों को कैसे मैं समझाऊँ, अज्ञात !
अरे, गजब ढाती है यह तो पीनोन्नत नितम्ब निःशंक ;
उसपर रह - रहकर बल खाती लचकीली-पतली-सी लंक ।
अरे, कौन कर गया हृदय में सरस सिहरनों का संचार ?
तोड़ दिये किस निर्मोही ने मेरी शिशु स्मृतियों के तार ?
नव-नव आशा के चित्रों से धुँधले चारु विचित्रित कर
लगा दिये मेरे मानस में किसने स्वप्न-परी के पर ?
किसके सम्मुख अपने कोमल भावों का मैं करूँ प्रकाश ?
बुझा सकेगा कौन कहो, मेरे अन्तर की आकुल प्यास ?

२३३

बना जब पागल तन, मन, प्राण ;—
सजनि, आया था प्रमुदित प्रात
खिला कमलों के आनन म्लान;
मुझे भी हँस-हँसकर वह सिखा
गया अपने सोने के गान !

कर रही थी उपवन में बैठ
हाय, मैं तो प्रियतम का ध्यान ;
जगाने आया जगमग पहन
रुचिर किरणों का वह परिधान !

सरस भावों के श्रोत अनन्त
हृदय से फूट पड़े रुचिमान ;
मन्द-कोमल-पद आ अनजान ,
दिया उसने जब दर्शन - दान !

हो गये पागल तन, मन, प्राण !

२३४

कुछ क्षण तनिक और रह जा !
अम्बर-पथ से प्रिये, सहज सत्वर,
जीर्ण-जगत-मरु उर में अहा, उतर,
अपने कल गीतों से मुखरित कर,
सुर - सरिता - सी बह जा !
प्रथम - वसन्त - प्रभात - पवन-सी आ,
जीवन-मृदु-लतिका को मन्द हिला,
सोये - से तारों को छेड़ जगा,
कानों में कुछ कह जा !

२३५

युवको, आज उठा लो अपनी सदियों की सोई तलवार;
चलो, छोड़ पत्नी का अंचल, भुला बहन का मृदुल दुलार!
रोम-रोम में व्याप्त तुम्हारे है जननी की करुण पुकार;
लगा वीर, प्राणों की बाजी, उठो खड़े हो हे सरदार!
होम युद्ध-कुण्डों में कर दो स्वार्थ और अरमानों का;
चलो,चलो प्रिय समर-क्षेत्र में मोह त्याग कर प्राणों का!
बहे तुम्हारे अंग-अंग में प्राणोन्मद विद्युत की धार;
पद-पद पर हो उच्छृङ्खलता, चंचल गति अबन्ध-दुर्वार;
देख तुम्हारा उन्नत मस्तक काँपे थर-थर-थर संसार!
आज डुबो दे जगत तुम्हारे अमित शौर्य का पारावार!
अरे, जला दो अरि-मण्डल को अपने अग्न्युद्गारों से;
थर्रा जाये विश्व तुम्हारी दुर्विनीत हुंकारों से!
वीर, तुम्हारे कोपानल से सारे जग में आग लगे;
देख ओजमय वदन तुम्हारा कायरता भी काँप भगे!
अरे, तुम्हारे अट्टहास से संसृति निद्रा छोड़ जगे;
निकल पड़ें सैनिक ये मेरे विजयी, यौवन-प्रेम-पगे!
मा का उर गद्गद हो जाये निरख तुम्हारा वेश कराल;
चलो, सजा दें स्वतंत्रता का मन्दिर जीवन-दीप बाल!

२३६

कहो तो, बतला दूँ सुन्दर;
तुम्हीं तो हो उर के भीतर!
खोजता था तुमको संसार
बाल कर जब विज्ञान-प्रदीप,
घोर-तम-संसृति के उस पार
पलायन किया सवेग, सभीत!
तभी से याद न क्या, आश्रय
बना यह अन्तर ही तममय;
कौन हो तुम उर के भीतर?
कहो तो, बतला दूँ सुन्दर!

सत्य-कवि

क्यों गाते हो कोमल स्वर से तुम मुर्दों का गीत?
भूल गये क्या आज, अरे कवि, वह रण-राग पुनीत?
एक समय था, जब कि चन्द ने गाया था वह राग;
फैलायी थी नस-नस में जब देश-प्रेम की आग!
प्राणों में फूँका था उसने यौवन का उन्माद;
सीखा जग ने जिससे होना मरकर भी आजाद!
एक समय था, जब भूषण की फड़क उठी थी बीन;
निकली थी जिससे प्राणान्तक वह झंकार नवीन!
काँप उठा था विश्व श्रवण कर जिसकी तीखी तान;
भाग गया वैरी-दल जिसका सुन मतवाला गान!
वीर शिवा सुन जिस वाणी को कर उठते हुंकार;
हिल जाते दिल्लीश्वर के शासन के सारे तार!
और कभी थे वे भी दिन, जब वीर-बाँकुड़े ज्वान;
कूद अभय पड़ते समरांगण में ले तीक्ष्ण कृपाण!
हँसते-हँसते सुभट लुटा देते थे अपनी जान;
यों रखते वे योद्धा-गण अपनी मूँछों की शान!
अरे, याद है उन दिवसों की, जब वे चारण-भाट,
कितने शूरों को उतार कर पार मृत्यु के घाट
डंके की भीषण चोटों पर गाते अपने गान;
क्षण ही भर में वहाँ मचा यों देते थे तूफान!
नसें फड़क उठती थीं जिनसे, तलवारें विकराल;
फैलाती थी समर-भूमि में मृत्यु ध्वंस का जाल!
धौंसों की धुधकारों पर जब उनके स्वर गम्भीर;
नर-निनाद के साथ गरज उठते अम्बर को चीर;
काँप-काँप उठता था कायर शंकाकुल संसार;
उन बुड्ढों की वाणी में थी कितनी शक्ति अपार!
झन-झनकर उठती थी तत्क्षण खूनी खड्ग हजार;
कितना ओज, तेज था उनमें कितना जीवन-सार!
उन कवियों के दिग्विजयी स्वर में था जो वीरत्व;
समझाया जिसने वीरों को जन्म-मरण का तत्त्व!
कौन कह सकेगा, किसमें है इतना बल-विस्तार?
समझेगा न समझकर भी हा, यह कृतघ्न संसार!
लेती थी उन शब्दों में ही रण-चण्डी अवतार;
और, खेलता था उनमें ही निठुर काल साकार!

सुन उनके ही मुख से अपने पूर्व - जनों के कृत्य,
रण - क्षेत्रों में वीर किया करते थे ताण्डव - नृत्य!
जीवन के कण - कण में छा जाती थी एक उमङ्ग;
जिसे देख फीका पड़ जाता था रिपु - मुख का रङ्ग!
अपने गीतों से करते उस डोरी का निर्माण;
जिसपर, हँसकर, चढ़ योद्धागण होते थे बलिदान!
क्रोधित हो - होकर अरियों से लड़ते दो - दो हाथ;
कौन समर में ठहर तनिक भी सकता उनके साथ?
कितनी कटु होती थी उनकी वीणा की झंकार?
सौ - सौ भालों की नोंकों में मिलना था दुश्वार!
किन्तु, आज तुम भूल गये हो क्यों वे मादक गान?
भूल गये हो और, अरे क्यों अपना गौरव - मान?
लुटा दिया अपने ही हाथों से क्यों अपना कोष?
क्या न तुम्हें होता है अपने अपमानों पर रोष?
छोड़ दिया क्यों तुमने अपना जन्म - सिद्ध अधिकार?
अरे, तुम्हारी कायरता पर है सौ - सौ धिक्कार!
छिन्न - भिन्न हो गई तुम्हारी मुक्ताओं की माल!
छीन लिया किसने वैभव का वह प्रासाद विशाल?
नहीं गूँजते आज तुम्हारे वे साखे विकराल;
नहीं धधकती धू - धू वैसी कविता की अब ज्वाल!
जरा याद कर, जब प्रताप ने मर्माहत हो, हाय
क्षुधा - निपीड़ित देख बालिका को अपनी निरुपाय;
दिल्लीपति को सन्धि - पत्र भेजा था अरे, निदान;
'तुर्क' न होकर 'बादशाह'-सा लिखा गया कुछ आन!
अकबर ने तत्क्षण ही उसको बीकानेर - नरेश
को जाकर दिखलाया, मन में था आनन्द विशेष!
पृथ्वीराज - नृपति को इस पर हुआ बड़ा ही क्लेश;
तुरत महाराणा को लिखकर भेजा यह सन्देश—
'सूर्य भले ही करे सुशोभित पश्चिम - दिशि की रात;
'बादशाह' तव मुख से निकले किन्तु, असम्भव बात!
ओ मेवाड़ी सिंह, तुम्हारा देख सन्धि - प्रस्ताव,
बतलाओ छाती कूटूँ या दूँ मूँछों पर ताव?'

यही एक कवि की वाणी थी, कवि का भीषण गान;
फूल उठे जिससे राणा के जीवन - मद पी प्राण!

कितना जीवित वाक्य, अरे यह कितना गौरववान;
रक्खा था जिसने पतनोन्मुख मारवाड़ का मान!

उत्तर मिला कि जबतक मेरे तरकश में हैं बाण;
औ मँड़राती है मुगलों के सिर पर नग्न कृपाण!
तब तक तुम निर्भय हो अपनी मूँछों पर दो ताव;
यश न प्रताप सुनेगा अरि का; खाय भले ही घाव!
ऐसे होते कभी तुम्हारे युग के कवि ओ, देख!
उनके यश को कौन सकेगा कहो जगत में लेख?
युद्ध - क्षेत्र में सुना - सुना कर अपने भीषण - गान
निर्भय हो वे करते वीरों को उत्साह - प्रदान!
पर, न आज कहता है कोई वैसी ध्वंसक टेर;
जब कि दासता के पिशाच ने लिया सभी को घेर!
सोलन, सोलन; हाँ सोलन ही तो था उसका नाम;
नस - नस में बहता था मतवाला यौवन उद्दाम!
अरे, उसीने तो युनानियों की रक्खी थी शान;
अकलंकित बच पाया जिससे वृहत - ग्रीस का मान!
कायर - पतनोन्मुखी जाति को दिया शौर्य का मन्त्र;
निष्फल जिससे हुए शत्रुओं के सारे षड्यंत्र!
पिण्डस की चोटी पर चढ़ कर दी ऐसी ललकार,
काँप उठे सागर, धरणी कर उठी करुण चीत्कार!

मुर्दे भी जी उठे कब्र से बेसुध - तन्द्रा छोड़;
युवक - हृदय भर गये जोश से, किया समर घनघोर!
हिम्मत टूट गई दुश्मन की, भागे सभी सभीत;
विजय - दुन्दभी बजी, हो गई युनानियों की जीत!
मत्त गजेन्द्र - समान झूमते जिनको सुनकर वीर,
गाता था जिनको समरस्थल में सोलन - सा धीर!
भूमध्योदधि की लहरों में अब तक भी अम्लान
गूँज रहे हैं आसमान से टकरा कर वे गान!
तुम युग के प्रतिनिधि, भविष्य के अग्रदूत - उल्लास;
लिख जाते हो तुम्हीं रुधिर-मसि से जग का इतिहास!

तुम कैसे चुपचाप रहोगे? सह लोगे सन्ताप?
आज, तुम्हारी ही बलि के हैं इच्छुक भव के पाप!
सिर दोगे कैसे तुम हे कवि, हाय जगत से दूर?
झूम रहे हाथों में बोतल लिये नशे में चूर!
कहाँ गया होठों का प्यारे, विमल - गुलाबी रंग?
किस कठोर मूर्च्छा से व्याकुल आज तुम्हारे अंग?
जंजीरों में कसी जवानी, दुनिया से मुँह मोड़,
छोड़ चले माँ - बहिनों को तुम किस अनन्त की ओर?

आज तुम्हारी काव्य - तरी की टूटी है पतवार ;
डुबा रही मँझधार उसे अपना ही दुर्वह भार !
तुम मीठे स्वर में गाते हो इधर मलार , विहाग ;
और उधर तो बस , स्वदेश में लगी हुई है आग !
एक ओर तुम छेड़ रहे हो वीणा के मृदु तार ;
और , दूसरी ओर मचा है दारुण हाहाकार !
यह कैसा है राग , अरे यह कैसा मधुर - विहाग ?
जागो, जागो, सदियाँ बीतीं धारण किये विराग !
अब न सुनाओ कवि, तुम अपनी पीड़ा का संगीत ;
आज हार ही मिली भेंट में , दूर सिसकती जीत !
अरे , बहाओ मत वसुधा पर दुख का पारावार !
यों ही तो बह रही आज इन आँखों से जलधार !
दया करो , मत खोलो अपनी आहों का भण्डार ;
अरे, हथेली पर रक्खो कुछ लाल - लाल अंगार !
अंगारों की आज पिपासा , प्रलय दृश्य की चाह !
भर दो तरुणों के अन्तर में तुम मतवाली चाह !
हुए तुम्हारे इसी देश में वीर एक - से एक ;
करने आती लक्ष्मी जिनका स्वयं राज्य - अभिषेक !
अरे , न क्यों तुम गाते उनकी उज्वल कीर्ति महान ?
कोटि - कोटि कण्ठों से उनका पावन गौरव - गान ?
छेड़ राग , ओ जाग कवीश्वर; आग लगा दो आज !
भाग जाय द्रुत पराधीनता पहन रक्त - रण - साज !
गा भैरव - स्वर से तुम विप्लव - गीत जगा दो देश ;
चूर क्रूर साम्राज्यवाद हो त्राशक शासक शेष !
क्रांति मचे , फिर एक बार हाँ , जग में चारों ओर !
सर्वनाश - ज्वाला की लपटें उठें गगन में घोर !
जले पुरातन , होवे फिर से नूतन जग की सृष्टि ;
क्लेश दूर हो , दुःख शेष हो, सौख्य - सुधा की वृष्टि !

२३८

मुझे खींचते जाते हो तुम प्रतिपल अपने पास !
तुम्हें खींचने का नित मैं भी करता विफल-प्रयास !
हाय, इसी खींचातानी में छूट गया वह छोर !
चले गये हम दोनों राही अपनी-अपनी ओर !
तब से सदा खुला ही रखता हूँ मैं अपना द्वार ;
कभी, अचानक धोखे से भी आओ किसी प्रकार !

२३९

मेरा विद्रोही कवि - जीवन—
उठा उर्ध्व, तज आज धरातल ,
नगपति का करने चुम्बन !
अधिकृत कर कौशल, शासन ;
स्वर्णालंकृत सिंहासन !
दिला स्वयंभव धाताओं को
द्वीपान्तर में निर्वासन ,

मेरा दिग्विजयी कवि - जीवन—
एकछत्र सम्राट बना है
बैठा पहन कीर्ति - कंकण !
कण-कण में कर प्रभा प्रसारित ,
खोल अग्नि-नेत्रों को स्फारित ,
अपनी ही प्रताप - ज्वाला में
परिज्वलित, भासित, उद्गारित,

मेरा मतवाला कवि - जीवन—
धूमकेतु - सा आज खमंडल
में आया जलता प्रतिक्षण !
एक नयन में अमृत - विन्दु कल
और अपर में उग्र हलाहल !
खण्ड-खण्ड कर परशु-दण्ड से
रीति - शृङ्खलाओं का शृङ्खल ,

मेरा प्रलयङ्कर कवि - जीवन—
आज महा - नटराज - सरीखा
करता रण - ताण्डव - नर्तन !
चकित समाज,विश्व-उर विस्मित,
द्रुतगति देख सकल जग स्तम्भित।

झुका न सकता कहीं किसीके
भय से दुर्विजेय शिर गर्वित !
मेरा अभिमानी कवि - जीवन—
मुक्त - हस्त हो आज लुटाता
राशि-राशि मुक्ता - कंचन !
लंघन कर पिङ्गल - नियमन ,
चिह्न पुरातन, वृद्ध - वचन !
भुवन - भुवन में फैला प्रतिभा-
जाल, शिलीमुख का गुंजन ,
मेरा मृत्युञ्जय कवि - जीवन—
दौड़ रहा साहित्य - क्षेत्र में
प्रबल - वेग से चपल - चरण !
दुर्विनीत, दुर्मुख, दुर्जय ,
दुःसाहसमय, आशामय !
खड़ा आज झंझावरोध में
अटल हिमालय - सा निर्भय ,
मेरा ज्योतिर्मय कवि - जीवन—
वह्नि - शिखा - सा खर, अदम्य,
अस्पृश्य, अमर, उन्नत, पावन !

२४०

मुझे बना दे मा, रजकण;
अपने प्रिय-पथ का रजकण !
जिस पथ से तू नित जाती है
पूजा की थाली लेकर ;
तेरे पावन चरणों को मैं
मस्तक पर रख लूँ सादर !
पाऊँ नित तेरे दर्शन ;
मुझे बना दे वह रजकण !

जन्मदिन

प्रिये, आज आई है मेरी जन्मतिथि
एक वर्ष पर पुनर्बार । उपहार क्या
इस अवसर पर तुमको दूँ मैं ? कहो तो,
जरा सोचकर; अंगराग, भूषण, वसन ।
बहिन, स्वयं ही समझदार हो तुम । भला
फिर मैं क्या उपदेश तुम्हें दूँ ? तनिक भी
तुम खयाल तो करो देश का । समझ सब
जाओगी तत्काल । प्रियतमे, आज यह
उठता है जो आर्त्तजनों का कष्ट - रव;
पीड़ित का आक्रन्दन; दुखियों का रुदन ।
नारी-जाति तुम्हारी जकड़ी रूढ़ि औ
धर्म-अशिक्षा की कड़ियों में । क्या न तुम
पढ़-लिख कर भी कर सकती हो त्याग कुछ
उनके लिये ? सत्य-सा भूषण कौन है ?
क्यों न उसीको धारण करतीं ? देश का
कितना रुपया जल-सा अविरल बह रहा
वसन विदेशी और विविध उपदान में ।
खादी क्यों न पहनतीं ? छोड़ो मोह तुम
पौडर और लवेन्डर आदिक का । बहिन,
यों-ही क्या भारत - ललनाएं सुन्दरी
होतीं नहीं ? भला तो फिर यह व्यर्थ का
आडम्बर क्यों ? देखो, प्यारी ! आज यदि
जागोगी तुम न, तो जगेगा कौन फिर ?
तुम्हीं राष्ट्र-दीपक की रसमय स्नेह हो;
और, तुम्हीं हो विश्व-सूत्र - संचालिका ।
तुम न उठाओगी करुणा कर इस दलित-
स्खलित जाति को, तुम्हीं कहो तो, कौन फिर

पार लगावेगा बेड़ा इस देश का ?
इसीलिये हे बहिन, आज मैं मुदित-मन
लिखता हूँ इन प्रेम-पंक्तियों को, जिन्हें
आशा है, तुम याद रखोगी सर्वदा।

२४२

कह किसने मा, सर्वस्व छीन
कर दिया पलक में तुझे दीन ?
लोचन सवारि, रजरुद्ध केश;
विधवा - सा बाधा - दग्ध वेश !
लुट गया हाय ! वैभव अपार ;
वह मनमोहन शृङ्गार - हार !
कर दिया तुझे पल में मलीन
कह किसने मा, सर्वस्व छीन ?
कुसमय में हुए काल - कवलित
तेरी गोदी के लाल अमित !
आँगन में जलती चिता -ज्वाल;
सर्वत्र मृत्यु का बिछा जाल।
कर दिया तुझे जलहीन मीन
कह किसने मा, सर्वस्व छीन ?
आकाश गरजता धुआँ - भरा,
बालू - मिट्टी से कुआँ भरा !
बन गया अघट मरघट निकेत ;
डूबे जल में खलिहान - खेत !
कर दिया तुझे घर - द्वार - हीन
कह किसने मा, सर्वस्व छीन ?

२४३

तापस - तरुणों के सेनादल ;
चल, दल वन-पर्वत चल रे चल !
तुम दुर्विजेय, तुम मृत्युञ्जय ;
बाधा-विमुक्त, उन्मद, निर्भय !
बलमय, जीवनमय, यौवनमय ;
अनुपम, अखण्ड, तुम चिर-अव्यय!
गौरव की जला ज्वाल उज्वल;
चल, दल वन-पर्वत चल रे चल !
यह देश, रुद्र का विकट धनुष ;
जीतता वही; जो वीर पुरुष !
छाती में जिसकी दुःसाहस ;
हो भुजदण्डों में पौरुष-रस !
यह भू शूरों का क्रीड़ा-स्थल ;
चल, दल वन-पर्वत चल रे चल !
क्या तुम्हें चाहिये राज-भोग ?
निष्ठुर रे निष्ठुर कर्म - योग !
पथ में न मिलें क्यों सिन्धु ताल ?
बढ़ लाँघ उन्हें तू ऐ विशाल !
तापस तरुणों के सेनादल ;
चल, दल वन-पर्वत चल रे चल !

२४४

तड़प उठेगी दुनिया मेरे ज्वालामुखी-विचारों से !
सुप्त गगन को छेड़ जगाऊँगा अनन्त हुंकारों से !
तृषित नेत्र को तृप्त करूँगा उष्ण रक्त की धारों से !
छाती ठंढी होगी मेरी आज, तप्त अंगारों से !
बनकर के दावाग्नि उग्र मलयानिल में मिल जाऊँगा ;
हँस-हँस कर मैं आज विश्व-कानन में आग लगाऊँगा !

आवाहन

आओ हे ब्रजचन्द्र, पुनः भारत में आओ;
आओ प्यारे कृष्ण, देर मत व्यर्थ लगाओ !
आओ, यादव-वंश-तिलक ! गोकुल-प्रतिपालक!
आओ नटवर, विश्व नाट्य के हे परिचालक !
आओ हे घनश्याम, भक्त-मन-मोदक आओ !
कृपा-वारि तव नाथ, दया कर अब बरसाओ !
आओ करुणागार, शीघ्र आओ मुरलीधर !
आओ हे योगीन्द्र, चन्द्र-कुल-कुमुद-कलाधर !
आओ, विजय-विभूति लिये तुम सत्वर आओ;
तज वंशी को चक्र चक्रधर लेकर आओ !
प्रभो, काल का दण्ड, चाप-शर लेते आओ !
गीता का करुणेश, ज्ञान तुम देते आओ !
आओ जग में सत्य - केतु फहराने आओ;
धरा-धाम को स्वर्ग - निकेत बनाने आओ !
सोया भारत-देश जगाने इसको आओ !
नस में विद्युत-शक्ति इसे तुम भरने आओ !
पहले जहाँ न दुःख-क्लेश का कहीं नाम था;
नहीं धर्म से बढ़ा हुआ धन-धरा-धाम था !
घर-घर में घृत दूध-दही के नद बहते थे ;
लोग सभी सानन्द और सुख से रहते थे !
आज वहीं का दृश्य देख लो हृदय-विदारक ;
भूख-प्यास से तड़प रहे हैं कितने बालक !
दूध कहाँ ? ना कभी चैन से मिलती रोटी;
मर जाते नर कोस-कोस निज किस्मत खोटी !
देखो मोहन, जरा आज निज वंशीवट को ;
वृन्दावन, प्रिय ग्वाल-बाल, गोकुल-पनघट को !
हाय, तुम्हारे बिना आज ब्रज लगता सूना ;
यमुना भी हो रही विरह से दिन-दिन क्षीण !
आओ, माधव ! गैया-मैया बिलख रही है;
सरल स्नेह की मूर्ति यशोदा याद नहीं है ?
कृष्ण, आज हम निद्रारत हैं, हमें जगा दो;
भारत की इस भग्न-तरी को पार लगा दो !

२४६

तब ;—
घन की कृपा - दृष्टि से वञ्चित,
शस्यों के सिञ्चन - हित सञ्चित;
मटमैले गदले पानी में
प्रतिविम्बित होती थी सुन्दर
मेरी मुख-छवि निशि - वासर !
अब ;—
विपुल वालि-नवतृण-कुल-संकुल,
लौट रहे खेतों से आकुल ;
पहिये के 'चर-मर' शब्दों में
गूँज रहे हैं गान मनोहर
मेरे जीवन के शुचितर !

२४७

कली-कली में तेरा हास ;
गली-गली में तेरा वास !
जग-उपवन-तरु-डाली को तू
फल - पत्रों से भरता है !
पहन सुवर्ण-करों की माला
रजनी का तम हरता है !
बन कर सुन्दर, सुखद विहान,
मेरे जीवन ! मेरे प्राण !
फिर मैं क्यों यों रहूँ उदास;
जब तू रहता नित दिन पास !

२४८

जीवन की किस अशुभ घड़ी में प्रिये, तुझे अपनाया था;
अपने विस्तृत हृदय-लोक की रानी तुझे बनाया था;
जग से नाता तोड़ किया था हाय, तुझीसे केवल प्यार;
आँखें मिलते ही अपना सर्वस्व दिया था तुझपर वार!
आज, वही तू क्यों इस जग से क्षण में परिचयहीन हुई?
लीन हुई किस स्वप्नपुरी में? कहाँ हाय, तल्लीन हुई?

२४९

ओ मेरे मतवाले यौवन।
पल भर इस सूने-से जीवन में
भी धूम मचा ले यौवन।
ओ मेरे मतवाले यौवन।
पावस-सा मधु-रस बरसा दे;
जग की प्रणय-लता सरसा दे।
चार दिनों की उजियाली में
हँस ले और हँसा ले यौवन।
ओ मेरे मतवाले यौवन।
बहा-बहा दे मद की धारा;
डूब जाय जिसमें हिय सारा।
तू भर-भर दे, पीता जाऊँ
मैं प्याले पर प्याले यौवन।
ओ मेरे मतवाले यौवन!
अधरों पर अमृत-रस धर दे;
नयनों में मादकता भर दे।
अपनी अन्ध-गन्ध से मुझको
बना प्रमत्त निराले यौवन!
ओ मेरे मतवाले यौवन!

२५०

होती तू क्यों मा, यों कातर?
मैं सारा संकट लूँगा हर!
तेरे हित तेरा विजयी सुत
मरने के लिये सदा प्रस्तुत;
पाते ही एक सरल इंगित
यह कर देगा सब कुछ अर्पित!
मत सिसक-सिसक रो निशिवासर;
मैं सारा संकट लूँगा हर!
मुझमें असीम पौरुष-साहस;
नस-नस में बहता जीवन-रस!
सच मान, करेगा यह निश्चय
तेरे अशेष कष्टों का क्षय!
हाँ, एक बार हर से भी लड़
लूँगा मैं सारा संकट हर!
मरने दे, जो मर गये कभी;
जीता हूँ मैं तो देख अभी!
फिर भय क्या तुझको? कैसा दुख?
मत बिलख-बिलख लख मेरा मुख!
बाहर क्यों लेटी? उठ, चल घर;
मैं सारा संकट लूँगा हर!

२५१

शंख-घोष कर जननि, आज बनने दे मुझको दीवाना!
धारण करने दे मुझको अब तू वह केसरिया-बाना!
बहुत सह चुका, अब न सहूँगा और किसीका मैं ताना!
मटियामेट सृष्टि को करके आज बना दूँ वीराना!
प्रलय उपस्थित होगा क्षण में मेरे विकट प्रहारों से!
खेलूँगा मैं उन्हीं टूटते हुए गगन के तारों से!

अग्रदूत

मैं कहता हूँ उन्हें, न जिनको प्यारे लगते प्राण;
मैं कहता हूँ उनको, जिनके अपनी आँखें, कान!
मैं कहता हूँ उनको, जिनके अन्तर में तूफान;
हँसते - हँसते जो हो सकते आनों पर बलिदान!
एक इशारे पर कर सकते जो जीवन का शेष,
वे ही वीर - युवक भारत के सुनें अमर - सन्देश!
ओ सिंहों के लाल, गये बन कैसे आज शृगाल?
क्यों मिट्टी में मिला रहे अपना चिर - उन्नत भाल?
एक समय था, जब वे अगणित राजपूत सरदार
अपने प्राण हथेली पर ले ममता - मोह बिसार
रणस्थली में जा, डट जाते थे सोत्साह सहर्ष!
बता विश्व को जाते यों वे जीवन का उत्कर्ष!
माएं कहतीं—बेटा, रखना मेरे पय की लाज;
पड़ा भँवर में है स्वदेश का जर्जर जीर्ण - जहाज!
कर्णधार बन तुम्हीं आज ले लो, पकड़ो पतवार;
कर सत्वर उद्धार और, तुम इसे लगा दो पार!
लगा देह में रण - रोली कहतीं बहनें सोल्लास—
भइया, निर्भय हो अरिदल का करना सत्यानाश!
रक्षाबन्धन बाँध दिया था जो रक्षा का भार,
क्या न आज उस गुरु प्रण पर हो जाओगे तैयार?
जागो बन्धु, उठा आहव में वीरों का हुंकार!
लक्ष - लक्ष दीनों के आँसू तुम्हें रहे ललकार!
वधुएं—कौन? अरे, हाँ वे ही नववधुएं सुकुमार
अपने ही हाथों से कर पतियों का रण - शृङ्गार
बाँध वृषभ - कन्धों पर उन्नत अक्षय खर - तूणीर
तन में कवच, मुकुट मस्तक पर, सजा समस्त शरीर
कहतीं, प्रियतम, निश्चय करना अरि - गौरव गढ़ चूर;
चिन्ता नहीं, रहे या जाये मम सुहाग - सिन्दूर!
पर, न लौटना बिना विजय को लेकर अपने साथ;
लड़ना दो - दो हाथ दिखा कर अपना भुज - बल नाथ!
जनता कहती—जाओ, मेरे वीरो, महाप्रचण्ड;
जब तक इन उदण्ड भुजदण्डों में है शक्ति अखण्ड!
एक बूँद भी रक्त तुम्हारी बचे देह में शेष;
प्रिय - स्वदेश का गौरव रखना तुम अक्षुण्ण हमेश!
ऊपर से बरसाते सुरगण उनपर पावन फूल!
फूल सरीखे बन जाते थे पथ के भीषण शूल!
यों चलते योद्धा धारण कर केसरिया परिधान;
समर - क्षेत्र की ओर शेर - से गरज, कमानें तान!
धौंसों की धुधकारों पर वे करते थे रण - रंग;
होता था उनके जीवन की मादक क्रीड़ा जङ्ग!
रक्तों के अबीर से रण में खेला करते फाग;
जम्बुक - काक कोटि - कण्ठों से गाते भैरव - राग!
खाकर जिनकी चोटें कितने शासन की चट्टान
चूर - चूर हो गई धूर में मिलकर खाक - समान!
घोड़े पर ही चढ़े बिता देते कितनी दिन - रात;
छाया हो या धूप शीश पर, गर्मी या बरसात!
कुधर - कन्दराएं ही थीं उनका सुरम्य आवास;
देश - प्रेम को छोड़ नहीं था कुछ भी उनके पास!
सतत धधकती हुई हृदय में प्रतिहिंसा की ज्वाल;
छाती में साहस अटूट, मन में उत्साह विशाल!
अमर मौत सहचरी, रणस्थल ही बस, अन्तिम सेज;
विलसित मञ्जु वदन - मण्डल पर क्षत्रियत्व का तेज!
घास - फूस के टुकड़ों पर ही करते दिवस व्यतीत;
नंगे - ही शरीर सह लेते थे कठोर हिम - शीत!
किन्तु, आज उफ देख, उन्हीं के वंशधरों का हाल!
उड़ा रहे हैं मौज हजम कर अधम प्रजा का माल!
तप्त - ग्रीष्म की लू में उनको वहीं तड़पती छोड़,
शीतल - सुखद वायु - हित जाते हैं शिमले की ओर!
नारकीय कीड़े वे मदिरा के हा, भक्त अनन्य
पी पापों की घूँट किया करते हैं जीवन धन्य!
डाल कमर में हाथ मिसों के थिरक - थिरक कर नाच,
पुण्य कमाते मनुज - वेश में वे साक्षात पिशाच!
जो योद्धागण सदा खेलते प्राणों का शतरंज;
आज उन्हीं के पुत्र चूमते वेश्या के पद - कंज!
जिनके पूर्वज पहले लेकर के हाथों में खड्ग
युद्धभूमि में लड़, कर देते प्राणों को उत्सर्ग!
आज, उन्हीं का हाय देख लो जरा करुण - व्यापार;
सहते हैं लाचार साहबों के जूतों की मार!
उड़ा शौक से जाते होटल में मेमों की जूठ;
हवा दाल - मण्डी की खाते पहन रेशमी सूट!

अरे, जमाना था वह वीरों का सब ही थे मर्द;
एक बार, लख जिन्हें काल भी पड़ जाता था जर्द!
वे तो मरणोपासक; करते उसका ही व्यवसाय;
उनकी जीवन-पुस्तक का था वही प्रथम अध्याय!
आज, किन्तु होता है हमपर कितना अत्याचार!
पी लोहू की घूँट गालियों की सहते बौछार!
अपना पेट काट कर भरते हैं औरों का पेट!
फिर भी हाय न भरने पाती कभी हमारी टेंट!
ऊपर से समझाया जाता — रोते क्यों बेकार?
मैंने किया तुम्हारा अपने भरसक तो उपकार!
मानो, या मत मानो; यह तो खुशी तुम्हारी, यार!
लेकिन, मैं सर्वदा तुम्हारे लिये रहा तैयार!
बड़े-बड़े विद्यालय, कालिज खुलवा दिये अनेक;
जिससे तनिक तुम्हारे मानस में हो उदित विवेक!
लेकिन, तुम सब मूर्ख—समझते नेक न मेरी बात;
फिर मैं करूँ तुम्हारे हित क्या? तुम्हीं बताओ, तात!
क्या 'जल-जल' चिल्लाने से ही मिट जाती है प्यास?
नादानो, स्वराज्य पाने का करो न अभी प्रयास!
वाह, भलेमानस! तुमने तो खूब कही यह बात!
लाद रहे उपकार-भार तुम मार-मार कर लात!
चूस-चूस कर रक्त हमारा ही बघारते शान!
कैसे मान तुम्हारा लूँ इतनी जल्दी इहसान?
नारि, नारि, सुकुमारि; नहीं, यह उचित न; वज्र-कुमारि;
प्रोषित-पतिका बन यों कब तक बरसाओगी वारि?
बहुत दिवस हो गये बहाते नयनों से जलधार;
अब भी तो कुछ कर दिखलाओ इस युग के अनुसार!
यह जागृति का युग नवीन ले आया मन्त्र-विशेष;
महिलाओ, पाखण्डवाद का कर दो अब तो शेष!
तुम न खिलौने हो पुरुषों के; सेजों की शृङ्गार!
धता बता दो कामुकता, लम्पटता को दुत्कार!
कहाँ गया आदर्श पुरातन? वह जीवन-सन्देश?
पर-हित साधन में सहना नित विविध-भाँति दुख-क्लेश!
वह मैत्रेयी, गार्गी का पावन जीवन निष्काम!
और, भारती—अनुसूया का पुण्यकाल अभिराम!
क्या न लौट सकता है फिर भी आज एक ही बार
वह सुवर्ण-युग इस कटु कलि कल्मष में किसी प्रकार?

मुझे न कुछ इतनी अतीत से है आसक्ति, प्रतीति;
और न पश्चिम की लोलुपता-भौतिकता से प्रीति!
हमें चाहिये उन दोनों के ठीक बीच की राह!
जहाँ पहुँचकर एक जगत के होते निखिल प्रवाह!
रहा सदा प्राचीन काल से मुक्ति हमारा ध्येय;
और समझते पारतन्त्र्य को आये दुखप्रद, हेय!
देव-भुवः-भूलोक सभी में फिरते थे स्वच्छन्द;
बाधाहीन हमारा पथ था, मुक्त जीवनानन्द!
भरा समुज्वल पृष्ठों से है जागृति का इतिहास!
यहाँ नाश में भी मिलता है उन्नति का आभास!
अपरम्पार मदान्ध शकों को हिमगिरि के उस पार
किस विक्रम ने मार भगाया था रे बारम्बार?
कर अशोक लोकों को; फैला शुचि नव धर्मालोक,
त्यागी वह त्रिलोक-अविरागी था सम्राट अशोक!
प्रेम-अहिंसा व्रत के पालक, करने अघ से त्राण,
कहाँ अवतरित हो आये थे शुद्ध-बुद्ध भगवान?
इतनी दूर कहाँ जाते हो? आ न जरा ही पास;
देखोगे तुम शक्ति-साधना का वह दिव्य प्रकाश!
जिस प्रकाश में कितने ही दैत्यों का हुआ विनाश;
जिस प्रकाश में कितने ही देवों का हुआ विकास!
वीरों में सिरमौर शिवाजी, आल्हा-ऊदल चण्ड;
अकबर और मान-सा राजा, सेनाध्यक्ष प्रचण्ड!
दुखिया मा की लाज, हमारा प्यारा, सर का ताज
अमरसिंह नरसिंह, दुलारा कासिम और सिराज!
लक्ष्मीबाई झाँसी-वाली, पृथीराज चौहान!
नाना; धूधूपन्त पेशवा, प्रिय टीपू सुलतान!
प्रिय-स्वदेश पर कर देने वाले सर्वस्व-प्रदान;
उस अतीत के धुँधले पट में ये दीपक अम्लान!
किन्तु, आज तो स्वप्न देखना भी उनका है पाप;
पड़ी हुई है नस-नस में जब कायरता की छाप!
यह कैसा अभिशाप, देव! यह कैसा है अभिशाप?
काट रहे शत-शत वृश्चिक बन कर अपने ही पाप!
कैसे होवें धीर, कहाँ से लावें हम वीरत्व?
जब न हमें समझाता कोई बहादुरी का तत्त्व!
वहाँ न जाना लाल, वहाँ है बैठा भूत कराल;
जो तुमको क्षणभर ही में कर देगा, हाय हलाल!

आरसी

आज डराती हैं माताएं ले होआ का नाम !
कोने में ही छिपे बीतती शिशु की उम्र तमाम !
अरे, न क्यों हमलोग भला फिर हों पुरुषार्थ-विहीन ?
दासों के भी दास, नपुंसक; दुर्बल, दीन, मलीन !
चुचके-पुचके गाल, निराशा का होठों पर रंग;
झड़े हुए पत्तों-से पीले सभी अङ्ग-प्रत्यङ्ग !
धँसी हुई दो-इंच गढ़े में आँखें तेज-विहीन !
सूखे तिनके-सी बाँहें औ जर्जर छाती क्षीण !
शिर पर तेल-सने घुँघराले काले, चिकने बाल;
और नजाकत-नखरों-वाली जनानियों-सी चाल !
टाँगें पतली तथा चेहरा फीका, झुर्रीदार;
मुखमें पान, हाथमें छोटी घड़ी, छड़ी, सुकुमार !
यही युवक क्या आज लड़ेंगे स्वतन्त्रता का युद्ध ?
यही द्वार क्या तोड़ेंगे आजादी का अवरुद्ध ?
पतितो, क्या तुमलोगों से भी हो सकता कुछ काम ?
लिखा रहेगा डरपोकों में या कि तुम्हारा नाम ?
अरे, न क्या है तुम्हें सताता मा का बन्धन-भार ?
क्या न सुनाई पड़ती तुमको उसकी करुण पुकार ?
देखो, वह किस भाँति आज है करती हाहाकार !
अपनी दीन दशा लखकर के रोती है बेजार !
तुम मा के पुत्रो, सोये हो बेसुध पैर पसार !
और तुम्हारे ही भाई खाते कोड़ों की मार !
जागो ऐ नवयुवको, अब तुम कर यह निद्रा भंग;
अंग-अंग में छा जाने दो मादक एक उमंग !
तुम कहते हो-हमको क्या है इन बातों से काम ?
जाने दो, छेड़ो न हमें, टुक करने दो आराम !
क्या कर्त्तव्य यही है भाई ? कैसी है यह भूल ?
शूल समझ कर छोड़ रहे हो तुम अति-सुन्दर फूल !
तुम तो हो चिर-वीर, भला फिर क्यों होते हो भीत ?
अरे, जरा सोचो तो अपना तुम कर्त्तव्य पुनीत !
कोई दुष्ट तुम्हारी मा पर करता अत्याचार;
रो-रो कर वह करुण-स्वरों में तुमको रही पुकार !
तन पर फटे वस्त्र हैं, नयनों में मोती दो-चार !
सिसक-सिसक कर बहा रही है वह अविरल जलधार !
क्या न तुम्हारा खून उठेगा खौल देख यह हाल ?
क्या न तुम्हारी आँखें क्षण में हो जायेंगी लाल ?

बोलो, क्या तुम तब अपने को सकते कभी सँभाल ?
क्या न छुड़ाओगे तुम उसको जाकर के तत्काल ?
या उस क्षण भी यही कहोगे—क्या है इससे काम ?
अभी मुझे कुछ और देर तक करने दो आराम !
मैं तो हूँ वक्ता, वैज्ञानिक, नेता औ कविरत्न !
मुझे जगाने का न करो तुम पागल, व्यर्थ प्रयत्न !
काम न हो तो हर्ज नहीं कुछ, मुझे चाहिए नाम;
जाय भले ही देश रसातल, मुझे चाहिए दाम !
पाप ! पाप ! यह मनुष्यता का है कितना अपमान !
क्यों न टूट पड़ते हैं तुमपर ये नक्षत्र महान ?
फट पड़ता है क्यों न तुम्हारे सिर पर यह आकाश ?
क्यों न तुम्हें कर देती सत्वर ज्वालामुखी विनाश ?
यह पापी जीवन ले जग में क्यों आये तुम मित्र ?
डुबा रहे हो क्यों अपने पूर्वज की कीर्ति पवित्र ?
अरे, कलंकित होती तुमसे ही वसुधा अभिराम !
तुम्हीं बताओ, आज तुम्हारा है जग में क्या दाम ?
खोकर अपना मान और अपना स्वदेश-अभिमान
किसके बल पर इतराते हो अब तुम ऐ नादान ?
अरे, कभी क्या सोचा है निज वह गौरव प्राचीन ?
ले भागा सौभाग्य तुम्हारा कहाँ, शत्रु कब छीन ?
सुनो, सुनो कह रहा पलासी का मैदाने-जङ्ग—
यहीं कहीं खेला था खुलकर शैतानों ने रङ्ग !
धोखे से कुछ दोजख के उन कुत्तों ने मक्कार
हाय चलाई थी अपने ही भाई पर तलवार !
अपने ही प्यारे लालों के शोणित से तत्काल
सुरसरि की उज्वल जल-लहरी हो आई थी लाल !
और, उन्हीं कंकालों की लाशों की नीवें डाल
खड़ी की गई कलकत्ता-सी नगरी वह सुविशाल !
मरते दमतक भी अपने प्रण पर अविचल, आजाद
दीवालों में चुने गये उन बच्चों की फरियाद
देश-धर्म के लिये खुशी से मरना सौ-सौ बार
कौन सुनेगा ? किसमें इतने साहस का संचार ?
पूछो, पानीपत से बतला देगा वह मतिमान;
कितने वीर हुए थे उसके चरणों पर बलिदान !
कितने देश-प्रेमियों की उफ, तड़प उठी थी लाश !
और, बुझायी थी शोणित से खड्गों ने निज प्यास !.

कैसे दो विपरीत दलों में मच जाता था युद्ध ?
कैसे लड़ते थे योद्धागण हो-हो करके क्रुद्ध !
रण में किस प्रकार थी करती चम चम चम तलवार ?
कैसे बह जाती थी क्षण में वहाँ लहू की धार !
पूछो, हल्दीघाटी से तुम निज अतीत के गान ;
उन मुट्ठी भर युवकों ने रखने जननी का मान,
प्राणों पर खेला था रण में छेड़ समर घमसान !
भागे थे जिनके भय से वे कायर मुगल, पठान !
और, जरा पूछो, कह देगा जलियाँवाला बाग ;
अंकित हैं इसकी छाती पर कितने लोहित दाग !
रेंग-रेंग चलना साँपों-सा सीने के बल आह !
कितना शीतल होता था वह उनका अन्तर्दाह !
थी परवाह उन्हें न किसीकी, मर मिटने की चाह !
भरा हुआ था रग-रग में उनके असीम उत्साह !
पूछो उनसे, कैसी होती देश-प्रेम की टीस ?
कैसा मीठा होता है उफ, विहँस कटाना शीश !
सोचो, क्यों चित्तौर हुआ था क्षण में हाय स्मशान ?
मर कर भी रक्खा था किसने निज गौरव अम्लान ?
कहो, पद्मिनी से बतला देगी अपने उद्‌गार !
धू-धू करती लपटों में थी कितनी शान्ति अपार ?
कितना उनमें अमरत्व अरे, कितने सुख का वास ;
शत-शत अग्नि-शिखाएं जब थीं छू लेती आकाश !
ज्वालाओं के बीच बैठ कर वह अन्तिम मुस्कान ;
कितना मादक आह, रहा होगा उनका बलिदान !
पूछो, मारवाड़ के कण-कण से उनका तुम हाल !
जलती बालू में कितने मर मिटे जननि के लाल !
जाकर गिनो, वहाँ कितने हैं सोये क्षत्रिय-वीर !
और, बैठ कर कोने में तव भाग्य बहाता नीर !
अरे, जरा उन नग्न शिलाओं में जाकर लो देख ;
अंकित है किन वीर-बाँकुड़ों के चरणों की रेख !
लिखा हुआ है अमर-लेखनी से किनका इतिहास ?
करके स्मरण जिन्हें दुनिया है भरती दग्ध उसाँस !
अरावली की उपत्यका में घासों पर अम्लान,
अब तक फहराता है किनका उज्वल कीर्ति-निशान !
अरे सुनोगे तुम तो कामिनियों का हास-विलास ;
जो पहुँचा देगा जीते-ही तुम्हें मृत्यु के पास !
और, सुनोगे उनके नूपुर की कोमल झंकार !
जब कि खड़ा ललकार रहा है शत्रु तुम्हारे द्वार !
देख, देख ओ अमर पुत्र ! निज हाय अधोगति देख ;
मिटती-सी जाती है तेरे उस प्रताप की रेख !
कभी तुम्हारे इन्हीं पदों के नीचे कितने आह !
सभय लोटते थे विह्वल-से लक्ष-लक्ष नरनाह !
हिल उठते थे सुनकर तेरे दिग्विजयी हुंकार !
कितने नर-रक्तों से पालित सिंहासन के तार !
और, सभय झुकते थे कितने राजमुकुट अभिराम !
एवं कितने वैभवशाली मस्तक लोक-ललाम
इन्हीं, तुम्हारे चरणों पर औ अपने घुटने टेक
क्षमा माँग कर जाते तुमसे हारे-वीर अनेक !
जिनके पीछे छाया की नाईं निष्ठुर साकार
सत्यानाश सदा फिरता था, करती थी अभिसार—
शत्रु-शीश के संग खून से रँगी कठोर कुठार !
और बहाती थी समरांगण में लोहू की धार !
अरे, न क्यों तुम आज उन्हींका लेते हो आदर्श ;
वन्दी बना भरत-दिलीप का प्यारा भारतवर्ष !
सब मिल तोड़-फोड़ दो अपने पारतन्त्र्य का पाश !
और, गुलामी की कड़ियों को कर दो सत्यानाश !
जिससे जग में बचे हमारी मा-बहनों की लाज,
ओ मतवालो, करो आज तुम ऐसा ही कुछ काज !

रण की ओर

तोड़ सभी जीवन के बन्धन और जगत के माया-जाल;
चल भारत के लाल समर में ले कर में कराल करवाल !
धधक, लपट बन अन्तरिक्ष में जिसका कहीं न कोई छोर;
जल उठ, जल उठ अग्नि मुखी सा प्रलय-नृत्य कर चारों ओर !
धधक, धधक धू-धू धक-धक कर, ज्वालामय हो नभ का कोर;
तू कड़ियों को तोड़-फोड़, फिर जिनको कोई सके न जोड़ !
उछल, उछल ऐ उच्छृङ्खल अपने नयनों को खोल विशाल;
चल, भारत के लाल समर में ले कर में कराल करवाल !
गिर वसुधा पर विद्युत गति से शत-सहस्र बन उल्का-पात;
तान त्रिशूल वीर, अन्यायी के मस्तक पर कर आघात !

फाड़ दुशासन का वक्षस्थल, तप्त रुधिर से सज ले गात;
मतवाला गज-सा उखाड़ कर फेंक दासता का जलजात!
अरे, निगल जा निखिल विश्व को भीमकाय बन विषधर-व्याल;
चल भारत के लाल समर में ले कर में कराल करवाल!
तू वह वह्निशिखा, कर सकता जिसको कोई शमन नहीं,
तू वह चिता, जगत में कोई जिसका ज्वाला - रमण नहीं!
तू वह युग-हुंकार, किसीका जिसपर शासन-श्रमन नहीं;
तू विद्रोही वीर, जिसे कर सकता कोई दमन नहीं;
तू वह महाशक्ति है, जिसके भय से थर्रा उठता काल;
चल भारत के लाल समर में ले करमें कराल करवाल!
अरे, चाट ले जग को बन कर सागर की उन्मत्त हिलोर;
वीर, सदल-बल समर-क्षेत्र में जाकर युद्ध मचा घनघोर!
छा जाये नभ से अवनी तक त्राहि-त्राहि की सकरुण रोर;
झंझा - सा साम्राज्यवाद का निर्बल-वृक्ष गिरा झकझोड़!
त्याग तरुण, कोमलता तनुकी, बन जा कुलिश-कठोर कराल;
चल भारत के लाल समर में ले कर में कराल करवाल!
हिला विश्व को भूमिकम्प-सा प्रलय-प्रतीक्षक, ओ रण-शूर,
इन दीनों के रक्त-सने महलों को कर दे चकना - चूर!
हँसे जवानी दीवानी बागी का, हँसे कपिध्वज क्रूर!
आज विजय की घड़ियाँ आईं, दिवस न भाग्योदय के दूर!
रे अघोर - सा नाच गले में धारण कर मुण्डों की माल;
चल भारत के लाल समर में ले कर में कराल करवाल!
तेरे एक-एक भ्रू - चालन से अरिदल मूर्च्छित हो ले,
एक - एक चितवन से तेरी पापी निज जीवन खो ले!
छिप कर तेरी हुंकारों में कायरता जग की सो ले!
जीवित बच न चले, जो कोई तेरे सम्मुख कुछ बोले!
वायु - वेग से दौड़ अनश्वर, छोड़ शीघ्र यह मंथर - चाल,
चल भारत के लाल समर में ले कर में कराल करवाल!
उठ चल ऐ रक्ताक्त युवक अब, सुलगा दे यौवन - ज्वाला;
बैठ अभय भीषण लपटों में प्रलय-गीत गा मतवाला!
तू अजेय, निर्द्वन्द्व, निराला, पी नव - प्राणों की हाला;
तोड़ एक ही पदाघात से तू कारागृह का ताला!
कह दे, आज भैरवी नाचें, नाचें देवासुर - दिग्पाल!
चल भारत के लाल समर में ले कर में कराल करवाल!
अरे, जरा सुन वह कोलाहल, गाते नर - किन्नर - वेताल!
बजता सर्वनाश के स्वर में यह किसका दारुण करताल!
देख, वहाँ निर्जन श्मशान में लोट रहे कैसे कंकाल!
अशुभ-मुहूर्त, धरित्री व्याकुल, उठा आज यह किसका भाल?
आज क्षुब्ध रणदेव पिपासित तुझे बुलाता वह तत्काल!
चलभारत के लाल समर में ले कर में कराल करवाल!

उद्बोधन

क्रान्तिधात्रि, उठ; जगा आज, नव
शक्ति-उत्स मरु के अन्तर में!
अग्नि-मंत्र पढ़ विजय - गीत - स्वर
मिला विश्व - वीणा के स्वर में!
ज्योतित शुभ्र - भाल पर उन्नत
श्री-विकसित शुभ रक्त-तिलक धर;
चल प्रशस्त प्राँगण में यौवन
के लोहित अर्घों में मद भर!
गूँजें विजय - कण्ठ - रव तेरे
उदधि, नदी, वन, गिरि, निर्झर में;
क्रान्तिधात्रि, उठ; जगा आज, नव
शक्ति-उत्स मरु के अन्तर में!
युवक रत्न - गर्भा के उर में
कर दें विद्युत-छवि का अंकन;
बाँधें भ्रातृ - करों में भगिनी-
गण सोल्लास मरण - रण - कंकण!
अभय - वाक - वर दे जननी, सुत
जूझें जिससे विकट समर में;
क्रान्तिधात्रि, उठ; जगा आज
नव शक्ति - उत्स मरु के अन्तर में!
प्यासी आज लहू की अपने
ही खर रण - कर्कश मानवता;
जागी पुनः पुरातन - युग की
वही ध्वंस - लोलुप दानवता!

खण्ड - खण्ड कर ले समेट यह
भव - वैभव कराल गह्वर में;
क्रान्तिधात्रि, उठ; जगा आज नव
शक्ति-उत्स मरु के अन्तर में!

डूब रही असहाय सभ्यता
नर - शोणित की खर - धारों से;
फटता नभ, पाताल डोलता
शस्त्रास्त्रों की झंकारों से!

दौड़ हिमाचल के ललाट पर
रणदे, गरज सघन अम्बर में;
क्रान्तिधात्रि, उठ; जगा आज नव
शक्ति - उत्स मरु के अन्तर में!

सफल तपस्या हो तरुणों की
काल - कोठरी में मर्माहत;
मृत्यु - द्वार पर वन्दी मूर्छित
पड़े द्रोहियों का अनशन - व्रत!

गरल - पात्र रख दे अधरों पर;
नाच उठे जग प्रलय - प्रहर में!
क्रान्तिधात्रि, उठ; जगा आज नव
शक्ति - उत्स मरु के अन्तर में!

लाखों नर - कंकाल निरखते
करुण - दृष्टि से तुझे अविचलित;
शंकित परम्पराएं परिणत
धर्म-ग्रन्थियों में अगणित नित!

आज हुंकरित हो फिर तेरी
विप्लव की वाणी घर - घर में;
क्रान्तिधात्रि, उठ; जगा आज नव
शक्ति-उत्स मरु के अन्तर में!

विलख रहे दुर्दैव - विदारित
अगणित अबलाओं के लोचन;
देवि, बिना तेरे दोनों का
कौन करेगा अश्रु - विमोचन?

काल - सूत्र - निर्मित जीवन से
वज्र - लेख लिख लौहस्तर में;
क्रान्तिधात्रि, उठ; जगा आज नव
शक्ति-उत्स मरु के अन्तर में!

सुलगा दे ज्वाला यौवन की
रक्त - हीन तन में निर्जीवित;
आप पुरोहित, होता बन तू;
क्रान्ति-यज्ञ में इस अभिमन्त्रित!

दौड़ दर्प - विस्फीत - वक्ष पर
वज्र - वेग से शून्य अधर में;
क्रान्तिधात्रि, उठ; जगा आज नव
शक्ति-उत्स मरु के अन्तर में!

२५५

छिपने की चेष्टा करते हो जितनी-ही तुम आह!
तुम्हें देखने की उतनी ही बढ़ती जाती चाह!
निष्ठुरता से जितना ही तुम मुझे रहे दुत्कार;
बढ़ता जाता सदा तुम्हारे प्रति उतना ही प्यार!
ठुकराते हो; ठुकराओ, पर कर लेना तुम याद—
इन्हीं ठोकरों में पा लूँगा कभी अमोल प्रसाद!

२५६

आँखों ने आँखों को देखा, आँखों ने ही प्यार किया;
आँखों ने ही आँखों पर अपना तन-मन वलिहार किया!
आँखों-आँखों में ही गुपचुप बातें हुईं; विचार किया;
आँखों ने ही आँखों पर फिर वार किया; हुशियार किया!
उलझ पड़ीं आँखें आँखों से, ज्योंही आँखें चार हुईं!
कौन कहे, किनकी आँखों की जीत हुई या हार हुई!

स्वदेश-संगीत

हे विश्व-वंद्य भूपाल देश !
हे नगपति-भाल विशाल देश !
हे त्रिलोक-सुन्दरी - हृदय-तल-
शोभित - मुक्ता - माल देश !
मेरे भारत, मेरे स्वदेश !
तू जाग, आज रे एक बार ;
फिर एक बार ;
बस, एक बार !

हे सुर-नर-ऋषि-आराध्य देश !
हे मौलि-मुकुट-अनुवाध्य-देश !
हे ज्ञान-ध्यान - विज्ञान - कला-
साहित्य-गीत-स्वर - साध्य-देश !
मेरे भारत, मेरे स्वदेश !
तू जाग, आज रे एक बार ;
फिर, एक बार ;
बस, एक बार !

हे कोटि-कोटि-जन-प्राण देश !
हे भूतिमान - अभिमान देश !
हे आदि-सभ्य-अनिवार्य - आर्य-
धृति-कर्म - धर्म - निर्वाण देश !
मेरे भारत, मेरे स्वदेश !
तू जाग, आज रे एक बार ;
फिर, एक बार ;
बस, एक बार !

हे वसुधा - हार - उदार देश !
हे स्वयंभूत - अवतार देश !
हे सुधा - धार - शुचि-धौत-धरा
की धुरी , समुद्राधार देश !
मेरे भारत, मेरे स्वदेश !
तू जाग, आज रे एक बार ;
फिर, एक बार ;
बस, एक बार !

हे सुन्दर - श्रेष्ठ - धनेश देश !
हे षड-ऋतु-अभिनव-वेश देश !
हे उर्वर-मलयज-स्निग्ध-हरित-
रस-जल-फल-पुष्प - विशेष देश !
मेरे भारत, मेरे स्वदेश !
तू जाग, आज रे एक बार ;
फिर, एक बार ;
बस, एक बार !

हे महाकाल - करवाल देश !
हे वीरभूमि - विकराल देश !
हे युग-युग क्षत्रिय- रुधिर -सिक्त
गौरवमय महिमोत्ताल देश !
मेरे भारत, मेरे स्वदेश !
तू जाग, आज रे एक बार ;
फिर, एक बार ;
बस, एक बार !

२५८

दूर हो क्या इसलिये प्रिय !
दूर का शशि सौम्य, सुन्दर दूर का संगीत ;
दूर के नक्षत्र मोहक, दूर का घन प्रीत !
और तुम उतने मधुर, जितनी यहाँ से दूर ;
आज मेरे दृश्य जग से दूर हो क्या इसलिये प्रिय !

कवि के प्रति

कवि, कर्ण - कुहर में बार-बार
ये गूँज रहे हैं कौन गान ?
किस मर्म - वेदना से तेरे
हो गये आज म्रियमाण प्राण ?
कुछ अंग - भंगिमा देख रहा ;—
कुछ सुनता हूँ अस्पष्ट शब्द ;
पहचान नहीं सकता तुझको ,
पर समझ रहा वह विकल तान;

उस ओर विचित्रित करता तू
मुग्धा के कुंचित केश - वेश !
रे इधर साँकलों में तेरा
छटपटा रहा सौभाग्य शेष !
प्रज्वलित क्षुधानल से व्याकुल
कंकाल अनेकों रहे डोल ;
तू क्या कहता ?—ओ, देख इधर;
मर रहा आज पददलित देश !

नवयुग को मधु की चाह नहीं ;
रे उसे चाहिए अग्नि - शिखा !
मानस से भय की भीति भगा
तू बलि होने की राह दिखा !
वह भूत—मृत्यु का कालदूत ;
मत भूतकाल की दिला याद !
इन कायरता के पुतलों को
तू स्वतंत्रता का मंत्र सिखा !

जागी वह सागर में हिलोर ;
जागा प्राची में ध्वंस राग !
जग गई अवनि से अम्बर तक
लो, महाक्रान्ति की उग्र आग !
इस निखिल जागरण में प्रसुप्त
बस, लुप्त-प्राय - से तुम्हीं एक;
उठ ओ अतीत के स्वप्न भूल ;
तू जाग, आज रे जाग-जाग !

टूटी वीणा का काम नहीं ;
उर का उतार दे विपुल भार !
तू अग्रपथिक , चलना होगा
तलवार - धार के आर - पार !
वन-वन में, उपवन - उपवन में
ओ रे अनन्त, ओ रे अजेय ;
फिर से गूँजे वह हुहुंकार ,
तेरा दिग्विजयी हुहुंकार !

तू किस अनन्त की ओर चला
कविवर, इस संकट में कराल ?
कर रहा उधर तू मूक रुदन,
इस ओर पेट का है सवाल !
इस कोलाहल में कौन सुने
तेरे वे करुणा - कलित गीत ?
रे अमर पुत्र , बढ़ चल ; उट्ठीं
जल ज्वालाएं ये लाल-लाल !

ये इधर - उधर जो चिनगारी
रह-रह उठती है कभी झलक;
हाँ, इसी जिगर के टुकड़े हैं ;
तू हिय से लेना लगा ललक !
सूने मरघट में जलती यह
जिन सुकुमारों की रक्त-चिता ;

लखते जाना टुक ठहर यहाँ—
रे एक निमिष, बस एक पलक ।
तू जाग आज ओ मुक्त वीर ,
तजकर विषाद, भीषण प्रमाद ;
सुन, हुआ वज्र - निर्घोषों में
रे सेनापति का शंखनाद !
आ रण-प्राँगण में सजकर अब;
कब से अरुणोदय बुला रहा !
बिजली-सा तड़प घनों में उठ;
ओ कविर्मनीषी , निर्विवाद !
हो चुका बहुत ही अबलों पर
प्रबलों का शासन, अनाचार !
अब रोक न सकता कोई भी
इन कंगालों को निराधार !
तू इस अवसर को खो न धीर,
चल घर-घर में विद्रोह मचा ;
कह दे पुकार—सब मुक्त आज;
सब मुक्त आज—कह दे पुकार !
आ गया निकट ही सर्वनाश ;
अब हो जाओ तैयार दीन !
ये स्वर्ण - भवन होंगे तेरे ,
फिर कौन कहेगा तुझे दीन ?
ओ कवि, दरबारों में न नाच ;
इन मुर्दों में ही फूँक शक्ति !
जिससे फिर जग का मुकुट बने ,
फिर से प्यारा भारत नवीन !
वह वहाँ देख, ललकार रहा
गर्वोन्नत पर्वतपति उदार !
पदतल में जिसके लोट रही
गंगा-यमुना की अमृत - धार !
तू नयन खोल; रे जगा रही
युग-युग की संचित पराभूति ;
सुन काँप उठे वसुधा तेरा
जय - जय का निर्भय महोच्चार !

भूडोल

फिर डोली रे दुनिया डोली ;
जो हो ली, सो हो ली; अब क्यों
खेलता ध्वंस रह - रह होली ?
हिल गया हिमाचल, व्योम-तोम ;
डगमग - डगमग - डगमग अधीर !
कम्पित त्रिभुवन, कानन, समुद्र ;
थर - थर - थर वसुधा का शरीर !
शतदल - सा सिहरा झोंके में
एक ही, धरातल से अनन्त ;
गूँजा करुणामय क्रन्दन से
आरक्त विश्व, धूमिल दिगन्त !
वन - वन में आग लगा आई
दावानल - सी प्रज्वलित ज्वाल ;
दौड़ी बिजली - सी नंगी - ही
कंगाली खप्पड़ ले कराल !
बल पड़े भौंह पर वासुकि की ,
मन्द मुसकिराया महाकाल ;
कल्लोल - तरङ्गावलि उछली
विक्षुब्ध - जलधि की महोत्ताल !

वह दिन, वह पल, वह सर्वनाश
झूलता दृगों में अभी तलक;
जब स्वयं प्रलय का रूप धरे
आया था महा - मरण अन्तक।

शिथिली - कृत लौह - शृङ्खला से
थी अखिल सृष्टि, जीवन, कण-कण;
ले आया प्राणों में भर कर
वह उत्पीड़न, शत - शत कम्पन।

झुक पड़ा जगत का तुङ्ग भाल
रे उसके चरणों पर कराल;
कर दिया पदों से उन्मर्दित
वसुधा का यह प्रांगण विशाल।

भावी का अग्रदूत बन कर
ले आया समता, साम्यवाद;
जग - जग में उन्मद मदोन्माद;
मग - मग में कर्कश रण - निनाद।

वह रण - निनाद, जिसके स्वर ने
रे कँपा दिया ग्रह, तरणि, सोम;
हो गये कण्टकित वाणी से
जग - तनु - लतिका के रोम-रोम।

वह काल - रात्रि; रे प्रलय-रात्रि।
थी बनी हुई नगरी श्मशान;
तिमिरान्ध अमा का अन्धकार
घेरे था नर के विकल प्राण।

जब पड़े सिसकते रजीभूत
अम्बर - चुम्बी प्रासाद मूक;
सुन्दर महलों में देव - भोग्य
डोलते भूत, नाचते उलूक।

साँसत में जान डाल दी थी
आ - आ लहरों ने बार - बार;
छाया सब ओर निराला हो
चीत्कार, रुदन औ व्यथा-भार।

कितनी विधवाएं हुईं और
कितनी माता के मिटे लाल;
हो गये रंक कितने महीप;
कितने प्रभुता - शाली कँगाल।

अणु-अणु में भर- प्रलय - प्रकम्पन,
रज - रज में भीषण आन्दोलन,
जल - प्लावन - सा लोक-लोक में
उमड़ पड़ा यह किसका यौवन?

किस विद्रोही ने फूँकी यह
प्रतिहिंसा की रण - भेरी?
किस शनि ने असहाय जनों पर
अपनी कुटिल दृष्टि फेरी?

ओक - ओक में रे यह किसका
महातंक लोहित छाया?
जग का वात्याचक्र हिला—यह
किस मायावी की माया?

अहङ्कार

उठ मुक्त गान से गूँज, प्राण।
मैं मुक्त, मुक्त; रे मुक्त-प्राण।
पर्वत - प्रतीर मेरा विकास;
उपवन विहार, कानन निवास।
सरिता - समुद्र में मेरा ही
होता फेनिल लीला - विलास।

मैं धृष्ट, व्यर्थ विज्ञान - ज्ञान ;
उठ मुक्त गान से गूँज, प्राण !
अम्बर तो मेरा क्षुद्र ग्रास ;
खाता जब भव भी महात्रास !
हिलता थर-थर ब्रह्माण्ड-विश्व ,
मैं करता हूँ जब अट्टहास !
जनपद हो जाता मरु-श्मशान ;
मैं मुक्त, मुक्त; रे मुक्त-प्राण !

मैं चिर-विमुक्त; बन्धन-विमुक्त !
मैं चिर-विमुक्त;तन-मन विमुक्त !
मेरा अणु-अणु,कण-कण विमुक्त!
मेरा समस्त जीवन विमुक्त !
मैं आदि-अन्त; उद्गम-निदान !
उठ मुक्त गान से गूँज, प्राण !

मैं सदा - सनातन, चिर प्रबुद्ध ;
ओंकार, अनामय, अचल, शुद्ध !
सामर्थ्य भला किसमें ऐसा,
जो कर दे मेरा मार्ग रुद्ध !
निर्बल को करता शक्ति-दान ;
मैं मुक्त, मुक्त, रे मुक्त-प्राण !

मेरी ही ज्वाला से उदण्ड,
मार्त्तण्ड जला करता प्रचण्ड !
इंगित पर मेरे ही क्षण - क्षण
ग्रह होते रहते खण्ड - खण्ड !
मैं महा - अहंकारी, महान !
उठ मुक्त गान से गूँज, प्राण !

मुझको न विदित सत्पंथ - धर्म;
परलोक-लोक, आचार - कर्म !
मूर्खाधिराज, क्या तुम्हें पता
मेरे शास्त्रों का विकट मर्म ?
कैसा मेरी स्मृति का विधान ?
मैं मुक्त, मुक्त; रे मुक्त-प्राण !

पाखण्ड वेद - ब्राह्मण - पुराण ;
मिथ्या इंजिल-त्रिपिटिक-कुरान !
होते मेरे ही वचन स्वयं
रे मेरे कथनों के प्रमाण !
भगवान झूठ; मैं सत्यवान !
उठ मुक्त गान से गूँज, प्राण !

करता किंचित भी मैं न गर्व ;
विचरण विमुक्त ही पुण्य पर्व !
भिक्षुक - कंगाल जगत को मैं
सम्पत्ति लुटाता अर्ब - खर्ब !
सोने को मिट्टी के समान ;
मैं मुक्त, मुक्त; रे मुक्त-प्राण !

मैं सांख्य-सूत्र, उद्धत, स्वतन्त्र ;
आजानबाहु, मैं साम - मन्त्र !
उन्मद, प्रलम्ब, जगदावलम्ब ;
मैं प्रणव-नाद, मैं तड़ित-यन्त्र !
मैं अहंभाव, आत्माभिमान ;
उठ मुक्त गान से गूँज, प्राण !

मैं मुक्त, तपस्या - तप्त, धीर ;
आकाश - विहारी मुक्त कीर !
मैं मुक्त हृदय, मैं मुक्त प्राण ;
मैं मुक्त जीवनानन्द वीर !
मैं अद्वितीय; मैं युगोत्थान ;
मैं मुक्त, मुक्त;रे मुक्त प्राण !

हरिजन

रे कौन तुम्हें कहता अछूत ?
तुम तो हरिजन, पावन, उदार !
शुचि सुरसरि - से धो बहा रहे
युग - युग से जग का कलुष-भार !
तेरे ही विगलित करुणा - जल में
अवगाहन कर आज, मित्र !
हो पाया है इस स्वार्थ - अन्ध
वसुधा का मानस - तल पवित्र !

खुद फिर भी तुम अपवित्र रहे,
यह कैसा भीषण अनाचार !
रे कौन तुम्हें कहता अछूत ?
तुम तो गंगा की विमल धार !

ये जो सवर्ण द्विजवंश - श्रेष्ठ,
कह रहे तुम्हें प्रिय, वर्णहीन ;
क्या जानें, क्या है छुपा हुआ
तेरे इन वस्त्रों में मलीन !
ऊपर से जितना श्याम, अरुच ;
अन्तर उतना ही स्वच्छ, शुद्ध !
ओ तरुण तपस्वी, नत - मस्तक
है चरणों पर यह कवि प्रबुद्ध !

तुम लघु होकर भी हो महान ;
अपनी ही महिमा से अपार !
रे कौन तुम्हें कहता अछूत ?
तुम तो भारत के कण्ठहार !

कुछ बिखरे कण हो इधर - उधर
इस पुण्यभूमि के ही विशाल ;
हो चरण ; अरे—हाँ, वही चरण
झुकता है जिसपर जगतभाल !
तुम मा की फटी गूदड़ी के
हो मूल्यवान दुर्लभ्य लाल ;
होगी फिर जननी कौन नहीं
पाकर ऐसा ही सुत निहाल ?

कर रक्खा है तुमने अपने
प्यारे स्वदेश का उच्च भाल ;
रे कौन तुम्हें कहता अछूत ?
तुम तो माता के ललित लाल !

तुम स्नेह - दया की सजग ज्योति ;
तुम सेवाओं की सफल मूर्ति !
तुममें ही ईश्वर का निवास,
तुम ईश्वर की सच्ची विभूति !
रे तपी, युगों से सहते हो,
तुम कितने आपद - विपद - क्लेश ;
तुममें ही चित्रित आर्यों की
गत संस्कृति का भग्नावशेष !

अपने तप - बल से जगा रहे
उर में गौरव की दिव्य स्फूर्ति ;
रे कौन तुम्हें कहता अछूत ?
तुम तो प्रभु की सच्ची विभूति !

यह पतित, प्रताड़ित, दीन जाति
माँगती तुम्हींसे आज, भीख !
तुम क्षमाशील, कर क्षमा इसे
दे दो नवयुग की स्वर्ण - सीख !
पदतल में, देखो ; लोट रहा
यह अपने प्रायश्चित - स्वरूप ;

हे प्रणतपाल, भर गया आज
इसके पापों का अन्धकूप !

जल रही तुम्हारी ही नस में
हिन्दूपन की अब तलक ज्वाल !
रे कौन तुम्हें कहता अछूत ?
तुम तो करुणामय, प्रणतपाल !

तुमको बतला कर अधम, नीच
ये बने हुए हैं स्वयं हेय ;
तुम ज्ञानवान — इन मूर्खों के
हित रहे सर्वदा अविज्ञेय !
अब तक भी बची तुम्हारे ही
रक्तों में शुचितम आर्य - भक्ति ;
तुम कैसे बिछुड़ गये हमसे
ओ दलित देश की महाशक्ति !

हे ऋषि, हे योगी, आदिपुरुष !
कर रहे तुम्हारी वेद व्यक्ति ;
रे कौन तुम्हें कहता अछूत ?
तुम तो स्वदेश की महाशक्ति !

आओ, आओ; हम चिर - वियुक्त
भाई - भाई अब गले मिलें !
हो लाख - लाख एकत्र आज
आनन्द - उत्स में खिलें, हिलें !
हम पतित ; निरादृत किया तुम्हें ;
अब धो डालो यह तो कलंक !
आओ, हम सभी परस्पर मिल
डोलें जग में निर्भय, अशंक !

हम ऐक्य - सूत्र में बँध कर सब
भूलें पहले के दुर्विचार ;
रे कौन तुम्हें कहता अछूत ?
तुम तो मेरे भाई उदार !

तुम नवोत्साह की विपुल राशि ;
कितना तुममें साहस अदम्य !
यह पतित आज करता प्रणाम ;
हे बल्कलधारी ऋषि प्रणम्य !
तुम मेरे प्रभु के प्रीति - पात्र ;
शबरी, कबीर तुम गुह - निषाद !
अस्पृश्य हुए कैसे तुम ही
उसके प्रिय - मन्दिर में ?—विषाद !

ओ मुक्त, भूल जाओ सत्वर
मेरे अपराधों को अक्षम्य ;
रे कौन तुम्हें कहता अछूत ?
तुम तो बल्कलधारी प्रणम्य !

रूठो मत दुर्दिन में ऐसे ;—
लो मत उसाँस दुख - व्यथा - भरी !
अपने ही घृणा - पयोनिधि में
हो रही राष्ट्र की भग्न तरी !
तुम मार ठोकरें निर्मम बन
सोते - से कर दो होशियार !
इन भूदेवों को जरा आज
दे दो अपना पद - रज उदार !

वह वृद्ध भिखारी डोल रहा
झोली ले तव हित द्वार - द्वार !
रे कौन तुम्हें कहता अछूत ?
तुम तो स्वराष्ट्र के कर्ण - धार !

तुम शान्ति - शील के साधु - चित्र,
रे कौन तुम्हें कहता अछूत ?

कब उतरेगा शिर से उसके
यह छुआछूत का प्रबल भूत !
ओ भारत - नभ की विमल रश्मि ;
ऐ भारत - माता के सपूत ;—
कब होगी तेरी दया - दृष्टि,
ओ महाशान्ति के स्वर्ग - दूत !
बस, एक बार तो हो प्रसन्न ;
दे दो भक्तों को शुभाशीष !
रे कौन तुम्हें कहता अछूत ?
तुम तो योगीश्वर, युगाधीश !

२६३

सुन, क्या कहता वह प्रान्त ध्वस्त—
हो गया दिवाकर आज अस्त !
भारत - जननी का स्वर्ण - मुकुट
लोटता धूल में शिर से छुट;
लिच्छवी - गुप्त का यशस्तूप,
अब जल का विस्तृत झील, कूप !
रज में विलुप्त वैभव प्रशस्त—
सुन, क्या कहता वह प्रान्त ध्वस्त ?
चिन्ताकुल, मरणासन्न, त्रस्त ;
फिरता मानव - कुल अस्त - व्यस्त !
दुर्भिक्ष, महामारी - प्रकोप ;
सब ओर प्रलय, संहार, लोप !
नाचता दिगम्बर खड्ग हस्त—
सुन, क्या कहता वह प्रान्त ध्वस्त !
वह सजल, सुफल, श्यामल प्रदेश ;
अब मरु प्रान्तर दुर्जय अशेष !
खेतों में, खँड़हड़ में उजाड़
रोता सारा पीड़ित विहार !
हो गया दिवाकर आज अस्त—
सुन, क्या कहता वह प्रान्त ध्वस्त !

यौवनोन्माद

मैं उच्छृङ्खल, उन्मादी हूँ !
बैठ हिमालय की चूड़ा पर मैं तूफान बुलाता हूँ;
मेघों के कन्धों पर चढ़ कर ध्वंसक - स्वर से गाता हूँ !
सिंहनाद कर कूद अरे, पड़ता हूँ मैं सागर - जल में ;
सर्वनाश बन छा जाता हूँ मैं जगती भर में पल में !
साम्यवाद का घोर प्रचारक भीषण विप्लववादी हूँ
मैं उच्छृङ्खल, उन्मादी हूँ !

पतितों के कलुषित अरमानों को मैं धूल मिलाता हूँ ;
अनय - गगन में झंझानिल - सा मैं प्रचण्ड छा जाता हूँ !
विश्वोदधि के वक्षस्थल पर महा-प्रलय की करता सृष्टि;
मैं अजेय, युग - धर्म - गर्जना, महाकाल-सी मेरी दृष्टि!
मिटा कुशासन की सत्ता को लाता मैं आजादी हूँ !
मैं उच्छृङ्खल, उन्मादी हूँ !

महा मरुस्थल की छाती पर धू धू धक-धक जलता हूँ ;
बैठ चिता की लोहित लपटों में मैं आग निगलता हूँ !
नग्न नृत्य करता हूँ नभ में मृत्युञ्जय - सा मैं अविराम;
बाँध तोड़ बहता हूँ जीवन की लहरों में मैं उद्दाम !
सुमनों - सा सुकुमार नहीं; मैं पवि - कठोर, फौलादी हूँ !
मैं उच्छृङ्खल, उन्मादी हूँ !

जगत - त्राश मैं धूमकेतु हूँ; रण - विप्लव मदमाता हूँ !
उछल अन्तरिक्ष में तारों से जाकर टकराता हूँ ;
मिटा दिये दुनिया से कितने नरपतियों के नाम निशान;
मिला चुका हूँ रज में कितने आततायियों के अभिमान !
यौवन - मद से मत्त, निरंकुश, वक्र, प्रगल्भ, प्रमादी हूँ !
मैं उच्छृङ्खल, उन्मादी हूँ !

श्रद्धाञ्जलि

उस दिन हाँ, रे उस दिन ही तो आया था वह ज्वार;
मचल पड़ा था गली-गली में भीषण नर-संहार!
पीकर प्रतिहिंसा की मदिरा, हो उन्मत्त अपार
चमक उठी थी इसी कानपुर में खूनी तलवार!
सहसा वह आ वहाँ कहीं से बोल उठा ललकार—
"मतवालो, अपने कर्मों पर शर्म करो! धिक्कार!"

उस दिन हाँ, रे उस दिन ही तो बही रक्त की धार;
चारों ओर प्रलय के दिखलाई देते आसार!
बहुत दिनों के बाद नींद से जागे थे उस बार;—
हिन्दू और मुसलमानों के सोये-से उद्गार!
सहसा भीड़ चीर कर वह जोरों से उठा पुकार;—
"पतितो, बस अब बन्द करो यह नारकीय व्यापार!"

उस दिन हाँ, रे उस दिन ही तो दोजख की दीवार
तोड़, उमड़ था पड़ा हमारे अघ का पारावार!
खुदा और ईश्वर के पावन नामों पर दिलदार
जूझ पड़े उसके ही बन्दे आपस में खूँख्वार!
सहसा तत्क्षण आकर वह सिंहों-सा उठा दहाड़;—
"बदमाशो, रख दो फौरन ही तुम अपने हथियार!"

उस दिन हाँ, रे उस दिन ही तो विकट मची थी मार!
लाल-लाल हो गई लहू से गंगा की शुचि धार!
एक दूसरे के दुश्मन, मर-मिटने को तैयार—
टूट पड़े भाई-भाई पर भुला पुरातन प्यार!
सहसा उसने कहा धर्म के अन्धों से फटकार;—
"अरे, दुहाई पर मजहब की यह कैसी तकरार!"

उस दिन हाँ, रे उस दिन ही तो तज अपना परिवार,
सर पर कफन बाँध वह आया चला सरे-बाजार!
जब कि चतुर्दिक मचा हुआ था हाहा—हूहूकार;
नाच रहे थे नग्न पिशाचों के रक्ताक्त कुठार!
वह व्याकुल हो दौड़ पड़ा करने उनका उद्धार;—
"भाई, लड़ने के पहले लो मेरा शीश उतार!"

× × ×

कहा किसीने आहिस्ते से अरे यार, नादान!
मुफ्त-मुफ्त ही क्यों आफत में डाल रहे हो जान?
खिसक पड़ो चुपचाप यहाँ से, अब भी तो है वक्त;
हो आईं उस वीर-केशरी की आँखें आरक्त!
बस, चुप रहो; लगाऊँगा मैं कभी न कुल में दाग!
ये लड़ मरें; और मैं छिः! कायर-सा जाऊँ भाग?

होती थी ईंटों-छुरियों की सांघातिक बौछार;
भरती थी आतङ्क हृदय में असियों की झंकार!
उसने खुले बदन पर सहकर भी अनगिनत प्रहार
पैरों पकड़ मनाया सबको; किन्तु, सभी बेकार!
रुक न सका पल-भर भी को वह दारुण अत्याचार!
शस्त्रों के विकराल स्वरों में विफल हुए उद्गार!

उधर खून के प्यासे दैत्यों का था स्वेच्छाचार!
और इधर था प्रेम-दया का रूप एक साकार!
उठा किसीकी लाश, कहीं घायल को जतला प्यार,
डोल रहा था निर्विकार वह करुणा का अवतार!
मना रहा था उभय-दलों को सादर, बारम्बार;
आन पड़ा इतने में सर पर एक लट्ठ का वार!

फिर, क्या हुआ? अरे, मत पूछो फिर उस दिन का हाल;
चकराने लगता दिमाग आते ही उसका ख्याल!
हम पागल हो जाते, उठती हिय में हूक अचूक;
लोचन-पथ से गिरते दिल के हो-हो दो-दो टूक!
जलने लगते अंग-अंग; जीवन के राग-विराग!
रोम-रोम झुलसाने लगती सर्वनाश की आग!

स्मृति के अग्नि-कुण्ड में अब भी तड़प रही वह लाश!
भय-संत्रस्त काँपता थर-थर वैसे ही आकाश!
अरे, सुनो तो; हाँ, हाँ, अब भी वैसे ही बेपीर—
चट-चट करती चिता किसीका लेकर कुसुम-शरीर!
आया बन देवता, झगड़ता था जब पशु का वर्ग;
और, उसी पशुता पर बस, कर दिये प्राण उत्सर्ग!

× × ×

आज, वही तिथि अतिथि हुई है पुनः तीसरी बार;
हम पत्थर का बना कलेजा बैठे अपने द्वार!
खिँचती कुछ धुँधली रेखाएँ मानस-नभ के पार;
हम रह जाते सोत्सुक चारों तरफ निहार—निहार!

फिर भी तो हियरा - हियरा ही, वज्र नहीं; सुकुमार !
भीतर - ही - भीतर घुल - घुल कर उठता हाहाकार !

भुला चला था कुछ - कुछ विस्मृति - मदिरा का उन्माद;
आज, हमें पर, औचक ही आ गई तुम्हारी याद !
वह कराहती याद—हाय, वह सरस - सलोना रूप
भूल गया नयनों में बन कर ज्योतिः - किरण अनूप !
हरा - भरा हो गया पुराना फिर से दिल का घाव ;
डगमग डोल उठी तूफ़ानों में जीवन की नाव !

कहाँ मिलेगा जरा कहो तो, वह माता का लाल ?
पिता पुत्र का, भाई बहनों का, स्त्री का शुचि भाल ?
अरे, कहाँ वह अचल-हिमाचल - सा मुख-सौम्य, प्रशान्त ?
आर्य, तुम्हारे लिये आज हैं हम पागल, उद्भ्रान्त !
छाया घर - घर में दुख - क्रन्दन, छाया करुण विषाद !
कौन सुनेगा इस दुर्दिन की घड़ियों में फरियाद ?

रोता सारा शहर कानपुर; रोता है संसार !
देव, तुम्हारे लिये रो रहा आज, उजाड़ विहार !
सूना भीतर, सूना बाहर; सूना - सा घर - बार !
रोते हैं ये भाग्य हमारे मरघट में बेजार !
तुम निर्मोही चले गये हो हमसे कोसों दूर !
और, इधर देखो हम कष्टों से हैं चकनाचूर !

हाय, आज तुम रहे न कैसे स्वयं हमारे बीच ?
तुम्हें हमारे इस प्रांगण से कौन ले गया खींच ?
टकराती अम्बर से उठ - उठ दुखियों की आवाज;
सिसक रही लत्तों - पत्तों में माँ - बहनों की लाज !
ऐ अनन्त पथ - पथिक, वहीं से सुन लेना इक बेर;
अपने इन पीड़ित भक्तों की करुणोत्पादक टेर !

× × ×

उस दिन असुर वेश में आया था पापी भगवान !
नाच रहा था मानवता के मस्तक पर शैतान !
चाह रही थी रण - चण्डी भी आहुति एक महान !
तुमने झट अपने ही को कर दिया आह ! वलिदान !
हँसते - हँसते कर दी उस दिन पल - भर में कुर्बान;
हिन्दू - मुस्लिम - ऐक्य के लिये तुमने अपनी जान !
एक शिकन भी पड़ी न देखी आनन पर अम्लान !
उद्भासित स्वर्गीय तेज से रहे तुम्हारे प्राण !

भय क्या ? पीछे पैर हटाना तुम्हें न था ; मालूम ;
महामृत्यु के वीर ! बढ़ा दो; चरणों को लूँ चूम !
देगा युग - युग तक निश्चल हो नभ में अमर - प्रकाश
बिजली के वर्णों में जलता तव वलि का इतिहास !

जाओ देव, आज तो तुम हो जन्म - मरण से मुक्त !
हम संसारी झेल रहे दुख जीवों के उपयुक्त !
तुम्हें मर्त्य के पापों से क्या ? यह जग - जीवन वक्र;
चलता रहे युगों तक यों - ही आधि - व्याधि का चक्र !
हमें चाहिये सिर्फ तुम्हारी एक कृपा की कोर ;
कभी वहीं से झाँक लिया ही करो हमारी ओर !

जिस अंकुर को उगा रखा है आज हमारे बीच,
तुमने अपने महिमा - मय शोणित से यतिवर, सींच;
निश्चय ही वह कभी धरेगा तरु का रूप विशाल ;
और, उसीके तले बढ़ेगा विश्व - धर्म का बाल !
अमर - शहीद ! हमें दो अपना आशीर्वाद सहर्ष;
मार्ग - प्रदर्शक बने तुम्हारा अनुप्राणित आदर्श !

देव, हमारी आत्मा में भी भर दो अपना हास;
वह वलिदान - भावना सात्विक, उन्नत मरणोल्लास !
वर दो यह कि तुम्हारे पथ का पा नित रजप्रसाद ,
हम तोड़ें शृङ्खला, हो उठे विजय - शंख का नाद !
आर्य, तुम्हारी पुण्यस्मृति में श्रद्धाञ्जलि के व्याज,
सानुराग, सविनय नतमस्तक है यह कवि भी आज !

२६६

आज चंचला भारत - लक्ष्मी; उद्वेलित जग पारावार !
किया सव्यसाची ने खाण्डव में गाण्डीव धनुष-टंकार !
आई सर्वमंगला विजया करने पौरुष का संचार ;
उठ चिर सुप्त वीर, कर निर्भय महाकाश में रण-हुंकार !
आज, विजय - यात्रा-उत्सव में काँप उठे सारा संसार;
जाग वीर, युगधर्म जगाता; चल अनन्त - पथ में दुर्वार !

वन्दी का स्वप्न

अर्द्ध - निशा है, कारागृह है ;
और, यहाँ वन्दी सोया है !
दूर, दूर स्वप्नों के वन में
मन जैसे उसका खोया है !
नव - वसन्त आया है जग में ,
मलयानिल बहता है शीतल ;
और, निकट ही किसी वृक्ष पर
कूक रहा है कोकिल चंचल !

बाहर सन्नाटा है, भीतर
प्रहरी के बूटों की खट - खट !
उस दुनिया में बेहोशी है ,
इस दुनिया में है अकुलाहट !
गज - भर के कमरे हैं, जिनमें
जीवन की घड़ियाँ जलती हैं !
भय से धड़कन भी रुक जाती ,
कैदी की साँसें चलती हैं !

और, चाँदनी रात काँपती
वासन्ती झोंकों में उन्मन ;
हथकड़ियाँ करती हैं झन - झन ;
और बेड़ियाँ करतीं खन - खन !
काली मौत, कोठरी काली ;
काली दीवारों का घेरा !
काला मुँह, वर्दी भी काली ;
यह काले कैदी का डेरा !

वह कैसा है देश, जहाँसे
कोई भी सन्देश न आता ?
यह कैसा है नरक, जहाँपर
मर कर भी तो शान्ति न पाता ?
यह कैसी दुनिया है निष्ठुर ,
जहाँ न कोई भी है अपना !
आधी रात, विकट सन्नाटा ;
वन्दी देख रहा है सपना !

दूर, दूर कोई बस्ती है ;
एक फूस का घर कच्चा है !
और, एक विधवा - सी कोई ,
जिसकी गोदी में बच्चा है !
भूख लगी है शिशु को ,
थपकी देकर उसे सुलाती है मा ;
दूध नहीं स्तन में बच्चे को
कैसे जहर पिलाती है मा ?

माता के कपड़े मैले हैं
फटे; और बच्चा नंगा है !
रो - रो कर बच्चा सोया है ;
मा की आँखों में गंगा है !
वह उठ कर चर्खा ले आती ;
चर्खा करता है घन - घन - रन !
कहती शिशु का मुख विलोक वह-
'कब स्वराज्य होगा, हे भगवन !'

एकाएक जेल का फाटक
खुलता है झोंके आते हैं ;
भारत हुआ स्वतंत्र, खुशी में
कैदी सब छोड़े जाते हैं !
सुनना था कि बेड़ियाँ झनकीं ;
हथकड़ियाँ खनकीं, वे जागे !

जो थे जहाँ, वहीं से भागे
दरवाजे को तोड़ अभागे !

देखा, तो वह आसमान ही
नहीं, न वह पहला भूतल है !
चारों ओर विजय का उत्सव,
चारों ओर मची हलचल है !
क्या महलों में, क्या झोपड़ियों में
अनन्त सुख लहराता है !
और तिरंगा झंडा सबसे
ऊँचा नभ में फहराता है !

भारत का वह शिखर हिमाचल,
भारत की गंगा बहती है ;
सागर की लहरों पर भारत की
ही अब सत्ता रहती है !
आज तपस्वी ने वर पाया ;
फल पाया योगी ने व्रत का !
मैंने अम्बर के ललाट पर
नाम लिखा पाया भारत का !

देश - देश में, प्रांत - प्रांत में
वन - वन में, उपवन - उपवन में,
भारत का जय - डंका बजता,
तुमुल हर्ष-ध्वनि भवन-भवन में !
गिरि-गह्वर में, घर-बीहड़ में,
खण्डहरों में लगते नारे ;
यह मतवालों की टोली है,
ये स्वदेश के तरुण हमारे !

हँसी सभीके अधरों पर है,
चिर - प्रसन्नता सबके मुख पर !

अपना भारत, शासक अपने ;
अपना ही शासन सुख-दुख पर !
कोटि - कोटि कण्ठों के रव में
भाई - भाई से मिलते हैं ;
पेड़ों के पत्ते भी सुख से
विह्वल हो-हो कर हिलते हैं !

सर में कफन बाँध, जिसके हित
वन - वन में डोली तरुणाई !
सीना खोल तोप के आगे
चली झूम कर, गोली खाई ;
मरने को समझा जीना,
कारागृह में संसार बसाया !
हँसते - हँसते फाँसी,
कालापानी, निर्वासन अपनाया !

जिसके लिये पत्नियाँ भूलीं
पति को, औ बहनें भाई को !
अर्पण किया पुत्र जननी ने,
तरुणों ने निज तरुणाई को ;
जिसके हित लाखों घर उजड़े,
लाखों घर वीरान हुए हैं ;
तिल-तिल कर मिट गये हजारों,
लाखों ही वलिदान हुए हैं !

वह आजादी, वही मुक्ति मिल
गई हमें, जो चिर-वाँछित थी ;
आज, जाति का शिर उन्नत है,
पदमर्दित थी, जो लाँछित थी !
यह स्वतंत्र भारत है विजयी,
यह भारत स्वाधीन हमारा ;

देश हमारा, राज्य हमारा,
भारतवर्ष नवीन हमारा !

पराधीन भारत के वन्दी
अब स्वतंत्र भारत में आते ;
स्थान - स्थान पर जन - समुद्र
कोलाहल करते, हर्ष मनाते !
बजता मंगल - शंख, विजय—
चीत्कार दिशाओं में छाया है !
पुष्पों की वर्षा होती है,
युवकों की पुलकित काया है !

दूर किसीके कानों में यह
समाचार मंगल जाता है !
उसकी आँखें भर आती हैं,
उसका अन्तर अकुलाता है ;
वह उठती है, द्वार खोल कर,
शिशु को दौड़ जगा देती है ;
और न जानें किस आशा में
उसको चूम, उठा लेती है !

नगर - नगर में उत्सव होता,
स्थान-स्थान पर होता जमघट ;
पूजा और आरती होती,
गाँव - गाँव में उसे रुकावट !
उसे एक ही धुन है लेकिन,
जल्दी - से - जल्दी पहुँचे घर ;
खींच रहे पत्नी के आँसू,
बुला रहा शिशु का क्रन्दन-स्वर !

सहसा लगती है ठोकर - सी,
मस्तक तत्क्षण चक्कर खाता ;
खुल जाती हैं भींगी आँखें,
स्वप्न - भंग उसका हो जाता !
देखा, यह कारा है, जिसमें
साँसों का घर्घर होता है !
प्रहरी गिनता है वन्दी के
नम्बर औ वन्दी सोता है !

२६८

बहाओ अब न नयन-जल-धार ;
आज, तुम्हारे कोटि-कोटि सुत करते जय-जयकार !
रोतीं क्यों करुणार्द्र - स्वरों में तमसा-गृह में शून्य ?
उठो, करो अपने वीरों का मरण - समर - शृङ्गार !
आज, मिटेंगे हम या मिट जायेगा अत्याचार ;
इधर तपस्या और साधना, उधर तोप - तलवार !
शंका क्या कुछ तुमको मेरे वलि - भावों में पूत ?
आज, झुकेगा सत्य - त्याग - श्री - चरणों पर संसार !
विफल नहीं हो सकतीं ये आहुतियाँ, प्राणोत्सर्ग ;
विजय - वेश में पुनः मिलेगी जन्म - जन्म की हार !
युग-युग का अधिकार मानवों का पुकारता आज ;
स्वर्ग - लोक - सा हो जायेगा प्यारा कारागार !
अन्धकार के यात्री, हम अब खोजें क्यों न प्रकाश ?
मुक्त करेंगे ये ही वन्दी मुक्ति - दुर्ग के द्वार !

२६९

सिसक रही किस दुख से ? यों तू कातरता से क्यों रोती ?
अधरों पर विषाद की रेखा; नयनों में देखा मोती !
महानन्द की घड़ियों में ये बादल दुर्दिन के छाये !
क्यों न आज फिर मेरी इन आँखों में खून उतर आये ?
तू रोए, मैं चुप बैठूँ ; यह कैसे होगा ?
तोडूँगा तेरे बन्धन, मा, जैसे होगा !

मैं कहता हूँ

मैं कहता हूँ, तू चुप हो जा ;
अब अपनी बातें रहने दे !
कुछ सुन मेरी भी आज, मुझे
भी अपने मन की कहने दे !
इतने दिन तूने मुझे सता
दुख सहने को लाचार किया ;
अब मैं सँभला हूँ, सावधान;
तू मुझे न संकट सहने दे ।
मैं क्या लूँ तुझसे ओ कायर,
अपने अपमानों का बदला ;
साक्षी हो आज जगत, देखे
दुनिया मुझको मखमलवाली ।
मैंने किस युग से प्राणों में
यह काँटों की पीड़ा पाली ।

मैं कहता हूँ, मैं तो तेरे
हित कुली और मजदूर हुआ ;
मेरा चिराग गुल हो मेरे
घर से ही कोहेनूर हुआ ।
अपनी किस्मत की ईंटों से
प्रासाद बनाये मैंने जो,
तू उनमें क्रूर ! बिता जीवन
ऐश्वर्य - विभव से चूर हुआ ।
यह ताजमहल, वह लाल किला;
मीनार कुतुब का नभचुम्बी !
सब मेरे हाथों से विरचित ;
मैंने सबका निर्माण किया ।
दे तुझे अमृत का कलश, स्वयं
मैंने तो विष का पान किया !

मैं कहता हूँ, तेरा नन्दन
मेरे आँसू से हरा हुआ ;
तू देख जरा, कैसे मेरा
सीना दागों से भरा हुआ !
पी हृदय—रुधिर मेरा कहता
तू लाल - सुरा को अंगूरी,
तू ठुकराता, मैं खुद तेरे
पैरों के ऊपर पड़ा हुआ !
मैं पिसता—आह, कराह रहा
तेरे सिंहासन के नीचे ।
तेरी मुस्कान गजब, करती
तेरी वीणा झंकार जहाँ ;
मेरे आँगन में होता तब
उस रोज मरण-त्यौहार वहाँ ।

मैं कहता हूँ, रे अभिमानी !
इतना तू आज गरूर न कर ;
मैं तुझे प्यार करता, मुझको
नजरों से अपनी दूर न कर !
मैं भला चाहता हूँ तेरा,
तकरार पसन्द नहीं मुझको !
भाई पर हाथ उठाने को
नाहक मुझको मजबूर न कर !
तू मिट्टी में मिल जायेगा ;
आखिर, तुझको भी पछताना !
पानी की चोट उठा कर जब
घिस जाता पत्थर का दिल भी;

तू तो इन्सान, भला ताकत
तेरी क्या, जो न सके हिल भी!

मैं कहता हूँ, तू बहस न कर;
है मेरे उर में भी हलचल !
तू दिखा न मुझको तोप-तीर ;
अपनी सेना का रण-कौशल !
मेरे मुट्ठी - भर प्राणों में
जो बल, जितना है दुस्साहस;
ये दुर्ग विफल ; बन्दूक व्यर्थ,
उसके सम्मुख पशु-शक्ति विफल!
गम्भीर जहाँ मैं वारिधि-सा ;
मैं प्रलय-रुद्र सा क्षुब्ध, वहाँ !
जब कसमस मेरे कर करते,
होता राज्यों में संघर्षण !
ले पता लगा इतिहास देख,
मैं कौन और कितना भीषण !

मैं कहता हूँ, दुनिया बदली ;
मुझको दुनिया में जीने दे !
मैं प्यासा हूँ; ला, मुझको भी
थोड़ा - सा पानी पीने दे !
मैं भूखा हूँ; ज्यादा न सही;
बस, मेरी भूख मिटा दे तू !
मैं नंगा हूँ ; मुझको अपना
यह फटा चीथड़ा सीने दे !
तू कब देगा मुझको कपड़े ?
खाने को सत्तू या रोटी ?
मैं माँगूँ अब चीजें कितनी,
यह तो मेरा ही हक ठहरा ;
पर, सुनें कान जब तो तेरे;
तू तो प्रभुत्व—मद से बहरा !

मैं कहता हूँ, आखिर दिल ही
है मेरा भी—पाषाण नहीं ;
ले सता गरीबों को, लेकिन
उस दिन तेरा कल्याण नहीं !
ये मस्जिद औ मन्दिर तेरे ;
तेरा ही न्यायालय सारा !
तू जिसकी नित जपता माला,
वह तो मेरा भगवान नहीं !
मैं किसे पुकारूँ, कहूँ किसे ?
फरियाद सुनेगा कौन यहाँ ?
तू जिसे स्वर्ग कहता, पागल,
यह तेरी नृत्य - सुरा—शाला !
तू ठहर, एक दिन उसे भस्म
कर देगी अन्तक की ज्वाला !

मैं कहता हूँ, मैं बोलूँगा ;
मुझको तू सकता रोक नहीं !
मेरा मुँह बन्द किया किसने ?
मुझको मरने का शोक नहीं !
मैं मौन रहूँ कैसे इस क्षण ?
अभ्यास नहीं चुप रहने का !
मैं विष उगलूँगा, क्योंकि यहाँ
मेरे घर में आलोक नहीं !
तू मार नहीं थप्पड़, निर्मम !
मैं और जोर से गाऊँगा ;
मैं स्वयं जगा हूँ, औरों को
चिल्ला कर चीख जगा दूँगा !

जंजीर तोड़ मैं कैदी की
कारा में आग लगा दूँगा !

मैं कहता हूँ, मत छेड़ मुझे;
मैं आज बना हूँ मतवाला !
मैंने कितनों के मुकुट छीन
दारुण उत्पात मचा डाला !
जब तेरे महलों पर बिजली
की ज्योतिशिखा करती जगमग;
रोता है तम के पर्दे में
मेरे जीवन का पट काला !
विद्रोही मुझको बना दिया
तूने ही,—दोष नहीं मेरा;
मैं आज उलट दूँगा जग को,
मैं उलट चुका हूँ उसको कल !
कंकाल - वक्ष में लेकर मैं
चलता अंगारों का सम्बल !

मैं कहता हूँ, दे दे तत्क्षण
मेरा सारा अधिकार मुझे;
मेरे मकान, मेरी दौलत;
मेरा शासन, संसार मुझे !
ओ रहम, संगदिल ! लहरों में
बसता परिवार प्रवासी जो;
तू बुला भेज, कर दे वापिस
वह प्राणों का आधार मुझे !
इन खेतों में बोऊँ मोती,
लग जाय ढेर खलिहानों में !
मेरी जमीन तू लौटा दे,
कर खाली मेरा धरणीतल;
आकाश मुक्त कर दे मेरा,
तू खोल महासागर का जल !
मैं कहता हूँ, सच कहता हूँ,
अब बारी मेरी है आई !
मेरी चालों में अलमस्ती,
है आँखों में सुर्खी छाई !
कवि, गौरव-गीत सुना; अब तो
मेरा झण्डा फहरायेगा !
मेरी झोपड़ियों में सस्मित
है आज विजय-लक्ष्मी आई !
आँधी को कैद किया किसने ?
तूफान बँधा कब शीशे में ?
है चक्र सुदर्शन हाथों में,
कंधों पर पड़ा हलायुध—हल !
अब तेरे दिन बिगड़े भाई,
मैं कहता, मुझसे बच कर चल!

२७१

कौन सुनेगा ? किसमें बल है ? मेरा यह कठोर अभिशाप !
कौन सँभालेगा सहर्ष यह युग युग का दारुण सन्ताप ?
अरे, तनिक तू सोच समझ कर सुनना मेरी कटु हुंकार ?
तीरों-सी चुभ जाँय तुम्हारी छाती में न कहीं सुकुमार !
चौंको मत, सिहरो न आज, सुन मेरे ये दिग्विजयी गान !
छेड़ रहा हूँ रुद्र-कण्ठ से मैं अपनी मतवाली तान !

२७२

तेरे लिये आज अपने सुख का बलिदान करूँगा मैं !
जगती के सारे प्रलोभनों का अपमान करूँगा मैं !
हँसते-हँसते चरणों पर जीवन कुर्बान करूँगा मैं !
हृत्तंत्री के तारों पर तेरा यश-गान करूँगा मैं !
क्षण ही भर में मिट जाऊँगा तेरे एक इशारे पर !
बिक जाऊँगा मा, तेरे इन नयनों के जल खारे पर !

नवीन के प्रति

ओ तुम लक्ष - लक्ष युवकों के जीवन, प्राणाधार !
ओ तुम महानाश की भट्ठी के ज्वलन्त अङ्गार !
ऐ गणेश की गत संस्मृतियों के प्रतिरूप नवीन ;
ओ तुम भारत और भारती के मुकुटालंकार !

किस प्रदेश में, किन कुंजों में कहाँ छिपे हो आज ?
दलित हुआ हा ! दस्यु - दलों से आजादी का राज !
देखो, इस सूनी कुटिया के कोने में तमपूर्ण ;—
तड़प रहा है अश्रु - कणों पर वह काँटों का ताज !

भूल रही सुख की घड़ियों को मा बेटे की पीरों में !
लखती भावी बहू भाल की उन बेदर्द लकीरों में !
इसमें दोष किसीको दें क्या ? हम ही हैं हतभाग्य महा;
तुम - सा वीर - केशरी जकड़ा लोहे की जंजीरों में !

जरा, बता दो; अरे, हुई कब हमसे ऐसी चूक ?
जो तुम हाय किये देते हो अन्तर के दो टूक !
तुम हो इतनी दूर जेल में, हमसे कोसों दूर ;
फिर क्यों आज अचानक ही उट्ठी है हिय में हूक ?

आँसू किसपर ? सूखीं ज्वालाओं से मोती की लड़ियाँ !
सपने में झलक दिखा जातीं आशाओं की फुलझड़ियाँ !
सिकचों से टकराती आ - आ तौकों की आवाज ;
कैदी, कौन सदाएं ये लाती हैं बेड़ी - हथकड़ियाँ ?

कभी सुना था विप्लव - गायन के स्वर में वह राग ;
धधक उठी थी धक - धक कर जब सर्वनाश की आग !
देखा था जिसका रण - ताण्डव मृत्युञ्जय - सा नग्न ;
आज, उसीको कैसे रे जीवन से हुआ विराग ?

खनक उठा अकुलाहट का यह हिय में विषम तार कैसा ?
कफन बाँध चलनेवाले राही को प्रेम - प्यार कैसा ?
कैसी हार ? कहाँसे आया राशि - राशि अनुराग ?
एक सिपाही को ममता—पीड़ा का पुरस्कार कैसा ?

चमका था जो रवि - किरणों - सा ज्योतित कभी हजारों में !
गूँज उठी थीं जिसकी तानें दुनिया के बाजारों में !
मुर्दे भी जी उठते सुन कर जिसके हुंकार उद्धत ;—
सोया है बेखबर आज वह खुद ही हाय मजारों में !

मैखाना बन गया तुम्हारा प्यारा आज जेलखाना !
उमड़ रहा कूजे में सागर, छलक रहा है पैमाना ;
चिनगारियाँ कौन हाथों पर दे मय की बेहोशी में ?
वर्दी ही बन गई नम्बरों—वाली केसरिया—बाना !

होतीं नित्य वहाँ भी जब ऋतु - क्रीड़ाएं न्यारी-न्यारी !
झाँक झरोखे से जाती है रवि - शशि - छवि बारी - बारी !
क्यों न तुम्हारे ही शब्दों में मैं भी उठूँ पुकार ?—
"ओ सरकार ! थाम दो, हाँ ये रस-फुइयाँ प्यारी-प्यारी !"

निकल शर्वरी से आती है शरत-पूर्णिमा बाल ;
रुन - झुन, रुन - झुन करता कानों में नूपुर का ताल !
यह कैसी रे टीस ? ठेस, यह कैसा हृदयोन्माद ?
पिला कौन साकी जाता अंगूरी मदिरा लाल ?

आती तुमको याद किसीकी कभी न यौवन - रस - बोरी ?
इस परवशता - डोरी में गाओ न सुलाने की लोरी !
हम रोते बेजार और तुम जाओगे उस पार !
ना भैया, हम आज रोक रक्खेंगे तुमको बरजोरी !

उतर चुका है एक बार जो धौंसों की धुधकारों में ;
उसे मजा क्या खाक मिलेगा वीणा की झंकारों में ?
इसीलिये तो खोज रही हैं ये उत्सुक आकुल आँखें ;—
किसी पूर्व - परिचित सैनिक को कारा की दीवारों में !

खड़ी हुई हैं बहनें ले, कर में पुष्पों का हार ;
उमग रहे मतवाले भाई के असीम उद्गार !
पूछ रहे हैं सभी परस्पर पथ में बारम्बार ;—
कब होगा मधु - प्रात ? खुलेगा कब कारा का द्वार ?

आओ, आओ; कब से हम कुछ सुनने को बैठे तैयार !
इन निर्जीव शिराओं में फिर बहे आज बिजली की धार !
रुद्ध गीत की क्रुद्ध तान वह निकले अन्तर्तम से क्षुब्ध;
उथल - पुथल मच जाय, हिलोरों में डूबे सारा संसार !

फरियाद

लड़ें लड़ाई खद्दरवाले; और जेल में बन्द हुआ मैं !
मरी लुगाई; फिक्र मुझे क्या ? घर जन से स्वच्छन्द हुआ मैं !
जुल्फें क्या रक्खी हैं मैंने सरपर, मिसरीकन्द हुआ मैं !
नाच और होटल से भागूँ, ऐसा भी क्या मन्द हुआ मैं ?
बिके मोल कौड़ी के भाई, मेरा वह ईमान नहीं रे !
मूँछें कतर शान की खातिर लूँ, वह मैं इन्सान नहीं रे !

गंगा यमुना के संगम पर बसा हुआ बाजार किसीका
सात समुन्दर पार चमकता मरघट में व्यापार किसीका
डूब रहा चुल्लू भर पानी में अपार संसार किसीका !
तड़प-तड़प मर रहा कंटकों के वन में दिलदार किसीका !
दूकानों में मैं फिरता बेचता चाय-कोकीन नहीं रे !
धोती भी पहना दे कोई, मैं ऐसा शौकीन नहीं रे !

आता ए बी भी न प्रेम का, और बनेंगे प्राण-पियारे।
टाकी खेल नहीं है हजरत, रटते कितने शेर पहाड़े !
तुम भी क्या अजीब अहमक हो समझ न पाते चन्द इशारे
जेब नहीं देता भाई रे पैरों में पाजेब तुम्हारे !
इस चन्दे का फन्दा छोड़ो; मिलता क्या न दूसरा पेशा ?
अरे, यहाँ तो चाँद-सितारे ही भरते हैं गोद हमेशा !

खिड़की खोल सड़क पर झाँको,गिनो शहर में कौन उचक्के
काशी औ मक्के में खाते कौन धरम के मुक्के धक्के ?
कच्चे-पक्के छत के नीचे करते हैं पौबारह छक्के !
ताक रहे मुँह चेले गुरु के हुक्के पीकर हक्के-बक्के !
मुझे न ऐसा उजबक समझो, बन्दर-घुड़क डरानेवाले !
सुना नहीं क्या ? अरे, मर गये कब के ऊँट चराने वाले !

खुदगरजी की अन्धी दुनिया, ईश्वर का औलाद मरा है !
किसे खबर है कितने भूखे ? कौन खेत बरबाद पड़ा है ?
सुना जहाँ कल, अभी वहीं तक ज्यों का त्यों इन्क्लाब अड़ा है
तीर्थराज के वक्षस्थल पर आज इलाहाबाद खड़ा है !
गर्दभ-राग अलापूँ कैसे ? दिशा-पन्थ का ध्यान नहीं रे !
परिचित नहीं वर्ण परिचय से; ह्रस्व-दीर्घ का ज्ञान नहीं रे !
दूध तुम्हारे कुत्ते पीते, हमलोगों को जुड़े न मट्ठा !
भट्ठा धरा तुम्हींने झींटा हमसे एकड़-बीघा-कट्ठा !

हम हट्ठे के बैल, पीठ पर पड़ा कई लट्ठों का घट्ठा !
करो हँसी-ठट्ठा औरों से, सँभला अब उल्लू का पट्ठा।
फैशन का बाजार गरम है; वह गुलशन गुलजार नहीं रे !
शेर दहाड़ रहे पिंजड़ों में; मैं वह मक्खी-मार नहीं रे !

नहीं शिवाजी,तो क्या ? बन कर देखो तैमुर लङ्ग सही तो
अजी ढालते कभी नहीं,तो भय क्या ? छानो भंग सही तो
एक राह मन्दिर-मस्जिद की, रंग न हो बदरंग कहीं तो !
करो निकाह जहाँ जी चाहे, मचे न हाँ हुरदङ्ग कहीं तो !
खोजो भले, मिलेगा मेरा किन्तु, कहीं उपमान नहीं रे !
मेरी राह निराली, जिसकी कोई भी पहचान नहीं रे !

२७५

मा, वसुन्धरा के आँगन में—

नित प्रति कलियों के खिलते-ही,
चकवा-चकई के मिलते-ही,
ले सोने की थाली कर में
कौन मन्द-गति आता है ?
अरुण-जाल फैलाता है—
कर जाता है बाल-पल्लवों
का चुम्बन सुकुमार;
हृदय से लगा, जता प्रिय-प्यार !

फूल फूल उठते हैं मन में,
कंचन-किरणासार—
छेड़ जगा देता है स्वप्निल
वसुधा को तत्काल,
प्रकृति-वधू के गालों पर
मल देता लाल गुलाल !
कौन वह मायामय आ, नित्य
कहो मा, कर जाता यह कृत्य ?

प्रलयनट

ताण्डवकर हे, हे प्रलयंकर।
काल - रुद्र, नटराज, भयंकर।
नाच, नाच ओ विरूपाक्ष, कर
नयनोन्मेष अमूर्त्त निमिष-भर;
पाप - पंक - कर्दम जगती यह,
दुराचार, दुर्नीति, दुराकर।
द्वेष - कलह - प्रतिहिंसा - ईर्ष्या,
स्वार्थ-गलित, पय-पलित वृकोदर।
कंचन - काम - कामिनी - लीला,
विभव - विलास, बुभुक्षा अक्षर।
उठ उद्धत, हुंकार भरे तू;
लात मार तोड़े आडम्बर।
कटे यन्त्रणा - पाश युगों का,
मोह - जाल हट जाये सत्वर।
जले विश्वका अणु-अणु, कण-कण;
चले कल्प - चल - चक्र निरन्तर।
आज देवता मृत्यु - पिपासित,
भर दे रणचण्डी का खप्पड़।
उड़े धूल, हो शूल फूल - सम;
कोमल कठिन, असुन्दर सुन्दर।
ताण्डवकर हे, हे प्रलयंकर;
काल - रुद्र, नटराज, भयंकर।
शृंगी फूँक, बजाओ डमरू;
डिमिक-डिमिक-डिमि,डम-डम-डमडम।
नाच, नाच नटराज, नरान्तक।
छमक-छमक-छम, छम-छम-छम-छम।
अट्टहास कर, सर्वनाश - कर।
हर-हर नाद बोल बम-बम-बम।
भसम रमा - रम, रम मसान में
ताल-ताल पर धम-धम-धम-धम।
रण-रण-रण-रण करे रुद्र - रण,
घण्टा - ध्वनि विकराल भयंकर;
सिहरे शशि-किरीट, अहि-कुंडल;
जटा - जूट में गंगा थर - थर।
बरसे वज्र, बिजलियाँ टूटें;
शंखनाद हो वन का मर्मर।
पावक बने महावर - जावक,
मलय - पवन हो जाय बवण्डर।
तूर्यनाद हो कुहू - काकली,
जहर बने कल्लोल - विनिर्झर।
ताण्डवकर हे, हे प्रलयंकर।
काल - रुद्र, नटराज, भयंकर।
विष पी, विष पी ओ प्रलयंकर,
बोल-बोल बम-बम-बम, हर-हर;
हर-हर-हर-हर-मय त्रिलोक हो,
जलचर-नभचर, निखिल चराचर।
खोल त्रिलोचन उग्र, कपाली;
श्वेत-दर्प—विस्फीत भाल पर।
माँग छिन्नमुण्डा से भिक्षा
परशुपाणि, अपनी कंथा भर।
आज राज - पथ पर जीवन के
छाये घटाटोप अँधियाली;
थिरके कार्तिकेय, गणनायक;
महाशिवानी दे करताली।

विद्रोही की भृकुटि - भङ्ग हो,
अंकित रक्त - चरण की लाली !
झाँके घन - निशान्त में उदयन
सुप्रभात का फिर करमाली !

फटे कुहा का उहापोह, मरु—
भूमि बने सुरसरि—सी उर्वर !
ताण्डवकर हे, हे प्रलयंकर;
काल - रुद्र, नटराज, भयंकर !

सूखे वारि महासागर का;
व्योम जलधि बन कर लहराये !
उगलें आग दिशा - विदिशाएं;
अमृत हलाहल - सा हो जाये !
भूकम्पन हो, जल - प्लावन हो;
नभ में प्रलय - जलद घिर आये !
फाटे धरा, सितारे टूटें;
ज्वालामुखी गरुड़ बन धाये !

एक - एक कण अग्नि - पिण्ड हो,
उल्कापात, विनाश - विपर्यय !
पिघले सोम मोम - सा, दिनकर—
मण्डल वाष्प-सदृश हो द्रुत क्षय !
ओ मृत्युञ्जय, जटा पटक तू;
वीरभद्र पैदा हो दुर्जय !
प्रेत - पिशाच, भूत - यम - दानव,
करे नृत्य वैतालिक निर्भय !

रन्ध्र - रन्ध्र में घूर्णि - मन्द्र हों,
छिद्र - छिद्र से झंझा झर्झर;
ताण्डवकर हे, हे प्रलयंकर !
काल - रुद्र, नटराज, भयंकर !

हाहाकार व्याप्त हो जग में;
आज दग्ध चन्दन का वन हो !
भरी धरा हो त्राहि - त्राहि से,
एक रुदन हो—खर क्रन्दन हो !
च्युत हो सुनाशीर नन्दन से,
कुण्ठित सुर - असुरों का मन हो;
आग लगे अलका में, नभ से
दिङ्नागों का अधःपतन हो !

रहे न नूतन और पुरातन,
कुछ भी आज प्रपंच - जगत में;
एक नियम, उपनियम एक हो,
एक रागिनी ग्रीष्म - शरत में !
ज्वाला फूँक कपट - छल मत में,
विविध धर्म, पूजा - विधि - व्रत में;
परम्परा की परिपाटी कर
लुप्त, सकल अनुगति अनुगत में !

मुर्दे जगें, जागते दौड़ें;
उठ बैठे कायर नर पामर !
ताण्डवकर हे, हे प्रलयंकर;
काल - रुद्र, नटराज, भयंकर !

नष्ट - भ्रष्ट हो यज्ञ दक्ष का,
करो याद नन्दी के प्रण की;
होम - हुताशन जले कुण्ड में,
आहुतियाँ हों नर - ईंधन की !
लाद सती का शव कन्धे पर
परिक्रमा कर भुवन - भुवन की;
आज प्रजापति का हिय काँपे,
सिहरे आत्मा शेष - शयन की !

लोटे वर - फणीश भूतल पर ,
आवाहन कर भैरव—रण का ;
जल जायें आँखों के आँसू !
चमके क्रोध युवा - लोचन का !
धर अंगार हथेली पर तू ,
पौरुष जाग उठे यौवन का ;
अँगड़ाई ले क्रान्ति कराली ,
सिंहनाद कर उठे निधन का !

खिँच आये ललाट पर रेखा ,
तन में चुभे विषम - तम जब शर ;
ताण्डवकर हे , हे प्रलयंकर !
काल - रुद्र, नटराज, भयंकर !

चमका चपल त्रिशूल भयानक ,
लोक - लोक में ओ त्रिपुरारी ;
धधका धधक नरक की ज्वाला ,
फूँक चिता में तू चिनगारी !
मुखरित हो मरघट जय - रव से ,
जाग - जाग बाघम्बर - धारी ;
वक्षस्थल रुद्राक्ष - रुणित हो ,
चन्द्रचूड, ओ भव - संहारी !

ध्वंस - राग हो आज अधर पर ,
उर - प्रदेश को कुलिश बना दे ;
शान्ति भग्न हो विश्व - देव की ,
उठा वेणु, गायन वह गा दे !
नाच, नाच ऐ महा - महेश्वर ;
वह रण - त्राटक मंत्र सिखा दे !

एक बार, हाँ, एक बार फिर
मदन - दहन का दृश्य दिखा दे !

गूँजे गुहा, लक्ष्य - च्युत ध्रुव हो ,
चपल मेरु, नक्षत्र, धराधर ;
ताण्डवकर हे , हे प्रलयंकर !
काल - रुद्र, नटराज, भयंकर !

नाच, नाच ओ अनिल-अनल में ,
जल-थल, वन-पर्वत, कण-कण में ;
अतल - वितल - पाताल - तलातल ,
स्वर्ग - मर्त्य - गोलोक - गगन में !
मन में, उर में, अंग - अंग में ;
रोम - रोम में, शिरा - शिरा में ;
गरज - गरज ओ हे अविनाशी ,
कवि - मूर्धा में, कण्ठ - गिरा में !

तमक नाच तू, छमक नाच झुक ,
झमक-झूम झकझोड़ नाच तू !
इधर नाच ओ, उधर नाच कुछ ;
इधर - उधर, सब ओर नाच तू !
नाच - नाच बस, नाच - नाच रे ,
सुलगा दे कालानल अन्तक !
लाँघ चले मतवाला यौवन
झील - नदी - नद, खाई-खन्दक !

भर जाये उन्माद हृदय में ,
मर जाये स्मर, लम्पट-घस्मर ;
ताण्डवकर हे , हे प्रलयंकर !
काल - रुद्र, नटराज, भयंकर !

नटखट

साहब था वह एक निराला,
बड़े शौक से बंदर पाला।
बंदर भी था काफी मोटा,
पेट हुआ था जैसे लोटा।
हरदम उसको पास बिठाता,
जब खाता तब उसे खिलाता।

एक रोज साहब खा-पीकर
लेटा था सुख से कुर्सी पर।
गर्मी के दिन थे, ऊमस थी;
और हवा भी तो नीरस थी।
तब उसने कुर्ते को खोला,
बंदर से साहब यों बोला—
'लड़कों से इस तरह न खेलो,
मैं सोता, तुम पंखा झेलो।'

आँखों में कुछ यों समा गई,
लेटे-लेटे नींद आ गई।
पंखा चला रहा था बंदर,
था न दूसरा घर के अंदर।
इतने में ऊपर से उड़कर
आई मक्खी एक वहाँ पर।

कुछ भी परवा कर न अदब की
नाक देख ऊँची साहब की।
चुपके बैठ गई भन-भनकर
वह धीरे-से वहीं, उसी पर।
देखा मक्खी को बंदर ने,
उछल कूद कर लगा बिगड़ने।

उड़ा दिये पंखे से झटपट,
मक्खी भी थी पूरी नटखट।
उड़ कर बैठ गई फिर आकर,
तब बंदर झपटा मुँह बाकर।
खा जाएगा उसको जैसे,
हारे मक्खी से वह कैसे?

लेकिन खाने के पहले ही
मक्खी उड़ी घड़ी-भर में ही।
पर क्यों मक्खी ही माने अब?
बंदर से वह जाए क्यों दब?

पहुँच गई वह फिर भन-भनकर,
बैठी कुछ इस बार सँभल कर।
उड़ा दिया फिर भी बंदर ने,
फिर मक्खी आ गई झगड़ने।
यों ही बार-बार वह आती,
भग कर फिर फौरन उड़ जाती।
उड़ी न जब इस भाँति उड़ाए,
बंदरराम बड़े घबड़ाए।

दाँत निकाले, हाथ बढ़ाया,
'चें-चें' कर सिर को खुजलाया।
आँख नचाई, भौं मटकाई,
कौन बला यह उड़ कर आई?
फिर सोचा कुछ अपने मन में,
और उठा, वह झपटा क्षण में।
भारी एक लट्ठ ले आया,
हाथ एक भरपूर जमाया।
मक्खी प्राण बचा कर भागी,
साहब की थी नाक अभागी।
टूटी नाक, खोपड़ी फूटी,
तब साहब की आदत छूटी।

नव-वसन्त

हे नव वसन्त, अभिनव वसन्त !
प्रति वर्ष हर्षयुत आ - आकर
जगती के प्राणों में अभङ्ग
तुम भर देते हो प्रचुर - प्रचुर
नूतन तरङ्ग, नूतन उमङ्ग !
उल्लसित सृष्टि के हासों में
मलयानिल मृगमद का सुवास
फल - फल में, फूलों - फूलों में
फैला देता परिमल - प्रकाश !
खिल उठना नलिन-विलोचन-सा
प्रातः - सुषमा में दिग्दिगन्त;
ऋतुराज, तुम्हारे ही सहचर
विहगों के कलरव से अनन्त !

हे मृदु वसन्त, मोहक वसन्त !
युग - युग से ऐसे ही पधार
कर नियमित विह्वलता - विमूढ़
अणु-अणु में करते हो किसकी
छवि का तुम अनुसन्धान गूढ़
कोकिल के पञ्चम स्वर में मिल
तुम नव जागृति के सूत्रधार—
इस रङ्गभूमि में ताण्डव की
आये जतलाने किसे प्यार ?
भावी विधान के अग्रपथिक,
संधान करो मत पुष्पवाण;
लौटा लो मकरध्वज को रे;
कह दो रति से, मत करे गान!

हे शुचि वसन्त, सुन्दर वसन्त !
पावन था बना रहा जग को
जिसका चिर-उज्वल तपः-श्वास,
उसके ही शिर पर आज हाय
रे मँडराता है सर्वनाश !
हो गया ठोकरों से अविरल
दुःखों की जिसका कण्ठ बन्द,
कैसे वह विहँसे तुम्हीं कहो,
मुसकान तुम्हारी देख मन्द ?
कैसे उत्सव के द्वार खुले
इस दारुण संकट में अशेष ?
दाने दाने को तरस रहा
मुँहताज बना हतभाग्य देश !

हे मद वसन्त, मादक वसन्त !
मेरी मालती - निकुंजों में
मधु - सौरभ नहीं, पराग नहीं;
इस ज्वाला-दग्ध हृदय-तल में
स्नेहार्द्र-पुलक अनुराग नहीं !
तुम उधर गुलालों से मलते
नित प्रकृति-प्रिया के ललित गाल;
बस, एक घूँट के लिये इधर
रे कितने ही मर रहे लाल !
जननी असहाय हुई, क्षण में
मिट गया वधूजन का सुहाग;
आँगन में अपने ही शोणित के
पड़े हुए हैं लाल दाग !

हे पटु वसन्त, पाटल वसन्त !
भूली न कथा संतावन की,
जब-तब के भीषणतम अकाल !

बिसरा है अब तक भी दिल से
वह जलियाँवाला का न हाल ।
रे अभी - अभी तो कितनी ही
आहुतियाँ देखीं बेनजीर ;
फाँसी पर झूल गये मेरे
मतवाले कितने वीर - धीर ।
फिर भी न दैव की प्यास मिटी ;
मिट पाया रण - कर्कश प्रकोप ।
जो निर्दय हो ठानी उसने
दुनिया से करने हमें लोप ।
हे मधु वसन्त, मधुव्रत वसन्त ।
वैभव - विलास उन्मत्त आज ,
तुम क्या जानो मेरा विषाद ?
गाँवों में, नगरी - नगरी में
छाया यह कैसा आर्त्तनाद ?
हम करते हाहाकार - ज्वार -
मुखरित मसान में नरक-वास ।
चल रहा तुम्हारा और वही
रे राग - रङ्ग, उल्लास - हास ।
पागल, क्यों लाते हो दुर्दिन में
सपनों के मीठे सँदेश ?
टुक देख दुशासन - कोप - दग्ध
द्रुपदा का क्षण भर नग्न-वेश ।
हे कल वसन्त, कोमल वसन्त ।
तुम लहराओ मत खेतों में
बालू से ईंचों भरे पड़े ;
उकसाओ बुलबुल को न कहीं
मेरे इन बागों में उजड़े ।

महलों के स्थान खड़े ऊँचे
कँकड़ - पत्थर के ढेर - ढेर ;
ना; झाँको तुम न खिड़कियों से
मेरी कुटिया में बेर - बेर ।
घड़ियों में आज मुहर्रम की
तुम मना रहे हो हाय ईद ;
दो-एक नहीं; हो गये हजारों
कुसमय में मर कर शहीद ।
हे चल वसन्त, चंचल वसन्त ।
रह - रह कर मरणासन्न जाति
पीड़ा से उठती है कराह ।
मधुवन के माली से उत्सुक
तुम पूछ रहे अटपटी राह ।
जिन अग्नि - कुमारों ने निर्भय
सह लिया कभी खर शराघात ;
ले उड़ा उन्हें ही तृण-सम अब
वातूल नियति का चक्रवात ।
था खड़ा जहाँ कल स्वर्ण-सौध ;
उड़ रही आज उस जगह धूल ।
ये फूल नहीं; हैं डोल रहे
डालों पर मेरे अमित शूल ।
हे सत वसन्त, शाश्वत वसन्त ।
हम हुए पंगु, निर्वीर्य और
माँ-बहनों की लुट गई लाज ;
लुट गया साथ ही धन - जन के
वह आजादी का विपुल राज ।
काली दीवारों के घेरे में
सुन, काँटों का पहन ताज ;

छटपटा रहा वह तरुण केशरी
जंजीरों से कसा, आज !
ओ अनियंत्रित, कर पदाघात ;
तोड़ो कारा का जटिल द्वार !
जय-जय का निर्भय मुक्त गीत
गूँजे वसुधा के आर - पार !

हे द्रुत वसन्त, द्रोही वसन्त !
खेलो रण - रोली से होली ;
इस कुरुक्षेत्र में मचे फाग !
फैला दो डगमग अग - जग में
फिर महाक्रान्ति की ध्वंस आग !
वह आग कि जिसको कुचल चले
मेरे वैरागी देश - भक्त ;
फिर भी स्वतंत्रता-दीप बले ;—
बल दो इन हाथों में अशक्त !
मुर्दों-सी शिथिल शिराओं में
बिजली बन दौड़े उष्ण रक्त !
सुकुमार, शहीदी खूनों से
हो जाय तुम्हारा तन अलक्त !

२७६

अरी प्रलय-वीणा की निर्मम तान अरी, मतवाली ;
ठहर तनिक ; उफ ! झुलस न मेरे जीवन की हरियाली !
अभी लगाया है होठों से यौवन-मद का प्याला ;
ठहर जरा; ओ, ठहर ! न अपना छेड़ विहाग निराला !
नहीं जानता, किसपर तेरा चरण - ताल टूटेगा !
कौन शून्य की गोद निठुरता से आकर लूटेगा !

२८०

फिर झनझन कर उठीं बेड़ियाँ,
खनक उठीं लो, फिर हथकड़ियाँ !
बढ़ आई टोली मतवाली,
फिर भरने कोठरियाँ खाली,
बजने लगे सीखचे निष्ठुर,
चीख उठीं दीवारें काली !

जय - जय के नारे लगते हैं,
बरस रहीं नभ से फुलझड़ियाँ !
सोये भाग देश के जागे,
बैठे घर में कौन अभागे ?
होड़ मची है बलि होने की,
कौन निकलता किसके आगे ?

जेलों के घेरे में पलतीं
आगे आने वाली घड़ियाँ !
दरवाजे वे नम्बर—वाले,
पड़े हुए थे जिनपर ताले,
खुले जेल के फाटक, जो हैं
पत्थर दिल के काले - काले !

हुक्म हुआ बन्दे बढ़ आये,
हाथ बढ़ाये, पहनीं कड़ियाँ !
कमरे - कमरे में अकुलाहट,
मुँह पर बेचैनी, घबड़ाहट,
काले जँगलों से आती है
कैदी के पैरों की आहट !

माँ के अधरों पर हँसी सरल,
आँखों में आँसू की लड़ियाँ !

तूफानी कवि

हाँ, रे मैं तूफानी कवि—मैं ही तूफान मचाता हूँ !
एक इशारे पर दुनिया को सौ - सौ नाच नचाता हूँ !
बाँध न सकता राजतंत्र मुझको घातक जंजीरों से ?
डरा न सकती प्रभुता तोपों, तलवारों औ तीरों से !
कैद न हो सकता मैं जेलों की काली दीवारों में ;
बसता मेरा लोक चिता के चट-चट धू-धू-कारों में !
जकड़ न सकतीं हाथ-पैर लोहे की बेड़ी-हथकड़ियाँ ;
भुला न सकतीं मुझे किसीके स्नेह-आँसुओं की लड़ियाँ !
उच्छृङ्खल, अनियम, अबाध मैं अपना आप विधाता हूँ;
हाँ, रे मैं तूफानी कवि—मैं ही तूफान मचाता हूँ !

मेरी प्रभुता देख काँपती नौकरशाही मदमाती ;
क्रूर कलम की करामात लख बर्बर पशुता भय खाती !
चाहूँ, तो आकाश हिला दूँ अपने हूहूकारों से !
थर्रा दूँ संसार क्रांति के रव से, भीम दहाड़ों से !
लुटता धनद, लोटता पूँजीपति मेरे श्री-चरणों पर !
दानवता हिल उठती मेरे एक एक स्वर-वर्णों पर !
शब्द-शब्द से अब्द-अब्द की परवशता तड़पे सोई ;
मैं अमोघ-अनियन्त्रित ; मुझको विपथ न कर सकता कोई !
ज्ञानातीत, विरागी, जग का कर्त्ता, हर्त्ता, त्राता हूँ ;
हाँ, रे मैं तूफानी कवि—मैं ही तूफान मचाता हूँ !

मैं काँटों पर पला, खेलता हूँ सदैव अङ्गारों से ;
चिनगारों में हँसा, नहाया झंझा की बौछारों से !
मेरी राह अटपटी जाती झाड़ और झंखाड़ों से !
टकराता उन्माद-उल्लसित रण-हुंकार पहाड़ों से !
उमड़ रहा उद्वेग विजय का इन मतवाली चाहों से !
डोल-डोल उठता खगोल मेरी बेचैनी-आहों से !
सर्वनाश का दृश्य उपस्थित कर दूँ भौंहों के बल पर ;
लहराऊँ बन जलधि मेदिनी के कल वक्षस्थल पर !
उड़ता हूँ नक्षत्रों के सँग, तारों से टकराता हूँ ;
हाँ, रे मैं तूफानी कवि—मैं ही तूफान मचाता हूँ !

मैं रूसो के महाप्राण में; मैं शेली की कविता में !
मैं कण-कण में, बिन्दु-बिन्दु में शशि में, ग्रह में सविता में !
मेरा ही इतिहास बना नंगी, खूनी तलवारों से ;
होमर के वीर विचारों से; भूषण की ललकारों से !
मृत्युञ्जय रे अमरपुत्र मैं; मैं युगपरिवर्तन-कारी !
करता शंखध्वनि नवयुग की चिर-कुमार भवभयहारी !
भावी का सँदेश-वाहक मैं; उद्धत, तापस-व्रतधारी !
शिवा और अर्जुन-प्रताप की नस में विद्युत्संचारी !
महाकाल के मृत्यु-भाल पर ध्वंस-रागिनी गाता हूँ;
हाँ, रे मैं तूफानी कवि—मैं ही तूफान मचाता हूँ !

जलता है मेरे ललाट पर द्वादश-रवि-प्रताप भीषण ;
मैं विराट-सम्राट, विश्व-गणनायक, रणउन्मद, उन्मन
पल्लव-पट-प्रच्छन्न मदन पर दीप्त त्रिलोचन की ज्वाला ;
मैं श्मशान की शान्ति, नरक की भ्रान्ति, हलाहल का प्याला
आया हूँ करुणार्द्र रुदन सुन मैं नंगी पांचाली का ;
मैं रौरव में निहत करूँगा गौरव नियति कराली का !
यौवन-विपिन-केसरी; विचरूँ पहन रुण्ड मुण्डित माला
महाकाल तज उतरा भूपर मेरा गगन-घोष काला !
रोता महल-झोपड़ी हँसती ज्यों ही मैं मुसकाता हूँ !
हाँ, रे मैं तूफानी कवि—मैं ही तूफान मचाता हूँ !

छेड़ो मत, उन्मत्त बना मैं; आज मुझे कुछ गाने दो !
तन में, मन में, रोम-रोम में, मस्ती-सी छा जाने दो !
प्रबल घूर्णि-पथ में नाचूँ; इठलाने दो-इतराने दो !
एक बार-हाँ, एकबार फिर मुझको प्रलय बुलाने दो !
सत्य मंत्र, बलि ही जीवन का एकमात्र वर पावन है !
आत्म-समर्पण ही बस, मेरे सेनापति का गर्जन है !
घर मेरा ज्वाला में; क्रीड़ा ग्रन्थि-रूढ़ियों की होली !
मर मिटते मेरी जबान पर नौजवान-सैनिक-टोली !
पुरस्कार में देश-प्रेम का विष ही कंठ लगाता हूँ ;
हाँ, रे मैं तूफानी कवि—मैं ही तूफान मचाता हूँ !

२८२

हे सुवर्ण-शृङ्खला-बद्ध, हे विजन-विपिन के विहग-कुमार !
करते हो तुम अरे, वहन क्यों पारतन्त्र्य का यह गुरु भार ?
याद करो तो पागल, अपने कानन के उन नीडों को ;
टुकड़े टुकड़े कर दो पल में इन घातक जंजीरों को !
पैरों की रुनझुन पैजनियाँ फेंक, लुटा दो हीरक-हार !
तोड़ द्वार अवरुद्ध, गगन में जाकर करो स्वतंत्र-विहार !

क्रान्ति-आह्वान

अरी क्रान्ति ! ओ जरा इधर आ, बिजली-सी चलने-वाली;
अत्याचार - कपास-राशि पर पावक-सी जलने - वाली !
क्लेश - ताप - सन्तप्त प्राणियों के संकट हरने - वाली;
नरक - लोक साम्राज्यवादियों के तन से भरने - वाली !
कुहू - निशा के अन्धकार में अपने को न छिपाना तू ;
महानाश की ऊषा-सी द्रुत फैल जगत में जाना तू !

देख, देख वह कौन हमारा मणि - सिंहासन लूट रहा ?
किसके निर्मम पदाघात से भाग्य - कलश लघु फूट रहा ?
चुभो रहा है कौन हमारे तन में शत - शत विष के तीर ?
और, वहाँ मुर्दों-से सोये पड़े अरे, क्यों विजयी - वीर ?
सब कुछ तो वे ही, हम फिर भी बार - बार जाते क्यों हार ?
दूर करेगा आज कौन सिर से कलंक का यह गुरु - भार ?

तेरी अनुगामिनी शान्ति का लो, सुहाग - गौरव लुटता ;
और, वहाँ अब न्यायालय में गला न्याय का भी घुटता !
विजय सत्य की चिर असत्य पर; धार्मिक ढोंग अन्ध विश्वास
एक राष्ट्र पर अपर राष्ट्र के शासन का जघन्य इतिहास !
अब आया है समय विश्व में सत्वर तुझे बुलाने का ;
ध्वंस - दोल पर झूमे, सृष्टि के शिशु को आज झुलाने का !

अनय - गगन में धूम - शिखा सी पल भर में छा जाना तू ;
रिपु - दल - बल के बीच प्रभंजन प्रबल - पवन प्रकटाना तू !
चक्रवर्त्तियों के पापी मस्तक पर गाज गिराना तू ;
जग के वक्षस्थल पर अविरल उपल - जलद बरसाना तू !
कलुष - विपिन में दावानल-सी सत्वर अरी, धधक उठना;
विद्युत - सी उर के घन-वन में क्षण भर कभी चमक उठना !

जलती - भट्ठी - से तेरे इन नयनों में क्या है विकराल ?
किसको डरा रही है तेरी यह नंगी - खूनी करवाल ?
किसका गर्व खर्व करने को आज उठे हैं ये भुजदण्ड ?
तीनों लोक किये देता है भस्म समर - आक्रोश प्रचण्ड !

काँप रही हैं दशो दिशाएं तेरा आवाहन पाकर ;
हाहाकार मचा है चारों ओर जगत में भीषणतर !
आ जा, आ जा, आज दयाकर रणदे, कर रण का आह्वान;
कर निवास कल्पना - लोक में शोणित-सिक्त पहन परिधान !
अरी, जगा दे मानस - मन्दिर में ऐसा उज्ज्वल आलोक;
मिट जायें जिससे जगती के क्लेश तिमिर, संकट-भय शोक !
अपने हाथों से हमको तू आज पिला दे वह प्याली ;
अंग - अंग में आजादी की प्यारी लगन लगे आली !

तेरी प्रलयंकरी ज्वाल से जग जलता है, जलने दे;
शशि-शीतल आभा से तेरी नभ गलता है, गलने दे !
विश्व-विटप में किन्तु, कभी मत तू अधर्म-फल फलने दे;
करुणा के सुकुमार मूल में कभी न अहि को पलने दे !
आ जा, आ जा, आज हमारी आँखों में हो जा तल्लीन;
दिव्य-ज्योति हर ले जिसकी जगती के सारे भाव मलीन !

जवानी

मेरे रोम - रोम से विह्वल फूट - फूट कर निकल जवानी !
अंग-अंग से भृकुटि-भंग से चिनगारी बन मचल जवानी !
अरी, टहल तू खुशी - खुशी इस आँगन में मेरे जीवन के !
धो दे गंगा की लहरों - सी पाप ताप मैलापन मन के !
आसमान में उड़ें हृदय के भाव अमित, पर खोल जवानी
असफलता के सिर पर जगते जादू सी चढ़ बोल जवानी
आँखों की गति बाँकी, बाँकी चाल, बाँकपन हो नस-नस में,
दुनिया हो मुट्ठी में मेरी, खुद न रहूँ पर अपने बस में !
छलको बात बात से मेरी, मेरे छल-छिद्रों से छलको !
उमड़ो मेरे गुण - दोषों से, ढ़क लो जग को, नभको थलको !
आग लगे पानी में; दिल हो जाये मद पीकर दीवाना !
विद्रोहिनि, मेरे जीवन में फूँक राग वह अलमस्ताना !
सिखला दे तू आज मुझे वह पत्थर पिघलाने की भाषा !
मरने की तदबीर बता कुछ, ला विष की उन्मत्त पिपासा !
तेरी क्राँति - तरंगों में हो ढूँढ़े मेरा लहू रवानी !
जाग, जाग मेरे जीवन में ओ मेरी मदभरी जवानी !

घुड़सवार

बचपन की वह घटना रोचक
मुझे याद है बिल्कुल अब तक।
तब मैं था नटखट-सा लड़का,
काम यही मेरा दिन-भर का—
खेलूँ और मचाऊँ ऊधम;
मुझे नहीं था कोई भी गम।

एक रोज घर पर आ धमके
दारोगाजी, भाई यम के।
उनके साथ समूचा थाना,
दारोगा के नानी - नाना,
चौकीदार, पुलिस के नाके,
और सिपाही तगड़े बाँके,
कंधों पर बंदूक उठाए;
लाठी लेकर वे सब आए।

कहीं गाँव में हुई लड़ाई;
इसीलिये यह आफत आई।
वर्दी खाकी, साफे नीले।
देख पड़े देहाती पीले।
दारोगाजी थे घोड़े पर;
आए बाकी पैदल चलकर।

जिनने देखा, डरकर भागे;
हुआ न कोई उनके आगे।
पहुँचे जब गुस्से में भरकर—
वे सब मेरे दरवाजे पर।
बाबूजी ने उन्हें बिठाया;
पान और सिगरेट बढ़ाया।

उलझ गए वे बाबूजी से;
रपट लिखाने लगे सभी से।
इत्तिफाक से, खेल - कूदकर
मैं भी पहुँचा तुरत वहीं पर।
देखा मुँह दारोगाजी का;
और, चेहरा सबका फीका।
चलते थे कैसे हथकंडे;
सभी सिपाही थे मुस्तंडे।
और, बढ़ा ज्यों ही मैं थोड़ा;
देखा दारोगा का घोड़ा।
उसे लिए था एक सिपाही;
और, आदमी वह अपना ही।

देख शान - शौकत घोड़े की—
इच्छा हुई मुझे चढ़ने की।
इसके पहले कभी भैंस पर
चढ़ने का पाया था अवसर।
की थी कितनी बार सवारी;
धोबी के गदहे पर भारी।
और, बना छोटा-सा छकड़ा,
मैंने फिर जोता था बकरा।
इससे आगे पर न बढ़ा था;
घोड़े पर बिल्कुल न चढ़ा था।
इसलिये तो तबियत मचली;
लहर हृदय की बाँसों उछली।
पास सिपाही के मैं आया,
और उसे मतलब समझाया।
पहले तो झुँझलाकर बोला;
फिर उसका भी मनुआ डोला।

आरसी

पैसे का जब लोभ दिखाया ;
वह मेरे कहने में आया ।
बोला मुझे सौंपकर घोड़ा—
"इसे लगाना कभी न कोड़ा ।
लो, चुपके चढ़ जाओ, बाबू !
पर न कहीं हो यह बेकाबू ।"

बोला मैं—"धत् ! हो तुमभी क्या?
घबरा सकता मेरा जी क्या ?"
उसने कहा—"जल्द ही आना ।"
मैंने कहा—"चढ़ा तो जाना ।"

रास खींच ज्यों मारा कोड़ा ;
त्योंही लेकर भागा घोड़ा ।
घर की तरफ उसे तब मोड़ा ;
पर पूरा पाजी था घोड़ा ।
भागा उधर, जिधर था थाना ;
रोना-धोना एक न माना ।
लंबे-लंबे डग को भरता ,
और हवा से बातें करता ,
मुझे पीठ पर नाच नचाता ;
पीछे धूल-गुबार उड़ाता ।
घोड़ा दौड़ रहा था आगे ;
राही राह छोड़ कर भागे ।

बड़ी - बड़ी टापें पड़ती थीं ;
धरती को थर - थर करती थीं ।

मेरा तो दम निकल रहा था ;
मैं घोड़े पर उछल रहा था ।
टोपी सर से गिरी उछल कर ;
जूते भी गिर पड़े निकल कर ।

कुर्त्ता फटा, कमीज फट गई ;
तालू से फिर जीभ सट गई ।
धोती हुई कमर में ढीली ;
धूप चैत की थी चमकीली ।
सारा बदन पसीने से तर ;
डगमग करता था घोड़े पर ।
गिरूँ पीठ पर से मैं जिसमें ,
घोड़ा था इसकी कोशिश में ।
और इधर से उधर हिलाकर ,
फिर उछालकर, खूब डुलाकर—
वह मुझको झकझोड़ रहा था ;
मेरी हिम्मत तोड़ रहा था ।
कदम - कदम पर देता झटका ;
अब पटका, उसने अब पटका !
कभी पीठ से दूर उचक कर ,
मैं बढ़ कर आता गर्दन पर ।
दाएँ से बाएँ झुक जाता ;
पीछे से आगे को आता ।
खाकर रगड़, झगड़ रस्सी से—
लहू लगा बहने उँगली से ।
मैंने छोड़ लगाम उसी क्षण ,
पकड़ी कस घोड़े की गर्दन ।

मैं भागा जाता घोड़े पर ;
हंगामा था मचा सड़क पर ।
बैल छोड़ दौड़े हलवाहे ;
ताना - बाना छोड़ जुलाहे ।
बुड्ढे दौड़े, दौड़े लड़के ;
दौड़े हा - हा हू - हू करके ।

उलटी गाड़ी, बछड़े भड़के ;
भागे बच्चे घर में डर के ।
बिल्ली चमकी, कुत्ते भौंके ;
काँव - काँव कर कौवे चौंके ।
गिरे, मुसाफिर के सर फूटे ;
भैंसें चलीं तोड़ के खूँटे ।
गायों के बंधन भी छूटे ;
भेड़ बकरियों के पग टूटे ।

मैं रकाब पर थमा हुआ था ;
और पीठ पर जमा हुआ था ।
फिर भी घोड़ा दौड़ रहा था ;
उसने भी तो यही कहा था ।
समझा था मैं हवा खिलाकर ,
इधर-उधर से घुमा-फिरा कर ,
जरा देर तबियत बहला कर—
उतर पड़ूँगा, वापस आकर ।

लेकिन यह तो भारी खटपट ;
घोड़ा दौड़ रहा है सरपट ।
कसता मैं लगाम को ज्यों-ज्यों ,
घोड़ा भागा जाता त्यों - त्यों ।
अब तो मैं जी में घबड़ाया ;
घोड़ा मुझे कहाँ ले आया ?

तीन कोस की लंबी दूरी ;
चल कर एक रपट में पूरी ।
कितने पुल औ' ऊबड़-खाबड़—
पार किया फिर कितने डाबड़ ।
खाई - खंदक, ऊँचे - नीचे ,
दौड़, लाँघकर बाग - बगीचे—

पहुँचा वह आखिर मंजिल पर ।
थाने पर ही रुका पहुँच कर ।
बचा सँभल कर गिरते - गिरते ;
रुकते - रुकते, झुकते - झुकते ।
मची तुरत थाने में हलचल ;
घेरा मुझे सभी ने दल - बल ।
दौड़ अनेक सिपाही आए ;
जी में बहुत - बहुत घबड़ाए ।
घोड़े को सबने पहचाना ;
मैं ही था केवल अनजाना ।

क्या है? क्या है? सब झुँझलाए ;
उन्हें कौन मतलब समझाए ?
मैं घोड़े को ले आया था ,
या घोड़ा मुझको लाया था ?

मैं तो मानो मरा हुआ था ;
घोड़े पर ही पड़ा हुआ था ।
और, उन्होंने समझा झटपट ;
शायद हुई गाँव में खटपट ।
दारोगा पर आफत आई ;
घोड़े ने आ खबर सुनाई ।
और, होश में मैं जब आया ;
तब सारा किस्सा समझाया ।
लेकिन थे अंधे सब - के - सब ;
मेरी बातें मानें वे कब ?
मेरे साथ गाँव में तत्क्षण—
पहुँच गई तब पूरी पल्टन ।
मैं भागा घर में घबड़ाकर ;
दारोगा बोला मुसकाकर ।

इस लड़के ने की बदमाशी ;
रही दिल्लगी अच्छी - खासी ।
मैं सकुशल वापिस हो आया ;
बाबूजी ने हर्ष मनाया ।
मा ने पेड़े - दही खिलाए ;
जान बची, तो लाखों पाए ।

२८६

नीचे महासिन्धु है फैला ,
ऊपर महाकाश निर्जन में ।
फिर भी स्थान और जल के हित
व्याकुलता-सी मानव-गण में ।
सूना एक , दूसरा खारा ;
हृदय - हीन सारा का सारा ।
फिर, कैसे वह बने सहारा ?
फट जाये नभ, सूखे सागर ;
आग लगे उस उदधि-गगन में ।
जहाँ स्थान औ जल के हित नर
मर जाते लड़-लड़ कर रण में ।
बन्दी लाल-किलों में लक्ष्मी ,
कैद खजानों में अपार धन ;
फिर भी क्यों असार-सा जगती
में मनुष्य का दुर्लभ - जीवन ?
जड़े महल में मणि-सिंहासन ,
उसको क्या जो करता अनशन ।
शयन बना कुश-कंटक-कानन ।
निष्फल इतनी बड़ी धरा औ
व्यर्थ रत्नगर्भा का कंचन ;
जिसके होते भी व्यतीत नर
करता खर - श्वानों का जीवन ।
यह कैसा वैचित्र्य; विधाता
का यह कौन सृजन-कौतूहल !
एक ओर लुट जायें लाखों ,
मरें दूसरी ओर असम्बल !
उधर अन्न वस्त्रादिक सड़ते ;
और इधर नर भूखों मरते !
आपस में ही कटते - लड़ते !
शंकित साधु, अशंकित तस्कर ;
विजयी हो प्रपंच-छल-कौशल !
यह कैसा वैचित्र्य ; विधाता
का यह कौन सृजन-कौतूहल !

२८७

तन - मन, आराधन - साधन ;
मा, तेरे प्रिय - पद - पद्मों में
बलि हो जाये यह जीवन !
अर्पण सकल स्वजन - परिजन ,
करूँ अकिंचन कंचन - धन ;
तेरे नूपुर की झंकारों
में खो जाये स्वार्थस्वन !
विचलित करे न अपनापन ,
माया का मोहक मधुवन ;
तेरी इच्छाओं पर नत हों
शत - शत ज्वालामय यौवन !
अब न अश्रु का हो वर्षण ,
प्राणों का सकरुण क्रन्दन ;
तेरे अंगुलि - इंगित पर हों
खण्डित युग - युग के बन्धन !

ओ मा

ओ मा ! यह कैसी ज्वाला
प्राची के प्रात - गगन में ?
हुंकार विकट यह तेरे
रण - रक्त-सिक्त आँगन में !

जल रहीं चिताएं घर में ;
बाहर में तम का डेरा !
किस सर्वनाश ने घेरा
तेरा यह रैन - बसेरा !

लुटतीं जीवन की निधियाँ ;
लुटता सर्वस्व हृदय का !
आया पद - मर्दित जग में
अब दिन यह महा-प्रलय का !

हाँ , चतुरंगिनी सजातीं
सेनाएं दशों दिशाएं ;
हो रही ध्वंस की लीला ,
आँधियाँ - बवण्डर आयें !

काँपते करों से सहम - सहम
लज्जा-वश वल्कल-पट लपेट ,
किस अगम प्रान्त की ओर चली
उर में सारी करुणा समेट ?
पल्लव - शय्या पर उपवन में
करती व्यतीत जो दिवस लेट ,
ओ मा, अब पाती वही आज
तू कुश-कण्टक की कुटिल भेंट !

दीन वेश , रुक्ष केश ;
साश्रु नयन , तन मलीन ;
जीवन सुख - स्नेह - हीन !
अनशन - कृत शक्ति क्षीण ;
निर्जन गृह में उदास ,
एकाकी वन - प्रवास !
काटती अशेष क्लेश !
ओ मा , क्यों दीन वेश ?

तज अब यह रुदन - भार ;
लोचन - जल से उदार ,
सी मत शशि - कान्त-हार ;
अंचल के तार - तार !
रोती क्यों पड़ी - पड़ी ?
उठ , उठ ; हो आज खड़ी !
विधवा - सा हत शृँगार ,
ओ मा , तज रुदन - भार !

तू ही सुख , धर्म , ध्यान ;
ईश्वर , कल्याण , प्राण !
मृत्यु और जन्म - ज्ञान !
फिर क्यों यह विधि - विधान ?
मेट सकल भव - त्रिताप ,
छोड़ रुदन , यह विलाप ;
हम - जैसों का निदान ;
ओ मा ; तू स्वर्ग , त्राण !

रक्त - वसन , तिलक धार ;
डर मत तू कौन लड़े ?
तेरे सुत विकट बड़े !
कब से तैयार खड़े !

अर्पण - हित समुद शीश,
रो मत; हँस! दे अशीश!
जौहर का खुला द्वार!
ओ मा, रण - तिलक धार!

सुख-दुख में, जन्म-मरण में हम
तेरे असंख्य सुत सदा सङ्ग;
रखते वक्षों में दुःसाहस,
भावों में यौवन की तरङ्ग!
तू सोच न कर; ले आयेंगे
सुख-शान्ति और वैभव-उमङ्ग;
ओ मा, हम निश्चय ही निर्भय
कर अन्यायी का छत्र - भङ्ग!

जीवन

चलना है तो चल आँधी-सा; बढ़ता जा आगे हू-हू!
जलना है तो जल फूसों-सा; जीवन में करता धू-धू!
क्षण भर ही आँधी रहती है; आग फूस की भी क्षण-भर!
किन्तु, उसी क्षण में हो जाता जीवनमय भू से अम्बर!
मलयानिल-सा मन्द-मन्द मृदु चलना भी क्या चलना है?
ओदी लकड़ी सा तिल-तिल कर जलना भी क्या जलना है
आग वही, जिसकी ज्वाला से भस्म बने, जो वस्तु झुके!
वेग उसीको कहते हैं, जो बाधाओं से नहीं रुके!
जब तक चलना है, चलता जा, सोच नहीं सम्मुख क्या है?
जब तक जलना है, जलता जा; फिक्र नहीं दुख-सुख क्या है?
रोगी बन सुकुमार सेज पर तू कायर की मौत न मर!
पानी से भी जो बदतर हो, पैदा ऐसी आग न कर!
क्षण भर को थोड़ा न समझ तू यदि वह है गौरव का क्षण!
व्यर्थ हुआ मुर्दों - सा पाया यदि तुमने लम्बा जीवन!
मिटना ही है जब आखिर, तो एक बार चलकर मिट जा;
बुझना ही है जब आखिर, तो एक बार जलकर बुझ जा!

२६०

आयो इधर जवानी, आया
उधर झूमता मतवालापन;
उठीं घटाएं पूर्व दिशा से
औ पश्चिम से प्रखर समीरण!
दोनों में मुठभेड़ हो गई
बीच-राह ही लो; देखो अब!
लगीं बरसने रिमझिम-रिमझिम
रस-फुइयाँ, रस में डूबे सब!
भींगी मसें निमिष में रस से;
सिहरा सारा जीवन, तन-मन;
आयो इधर जवानी, आया
उधर झूमता मतवालापन!
बेसुध था मैं आँख मिचौनी-
क्रीड़ा में अपने बचपन की;
कौन खींच ले आया, पता न,
स्वर्ण - देहली पर यौवन की?
उमड़ो रोम - रोम से मस्ती;
फूटे तान - तान से मधुकण;
आयी इधर जवानी, आया
उधर झूमता मतवालापन!
प्राणों में गूँजा यौवन का
कमल-कण्ठ-वन्दित स्वर कल रे!
तरह - तरह के अरमानों से
हृदय विकल रे, उथल-पुथल रे!
हटा सन्तरी ज्यों आँगन से
त्यों ही मिला स्वर्ग - सिंहासन!
आयी इधर जवानी, आया
उधर झूमता मतवालापन!

ज्यों-का-त्यों

वर्ग तीसरे में पढ़ते थे ;
धीरे - धीरे हम बढ़ते थे ।
गुरू हमारे थे कुछ बंगट ;
था न नाम भी उनका लंगट ।
खबर खूब लड़कों की लेते ,
मार - मार बेदम कर देते ।
एक रोज लल्लू ने पीटा ,
और सड़क पर मुझे घसीटा ।
बस, मैं पहुँचा नालिश करने ;
सारा किस्सा सुन गुरुवर ने
कहा-"लिया सुन किस्सा सारा;
अब कह, कैसे उसने मारा ?"
एक चपत मजबूत गाल में
मार गुरू के उसी काल में ,
मैं बोला—"यों उसने मारा !"
गुरुजी पढ़ने लगे पहाड़ा !
दौड़े कह कर उल्लू , पाजी ;
ज्यों झपटे नार्वे पर नाजी ।
मैं डर कर भागा शाला से ;
खेत, बगीचा, नद, नाला से ।
राह - बाट में नाच नचाकर
और गुरू का वार बचाकर
आगे था मैं भागा जाता ;
पीछे गुरू चला चिल्लाता !
सहसा लगी मुझे यों ठोकर ;
गिरा वहीं मैं बेसुध होकर ।
अरर धम्म ! मुझसे टकराकर
गिरे गुरूजी चक्कर खाकर ।
हम दोनों ही ढेर हो गए ;
और शेर से भेड़ हो गए ।
इसके बाद हमारी हालत
आप स्वयं ही कर लें अवगत ।

युद्ध-मेघ

सावधान हो धरा, दिगम्बर का सहसा आसन डोला ;
आज डेनजिंग पर मायावी हिटलर ने धावा बोला !
क्या होगा कल, दुनिया के दिल की धड़कन भी बन्द हुई;
आज, मानवों के मस्तक पर दानवता स्वच्छन्द हुई !

फिर घन-घन करते रण-बाजा, गन-गन करते जय-डंका;
फिर रणचण्डी नाच उठी, फिर गरज उठे ये रण-बंका !
फिर घिर आये युद्ध मेघ के, फिर नभ में बिजली चमकी;
रन-रन-रन बज उठे तुमुल-घन, लाल हुई आँखें यम की!

आज, बना उन्मत्त प्रेत-सा यूरप प्रतिहिंसा पीकर;
प्रलय-रुद्र करता रण-ताण्डव पृथिवी के वक्षस्थल पर !
वलिके बकरे कटते हैं, हँसता भैरव मतवाला है !
अरुण धरातल है शोणित से, व्योम धूम्र से काला है !

सूखे थे न दृगों के आँसू, घाव न छूटे थे भर कर ;
फिर छिड़ गई रागिनी रण की, चण्डी का खाली खप्पड़ !
जर्मन जो दुर्द्दान्त उठा, तो भीषण नर-संहार मचा ।
लोक-लोक में 'त्राहि-त्राहि' रव, दारुण हाहाकार मचा !

भड़क उठी भट्ठी विनाश की, सुलग गई पर्वत-माला;
जगी आज यूरप के वन में, फिर दावानल की ज्वाला !
क्षुब्ध, महत्त्वाकाँक्षी हिटलर, उसे विजय की आशा है;
शान्त न होगा प्रलय-देवता, ऐसी रुधिर पिपासा है !

ऊपर दैत्याकार चील-से वायुयान मँड़राते हैं ;
जहरीली गैसों के बादल, नभ से बम बरसाते हैं ।
तोपें करतीं गोला-बारी, टैंक मौत-से टहल रहे;
नीचे ये कृतान्त के सैनिक सागर का मुँह खोल रहे !

आधी रात !—धड़ाका बमका ! जल कर नगर श्मशान हुआ
एक टारपीडो !—समुद्र में मग्न भग्न जलयान हुआ !
बर्लिन शून्य, वारसा उजड़ा, लोग छोड़ भागे लन्दन ;
पेरिस की दीवारें थर-थर, देश-देश में आक्रन्दन !

लिया जन्म रावी-सतलज में, खेली गंगा के तट पर ;
आर्यों की प्राचीन सभ्यता फैली अब राइन-तट पर !
रण-कर्कश, अभिमानी जर्मन—जाति सर्पिणी-सी आहत,
किया क्रुद्ध फुत्कार, पटक उद्दण्ड विष-फणों को शत-शत !

ब्रिटिश सिंह की मूँछें एँठीं, चेम्बरलेन दहाड़ रहा ;
कल तक जो था बना नपुंसक, आज वही ललकार रहा !
दूर-दूर खबरें उड़ती हैं ये सागर की लहरों में—
'ओ सरकार, चलो आते हम सर्वनाश के प्रहरों में !'

इन घड़ियों में मित्र-राष्ट्र का फ्रांस नहीं क्यों हो संगी ?
दो मुर्दों को खाकर इटली अफरा-सा है बहु-रंगी !
देख दूर से अजब तमाशा मुसोलिनी घबड़ाता है—
'देखें कौन जीतता मामा !?' रह-रह सिर खुजलाता है !

उलझा है जापान चीन से, गति है साँप-छुछुन्दर की,
खुश है रूस, लड़ें ये कटकर; राह न यह मेरे घर की !
छाया है समस्त यूरप पर जर्मन का खूनी पंजा;
रूजवेल्ट लेता टटोल है जब-तब अपना सिर गंजा !

सिर्फ एक हड्डी का टुकड़ा, प्रजातंत्र की थाती है;
कुत्तों-सा लड़ता यूरप भूखी जनता चिल्लाती है !
हिटलर तो पागल है, जाकर वह दिमाग को ठीक करे !
और, ब्रिटिश का दावा है, दम वही न्याय का आज भरे !

आग लगी यूरप में, आई उड़ जलती चिनगारी है;
वृद्ध व्याघ्र अँगड़ाई लेता, अब मेरी भी बारी है !
यौवन मचल रहा है, लेकिन सेनापति ही रूठे-से;
उड़ न जाय, है खड़ा हिमालय को वह दाब अँगूठे से !

एक बार दुनिया के नक्शे का फिर रंग बदलने को;
ज्वालामुखी आज है भूखा फटकर आग उगलने को !
पशुता भी लज्जित है, मानव के हत्यारे मानव पर !
आज, गृद्ध बन कर उतरा है महायुद्ध शिव के शव पर !

२६३

क्रोधित होकर स्वयं प्रभाकर बरसावे भूतल पर आग ;
मेरी वीणा से निकले यों अखिल विश्व-विध्वंसक राग !
शोणित से नहला दूँ जग को ऐसी मचा भयंकर मार;
चारों ओर फैल जायेंगे घोर रुदन औ हाहाकार !
उथल-पुथल मच जाय जगत में कभी न छोड़ूँ अपनी आन
हँसते-हँसते मातृभूमि-हित होजाऊँ मैं भी बलिदान !
गिरे वज्र अन्यायी के सिर, आसमान की छाती चीर ;
चुभ जायें उनके शरीर में गरल-तीक्ष्ण प्राणान्तक तीर !
रोम-रोम से निकल-निकल कर मेरी आहों की बौछार,
तोड़-फोड़ डाले इस ज़ुल्मी शासन के सब निर्बल तार !
पूर्ण करूँ कष्टों को सहकर भी मा के सारे अरमान;
हँसते-हँसते मातृभूमि-हित हो जाऊँ मैं भी बलिदान !
एक-एक नवयुवक-हृदय में भर दूँ यौवन की मदिरा;
कायर-कुटिल नृशंसों के मस्तक पर दूँ मैं गाज गिरा !
बड़े प्यार से आज उठा कर पीलूँ गरल-भरा प्याला;
समर-भूमि में निकल पड़ूँ मैं विद्रोही बन मतवाला !
प्रिय—स्वदेश के मुक्ति-मार्ग में खोजूँ मैं अपना निर्वाण;
हँसते-हँसते मातृभूमि-हित हो जाऊँ मैं भी बलिदान !

हे रुद्र

हे रुद्र, उठो ! तुम जाग्रत हो; ईशान ! अशेष विषाण बजे !
गरजे आह्वान तुम्हारा सुन फिर विप्लव का यौवन गरजे !
चिर-काल मरण की निद्रा में तुम निरत रहे हो हत-चेतन;
इस रक्त-प्रात में जागो तुम हे भैरव ! अब खोलो लोचन !
लो अँगड़ाई ! देखो, अज-से बलिके निरीह ये सैन्य सजे !
हे रुद्र, उठो ! तुम जाग्रत हो; ईशान, अशेष विषाण बजे !

है आज वायु-मण्डल उत्तेजित, यह त्रिलोक संत्राशित है;
नर रुधिर-पान के लिये अरे ! आकुल आकाश पिपासित है !
शत-शत वर्षों से रणचण्डी का है यह खप्पड़ खाली-सा;
जागो विकराल ! क्षुधित भूतल है आज पदाहत व्याली-सा !

देवता शान्ति का अपने ही चिर-मन्दिर से निर्वासित है;
है आज वायुमण्डल उत्तेजित, यह त्रिलोक संत्राशित है!

नटराज, बजाओ रण-भेरी; ताण्डव की आज समीक्षा है!
समरानल प्रस्तुत है, केवल इंगित की एक प्रतीक्षा है!
ये डोल रहे दलतरुणों के विद्रोही अग्नि-कुमार बने;
अंगार बने वन-वन उपवन; लोकालय शस्त्रागार बने!
कर सके मत्स्य का वेध कौन? अर्जुन की शक्ति परीक्षा है!
नटराज, बजाओ रण-भेरी; ताण्डव की आज समीक्षा है!

ये मेघ युद्ध के मँड़राते विष से प्रतिहिंसा के काले!
किसके भुज-दण्डों में पौरुष इस प्रलय-पर्व को जो टाले!
सागर विक्षुब्ध, दिशाएं जड़ उत्सुक अवाक-से संसारी!
कब भड़क उठे, जाने किसदिन, यह सर्वनाश की चिनगारी!
प्रभुता-मद पी कर झूम रहे यम के ये सैनिक मतवाले!
ये मेघ युद्ध के मँडराते विष से प्रतिहिंसा के काले!

हे रुद्र! मनाओ समरोत्सव; उन्मुक्त बजाओ जय डंका!
मानव के राघव पर दौड़ी दानव की दीवानी लंका!
रक्षक ही भक्षक बना जहाँ, जिसका कृतान्त ही त्राता है,
वह हत्यारा शनि की अशकुन छाया से ग्रसित विधाता है!
कैसा विलम्ब अब प्रलयंकर? क्यों चिन्तित हो? किसकी शंका?
हे रुद्र! मनाओ समरोत्सव; उन्मुक्त बजाओ जय-डंका!

मानव का खूनी आज कौन रण का दानव यह आया है?
मरघट से मुर्दों को घसीट, कंकाल उठा कर लाया है!
जिसके हाथों में ताकत है, जो ईश्वर है, गृह-स्वामी है;
मृत्युञ्जय! देखो, वही आज बन गया प्रलय का कामी है!
हड्डियाँ चबा कर इसने उर अपना पाषाण बनाया है!
मानव का खूनी आज कौन रण का दानव यह आया है?

हे रुद्र! उठो, तुम हो जाग्रत; नाचो दिगन्त में धृष्ट-चरण!
फूँको जय-शंख, बजे डमरू; दौड़े दिशि दिशि में महा मरण
मानव के वक्षस्थल पर ही मानव की पापी चिता रचे,
संकेत करो तुम, क्षण-भर में अग-जग में हाहाकार मचे।
संहार मचे इतना कि स्वयं माँगे मूर्च्छित-सा प्रलय शरण!
हे रुद्र! उठो, तुम जाग्रत हो, नाचो दिगन्त में धृष्ट-चरण!

बन्दी का निवेदन

खोल दो हे सुन्दरी, अब स्वर्ण-पिंजर-द्वार;
प्रेम का बन्दी तुम्हारा यह विहग सुकुमार!
आज, उड़ने दो इसे तुम मुक्त नभ के पार;
देखने विस्तीर्ण दो स्वातन्त्र्य का संसार!

कीर यह पालित तुम्हारा तड़पता लाचार;
खोल दो हे सुन्दरी, अब स्वर्ण-पिंजर-द्वार!

है बुलाता आज इसको विपुल यह आकाश;
खींचता प्रतिक्षण न जानें, कौन-सा उल्लास?
कर रहा इंगित निकुंजों से सुमन का हास;
दे गया इसको निमन्त्रण सुरभि से मधुमास!

मत बढ़ाओ बाँधने को शोभने, भुज-पाश;
है बुलाता आज इसको विपुल यह आकाश!

आज क्यों जानें न, व्याकुल क्षुब्ध पारावार?
गूँजता कातर दिशाओं में करुण चीत्कार!
कर रहा आह्वान मेरा दूर से कांतार;
बस रहा संसार जो वह सीखचों के पार!

रोक क्या सकता मुझे यह क्षुद्र कारागार?
आज क्यों जानें न, आकुल क्षुब्ध पारावार?

विजन वनवासी विहग यह, मुक्त नभ का कीर;
आज उड़ने के लिए उद्यत, गगन को चीर!
हाय, क्या जानो प्रिये तुम शृंखला की पीर?
बज रही जो एक युग से हो अशांत अधीर!

नीर वह मधु-निर्झरी का, वह सरित का तीर;
विजन वनवासी विहग यह, मुक्त नभ का कीर!
है जहाँ आनन्द का होता न उत्सव शेष,
कौन-सा वह देश, किसका यह अमर सन्देश?

आरसी

आ रहा संकेत जो, प्रति कुंज से प्रति बार ,
कौन सी वह शक्ति, जो करती मुझे दुर्वार ?
हो वहीं नव जन्म , मेरा पुनर्जीवन - वेश ;
है जहाँ आनन्द का होता न उत्सव शेष !

आज मुझसे मत कराओ तुम विवश विद्रोह !
दूर कर दो निज हृदय से हाय , मेरा मोह !
मौत के मुँह में समाई काल की दीवार ;
भग्न कितने हो चुके दुर्भेद्य कारागार !
मैं करूँगा तुंग-जीवन-शिखर पर आरोह ;
आज मुझसे मत कराओ तुम विवश विद्रोह !

आ रही यह आज, कैसी कूच की आवाज ?
कौन-से परदेशियों की चाल का अन्दाज !
यह हवा क्यों सनसनाती आ रही इस ओर !
वह घटा उस ओर काली क्यों उठी घनघोर ?
हैं न जाने क्या तुम्हारे हाय, दिल के राज ?
आ रही यह आज कैसी कूच की आवाज ?

हे मृगेक्षणि, सुन रहा मैं मुक्ति की ललकार;
बेड़ियों की झनझनाहट उच्च जय - जयकार !
मुक्त मेरे बन्धुओं का, मुक्त यह संचार ;
और सीमाहीन जग, स्वच्छन्द व्योम-विहार !
कब करोगी इस नरक से सुमुखि, मम उद्धार ?
हे मृगेक्षणि, सुन रहा मैं मुक्ति की ललकार !

कंठ जो खुलता अकारण, आप ही, अनजान,
प्रात में, प्रति दिन, गगन में भर प्रभाती गान;
सखि , करे कैसे द्रवित वे पत्थरों के प्राण ?
क्या व्यथा मेरी सकेगा हाय , सुन पाषाण ?
राग क्या जाने, भला यह ताल-स्वर-गति-मान ?
कंठ जो खुलता अकारण, आप ही, अनजान !

देखता हूँ मैं वनों में गन्ध का विस्तार !
खोलता दक्षिण-समीरण कुसुम-कलिका द्वार !
मुक्त ये मृग कर रहे कौतुक, भ्रमण, अभिसार;
मधु - निकेतन में मधुर वनराजि का शृंगार !
मैं तुम्हारा प्यार लूँ, मुझको नहीं अधिकार;
देखता हूँ मैं वनों में गन्ध का विस्तार !

'तोड़ रे बन्धन, किनारा छोड़, कारा तोड़ !'
कौन यों आदेश देता 'विश्व से मुँह मोड़ !'
आज उड़ने की परस्पर जो मची है होड़ ,
मैं न वह सौभाग्य सकता हूँ सहज ही छोड़ !
आर्त्त-सा किसने पुकारा यों मुझे किस ओर ?
'तोड़ रे बन्धन , किनारा छोड़, कारा तोड़ !'

तुलसी

तिरती-सी तरणी हो स्नेह-रस-सरिता में,
कविता-दिवा की दिव्य सविता-किरण हो।
ज्ञान के निधान,ध्यान-योग की विभूति भव्य,
करुणा की मूर्ति , मोद-मङ्गल-भवन हो ।
प्रेम के पुजारी, पूर्ण भक्ति के भिखारी,नित्य
राम-नाम-नादकारी मुक्त श्यामघन हो ।
आरती उतारें क्यों न विश्व के विबुधवृन्द ?
भारत के कंठहार , भारती के धन हो ।

कवि , तेरे मानस - मयंक से कलङ्कहीन
शोभित है वसुधा की साहित्य-विभावरी ।
गुंजित है नन्दन-निकुंज आज पुंज-पुंज ,
कोकिल तुम्हारी कल-काकली-सुधाभरी ।

तेरे ही प्रताप से निदाघ-ताप-तापिता ये
दीखती विराग-भाव - वाटिका हरी-भरी ।
धन्य हो कवीन्द्र, तुम्हें पाकर उजागरी है
आज ये हमारी देवनागरी गुणागरी ।

सोता सारा देश जब महाघोर निद्रा में था,
कर शंख-नाद तब तुम्हींने जगाया था ।
मुरझी-सी हिन्दी की अवृन्त काव्य-लतिका को
तुम्हींने अनन्त सुधा-धार से नहाया था ।
राष्ट्रधर्म-भावना की भागीरथी पावनी को
अपर भगीरथ - सा भू पर बहाया था ।
भूलते थे मद - मोह - नभ में अगाढ़ जब,
आगे बढ़ ज्ञान-दीप तुम्हींने दिखाया था ।

कवि, तेरी कृतियाँ हो मूर्तियाँ पवित्र पूज्य
मातृ-भाषा मन्दिर में ज्योति-सी जगी रहें ।
तेरे प्रेम रङ्ग से पुनीत ये हमारी आज
जीवन की स्नेह-हीन प्रतिमा रँगी रहे ।
कर तेरे विनय की जाह्नवी में पुण्य स्नान
साधुओं के अन्तर की साधुता पगी रहे ।
तुलसी, तुम्हारे पद-पङ्कज में मेरी यह
मानस - मिलिन्द की सुलगन लगी रहे ।

प्यार से उठाया जिसे देखा पड़ा निराधार,
चलित न हुए कभी पाप के प्रहार से ।
पार किया कितनों की जीवन की तरणी को
क्षण ही में भव के अपार पारावार से ।
दूर किया मंजु ध्यान सीता और राम की न
भूल से भी तूने कभी अपने विचार से ।
गूँज उठे सारा विश्व आज इन घड़ियों में
कवि, एक बार फिर तेरी जैजैकार से ।

दीवाने

अपने खूं के छींटों से अपना उपवन सरसाने वाले ;
हम हैं वह जो घर उजाड़कर कारागार बसाने वाले !
तजकर भगिनी - जननी को फांसी से नेह लगाने वाले ;
सात - समुन्दर - पार, अन्दमन को आबाद बनाने वाले !
लेकिन ऐसा कहो न फिर भी; जीवन से दुख पाते हैं हम।
अपनी खुशी—छोड़ बस्ती जंगल में धुनी रमाते हैं हम !

ठीक तुम्हीं सा बसा हमारा भी हँसता घर-बार कहीं था,
छोटा सा परिवार और दिलवर भी था दिलदार कहीं था।
दूर कल्पना के टापू में, सोने का संसार कहीं था,
लुटते थे चाँदी के टुकड़े, प्यार कहीं, अभिसार कहीं था !
कड़ियों से दिल को बहलाया; पर, न रुकी वह तेज रवानी !
जंजीरों के तार बजाये, ऐसी थी वह मस्त जवानी !

तुम कहते हो हमें चोर, हत्यारे, डाकू और लुटेरे ;
थर्राती है भय से दुनिया, पुलिस कोसती साँझ सबेरे।
खुली हमारे लिए जेल की, काल कोठरी, ऊँचे घेरे,
तुम क्या जानो, पाल रखे हैं क्यों ये चारों ओर बखेड़े ?
अपनी जान हथेली पर ले, चौराहे पर आन खड़े हैं ।
आओ इधर, बता दें तुमको दिल पर कितने दाग पड़े हैं !

वे जानें क्या पीर पराई मखमल पर बल खाते हैं जो ?
होती कैसी तड़प भूख की मोहनभोग उड़ाते हैं जो ?
तेगों पर चलना वे सीखें;—सिकचों से भय खाते हैं जो !
दामन में अंगार चुनें वे, जग का भार उठाते हैं जो !
यौवन वह जो, जले निरन्तर; हिमगिरि पर भी सर्द नहीं हो।
वह भी किस मुर्दे का पहलू, जिस पहलू में दर्द नहीं हो ?

कोल्हू-चक्की चला चलाकर जग में आग लगाई हमने !
परवानों-से जल जलकर मरने की राह बताई हमने !
अरे न पूछो क्यों रिवालवर, बम, बन्दूक उठाई हमने ?
काकोरी, चटगाँव, मेदिनीपुर में क्रांति जगाई हमने !
बोरस्टल की दीवारों पर लिख दी है विद्रोह - कहानी !
लाल हमारे शोणित से है गंगा औ सतलज का पानी !

सेनापति

सेनापति ! मेरे सेनापति ! बैठे हो चुप तुम क्यों जड़-से ?
हम होड़ लगाने चले आज, मृत्युञ्जय वीर, दिगम्बर से !
भुजदण्ड हमारे फड़क रहे; यह खून हमारा खौल रहा !
किस शंका से तुम चिन्तित हो ? क्यों काँप रहे तुम कातर-से ?
बोलो तुम, कुछ भी तो बोलो ! हम आकुल आज प्रतीक्षा में;
हम सुनें तुम्हारा रणगर्जन ! कब तक रहना यों मनमारे ?
सेनापति ! मेरे सेनापति ! तुम कहो न हम जीवित हारे !

है न्याय जहाँ अनुशासन ही; पत्थर की जिसकी छाती है !
है सत्य जहाँ पिसता निशिदिन, मानवता जहाँ लजाती है;
लद गया जमाना वह जो था; घिस गयी पुरानी परम्परा !
कहने में जहाँ जवानी की, सच, जीभ तराशी जाती है !
हुंकार करो, तुम मिटने दो, इस वृद्ध जगत को जाने दो !
पीछे हट जायें, जो चाहें; दें राह छोड़, चढ़ जाने को !
सेनापति ! मेरे सेनापति ! यौवन आतुर बढ़ जाने को !

तुम कहो, कालको भी निश्चय हम एक बार जा ललकारें !
तुम हमें हुक्म दो, ठोकर से तोड़ें हम काली दीवारें !
दें बाँध सिन्धु की लहरों को; हम वक्ष व्योम का चीर चलें !
तुम कहो और देखो कैसे मिटती जुल्मों की सरकारें !
मर्दित कर देंगे काँटों को; हम निगल जायँगे बाधा को !
हम भूल चुके हैं अपना प्रण; तुम याद दिला दो और लड़ो !
सेनापति ! मेरे सेनापति ! क्लीवों में समरोल्लास भरो !

हममें भी हिम्मत है, बल है; तुमको इसका सन्देह न हो !
तुम बढ़ो और बढ़ते जाओ, हमसे बिल्कुल निश्चिन्त रहो !
हमको लड़ना ही भाता है; हमको आता है मरना भी !
हम विकट खिलाड़ी, तुम देखो यह खेल मौत का और कहो !
हममें वह ताकत है, जिससे पाखण्ड डोलता है थरथर !
हम बैठ चुके अब वर्षों तक, हम सदियों तक सुख से सोये !
सेनापति ! मेरे सेनापति ! हम जीवनभर कलपे रोये !

तुम रण का आज निमंत्रण दो, तुम भैरव का आह्वान करो;
जय शंखनाद फिर गूँज उठे, तुम रणताण्डव का गान करो !
ये अकर्मण्य, आलस्यमग्न, हो गये आज ये जीवन्मृत !
तुम युद्ध करो, नवशक्ति भरो; नव सेना का निर्माण करो !
ये तार पुराने हैं फेंको; झंकार बेसुरी है इनकी !
लग गये जंग हथियारों में, निःशक्त हमारे हाथ हुए !
सेनापति ! मेरे सेनापति ! निर्वीर्य हमारे साथ हुए !

तुम आज्ञा दो, हम तत्क्षण ही अविरोध यहाँ से कूच करें !
तुम आज्ञा दो केवल हमको हम समरक्षेत्र में जूझ मरें !
तैयार खड़े हम कब से हैं; बस, एक इशारा पाने को !
तुम कहो और रणचण्डी के खप्पड़ में हम जा कूद पड़ें !
हम शिर देने को हैं प्रस्तुत ; हम उद्यत हैं बलि होने को !
यौवन बस निश्चय करता है; फल की न उसे होती शंका !
सेनापति ! मेरे सेनापति ! तुम आज बजाओ रणडंका !

हम आँधी हैं, इन पेड़ों से क्षण भर कब रुकनेवाले हैं ?
हम झंझा हैं, इन झड़ियों में तिल भर कब झुकनेवाले हैं ?
हम अटल रहेंगे पर्वत-से; नभ-से गम्भीर रहेंगे हम !
हम सागर हैं, दो बूँदों से हम भी क्या चुकनेवाले हैं ?
हम सैनिक हैं, दिग्विजयी हैं, हम ज्वालामुखी धधकते-से;
हम आसमान में फूल खिला, पत्थर को भी पिघला देंगे !
सेनापति ! मेरे सेनापति ! नन्दन को आज जला देंगे !

हम फूँक पहाड़ों को दें यदि, ये अम्बर में उड़ जायेंगे !
ला दें इन्क्लाब, धरा धसके, घर घर विद्रोह जगायेंगे !
हड्डियाँ चबा हम डालेंगे मजहबी जोश, पागलपन की ;
हम टूट पड़ेंगे बिजली बन, हम जिधर जहाँ बढ़ आयेंगे !
यह सन्नाटा, यह खामोशी ; खलती है हमको यह चुप्पी !
अधिकार माँगने से मिलता ? सचमुच हम बड़े अभागे हैं !
सेनापति ! मेरे सेनापति ! फिर भी हम अब तो जागे हैं !

दुनिया ने बदली है करवट, लेता नवयुग अँगड़ाई है ;
यौवन करता है सिंहनाद, जग गयी आज तरुणाई है !
युगयुग से मानव उत्पीड़ित, थे कफन ओढ़कर सोये जो ;
तसवीर आज उन मुर्दों की जंजीर बजाने आई है !
हैं टूट रहीं कड़ियाँ खनखन; तूफान उठा है यह भारी !
मरघट से किसने, सुनो, मरण की बंशी यह तीखी टेरी !
सेनापति ! मेरे सेनापति ! फूँको अब तुम भी रणभेरी !

बाजी

एक सेठ थे लल्लू भाई ;
कल्लू उनकी सगी लुगाई ।
लल्लू - कल्लू दोनों झक्की ;
दोनों वीर चलाते चक्की ।
चक्की चला पकाते रोटी ।
लेकिन थी किस्मत ही खोटी ।
हर दिन हो जाता था झगड़ा ।
धक्कम - धुक्की, रगड़म - रगड़ा ।
दोनों थे काफी मुस्तंडे ;
पिल पड़ते थे लेकर डंडे ।
पहले बातों के बमगोले ,
पड़ते थे गाली के ओले ;
पीछे उठते लल्लू भाई ,
बात - बात पर ठनी लड़ाई ।
घर में कुरुक्षेत्र रच जाता ;
घोर महाभारत मच जाता ।
बीबी बिलकुल ही रणचंडी ।
मियाँ बनें फिर क्यों न शिखंडी ?
ऊखल - मूसल, थाली-लोटे ;
जो भी बर्तन छोटे - मोटे ,
अस्त्र - शस्त्र बन गये निराले ।
तोप, तीर, गन, बरछी, भाले ।
चुक जाते सब अस्त्र-शस्त्र जब ।
मल्ल-युद्ध में भिड़ जाते तब ।
झोंटा पकड़ खींचता लल्लू ;
इधर सेठ की दाढ़ी कल्लू ।

दोनों के दोनों दीवाने ।
हार कौन दोनों में माने ?
लड़ते-लड़ते थक जाते जब ,
सारा पोथा बक जाते जब ,
हो जाती तब ठंढी छाती ,
यों ही स्वयं सन्धि हो जाती ।

इसकी वजह बहुत छोटी थी ,
कल्लू तबियत की खोटी थी ;
पकतीं तीन रोटियाँ केवल ;
जिससे होता था कोलाहल ।
आप रोटियाँ दो ले लेती ,
केवल एक सेठ को देती ;
यही रोज का था बस, किस्सा ।
सिर्फ एक लल्लू का हिस्सा ।

एक रोज लल्लू बोला यों—
नाहक रोज झगड़ती हो क्यों ?
कर ले आज फैसला मिलकर ,
जिससे फिर झगड़ें न परस्पर ।
किसकी होतीं लाल गोटियाँ ?
किसको कितनी मिलें रोटियाँ ?
अब से दोनों चुप हो जायें ।
जगे रहें, चाहे सो जायें ।

शर्त्त यही, जो बोले पहले ;
वही टूट रोटी की सह ले ।
जो सबसे पीछे बोलेगा ,
वही रोटियाँ दो पावेगा ।
दोनों हुए शर्त्त पर राजी ।
और लगी दोनों में बाजी ।

बैठे दोनों अगल-बगल हैं।
दोनों की ही एक शकल है।
देख रहे आँखों से सब-कुछ।
लेकिन मुँह से बिलकुल ही चुप।
पहले कौन मौन-व्रत तोड़े ?
और रोटियाँ दो-दो छोड़े ?
इसीलिये तो चुप्पी साधी।
बीती रात जागते आधी।
तब लल्लू का जी घबराया।
भूख-प्यास ने रंग जमाया।
सोचा, कैसी शर्त्त लगाई ?
मिले एक रोटी ही, भाई।
फिर कल्लू को दिया इशारा।
अरे बोल दे, मैं ही हारा।
लेकिन कैसे कल्लू बोले ?
वह क्यों कर अपना मुँह खोले ?
आखिर बात बढ़ी फिर आगे,
दोनों बीबी-मियाँ अभागे।
भोर हुई, वह दिन भी बीता;
किन्तु न कोई हारा-जीता।
पहले थे चुप अपने मन से;
अब हो गये मौन अनशन से।
बड़े विकट थे दोनों प्राणी।
आई याद मियाँ को नानी।
दो दिन का उपवास हो गया।
जैसे पूरा मास हो गया।
अब आ कौन बैल को दूहे।
अरे, पेट में कूदे चूहे।

हुआ सूखकर लल्लू हाथी।
किसका कौन दुःख में साथी ?
यह औरत है या कंगारू;
मरने पर हो गया उतारू।
लेट गया लम्बा धरती पर।
और तान ली लम्बी चादर।
कल्लू पड़ी बड़े घपले में।
बाँधे क्या वह ढोल गले में ?
दौड़-धूप कर टोले-भर में;
जमा किया लोगों को घर में।
देख सेठजी की यह हालत;
टूट गई लोगों की हिम्मत।
सेठ मर गये, सेठ मर गये।
इस दुनिया से कूच कर गये।
शोर हुआ, सब पहुँचे झटपट।
लाये उठा सेठ को मरघट।
लोगों ने फिर चिता बनाकर।
दिया सेठजी को रख उसपर।
और कहा कल्लू को आने।
पास चिता में आग लगाने।
लेकर ऊक हाथ में ज्योंही।
आगे बढ़ी लुगाई, त्योंही।
कूद चिता से लल्लू आया।
और जोर से वह चिल्लाया—
जीते जी मुझको न जलाओ।
मैं हारा, तुम जीतीं, जाओ।
तुम्हीं रोटियाँ दो ले लेना।
सिर्फ एक ही मुझको देना।
समझी सबने सच्ची घटना।
पहुँचा मेरा किस्सा पटना।

कृष्ण

कंस के कुशासन - हुताशन की विकराल
ज्वाल से बेहाल सारा नर - परिवार था ।
जग से विचार धर्माधर्म का था उठ गया,
खूब गर्म अनय - अनीति का बाजार था ।
चारों ओर दारुण मचा था हाहाकार तथा
उमड़ अपार पड़ा पाप - पारावार था ।
मुक्त करने को भव - भार धर्मोद्धार - हेतु
हुआ कारागार - बीच कृष्ण - अवतार था ।

साधुओं के शीश पै थी नाचती कृपाण सदा,
पर - हाथ नारियों की आबरू बिकानी थी ।
करते थे 'त्राहि - त्राहि' द्विजदेव आकुल हो,
मिटती-सी गोकुल की जा रही निशानी थी ।
रानी बन गई पाशविकता की नग्न मूर्ति,
सबकी जबानी वही एक ही कहानी थी ।
चरचा चलाता कौन न्याय की कहो तो वहाँ,
जब बनी राजकीय सत्ता ही दीवानी थी ।

अत्याचार - अनल - उत्ताप बढ़ा इतना कि
तूल के समान आसमान लगा बलने ।
काँप उठे देवलोक, गोलोक, भूलोक आदि
शेष अकुलाये, लगा क्षीरनिधि जलने ।
डोल उठे धीरज खो दिशापाल हो सभीत,
ऊधम मचाया ऐसा चारों ओर खल ने ।
छोड़ कमलासन सुखासन को ईश आप
दौड़े धरा - धाम को दनुज - दल दलने ।

राजता अखण्ड तेज आनन पै देख, जिसे
भासित मलीन हुआ ओज दिनकर का;
परम प्रचण्ड - सा प्रताप लख भासमान
चूर हुआ सारा अभिमान सुरवर का ।
दर्प हुआ दूर गात - छवि देख दर्पक का,
खर्व हुआ गर्व सर्व शीघ्र विधि - हर का ।
सकल अनीति भव - भीति हुए तिरोहित,
दानवों पै चला जब चक्र चक्रधर का ।

करने चकित लगे व्रज के निवासियों को,
लीला दिखला के नित्य अपनी नई - नई;
तृण के समान उड़ गया तृणावर्त्त और
पूतना बिचारी मरी करके दई - दई ।
कितनों महीपों को सँहारा समराङ्गण में,
रौंदे गये धूल - जैसे पैरों के तले कई ।
होते ही उदय कृष्णचन्द्र के निमिष में ही,
नखत - नरेशों की मनोज्ञता चली गई ।

देखा कभी तरणि - तनूजा में कौतुक - वश
कालीनाग - शीश पर नृत्य करते हुए ।
धेनु को चराते कभी सङ्ग ग्वाल - बालकों के,
देखा मंजु बाँसुरी में स्वर भरते हुए ।
देखा कभी देते गीता - ज्ञान युद्ध-प्रांगण में,
धाराधर - धारा में कुधर धरते हुए ।
लड़ते जघन्य जरासन्ध, बाण, चाणूर से,
बक, अघ आदिक के प्राण हरते हुए ।

तोड़ दे विमोह का कठोर जाल - व्याल-माल
कर्म - करवाल ले कराल महाकाली - सी ।
बोर दे अपार वसुधा को स्नेह से विहीन,
पावनी प्रकाशिता प्रभात की सुलाली - सी ।
कर दे विकुण्ठित कुठार कुविचारियों को,
पाले पुण्य - कल्पवृक्ष नन्दन के माली - सी;

चुन ले अनन्त दुःख मानवों के तेरी मूर्ति,
विलगा दे नीर - क्षीर मानस मराली - सी।

जीवन के दीप को जगा दे एक बार फिर,
शुभ्र - ज्ञान - घाती अन्धकार का संहार हो!
निराधार विश्व के असीम हाहाकार - ज्वार
बीच सर्वाधार तेरा आज अवतार हो!
त्याग की विराग - रश्मि जागे दिव्य आनन पै,
अन्तर में बहता प्रमोद - पारावार हो!
नाचें ऋद्धि - सिद्धियाँ सदेह द्वार - द्वार पर,
गेह - गेह नाथ, तेरे भावों का प्रचार हो!

काट-काट पाप - शैल - शृङ्ग सुरसरिता - सी
ताप - त्रस्त प्राणियों का शाप हरती रहे।
नीरस असार मर्त्य - धाम में पयोधर - सी
शान्ति - सुख - मोद - रस - धार भरती रहे!
मार - मार कलुष - कुरङ्ग विश्व - कानन में,
निर्भय दहाड़ सिंहनी - सी चरती रहे।
धरती धरा को रहे करुणा तुम्हारी धीर,
साधुओं के उर में किलोल करती रहे।

दूर हो प्रमाद, अवसाद औ विषाद सभी,
लोक - दृष्टि जाये लग सत्य - ध्रुवतारा में।
डूब जाये पृथिवी की पातक - प्रतीति - रीति,
देव, तेरी गीता की पुनीत नीति - धारा में।
खण्डित हो दम्भ-स्तम्भ, पण्डित-पाखण्ड दण्ड,
पाला पड़े पाप की विनाशकारी कारा में।
पारा के समान द्रवीभूत हो प्रपंच सारा,
आग लगे भीषण संहार के सहारा में।

छोड़ दुरयोधन के मीठे - मीठे पकवान
प्रेम से विदुर - घर रूखा शाक खाया था।
मित्रता के नाते सत्यभामा की रसोई छोड़
मलिन सुदामा का सुचाउर चबाया था!
करुण पुकार सुन द्रुपद - सुता की नंगी
नंगे पैर दौड़ दूर द्वारका से आया था!
भक्त-हित शोणित की वाहिनी बहा दी और
आरत के लिये महाभारत मचाया था।

जगती में जीवन की ज्योति-सी जगा दी और
प्रेम की कली को विश्व-बीच में खिला गया।
ज्ञान का प्रकाश ऐसा फैला दिया चारों ओर,
जिससे अज्ञान - तम क्षण में बिला गया।
त्याग, लोक-सेवा और बलि का आदर्श बता,
अनाचार - पातक के मूल को हिला गया।
जिला गया लक्ष-लक्ष मृतकों को मरे पड़े,
गीता - अनूप - सुधा पावन पिला गया।

असत्य

मैं श्यामा को नहीं बुलाता; माँ, वह क्यों फिर आती है?
धमकाती है, मुझे खिझाती; यों ही रोज चिढ़ाती है!
लेकर मेरा नाम, जोर से आँगन में चिल्लाती है;
करती है बरजोरी मुझसे, मुझे देख मुसकाती है!
धूल उड़ाकर, मुझे रुलाकर, प्रतिदिन मूर्ख बनाती है!
मैं श्यामा को नहीं बुलाता; माँ, वह क्यों फिर आती है?

मैं राधा सँग नहीं खेलता; माँ, वह क्यों फिर आती है?
और मटर के खेतों में वह दिन भर मुझे घुमाती है!
आँख बचाकर रखवाले की बगिया में घुस जाती है!
पेड़ों पर चढ़कर चुपके - से लीची आम चुराती है!
करती सारा काम आप ही, मेरा नाम लगाती है!
मैं राधा - सँग नहीं खेलता; माँ, वह क्यों फिर आती है?

मैं कट्टो को प्यार न करता; माँ, वह क्यों फिर आती है ?
और, मुझे उत्पात मचाने को वह क्यों उसकाती है ?
मेरी बिल्ली के बच्चे को जानें, क्या सिखलाती है ?
मेरे तोते को वह, जानें, कैसा पाठ पढ़ाती है !
मुझे छेड़ती, मुझे मारती; मुझको रोज सताती है !
मैं कट्टो को प्यार न करता; माँ, वह क्यों फिर आती है ?

मैं नीलू को नहीं चाहता; माँ, वह क्यों फिर आती है ?
नदी किनारे ले जाती है, मेरे साथ नहाती है !
मैं करता हूँ मना, किंतु, वह मेरी बातें माने क्यों ?
मैं न तैरता जब पानी में, देती मुझको तानें क्यों ?
हाथ पकड़कर, वही नदी में मुझको नित तैराती है !
मैं नीलू को नहीं चाहता; माँ, वह क्यों फिर आती है ?

मैं मुन्नी से नहीं बोलता; माँ, वह क्यों फिर आती है ?
उस कदंब के नीचे वह क्यों मुझे खींच ले जाती है ?
कहती, आँखमिचौनी खेलो; नाचो, मुरलीधर बनकर !
आप पहनती नीली साड़ी, मुझको देती पीतांबर !
मैं भागा फिरता हूँ उससे, वह क्यों धूम मचाती है ?
मैं मुन्नी से नहीं बोलता; माँ, वह क्यों फिर आती है ?

मैं बिंदा को नहीं पूछता; माँ, वह क्यों फिर आती है ?
ग्रामोफोन बजाकर प्रतिदिन मुझको वही सुनाती है !
ठाकुर की पूजा करती है, मुझसे फूल मँगाती है !
मुझे जरा-सा गुड़ देकर, चट आप सभी कर जाती है !
वह बैठी हँसती रहती, मुझसे पानी भरवाती है;
मैं बिंदा को नहीं पूछता; माँ, वह क्यों फिर आती है ?

अरे, नहीं ! सब झूठी बातें; उन्हें प्यार मैं करता हूँ !
किसने कहा कि उन लोगों से मैं इस तरह झगड़ता हूँ ?
उन्हें न रोको, बाधा मत दो; माँ, मेरे घर आने दो !
वे सखियाँ है मेरी प्यारी; मुझे खेलने जाने दो !
मैं न किसीसे करता झगड़ा; मैं न किसीसे लड़ता हूँ !
अरे, नहीं ! सब झूठी बातें; उन्हें प्यार मैं करता हूँ !

छिन्न माल

छिन्न कुसुमों की बनी यह माल ।

ओ बाँकी चितवनवाले

ओ बाँकी चितवनवाले !
तुम भारत के भाग्य - विधाता,
तुम स्वदेश के मतवाले !

ओ पैरों में पायलवाले !
तुममें अर्जुन का साहस है
और भीष्म का प्रण भीषण !
तुममें रघु-दिलीप का शोणित,
हरिश्चन्द्र का सत्य - वचन !
ज्ञान जनक-गौतम का तुममें,
बुद्ध - देव का त्याग विमल;
क्षमता है तुममें उपेन्द्र की,
महावीर का है भुज - बल !
राम - कृष्ण बन तुमने युग—
युग में भू के संकट टाले !

ओ डगमग—से पगवाले !
ध्रुव का-सा विश्वास तुम्हींमें,
तुम प्रह्लाद - सदृश निश्चल;
लव-कुश-से तुम वीर, बभ्रु—
वाहन का तुममें रण-कौशल !
तुम अभिमन्यु, महाभारत में
चक्र - व्यूह के संहारक;
और शिवानी - पुत्र तुम्हीं हो
वीरभद्र, विप्लव - कारक !
भरत तुम्हीं, कर बाल-केशरी के
मुख में जिसने डाले !

आरसी

ओ मोहन, मुरलीवाले!
तुम चाणक्य निपुण हो गुण में,
तुम प्रताप चिर-अभिमानी!
तुम में काव्य-शक्ति भूषण की,
कर्ण और बलि-से दानी!
तुम अशोक की करुणा हो,
विक्रम-से गुण-ग्राही, न्यायी;
तुम त्रिलोक-विजयी मान्धाता,
शंकर-से तुम विष-पायी!
ईश्वर की प्रभुता है तुममें,
यद्यपि तुम भोले-भाले!
ओ प्रिय-पीताम्बर—वाले!
तेरी आँखों में जादू है,
उस जादू से जग मोहित;
तेरे गालों पर लाली है,
उस लाली से नभ लोहित!
तेरे हाथों में दिनकर
जुगनू है, चन्द्र खिलौना है!
तेरे आगे पृथ्वी क्या?
आकाश झुका है, बौना है!
तेरे साथ खेलते पुलकित
पन्नग वे विषधर काले!
ओ उलझे बालों—वाले!
तू बाँधेगा लहरों को,
यह सागर जो लहराता है!
तेरा विजय-केतु यह अक्षय
अम्बर में फहराता है!
तेरे एक इशारे पर
होता है जग में परिवर्तन;
तेरी तुतली बोली सुनकर
स्तब्ध सिन्धु का है गर्जन!
तू ही तोड़ सकेगा ठोकर से
कारागृह के ताले!
ओ मिसरी-माखन—वाले!
तू आँधी को रोक सकेगा,
तोड़ सकेगा तू बन्धन,
तुझमें यौवन की अकुलाहट,
तुझमें पौरुष औ' जीवन!
तू भविष्य का सूत्रधार है,
वर्त्तमान का संघर्षण;
तू बिजली बनकर हँसता है,
करता पुष्पों का वर्षण!
तू इस मिट्टी में खेला है,
पिये अमृत के हैं प्याले!
ओ टेढ़ी टोपी—वाले!
यह भारत है देश हमारा,
यह प्राणों का प्यारा है!
यह देवों को भी दुर्लभ है,
यह त्रिभुवन में न्यारा है!
देख, अरे! इन झोपड़ियों में
जो भूखा है, नंगा है!
वह है शिखर हिमालय तेरा,
यह तेरी ही गंगा है!
तेरा यह उपवन उजड़ा है,
पड़ा लुटेरों के पाले!
ओ भारत के रखवाले!
तुझसे जननी को आशा है,
तू ही एक सहारा है!

तू सूनी कुटिया का दीपक,
तू आँखों का तारा है।
जब-जब बढ़ा अधर्म धरा पर,
तूने है अवतार लिया;
और, दानवों के पंजे से
मानव का उद्धार किया।
तू सुन, बेड़ी-हथकड़ियों का
झन-झन, कैदी के नाले।
ओ बाँकी चितवनवाले।

३०४

तनिक धीमे-से छूना प्राण!
सजनि, धीमे-से मेरे प्राण!
हृदय के निभृत कोण में मौन
वेदना सोई है अनजान।
तुम्हारी आहट पा सुकुमारि,
कहीं जग जाय न यह नादान।
जगत की कुटिल दृष्टि से सदा
छिपा कर रखता अपना प्यार।
देखकर जग के सुन्दर चित्र
कहीं जाये न मचल मनुहार!
कहीं बज उठें न ये इक बार
तुम्हारे छूते ही सुकुमार,
हृदय-वीणा के झीने तार;
प्रिये, दुर्बल-से विह्वल तार।
अतः, धीमे-से छूना प्राण!
सरल, कोमल, मधु, मेरे प्राण!

रण-देवता

वार्साई की सन्धि। महा-रण-क्लान्त श्रांत योरोप विमन;
चतुर्वर्ष-व्यापी समरानल शान्त हो चुकी थी भीषण!
दलित, पराजित, अपमानित, लाँछित जर्मन-साम्राज्य निखिल
महायुद्ध की वेदी पर वलि हुआ। मित्र-राष्ट्रों ने मिल,
विविश किया उसको झुकने को। उत्पीड़ित, शोषित जर्मन,
शक्ति-हीन, असहाय, बुभुक्षित; खो प्रभुत्व, गौरव, धनजन;
अर्थाभाव, उदर की ज्वाला, शोषित वर्गों का क्रन्दन;
हाहा-कार चतुर्दिक छाया, था श्मशान-सा नर-जीवन!
उसी रक्त-संक्रान्ति-लग्न में आया एक महामानव,
जिसकी वाणी में पौरुष था, प्रलय-रुद्र का डमरू-रव;
विस्मय-विकल विश्व ने देखा, शंका से कम्पित थर-थर,
किया मुक्ति का गर्जन जिसने, वह था फ्यूरर हर हिटलर!

वह यौवन का अग्रदूत, वह जर्मन का नेता, त्राता;
वह विक्षुब्ध व्याघ्र-सा व्याकुल; वह ध्वंसक, वह निर्माता
भाग्य-विधाता बना जातिका, मुक्त देश का द्वार किया;
उसने लहरों को ललकारा, जागृति का सन्देश दिया!
'जर्मन-जाति अभी जीवित है! उसमें भी साहस-बल है!
उसके तरुणों में भी यौवन, सागर में दुर्गम जल है!'
अपनी आँखों से देखा था उसने युद्धस्थल काला;
भाग लिया था उसने भी रण में सैनिक बन मतवाला!
और उसीके सम्मुख जर्मन, कल के वीर, अजेय, प्रबल,
पद-मर्दित कर दिये गये उच्छिन्न मूल-से, दैन्य-विकल!
वह मृत्युञ्जय, नीलकण्ठ-सा गरल पान कर आया था;
रण-ताण्डव प्रत्यक्ष देख, ज्वालामय जीवन लाया था!

वह नाटा-सा; पर बलिष्ठ। भुजदण्डों में पौरुष कर्कश!
कठिन लौह का वक्षस्थल, जिसमें दुर्दम-सा दुःसाहस;
वज्रनाद-सा विस्फोटक स्वर, दावानल-सा जलता-सा;
ज्वलामुखी अशान्त, उग्र, जाग्रत वह आग उगलता-सा!
चिन्तन की रेखाएं कुंचित-सी ललाट पर, लोचन में
विद्युत का आकर्षण, पर्वत की अखण्ड दृढ़ता प्रण में!
सदा से मरण लड़नेवाला, वह निर्भय, उद्दाम, अचल,
चरणों में आँधी की गति, गति में झंझा का कोलाहल!

इंगित में भूचाल, श्वास में प्रलय-पवन का आंदोलन;
पद-पद पर विप्लव, विनाश, विद्रोह, वह्नि, विस्फोट, निधन;
वह प्रचण्ड, वह रणोन्मत्त, वह हिंस्र, रुधिर का चिर-इच्छुक;
यूरप के सौभाग्य-क्षितिज पर धूमध्वज वह, समरोत्सुक!

'हम हैं आर्य' कहा उसने-'स्वस्तिक जय चिह्न हमारा है!'
और आर्य-वीरों की सचमुच उसमें जीवन-धारा है!
वह वीरत्व, विजय-आकाँक्षा, दुर्दम रक्त-पिपासा वह;
और 'वीर-भोग्या-वसुन्धरा' का प्रकाश, चिर-आशा वह!
उसी शेष-कंकाल-मात्र पर नवयुग को नवरूप दिया;
कोटि-कोटि युवकों को यौवन; तेजस्वी, संगठित किया!
उसने जर्मन को नव-साहस, नव-जीवन, नव-ओज दिया;
'जय या रण-शय्या!' उसका यह मंत्र, शक्ति-संचार किया!
उसके प्राणों में अकुलाहट, वह नवीन-जर्मन-स्रष्टा;
वह अदूर, उज्वल भविष्य में नव-साम्राज्य स्वप्न-द्रष्टा!
वह पागल जर्मनी के लिये; वह खूनी, वह प्रतिहिंसक;
वह युगान्तकारी, विद्रोही; वह कठोर, वह परिवर्तक!

वह नूतन जर्मन का नायक, वह जर्मन का उद्धारक;
शत्रु नपुंसकता का वह, चिर कायरता का संहारक!
नीत्शे की रण-तृषा, महत्त्वाकाँक्षा कैसर की दुर्दम;
कूटनीति उसमें अद्भुत विस्मार्क-सदृश, यम-सा निर्मम!
वह जर्मन का जीवन है, जर्मन है उसका ही जीवन,
बहता उसकी स्नायु-नाडियों में जर्मन-शोणित पावन!
हर हिटलर, गोबल्स और हर रिबन ट्राप, गोरिंग मार्शल;
हृदय और मस्तिष्क, बाहु; वह स्वयं शक्ति का केन्द्रस्थल!
यह प्रबुद्ध जर्मनी आज 'हिटलर महान' का फौलादी;
अँगड़ाई लेकर जागा है नवयुग में नात्सीवादी!
पी यहूदियों का शोणित, हो उठी प्यास इसकी खरतर;
इसे क्षुधा है रक्त-मांसकी, क्रुद्ध व्याघ्र-सा यह बर्बर!

वृक्ष जर्मनी का विशाल जो, महायुद्ध में शत-खण्डित,
छिन्न भिन्न, निर्जीव, शुष्क-सा पतित हुआ भूपर दण्डित,
उसे रुधिर के जल से सींचा, किया पल्लवित हिटलर ने;
आज पुनः वह हरित, बढ़ीं शाखाएं विश्व-विजय करने!
जिसकी छाया में अशेष, निःशंक जर्मनी का यौवन,
करता है जय-घोष, निरंकुश, श्वेत दर्प से रण-गर्जन;

'नौ करोड़ ये जर्मन, जर्मन-तरुण, अरुण, उद्दण्ड, सदल;
निर्भय रण हुंकार करेंगे, कौन करेगा मार्ग विचल?
ये दिग्विजयी जर्मन-योद्धा-गण छा लेंगे भूमण्डल;
वायु-यान ढँक लेंगे रवि की किरणों को, बनकर बादल!
हम जाग्रत हैं हम जीवित हैं, कोई शक्ति नहीं भूपर,
हमें दबा कर जो रक्खे, हम चढ़ जायें उसके ऊपर!'

सन्धि-पत्रका एक-एक अक्षर है जलता-सा लोहित
हिटलर के अन्तर्पट पर! है उसे स्मरण वह क्षण मोहित,
सप्त महारथियों से निर्मित चक्र-व्यूह में अति-भीषण,
फँस अभिमन्यु-समान जर्मनी, पिसा निरस्त्र, निराश विमन!
उसे प्रमत्त बनाया है अपमान, घृणा, चिर-लाँछन ने;
उसे किया उत्पन्न विताड़ित जर्मन के आक्रन्दन ने!
उसे बनाया हिंस्र, क्रूर, अन्याय और उत्पीड़न ने;
उसे दिया अवसर बढ़नेका, पेरिस ने औ लन्दन ने!
और आज तो वह हत्यारा, वह पागल है, वह आग्निक;
अश्वमेध भी नहीं, घोर नर-मेध यज्ञका वह साग्निक;
शनि सी दृष्टि जिधर डाली, रक्षक उसका जग में न कहीं!
कल डूबा आस्ट्रिया, आज फिर योरप में पोलैन्ड नहीं!

मिटा रोम-साम्राज्य पुरातन, मिटे मिश्र औ यूनानी;
आर्यावर्त्त विनष्ट हुआ, हो गये लुप्त जग के प्राणी!
मानव तो क्षण-भंगुर ही, ये सूर्य-चन्द्र-तारक-मण्डल,
नाश-सृष्टि के चिर-बन्धन में बाध्य, श्वास लेते प्रतिपल;
सम्भव है, उस दिवस तुम्हारे गौरव का हो जाय पतन!
नात्सीवाद मिटे दुनिया से, यह जर्मनी और जर्मन!
महावीर, फिर भी युग-युग तक अमर रहोगे तुम मरकर;
उस युगका इतिहास कहेगा, तुम दानव थे अथवा नर?
अभी पिपासित है रणचण्डी; भरा न शोणित का प्याला;
जानें, कब रुकता प्रलयोत्सव? जानें कब बुझती ज्वाला?
अन्धकार-कवलित भविष्य वह, कौन कहे, ओ आनन्दी!
नेपोलियन पुकार रहा— यह कौन हमारा प्रतिद्वन्द्वी?'

वह निर्द्वन्द्व, निरंकुश, निर्भय; दुर्विनीत, दुर्वार, अमर;
वह नृशंस, दुर्द्धर्ष, धृष्ट वह; अभिमानी, दुर्गम, दुस्कर!
वह अशान्तिका धूमकेतु, वह राहु सभ्यता-राका-हर;
वह जर्मन का अधिनायक, वह डिक्टेटर, महान् हिटलर!

महानिशा

यह प्रलय की रात्रि, सहचरि,
मृत्यु से मैं लड़ रहा हूँ।
एक दिन पाया तुम्हारे
प्रेम का मैंने सहारा;
खोजता था भ्रान्त जब मैं
विश्व-तटिनी का किनारा।
आ गई थीं तुम लहर-सी
एक सखि! अज्ञात-दिशि से;
प्रेम बनकर खिल पड़ा था
वह मधुर परिचय तुम्हारा।
आज मुरझे फूल-सा
तरु-डाल से मैं झड़ रहा हूँ।

आज तुमको देखकर यह
रो रहा मेरा हृदय है।
यह कठिन संसार, लेकिन,
पुष्प-सा मेरा प्रणय है।
मृत्यु से बचकर कहाँ जाऊँ?
छिपूँ किस अमृत-वन में?
इस क्षणिक संसार में अलि,
मृत्यु से मुझको न भय है।
चिर-पराजित, काल से मैं
द्वन्द्व निष्फल कर रहा हूँ।

तुम मिली थीं, मैं सुखी था;
आज खोकर भी सुखी हूँ।
यह युगों से खेल मेरा
है रहा, मैं कब दुखी हूँ?
कौन जाने, यों मिलूँगा
प्राण, कितनी बार तुमसे।
कब पड़ूँगा फट, हिमावृत
मैं विकल ज्वालामुखी हूँ।
एक बुद्बुद् की तरी-सा
सिन्धु में मैं तर रहा हूँ।

आज, शत-शत मधुर स्मृतियाँ
घेरती हैं प्राण मेरे,
बाँधते हैं बाहु-बन्धन में
मुझे, अरमान मेरे।
रुक सकूँगा मैं भला क्या?
विकल थर-थर काँपता हूँ।
छोड़ भागे मोड़ मुख, किस
ओर, जानें, ज्ञान मेरे।
पास तो आओ तनिक तुम,
मैं अकेला डर रहा हूँ।

भूल भी सकता तुम्हें यदि,
तो मुझे चिन्ता न होती;
सान्त्वना यदि दे न सकतीं,
तो विकल क्यों आज रोतीं?
जानता यदि एक दिन
मिटना पड़ेगा प्रेम खोकर;
राह में तिनके न चुनती
आयु भर जीवन-कपोती।
जो मिला, सब कुछ लुटाकर
आज तो मैं मर रहा हूँ।
चाहता, तो क्या न क्षण भर
मैं स्वयं को रोक पाता?

इस मरण की नींद में
उन्मादिनी, मैं उठ न जाता ?
आप ही मैं किन्तु, सालस;
कौन फिर मुझको जगाये ?
मैं पड़ा मदहोश, निर्मम
कौन यों लोरी सुनाता ?
तुम न पूछो कुछ, किसीका
कौन-सा धन हर रहा हूँ ?

सो रहा हूँ और कोई
पास बैठा गा रहा है;
मुसकरा कर, लोचनों से
कुछ मुझे समझा रहा है।
मैं समझता हूँ उसे,
पहचानता भी वह इशारा;
उँगलियों से कौन मेरे
केश को सुलझा रहा है ?
वह खड़ा हँसता, उसे मैं
बाहुओं में भर रहा हूँ।

३०७

न छेड़ो मुझे आज सुकुमार;
भग्न मेरी तन्त्री के तार।
रुठ कर, मचल, छीन सर्वस्व
चला है गया कहीं मनुहार;
विजन में सिसक रहा हूँ मौन,
कहीं आ जाय न प्राणाधार;
निराशाओं की खाकर ठेस
क्षुब्ध हैं मेरे तन-मन-प्राण।
किसीके असह विरह में आज
गा रहा हूँ अतीत के गान।
रोकते क्यों अन्तर का वेग ?
जरा रोने दो आज उदार;
आँसुओं की धारा में इन्हीं
वहा लेने दो दुख का भार।
अरे, क्यों छेड़ रहे सुकुमार ?
आज टूटे हैं उर के तार।

३०८

तुम्हें याद है क्या सजनी ?
उस दिन जब हाँ, मुझे बुलाने
आये थे मेरे सुकुमार;
उन्हें देखते ही कैसे मैं
क्षण भर में हो गई निसार।
अर्द्ध - रात्रि थी, नीरव पथ था;
छाई थी अँधियाली घोर।
संकेतों से जीवन - धन ने
मुझे बुलाया अपनी ओर।
काँप उठी सिर से पैरों तक,
सहमी रोमलता अविराम।
सिहरी देह सोच कर उन
बेधड़क इशारों का परिणाम।
मैं शर्मा - सी गई, खड़ी ही
रही, न आयी उनके पास।
पल भर ठहर, देख कर मेरी
ओर चले वे गये उदास।
कैसी थी वह घड़ी, हाय वह
कैसी थी श्यामा रजनी—
तुम्हें याद है क्या सजनी ?

कवि-प्रशस्ति

जीवन - जहाज - जीर्ण विश्व - पारावार-बीच
बन के आधार आज कौन पार करता ?
मुर्दों को जिलाता और क्लीवों को उठाता कौन ?
रक्त में नरों के बिज्जु - धार कौन भरता ?
गूँथ वलि - तार में स्व - प्राण सुमनों के हार
माँ की पुण्य - वेदी पर कौन आज धरता ?
हरता कहो तो कौन जननी की पीड़ा मौन ,
आज कवि जो न निज लेखनी पकड़ता ?

पल में है होता नग्न - नर्तन कल्पान्तक का ,
चारों ओर घोर हाहाकार मच जाता है ।
चू पड़ते व्योम - फूल शीशफूल - से तुरन्त ,
तरणि का तीव्र ताप जग को जलाता है ।
फूटती बुभुक्षित है ज्वालामुखी धक् - धक् कर,
दौड़ - दौड़ दुनिया को भैरव हिलाता है ;
काँप उठता है विश्व - पति भी भयातुर हो ,
जब कवि निज वज्र—लेखनी उठाता है ।

घूमेगा ख - मण्डल में धूमकेतु पागल - सा
सारी जगती में बस , आग ही दिखायेगी ;
हिलेगा अतल - तल पीपल के पात - सम ,
धरणी भी धसक पाताल में समायेगी ।
भूधर उड़ेंगे पंख फैला के विहंगम - से ,
क्षण में समस्त तारिकाएं बिलायेंगी ।
भड़क उठेगी दावानल की प्रचण्ड ज्वाल,
आज कहीं चल कवि - लेखनी जो जायेगी ।

जाग पड़ती है बडवाग्नि महासागर में ,
धूल मे समस्त जीव - जन्तु मिल जाते हैं ।
घूमता है नाश अट्टहास कर चारों ओर ,
व्याकुल पाखण्ड, द्वेष - आदि बिललाते हैं ।
देख - देख मदमाता विप्लव का ध्वंस - नृत्य
ओज - मुखी वीरों के कपोल खिल जाते हैं ।
फीके पड़ जाते सारे विश्व - तन्त्रियों के तार ,
कवि की विपञ्ची के जो तार हिल जाते हैं ।

जाते हैं समर में मनाते हुए मोद सब ,
क्रोधित हो भयानक युद्ध वे मचाते हैं ;
लड़ते हैं सिंहों - से , न करते हैं नेक भय ,
मातृ - हित भक्ति - पूत शीश वे चढ़ाते हैं ।
करते है दिग्विजय यों वे वीर - योद्धागण ,
सारी धरा में विजय - केतु फहराते हैं ।
जग को मुक्त करते हैं दासता के पाशों से ,
कवि के प्रमत्त गीत जब सुन पाते हैं ।

भूल कर अपना पुनीत पुण्य - कर्म हाय ,
चैन से समस्त विश्व सुख - नींद सोता आज ।
हो के शक्ति - हीन, हत-ज्ञान नर कायर - सा
वैभव-विभूति - मान सारी वस्तु खोता आज ।
कहता कौन पावन गौरव प्राचीन उन्हें ?
अपने लहू से मुख-कालिमा को धोता आज ?
तोड़ता कहो तो कौन बंधन धरा का घोर
अवतार कवि का न जग में जो होता आज ?

जुही की कली

री सजनि ! सुन, तू अभी नादान !

वसन्त - संगीत

जीवन - वन में प्रिय, नव - वसन्त है आया !
उपवन - उपवन में पिक का कूजन छाया !
द्रुम - द्रुम पर कोमल पल्लव -दल मुसकाया ;
वन - वन में अलियों का गुंजन मन भाया !
कण - कण में लोट रही यौवन की माया ;
जीवन - वन में प्रिय, नव - वसन्त है आया !

देखो, 'यह किसने मधु - सन्देश सुनाया ?
नव आम्र - कुंज से केशर - बाण चलाया ।
प्रिय, दिग्दिगन्त में कल-कल स्वर बिखराया ;
प्रति कुंज - द्वार पर वन्दनवार सजाया ।
किसको छूकर कंटकित लता की काया ;
देखो, किसने यह मधु—सन्देश सुनाया ?

फिरता है वन - वन मलयानिल मदमाता ;
रस कौन गगन से राशि - राशि बरसाता ?
कलिका - कलिका को छेड़, कपोल खिलाता ;
जाता वह पथ से बंशी कौन बजाता ?
रुक वीथि - वीथि में सुख - आनन्द मनाता ;
फिरता है वन - वन मलयानिल मदमाता ।

विकसित कदम्ब, रोमांचित वकुल सुकुसुमित ;
सस्मित पलाश-वन, चकित मल्लिका पुलकित ।
वन - मार्ग केतकी-परिमल-निर्मल-सुरभित ;
प्रमुदित संसार सकल, जन - मानस हर्षित ।
उर - उर में कौतूहल, उल्लास अपरिमित ;
विकसित कदम्ब, रोमांचित वकुल सुकुसुमित ।

आता दक्षिण से शीतल - मन्द समीरण ;
यह खिला धरा पर स्वर्ग - पुरी का नन्दन ।
मिलते सुदूर में नूतन और पुरातन ;
नव-किरण-जाल से शोभित जग का जीवन ।
वन-वासिनि, आओ, करो कुंज में नर्तन ;
आता दक्षिण से शीतल - मन्द समीरण ।

मुख-मुख पर चिर-सुख का अनुराग समुज्वल ;
जन - मन - मन में उन्मुक्त हास्य-कौतूहल ।
प्रति-गन्ध-वीथि में अगुरु - प्रवाह सुनिर्मल ;
मुखरित कलरव से दिशि-दिशि का पीताञ्चल ।
उड़ने को नभ में गिरि - वन - घाटी चंचल ;
मुख-मुख पर चिर-सुख का अनुराग समुज्वल ।

प्राणों में एक मरोड़, एक आलोड़न ;
प्रतिपल उत्कण्ठित, उत्सुक-उन्मन प्रतिक्षण ।
रज - रज के रोएँ - रोएँ में उद्दीपन ;
कण-कण में व्याकुल वेदन, थर-थर कम्पन ।
आलस्य - भरा आवेग, सरस आन्दोलन ;
प्राणों में एक मरोड़, एक आलोड़न ।

गाओ, रसाल - तरु से हिन्दोल लगाओ;
नव - नव लीला से झूलो और झुलाओ ।
इन प्यासे नयनों को मधु-पान कराओ ;
जग-हृदय-कमल-दल को कोमल विकसाओ।
मेरे आँगन में सुख - सुषमा सरसाओ ;
गाओ, रसाल - तरु से हिन्दोल लगाओ ।

आओ, अप्सरियो स्वर्ग - लोक की, आओ ;
गाओ , मिल कर आनन्द-गीत तुम गाओ !
हे सुन्दरियो ! नूपुर - कंकण झनकाओ ;
कल-कण्ठ-वल्लकी , वेणु - मृदङ्ग बजाओ !

तुम झूम - झूम कर नृत्य करो, इठलाओ ;
आओ, अप्सरियो स्वर्ग - लोक की, आओ !

हे तरुणी - तरुण, कुमार, किशोर - किशोरी ;
हे रूप - नगर की नव - बालाओ गोरी !
तुम आज मचाओ धूम फाग की, होरी ;
पथ - पथ में, गृह - गृह में खेलो बरजोरी !
कौतुक - क्रीड़ा - परिहास करो चितचोरी ;
हे तरुणी - तरुण, कुमार, किशोर - किशोरी !

नाचो, मृगदल ! कानन में नाचो निर्भय !
कूको कोकिल ! तरु-तरु पर आज असंशय !
मधुबाले, कर दो निखिल विश्व को मधुमय !
भर दो कादम्ब - कलश से जग-मदिरालय !
माने न हृदय यह मेरा आज पराजय ;
नाचो, मृगदल ! कानन में नाचो निर्भय !

तुम उड़ो विहंगम, भावों के पर खोलो ;
हे प्रेम - कपोत - कपोती, नभ में डोलो !
बोलो, शुक ! कोमल-मधुर-स्वरों में बोलो ;
अलि, कुंज-कुंज में तुम जीवन - रस घोलो !
रँग प्रेम - रंग में लाल हृदय तुम हो लो ;
तुम उड़ो विहंगम, भावों के पर खोलो !

हे वन - कन्ये, हे राजलिह्म सुकुमारी !
हे प्रकृति - सुन्दरी की सहचरियो प्यारी !
तुम जागो हे जड़ - जंगम, हे संसारी !
पृथिवी के तृण - तृण, जीव - जन्तु वनचारी !
जागो भूलोक - निवासी, व्योम - विहारी !
हे वन - कन्ये, हे राजलिह्म सुकुमारी !

आओ, यौवन की सखियो ! आओ, आओ !
तितलियो, उड़ो; कुंकुम-मकरन्द उड़ाओ !
मेरे प्राणों में बाहु - पाश फैलाओ !
फूँको जय - शंख, अमर उन्माद जगाओ !
अधरों की व्याकुल तृषा अशेष बुझाओ !
आओ, यौवन की सखियो ! आओ, आओ !

माघ - मेघ

आज, माघमें नील मेघ - दल राशि - राशि ये घिर आये;
किस वियोगिनी के नयनों से घनीभूत पीड़ा लाये ?
ऋतुपति के उन्मद विभ्रम में पृथिवी थी सोई उन्मन ;
सहसा आ गवाक्ष से शीतल पड़े कपोलों पर जल - कण !
स्वप्न हुआ तत्काल तिरोहित, दूर देश में घन छाये ;
आज, माघमें नील मेघ फिर राशि - राशि ये घिर आये !

वज्र - कण्ठसे पुंज - पुंज घन करते हैं रह - रह गर्जन ;
यह अकाल आह्वान, व्योममें किसका आकुल आमन्त्रण ?
अरे, कहाँ से उमड़ - उमड़कर आते ये जलधर सुन्दर ?
किस विरहीके उर - उद्गम से फूटा यह रस का निर्झर ?
कहाँ कलापी हो अदृश्य तुम, करते मुग्ध न क्यों नर्तन ?
वज्र - कण्ठ से पुंज - पुंज घन करते हैं रह - रह गर्जन !

मैं मधु - पर्व मनाऊँ अथवा वर्षा - मंगल का उत्सव ?
मैं वसन्त-हिन्दोल लगाऊँ या पावस - दोला अभिनव ?
लाऊँ आम्र - मंजरी अथवा मैं मंजुल कदम्ब - केशर ?
मैं गाऊँ दीपक उद्दीपक या मल्लार राग मनहर ?
रक्त-कमल का पत्र तुम्हें दूँ या पलाश का नव - पल्लव ?
मैं मधु - पर्व मनाऊँ अथवा वर्षा - मंगल का उत्सव ?

मौन काकली कल कोकिल की, चातक है नीरव भय से !
आज, बकुल व्याकुल है अतिशय उत्कण्ठा से, विस्मय से !
रुद्र घोष मेघों का सुनकर, काँप रहा नभ का अन्तर !
शीत वायु के विष - शायक से रोम - रोम भूके थर-थर !
पुंजीकृत उद्दाम वारिधर दुर्विनीत ये दुर्जय - से ;
मौन काकली कल कोकिल की चातक है नीरव भय से !

भींग गया मेरा पीताम्बर, उत्तरीय मेरा कोमल ;
श्लथ हो गया प्रियाका सौरभ - पुष्पित वासन्ती अंचल !
कवरी का बन्धन प्रसिक्त-सा, सजल लोचनों का कज्जल;

लगती है तुषार-सी मेरी पुष्पों की शय्या शीतल !
रस-प्लावित हो गया अकारण मेरा अन्तस्तल चंचल !
भींग गया मेरा पीताम्बर, उत्तरीय मेरा कोमल !

मेघों के गम्भीर नाद से ध्वनित-अधीर वनान्त हुआ ;
एक बार फिर भूमण्डल में झंझानिल दुर्दान्त हुआ !
तरु-वन के मर्मर-गीतों में बादल का यह रिमझिम-स्वर ;
अकस्मात आ गये कहाँ से ये दिग्भ्रान्त पथिक जलधर ?
मलय-समीर स्मरणकर किसका तत्क्षण चपल-अशान्त हुआ
मेघों के गम्भीर नाद से ध्वनित-अधीर वनान्त हुआ !

पुष्प-पुष्प पर बिखरे मोती, पल्लव-पल्लव पर सीकर ;
यह कैसी वर्षा है जिसके प्रति न किसीका है आदर !
भेकों का संगीत न उठता, चातक की तृष्णा न प्रखर ;
संध्या में अवसन्न गूँजता झिल्लीका न सुरीला स्वर !
इतना लांछन, तिरस्कार यह, भाव न स्वागत के सुन्दर !
पुष्प-पुष्प पर बिखरे मोती, पल्लव-पल्लव पर सीकर !

बजी माधवी-वनमें बंशी, वर्षा की जागी पीड़ा ;
लता-कुंज में छिपता माधव, राधा को आती व्रीड़ा !
वन-वन में उन्माद, दिशाओं में अनन्त मधु का यौवन;
कुसुम-कुसुमको विकल सुन्दरी करती है प्रेमालिंगन !
मधुर-मिलन वर्षा-वसन्त का, अश्रु हास की यह क्रीड़ा !
बजी माधवी-वन में बंशी, वर्षा की जागी पीड़ा !

दक्षिण-पवन सिहरता मेरे वातायन-पथपर निश्चय ;
शम्पाकी मुस्कान मलिन है, इन्द्रधनुष का शून्य हृदय !
ये बेगार वारिधर, जिनमें पावस का उल्लास नहीं ;
मार्ग-भ्रष्ट हो गये माघ में ही घन, श्रावण-मास नहीं !
इस वसन्त की सुषमा-श्रीमें उमड़े ये बादल निर्भय ;
दक्षिण-पवन सिहरता मेरे वातायन-पथपर निश्चय !

तुम न उपेक्षा करो प्रियाकी, सखे, न तुम अपमान करो !
हे वसन्त, दिग्वेणु बजाओ, वर्षाका जय-गान करो !
हे कोकिल, कूको ! हे केकी, नाचो हे वक-कुल, आओ !
मेघदूत के प्रिय-दर्शी कवि, मन्दाक्रान्ता में गाओ !
हे चातक-गण, चंचु खोलकर शीतल जलका पान करो;
तुम न उपेक्षा करो प्रिया की, सखे, न तुम अपमान करो !

राजासे मिलने आई है आज स्वयं वर्षा-रानी ;
रानी की आँखों में आँसू, राजा हँसता अभिमानी !
रानी के न मुकुट है, रथ है और न विजय-पताका है;
राज-हंस करते न विकल-रव, उड़ता प्रिय न वलाका है !
राजा के अधरों में मीना, रानी है पानी-पानी ;
राजा से मिलने आई है आज स्वयं वर्षा-रानी !

नहीं यक्षिणी यह अलकाकी, हाय, तपोवन की बाला !
सहज-प्रणयसे, राज-कण्ठमें पहनाई थी वर-माला !
राजा भूल गया वह कौतुक, रानी विस्मित होती है !
राजभवन में होता उत्सव, रानी व्याकुल रोती है !
पगली रानी दुख से कातर, राजा सुख से मतवाला !
नहीं यक्षिणी यह अलकाकी, हाय, तपोवन की बाला !

पहचान

बबुआ, यह हैं पिता तुम्हारे ; यह माताजी, पहचानो !
यह दादी, वह दादाजी हैं; वह चाचा, उनको जानो !
खड़े बड़े भाई हैं सबसे, वह सबसे छोटे भाई ;
और यही मँझले भाई हैं, वह ताऊजी, यह ताई !
वह भाभी हैं बड़ी तुम्हारी ; और यही भाभी छोटी !
वह मँझली भाभी हैं, देखो ; वही पकाती हैं रोटी !

वह 'भइया' जी की है बेटी; उसका नाम 'सुदामा' है !
और वहाँ मँझले भइया की लड़की नटखट 'श्यामा' है !
यह 'सावित्री' ताऊजी की बेटी बड़ी दुलारी है !
और तुम्हारी बड़ी बहन वह बैठी 'राजकुमारी' है !

वह नौकर है 'रामभरोसे', जिसने तुम्हें खेलाया है !
वह दाई है घर की, बबुआ, नाम उसीका 'माया' है !
वह 'शोभा' है गाय तुम्हारी, दूध उसीका खाते हो !
वह पलना है प्यारा, जिसपर सोकर तुम मुसकाते हो !
आसमान वह नीला-सा है, बबुआ, तुम्हें बताऊँ मैं !
रात नहीं, जो चाँद और तारों को तुम्हें दिखाऊँ मैं !

देखो, वह सूरज है प्यारा ; वह कौआ है, यह बकरी !
वह 'टेनी' कुत्ता है लेटा, वह पत्थर है, वह लकड़ी !
यह है आँख तुम्हारी, यह है मुँह, ये हाथ तुम्हारे हैं ;
ये हैं कान, पैर ये दोनों देते साथ तुम्हारे हैं !
और गोद में जिसकी बैठे बने हुए हो तुम काजी,
क्या न पुकारोगे उसको भी एक बार कह 'जीजा'जी ?

वर्षा - वियोगिनी

सुनकर पपीहे की 'पी - पी' ध्वनि प्रेम - भोर
उतर अनन्त से अधीर द्रुत आती हूँ ।
करके किसीकी याद दारुण विषाद - भरी
नभ से अपार अश्रु - धार मैं बहाती हूँ ।
सरस समीरण के रमणीय वाहन पै
अन्तरीक्ष - पथ में प्रमादिनी - सी धाती हूँ ।
गाती विरहाकुल विहाग - राग, आसावरी,
रोती हुई आती हूँ, रुलाती चली जाती हूँ ।

नीरव निशीथ में निकल पड़ती हूँ कभी
चुपचाप एकाकिनी मल्लिका के पास से ।
लोट - लोट पड़ती हूँ कुसुमित कानन में,
उलझ - सी पड़ती हूँ विधुर बातास से ।
चौंक उठती हूँ कभी दमक से दामिनी की,
मस्त बन जाती कभी केतकी की वास से ।
करती अनन्त वारिधारा से न शीतल जो,
जल जाता विश्व मेरी एक ही उसाँस से ।

निरख कलापी का विमुग्ध नृत्य निर्जन में
कुंज की कली - सी काँप उठती हूँ थर - थर ।
आती ज्यों कठोर स्मृति निर्मम परदेशी की,
बरस - बरस दृग पड़ते त्यों झर - झर ।
चातक - पुकार है मचाती हाहाकार मञ्जु
माधव की मुरली - सी हीतल मरोड़ कर ।
देखकर भी न देख पाती चितचोर को मैं ;
पाके भी न पाती, रह जाती आह भर - भर ।

तरल तरंगिणी के जल पै बिखेर देती
बड़े - बड़े गोल - गोल अनमोल मोती - सी ;
पाकर मृदुल स्पर्श शीतल समीरण का
चौंक - चौंक पड़ती हूँ क्षण भर सोती - सी ।
रोती - सी उतरती हूँ चूत से पराग - पूत ;
आती मेघमाला जब वसुधा डुबोती - सी ;
डोल - डोल पल्लव - सा उठता है गात तब
पावस - विभावरी में विष - बेलि बोती - सी ।

ढूँढ़ती ही रहती हूँ नित्य - प्रति उसको मैं,
किन्तु कहाँ प्रिय का पता मैं लगा पाती हूँ ।
सिसक - सिसक कर, सारी रात जाग हाय
टूटे हुए दिल की मैं कसक बुझाती हूँ ।
कौन सुन पायेगा, क्या सुन के करेगा कौन,
कैसे कहूँ, कैसे दिन अपने बिताती हूँ ?
उठती वियोग की असह्य ज्वाल - माल जब,
रो - रो तार स्वर से मैं आँसू बरसाती हूँ ।

देखे जरा कोई आज, डूबती हूँ आपही मैं
अपने अनन्त आँसुओं के पारावार में ।
जीवन असार हुआ जगती में प्यार - बिना,
क्षार हुआ मनोरथ एक ही प्रहार में ।
खिल उठे तार - तार प्रकृति - प्रिया के आज,
हार बरसाती बरसात की बहार में ।
किन्तु, मेरे उर का न ज्वार - भार दूर हुआ,
हाय, मिला कोई भी न अपना संसार में ।

नाचती वन - श्री सहास केलि - कानन में ;
चाँदनी अँधेरी रात, धूपछाँह दिन में ।
डाली पै कदम्ब की कराहती-सी कोयल है,
भरता कुरङ्ग - बाल चौकड़ी विपिन में ।

जलती द्रुमों में पंचशायक की रूप - ज्वाल ,
फिरती उसीकी छवि नयन - नलिन में ।
हाय, बुलबुल भी न मानती है नेक, मेरे
जाती है दिल में उठा पीर एक छिन में ।

झूल झूल झूले पर, फूल फूल मानस में,
सखियाँ हैं गाती सब नाना राग - रागिनी ।
सुकुमार सुमनों की सेज बिछा सुन्दर - सी
जोहती है बाट निज पति की सुहागिनी ।
बजती बधाइयाँ हैं आज प्रति गेह - द्वार ,
बाँधतीं सुकेशिनियाँ वेणी - ग्रन्थि - नागिनी ।
मैं ही एक रो रो कर अवनी - आकाश मिला
गिनती हूँ जीवन के याम हतभागिनी ।

२१५

शान्त रे मेरे मन उद्भ्रान्त ;
शान्त अग-जग के मग में श्रान्त !

यहाँ रे पग-पग पर सम्मोहन ;
प्रलोभन - चुम्बकीय आकर्षण !
यहाँ रे रस - वर्षण, संघर्षण ;
विनर्तन, पतन और आरोहन !

कामिनी की माया में यहाँ
दामिनी का चल - काया - काल ;
कुसुम की कुंजों में कमनीय
छिपे हैं निर्मम व्याल कराल !

यहाँ वह सुरसरि का न प्रवाह ,
मिटाता जो अन्तर की प्यास ;
यहाँ रे नर - जीवन की हार
दिखाती है मरीचिकाभास !

तनिक - सी चूक जहाँ प्राणान्त ;
शान्त, उस जग के मग में भ्रान्त !

पावस

छितिज - विचुम्बि महा अन्धकार - जाल देख
दिन ही में अपर विभावरी का होता भान ।
कोकिल, कदम्ब, धूम्रवाहिनी के सङ्ग - सङ्ग
लाया है अजीब रङ्ग आज सारा आसमान ।
कौन - से मनोज्ञ शिल्पकार ने दिशा में घोर
कृष्ण रङ्ग बादल का दिया है चँदोवा तान ?
गगन - विहारी के सुनील - नील अधरों पै
रोके रुकती न नेक बिजली की मुसकान ।

फूट चला माधुरी का रस - श्रोत चारों ओर
जानें, कहाँ लीन हुआ तपन का तीव्र ताप ?
पाप हुआ दूर अभिशापित मही का महा ,
झीनी - झीनी फुहियों से लेगा कौन उर माप ?
उमड़ पड़ी रे, कवि - तूलिका से भाव - राशि ,
गूँजा लोक-लोक में कलापिनी का कलालाप ।
अविजित कोई रह जाय विश्व में न आज ,
देखो, आया आप ही चढ़ा के काम इन्द्रचाप ।

अद्भुत देवेन्द्र - धनु, मेघनाद मन्द्र वीर ,
सुभग शृंगार घर - घर में परेख लो ;
वज्रपात भयानक , झंझावात रुद्र - ध्वंस ,
पंकिल वीभत्स उत्स वीथियों में लेख लो ।
चपला का हास्य, शान्ति रिमझिम जल-बूँदों में,
करुणा अनन्त विप्रयोगियों में पेख लो ।
पावस अशेष - देश, धारण कर नट - वेश ;
नव रस का विशेष समावेश देख लो ।

अलख

पूछो आज किसीसे जाकर अटक कटक का राज कहाँ है ?
खूनी क्लाइव के खंजर से आहत पड़ा सिराज कहाँ है ?
शूली पर हँस चढ़नेवालों का नाजो-अन्दाज कहाँ है ?
उबल रहा है किसका शोणित ? कौन गरीबनिवाज कहाँ है ?
अजी हँसो मत; सच कहता हूँ, याद नहीं—फरियाद नहीं रे !
कंकड़ियों पर चलना सीखो—वह बस्ती आबाद नहीं रे !

राजाजी को शौक बटेरों से, बाबाजी जपते माला !
कविजी के सिरहाने बोतल हाला, प्याला, औ मधुशाला !
इधर सुनो जी; क्या बकते हो ? सन सन्तावन, जलियाँवाला !
ताजमहल के आँगन में यह किसने फूँकी दारुण ज्वाला ?
दुष्ट, मारते हो क्यों पत्थर ? देख रहा कुछ ख्वाब नहीं रे।
आया हूँ परदे के बाहर, मुख पर पड़ा नकाब नहीं रे !

लिखीं गुलामी की सनदें जब, बने मकान कबूतरखाने !
दीवानों के दीवाने क्या जानें राजनीति के माने ?
बुझा सकेंगे कैसे दीपक जल कर ये सौ सौ परवाने ?
जब कि आह भर रहे आज ये बावन जिले, बिरासी थाने !
चरें जिन्हें जा भेड़-बकरियाँ, जंगल की मैं घास नहीं रे !
त्रास दिखाने से डर जाऊँ; नहीं, किसीका दास नहीं रे !

दिल्ली में भीगी बिल्ली-से बैठे मेरे भाई जिस दिन !
दगीं गोलियाँ पेशावर में; काबुल में शहनाई जिस दिन !
तोपों से कर चूर किला ईंटों से ईंट बजाई जिस दिन !
किस्मत फूटी उसी वक्त कागज की नाव चलाई जिस दिन !
यद्यपि हूँ बेहोश नशे में; जोश अभी वह गया नहीं रे !
यह किस्सा है बहुत पुराना—बहुत पुराना; नया नहीं रे !
डंका बजा फतह का, ज्यों ही पेशवाज पर लुटा पेशवा !
रोके कैसे हिमप्रपात को अस्थिशेष कंकाल मालवा ?
अब भी जब पर्वत से गिरती हर हर कर नर्मदा, बेतवा;
रो उठता सतपुरा तलेटी में दुख-खण्डित चण्ड खण्डवा !
सिसक रही है हल्दीघाटी; खैबर दर्रा हरा नहीं रे !
एक साँस में जहर उगल दूँ, घाव जिगर का भरा नहीं रे !

सत्यानाश पास ही, उड़ते आसमान में बड़े बखेड़े !
थल पर गैस, तोप, बन्दूकें; जल में पनडुब्बों के बेड़े !
जंगीलाट लाट पर बैठा; समर-देवता आँख तरेरे !
एक बार फिर प्रलय मचेगा; कसम यार, मत छींक अरे रे !
राख तले बारूद छिपी है—समझ पान की पीक नहीं रे !
भड़क उठेगी कब चिनगारी, इसका कोई ठीक नहीं रे !

कत्लेआम कराने आई, खबरदार, फिर नादिरशाही !
ढायेगी फिर सौ सौ आफत; लायेगी फिर घोर तबाही !
रोज कवायद करते मैदानों में वन टू फोर सिपाही !
अरे, मर्सिया आज न गा तू; तान सुना कोई मनचाही !
भर लाता आँखों में पानी; कोकिल का वह गान नहीं रे !
हँस देता लख जिसे जगत, वन-फूलों की मुसकान नहीं रे !

किधर गये वे छुआछूत का अद्भुत भूत भगानेवाले ?
नरक लोक में परमपिता की कुत्सित चिता सजानेवाले !
कहाँ आग में पानी औ पानी में आग लगानेवाले ?
कहाँ छिपे वे आज अघट घट में वैराग जगानेवाले ?
पानी के छींटें दो ठंढा कर दे, वह तूफान नहीं रे !
चौंक उठें इंजिन की सीटी सुन, ऐसे ये प्राण नहीं रे !

अतृप्ति

मधु के महासिन्धु में रह कर भी न पिपासा मिटी कहीं !
रूपराशि के मधुवन में भी तृप्ति कामना जगी नहीं।
ज्यों-ज्यों पीता हूँ मैं त्यों-त्यों बढ़ती जाती प्यास, सखे;
तृष्णा और वितृष्णा; दोनों ही उर को झकझोड़ रहीं !

मधुप-वृत्ति मेरे जीवन की फूल-फूल पर गई छली !
कली-कली की चाह रँगीली, गली-गली की रंगरली !
कहाँ रुकेगा श्रावण-सरिता का यह विद्युद्वेग, सखे;
खाली हुई न प्याली मधु की, अधर-वल्लरी सूख चली !

इस रहस्यमय अग्नि-पात्र को प्राण-सुरा से कौन भरे ?
जिये अकिञ्चन-सा निर्जन में; एक बूँद के लिये मरे !
आज शान्त क्या हो न सकेगी प्रलय-हुताशन-ज्वाल, सखे;
जीवन का परिचित सुख कैसे मृत्यु-प्रिया से प्यार करे ?

जाऊँगा क्या यों ही अब मैं सुख-दुख की गलबाँह दिये ?
धुली हुई लाली होठों की—पीड़ा के दो घूँट पिये !
रहने दो मेरी अपमानित दुनिया के अरमान सखे;
मिटना होगा आज हृदय को जनम जनम की प्यास लिये !

वर्षा-वधू

साँवली सलोनी एक लतिका हूँ लालसा की ,
अंग - अंग यौवन - तरंग - रंग नारी हूँ ।
बाँसुरी की तान सुन गोपिका हूँ बावली - सी ,
नागर - नवीन घनश्याम की दुलारी हूँ ।
न्यारी हूँ त्रिलोक से सुलोचना - सुरूपिणी मैं ,
प्यास प्यारी नीरजा की, केसर की क्यारी हूँ ।
डोलती मैं एकाकिनी कृष्ण - अभिसारिका - सी ,
राधिका नवेली सुधा - वेली सुकुमारी हूँ ।

शोभा देख अलकों की नागिन कराहती है,
छिप जाती चाकी देख चमक रदन की ।
लोक-लोक-चारिणी विलोक ज्योति - केतु- कान्ति
दिव्यता मलीन हुई सागर - सदन की ।
दास हुए कुन्द, पुण्डरीक भी उदास हुए
माधुरी निरख नील नीलम - वदन की ।
चाहूँ पल में तो मतवाला - सा बना दूँ विश्व,
मुझमें मदान्धता है मायावी मदन की ।

काश-श्वेत बादलों का शुभ्र परिधान मंजु
पहन विहरती हूँ इन्दु के प्रकाश में ।
इत्र मैं छिड़क देती चारों ओर केवड़े का
सुरभि - उमङ्ग लाती मालती की वास में ।
घर के फुहार का अनूप रूप सुकुमार,
उड़ती हूँ मन्द - मन्द विमल बतास में ।
करती हुलास - हास - लास वारि - वीचियों में,
करती विलास शैलजा के आस - पास में ।

सोती हूँ अचेत पारिजात के निकेतन में ,
पैर हैं दबाती मेरे अलका - निवासिनी ।
नाचती मनोजिनी - सी सोलहों सिँगार कर ,
देखती ही रह जाती स्वर्ग की विलासिनी ।
झूलती कदम्ब की प्रमोद - डालियों में मन्द,
रचती हूँ रास वट - छाया में प्रभाषिणी ।
बसती हूँ करुणा - अरण्य - प्रणय - वीथिका में ,
हँसती हूँ सागर के पार मैं सुहासिनी ।

हार इन्द्रचाप का अपूर्व कर धारण जो ,
आती अलबेली मैं नवेली फूल मन में ।
चौंक उठते हैं प्राण केतकी के मोह - माण ,
फैल जाती मोद - माद - धारा मधुवन में ।
भाग हूँ जगाती राग - रङ्ग - मत्त रसिकों के,
आग - सी लगाती विप्रयोगिनी के तन में ।
मोर कर उठते हैं शोर घोर कानन में,
चीख उठती है दीन चातिका विजन में ।

लेकर अनन्त सूक्ति - वसु - सुधा वसुधा की ,
तरल तरंगिणी, अमन्द - मन्द बह तू ।
प्रेम - पिकी, पी - पीकर नूतन रसाल - रस ,
प्रणय - कहानी प्राण - प्रीतम की कह तू ।
चूम चूम माधवी के मधु - मुग्ध अधरों को ,
धूम - सी मचा दे शिखी , मौन मत रह तू ।
देखना है आज, पंचबाण के प्रपंच पंच
बाण प्राण, मानिनी के लेता कैसे सह तू ।

कलापी

आज श्रावण-घन घिरे फिर, नृत्य कर मेरे कलापी ।

कदम्ब

तुम बोलो, कदम्ब ! है याद तुम्हें
कुछ बातें अतीत की वे मधुमाती ?
जब चाँदनी रात में गोकुल की
वधुएँ उठतीं घर से अकुलाती ?
घन - श्याम की बाँसुरी जादू - भरी
इन डालियों पे रस - धार बहाती !
ब्रज की कुल - कामिनियाँ तरुणी
चित-चोर के संग थी रास रचाती !
युवती - जन के' कल - नूपुर से
हुआ कूल कालिन्दी का गुंजित-सा ।
मधु - कुंज मनोहर माधवी की
पथ-कौतुक-लीला में विस्मित-सा ।
लगता हे कदम्ब ! तुम्हें अब भी
वह रूप नहीं क्या विचित्रित-सा ?
जब श्वास से काँपते पल्लव थे,
तृण था प्रत्येक सुवासित-सा !
वन - वीथियों में कलहासमयी
बहती थी अमन्द आनन्द की धारा ।
तुमने है विलोका त्रिलोक का
वैभव, क्रीड़ा-विनोद, कुतूहल सारा ।
जब प्रेम की उज्वल पूर्णिमा में
हँसता था सुखी यमुना का किनारा ।
ललिता लतिका वनिता ब्रज की
झुक चाहती बाहु का मंजु सहारा ।
यह शाखा वही, क्या कभी जिन पे
उनके चरणों की थी छाप पड़ी ।
यह कुंज वही क्या, जहाँ छिपतीं
ब्रज की वधुएँ अभिमान - भरी ।
मृदु - पत्र तुम्हारे यही, जिन पे
कभी चुम्बन - लालिमा थी उभरी !
यह स्थान वही क्या, जहाँ सुख से
कटती थी वसन्त की दोपहरी ।

अब भी उस बंशी से मूर्च्छित-सा,
जिसने विष का संचार किया ।
वह नींद-सा आया, गया सपना बन,
कल्पना में अभिसार किया ।
अब भूल चुका, कभी गोप-कुमारियों से
जिस श्याम ने प्यार किया ।
हे कदम्ब ! कहाँ वह आज गया,
जिसने कभी प्रेम - प्रसार किया !

३२२

यह प्रलयंकर ज्वार, न जाना जिसने फिर बढ़ कर रुकना;
यह वह झंझा-वात नहीं, आता जिसको तिलभर झुकना !
यह संसार - विजय - आकाँक्षा, जिसके आगे हार नहीं;
यह वह पारावार असीमित, जिसका कोई पार नहीं !
ज्वालाओं का लोक, यहाँ आते केवल जलनेवाले;
झेल सकोगे कैसे यह दुख पानी में पलने वाले ?

आओ, आओ लेकर अपनी निधियाँ जीवन की सारी !
देखो, हाँ, इस ओर-इधर उड़ती है हिय में चिनगारी !
राख हुआ लपटों में जल-भुन, कुछ शीतल भी होने दो;
बहुत तड़प मैं चुका, नैंक अब भी तो सुख से सोने दो !

अपने आँसू की धारों से छाती को धोने वाले;—
मेरी आँखों में आ जाओ, आँखों से रोने वाले !

३२३

मैं क्या जानूँ री सरले ?
कैसे मिलना होता है
प्रियतम के जाकर ललक गले ?
मैं क्या जानूँ री सरले ?

सखि, इतनी अनजान न बन तू ;
कर कठोर कुछ अपना मन तू ;
अरी, झेंप मत जाना जब उनके
नयनों के तीर चले !
मैं क्या जानूँ री सरले ?

क्या विशेष तुझको समझाऊँ ?
इस बचपन पर वलि-वलि जाऊँ ?
सभी सीख जायेगी प्रिय के
भुजबन्धों में ही तरले !
मैं क्या जानूँ री सरले ?

कब से प्रियतम राह तुम्हारी
जोह रहे होंगे सुकुमारी !
बनना अल्हड़ तू न वहाँ भी,
करे लड़कपन यहाँ भले !
मैं क्या जानूँ री सरले ?

३२४

क्या न उन्हें देखा आली ?

बड़े सबेरे वे आते हैं
अपने सोने के रथ पर ;
सौ-सौ फूल लोट-से पड़ते
हैं उनके उज्वल पथ पर !

मैं भी तभी निकलती हूँ सखि,
करने उनके शुभ दर्शन ;
पी-पी कर न अघाते उनको
रूप - सुधा प्यासे लोचन !

किन्तु, क्षणिक सुषमा प्रदान कर
रौद्र - रूप वे दिखलाते !
ज्यों-ज्यों ऊपर चढ़ते, त्यों-त्यों
कटुतर हैं होते जाते !
फिर क्या? फिर विलीन हो जाती
उनके मृदु - मुख की लाली !
छा जाती चहुँ ओर दिवा के
बाद निशा की अँधियाली !

क्या न उन्हें देखा आली ?

३२५

चल सखि, ढूँढ़ें वृन्दावन में,
वृन्दावन में मनमोहन को,
जीवन - धन को ;

चल सखि , ढूँढ़ें !
बंशीवट पर, टेर सुनाते ;
टेर सुनाते , रह-रह गाते ;
मद - रस माते ;

वंशीवट पर !
गूँज रहे स्वर, कल - कुंजों में ,
कल-कुंजों में, अलि-गुंजों में,
मधु - पुंजों में ;

गूँज रहे स्वर !
मुझे बुलाता मुरली-वाला,
मुरली-वाला, श्याम निराला,
वह मतवाला ;
मुझे बुलाता !
चल सखि सत्वर, सब कुछ तज कर,
सब कुछ तज कर, प्रेम-अश्रु भर
नचता नटवर ;
चल सखि, सत्वर !

३२६

न जानें, किसका प्यार-दुलार
खींच लाता है मुझे उदार ?
शिशिर की कल शय्या पर स्फीत
पड़ी रहती हो अलस-विभोर ;
उड़ाता रहता पवन अमन्द
तुम्हारे अंचल का चल छोर !

तितलियाँ आकर देतीं छेड़
पुतलियों पर अपनी मृदु तान ;
शिखिणियाँ फैला कर पर मुग्ध
तुम्हें करती हैं छाया-दान !
तुम्हारे विधु-मुख पर सुकुमार
न जानें, किस छविका आभास ?
किसी परिचित-सी जो आ मौन
हृदय में भर देती उल्लास !
कहूँ—कैसे मैं कौन उदार
बुला लाता है अप्रतिकार ?

कामना-तरु

पावन पराग बन पारिजात-पादप का
डोलूँ मन्द-मन्द तेरी नासिका के द्वार पर ;
अभिनन्दनीय हरि-चन्दन - सा वन्दनीय,
पाऊँ स्थान उन्नत उरोज के उभार पर !
ललित-प्रभात-वात-कम्पित सुमन सा मैं
लोट-लोट जाऊँ तेरे चरण-प्रहार पर !
वास करूँ स्मृति-सी विचारों में उदार तेरे,
मरूँ सौ-सौ बार तेरे लोचनों की मार पर !

बन सुकुमार अश्रु-मोतियों का मञ्जु हार,
सिक्त करूँ त्रिबली को ढुलक कपोल से !
बरस पड़ूँ मैं रस-निर्झरी बहा के मंजु
वारिद-सा स्निग्ध तेरे नूपुर के बोल से !
चकित कुरंग-शाविका-सा व्याध-वेणु-मुग्ध
बँध जाऊँ तेरे मुक्त कुन्तल विलोल से !
फूल-फूल मानस में मुदित विहंगम-सा,
झूल-झूल जाऊँ तेरे हृदय-हिँदोल से !

कोमल करों में मंजु तेरे ही सितार बन
चारों ओर स्नेह-मधु-धार बरसाता रहूँ !
नाचता रहूँ मैं तेरे आँगन में प्रेम-भोर,
तेरा ही सुयश-गीत नित्य-दिन गाता रहूँ !
तू न मिले जीवन में वेदना न होगी मुझे,
तेरे दरवाजे पर ठोकरें मैं खाता रहूँ !
तुझे सरसाता रहूँ, प्यार दरसाता रहूँ,
तेरे लिये बार-बार बलि-बलि जाता रहूँ !

पूर्वाभास

जिसके प्रताप से सदैव ही भयातुर हो
काँपते थे देवता, असुर, नाग थर - थर ;
जिसके सिंहासन के नीचे हाथ जोड़कर
रहते थे खड़े सदा सेवकों - से चराचर ।
बार - बार माधव के समझाने पर भी न
राजी हुआ देने को जो सूचिका की नोक-भर ;
'ला पकड़ द्रौपदी को' दुःशील दुःशासन से
बोला दुर्योधन वही घन - सा गरज कर ।

बैठे थे वहीं पे धृतराष्ट्र, कर्ण, द्रोण आदि ,
लेकिन किसीकी चाल एक भी चली नहीं ;
कौन उसे रोकने का करे दुःसाहस जब ,
मुख से किसीके एक चूँ भी निकली नहीं ।
शक्र के समान वक्रनीतिज्ञ नृपेन्द्र के सु—
सम्मुख किसीकी दाल अब लौं गली नहीं ।
रोका लाख आँख के इशारे से पितामह ने ,
किन्तु, तिल भर भी डिगा वह छली नहीं ।

जो भी हो, निदान दीन द्रुपदतनूजा राज-
सभा में घसीट बड़ी क्रूरता से लाई गई ।
बाल - वय में ही उस मंजु कंज - कलिका पे
दुःख की उतुङ्ग-हिम-शृङ्ग - शिला ढाई गई ।
देवर, श्वसुर, गुरु - जनों के ही सामने में ,
वह निस्सहाया अपमानित कराई गई ।
लेकिन किसीसे नहीं हाय वहाँ पर एक
रजस्वला अबला की आबरू बचाई गई ।

देखा अपने को अपमानित वहाँ पे जब
डोल उठी द्रौपदी असीम रोष - ज्वाल से ।
लाल - लाल लोचन कराल फुफकार उठे ,
तीव्र चोट खाये हुए विष - दर्प - व्याल - से ।
फड़के विलोल बाहु - युग्म ओष्ठ, अंग-अंग ;
तेज - पुंज पुंजीभूत आया एक भाल से ।
चीरती कलेजा शत्रु - सूदनी गिरा में घोर
बोली कालिका - सी वह पामर - नृपाल से ।

'सुन रे प्रमत्त, कुलद्रोही, दुराचारी,' नीच ;
मुझको यहाँ पे बता, तूने क्यों बुलाया है ?
आज अपमान कर एक सती महिला का
तूने तो अनन्त पाप - पुंज ही कमाया है ।
बार - बार पानी पाण्डु-पुत्रों का उतार कर ,
बोल मन्दभागी, कौन-सा फल हा ! पाया है ?
सर्वदा ही तेरी यह धाँधली चलेगी नहीं ;
याद रख तेरा सर्वनाश अब आया है ।

'देखते हैं आर्यपुत्र तेरे अनाचार सारे ;
घबड़ा न, शीघ्र ही तू परिणाम पायेगा ।
खेल ले खिलाड़ी अभी और भी तू चन्द रोज ;
किन्तु, कहती हूँ सत्य, पीछे पछतायेगा ।
काल नाचता है तेरे शीश पे सतत - काल ,
मौत की घड़ी में कोई काम नहीं आयेगा ।
चाहे बच जाय भले गाण्डीव के तीर से तू ,
किन्तु, कैसे गारुडी गदा से बच जायेगा ?'

कूदा मदमत्त - सा सुयोधन सिंहासन से
द्रुपद - सुता के तीक्ष्ण - वचन - बाण खाकर ;
गजराज - घोष सुन मृगराज - शावक - सा
शब्द लगा करने नासिका से वह घर्घर ।

निकलीं दृगों से चिनगारियाँ हुताशन की ,
देखकर चारों ओर रुक गया पल भर !
बोला फिर समिति को करता विकम्पित-सा ,
काँपता - प्रचण्ड - रोष से अधीर थर - थर !

'रसना जला दूँ, चुप; मृत्यु-मुखी, वाचा-पटु ,
सोच कोई और अरी, निज को न मन में !
जानती नहीं है कौन मैं हूँ, प्रताप मेरा
फैला है अखण्ड आज चौदहों भुवन में।
चाहूँ यदि राई को तो पर्वत बना दूँ और
पर्वत को मिला दूँ मैं तुच्छ रजःकण में।
बोलेगी जरा भी अब, ओ री हतभागिनी तो ,
पहुँचा रसातल मैं दूँगा तुझे क्षण में।

'देखता है खड़ा - खड़ा मूरख दुःशासन क्या ?
शीघ्र इस पतिता की साड़ी आज खींच ले !
छक कर मुझको भी पीने दे यौवन - रस ;
जितनी हो, रूप - सुधा भर के उलींच ले !
इसकी अनन्त - देह - छवि - जाल - सरिता में
तू भी तृषाकुल काम - वासना को सींच ले !
जाँघ पे प्रिया को मेरी अहा तू बिठा दे जरा
बड़े - बूढ़े देख जिसे आँखें निज मींच लें !

'बहुत दिनों के बाद अनुज, समोद आज
द्रुपदा की रूप - वारि - धारा में नहाऊँगा !
बैठ इसी इन्द्रप्रस्थ - तुंग - राजमहलों में
प्यारी के किलोल - संग वल्लकी बजाऊँगा !
गाऊँगा मयंकमुखी - मानिनी को अंक भर ,
लिपट गले से मैं असीम सुख पाऊँगा !
ओ रे, उन पाण्डु के कुपूतों का समर्थ कहाँ ,
उनको तो बन्दरों का नाच मैं नचाऊँगा !'

उछल उद्दण्डता से आया द्रुत जयद्रथ ,
बोला, हाँ कमाल किया तुमने तो मित्रवर !
महावीर कुन्ती - सुत कर्ण के द्विलोचनों से
झड़ पड़े अश्रु - नीर धरती पे झड़ - झड़ !
और वहीं अन्य महीपतियों के मन्द - मति
खेल गई एक मुस्कान - सी अधर पर !
किन्तु, पाँचों पाण्डवों के साथ ही सुभीष्म-द्रोण ,
रह गये कुण्ठित - से सिर्फ दाँत पीस कर !

पाकर आदेश बड़े भाई का निमिष ही में
द्रुपद - सुता को लगा नंगी वह करने।
खिल उठे कामुकों के आनन प्रसन्नता से ,
लोलुप अधीर लगे मोद - रस भरने।
किन्तु, बड़े - बूढ़े हाहाकार कर उठे और
उनके सुश्वेत शीश भू में लगे गड़ने।
भाग गये कितने सभासद सभीत होके ;
लेकिन, न माना उस नीच कुरुवर ने।

देख अपने को असहाय भरी - सभा - मध्य
द्रौपदी अधीर - दीन भयभीत रोने लगी ;
उमड़ अपार पड़ा पाप - पारावार वहाँ ,
जिसकी तरंग तुङ्ग सबको डुबोने लगी !
लुप्त - ज्योति-से हो गये कौरवेन्द्र भी सबन्धु ,
सारी खल-मण्डली प्रकाश निज खोने लगी !
ज्वालामुखी - शैल - सा विनाश फूट पड़ा उग्र ,
अत्याचार-ताण्डव की नृत्य-लीला होने लगी !

देखकर सकरुण दृश्य उस मंडल का ,
उपजी न उर में किसीके तनिक दया ;
देखता ही रह गया भौंचक - सा बैठा वहाँ ,
पापियों का सारा समुदाय हाय, बेहया !

नूतन प्रबन्ध, अन्ध - नूतन उमंग - रंग,
यौवन - अबन्ध नव, अधिकार भी नया ;
पाण्डव सभी तो मौन रहे किन्तु, एक भीम
से न दृश्य नीच यह देखा वहाँ का गया।

दौड़ता है सिंह जैसे झूमते गजेन्द्र पर,
ठीक वैसे दौड़ा वह केहरी दहाड़ कर।
तड़पा तुरन्त वह क्रुद्ध व्याघ्र-शावक-सा,
धावित करों में हुआ गदा को सँभाल कर।
चढ़ गईं आँखें लाल, किंचित भ्रू टेढ़े हुए,
चला था सुरेन्द्र जैसे भूधर विशाल पर,
एक पैर आगे बढ़ा वीर वह खड़ा हुआ ;
और सारी जनता को बोला ललकार कर।

'सुन लो पितामह, सुपूज्य द्रोणाचार्य, आज
करता हूँ प्रण घोर तेरे ही समक्ष में ;
तोड़ूँ गदाघात से सुयोधन की क्षीण जाँघ,
मारूँ लात कौरवों के कदली - से वक्ष में।
कर रण - ताण्डव अकाण्ड प्रलयंकर - सा,
आग-सा लगा दूँ विश्व के विशाल कक्ष में ;
सत्य कहता हूँ, मुझे परवा नहीं है नेक,
तुम लोग रहो चाहे पक्ष या विपक्ष में।

'तोड़ के दुःशासन की छाती अभिसिक्त करूँ
द्रौपदी की केश - राशि शोणित की धार से।
जीता छोड़ूँ एक भी न कौरव को संगर में,
चूर - चूर करूँ क्रूर गदा के प्रहार से।
मार - मार कायर - कुपूत कुरु - वंशजों को
मुक्त करूँ धरणी को गुरु पाप - भार से।
सावधान अम्बर, दिवाकर, महेश, आज
भीम है प्रमत्त एक नारी की पुकार से।'

खलबली मच गई सारी जनता में घोर
देखने अधीर लगे सब अश्रु - नीर भर ;
होश हुआ अचानक पार्थ को भी मानो तभी,
खींचने को ज्यों ही हुए प्रस्तुत धनुष - शर ;
शान्ति - अवतार धर्मराज ने पकड़ लिया
भीम को भयंकर प्रवेग से झपटकर।
देखते ही देखते नकुल - सहदेव दोनों
वीरों के भी हाथ उठे गदा विकराल पर।

'शान्त, शान्त!' कहा धर्मराज ने मधुरता से -
'अनुज, करो न क्रोध भाई मेरे, शान्त हो ;
देखता है भगवान सब कुछ ऊपर से,
व्यर्थ की अजानता में तुम न कहीं भ्रान्त हो।
पाप का विषाक्त परिणाम कोई भोगेगा ही।
चाहे वह कैसा ही न भीषण दुर्दान्त हो।
भूलो मत कभी निज इष्ट मित्र माधव को,
तुम पे सहाय एक वही रमाकन्त हो।'

'छोड़ो बन्धु, छोड़ो आज,' बोला मदमत्त भीम,
'जगती में मुझे हाहाकार - सा मचाने दो ;
झूम - झूम इन दुराचारियों की लोथों पर,
बन्धु, मुझे आज राग - वैतालिक गाने दो।
पैठ शत्रु - जाल में मुरारी के सुचक्र - सा ही
घूम - घूम मुझे निज गदा को चलाने दो।
रोको मत, आह आज इन नीच कौरवों को
अपने कुकर्म का हाँ, मजा तो चखाने दो।

'सोचो तो तनिक देव, किया है इन्होंने आज
अपमान एक पति - प्रेम - रता नारी का।
भरी - सी सभा में एक अबला को नग्न कर,
दूध है लजाया हाय, निज महतारी का।

तीखे व्यङ्ग विशिखों से उसका हृदय छेद,
किया सम्बोधन उसे प्राण-प्रिया, प्यारी का।
जीवित मैं रह के ही करूँगा क्या बोलो आह,
आज जो न बदला लूँ द्रौपदी की साड़ी का।

'एक बार इन्होंने ही शैशव में हमें बन्धु,
चाहा मार डालना था भेज लाह-घर में।
छुटकारा पाने के विचार से सदा के लिये,
फेंकवा दिया था फिर बीच-रत्नाकर में।
तो भी अहो, मिटी नहीं दिल की कसक जब,
जूए में हराके लूट लिया पल-भर में।
अब कहते हो तुम मुझको ही शान्त होने,
कौन छोड़ता है भला ग्रास देख कर में?

'आज, बेपिये ही बन्धु, मस्ती चढ़ी है अजब,
किसीकी फिजूल बात नेक नहीं मानूँगा।
कौन ठहरेगा युद्ध-आंगण में मेरे साथ,
छीन शूलधर का त्रिशूल जब तानूँगा।
क्षुद्र कौरवों को पूछता ही कौन? एक बार
जब स्वयं माधव से महायुद्ध ठानूँगा।
सह ले प्रथम मेरी गदा का प्रहार अहो,
सुभट सुयोधन मैं तभी कहीं मानूँगा।

'तोड़-फोड़ जीवन की सारी कड़ियों को आज,
लाओ तीव्र यौवन की बारुणी मैं पी लूँ आज;
छोड़ दूँ विलोल लहरों के साथ अपने को,
कालिका कँगालिनी-सा भीषण सजाऊँ साज।
सर्वनाश, जोहता है किसकी तू बैठा राह?
चल, नर-राक्षसों के शीश पै गिराऊँ गाज।
मुक्त करूँ मानव को दानवता-पिंजर से,
पापियों के मस्तक से आज लुढ़काऊँ ताज।

'लाऊँगा फणीश को पाताल से, फणों को तोड़
नाचूँगा कन्हैया-सा, निराला-गीत गाऊँगा;
चाँद को झकोड़ दूँ, मरोड़ डालूँ सूरज को,
मार-मार ठोकरों से कन्दूक बनाऊँगा।
चुल्लू में उठा के सातों सागर को क्षणही में
घटज-समान आज पान कर जाऊँगा।
वज्र-सी भुजाओं से हिलाऊँ मन्दराचल को,
चूर-चूर करके मैं धूर में मिलाऊँगा।

'धधकूँगा बनकर भीषण कृशानु-ज्वाल,
कालिमाकी छाती में त्रिशूल-सा पड़ूँगा आज।
भभकूँगा बनकर भट्ठी मैं प्रचण्ड एक,
शत्रुओं से एक बार काल-सा लड़ूँगा आज।
लपकूँगा लप्-लप् कर लपटें सहस्र बन,
विश्व में लगा के आग क्षार मैं करूँगा आज;
भागूँगा न कभी युद्ध-भूमि से मैं पीठ दिखा,
जिसको धरूँगा, पापी प्राण मैं हरूँगा आज।

'पहन कपाल-वरमाल अरि-सीस साल,
अवनि-आकाश में सवेग कूद धाऊँगा।
बार-बार सिंहनाद करके कराल घोर
धरणी-पहाड़-पारावार को कँपाऊँगा।
पल में प्रलय की रचूँगा अभिराम सृष्टि,
जग में समस्त जयकेतु फहराऊँगा।
काट-काट पापियों को दूँगा पाट हाट-बाट,
घड़ियाँ मैं आज महानाश की बुलाऊँगा।

'नाचूँगा दिगम्बर श्मशान में शिवा की भाँति,
बाहर निकाल रक्त-लोचनों को लाल-लाल,
कर में त्रिशूल ले के घूमूँगा चिता के बीच,
फाड़-फाड़ खाऊँगा मैं रुंड-मुंड को निकाल।

गाऊँगा विप्लव - गान, नष्ट - भ्रष्ट होगी सृष्टि ;
ताण्डव की ताल सुन भागेगा पाताल काल ।
उगलूँगा मुख से हुताशन की ज्वाल - माल,
खोलके त्रिनेत्र जला डालूँगा जगत - जाल ।

'निकलेगी ज्वाला मनोमन्दिर से ऐसी एक,
जिसकी जलन से जगत जल जायेगा ।
चलेगा ज्वलन्त भावनाओं का प्रवाह ऐसा,
विश्व जिसे देख अतिशय भय खायेगा ।
जागेंगी सुषुप्त कामनाएं मेरी आज यदि,
घोर लय - काल - सा अघोर - घोर छायेगा ।
सारी ईति - भीतियाँ पलायेंगी रसातल को,
मल - मल हाथ विश्वनाथ पछतायेगा ।

'उड़ूँगा ख - मंडल में भूधर के पंख बाँध,
भरूँगा मैं विद्युत् - शक्ति मुरदों के तन में ।
झंझा-झकझोड़ - सा करूँगा घोर-रोर शोर,
तोड़ - ताड़ पेड़ - पात कानन - विजन में ।
करूँगा प्रमत्त - सा प्रलाप आप ही अघोर,
मोर - सा करूँगा ध्वंस-नृत्य विश्व - वन में ।
राग मैं जगाऊँगा विनाश की प्रमाद - मग्न,
आग मैं लगा - सा दूँगा भारती - भवन में ।"

इतने में देखा सभी पुरुषों ने उसी काल,
वहाँ पे अपूर्व एक आभा दिखाई पड़ी ;
शंकित सुयोधन ने विलोका शकुनी की ओर,
कौरव की चिन्तना तरंगिणी - सी उमड़ी ।
भीष्म पुलकित हुए कुल का प्रताप देख,
कृष्णा के कपोल पे सूखीं मोतियों की लड़ी ;
जहाँ पर पहले थी एक छोटी साड़ी, लगी
वहीं पर वसनों की ढेर - सी बड़ी - बड़ी ।

थक गये दोनों हाथ सुभट दुःशासन के,
वसन घटा न किन्तु, खींचता ही रह गया ;
मानो उसी वक्त महा - विक्रमी सुयोधन के
गौरव का दृढ़ गढ़ हहर के ढह गया ।
सबही ने सचकित सुना वहाँ कोई जैसे
छिड़ेगा समर महाभारत का कह गया ।
हाय, एक अबला के आँसुओं की बाढ़ ही में
बूड़ के समाज सारा तिनके - सा बह गया ।

३२६

लड़ गईं आँखें आज अजान ;
सजनि, यमुना - तट में अनजान ।
पैठ कर जल में कटि - पर्य्यन्त
कर रही थी तब मैं तो स्नान ।
न जानें, कहाँ - किधर से वहाँ
आन पहुँचे मेरे प्रिय - प्राण ।
लाज से मैं तो मर - सी गई ;
किन्तु, छिप सकी न वह मुसकान ।
लगा अपने उर से तत्काल
दे गये वे मृदु चुम्बन - दान ।
करों में थी मन - मोहक बेणु,
दृगों में मद का वही उठान ।
एक ही पुलक - स्पर्श से मौन
खिल उठे रोम रोम अम्लान ।
दे गये पिछली - सी पहचान,
प्रणय - रस - प्लावित चुम्बन - दान ।
न जानें, आ कैसे अनजान ।

सेनावाहिनी

तू जग-जीवन की ज्योति जला, बस, बढ़ती चल मेरी रानी !

तेरा पथ सम्मुख को जाता; मुड़ कर न देख, पीछे क्या है ?
तू धरती को न टटोल, यहाँ; इन पैरों के नीचे क्या है ?
तेरी किस्मत से आग मिले; या पथ में आज मिले खाई !
तू सिर्फ सामने देख, वहाँ; इन आँखों के आगे क्या है ?
तेरे पद-चिह्नों पर आवें, आने की जिनको हो हिम्मत !
तेरे ही बल पर दुनिया से, जिद लड़ने की मैंने ठानी ;
तू जग-जीवन की ज्योति जला, बस, बढ़ती चल मेरी रानी !

यह रात हमारी संकट-मय; कितनी विपदाएँ आयेंगी !
लाखों बाधाएँ आ - आकर, हम दोनों को भटकायेंगी !
पथ रोक खड़ी होगी ममता—माया दुर्बलता को लेकर;
पर, लक्ष्य हमारा अटल, हमें, क्या वे विचलित कर पायेंगी ?
हम पैरों से ठुकरा देंगे दुनिया का बड़ा प्रलोभन भी ;
जिसके हम राही हैं, कब की वह राह हमारी पहचानी ;
तू जग-जीवन की ज्योति जला, बस, बढ़ती चल मेरी रानी !

परवाह नहीं, यदि अंचल में फूटी कौड़ी भी पास नहीं ;
खाते असफलता की ठोकर, फिर भी हम आज निराश नहीं !
मिल रहे मार्ग में कितने ही, विश्राम-भवन अतिशय - सुन्दर !
रुक जायँ कहीं हम दो पल-भी, अब हमको वह अवकाश नहीं ;
जब भूख लगेगी हमें कहीं; जब प्यास सतावेगी हमको !
हम खा लेंगे थोड़ा सत्तू, हम पी लेंगे थोड़ा पानी ;
तू जग-जीवन की ज्योति जला, बस बढ़ती चल मेरी रानी !

हम सुख-वैभव से वंचित हैं; हम पगलों को आराम कहाँ ?
हम अपनी धुन के पक्के हैं; फिर सुबह कहाँ औ शाम कहाँ ?
कब सूरज उगा, दिवस आया; कब रात हुई—कुछ ज्ञात नहीं!
हम भूख प्यास से रहित जीव; दो बातें कर लें काम कहाँ ?
जब पैर हमारे थक जाते, पड़ जाता जंगल में डेरा ;
कुछ कंकड़; कुछ सूखे पत्ते ; होती पत्थर से अगवानी !
तू जग-जीवन की ज्योति जला, बस, बढ़ता चल मेरी रानी !

वैभव की मीठी निद्रा में जब सारी दुनिया सोती है ;
जब मदिरा की बेहोशी में कंचन की लीला होती है !
सबको ढँक देती जब रजनी चादर से मधुर - उमंगों की ;
तकदीर हमारी फूट - फूट कर तब सूने में रोती है !
हम चलते हैं —चलना पड़ता; हमको चलने की सजा मिली !
जिसको दुनिया ने ठुकराया हम वही सताये हैं प्राणी ;
तू जग-जीवन की ज्योति जला, बस, बढ़ती चल मेरी रानी !

जिस रोज विभव की मदिरा पी उन्मत्त महल थे मुसकाते ;
महलों में लोलुप वन्दी-जन अपने दाता का यश गाते !
उस रोज हमारी झोपड़ियों में थी मरघट की खामोशी !
छप्पड़ से करुणा के बादल टप-टप आँसू थे बरसाते !
उस रोज हमारे प्राणों में हुङ्कार किसीने किया, वहाँ !
जग प्यास बुझाता है जिससे, वह तो इन आँखों का पानी !
तू जग-जीवन की ज्योति जला, बस, बढ़ती चल मेरी रानी !

हमने मिट्टी से जन्म लिया; हम मिट्टी में लिपटे रहते !
हम अपने इस नंगे सिर पर बरसात-धूप सब कुछ सहते !
फिर भी होते हम अपमानित; पत्थर से होता है स्वागत !
हम घूँट लहू का पीते हैं, फिर भी न किसी से कुछ कहते !
हम स्वयं भिखारी हैं सचमुच; पर, करते जगती का पालन !
अपना सर्वस्व निछावर कर डाला है—हम ऐसे दानी !
तू जग-जीवन की ज्योति जला, बस, बढ़ती चल मेरी रानी !

भूलूँ न कभी कर्त्तव्य, प्रिये; मुझमें तू ऐसा साहस भर !
खे सकूँ जवानी की नैया सागर की लहरों के ऊपर !
मैं सारे संकट झेल सकूँ ; कर सकूँ सामना आफत का !
तू मेरे हाथ पकड़, काँपें जिस वक्त पैर मेरे थर-थर !
दे मुझको वह ताकत जिससे मैं आँधी में रह सकूँ अचल;
तू खींच मुझे, जिस वक्त करूँ मैं भय से कुछ आनाकानी !
तू जग-जीवन की ज्योति जला, बस, बढ़ती चल मेरी रानी !

मत पूछ, कहाँ से आया हूँ ? अब तक मैंने क्या हारा है !
पथभ्रष्ट न हो जिससे जीवन, तू ही मेरा ध्रुव - तारा है !
मैं द्यूत-कला में चतुर नहीं ; अपराध यही, इतना मेरा !
अब तो इस विकल दिगम्बर का तू ही बस, एक सहारा है !
गृह-हीन भटकता जो मरु में, मैं जग का ऐसा बनजारा !
वह कहता भावुकता जिसको, तू मेरे अन्तर की वाणी ;
तू जग-जीवन की ज्योति जला, बस, बढ़ती चल मेरी रानी !

सिर में सोने का मुकुट पहन जब आती ऊषा मतवाली ;
छा जाती कोने - कोने में जब सुषमा की मोहक लाली !

तब मेरी सूनी कुटिया में सौभाग्य तड़पता दिनमणि का ;
आँगन में मौत टहलती है, छा जाती रजनी अँधियाली !
उस घोर अँधेरी कुटिया में जल उठते आशा के जुगनू ;
तू ही उस कुटिया का दीपक, कुटिया की देवी कल्याणी ;
तू जग-जीवन की ज्योति जला, बस, बढ़ती चल मेरी रानी !

जिस दुनिया को मैंने पाला; कहती अब, इसे न भिक्षा दो !
हैं वस्त्र फटे - मैले मेरे, मेरे तन पर मिट्टी कादो !
गृह-दाह हुआ उस दिन मेरा, मेरी कुटिया में आग लगी;
मेरी इन दोनों आँखों में बसते सदैव सावन - भादो !
मैं उस शासन का वैरी हूँ; मैं उस सत्ता का विद्रोही !
इतराती खून हमारा ही पीकर जो सत्ता दीवानी !
तू जग-जीवन की ज्योति जला, बस, बढ़ती चल मेरी रानी !

हम युग-युग के यात्री, निशिदिन चलना ही ध्येय हमारा हो !
पथ से ही प्रेम रहे अविचल, पथ ही प्राणों का प्यारा हो !
मालूम नहीं, दूरी कितनी, कब पहुँचेंगे हम मंजिल पर ?
सबको समान ही समझें हम; धरणी हो अथवा धारा हो !
हम लाँघ चलें पर्वत - घाटी, ऊबड़ खाबड़ मैदान सभी ;
हम उस सीमा पर पहुँचेंगे, कह रहे जिसे दुस्तर ज्ञानी ;
तू जग जीवन की ज्योति जला, बस, बढ़ती चल मेरी रानी !

मैं तो अकाल का हूँ सैनिक; मेरी कब किसने समता की ?
मैं तब तक बढ़ता जाऊँगा, जब तक है तन में दम बाकी !
मैंने न कभी संगी खोजा; ढूँढा न कभी भी साथी को ;
मैं युग-युग से चलता आया, मैं आज चलूँगा एकाकी !
सहचरी एक बस, तू मेरी; विश्वास किया केवल तेरा !
मैं करूँ भरोसा अब किसका ? वह शक्ति किसीने कब जानी ?
तू जग जीवन की ज्योति जला, बस, बढ़ती चल मेरी रानी !

तू ज्योति जला दे वह, जिससे पथ का सम्पूर्ण तिमिर भागे;
भर दे प्रकाश वह, तू जिसमें मानव की चेतनता जागे !
वह दूर किनारा सागर का, यह रात अँधेरी, लक्ष्य दूर ;
लेकर मशाल तू हाथों में चल, चलती चल आगे - आगे !
मेरा सुख लेकर सुख से रह; तू दे अपना दुख-भार-मुझे !
उस रोज किया अपने मन का, मैं आज करूँगा मनमानी;
तू जग-जीवन की ज्योति जला, बस, बढ़ती चल मेरी रानी !

३३१

सजनि, जब आया था मधुमास,
बना मधुवन को मधु का वास—
तुम्हारे ही हासों से प्रात,
झड़ा करते थे पद्म - पराग ;
स्पर्श कर साँसों का अज्ञात
राग बन जाता प्रबल विराग !
खोल कर जलद-पंख स्वर्णाभ
उड़ा करते थे स्वप्न अजान !
कल्पना के विमान पर बैठ
घूम आते थे दृग नादान !
चपल शिशुओं-सा जबकि प्रभात
उँगलियों से छू छवि के तार ,
खिलखिला उठता था सावेश
गुँजा कर यह सारा संसार !
भर गया मुझमें भी नव लास !
सजनि, जब आया था मधुमास !

३३२

इस नीरव निशीथिनी में तुम कौन अकेली नवबाला ?
नाच रही हो पहन मुदितमन तारक-सुमनों की माला !
यह अनन्त यौवन तुम किसको दिखा रही हो सुकुमारी ?
देखेगा छवि कौन तुम्हारी ? सोती है दुनिया सारी !
पथ अजान, सुनसान दिशाएँ, तमसावृत है भुवनाकाश !
निर्भय, निःसंशय, विनग्न तुम कहाँ चली हो आज सहास ?
रूपसि, यदि थक जायँ चरण तो, गत स्मृति-शेष लिये आना
मेरी इन निद्रित-सी पलकों पर सपना बन छा जाना !

३३३

तुम्हारा पा आलिङ्गन-दान ;
प्रिये, पुलकित हैं तन-मन-प्राण !

दृगों में सुरधनु-सी है खचित
मृगेक्षिणि, वह बङ्किम भ्रू-चाप ;
माधुरी-सागर में हो रहा
मग्न मन घन-सा अपने आप !

उलझ अलकों में बन्धनहीन
खो गया मेरा शिशु-संसार ;
तुम्हारा ही ले पावन प्यार
डोलती वन में मन्द बयार !

तुम्हारी साँसों में उद्विग्न
न आने पाये दिवस उदास ;
तुम्हारी मुसकानों में ही सुमुखि,
निहित है जीवन का इतिहास !

आज पा पुनः स्नेह-रस-दान !
हुए पुलकित मन-लोचन प्राण !

३३४

हो गई अब सपने की बात ;
सजनि, वह सोने की मधुप्रात !

विनत जब हो जाते थे चिबुक ;
लाज से अरुण-अरुण मृदु गाल !
सीप-सित रदनों से मन्दार—
रेणु-कण झड़ पड़ते थे लाल !

विधुर उर-कलिका को जब खींच
हिला देती प्राणों के तार !

शरत सन्ध्या में आ तू मौन
स्पर्श कर लेती यौवन—भार !

मदिर साँसों की सुरभित रात ;
हो गई अब सपने की बात !

३३५

क्या जानूँ ! किस पथ से आकर किस प्रकार वह तस्कर
मेरे जीवन की अमूल्य निधियों को लूट रहा मन भर !
चन्द्रहार ले चुका, बढ़ा अब लो, मोती के दानों पर !
अब भी क्यों कर जूँ न रेंगती हाय, तुम्हारे कानों पर ?
सारी रात बिता कर कौतुक-क्रीड़ाओं में ही चंचल
सोये हो बेसुध, विभोर क्यों अब इन घड़ियों में पागल ?
छिने तुम्हारे रहते ही सर्वस्व आज,-निद्रा त्यागो !
हाँ, मेरी हिय की कुटिया के जागो, हे स्वामी, जागो !

३३६

जब रजनीपति को पहनाकर जगमग तारों की माला
करने जाती स्वर्गंगा में समुद स्नान रजनी-बाला,
सस्मित वदन विलोक, श्रवणकर मणिमय नूपुर की झंकार
मादकता में बह जाता जब बेसुध हो सारा संसार,
तब मैं चुरा कुमुदिनी की छवि, बनबाला की मृदु मुस्कान,
बिखर विपिन में जाता हूँ बन वनदेवी के मादक गान!

३३७

जभी देखने का करता मैं साहस प्रिये, तुम्हारी ओर,
तनिक और भी सरका लेती तुम मुँह पर घूँघट का छोर।
तुम्हें प्यार से पूछ, चाहता अपने प्रश्नों का उत्तर ;
त्यों ही प्रिये, सिकुड़ कर तुम बन गठरी-सी जाती सत्वर !
आई सदा रूठती ही तुम, सदा मनाता मैं आया !
जहाँ बहाती थीं तुम आँसू, रक्त वहाँ मैंने पाया।
हँस-हँस कर न कभी जतलाया तुमने मुझसे मंजुल प्यार !
मेरे सोने-से जीवन को तुमने ही तो किया असार !
मैं क्या जानूँ, समझ लिया था कैसे मुझको बेगाना ?
रह कर इतना पास न क्यों कर मैंने तुमको पहिचाना ?
काल-द्यूत में अन्त, चुका था जब मैं अपना सब कुछ हार;
तब समझा था प्रिये, तुम्हारा वह निर्मम पर, नीरव प्यार !

हेमन्तिनी

उतरी निहार - बाला मन्द - मन्द अम्बर से ,
विश्व को फँसाया निज धूम - केश - जाल में ;
उड़ चले मानस का ताल त्याग के मराल ,
आई गज - गम्भीरता कामिनी की चाल में ।
चूने लगे तरल तुषार - कण चन्द्रिका से ,
सुखद संजीवनता आई ज्वाल - माल में ।
दौड़ी बौरी तीर-सी अधीर भौंरी छोड़ छाद ,
आग लगी देख दीन पंकजा के भाल में ।

जागे भाग तस्कर, प्रमादी, व्यभिचारियों के
बढ़ते ही रजनी के द्रौपदी के चीर - सी ;
किया किस कौतुकी ने कोलाहल अन्तर में ,
दीख पड़ी कामना - निकेतन में भीर - सी ।
आई याद मानिनी की कान्तता कर्पूर - गौर ,
भ्रान्ति हुई मानस में कोमल शरीर - सी ।
शीतल समीर कम्प-मान-प्राण प्राणियों की ,
देह में चुभो - सी गई मीनकेतु - तीर - सी ।

झूमती है शश्य-श्याम मेदिनी सुशोभित हो ,
जाग उठीं भावनाएं अंतर की मूक - सी ;
रोके कौन रङ्ग की तरङ्ग में उमङ्ग - भरी ,
पैठी उर कैसी यह वेदना अचूक - सी ।
डोल - डोल कहते क्या पल्लव नव वृक्षों पै
शान्ति हो रही है आज हाय, टूक-टूक सी ।
हूक-सी मचा के एक दिल में उठी लो, देख ;
डाली पै कपोतन की, कोइलिया कूक - सी ।

सिंह - सा दहाड़ महाहिम का प्रताप छूटा ;
मुक्त हुआ मानो गिरि - गर्भ कारागार से ।
छिन्न - भिन्न पत्र हुए कदली के, तार - तार
भूमि के उधेड़ दिये निठुर प्रहार से ।
धावमान हुआ ऐसा शीत का प्रचण्ड कोप ,
गूँज उठा लोक कर्ण - भेदी हाहाकार से ।
मूषक गणेश को, महेश को वृषभ छोड़ ,
भागे शेष देश को अशेष पारावार से ।

लाले पड़े उष्णता के प्राणों के, कुभाग पड़ा
पाले में हेमन्तिनी के, जोर बढ़ा पाला का ।
दाब दीर्घ दंष्ट्रों में बराह-सा लिया है कौन ?
दर्प हुआ दूर रवि - सर्प - विष - ज्वाला का ।
चन्द्रिका - प्रसन्न यामिनी में मन्दगामिनी - सी
देखो, चारु रूप-हास तारकों की माला का ।
मानेगी यहाँ भी मधुबाला और हाला नहीं ,
ढूँढ़ो द्वार शीघ्र किसी श्रेष्ठ मधुशाला का ।

बालकों - सा दिन भर खेलता छियाछी दिन ,
मुसकुरा देती निशा में नव विभावरी ।
आती कुहासी का असेत पट ओढ़ कर ,
संध्या - सुहासिनी प्रभात - रानी बावरी ।
भाव का आभाव नहीं; दाव-द्वेष-दोष नहीं ,
खेल रही तोयधि में जीवन की नाव री ।
प्राण-नाथ-चिन्ता में बाल - बधू रोती वहाँ ,
होता नहीं और यहाँ मेरा भी दुराब री ।

झलका तुषार - हार भूधर के शिखरों पै
नीलम दिगन्तभूत गर्व - भूति खोता है ।
घूमी मेरु - वाहिनी अघोरिनी धरा की ओर ,
शिशिर - महेन्द्र का विनोद - नाद होता है ।

उतरा तरंगिनी का यौवन - उद्दण्ड - मद ,
नीरव निशीथिनी में चक्रवाक रोता है !
निश्चल गम्भीर कुंज - नीड़ से वनानी का
मोदक मरीचियों में मृग - यूथ सोता है !

दोनों ध्रुव मंडल से लेकर अपार शीत
शीतल समीर देह चीर चलने लगा ।
खलने अभाव लगा भूरि - भूरि वसनों का ,
हिम - सा दिनों का दिनमान गलने लगा ।
छलने लगा घन भी पाकर सुयोग कभी ,
दीन हीन मानवों का पिण्ड दलने लगा !
छोड़ पथ उत्तर का, उग्र रथ से उतर ,
अग्नि में महाग्निप का तेज जलने लगा !

सरसों के सरस सरोवर में नाच उठी
कोई ज्यों परी - सी पीत - वसना - सी सुन्दरी !
अलसी की अलस मृणालिका के बीच कहीं
राजती है रहरी की राजियाँ हरी - हरी !
झुक - झुक मटर के खेतों में उमङ्ग - भरी
तोड़ती हैं फूल ग्राम - नारियाँ खड़ी - खड़ी !
झालर - वितान तान करते हैं खग - गान
घास पै बिछी है आस - पास रेशमी दरी !

३३९

अपने आँसू की धारों से छाती तर करनेवाले !
एक अदा पर फिदा हजारों बार हुए मरनेवाले !
इस सूनी संध्या - बेला में शोखी से इतराओ मत !
यह तो उसका ही मजार है ठुकरा कर यों जाओ मत !
यदि बन पड़े जला कर दीपक इतना सुजस लिये लेना !
अधिक नहीं, तो आँखों के ही बस, दो फूल चढ़ा देना !

हिम्मत

पर्वत को है ताकत, आँधी स्वयं वहाँ रुक जाती है ;
दूब हुई कमजोर, देख तूफान विवश झुक जाती है ।
पर्वत के मस्तक पर चढ़ना एक बार तो मुश्किल है ;
पैर पकड़ लेती पथिकों के दूबों का ऐसा दिल है ।

उमड़ मेघ - माला पर्वत की छाती से टकराती है ;
किंतु वही कोमल दूबों पर बरस - बरस-सी जाती है ।
पर्वत कुछ न समझता, क्या है ये आँधी, पानी, पत्थर ;
मर मरकर भी दूब यही कहती है 'हम हैं अजर-अमर' ।

चलता है तूफान, अगर हो तुममें लड़ने की हिम्मत ;
तो आओ, सीना ऊँचाकर अटल रहो बनकर पर्वत ।
चलता है तूफान, अगर तुम में लड़ने की शक्ति न हो ;
तो भी चिंता नहीं, बने तुम हरी - हरी सी दूब रहो ।

पर्वत की बाँहों में ताकत दूबों का मन है दुर्बल ;
लेकिन दोनों ही कर देते आँधी की गति को निष्फल ।
मगर, पेड़ जिनमें न शक्ति है और खड़े रह जाते हैं ;
मूल समेत वही क्षण भर में उखड़, आह ! पछताते हैं ।

रुक जाता है वेग बाढ़ का पर्वत के आगे आकर ;
बच जाती है दूब नदी की धारा से नीचे जाकर ।
जो दुर्बल अभिमानी तरुगण वहीं अड़े रह जाते हैं ;
वे ही पड़कर जल - प्रवाह में पल भर में बह जाते हैं ।

ताकत है, तो तुम आँधी को अपनी बाँहों पर झेलो !
हिम्मत है, तो तुम पर्वत - से पानी - पत्थर से खेलो !
यदि दुर्बल हो, तो कुछ सोचो जीना है तो झुक जाओ ;
चलता है तूफान, दूब-से तुम विनम्र हो झुक जाओ ।

३४१

तुम विचित्र हो स्वयं; तुम्हारे हैं विचित्र ही सारे कार्य !
जटिल तुम्हारी माया में धोखा खा जाना है अनिवार्य !
पथ-भ्रष्टों के लिये अविचलित लक्ष्य विदित हो ध्रुवतारा ;
लेकिन हम अज्ञान, तुम्हारा पाते नहीं पता प्यारा ?
रूठ न जाना कहीं हमारी भूलों पर हे करुणागार ;
बिना तुम्हारे क्षमा करेगा कौन हमें यों बारम्बार !

अभिलाषा

मेरे ही प्रफुल्ल कर - पुष्प का पराग पिये
कानन में डोलता प्रभात का समीर है।
मेरे नव - यौवन की सुरा से प्रमत्त बना,
झूमता वसन्त उपवन में अधीर है।
मेरी कामनाओं के अनन्त नीर प्लावन से
सूखता न विश्व की तरंगिनी का तीर है।
द्राक्षा में भरा है दिव्य मेरा ही जीवन - रस,
ढूँढ़ती मुझीको भाव - भ्रमरों की भीर है।

मेरे एक श्वास से त्रिलोक में विनाश होता;
खिलते हैं गन्ध - पुष्प मेरी अभिलाषा से।
उल्का हूँ, असीम हूँ, बवण्डर हूँ, पावक मैं;
मेघ बरसाते जल मेरी ही पिपासा से।
सूर्य - शशि घूमते हैं मेरी चारों ओर नित्य,
हिलते हैं पल्लव - दल मेरी मंजु आशा से।
नाचता कलापी मुग्ध मेरे ही इङ्गित पर
गाते हैं कोकिल शुक मेरी मधु - भाषा से।

जग है अवाक्, कौन आकर्षण मुझ में है?
अपनी विशेषता पर स्वयं मैं चकित हूँ।
रोम - रोम मेरे सुख - सुषमा से आकुल हैं;
वाणी का उपासक, मैं करुणा - कलित हूँ।
तारावलि अम्बर से मुझको बिलोकती है,
स्वर्ग का बिहारी, मर्त्य - लोक में पतित हूँ।
जानें, कब भूतल का प्रेम - पाश छिन्नकर,
उड़ जाऊँ, एक मैं प्रवासी परिचित हूँ।

निराले हैं मेरे ये गान?
निराले सब उपमान।

जगत में रह कर भी न कभी
जान मैं पाया जग के शूल,
हँसी से मेरी मादक नित्य
झड़ा करते हैं मोती - फूल।

कोकिला - सी उठती है गूँज
काव्य - कानन में मेरी तान;
निराले हैं मेरे प्रिय - प्राण।
निराले ही आदान - प्रदान।

निराले हैं मेरे आख्यान।
निराली तान - निराली शान।

निराले मेरे गान।

आबद्ध

यह कैसी है युक्ति?
पथिक, यह कैसी तेरी
युक्ति?

चाह रहा है उठना ज्यों-ज्यों,
फँसता ही जाता है त्यों-त्यों;
कौन सुनेगा इस दारुण—
दुर्दिन में तेरी उक्ति?

इस पथ का क्या अन्त कहीं है?
केवल गति—विश्राम नहीं है।
चलता रह अविराम, मिलेगी
कभी न तुझको मुक्ति।
पथिक, यह कैसी तेरी युक्ति?

३४५

प्रमुदित कर पञ्चों के प्राण,
करता कलियों को मधु - दान,
चढ़ विहगों की स्वर - लहरी पर
आता है जब स्वर्ण - विहान;
मैं कह उठता हूँ मन - ही - मन
यह तो तेरी ही मुस्कान!

भाँति - भाँति के धर वर - वेश,
अनुरंजित कर गगन - प्रदेश,
लहराते जब काले - काले
बादल - दल निर्बाध, अशेष;
मैं कह उठता हूँ मन - ही - मन
यह तो तेरे ही घन - केश!

शीतल - कोमल किरणों का वन,
खोल अमरपुर का वातायन,
उझक झाँकता है जब हिमकर
पुलकित कर वसुधा के तन - मन;
मैं कह उठता हूँ मन - ही - मन
यह तो तेरा ही मधुरानन!

उतर हिमालय से विस्फीत,
शैल - शिलाओं पर श्री - पीत,
गुंजित करती तानों से जब
निर्झरिणी वन - प्रान्त पुनीत;
मैं कह उठता हूँ मन - ही - मन
यह तो तेरे ही संगीत!

चूम शून्य के अधर - प्रवाल,
ताल - ताल पर हो बेहाल,
नर्तन करतीं रत्नाकर की
तरल - तरंगें जब उत्ताल;
मैं कह उठता हूँ मन - ही मन
यह तो तेरा हृदय विशाल!

चिड़िया

पीपल की ऊँची डाली पर बैठी चिड़िया गाती है!
तुम्हें ज्ञात क्या अपनी बोली में संदेश सुनाती है?
चिड़िया बैठी प्रेम - प्रीति की रीति हमें सिखलाती है!
वह जग के बंदी मानव को मुक्ति - मंत्र बतलाती है!
वन में जितने पंछी हैं, खंजन, कपोत, चातक, कोकिल;
काक, हंस, शुक आदि वास करते सब आपस में हिलमिल!
सब मिल - जुलकर रहते हैं वे, सब मिल-जुलकर खाते हैं;

आसमान ही उनका घर है; जहाँ चाहते, जाते हैं!
रहते जहाँ, वहाँ वे अपनी दुनिया एक बसाते हैं!
दिन भर करते काम, रात में पेड़ों पर सो जाते हैं!
उनके मन में लोभ नहीं है, पाप नहीं, परवाह नहीं!
जग का सारा माल हड़पकर जाने की भी चाह नहीं।
जो मिलता है अपने श्रम से, उतना भर ले लेते हैं!
बच जाता जो, औरों के हित उसे छोड़ वे देते हैं!
सीमा - हीन गगन में उड़ते, निर्भय विचरण करते हैं!
नहीं कमाई से औरों की अपना घर वे भरते हैं!

वे कहते हैं, मानव! सीखो तुम हमसे जीना जग में;
हम स्वच्छंद और क्यों तुमने डाली है बेड़ी पग में?
तुम देखो हमको, फिर अपनी सोने की कड़ियाँ तोड़ो;
ओ मानव! तुम मानवता से द्रोह - भावना को छोड़ो!
पीपल की डाली पर चिड़िया यही सुनाने आती है!
बैठ घड़ी भर, हमें चकित कर, गा-कर फिर उड़ जाती है।

बरून

मन भाया मेरे सखे, आज
मेरे बरून का कुंज - पुंज !
जब सह न ग्रीष्म का ताप महा,
बन कितने ही जल गये अहा !
यह रे चिर नूतन नूतन ही
नित बना हरा का हरा रहा !
हँसता वन - कुसुमों - सा अमन्द
मेरे बरून का कुंज - पुंज !
खाकर जग का निर्मम प्रहार,
उठता जब मैं दुख से पुकार;
इस शान्त तपोवन में ही कुछ
मिलता अपना-सा मधुर प्यार !
हर लेता चिन्ता अनायास
मेरे बरून का कुंज - पुंज !
आते ही इसके आस पास,
भर जाता रे हिय में हुलास;
बह जाती प्रेम - पुलक - धार !
विश्रान्त शिराओं में उदास !
ऐसा मनोज्ञ, ऐसा रसाल
मेरे बरून का कुंज - पुंज !
बहु खग-वृन्दों का रव अथोर,
ये लम्बी - लम्बी क्षीण पोर;
छूते ही जिनकी मृदुल छाँह
हो जाता मैं सुख से विभोर !
कितने जीवों का जीवन - सा
मेरे बरून का कुंज - पुंज !

योगी - सा निर्जन में अकाय !
यह श्यामल श्यामल असमवाय;
है खड़ा, जहाँ सकती न पहुँच,
कर्मान्ध जगत की करुण 'हाय' !
कवि के भावों - सा खेल रहा
मेरे बरून का कुंज - पुंज !
निर्मल सरिता के नीर - तीर,
नाचता जहाँ प्रातः समीर;
कर देते क्षण में दूर विहग—
कलरव मानस की कसक-पीर !
फैलाता अपना स्नेह - जाल
मेरे बरून का कुंज - पुंज !
कितनी शीतलता है अपार,
रे इसकी छाया में उदार;
हो जाता जिससे कुछ कम तो
पीडित प्राणों का व्यथा - भार !
सन्तों की आश्रय - कुटीर
मेरे बरून का कुंज - पुंज !
जुड़ती भौंरों की यहीं भीर,
गाते कोकिल - वक, काक-कीर;
उड़-उड़ कर इधर-उधर फुर-फुर
करती टिटीरियाँ टीर - टीर !
उन्मद निदाघ का शैल - वास
मेरे बरून का कुंज - पुंज !
आता मैं प्रतिदिन सुबह-शाम,
यह दो - पहरी का घोर घाम;
अनवरत विश्व - संघर्षण से
पाता सुख नवजीवन विराम !
एकान्त स्थान, यह पुण्य - धाम
मेरे बरून का कुंज - पुंज !

३४८

प्रेम न हो प्रिय, बन्धनमय !
क्या सरिता का खर-प्रवाह भी
रोका जा सकता चंचल ?
जल-जल भी पल-पल बढ़ता ही
जाता दीप-शलभ कोमल !
कौन मधुप के अन्तस्तल का
पता लगा सकता निर्मल ?
प्रेम न वह, जो, रहे न अपने
पथ पर निशिवासर अविचल !
प्रेम न हो प्रिय, बाधामय !
वह तो एक ज्योति है दिनकर
की शाश्वत, शुचि, महिमोज्वल ;
महा-शून्य में जो चलती है
निर्विकार नीरव, अविरल !
कितना पावन-पथ है उसका,
कितना सीधा और सरल !
राजा-रङ्क, श्वपच-द्विज ; सब पर
एक समान — एक अचल !
प्रेम मुक्त, चिर-तेजोमय !
प्रेम, प्रेम तो एक चिरन्तन
भाव; विश्व का नव-जीवन !
वह तो हर-त्रिनेत्र; बन जाता
जहाँ निमिष में भस्म मदन !
उसे चाहिये न एकान्त की
घड़ियाँ, कुंजों के लघु-क्षण !
अरे, पाप वह—खोज रहा जो
अन्धकार का अवगुण्ठन !

३४९

लुटा देना परिमल-से प्राण !
बन्धु, परिमल-से मेरे प्राण !
भार है वह जीवन भी—भार;
कि जिससे हुआ न पर-उपकार !
व्यर्थ रे अपनापन का प्यार ;
स्वार्थ के कलुषित सब व्यवहार !
मुझे क्या ? सुख से या सविषाद
बिता लूँ जीवन के दिन चार !
न मुझ पर यदि कोई हँस सके ,
बहा दे दृग-जल की ही धार !
किसीका अन्तर सौरभ हीन
कहीं रह जायें पर, न अजान ;
जुही की कलियों-सा नादान ,
लुटा देता हूँ अपने प्राण !
उषा की छाया में नित प्रात
बन्धु, विह्वल-से अपने प्राण !

३५०

आज, यह उर का कोमल भार !
तुम्हें प्रिय, देता हूँ उपहार !
नहीं निज लाघवता का ध्यान
प्रेम का कोई प्रबल प्रमाण !
चरण-रज की बस, केवल चाह
सतत्सेवाओं का अभिमान !
तुम्हारी मुख-छवि ही द्युतिमान
मुझे नित देती जीवन दान ;

तुम्हारी ही मादक मुसकान
प्रफुल्लित करती उर - उद्यान !
कहाँ से लाऊँ पुष्प अनन्त ?
करूँ मैं जिससे पूजा ध्यान !
एक, उर ही है ऐसा जिसे
देव, मैं सकता अपना मान !
इसीसे तो इसको ही आज,
तुम्हें मैं देता हूँ उपहार !

३५१

मेरे उपवन का एक फूल—
सौन्दर्य - स्रोत से मिला हुआ,
माधुर्य - मोद में खिला हुआ;
मधु -मलयानिल से झिला हुआ;
गिर पड़ा अचानक भूल - भूल;
मेरे उपवन का एक फूल !
माली की डाली का शृँगार,
वनदेवी का कल - हृदय - हार,
रे चला गया मुझको बिसार;
वह कहाँ हृदय में उठा शूल !
मेरे उपवन का एक फूल !
सुरभित था जिससे दिग्दिगन्त,
फूला था जिस पर मधु - वसन्त,
रे चला गया वह किस अनन्त;
की ओर मुझे इस तरह भूल !
मेरे उपवन का एक फूल ?

३५२

यदि ये नयन नहीं होते—
तो, फिर क्यों नैराश्य - उदधि में
मल - मल हाथ मनोरथ रोते !
यदि ये नयन नहीं होते !
रूप कहाँ ! आकर्षण कैसा !
मधुप कौन ! रसवर्षण कैसा !
सुधा कहाँ की ! गरल कहाँ का !
निज अरमान प्राण क्यों खोते !
यदि ये नयन नहीं होते !
मिलन, विरह ; सुख - दुख की घातें !
कब का परिचय ! कैसी बातें !
जरा - जीर्ण - जग - तरु - कोटर में
सभी बाल - विहगों - से सोते—
यदि ये नयन नहीं होते !

३५३

बहुत दिनों पर आये मेरे कविता-वन में तुम सुकुमार ;
लज्जित हूँ मैं, आज, हाय दूँ तुम्हें कौन-सा प्रिय,उपहार ?
रुचे करील,आक मन भाये;किया कुटिल किंशुक को प्यार!
शून्य हृदय-कूलों पर मेरे हुआ तुम्हारा मधु-अभिसार !
अब आये ये शूल, मार्ग में मलयानिल बन कर प्रतिकूल ;
चुन ले, चुन ले हे वनमाली, गन्ध - हीन मेरे वनफूल !

३५४

उर के सौ - सौ छिद्रों से तुम कर जाते हो मुझको प्यार ;
फिर भी, परिचय दिये बिना ही साफ निकल जाते हर-बार !
करने को पहचान तुम्हारी ज्यों ही मैं होता सन्नद्ध ;
कौन आवरण में अपने को पता नहीं, कर लेते बद्ध ?
बार - बार कोशिश करने पर भी तो मैं जाता हूँ हार !
बिना तुम्हारी दया, भला पा सकता कौन तुम्हारा पार ?

लज्जावती

बन जाये उपहार किसीका

बन जाये उपहार किसीका मेरी लज्जावती - लता यह ;
शोभित करे किसीका उर मुग्धा - सुकुमारी नवागता यह !
आई सकुचाती, सहमी-सी; प्राणों में व्रीड़ा समा गई !
फूटा न कंठ, वाणी न हिली; कैसी वह माया रमा गई !
लोचन की अन्तःसलिला से करुणा की धारा मिली रहे;
प्रणयी के हृदय - तपोवन में लतिका यह मेरी खिली रहे !

प्रिये, आज मेरी पर्णा में

प्रिये, आज मेरी पर्णा में मधुमय प्रेम - पूर्णिमा छाई ;
तेरे आगम से निदाघ - कानन में ऋतुपति की श्री आई !
मधुर मल्लिका विहँस उठी, खिल उठीं माधवी की नवकलियाँ;
दक्षिण-पवन जगाने आया—मचलीं किसलय - कुसुमावलियाँ !
सुरभि-प्रसून दिशाएँ; परिमल लहराता गवाक्ष के पथ से !
उतरी छवि साकार स्वर्ग की, मानो, मधु ज्योत्स्ना के रथ से !
खेल रहे इस फाल्गुन-वन में आज, प्राण - शिशु मेरे चंचल ;
मेरा मानस - सर अधीर है; करतीं चपल तरंगें छल - छल !
छाई डाली-डाली पर सुषमा की हरी - गुलाबी छाया !
गाकर वन्दन- गीत अनुपमे, कोकिल तुझे रिझाने आया !
केशर - केश - गन्ध से तेरी मूर्च्छित प्राण, वासना व्याकुल;
सीमन्तिनि, सिन्दूर - विन्दु - ज्वाला में जलते कैसे काकुल !
तनु के रन्ध्र - रन्ध्र से मेरे फूटे रोम - तृणांकुर कोमल ;
छिद्र - छिद्र से मेरे गृह के झाँक रहा मधु - पूनो उज्वल !
सफल कामना, सत्य साधना, वह विभूति मैंने अब पाई !
आज, कल्पना मूर्तिमती हो मेरा भवन सजाने आई !

तू मेरी सारंग - रागिणी

तू मेरी सारंग-रागिणी, शशि मरीचि का तार मनोहर ;
प्रेयसि, तू लोरी वह मेरी, सो जाता जग जिसको सुन कर !
वन - वन मुक्त विचरने वाली इतने दिन तक थी वन रानी ;
अब शासन करने तू आई मुझ पर बन गृहिणी कल्याणी !
कमल-नाल की अमल उँगलियाँ, स्वर्ण-वर्ण का कान्त-कलेवर;
तू मेरी मदनान्ध मेनका, जिस पर तप हो गया निछावर !
तू मेरी उर्वशी - सुन्दरी; तू तिलोत्तमा-सी सुकुमारी !
तू मेरी वह विश्व - मोहिनी, जिसके बस सारे संसारी
आदि सृष्टि के प्रथम प्रात-सी आई तू मेरे अन्तर में ;
जादू-सी बस गई हृदय कर विवश, वशीकृत छूमन्तर में !
रूपवती कविता तू मेरी; अमर तूलिका, कवि की वाणी !
लिख दे—लिख दे जीवन पट पर रंगिणि, कोई प्रेम-कहानी !
मिलन-रात्रि में आज उत्स दो एक कूल हो मिलने आये ,
एक डाल पर प्रिये, फूल दो खिलने दे, लो खिलने आये !
सखि, तू मेरे हृदय सरोवर की मधु-गन्धा कमल-कली सी ;
मेरी आँखों में आजा-आ, मेरी आँखों की पुतली - सी !

आज, प्रेम के रंगमहल में

आज, प्रेम के रंगमहल में मचल न तू मेरी सुकुमारी ;
अपने पावस-मेघाञ्चल में छिपा नवेन्दु-वदन मत प्यारी !
मौन जगत, नीरव निशीथ, निस्पन्द तारिका जग-लोचन की !
सालस स्वप्न - नीड में सोई शान्ति-वेदना मर्मर-वन की !
इस निगूढ़ तमसा - छाया में जाग्रत हम केवल दो प्राणी ;
सुप्त विश्व के शब्द - कोष में खोज रहे जीवन के मानी !
अधर दान दे मृत-अधरों को; मिला लोचनों से मृग-लोचन !
दुस्तर हृदय सिन्धु में मेरे खो दे सखि, अस्तित्व चिरन्तन !
ओष्ठ-कपोल-चिबुक सीपी से राशि-राशि चुम्बन के मोती,
भर भर मैं बिखेर दूँगा तव अङ्ग-अङ्ग में आज, कपोती !
मैं तेरा आधार बनूँ, तू कंठ-हार सखि, बन जा मेरी !
आजा, मेरे मुकुल अंक में भर लूँ नयनों में छवि तेरी !
फूँक प्रेम की वंशी राधे, सजे—नृत्य अभिसार सजे अब ;
आज, बना पागल है माधव, नूपुर की झंकार बजे अब !
यमुना तट, कदम्ब की छाया; विकसित मौलसिरी-शेफाली !
आजा, रास करें हम दोनों; तू व्रजबाला—मैं वनमाली !

आया पूजा करने तेरी

आया पूजा करने तेरी देवि, आज यह तरुण पुजारी ;
देख, इधर—है खड़ा द्वार पर कब से तेरा रूप-भिखारी !
बन न प्रिये, तू प्रस्तर प्रतिमा; कुछ भी तो मुझ पर करुणा कर !
प्राण पञ्चशर-वाण-विद्ध ये; आज, मान का कैसा अवसर !
इस निर्जन एकान्त कक्ष में सखि, लजा क्यों—व्रीड़ा कैसी ?
बार-बार अवरोध करों से छिपने की यह क्रीड़ा कैसी ?
नवागते, घड़ियाँ इठलातीं चिरसुख-की यौवन रस-बोरी !
अब भी अरी, न तूने अपनी उत्सुक आँख-मिचौनी छोड़ी

यों न रूठ—बढती ही जाती कातरता क्षण-प्रतिक्षण सजनी;
भाग रही ले एक-एकपल में अनन्त युग चपला रजनी !
युग-युग के संयत भावों का खुला आज अलि, कंटक-बन्धन !
निखिल लोक को चला डुबाने स्निग्ध स्नेह का शीतल प्लावन !
मुक्त हुआ सखि, भाव-विहंगम, आज गीत स्वच्छन्द हुआ यह !
अर्पण कर सर्वस्व तुझे तापस मेरा निर्द्वन्द्व हुआ यह !
आजा पास—पास तो आजा, कूक पिकी तू पंचम स्वर में !
भर दूँ भाल, बाँध दूँ कबरी, रख दूँ शिथिल करों को कर में !

घूँघट का पट खोल खोल तो

घूँघट का पट खोल-खोल तो तनिक आज, अपना अवगुण्ठन;
यह अधीरता, विह्वलता यह; यह मेरा उन्माद-विकल मन !
इतना यौवन, जो न समाता प्रेयसि, तेरे मधु-अंचल में;
यह सौन्दर्य, पवनवन उड़ता जल में, थल में, जो नभतल में !
जरा देख लूँ मुख मैं तेरा और मिटा लूँ मूर्त्त - पिपासा;
हा, न निराशा में कर परिणत तू मेरी चिर-सुन्दर आशा !
पुलक-विधुर तनु, गन्ध-मदिर उर; मन-तुरङ्ग उच्छृङ्खल मेरा !
हो जाता बलि, यदि मैं पाता कहीं एक मृदु-इंगित तेरा !
चरण चूम लेता झुक तेरे, करता सौ-सौ बार निवेदन;
लुट जाता मैं तरुण तपस्वी, पाता जो तेरा आमन्त्रण !
किन्तु, हाय—तू इतनी निष्ठुर; तनिक न मेरा ध्यान तुझे री !
किस अभिमानी ने दे डाला मानिनि, इतना मान तुझे री ?
दलित न कर प्रियतमे, पदों से मेरी उत्कण्ठित अभिलाषा;
बतला, हृदय-कोश में तेरे यही प्रणय की क्या परिभाषा ?
मञ्जुभाषिनी, आज न चुप रह; हँस कर बोल—बोल तो दे अब !
एक बार अपना घूँघट-पट अब तो खोल—खोल तो दे अब !

कितनी बार, न जानें, झंकृत

कितनी बार, न जानें, झंकृत हुआ हृदय यह स्मृति में तेरी;
कितनी बार याद में अविरल बही अश्रु - जलधारा मेरी !
कितने दान-पुण्य का प्रतिफल; कठिन तपस्या, व्रत मंगलमय !
मिली मुझे तू—जैसे तुझसे युग-युग का हो मेरा परिचय !
आज, मेंहदी - रँगे करों से छू दे मेरा गात, लजीली;
धानी - सारी के कोरों से चित्रित कर दे चाह रँगीली !
पता नहीं, सौगात मिली सखि, इतनी लाज कहाँ से तुझको ?
अरी, रूठना और मचलना सचमुच अब न सुहाते मुझको !
पी ले प्रेम - पिपासिनि, जीभर; मधु पी, मधु पी हे मधुबाले !
फिर न मिलेगी यह मधुशाला; फिर न प्राण ऐसे मतवाले !
गा ले क्षण भर एक रागिणी; जनम-जनम की प्यास बुझा ले !
कौन जानता, फिर न पड़े सखि, एक-एक प्याली के लाले !
बूँद-बूँद से सागर भरता, वही बूँद अनमोल बना फिर !
घूँट-घूँट से हृदय उमड़ता; वही घूँट, उन्मने, मना फिर !
भर ले घट, सर ले, घट भर ले; जब तक बहता निर्मल पानी !
कौन कहे, फिर सूख न जाये नदी, मन्द पड़ जाय रवानी !

विहँस - विहँस कर क्यों न पूछती

विहँस विहँस कर क्यों न पूछती मुझसे तू रसमयी कथाएं;
छिपी हुई है इन प्राणों में, जानें, कितनी कसक - व्यथाएं !
कितनी मधु, कितनी मादकता, कितनी मधुमाती बरसातें;
सिसक गईं मेरे आँगन में ओस - अश्रु से भींगी रातें !
कितनी बार खिले नव-पल्लव, कितने शिशिर-वसन्त बिताये;
कितने सुख-दुख, हास्य रोदना; कितने पतझड़ के दिन आये !
आज, उमंगें चहक रही हैं; बुलबुल मेरी कथा कहेगी !
कण-कण से कुंकुम हरिचन्दन, मलय-सुरभि की धार बहेगी !
क्षणभर तनिक विलोक इधर तो; चला मृगेक्षणि, चितवन के शर !
फँसा स्नेह-मधु-मादक-रस में मेरा चंचल मानस - मधुकर !
अङ्ग-यष्टि सीकरमय तेरी; कुंचित-सी काली अलकें क्यों ?
कान्ते, देख रहा मैं तेरी अर्द्ध-निमीलित-सी पलकें क्यों ?
कर किलोल सखि, देकर ताली बजा मधुरध्वनि रिनझिन पायल!
कुटिल कटाक्षों के विशिखों से कर दे मेरा मानस घायल !
सट कर बैठ, निकट ला आनन; मुसका-मुसका कर कुछ कह री !
यह उल्लास-हास, यह कौतुक, यह अनङ्ग की लीला लहरी !

होने दे परिरम्भण-चुम्बन

होने दे परिरम्भण चुम्बन; चलने दे व्यापार रभसमय !
छोड़ प्रिये यह अचिर दुराग्रह; यह नीरसता, लज्जा-अभिनय !
रोम-रोम में नाच रहा अलि, प्रथम प्रवाह प्रेम का अक्षय;
नस-नस में बहता उद्वेलित यौवन - विद्युद्वेग निरामय !
लहराता उसपार कामना का गम्भीर-हिलोरित सागर;
खोल विशद उर-द्वार आज, भर लेने दे इच्छा की गागर !
हूँ उद्भ्रान्त; अशान्ति-बवण्डर—ग्रसित प्रिये, मेरा हृदयाम्बर;
दीप-शिखा सी डोल रही मेरी कोमल तनु-लतिका थर-थर !
वारि-हीन मृदु-मीन-बाल-से प्राण आज म्रियमाण निराले;
कर अधरामृत-दान, पुनर्जीवन दे प्रमदे, गौरव पा ले !
ऐसी प्यास—सिन्धु पी जाऊँ; सुन्दरता की तान सुना दे !
एक बार लग विकल हृदय से युग-युगान्त की कसक मिटा दे !

बोल विहँस कर तू अलबेली, पूछ आज यह किसके कारण !
वारण कर संकोच निदारुण—कर न हाय निर्ममता-धारण !
मारण, मोहन औ उच्चाटन; वशीकरण का मंत्र चले री !
आज, विपुल-निधुवन-ज्वाला से तेरा उर पाषाण गले री !

पंजे में, यद्यपि, जान रहा

पंजे में, यद्यपि, जान रहा तू आ जायेगी स्वयं कभी;
अलि, पिघल मोम के दीपक-सी माँगेगी रति, रस, रङ्ग सभी !
रोयेगी तू, न सकेगी सह जिस दिन यौवन का भार सखी !
तड़पेगी मूर्च्छित शय्या पर आयेगा जिस दिन ज्वार सखी !
हिय-हार बनेगा वही, जिसे तू अभी रही दुत्कार सखी !
तब याद करेगी, उमड़ेगा उर में जब पारावार सखी !
फिर भी मुझको इस जीवन से—इस वैभव से सन्तोष नहीं।
मेरा यह हाहाकार प्रिये, तेरा कुछ इसमें दोष नहीं !
मन में न आलि, क्या तेरे कुछ इच्छा उमंग-उत्साह नहीं ?
मेरी विरहाकुल चाहों की – बेकलियों की परवाह नहीं ?
कर रही क्षार तू क्यों मेरा सारा आदर–मनुहार सखी ?
उद्गार बिलखता कातर हो, रोता भिक्षुक लाचार सखी !
बनती क्यों सोच समझकर भी ना समझ और नादान सखी ?
तू, जान-बूझकर भी कहती क्यों अपने को अनजान सखी ?
यह रूप, जवानी और देह बस, दो दिन का मिहमान सखी !
निशि-दिन मस्तक पर झूल रही मानव के मरण-कृपाण सखी !

वह जीवन क्या, पाया जिसने

वह जीवन क्या, पाया जिसने प्रियतम का प्यार दुलार नहीं;
वह क्या कपोल, माँगा जिसने मधु-चुम्बन-रस का सार नहीं !
वह तनु भी क्या, जो सहा पुलकमय आलिङ्गन—सम्भार नहीं;
वह यौवन क्या, जो बना किसीके विनत गले का हार नहीं !
तू ही मेरी काव्य मुरलिका; तू जीवन की आधार सखी !
तू भोली क्या जाने—कितना करता मैं तुझको प्यार सखी !
यदि एक बार भी देखे तू इस ओर विलोचन खोल जरा,
मैं हृदय चीरकर बतला दूँ इसमें कितना मकरन्द भरा !
क्या प्रेम और सौन्दर्य यहाँ आते हैं बारम्बार सखी !
चलता बस, चार दिनों तक ही सुन्दरता का बाजार सखी !
इस मोहक वन में माया के होगा मेरा निस्तार नहीं;
कर मानवती, यों मानवता - कलिका पर कुलिश - प्रहार नहीं !
अब सह न सकूँगा, सच कहता, मलयानिल का संचार सखी;
इस दुर्विनीत रुज का होगा कोई न कहीं उपचार सखी !

जबतक यौवन है, मदिरा है; ले ले दस - बीस हिलोर सखी !
फिर क्या जानें, किस ओर चले यह परदेसी चितचोर सखी !

दो हृदयों को मिल आपस में

दो हृदयों को मिल आपस में होने दे एकाकार प्रिये;
ला, गूँथ ग्रन्थि दूँ वेणी की; बन इतनी मत अनुदार प्रिये !
अपमान भुला, अभिमान भुला; तू छोड़ विरह का मान प्रिये !
आनन्द - सारिका के स्वर में गा महा मिलन का गान प्रिये !
लेना है जो कुछ, ले ले झट; उठती जाती है हाट प्रिये !
यह तो बरसाती धारा है; रहता न एक - सा घाट प्रिये !
जाऊँ किस महा - हिमालय में अपने जलते अरमान लिये;
किस अग्नि - लोक में जा जूझूँ मैं आँसू की पहचान लिये !
लोटूँ किन दग्ध-चिताओं पर शत शत कल्पों की प्यास लिये ?
मैं मरूँ हाय किसकी चितवन पर विस्मृति का इतिहास लिये ?
हाँ, इसी लिये तो खोज रहा तुझमें अपना निर्वाण प्रिये;
ज्वाला में शीतलता मेरी; बसता विष में कल्याण प्रिये !
रजनीगन्धा के वृन्तों पर छाया निशीथ - नीहार प्रिये;
आ मेरे हृदय गगन में तू धर कर शशि का आकार प्रिये !
यों मद-विह्वल उर मेरा मत तू निष्ठुरता से झकझोड़ प्रिये !
बन री वाचाल, निरुपमे अब - अब भी नीरवता छोड़ प्रिये !

एक बार लोचन से लोचन

एक बार लोचन से लोचन, हृदय हृदय से मिल जाने दे;
अधर अधर से, ओष्ठ ओष्ठ से, रोम रोम से खिल जाने दे !
कटि से कटि, सखि, उरु से उरु, मिल जाय भुजाओं से भुज-बन्धन;
श्वास श्वास से, गन्ध गन्ध से, मन से मन, स्पन्दन से स्पन्दन !
जुड़ जायें अलि, प्राण प्राण से; मन से मन, जीवन से जीवन !
वय से वय, वत्सर से वत्सर, ऋतु-ऋतु, वासर-वासर, क्षण क्षण !
संज्ञा एक, एकही इच्छा; एक वासना – नियम एक हो !
स्पृहा एक, उल्लास एक, स्मृति एक, चिन्तना-विषम एक हो !
आज प्रेम की रंग-भूमि में उत्सव उत्स उमड़ लहराये;
चिर-परित्यक्त मधुरिमा मेरी पुलक-स्पर्शन, आलिङ्गन पाये !
अवयव-अवयव मिलनमोद में; हो वियोग का नाम न, आ री !
अपने व्याकुल बाहु - पाश में कसकर तुझे बाँधलूँ प्यारी !
आ, गोरे गालों पर तेरे फूल खिला दूँ मैं चुम्बन के;
भर दूँ मदिर - श्वास-सौरभ से पत्र - पत्र तेरे मधुवन के !
ध्यान बना तेरा मानस में; स्मृति में तेरी ही छवि-छाया !
रोम रोम में रमी सुन्दरी, तेरी भुवन - मोहिनी माया !

खिलते सुमन विपिन में, मधुकर

खिलते सुमन विपिन में, मधुकर वहाँ आप ही, तो, आ जाते ;
केकी स्वयं नृत्य कर उठते श्याम-जलद जब नभ में गाते !
आता ज्यों मतवाला यौवन, त्यों ही रंग बदलता उपवन ;
मंजरियाँ पुर-द्वार सजाकर ले आतीं शत-शत आकर्षण !
फुलवारी में प्रिये, जवानी की वसन्त क्या फिर-फिर आता !
जो कलियाँ खिलकर झड़ जातीं, उनको भी क्या अमृत पिलाता?
समय प्रतीक्षा की किसकी, कब अवसर लौटा घर से जाकर !
यह काया, जो पुनः न वापिस हुई चिता की भस्म लगाकर !
भग्न-मनोरथ प्रेम-पथिक मैं दुर्गम मग में ठोकर खाता ;
पर, अरण्य-रोदन यह मेरा ; कृपा न क्यों सखि, तेरी पाता ?
पुष्प-पुष्प का परिमल पीने, आये हम सर्वस्व गँवाने ;
यहाँ चाँदनी में दो दिन की प्रिये, लूटने और लुटाने !
तब न सकेगी मिटा महावर, देगी झिटक अँगुलियाँ, गोरी ;
जब कठोर तुझ-सा ही होकर सजनि, करूँगा मैं बरजोरी !
नव यौवन के रंग मंच पर तेरा यह शृङ्गार मनोहर ;
नटी देख ही लूँगा बरबस आज, बना मैं पवि का अन्तर !

निशा शेष हो चली, सलोनी

निशा शेष हो चली, सलोनी, घृत-प्रदीप भी बुझने आया ;
बोले चक्रवाक, शुक जागे, देख क्षितिज पर लोहित छाया !
हुआ शुक्र निस्तेज, चन्द्रिका मलिन, द्विजों ने गायन गाया ;
मना रहा मैं कब से तुझको, गई न तेरी कौशल-माया !
सिहर न सजनी, काँप न भय से, आशंका से हृदय न डोले !
पी ले एक पियाला सुख का, पीकर आज अमर तू हो ले !
ले ले एक मुहर अधरों पर; सुख-दुख भूल-भूल जा क्षण भर !
आज, प्रेम मेरा उन्मादी; उर उद्दाम, विराम न तिल भर !
तू मेरे इस जीवन-उपवन की सखि, कोयल है मतवाली ;
कहीं ढूँढ़ ही लूँगा तुझको; उड़ न कूक कर डाली-डाली !
एक बार यदि इन हथों में विहग-कुमारी, आ जाये तू ;
तुझे पता क्या — मुग्धे, मुझसे छुटकारा भी पा जाये तू !
लगा हुताशन-दग्ध वक्ष से शीतलता-सिंचन कर दूँगा ;
गन्ध-पाश में बाँध मूक प्राणों में जीवन-मधु भर दूँगा !
अब तक स्वप्न बनी थी मुक्ता ; आज सामने ही छवि छहरी !
देखूँ तो, आँखों में तेरी बसती कितनी मदिरा गहरी !

बजे मृदङ्ग, मुरज औ वीणा

बजे मृदङ्ग, मुरज औ वीणा; बजे मिलन-सुख की शहनाई !
आज, गन्ध-मादन से मेरी उतर प्रणय की राका आई !
हँस ले और हँसा ले रूपसि, इस सुहाग रजनी में सुखकर ;
भरदे मेरी गोद, वक्ष, उरू, अपनी केश-राशि से सुन्दर !
जिससे फिर न हृदय में मचले, मचले फिर न कसक दीवानी ;
बढ़ आने दे अपना यौवन, बढ़ आ तू भी मेरी रानी !
शून्य कल्पना-नभ में उमड़ी पावस की घन माला काली ;
चमक शोभने, तू चपला सी; काट हृदय की अमा निराली !
आज, देवता हैं प्रसन्न; वर तापसि लेती माँग न तू क्यों ?
हँसती क्यों न खोल उर-बन्धन? सखि, न सजाती आँगन तू क्यों?
नयन जुड़ा ले हे वन कन्ये, क्या फल होगा अवधि बिताये ?
देख, भ्रष्ट शृङ्गार न हो सखि, योंही यौवन बीत न जाये !

२५६

स्वर्ण-घन-सा सहसा नित-नूतन
मिला मुझको वह मेरा यौवन ;
सरल-कल शैशव के नव-रथ पर,
चली जाती थी जीवन-पथ पर ;
अचानक नन्दन-वन-सा पावन ;
मिला निर्जन में मेरा यौवन !
स्वरों में भर कम्पन, रस-वर्षण ;
पलक में, पलकों में आकर्षण !
पूर्णिमा-शशि-कर-सा प्रिय-दर्शन ;
मिला रजनी में मेरा यौवन !
अधर पर सुस्मिति, उर में स्पन्दन ;
स्पर्श से सकुच, हर्ष, भय, सिहरन !
खिला मन-मधुवन, नव-मधुकण बन ;
मिला उपवन में मेरा यौवन !

बुद्बुद्

ओ री तुम चंचल जल - परियाँ !

जब - जब बहती शीतल बयार ,
बजते लयसे किसलय - सितार ;
नीली वेला के आर - पार
जब - जब उठते कुक्कुट पुकार !

तब - तब तुम मचल - मचल उठतीं ;
मृदु - स्वर से कर कल - कल उठतीं !
तारों के दीपक - सी जल में
तुम बुझ - बुझ कर जल - जल उठतीं !

बिजली - सी फेंक - फेंक तटपर
मर्मर - मर गीतों की कड़ियाँ !
ओ री तुम चंचल जल - परियाँ !

तुम जूही के कोमल - कोमल ;
हो फूल फुल्ल उज्वल - उज्वल !
डालो में तुङ्ग - तरङ्गों की
तुम छाई रहती हो दल- दल !

झोंके खा मारुत के चंचल ,
झट चू पड़तीं झलमल-झलमल !
भर जाती सरिता के उर की
मनुहार - भरी डाली शीतल !

फिर, बिखरी - बिखरी - सी पड़तीं
बन - बनकर सौ-सौ फुलझरियाँ ;
ओ री तुम चंचल जल परियाँ !

लहरों की तरल हिँदोलो पर ,
जल - थल में एक प्रकम्पन भर ,
तुम झूल - झूल जातीं सुख से
कुछ ठमक इधर कुछ चमक उधर !

हँसती, मुसक्याती, बलखाती ,
सखियों से हिलमिल बतराती ;
अपनी दो दिन की दुनिया में
दुख बिसर, सुखों पर इतराती !

आपस में करती चुहल - पुहल
छितरा कर मोती की लड़ियाँ !
ओ री तुम चंचल जल परियाँ !

हिलती झौए की डाल - डाल ;
उतरातीं नावें उड़ा पाल !
लहरों पर कैसी दिख पड़ती
कुछ टेढ़ी - सीधी, लाल - लाल !

क्यों स्वयं मिटाती झाँक - झाँक ,
तुम किसका मुखड़ा बाँक - बाँक ?
छूमन्तर सरसे निकल - निकल !
हो जातीं क्षण में झाँक - झाँक !

काँपता धरा का पीताञ्चल ,
एकाग्र - मूक वन, गिरि - दरियाँ ;
ओ री तुम चंचल जल - परियाँ !

तुम मछली - सी मिछली पड़तीं ;
सीवारों से बिछली पड़तीं !
अपनी ही छिछली छाया में
पिछली पड़तीं—पिछली पड़तीं !

फव्वारों - सी कुछ उछल - उछल ,
ऊपर आ - आकर, निकल - निकल ;
फिर ज्यों - की - त्यों क्षण में—पल में
छुप जातीं कर टलमल, टलमल !

गा राग - भरी, अनुराग - भरी ,
नव - आसभरी आसावरियाँ ;
ओ री तुम चंचल जल -परियाँ !

इतना यौवन - मद; तीर - तीर
नाचतीं; नहीं जानतीं पीर !
बस, ताल - ताल पर थिरक रहीं
सुध - बुध शरीर की खो, अधीर !

गूँजा कल तानों से वनान्त ;
रे ध्वनित सरित का पुलिन - प्रान्त !
पर, तुम्हें कहाँ विश्राम ? सजनि ,
बस, उसी तरह व्याकुल अशान्त !

ऐसी यह कसक—उड़ा लाई ,
जो नृत्यमती व्रजनागरियाँ ;
ओ री तुम चंचल जल - परियाँ !

अलि कहता क्या-री ठहर ! ठहर !
मत मादकता से घहर - घहर !
इंगित क्या करते खग-सुन, सुन ;
कुछ सोच समझ कर लहर - लहर !

लेकिन, तुम ध्यान कहाँ लातीं ?
कब की वे बातें सुन पातीं !
केवल अपनी धुन में पगली ,
बढ़ती जाती—बढ़ती जातीं ,

कढ़ती उमङ्ग नव अंग - अंग ,
कह री शुचि फेन - सुफल सड़ियाँ ;
ओ री तुम चंचल जल - परियाँ !

हाँ, हाँ ; सखि ! नाचो, इठलाओ !
उछलो अशंक, छल-छल गाओ !
विस्मृत - मृत वसुधा पर अपनी
जीवनी - सुधा को बरसाओ !

आओ कुछ सीख लिये जाओ ;
प्याली दो - एक पिये जाओ !
बदले में अपनी चिर - प्रसन्न—
मुखताकी भीख दिये जाओ !

जिसको पाते ही उठ बैठें
मेरे भी यौवन की घड़ियाँ !
ओ री तुम चंचल जल - परियाँ !

कुतूहली

वह रे अनन्त का नील हास ;
ताराओं का झिलमिल प्रकाश !
करते निवास जो निशिवासर
मेरे प्राणों के आसपास !
वह रे अनन्त का नील हास !

वह रे कंचन की किरण-कोर ;
वन-विहगों की मधु-मदिर रोर !
द्रुत बोर गया जिनसे मेरे
सूने मानस का ओर - छोर !
वह रे कंचन की किरण-कोर !

वह रे कोकिल की कलित कूक ;
कल-विजनवती की तान मूक !
इक हूक उठा हिय में मेरे
कर देती हैं जो टूक - टूक !
वह रे कोकिल की कलित कूक !

बह रे सरिता का शुभ प्रतीर ;
परिमल - पावन प्रातः - समीर !

जो भीर चीर मेरे दुख की
हैं कर देते पुलकित शरीर !
वह रे सरिता का शुभ प्रतीर !

वह रे वल्लरियों का वितान ;
तापस-तरुओं का मौन ध्यान !
म्रियमान प्राण को नवजीवित
कर देते जो चिर-शान्ति दान !
वह रे वल्लरियों का वितान !

वह रे सागर-जल की हिलोर ;
लहरों का भीषण तोड़-शोर !
जिनका अघोर-सा नृत्य निरख
हो जाता मैं सुख से विभोर !
वह रे सागर-जल की हिलोर !

वह रे असीम की मृदुल गोद ;
दुर्वाओं की शय्या ; समोद—
सोता मैं जिसपर नित्य दिवस
मधुबाला से कर के विनोद !
वह रे असीम की मृदुल गोद !

वह रे बादल का घनालाप ;
कौतुक-कलाप, प्रिय-इन्द्रचाप !
जो अहा, आप ही आप बहा
धो देते मन का पाप-ताप !
वह रे बादल का घनालाप !

वह रे तुषार का कुन्द-हार ;
रजतोपम हिम का गुरु-प्रसार !
मैं बार-बार बलिहार हुआ
जिसकी सुन्दरता पर अपार !
वह रे तुषार का कुन्द-हार !

वह रे नीहारों का विहार ;
उन्मुक्त गगन के आरपार !
सुकुमार करों से जो मुझपर
बरसाते नित अक्षय दुलार !
वह रे नीहारों का विहार !

३५६

रजत-रेत पर—
पहन तुषार-हार शशि-श्वेत,
कर ज्योतित कर से संकेत,
असमवेत सोई है परिहत—
वसना नीरव, श्रान्त, अचेत ;
सौरभ-भार विनत सहकार ;
अपना ही यौवन-सम्भार !
शिथिल कर रहा तन सुकुमार !

महा-विजन से—
उतर मौन-पद गुरु-गम्भीर,
मलय-समीरण अलस-शरीर ;
नीड़-द्रुमों के अन्तराल से
उझक-उझक रह, झाँक अधीर !
मधुबाला-सी कर शृङ्गार,
हिला मन्द स्वप्निल मन्दार ;
करती फिरती मधु-गुंजार !

सरिता-जल में—
कर निज तनु का लघु-प्रस्तार,
बाल-बुद-बुदों से अभिसार ;
चपल-तरङ्गावलियों पर मृदु,
खिला रश्मि के फूल अपार !
वनदेवी-सी बन साभार,
पहन कुन्द-कुसुमों का हार ;
करती अभिनव वारि-विहार !

३६०

तुम मन्मथ के केशर - शर की
परिमल - ज्या निर्मल, कोमल ;
तुम द्रुमदल के विद्रुम - अधरों
पर स्मिति-रेखा कल, अविकल ।
धवल - चन्द्रिका - धौत निशा में
पावन शान्ति तपोवन की ;
तुम श्रावण के जल - प्लावन में
यौवन - मद - विह्वल पल्वल ।
वियत-सरित में ऋषि-कुमारियों
का विमुक्त संतरण - विमल ;
तुम अनन्त - पथ के यात्री का
ममतामय सम्बल, दुर्बल ।
उडु-उडु के कुड्मल-कुड्मल को
खिला अपत्र, अवृन्त, अमूल ;
नभ - मालञ्चाधार - शयित तुम
निशि-लतिका निर्जल, कज्जल ।
प्रकृति - रङ्ग पर सन्ध्या - ऊषा
ऋतु-दिन का आगमन-गमन ;
तुम सहस्र-दल के हिँदोल पर
बूँदों का ढ़लपल, पल - पल ।
नीरव अरण्यान्त में पीले
पतझड़ का मर्मर - रोदन ;
तुम रसाल के छाया वन में
मधु का सुषमाञ्चल, चञ्चल ।
तुम अलका की चिर-वियोगिनी
का कुन्तल कोमल, श्यामल ;
तुम हेमन्त-हिमानी का हिम—
महा-महिम हीतल, शीतल ।

३६१

अपने ही सौरभ से पागल—
भटक रहा कस्तूरी - मृग - सा
वन - वन में मैं अविरल पल - पल ।

मरीचिका की दुस्तर माया ,
दग्ध कर रही मेरी काया ;
अपनी ही छाया के पीछे
दौड़ रहा हूँ मैं उच्छृङ्खल ।
अपनी ही सुगन्ध से पागल ।

सरित-सलिल से उर-उर-पुर में ,
निरख-निरख छवि विश्व-मुकुर में;
अपनी ही प्रतिविम्ब - विन्दु पर
रीझ उठा हूँ मैं चिर - दुर्बल ;
अपने ही सौरभ से पागल ।

शयन-शिथिल-जग-पलक-मुकुल पर ,
खिल, मृदु हिलमिल ,कोमल - सुन्दर;
अपनी ही सौन्दर्य - सुरा पी
मत्त बना हूँ आज अचंचल ।
अपने ही सौरभ से पागल ।

३६२

चन्द्र उदित हो हर लेते हैं क्षण में रजनी का सन्ताप ;
किन्तु, दूर कर सके न अपने ही अन्तर की काली छाप !
औरों को बतलाते तम में मार्ग - प्रदर्शक बनकर राह ;
पर , अपने टेढ़े - से पथ की रहती है न तनिक परवाह !
बाहर ज्योतिर्मय ; मानस में लेकिन कुल - कलंक - कज्जल ;
' दिया तले अन्धेरा ' का यह कैसा उदाहरण उज्वल !

नग्न - दर्शन

बस कर री सजनी, छोड़ लाज ;
देखूँगा तुझको नग्न आज !
हम नग्न विश्व के नग्न - बाल
खेलें शिशु - सा ही सतत्काल ;
नंगे बिचरें, नाचें नंगे,
हो जायें नंगे - ही निहाल !
इस नग्न जगत में आ विराज ;
बस, कर री सजनी, छोड़ लाज !

हम आये जग में कभी नग्न,
खेले धूलों में सभी नग्न ;
जाना भी होगा नग्न कभी,
फिर क्यों न अहा, हम अभी नग्न?
हों नंगे - ही सब काम - काज ;
बस, कर री सजनी, छोड़ लाज !

है नग्न वाद ही आदि - अन्त ;
प्राकृतिक, सत्य, शाश्वत ज्वलन्त !
हम प्रकृति-पुरुष, उत्पत्ति मूल ;
आनन्द-ज्योति, कारण, अनन्त !
फिर क्यों रहस्य-आवृत समाज ?
बस कर री सजनी, छोड़ लाज !

नंगा पर्वत, आकाश नग्न ;
नंगा सागर, वातास नग्न !
नंगा दिक, घन, संध्या, प्रभात ;
रवि-किरण नग्न, शशि-हास नग्न !
नंगी संसृति, नंगा समाज ;
बस, कर री सजनी, छोड़ लाज !

हम नंगे आये, नग्न चले ;
नंगे - ही भूपर सदा पले !
कुछ ऐसी मौत मिले तन पर
मर जाने पर भी कफन खले !
सच, भिखमंगों पर गिरे गाज ;
बस कर री सजनी, छोड़ लाज !

यह शान्त सरोवर का प्रतीर ;
प्रमुदित - पुलकित मेरा शरीर !
यौवन - मदिरा की विकट गन्ध
कर रही मुझे पल-पल अधीर !
मैं व्याकुल, विह्वल, विधुर आज ;
बस, कर री सजनी, छोड़ लाज !

सामने क्षितिज, वन एक ओर ;
नीचे भू, ऊपर नभ अछोर !
कर दे विमुक्त कुन्तल-कलाप ;
मैं आज करूँगा चोर - चोर !
देखूँगा तुझको नग्न आज ;
बस कर री सजनी, छोड़ लाज !

रह जाय न लेश भी वसन शेष ;
उर, भुज, कपोल, शिर, जघन-देश !
हो मूर्तिमती मेरे समक्ष
अब धारण कर तू नग्न वेश !
सर्वत्र शान्ति का अटल राज ;
बस कर री सजनी, छोड़ लाज !

फिर-फिर अंचल से मुख न ढाँप ;
कर से वक्षस्थल को न चाँप !
टुक दृष्टि उठा, कर दृग सम्मुख ;
किस भय से इतनी रही काँप ?

व्रीड़ा का कैसा आज व्याज ?
बस कर री सजनी, छोड़ लाज !

सौन्दर्य रहे क्यों नाटकीय ?
छवि दर्शनीय, छवि स्पर्शनीय !
घटती न परिच्छद से, बढ़ती—
ही पर, उत्सुकता मानवीय !
बदले न देख मेरा मिजाज ;
बस कर री सजनी, छोड़ लाज !

यह अवगुण्ठन, यह अलंकार ;
निष्फल, असार रे निराधार !
मृदु - अंगराग, मणि - कंठहार ;
केसर - कुंकुम-कृत नव - शृँगार !
तू यों ही सर की बनी ताज ;
बस कर री सजनी, छोड़ लाज !

मत समझ इसे हाँ, मदन - रंग ;
हो जा तू निःसंशय उलङ्ग !
प्रोज्वल प्रकाश के सम्मुख बस ,
फैला दे अपने अंग - अंग !
जिस सुन्दरता पर तुझे नाज ;
देखूँगा उसको नग्न आज !

यह जीवन का संक्रान्ति - लग्न ;
मैं वैरागी अनुराग - भग्न !
भिक्षुक - सा माँग रहा तेरा
अपरूप - रूप - दर्शन विनग्न !
बस, क्षण - भर को ही छोड़ साज ;
कैसी यह सजनी, आज लाज ?

लूँ देख तुझे बस, एक बार ;
मैं सहस्राक्ष - सा दृग पसार ;
जागे न हृदय में फिर उमंग ,
चिर - उत्कण्ठा, चिर - अनाचार !
वासना - दद्रु , कामना - खाज ;
बस कर री सजनी, छोड़ लाज !

मत हो लज्जा - सर में निमग्न ;
कर दे कुच-नीबी - ग्रन्थि भग्न !
आ जा, ओ, आ मेरे समीप
सम्पूर्ण नग्न , एकान्त नग्न !
हो जाय चकित - विस्मित समाज ;
देखूँ मैं तुझको नग्न आज !

३६४

कौन तुम पलकों में सुकुमार
आँसुओं से करते अभिसार ?
स्वप्न में सुन श्यामा - ध्वनि - मन्द
चौंक जब पड़ते बेसुध प्राण ;
सदय, तुम झट लेते अविलम्ब
हृदय से लगा मुझे अनजान !

असित कोरों में दृग के दौड़
किया करते हो सदा किलोल ;
कभी शिशु - सा तुम रूठ-मचल.
भिगो देते आरक्त कपोल !
देखने का ज्यों ही मैं कभी
तुम्हें करती हूँ विफल - प्रयास ;
कहाँ , मैं कैसे जानूँ , हाय
निठुर , छुप जाते कर परिहास !

बता दो, तुम्हीं कौन सुकुमार
आँसुओं से करते खिलवाड़ ?.

३६५

वेदने, यह कैसा उल्लास ?
कहाँ देखा है अमर प्रकाश ?

भूलते जो उपवन में फूल
मन्द मारुत से हिलमिल आज ;
वही, कल झड़ पड़ते तत्काल
छोड़ सारे वासन्ती साज !

सहमते हाथों से परिम्लान
मृत्यु की धरकर काली डोर
चला जा रहा अहा, अविराम
विश्व यह महा-शून्य की ओर !

चपल यौवन पर दो दिन भूल
रूप की हाटों में ले खेल !
अन्त में किन्तु, वही अवसान ;
मोल लेना ही होगा ; बोल !

कहाँ देखा फिर अमर प्रकाश ?
वेदने, जो इतना कल हास !

३६६

झाँकते हो क्या बारम्बार ?
अरे, आ जाते क्यों न उदार ?

आज, पूनो की योज्वल रात,
बह रही मन्द-मन्द मृदु वात ;
चाँदनी तरु-पत्रों से चारु
झड़ रही छन-छन कर अवदात !

दिखा कर एक झलक ही हाय,
छिपे क्यों कहो, अहो सुकुमार !

कहाँ ढूँढूँगी तुमको आज ?
कहाँ पाऊँगी यह मनुहार ?

अरे ! बस, एक बार ही और
झाँक लो वातायन से मौन ;
देख लूँ जी भर जिससे तुम्हें
अर्द्ध-रजनी में तुम हो कौन ?

कहाँ से आते हो अभिराम ?
करोगे क्या न तनिक विश्राम ?
उड़ा ले चले कहाँ उद्दाम ?
हरण कर मेरा हृदय-ललाम ?

खुला ही है तो अन्तर-द्वार !
अरे, आ जाते क्यों न उदार ?

३६७

सिखाया था किसने हे प्राण,
तुम्हें यह सोने का कल गान ?

वन्य-कुसुमों-सी वन के बीच,
विजन में ही खिलकर चुपचाप,
मुसकिरा पड़ती हो तुम स्वयं
माधुरी पर अपनी ही आप !

ऊर्म्मियों पर तटिनी की तरल
वारि-बुद्बुद्-सी खिल अनजान,
स्वयं ही मिट जाती है प्राण,
तुम्हारी यह मद-विह्वल तान !

बिहँसना, खिलना यों मुसकान
सिखाया था किसने हे प्राण ?

बीमारी

हरे - भरे कोमल - कुसियार—
व्यजन-पत्र-से हिला बयार,
'सावधान' से बाँध कतार,
मा, इस फागुन की बहार में
लगते हैं कितने सुन्दर!

देखा था मैंने उस बार—
थी जब मैं ज्वर से लाचार,
पड़ी हुई बेसुध बीमार,
काट पगार खेत से भैया
लाये थे जब मा, घर पर!

तुम भी तो थीं मेरे पास;—
एक बड़ी - सी डाँड़ चबाते,
आये थे जब गाते गाते,
मैं रोई थी कितना अपनी
आँखों में आँसू भर - भर!

कहा उन्होंने, हो न उदास;—
बीमारी में अधिक न बोलो;
मेरी चम्पा, अच्छी हो लो!
फिर तब इसका स्वाद परखना
एक स्वयं तुम भी चख कर!

अब मा, मुझको कर न निराश;—
छोड़ूँगी न एक भी सीठी;
देखूँ, यह कितनी है मीठी!
एक जरा-सा टुकड़ा ही बस,
मुझको अब दे दो लाकर!

हाय, तुम्हारा व्यर्थ प्रयास;—
कहो, सकोगी कैसे तोड़?
गन्ने की यह पोर कठोर!
गुल्ले कैसे बना सकोगी?
छिल जायेंगे मधुर अधर!

नहीं, नहीं, सुन मेरी प्यारी;—
जो मैं कहूँ उसे ले मान;
व्यर्थ रही क्यों तू हठ ठान?
कैसे चबा सकोगी सच इन
गिरहों को यों बड़ी बड़ी?

अभी न खा यह ऊँख कड़ी;—
जरा और बढ़ जाओगी तुम;
सब कुछ निश्चय पाओगी तुम!
रो मत - रो मत; ला देती मैं
तुरत तुम्हें माखन - मिसरी!

३६६

इतना ही तो है अन्तर!
मुझमें औ तुझमें सुन्दर!

तू है कुसुम विजन वन का;
मैं हूँ उसका सौरभ नव!
तू है कोमल स्पर्श किसीका,
मै हूँ मदिर पुलक नीरव!
तू है मलय-समीरण-विहरण;
मैं हूँ उसकी शीतलता!
तू है शैशव - स्नेह - सरल मन;
मैं बचपन की निस्पृहता!
तू हिमकर - कर; मैं सीकर!
इतना ही तो है अन्तर!

३७०

हो जाता जब सायंकाल ;
गेह लौट आते गो - बाल ,
मा, क्यों दिया जला देती है
कुसुम - बहिन अँधियाली में
सूनी तुलसी के तरु - तर !

उस पौधे के नीचे कौन
मा, बैठा रहता है मौन !—
जिसका वह अभिवादन करती
नत - मस्तक होकर नित दिन
मूँद अलस-लोचन क्षण भर !

श्यामा, उस तुलसी के पास ,
जग - जननी का है आवास ;
इसीलिये तो, रख आती है
कुसुम वहाँ पर दीप जला
इस निर्जन - पथ से चलकर !

सुनती हूँ कुछ ऐसी बात ,
नित्य - दिवस जा सायं - प्रात ;
जो तरुणी करती प्रणाम है
तुलसी को, रहता उसका
युग - युग तक सौभाग्य अमर !

मा, दे एक मुझे भी दीप ,
तुलसी के आँगन को लीप ;
मैं भी लघु - तरु के समीप ही
दीप जला दूँगी सुन्दर ;
पीपल के पथ से जाकर !

कर आऊँगी कातिक - स्नान ;
रख मंगल - व्रत, पूजा - ध्यान !
क्या मेरे भी प्राण मिलेंगे
मा, उस तुलसी के वन में
कभी प्रेम से हँस - हँस कर !

३७१

क्या गाती जातीं सरिताएं
करती अविकल कल - कल - कल ;
बहती रह प्रियतम के पावन
स्मृति-पथ में प्रतिक्षण, प्रतिपल !

गल-गल कर तुहिनोपल कहता
किस इच्छा से आन्दोलित ;
मत कह यों कि कभी प्रस्तरका
अन्तर सकता अलि , न पिघल !

जल - जल शलभ - पुंज क्या कहता
दीप - शिखा से उच्छृङ्खल ;
प्राणदान ही सजनि , तुम्हारे
आलिंगन का है प्रतिफल !

बैठ पास ही में शिरीष के
रोता आँसू भर कंटक ;
एक बूँद रस मुझको भी तो
देते जाते हे चंचल !

मिटने ही में तो मिलता है
जीवन का आनन्द विरल ;
क्या गाती जातीं सरिताएं
महाजलधि की ओर चपल ?

छुईमुई

कवि, मुझको छूकर-छन भर में तुम न करो मेरा दुख दूना ;
मैं अबला हूँ, लाज भरी हूँ, छुईमुई हूँ – मुझे न छूना !
रहो दूर ही, देखो मत इस ओर – समीप न मेरे आओ ;
तुम छलिया हो, मैं अलबेली; जाओ मेरा जी न जलाओ !
हँस - हँसकर तुम पूछ रहे हो गुप्त वेदना मेरे मन की ;
क्या बतलाऊँ-स्वयं न मुझको ज्ञात कथा जब मनमोहन की !
अभी-अभी तो मैं आई हूँ स्नेहमयी जननी के घर से ;
विलग हुई हूँ मृदुल गोद से मात-पिता की, सुख के वर से !
नवल नवोढ़ा हूँ, मति-कोमल; पुर-परिजन की प्यारी हूँ मैं !
रोम - रोम पुलकित हैं मेरे, गोरी हूँ, सुकुमारी हूँ मैं !
अरे, अभी तो ही आई हूँ मैं सोलह सिंगार सजाकर ;
निज अनन्त हाथों से वसुधा बरसाती दुलार नित मुझ पर !
खेल रही गालों पर लाली, छूटी हाय, न लाज निगोड़ी ;
नन्दन की रानी - सी वन में रहती हूँ मैं राज - किशोरी !
सभी अपरिचित-से लगते ये कानन के द्रुम, पुष्प, वल्लरी ;
पुलक प्रकट करती प्राणों में नित्य-नित्य सी प्रकृति-किन्नरी !
उर के तारों को कर जाती झंकृत धूमिल संध्या आकर ;
पहना जाती उषा - सुन्दरी मुक्ताओं का हार मनोहर !
साँझ-सबेरे गहन विपिन में प्रिय, हँसती ही रहती हूँ मैं ;
जीवन-सरिता में तिनके-सी हिलडुल-हिलडुल बहती हूँ मैं !
बैठ माधवी की छाया में भौंरी गुनगुन गाती है जब ;
तरु-डाली पर मचल मचल कर कोयल तान सुनाती है जब !
सरस वसन्तोद्दीपन में तब, मेरे पात-पात खिल उठते ;
मलयानिल के झोंकों में सुषमा के सुभग गात हिल उठते !
निर्निमेष नयनों से तारे निरख मुझे होते हैं विस्मित ;
विहग - बालिका खेल-खेल मेरे सँग होती विकसित-हर्षित !
लेकिन कवि, मैं हूँ अभागिनी; हैं सचमुच अति निष्ठुर वह तो !
सदा दुखाया करते मेरा कोमल-कुवलय वय उर वह तो !
पाया है स्वभाव वैसा ही, वही तुम्हारा अलबेलापन !
किन्तु, देखते वह किंचित भी यदि इस कलिका का नवयौवन !
तो न अछूते प्राणों से मेरे वह करते कभी ठठोली ;
हार गई व्यवहार देख उनका तो भला नई मैं भोली !
करते ही रहते निशिवासर बातें वह तो रस से भींगी ;
आठों पहर मचाते ही रहते वह मुझसे धींगा - धींगी !

कवि, क्या कहूँ, लाज से मैं तो बस, मिट्टी में गड़ जाती हूँ ;
मर जाती हूँ, किन्तु, कहाँ फिर छुटकारा उनसे पाती हूँ !
समझाते वह, प्रेम-पन्थ में भय क्या री ! लज्जा ही कैसी ?
सीधी औ शरमीली मैंने देखी कहीं न तेरे जैसी !
उठ मुग्धे, अवलोक जगत को; कौतुक सभी समझ जायेगी !
यों इस उदासीन जीवन से वनवासिनि, क्या फल पायेगी !
पर, फिर भी तो वही कम्पना, वही शिथिलता-सी पाती हूँ ;
आज, लाज से क्यों मन ही मन अरी, मरी-सी मैं जाती हूँ !
शराबोर हो गया पसीने से मेरा शरीर पल - क्षण में ;
अरे कौन अभिमानी मुझको बाँध गया कसकर बन्धन में ?
किस जादूगर ने जादू से आज छीन ली मेरी वाणी ?
किसकी एक याद ही केवल बना रही यों पानी-पानी !
किस अज्ञात - स्पर्श से मुरझाये तनु - पल्लव - पल्लव मेरे ?
ढीले-से हो चले निमिष में अंग - अंग नव - अवयव मेरे !
लाल - लाल चुम्बन के रँग से रँग दे मेरे गाल जरा तो ;
कर दूँगी सर्वस्व - दान, अब मुझे बना वाचाल जरा तो !
मुसकाना तो याद रही हूँ ; लेकिन, किधर तरंग गई वह ?
कपट-जाल में मुझे फँसा कर कहाँ अधीर उमंग गई वह ?
अरे, बता दो किस मधुवन में छिपा हाय वह मुरलीवाला ?
कह दो आज बजाये वंशी, गाये परिणय - गीत निराला !
होती तो इच्छा मेरी भी उनसे हँस बातें करने की ;
किन्तु, वही संकोच और वह सिकुड़न, वह सिहरन मरने की !
अभिलाषा रहते भी उनकी ओर विभोर निहार न सकती ;
प्यार न प्रकट, दुलार न जी भर, कर मनुहार-विहार न सकती !
कोई तनिक उठा तो दे मुख मेरा चारु चिबुक धर पल्लव ;
अरे, जगा तो दे मानस में नवल कामनाओं का कलरव !
मेरे उरमें भी आशा है ; उत्कण्ठा, अनुराग, वासना !
जलती है अन्तर में मेरे भी असीम उन्माद - मूर्च्छना !
इच्छा होती मुझको भी प्रियतम से प्यार जताने की रे !
और, गले से लिपट किसीके लाखों बार मनाने की रे !
किन्तु, करूँ क्या ? सखे, विवश हूँ; हो न काम सकता मुझसे यह!
लज्जावती इसीसे तुमने रखा नाम क्या मेरा दुर्वह ?
आते हो तुम भी तो कवि, अब इधर बढ़े ही मन्द-मन्द फिर ;
अः, न कहीं छू देना अपनी चपल अँगुलियों से तनु अस्थिर !
देखो, काँप रहे ये कैसे रोम - रोम मेरे जीवन - धन !
रहने क्या न अछूता दोगे आज, अधखिला-सा यह यौवन ?

३७३

दर्प-भरी यह दोपहरी,
आग उगलती रहती है जब
माधव की कटु दोपहरी
बाँध केश-लट, कस परिकर-पट,
कटनी में जाती हो तुम डट;
कैसे सह लेती हो कोमल
तन पर इतनी धूप कड़ी?
छोड़ सजनि, यह रूखा काम,
करतीं क्यों न तनिक विश्राम?
बौर-भरे सहकारों की इस
शीतल छाया में गहरी?
देव, रहो तुम ही सानन्द;
हाय, हमें क्या? हम हैं मन्द;
रोती होगी क्षुधा-ज्वाल से
घर पर बिटिया स्नेह-भरी!
मिले तुम्हें ही शय्या सुखकर;
सोओ शीतल शशि-किरणोंपर;
मर जाने दो हमें किन्तु, इन
खेतों में ही खड़ी-खड़ी!

३७४

रूप के कानन में—
विचर रहीं तुम कौन अजान?
विहग-बालिका-सी नादान!
पल्लव-पट के अन्तराल से;
करुणा-कलित तमाल-माल से,
कुसुमायुध-सी छिपकर मेरे
मन का तोड़ रही हो मान—
चल चितवन के तान कमान!
गन्धाकुल कुसुमित मधुवन में,—
शिथिलीकृत कर जघन-दुकूल,
मृदु मृणाल-कटि से आमूल,
सरका बार-बार नीलाञ्चल,
दिखा-दिखा निज यौवन चंचल,
हाय, किये देती हो क्यों तुम
बेसुध-से ये मेरे प्राण;
गा गा कर विरहाकुल गान!
नीलकमल-कोमल तन में—
शोभित कुलिश-कठिन पय-पीन;
कुंचित-कुच कंचुकी-विहीन;
उज्ज्वल रदन-पंक्ति सुकुमार;
हृदय-हरण-हिय-हीरक-हार!
भञ्जन करती है करुणामयि,
मदन-प्रिया के भी अभिमान;
सजनि, तुम्हारे छवि-उपमान!

३७५

अलि, कैसा लगता सुन्दर!
जब सुधांशु की रजत-रश्मियाँ
छू लेतीं बढ़कर अम्बर;
तब कैसा लगता सुन्दर!
उदित शुभ्र नीलाभ क्षितिज पर
शनैः शनैः जब होता हिमकर;
कनक-जाल सी फैल चाँदनी
जाती पल में वसुधा पर!
तब कैसा लगता सुन्दर!

अग्नि—उद्बोधन

प्रतिहिंसा की आग दृगों में, सुस्मिति - रेखा अधरों पर;
गौरव की टीका ललाट में, मातृ - मूर्ति मन में सुन्दर!
उर में देश - प्रेम की पावन एक धधकती चिनगारी;
कुलिश-करों में राष्ट्र-पताका, यौवन की प्रतिमा प्यारी;
घूम रहा है द्वार-द्वार पर अलख जगाता यह बागी;
जागो, सदियाँ बीतीं सोये वह देखो, दुनिया जागी!
जागो, जग के एक-एक कण, जागो महामृत्यु के हास;
जागो, युग-युग की सन्तापित मानवता के ओ इतिहास!
जागो, नर-रक्तों से पोषित दानवता के हे प्रतिरूप;
जागो, लंका दहन की पुनः ओ हत्यारी सुछवि अनूप!
जागो ओ श्मशान की राखो, सुरा-पान की व्यापक भ्रान्ति!
जागो द्विज-श्रेष्ठों की निष्ठा, ब्रह्मचर्य-आश्रम की शान्ति!
जागो, राणा के भीषण प्रण, वीर - छत्रपति की तलवार!
उन बाईस - करोड़ क्षत्रियों की प्राणोत्तेजक हुंकार!
जागो, समाधिस्थ चेतक के जीवन की मर्मान्तक आह;
जागो, अनिलानल, गिरि-गह्वर; यौवन-मद, उन्माद-प्रवाह!
जागो पुरा काल के गौरव, वर्त्तमान के ओ विज्ञान;
जागो, पुण्य-तपस्या वन की, ऋषि दधीचि का अस्थि प्रदान!
जागो, शिखर हिमालय के हे, राजपुताना रेगिस्तान;
रक्त - राग - रञ्जित वीरों के जागो, केसरिया - परिधान;
आज मूकता शताब्दियों की; दास्य-भाव, कश्मल-व्यभिचार,
प्रेम-एकता मिलन मूल में कपट-कीट, विषमय व्यापार!
भीरु-हृदय जनता की कायरता, समाज का अत्याचार!
आज, राजसत्ता दीवानी, कौतुक हुआ धर्म व्यवहार!
जागो, महा प्रलय, दावानल, उल्कापात, ध्वंस, भूडोल;
जागो, वसुधा की छाती पर महा - जलधि की लहरें लोल!
जागो, तरुणों के मतवाले उर में प्रलय-शिखा की प्यास;
जागो, युवकों के नवयौवन, जागो मरुत, जलद, आकाश!
जीवित पुरुषों के अपमानो, जागो, मृतकों के अभिमान;
बालु कणों की खोई निधियाँ, विद्रोही के व्याकुल प्राण!
जागो वीरव्रती भीष्म की शर-शय्या, शायक - उपधान;
जागो, ऐ अतीत के वाहन, हे भविष्य के महिमावान!
दुर्योधन का अचल युद्ध-हठ, अर्जुन की ओ वेधक शक्ति;
जागो, प्रिय-स्वदेश के प्रति हे आञ्जनेय की अचला-भक्ति!
पूज्य-राष्ट्र की बलिवेदी पर जागो, वीरों के बलिदान;
जागो शिशुओं के आननपर देश - प्रेम की हे मुस्कान!
पतितों की पहचान, नृशंसों के पातक-प्रज्ज्वलित प्रमाण;
जाग तिरौरी, चिलियाँवाला और पलाशी के मैदान!

दीपावली

मा के आँगन में दीप नहीं, संसार ज्योति से जगमग है;
घर के कोने में अन्धकार, बाहर प्रकाश का यह जग है!
आनन्द-सिन्धु में ज्वार उठा, वैभव की लहरें मतवाली;
लक्ष्मी आने में सकुचाती, इस ओर सिसकती दीवाली!
मुख है उदास, दिल है पत्थर; दृग में आँसू, पग डगमग है!
मा के आँगन में दीप नहीं, संसार ज्योति से जगमग है!
मा के शरीर पर वस्त्र नहीं, संसार बना फिरता तितली!
उत्तुङ्ग राज - प्रसादों में सुषमा शत - धारा बन निकली!
उल्लास बरसता वहाँ विपुल, बहता कौतुक-रस निर्झर-सा!
सुनसान यहाँ, तम का अखण्ड साम्राज्य, भवन वन-बीहड़-सा!
यह कुटिया है, जिससे तारों की छाया भी रोकर निकली;
मा के शरीर पर वस्त्र नहीं, संसार बना फिरता तितली!
मा के मनमें उत्साह नहीं, संसार हुआ है उत्सव - मय;
सुख की रँगरलियाँ होती हैं, मधु-स्त्रोत प्रवाहित है अक्षय!
किसको अवकाश, तनिक देखे, वह कौन चिता पर रोता है?
देवालय का लख द्वार बन्द, मरघट को आज सँजोता है?
उसको कमला से क्या नाता? कमला के वाहन से परिचय!
मा के मनमें उत्साह नहीं, संसार हुआ है उत्सव - मय!
मा की आँखों में हर्ष नहीं, संसार आज करता नर्तन;
मा के अधरों पर हास नहीं, संसार बिहँसता है प्रतिक्षण!
मा के दीपक में तेल नहीं; संसार मनाता दीवाली!
मा लेटी है भूखी - प्यासी; संसार बजाता करताली!
सोने की वर्षा होती है, पायल बजता है झन - झन - झन;
मा की आँखों में हर्ष नहीं, संसार आज करता नर्तन!
क्यों मा, तू बैठी है अवाक? उठ, चल तो, चल घरमें सत्वर!
हम जीवित हैं माँ, अभी उन्हें मरने दे, मरते जो हँस कर!
है रुधिर हमारे यौवन में कर देंगे प्राणों का अर्पण!
है आग हमारे जीवन में, हम कर देंगे जगमग आँगन!
तू आज न रो, मत रो; आती है कमला; पूजा-आयोजन कर!
क्यों माँ, तू बैठी है अवाक? उठ चल तो, चल घर में सत्वर!

३७८

पूजा के सुमनों-सा पावन,
अतिशय मधुर-मधुर मन-भावन
मलिन उँगलियों से छू अपनी
आविल करो न मेरा जीवन!
पूजा के सुमनों-सा पावन!

ज्ञात नहीं है पतनोत्कर्ष;
मुझे न कुछ भी हर्ष-विमर्ष!
अहह! ···· रोक लो, सह न सकूँगा
सजनि, तुम्हारा मादक स्पर्श!
ज्ञात नहीं है पतनोत्कर्ष!

पूछ रहीं तपचर्या कब-तक?
····पूरी हो न साधना जब-तक,
इधर भूल कर भी न निहारो,
अहे, प्रेम की प्रतिमे! तब-तक!
पूरी हो न साधना जब-तक!

मैं तो स्वयं बना विभ्रान्त;
मेरा मानस-जगत अशान्त!
फिर भी तुम दिखला ही जाती
हो अपनी छवि कोमल-कान्त!
मैं तो स्वयं बना विभ्रान्त!

३७९

बिना पूछे ही क्यों नादान,
आ गये दृग में तुम अनजान?

खुली खिड़की से उर की झाँक
निरख कर शून्य सदन सुकुमार;
आ गये तोड़ हृदय का द्वार,
कहो, क्या यही उचित व्यवहार?

ज्ञात थी क्या न तुम्हें यह बात?
निषेधित है प्रिय, यहाँ प्रवेश,
बिना गृहपति-आज्ञा के मुग्ध,
किया क्यों आने का यह क्लेश?

जानते हो जो इसका दण्ड
भोगना होगा तुम्हें उदार?
कैद कर इन्हीं दृगों में आज
लगा दूँगा मैं पलक-किवाड़!

तभी तुम समझ सकोगे प्राण,
बिषम होता है कितना मान?
विहग-से दृग-पिंजर-आबद्ध
रुलावेगा जब मुक्त-विहान!

कभी की थी न जान-पहचान;
आ गये फिर कैसे नादान!

३८०

मेरा यह शतदल सुकुमार!
मा, तेरी करुणा का फल है
मेरा यह शतदल सुकुमार!

तेरे ही प्रिय पावन दर्शन
ला सकते इसमें नवजीवन!
तू ही है इसके अस्पन्दित
अविकच-प्राणों की आधार!

अहे श्वेत-शतदल-वासिनि!
ले अपना शतदल हासिनि;
तेरे ही पद-नख की द्युति से
होवे इसमें सुरभि-प्रसार!
मेरा यह शतदल सुकुमार!

३८१

यह दुस्सह सह - यामिनी !

चल रे पथिक, तड़पती होगी
विरह - व्यथा से भामिनी !

शिशिर-शीत - व्याघात -विचंचल
घनीभूत नीहारों के दल ;
कैसे सह लेगी कमलादपि
कोमल तव नव - कामिनी !

मृत्यु - दंष्ट्र - सी दीर्घ निशा में ,
स्वप्नों से उठ, सकल दिशा में ;
रटती तव प्रिय-नाम प्रेम-मधु-
मग्न वियोग - विरामिनी !

महा-महिम-हिम-कम्पित-कृश-तन ;
मदन-सदन में विधुर-विकल मन !
तुम्हें ढूँढ़ती होगी रो - रो
वह मराल - शिशु - गामिनी !

धो न प्रणय की बिन्दु आज से
निष्फल लौकिक-लाज-व्याज से ;
चल रे, चल; सत्वर अशेष मग;
बुला रही गृह - स्वामिनी !

३८२

न जानें, सुन किसका आह्वान
कूक उठती हो तुम अनजान ?
पल्वलों पर गिरता जब दग्ध
प्रथम वर्षा का सरसासार ;
सिसकती जल की धूमिल धार
अवनि - नभ को कर एकाकार !
न जानें, प्रिये, तुम्हें तब कौन
तड़ित से इंगित करता मौन ?

शिशिर की छाया में सुकुमार
सुमन-सा खिन्न उठता संसार ;
न जानें, अलि, तब झंकृत कौन
उतर कर जाता उर के तार ?
स्वर्ण-सुषमा में जब अभिराम
छेड़ती श्यामा कोमल तान ;
न जानें, करुण किरण से कौन
तुम्हारे छू लेता है प्राण ?

सजनि, कब की किसकी पहचान
रुला जाती है तुम्हें अजान ?
न जानें, मौन कौन नादान ?

३८३

यहाँ कौन है अपना रे !

एक वासना की ज्वाला में
निशिदिन बेसुध तपना रे !

भूल कामिनी - कंचन में प्रिय ;
जीवन का वह मार्ग अतीन्द्रिय ;
सतत प्रपंच , स्वार्थ माया की
मोहक - माला जपना रे !

ममता - सर के खड़ा किनारे
अपने ही में खोया प्यारे ,
खोज रहा सुख तू क्या पागल
यह संसृति है सपना रे !

अकुलाहट

हे साधक, निष्क्रान्त साधना कब होगी यह सफल तुम्हारी ?
कब होंगे हम दिव्य तुम्हारे पावन दर्शन के अधिकारी ?
उठता है हुंकार व्योम से; हाहाकार धरा पर छाया !
वज्र-नाद कर किस विनाश का अग्रदूत यह भैरव आया ?
लटकी है मानव के शिर पर दानवता की असि हत्यारी !
हे साधक, निष्क्रान्त साधना कब होगी यह सफल तुम्हारी ?

हे वनवासी तरुण तपस्वी, कब होगा तप पूर्ण तुम्हारा ?
कब भर देगी विश्व तुम्हारी पूंजीभूत ज्योति की धारा ?
वर्षों से एकान्त गुहा में, करते हो जिसका आराधन,
प्राप्त किया क्या इष्ट, तुम्हारा क्या सम्पन्न हुआ वह साधन ?
छिन्न करोगे कब यह बन्धन ? कब तोड़ोगे जग की कारा ?
हे वनवासी तरुण तपस्वी, कब होगा तप पूर्ण तुम्हारा ?

हे योगीश्वर, शेष तुम्हारा होगा कब यह योग पुरातन ?
कब समाधि होगी समाप्त यह ? खोलोगे कब ज्ञान-विलोचन ?
ध्यान-भंग होगा कब ? बोलो, कब जागृति का गान करोगे ?
है अकाल-निद्रा यह कैसी ? कब मानव-कल्याण करोगे ?
होगा कब एकान्त तपोवन में प्रज्वलित अखण्ड हुताशन ?
हे योगीश्वर, शेष तुम्हारा होगा कब यह योग पुरातन ?

हे संन्यासी, शक्ति चिरन्तन कब होगी उद्‌बुद्ध तुम्हारी ?
कब चैतन्य तुम्हारी आत्मा से पवित्र होंगे संसारी ?
चिर-अमरत्व लाभ कर जाओगे तुम कहाँ, श्मशान अजिर है ;
मरणासन्न जगत यह निश्चल, तरुणों का जलता न रुधिर है !
कब जागोगे जग-जीवन में ? हे विशुद्ध, हे वल्कल-धारी !
हे संन्यासी, शक्ति चिन्तन कब होगी उद्‌बुद्ध तुम्हारी ?

हे होता, पूर्णाहुति दोगे कब स्वराज्य-मख की ज्वाला में ?
घोषित होगा कब 'स्वाहा-' स्वर भू से उठ वारिद-माला में ?
पंचाशाधिक वर्ष गये, फिर भी न देवता सम्मुख आता ;
यह कैसा है राष्ट्र-यज्ञ, वह कैसा मेरा भाग्य-विधाता ?
लक्ष-लक्ष यौवन बलि होते प्रतिक्षण धूमिल मख-शाला में !
हे होता, पूर्णाहुति दोगे कब स्वराज्य-मख की ज्वाला में ?

हे प्रवीर, तुम किस चिन्ता में ? कम्पित क्यों विशाल वक्षस्थल ?
किसका इंगित एक चाहते ? बुझ जाता क्यों दीपक जल-जल ?
हे दिग्विजयी-वीर धनुर्धर, तुम अजेय हो पौरुष-शाली ;
कुंठित क्यों गाण्डीव पार्थ, तूणीर तुम्हारा क्यों है खाली ?
यह हलचल कैसी आँगन में ? यह कैसा आकुल कोलाहल ?
हे प्रवीर, तुम किस चिन्ता में ? कम्पित क्यों विशाल वक्षस्थल ?

आज, प्रतीक्षा करते कातर क्रान्ति-अधीर हुआ युग अभिनव !
हे प्रवीण सारथी, हाँकते सम्मुख रथ क्यों तुम न स-गौरव ?
फड़क रहे भुज-दण्ड हमारे, कैदी की जंजीरें बजतीं ;
पारावार उमड़ता आतुर, लहरें बारम्बार गरजतीं !
आग उगलने को व्याकुल हैं ज्वालामुखी जगाकर विप्लव !
आज प्रतीक्षा करते कातर क्रान्ति-अधीर हुआ युग अभिनव !

हे प्रेमी, हे पागल, हे कवि, मुक्त देश वह कहाँ हमारा ?
किसने यह विद्रोह जगाया ? किसका यह जय-गर्जन प्यारा ?
हे वैरागी, प्रिय दर्शी, हे त्यागी, जन्म-मरण के मर्मी !
अब विलम्ब क्या है विमुक्ति में ? कितनी दूर लक्ष्य, युगधर्मी ?
नवयुग के अभिनव प्रभात में फूटेगा कब कण्ठ तुम्हारा ?
हे प्रेमी, हे पागल, हे कवि, मुक्त देश वह कहाँ हमारा ?

३८५

जरा सोच तो लेने दो !

मेरा नन्हा-सा जीवन है,
इसे न यों ही देने दो !
जरा सोच तो लेने दो !

आगे है ऊर्म्मिल रत्नाकर ;
उठती हैं लहरें भीषण-तर !
मेरी छोटी-सी तरणी है,
समझ-बूझ कर खेने दो !
जरा सोच तो लेने दो !

३८६

क्षमा मुझे करना इस बार ;
कर न सका मैं तुझको प्यार !

इन नयनों में बसी हुई है
किसी और की ही छवि आज !
कैसे तुझसे माँग सकूँगा
विदा हाय, आती है लाज !

प्रिये, कहूँ क्या ? भग्न हो गया
तेरी मृदु स्मृतियों का स्तूप !
उठा आज उनके स्थानों पर
किसी और का ही मृदु रूप !

कभी हृदय का हार बना था
जो, हो गया वही अब भार !
आ कैसे कोसों से क्षण में
हुआ कौन जीवन - आधार ?

भूल मुझे जाना इस बार ;
प्रिये, करूँ क्या ? मैं लाचार !

३८७

हो चला अब अलि, स्वर्ण-प्रभात !
खोल री अलस - नयन - जलजात !

उठा लख, निर्जन वन में मन्द
विहग-कुल का कल कलकल रोर ;
मञ्जु मुखरित कर तृण, तरु, डाल,
क्षितिज को छूने चला अछोर !

पूर्व की सीमा पर वह जगी
लालिमा की मधुरिम - सी रेख !
तुहिन - तूली से चित्रित लगी
प्रकृति करने शतदल पर लेख !

माधुरी के सागर में रम्य
उठीं ये लहरें कैसी लोल !
कमल - वृन्तों पर परिमल - पीत
मधुकरों का लो, बना हिँदोल !

रात भागी, आई नव प्रात !
खोल री तू भी दृग - जलजात !

३८८

यह कैसा कल - कल कल - कल ?

सजनि, सरित - जल का यह निश्छल
उच्छल कल छल - छल छल - छल !
ले शत - शत शतदल - परिमल,
दल शैवाल - बाल कोमल ;
मचल - मचल चल रहा सलिलदल
मृदु - वर्तुल, चञ्चल चञ्चल !
खिला फेन के फूल नवल,
विमल, धवल, अविरल पल - पल
निकल - निकल बह रहा अचल से
शीतल जल निर्मल - निर्मल !
व्याकुल, वकुल - गन्ध - विह्वल,
खग - कुल - संकुल कूजित - कल ;
विरह - विकल कर रहा शिला से
टकरा स्वन गर्गल - गर्गल !
लहरें लोल - लहर - कुन्तल,
तरल, सरल, कलमल, रलमल ;
झलक रहा झलमल - झलमल - झल
सफल सीपियों पर उज्वल !

कुहूकिनी

'कुहू - कुहू' मत करो कुहूकिनि, कहो न वे बातें बीती;
बरसाओ बरसात न मेरी आँखों में रस से रीती!
खाली ही रहने दो आली, मेरे प्राणों की प्याली!
ढालो मत — ढालो मत अपनी रूप-सुधा यह मतवाली!
अमर तुम्हारे मानस की हो चंचल वासन्ती - पीड़ा;
किन्तु, कभी रंगिनि, मत करना मेरे सुख-दुख से क्रीड़ा!

यह छूँछी मनुहार, निराशाओं का कोई ध्यान नहीं;
जीवन - स्रोत उमड़ आया, पर गति-धारा का ज्ञान नहीं!
रुकूँ? आह, रुक सकती कैसे नयनों की मोहन - माला?
जरा मना तो लेने दो, रूठी है मेरी मधुबाला!
मेरे निर्जन उपवन में इतना उन्माद बखेरो मत;
वनदेवी, चुप रहो; न बोलो, आज मुझे तुम छेड़ो मत!

आँखमिचौनी खेलोगी, पल्लव पर नृत्य करोगी तुम;
नव वसन्त की रोमावलि में शत-शत पुलक भरोगी तुम!
यह तो पर, करील का अन्तर; हाय हृदय ही वीराना!
बन्द हुआ जबसे ऋतुपति का इस घर में आना - जाना!
फिर न सुनाओ आज मुझे वह प्रणय - कहानी दीवानी;
चली गई है कहीं मीनकेतन को तजकर रति - रानी!

तुम क्या जानो, महुए के इस मोहक मधुवन की माया;
करो फफोलों पर न हृदय के अपनी करुणा की छाया!
यह सम्मोहन-आकर्षण यह, यह स्वर का उत्थान - पतन!
ठहरो री, ठहरो री पगली; सोया है मेरा मोहन!
कहीं मचल जाये न श्रवण कर अलस नींद से वनमाली;
कृष्णे, कूजित करो न वंशीवट की यह सूनी डाली!

शाम-सुबह मेरी गलियों में यों आकर रोया न करो;
इस चिर - शून्य मरुस्थल में निष्फल मोती बोया न करो!
जीवन के वन में तुम कैसी आग आज, आई लेकर?
शोक-सिन्धु में मानस - तरणी मेरी चलीं कहाँ खेकर?
तिर न सकेगी आलि, व्यथा युग-युग की लोचन के जल पर;
अभिमानिनि, आहत वियोग को सोने दो सुख से पल भर!

मेरी कसक-सिसक के तारों का तुम करो न स्पर्श, प्रिये;
आज, मृत्यु - जीवन में दारुण यहाँ मचा संघर्ष, प्रिये!
हाय, कहाँ झंकार; अश्रु ही मेरे चिर वरदान हुए!
विष - विषाद पीकर मेरे ये मृत्युञ्जय प्रिय - प्राण हुए!
इठलाती हो आह, तुम्हारी कैसी है यह नादानी!
रानी, पुष्प - पुष्प पर अंकित मेरी आज व्यथा - वाणी!

सिसक-सिसक कर कलियाँ रोतीं; भ्रमरों को परवाह नहीं!
हाय, चाँदनी के वनमें भी मिलती निशि को राह नहीं!
छोड़ चलेगा कभी तुम्हें भी रोते-ही मधुमास, प्रिये;
शून्य क्षितिज पर जबकि भरेगा मर्मर-वन उच्छ्‌वास, प्रिये!
काल-वृन्त पर खिल खिलकर फिर मुरझा जाते फूल यहाँ!
श्यामे, यह प्रपंच का कानन, इसे न जाना भूल यहाँ!

यहाँ हृदय के कोने - कोने में अनन्त नैराश्य भरा;
धो - धो नयन रखा करते प्रिय-स्मृति के व्रण को सदा हरा!
धधक रही प्रज्वलित चिता-सी अन्तर में वियोग की आग;
होते रहते भस्म दिवा-निशि जिसमें युग - युग के अनुराग!
इधर न देखो, यहाँ न आओ विरह - हुताशन - शाला में!
अरी बावरी, जल जाओगी महानाश की ज्वाला में!

बसो किसी ऐसे वन में, हो जहाँ प्रेम में विरह नहीं;
कपट-कीट का सखि, उपवन यह; जाओ उड़ अन्यत्र कहीं!
चाह नहीं सुकुमारि, तुम्हारी भेद - भरी मुसकानों की!
रहने दो, खोलो मत अपनी मंजूषा अरमानों की!
अवसादों का लोक, वेदना यहाँ सदा करती क्रीड़ा!
अमर तुम्हारी हो कुहूकिनी, प्राणों की मधुमय पीड़ा!

३९०

विकल हो रही कल कालिन्दी, वृन्दावन में अब न बहार;
व्रजबालाएँ बहा रही हैं नयनों से अविरल जलधार!
बिना तुम्हारे सूनी-सी लगती हैं गोकुल की गलियाँ!
मधुर माधवी - कुंजों में होतीं न रँगीली रँगरलियाँ!
राधा रोती; नन्द - यशोदा के आकुल हैं विरही प्राण;
मोहन, पुनः छिड़ेगी कब वह मुरली की मनमोहन तान?

३९१

मेरा यह शतदल नवजात ;
अभी अधखिला ही है कोमल
यह शतदल नवजात !

कृश-तनु, प्रतनु-वृन्त पर मृदु हिल ;
स्नेह-सरल - शैशव - निशि- तन्द्रिल ;
झाँक रहा है अरुणोदय का
रक्तिम स्वर्ण - प्रभात !

मुद्रित अलस नयन; दुर्बल मन ,
अविकच उर, अस्फुट यौवन-वन ;
मधुकर, तनिक सँभल कर छूना
इसका निर्मल गात !

अरे, अभी हैं इसके प्राण
गन्धहीन, अल्हड़, नादान ;
सिहर उठे न कहीं यह तेरा
पा चुम्बन - आघात !

मेरा यह शतदल नवजात !

३९२

सकुच क्यों कुच - कुमार सुकुमार
सजनि री, जाते मुझे निहार ?

आज, निशिगन्धा की मधुवास
हिला देती है उर के तार !
सुदक्षिण मलयज की हिल्लोल
प्रणय - पथ का करती प्रस्तार !

मुदित रख सो जाता जब मौन
करभ-से सघन-जघन पर भाल !
चिकुर से करते क्यों न विहार
सुमन-मन मथ मन्मथ के बाल ?

फेंक दृढ़ आलिङ्गन का पाश
बाँध लेता हूँ तुम्हें अजान ,
न करते क्यों उर से अभिसार
कामना के ये शिशु नादान ?

सुरभिमय कर संज्ञाहत प्राण ;
तुम्हारे कल-कुच-कुसुम-कुमार !

३९३

काले-काले बालों में—

उलझ गया मेरा मन कैसे
बाले , तेरे बालों में ?

मेरा माणिक - सा जग -जीवन ,
पारस-सा चिर-पावन तन-मन ;
भूल गया पथ अपना कैसे
इन मतवाले बालों में ?

पी पी कर यौवन - मद तेरा
नयन - मधुप न अघाता मेरा ;
फँसा दलों में, कस मत वेणी ;
इन घुँघराले बालों में !

वह अमोघ आकर्षण लाये ,
आये - गये न; छुड़े - छुड़ाये !
ये कैसे अहिबाल भयानक
तूने पाले बालों में !

करील

पागल - सा नवयौवन आया, फूहड़ अल्हड़ता आई;
मैंने देखा, मेरे उपवन में भी वासन्ती छाई!
सुप्रभात! खिल पड़ा कुसुम-सा त्रिभुवन में उज्वल आलोक!
किन्तु, न मेरे व्यथित हृदय का मिटा हाय वह दारुण शोक!
जाग उठा मधु की बाँहों में लिपटा मधुकर मतवाला!
कलियों को हँस-खेल रिझाने मलयज ने डेरा डाला!
परिमल से भर गया पलों में कानन का कोना-कोना!
पर, निर्मम विधि ने तो मेरे लिखा भाल में था रोना!
जग के रोम - रोम से बहता था असीम आनन्दोल्लास;
मैंने अपने उर में झाँका, शून्य तिमिर, विभ्रान्त, उदास!
व्याकुल एक रागिनी विह्वल अन्तर में मेरे बजती!
आँगन में आकाँक्षाओं के भीषण रक्त - चिता सजती!
क्षुद्र - विशाल सभी वृक्षों में निकली है नवीन कोपल;
फहराता वनरानी का वह सतरंगी सुरधनु - अंचल!
किन्तु, यहाँ व्यापक नीरवता, मैं जो भाग्य-विहीन करील;
देख रहा हूँ तृषित दृगों से अन्तरिक्ष की ओर सुनील!
दूर — वहाँ दिखलाई पड़ती आशा को आभा - सी एक;
झलमल! अन्धकार, फिर जिसमें तड़प रहा सुख का अभिषेक!
रवि-शशि तो अब भी वैसी ही रखते दया-दृष्टि मुझ पर;
पंछी आते दूर देश से इन्हीं डालियों पर उड़ कर!
यह किसका आतङ्क-राज्य? मैं देव, बनाया गया अछूत;
यह तो नर-कल्पना; यहाँ फिर क्योंकर आ पहुँचा यह भूत?
अरे, न जो कर सका पल्लवित एक अकिंचन तरु को आज,
वह कैसे हो सकता नन्दन - कानन का ऋतुपति-ऋतुराज?
आज, रूप के अन्तराल से झाँक रहा द्रुम-सुमन-समाज;
मैं विरही एकान्त विपिन में ढूँढ़ रहा निज सुख के साज!
अपमानित पीड़ा को मेरी किसने छेड़ जगाया है?
किसने इस रौरव में मुझको चरणों से ठुकराया है?
राजधर्म क्या यही? चाहिए तब न मुझे स्वर्गिक सम्मान!
नाथ, तिरस्कृत ही बस, मुझको गाने दो विनाश के गान!
जब सुनहली तितलियाँ धीरे - से बोलेंगी आकर पास,
उड़ जायेगा शून्य क्षितिज पर दक्षिण पवन छोड़ निःश्वास;
तब मैं पतझड़ के वृन्तों से लिख अपनी इतिवृत्ति उदास!
आग लगा दूँगा उपवन में कर ऋतुपति-छवि का उपहास!

३९५

मकड़ी का यह सुन्दर जाल—
चक्रव्यूह - सा गोलाकार,
मृग - तृष्णा - सा बढ़ा अपार;
राजनीति के दावपेंच का
देता है उज्वल दृष्टान्त;—
तारों के इस उलझन से!

बैठ इसी जादूघर में,
लेकर कालदण्ड कर में
सदा मृत्यु के खेल खेलता
रहता है वह चतुर खिलाड़ी;—
धागों पर प्रमुदित मन से!

भूलभुलइयों का यह देश;
अति दुस्तर, दुर्गम्य, अशेष;
सँभल-सँभल इस पथ से जाना
मेरे भूले हुए बटोही,
माया के इस मधुवन से!

३९६

भारती, भक्तों को वर दे!

तरुण जगत के अरुण हृदय को
ज्वालामय कर दे!

जरा - जीर्ण - जड़ता का नाश,
राशि - राशि यौवन - उल्लास!
भर दे मा, भर दे उर - उर में
मादकता भर दे!
भारती, भक्तों को वर दे!

३६७

पी ले चन्द्र - सुधा प्यारी ।
मधुवन में मधुऋतु वारी ।

शीतल मन्द सुगन्ध समीरण
भरता कण-कण में नवजीवन ;
ढलती ज्योति-सुरा नव किसलय-
दलसे छन-छन अविरल क्षण-क्षण!

बैठी है क्यों सुकुमारी ?
पी ले मधु - ज्योत्स्ना प्यारी ।

फुल्ल मल्लिका के सुवास से
लदी पवन फिर रही पास से ;
मञ्जु - गुञ्जरित आम्र - राजि है
पिक-परियों के हास - लास से ।

प्रमुदित है वसुधा सारी ।
पी ले री ज्योत्स्ना प्यारी ।

३६८

व्यथित प्राण दुर्बल के ;—

सहलाना प्रिय, तनिक दया कर
हलके, हलके, हलके ।

अश्रु सिक्त लोचन-पथ अविचल
हाय, हो गया अतिशय पिच्छल ;
आना, आना, धीरे से प्रिय ,
खो बैठो न फिसल के ।

मेरा जीवन - वृन्त सुकोमल
शुभ परागमय पावन निर्मल ;
कहो, कौन - सा फल पाओगे
पल में इसे मसल के ?

विरह-आँच में तप कर अन्तर
तवा-सदृश हो गया निरन्तर ,
आग लगा मत छिड़क और भी
ठंढे छींटें जल के ।

निर्झरिणी-सा कर मृदु झरझर
बहना फेनिल आहें भर - भर ;
शिलाखण्ड - सा मेरा मानस
धोना प्रिय, मल - मल के ।

लड़ न किसीसे जाना रिस से ;
चुपके से पग रखना जिससे—
बल न भवों पर पड़े; न श्रमकण
अलकों पर झलके ।

३६९

रजनी में नीरव - नीरव

मा, भय लगता है मुझको इस
रजनी में अभिनव - अभिनव ।

मूक विश्व, वनतल निश्चल ;
स्तब्ध प्रकृति, निष्प्राण अचल ,
इस अशान्त प्रशान्ति में सोया
है बेसुध पल्लव - पल्लव ।

केवल मेरा हृदय विकल
जाग्रत - सा है मा, केवल ;
कौन न जानें, मौन - मौन कुछ
करता है कलरव - कलरव ।

नयनों में वह रूप अतुल
घुलता है मुँद-मुँद खुल-खुल ;
कोई तृष्णाकुल - सा कहता
है रह रह—आसव - आसव ।

४००

मेरी यह जीवन - सरिता
शयिता, दयिता, नवभरिता ;
कभी लता - सी सूख जायगी
सरस वसन्तागम - हरिता !
मेरी यह जीवन - सरिता !

क्षणभर सरस - सजीला प्रात ;
फिर तो वही अँधेरी रात !
क्षण - भंगुर है क्षण - भंगुर रे
करुणा का अंकुर नवजात !
क्षण भर सरस - सजीला प्रात !

अभी - अभी यौवन - प्लावन ;
इसीलिये मतवालापन !
रुक जायेगा कभी अरे, यह
झंझानिल का खर धावन !
अभी - अभी यौवन - प्लावन !

जन्म - मरण ; उत्थान - पतन ;
यही विश्व के यम - बन्धन !
बिहँस सुमन को उपवन में फिर
मुरझा जाना है तत्क्षण !
जन्म - मरण, उत्थान - पतन !

४०१

देखा है, परवानों को दीपक पर बलि - बलि जाते !
देखा है, अलियों को कलियों पर गुन - गुन कर गाते !
देखा है, बेचैन पपीहों को 'पी - पी' चिल्लाते !
देखा है, विरही चकोर को चिनगारियाँ चबाते !
पर, न कहीं भी देखा मिलते उन्हें प्रेम - प्रतिदान ;
प्रेम जानता है केवल मर - मिटने का आख्यान !

४०२

ललित लवङ्ग - लता का लास !
सजनि, आज लाया बतास है
ललित लवङ्ग - लता का वास !

मन्द पवन में रह रह झूम,
खिले लौंग - से नीलम फूल,
सखि, प्रतीत होते थे मणि - से
जड़े लता के हरे दुकूल !
मैं तो पाती हूँ इसमें भी
अपनी ही छवि का आभास ;
ललित लवङ्ग - लता का वास !

लिपट बंश के उर से क्षीण,
बना चपल मीनों को दीन ;
चला रही थी इतस्ततः चल—
चितवन के शर स्वतः नवीन !
मैं तो लखती हूँ इसमें भी
अपनी ही मुख - ज्योति - विकास ;
ललित लवङ्ग - लता का हास !

आकर मौन सजनि, अनजान,
तोड़ो मत इसका प्रिय - ध्यान ;
छू कर चपल उँगलियों से मत
झंकृत कर दो पागल प्राण !
आह ! विरह में पागल प्राण !
मैं तो रखती हूँ इसका भी
उर में सुख - दुख, रति - उल्लास !
ललित लवङ्ग - लता का वास !

४०३

मँहमँहमँह महुए का पथार ;
माधव की इस उष्ण - उषा में
करता मादकता का प्रसार !
रे कितनी मादकता का प्रसार ,
यह महुए का मादक पथार !

पीले - पीले फल - फल पल-पल,
गिरते भूपर ढल-पल ढल-पल ;
फूले फूलों के दोनों पर
वन में ले आया है बहार !
रे कितनी जागृति, जीवन, बहार ;
यह महुए का मादक पथार !

गा-गा मन ही मन कुछ गुन-गुन ,
उनको बाल-युवतियाँ चुन-चुन ;
करतीं एकत्रित एक स्थान
पर उर में भर सुषमा अपार !
रे देता कितनी सुषमा अपार ,
यह महुए का मादक पथार !

ऊपर गाती कोयल, बुलबुल ;
नीचे करती कुलबुल - चुलबुल
छोटे छोटे बच्चे, बच्ची ,
मृदु बहा स्नेह की सरस धार !
रे कितना पावन मधु-स्नेह धार,
यह महुए का मादक पथार !

आमों में निकली है कोपल ,
पीपल, जामुन, पाकड़, सेमल ,
बिछ गया चतुर्दिक नृत्य-जाल ;
लहरा सुख की घड़ियाँ उदार !
रे कितने सुख की घड़ियाँ उदार ,
यह महुए का मादक पथार !

हों ऐसे ही सब दिन आली ;
तुम ब्रजबाला ; मैं बनमाली ;
ला-ला चुन-चुन नव मधुकों को
अपने आँगन में दूँ पसार !
रे कितने कौतूहल से पसार ,
यह महुए का मादक पथार !

४०४

पिरो मत रो-रो नयन - कुमार ,
आँसुओं का यह मुक्ता - हार ;

न धोकर कहीं बहा दे हाय ,
प्रणय-स्मृतियों को यह आघात ;
न दो तुम बहने यों स्वच्छन्द ;
रोक लो अपना अश्रु - प्रपात !

अन्त रजनी का उज्वल प्रात ;
शुष्क पतझड़ का सरस वसन्त ;
विरह ही प्रणयी का उपहार ,
मिलन ही विरह-जलधि का अंत !

वियोगानल में ही अभिसार
किया करता है सच्चा प्यार ;
आँसुओं का ही पारावार
बसाता करुणा का संसार !

विरह की ज्वाला में ही नित्य
खिला करते हैं पुष्प अपार ;
विरह की ज्वाला में इक बार
मुसकिरा दो तुम भी सुकुमार !

रण-भेरी

रण-भेरी बज चुकी ; चलो, फिर सेनापति ललकार उठा !
मतवाले, स्वदेश का गौरव हिम-गिरि से हुंकार उठा !
विजय-चन्द्र को छूने शत - शत उर का पारावार उठा !
उद्‌गारों से अपमानित जनता का झंझा - ज्वार उठा !
गज-वाणी से डोल स्वयं वह करुणा - वरुणागार उठा !
चलो, सैनिको ! पुनः आज वह सेनापति ललकार उठा !

सर्वनाश के योद्धा ; हम जानते मृत्यु से भीति नहीं !
विपथ असम्भव ; क्षुद्र भावना रही हमारी नीति नहीं !
असफलता सोपान ; निराशाओं से कभी प्रतीति नहीं !
बलि सहचरी हमारी , छोड़ी प्रेम - प्रीति की रीति नहीं !
उठी इधर महिमा युग-युग की ; उधर कठोर कुठार उठा !
चलो, सैनिको ! पुनः आज वह सेनापति ललकार उठा !

गाओ गीत न आज पराजय का ; जीवन - सन्देश यही !
देव-शक्ति पर चढ़े विश्व की भक्ति - भावना रही – सही !
यहाँ मरण का खेल ; युगान्तर में हिलती सुकुमार मही ;
देव , प्रेयसी हम पागलों की फाँसी की ही सेज रही !
मचल पड़ा उल्लास, समर - प्रांगण में दर्प दहाड़ उठा !
चलो, सैनिको ! पुनः आज वह सेनापति ललकार उठा !

थकीं उमंगें ; हाथ हाथ पर रख कर वीर , न बैठ रहो !
क्या आजादी मिली न ? हारे सभी ; न ऐसी बात कहो !
खाली हो मैदान ; हौसला पस्त ; चले तूफान अहो !
साक्षी कर्म ; साधना साथी ; लक्ष्य जीत ही - हार न हो !
कपट-रूप धर जाग सभ्यता का लोहित - शृङ्गार उठा !
चलो, सैनिको ! पुनः आज वह सेनापति ललकार उठा !

यह विराम ; पथ देखो-भालो ; हथियारों का जङ्ग छुड़ा !
किंकर्त्तव्य-विमूढ़ अरे, क्यों ? मन से छल का रङ्ग छुड़ा !
धूमिल उर-आकाश; कार्य-क्रम शिथिल; दिशा का ज्ञान नहीं !
अग्रदूत, मर मिटो ; करो संधान ज्योति का आज कहीं !
क्षीण शक्तियाँ ? भय क्या ? देखो ; भावी जय-संहार उठा !
चलो सैनिको ! सेनापति वह पुनः आज ललकार उठा !

ठहरो ; कहती थमी लड़ाई , छिद्रों पर विश्वास करो !
ढूँढो अपनी कमजोरी को रीझ - रीझ में यों न मरो !
लौटो मत कायर बन , देखो जरा वहीं से खड़े-खड़े ;
एक नजर आगे औ पीछे ; झटपट फिर चल पड़ो अरे !
फिर संगठित और फिर संचित ; लो, वह प्रलय पुकार उठा !
चलो, सैनिको ! पुनः आज वह सेनापति ललकार उठा !

मचा राष्ट्र-संग्राम , लिये हम चलें दलित वर्गों को भी !
यश - लालस के साथ तजें स्वर्गों अपवर्गों को भी !
गाँव-गाँव में डोले निर्भय मस्त फकीरों की टोली !
जले त्याग के बाजारों में सुख - वैभव - मद की होली !
कोटि-कोटि कण्ठों से भारत - जननी का जयकार उठा !
चलो, सैनिको ! सेनापति वह पुन : आज ललकार उठा !

४०६

वह आये थे, वह आये !
साँसों - सी डोल रही थीं जब लहर - लहर पुरवैया ,
रे मचली - सी पड़ती थी सरिता , सर , ताल - तलैया !
तब द्रुत समीर के रथ पर फुहियों को अहा ! उड़ाये ;
वह आये थे, वह आये !

जब साँध्य - गगन पर रवि की तिर्यक - रेखा - सी किरणें !
तरणी - सी स्वर्णाम्बुधि में लगती थीं क्षणभर तिरने !
तब कनक - जलद - पटलों के चित्रों को हृदय लगाये ;
वह आये थे, वह आये !

जब निबिड़ - कालिमा से ढँक जाती थी जगती सारी !
तन्द्रा से घोर निशा की हो जातीं पलकें भारी !
तब घन के काले अंचल में निशिकर - दीप छिपाये !
वह आये थे, वह आये !

रह रह संकेत - सदन में जब देती रति करतारी ,
वंशी - सी बज उठती थी रे बाँसों की सिसकारी !
तब मन्द मन्द - पद अलसित तन्द्रा का जाल बिछाये -
वह आये थे, वह आये !

जब प्रिय - वियोग से रजनी रोती बरसा कर मोती !
ऊषा आ तुहिन - कणों से कलियों के गाल भिगोती !
मादक - मकरन्द लुटाते , पर कंचन के फैलाये -
वह आये थे, वह आये !

४०७

दूर्वादल श्यामल-श्यामल !

बिछा हुआ है मखमल-सा यह
कितना कल, कोमल - कोमल ।

फुदक रहे खंजन रंजन,
भौरों का भनभन - भनभन !
सुरधनु के पर खोल तितलियाँ
उड़ती हैं चंचल - चंचल ।

वारि - वेलियों - सी साभार,
वल्लरियाँ लोनी, सुकुमार,
लतरी हैं भूतल पर लहरा
हरित - भरित अंचल - अंचल !

हिला सरल करतल अभिराम,
देती यह सन्देश ललाम—
लघुतम होकर भी प्रियतम का
करो सदा हीतल शीतल !

४०८

मेरी कान्ता रति - श्रान्ता—

शिथिल, सेज पर सोई है यह
मेरी कान्ता रति - श्रान्ता !

गुँजा गहन माधवी - निकेत,
तज बेसुध निःश्वास अचेत,
पड़ी हुई है विजन - प्रान्त में
अन्य - मना-सी श्रम - शान्ता ;

छुओ न इसके अङ्ग अनङ्ग ;
करो न सुखमय निद्रा भङ्ग,
वेपथुमती सुप्त है निःस्वन,
रास - रङ्ग - विभ्रम - क्लान्ता !

अरे, अभी दृग - पलकें भारी,
सपनों में खोई है प्यारी ;
बना न दो प्रिय, सुकुमारी को,
जगा कहीं विभ्रम - भ्रान्ता !

मेरी कान्ता रति - श्रान्ता !

४०९

बागमती का बाग - विलास

कितना जीवन - प्रद है इसका
यह कल्लोल - कलित कलरास !
बागमती का बाग - विलास !

किस अज्ञात दिशा से चलकर ;
किस अनन्त से निकल-निकलकर;
उज्वल-जल बहता जाता है—
बहता जाता है सोल्लास !
बागमती का बाग - विलास !

मिला, सभीको गले लगाकर ;
ऐंच, साँपिनी-सी बल खाकर ;
कहाँ जा रही ? किससे मिलने
का यह आतुर कठिन प्रयास ?
बागमती का बाग - विलास !

सजनि, इसीके किसी किनारे,
रहती जहाँ प्रकृति मन - मारे ;
मेरा भी है एक क्षुद्र, पर
सुन्दर - सा कवि का आवास !
बागमती का बाग - विलास !

४१०

सजनि, क्यों लाद दिया यह भार ?
वेदना का यह दुर्वह भार ?

किसीकी आ जाते ही याद
जाग-सी पड़ती व्यथा सुषुप्त ;
रोकने पर भी तब तो हाय,
न रुकती कथा हृदय की गुप्त ।

उनींदी पलकों पर अविराम
मधुर स्वप्नों का वह अभिसार !
रोकने पर भी तो तत्काल
निकल ही पड़ती आँसू-धार !

विरह-ज्वाला में तप निशि-दिवस
विकल हो जाता दग्ध-शरीर ;
रोकने पर भी तब तो सजनि,
प्रकट हो ही जाती है पीर !

तुनुक रे मेरा यह संसार !
बता, फिर लाद दिया क्यों भार ?

वेदना का यह गुरुतर भार ?

४११

पत्रों का मर्मरमर स्वर ;
कितना प्रिय, कितना सुन्दर !

तज अन्तिम निःश्वास तरल ;
विनिमीलित कर नयन सरल ;
पतित हो रहे वृतति-वृन्त से
निर्जीवित, बेसुध, थर-थर !

कभी अनिल में मृदु हिलडुल
गाती थी जिसपर बुलबुल ;
पड़ी हुई है आज उसीकी
पीली-सी काया भू पर !

क्षण भर ऋतुपति का नर्तन,
फिर पतझड़ का आवर्तन !
नश्वर यौवन, सुन्दरता, तन,
त्रिभुवन के कण-कण नश्वर !

पत्रों का मर्मरमर स्वर !

४१२

सजनी री, रजनी भी बीती !

अब कैसा विलम्ब ? क्यों अबतक
आकाँक्षाएं रीती ?

देखो, चहक उठे खग तरु पर ;
दीप-शिखा हो गई मलिनतर !
चली चाँदनी भी अपने
विच्छिन्न वसन को सीती !

आओ, छोड़ मान-अभिमान ;
जुड़ जायें दोनों के प्राण ;
रहने दो कल्याणि, कलह ; लो ;
मैं हारा, तुम जीतीं !

सजनी री, रजनी भी बीती !

तितली

तितली, तितली ! कहाँ चली हो नन्दन-वन की रानी-सी !

४१४

आज, चारु-चैत्र-चन्द्र—
चर्चिता - विभावरी ;
बौर-गन्ध-शिथिल-पवन
बढ़ा रही चाव री !

कुंजों से उठी देख,
मुरली-रव-रूप-रेख ;
चल, चल री नृत्य-भोर
गाती आसावरी !

हो न प्रकृति-शान्ति-भग्न,
सरस-स्नेह-स्वप्न-मग्न ;
मृदु पद ही, मृदु पद चल
विरह-व्यथा-बावरी !

४१५

वह कैसा होगा संसार ?
सजनि, नीलिमा के उस पार !
जहाँ मेघ के सुन्दर शावक
खेला करते हैं सुकुमार ;
पारिजात की मृदु-छाया में
स्वर्ग-परी करती अभिसार !

जलते-बुझते 'रहते प्रतिच्छण
लाखों ही आँखों के दीप ;
सदा प्रफुल्लित 'रहता उज्वल
मुक्ताओं से नभ का सीप !
जहाँ न राग, द्वेष, चिन्तादिक ;
बिछता अन्धकार का जाल !
वह अमरों का लोक, जहाँ है
शोक न भय, दुर्भिच्छ अकाल !

रुकता रवि-रथ; चन्द्र भ्रष्ट-पथ ;
झुकता जहाँ गगन का भार !
किसने देखा है वह मा, इस
भूतल से अनन्त का द्वार ?
जाते सभी ; पाँव-पैदल ही
कुछ; कलरथ पर और अनेक ;
लाता शुभ सन्देश वहाँ से
क्या न लौट कर कोई एक ?

दूर छितिज के भी उस पार,
वह कैसा होगा संसार ?

४१६

घूँघट-वाली, मचलो यों मत ;
कुछ सुन लो, कुछ बोलो तो !
देखूँ जरा चाँद-सी सूरत,
घूँघट का पट खोलो तो !
डगमग डगमग पग रख मग में
चलती हो धीरे-धीरे ।
किसे खोजती हैं ये आँखें
जमुना के नीरे-तीरे ?

छलक रही यौवन की प्याली,
होठों ने मदिरा ढाली ;
इतराती, इठलाती-सी तुम
कहाँ चली हो मतवाली ?
यह निर्जन वन-देश, दिवा का
शेष, तुम्हारा मोहक वेश ;

मुसकाती जाती, मन ही मन
गाती हो, न भीति का लेश !

क्षीण क्षोणि पर कलश, कलश में
रस, रस में यौवन का सार ;
कैसे सहे लवङ्ग - लता - सी
कटि सुकुमार कुम्भ का भार ?

सूना हो सरिता - तट, सूनी
हो वंशीवट की डाली ;
मेरे पनघट पर भी ले घट
आ जाना घूँघट - वाली !

४१७

बह रही विषम - तम - धारा !
है बना हुआ रे जिसका
अवनीतल कूल - किनारा ;
यह अगम विषम - तम - धारा !

उठतीं लहरों पर लहरें ;
उस पार सघन घन घहरें !
अतलान्त तिमिर - तोयधि में
डूबा जग सारा - सारा !
बह रही विषम तम - धारा !

हो गये मलिन ग्रह, तारे ;
रवि - रश्मि - पुंज भी हारे !
है खोज रहा सागर में
तिनके - सा चन्द्र सहारा !
बह चली प्रलय-तम-धारा !

घन - अन्धकार है छाया !
माया ने जाल बिछाया !
खा महानाश का धक्का
टूटा प्रकाश का कारा !
यह तरुण - तिमिर की धारा !

रे अम्बर से अवनी तक
बस, तिमिर-तिमिर ही त्राशक !
पड़ धूमकेतु भी जिसमें
फिरता है मारा - मारा !
ऐसी यह तम की धारा !

४१८

काले - काले - काले बादल !
श्याम - सलोने, छवि के छौने ,
मेरे भोले - भाले बादल !
काले - काले - काले बादल !

नील - कमल - सा एक गगन में,
खिल अनाल मुरझा क्षण-क्षणमें,
अपने आप तड़ित - अधरों से
मुसकाते मतवाले बादल !
काले - काले - काले बादल !

सिसक - सिसक कर कुहू-निशामें,
रोते हो तुम सकल दिशामें ;
पड़े किसी अज्ञाता के तुम
भी न कभी तो पाले बादल ?
काले - काले - काले बादल !

हेम - हर्म्य में मृदुल तल्पपर ,
अपलक-पलक-वितान तानकर ;
जोह रहीं पथ बाल - युवतियाँ ,
आ, निशि-रभस बिता ले बादल!
काले - काले - काले बादल !

तूर्यनाद

आज मचा है जगती में यह कैसा हाहाकार ?
उमड़ पड़ा है यह किसके आँसू का पारावार ?
गूँज रही है कानों में यह किसकी करुण पुकार ?
द्रवीभूत कर हृदय, दृगों को ज्वालामय प्रतिबार !
अरे, कौन यह निर्भयता से किसे रहा ललकार ?
उठो सैनिको ! सेनापति वह बाँध चला हथियार !

यह सोने का समय नहीं है ; निद्रा को दो त्याग !
वह देखो, प्राची में जलती कैसी दारुण आग !
हुंकारों से तोड़ - तोड़ दो अँगड़ाई का ताग !
सोया बहुत, बहुत खोया भी, अब भी तो तू जाग !
सुनो, सुनो, वह दिग्दिगन्त में छिड़ा भैरवी - राग !
मरने - वालो, बढ़ो समर में, डरने - वाले, भाग !

यहाँ मरण का प्रश्न ; न जीवन की आकांक्षा - चाह !
सुख - दुख - राग - विरागों की है यहाँ किसे परवाह ?
यहाँ टूटते - जुटते रहते प्रति क्षण विधि के लेख !
किसने देखी मरनेवालों के मुखपर भय - रेख ?
ओ दीवाने, आना खुद ही सर से कफन लपेट ;
यहाँ मृत्यु सो रही शान्ति से सारी धरा समेट !

यह काँटों की राह, हलाहल का दारुण उपकूल !
जहाँ फूल भी खटका करते पद - पद पर बन शूल !
कौन करेगा वरण मरण की यह प्राणान्तक सेज ?
जिनके वक्षस्थल में साहस ; हो आँखों में तेज !
तड़प रहे हों घायल दिल - सा, नींद न कुछ भी रैन !
इस पथ में आवें वे ही जो, मरने को बेचैन !

कारागार, दमन, आजीवन द्वीपान्तर का वास ;
अङ्गभङ्ग, लाञ्छना, विविध भर्त्सना, कुटिल उपहास ;
इस पथ के पथिकों को मिलता पुरस्कार — सौगात !
फाँसी ! तीक्ष्ण सूचिका - दंशन निर्वासन अज्ञात !
प्रलय - प्रतीक्षक ! सँभल पहनना सर्वनाश का ताज !
सिर देने वाले ही पाते आजादी का राज !

जो विमुक्त हों ; स्नेह - युक्त हों ; निरानन्द, स्वच्छन्द !
अत्याचार जिन्हें फूलों - सा देता हो आनन्द !
जिनके अन्तर में जलती हो देश - प्रेम की आग !
शूली पर चढ़ कर भी जो गा सकते मधुर विहाग !
जिन्हें विश्व - भर ही प्यारा हो, नहीं किसीसे बैर !
वही बढ़ावें, इस कुश - कंटक - पूरित पथ पर पैर !

याद रहे सर्वदा, यहाँ पर प्रतिहिंसा है पाप !
चन्दन - सा स्वी करना होगा अभिशापों का ताप !
जहाँ सत्य ही कवच, अहिंसा की कठोर करवाल !
प्रेम - प्रणाली, दम - उदारता — बाण, शान्ति की ढाल !
छल - छिद्रों से, कलुष - कुलिश से जो हों कोसों दूर -
स्वागत, बढ़ बढ़ आवें वे ही सिंह - शूरमा - शूर !

रंगमहल का चहल - पहल यह नहीं ; विषम रनखेत !
पड़ी हुई हैं कितनों की ही लाशें यहाँ अचेत !
यहाँ वही आते हैं जिनका मूल-मन्त्र वलिदान !
जिनके अपनी आँखें होतीं ; जिनके अपने कान !
सड़ सड़ कर घर ही में मरते कायर मनुज अधीर !
मर मर कर भी यहाँ अमर होते हैं सच्चे वीर !

तुमने देखा है जीवन का सुखमय रास - विलास !
तुमने देखा है यौवन का राग - रङ्ग ; उल्लास !
तुमने देखा है मधुवन में मधुर - वसन्त - प्रहास !
तुमने देखा है जीवन का उद्दीपन, रस - वास !
अब निवास कर देखो क्षणभर रौरव - नरक उदास !
और, नाश के स्वर में भैरव का वीभत्स विलास !

क्या है ? कुछ तो नहीं ; एक बस चर्महीन कंकाल !
छोटे छोटे क्षीण अस्थियों के पिञ्जर का जाल !
पड़े हुए हैं उधर मृत्यु - शय्या पर अगणित लाल !
और, इधर रोतीं हैं कितनी माएं हो बेहाल !
मरो, न मारो ; वलि हो जाओ ; यही यहाँ सन्देश !
अपने स्वार्थ - पूर्ति के पीछे हो न किसीको क्लेश !

और, उसी मानव - जीवन पर होता तुमको नाज ?
अमर - पुत्र कहलाने वालो ; लाज करो, कुछ लाज !
प्रिय - स्वदेश के साथ विश्व का करुणोत्पादक वेश !
भूल न जाना, यही धर्म की पावन - ज्योति विशेष !
उचित साधु - हित ले लेना है दुष्ट जनों के प्राण !
पर, उससे बढ़ कर ही होता है अपना वलिदान !

४२०

आओ, आओ, आओ, रानी !
मेरी जीवन - वीणा की नव
कोमल, कुसुमित, विकसित, वाणी !
आओ, आओ, आओ, रानी !

फूलो, फूलो, तुम फूलों पर ;
झूलो, झूलो, घन झूलों पर ;
भूलो, भूल - भरे भावों को
भूलो, अनुकूलो, कल्याणी !
आओ, आओ, आओ, रानी !

शशि-स्मिति-सित-निशि के अलकों से,
शिशिर - शयित - पल्लव - पलकों से
ढुलक पुलक - परिमल - सा सहसा
कह जाओ निज करुण-कहानी !
आओ, आओ, आओ, रानी !

कल - मराल - रव-जल - वाहित - सी,
सरस मानसर - अवगाहित - सी
वन-वन में, उपवन - उपवन में,
भर दो नवजीवन गीर्वाणी !
आओ, आओ, आओ, रानी !

४२१

धीरे से चल नागरी ।
छलक पड़ेगी गागरी ।

ऊँचा-नीचा पथ है दुस्तर ;
बिछे हुए हैं कंकड़ - पत्थर ।
चलना काँटों से बच बच कर
घन में सदा उजागरी ।
छलक पड़ेगी गागरी ।

कमल-नाल-सा कोमल, सुन्दर ,
थर - थर करता है तेरा कर ,
हौले - हौले चलना डग भर
कहीं न अहे गुणागरी ,
छलके पड़े यह गागरी ।

हरिणी के-से चकित विलोचन
किसको खोज रहे हैं क्षण-क्षण !
इस निर्जन में तू प्रफुल्ल-मन
गा मत करुण विहाग री—
छलक पड़ेगी गागरी ।

४२२

आओ, हे रूपसि ! आओ !
तुम कुसुम - तल्प पर कोमल कल्पना - लोक की रानी !
सोओ , सानन्द जगत की कल पलकों पर दीवानी ;
नवकलियों को विकसाओ ; नव रूपों को दिखलाओ ;
आओ , हे प्रेयसि , आओ !

मैं खोज रहा हूँ तुमको व्याकुल-सा विजन-वनों में ;
तुम छिपीं कहाँ जा, किसके चिर-चित्रित अलक-घनों में ?
प्रिय - कुंजों से उठ धाओ , वंशी की टेर सुनाओ !
आओ, हे सुन्दरि, आओ !

अपने मधु-गुंजन - रव से कर दो नव - गुंजित मधुवन ;
छू जादू की छड़ियों से हाँ , बेसुध कर दो तन - मन ;
मधुकर की बीण बजाओ ; मादक मधुकोष लुटाओ !
आओ , हे सरले , आओ !

नव-नभ में नव शशि, नव रवि, नव-उडु-मण्डल प्रकटाओ !
नव - विहगों को नव-पर दो , नव-गान-तान सिखलाओ !
कवि - खद्योतों की अब के नव - ज्योति जगा तुम जाओ ;
आओ, हे प्रतिभे ! आओ !

अभिनव प्रकाश की किरणें नव जग - मग में फैलाओ ;
नव काव्य-वाटिका के नव - नव सुमनों को सरसाओ !
नव - भक्तों की प्रिय-पावन नव - पुष्पांजलि अलि , पाओ !
आओ , हे कविते , आओ !

आत्म-निवेदन

मैं कवि हूँ ; कविता ही मेरे प्राणों की निधि प्यारी !
विश्वभारती के चरणों पर जीवन - धन वलिहारी !
भावों के सुकुमार बाल नित रहते मुझको घेरे !
सत्य और शिव - सुन्दर ही चिर मार्ग - प्रदर्शक मेरे !
सुन्दरता की स्वयं मूर्ति मैं ; पावन प्रकृति - पुजारी !
सुन्दरता की भीख माँगता फिरता रूप - भिखारी !
पागल हूँ मैं ; यहाँ पागलों का ही जुड़ता मेला !
कलित कल्पना के रथ पर मैं चलता हूँ अलबेला !
स्वप्न - देश की परियाँ मुझपर होती हैं न्यौछावर !
विजनवती मूर्च्छित हो जाती मेरी रचना सुनकर !
रहती मेरी फुलवारी में तीसों दिन हरियाली !
कुहू - कुहू करती कुहूकिनी ; गाता नित वनमाली !
मेरी आँखों में आकर्षण ; स्वर में जादू - टोना !
मेरा हँसना ही बहार है, पतझड़ मेरा रोना !
मेरी नस - नस में मादकता ; बचपन का भोलापन !
अन्तहीन नभ - सा उर मेरा ; सागर सा फेनिल मन !
प्रेम-रूप मैं ; शत्रु न कोई ; स्नेही रज के कण कण !
मुक्तहस्त हो सदा लुटाता हूँ मैं अक्षय यौवन !
उषा प्रेयसी, बन्धु विहङ्गम ; संध्या मेरी सजनी !
मधुर लोरियों से दुलराती नित आ श्यामा रजनी !
मैं हूँ कवि ; कविता ही मेरे जीवन - वन की रानी !
स्वर्ण - लेखनी से लिखता जगती की करुण कहानी !

४२४

उपवन में आयी थी उस दिन जब मधुऋतु-सी मधुबाला !
वन-विहगों ने पहना दी थी उसे मालती की माला !
दिया मिलिन्दों ने फूलों से प्याले पर प्याला ला - ला !
मतवाली हो गई निमिष में पी पी कर सौरभ - हाला !
लाल लाल गालों पर उसके मारुत ने मल दिया गुलाल ;
कुञ्ज - कुञ्ज से अहा, बह चला रंग - अबीरों का नाला !
झूम - झूम पल्लव - बालों ने उसे लिया धीरे - से चूम !
चिह्न उभड़ आया अधरों पर चुम्बन का काला - काला !
मधुव्रतों से गूँज उठी वह मधुऋतु की नव मधुशाला !
उपवन में आयी थी उस दिन मन्द मन्द जब मधुबाला !

४२५

पूछ रहे परिचय तुम उनका ; क्या बतलाऊँ, तुम्हीं कहो !
आज्ञा है कठोर, जीवन भर दुख ही में तुम रहो — सहो !
नाम, एक सुन्दर - सा उनका ; फिर भी उनका नाम नहीं !
मुझे सताने के सिवाय है उनका कोई काम नहीं !
कभी, कहीं से आकर पूछी मुझसे कोई बात नहीं !
दिखलाया प्रिय - प्रणय-कुञ्ज के कभी घात-प्रतिघात नहीं !
जीवन में हँस खेल, गले से मिल जतलाया प्यार नहीं !
हुआ कभी प्रिय, मुझसे उनका प्रेम-पूर्ण - व्यवहार नहीं !
उनके लिये किये हैं मैंने अबतक कितने ही व्रत-नेम !
एकबार, सर्वस्व लुटाकर भी पाती यदि उनका प्रेम !
यदपि उन्होंने कुचल दिये हैं निर्ममता से मेरे प्राण !
फिर भी खुश हो जाती यदि पा जाती उनका दर्शन दान !

४२६

हे मेरी विजन - कुमारी !

वलिहारी होतीं तुझपर वर - वैजयन्त - सुन्दरियाँ !
तेरे एकान्त सदन में लुटतीं मदमाती घड़ियाँ !
परियों ने अमर - निकेतन की सुध - बुध सभी बिसारी ;
हे मेरी विजन - कुमारी !

निशिपति की आँखमिचौनी, ऋतुपति की मादक क्रीड़ा ;
तुझमें प्रतिविम्बित होती हेमन्त - शिशिर की व्रीड़ा !
करता मृदुगति से नर्तन कुञ्जों में कुञ्ज - विहारी !
हे मेरी विजन - कुमारी !

पहने वासन्ती साड़ी जब आती तू गलियों में !
मच जाती है हलचल सी तब अलि, मधुपावलियों में !
वन विस्मित हो जाता चल - चितवन पर प्यारी - प्यारी !
हे मेरी विजन - कुमारी !

हरते प्रशान्ति हिरणों के दल चौकड़ियाँ भर भर कर !
कानों तक तान चलता कुसुमायुध केशर के शर !
चरते गो, करते कलरव पारावत, शुक, पिक, सारी !
हे मेरी विजन - कुमारी !

शाश्वत शृँगार से भूषित है तेरा पावन जीवन ;
रहता अनन्त वैभव से सर्वदा लदा यह आँगन !
नित फूले फले युगों - तक यह हरी - भरी फुलवारी !
हे मेरी विजन - कुमारी !

४२७

रँग दो, रँग दो मेरे भी ये गाल ;
मल दो, मल दो सजनी, लाल गुलाल !
भर दो, भर दो हिय में मृदु अनुराग ;
जड़ दो, जड़ दो, दो-दो चुम्बन-दाग !
हँस दो, हँस दो पहना कर वर-माल ;
रँग दो, रँग दो सजनी, मेरे गाल !

फैला वन - वन में है आज वसन्त ;
उमड़ा मद का पारावार अनन्त !
उठती उर में रह-रह अमित उमङ्ग ;
नवल मिलन में नव-नव में प्रणय-तरङ्ग !
लहराता है मानस - पावस - ताल ;
मल दो, मल दो सजनी, लाल गुलाल !

फूल रहे उपवन में अगणित फूल ;
मेरा मन ही क्यों रह जाय बबूल ?
उड़ते नभ में पंछी रङ्ग - बिरङ्ग !
मान भङ्ग कर रहा अनङ्ग उलङ्ग !
कर दो, कर दो मेरा अचल सुहाग ;
भर दो, भर दो सजनी, मृदु अनुराग !

क्या न जुड़ायेंगे अब भी ये प्राण ?
पूरे होंगे अन्तर के अरमान !
आज, अजब मस्ती है चारों ओर ,
चहल-पहल हलचल का ओर न छोर !
रख दो अधरों पर मुख-सुरभि-पराग ;
जड़ दो, जड़ दो सजनी, चुम्बन-दाग !

छाया है भूमण्डल में उल्लास ,
हास-विलास, प्रकृति का उन्मद रास !
तरु-मरु, पर्वत-सरिता , निर्झर नग्न ,
सभी एक सुषमा में मग्न - निमग्न !
निशि में चन्द्र-किरण से उतर विशाल !
हँस दो, हँस दो सजनी, पहना माल !

चलने दो रँगरलियों का व्यापार ;
हिलमिल झिलमिल आवे मलय-बयार !
भर-भर लाओ हाँ, हाँ, रङ्ग-अबीर ,
तर कर दो मेरा वासन्ती - चीर !
फूट पड़े, कण - कण में हर्ष - प्रबाल !
रँग दो, रँग दो सजनी, मेरे गाल !

४२८

किसने देखा है वह देश—
सखि, मेरे प्रियतम का देश ?
मैं वियोग की मारी नारी
खोज खोज कर उसको हारी ;
ढूँढ़ी सारी मही, मिला पर
कहीं न वह सन्देश—
मेरे प्रियतम का सन्देश !

कितने ग्राम, नगर, वन, छाने ;
सहीं हाय , कितनों की तानें ;
फिर भी पड़ा न दिखलाई वह
सुन्दर - सा वर वेश ;
मेरे प्रियतम का वर वेश !

क्या कोई उदार कर क्लेश ,
बतला ना देगा वह देश ?
सखि, मेरे प्रियतम का वह देश !

अलकावृत

कल पत्रों की झुरमुट में दो कोयल काली - काली ;
मुग्धा - सी झाँक रही हों उर - उपवन की हरियाली ;
अथवा हों श्याम - सरोवर में नील - नलिन दो फूले ;
रहते हों जहाँ बरौनी – भौंहों के भौंरे भूले !
ये काली - काली पुतली सुन्दर रतनार नयन की,
कुछ शेष - चिह्न हों जैसे विरहानल दग्ध मयन की !
अथवा कालिन्दी - जल में यह वंशी - वट की छाया,
लहरों पर नाच रही हो जिसकी कल कुंचित काया !
लोचन की सरिता में ये पुतली शशि की परिछाँई !
जो काले - काले बादल से काली होकर आई !
अथवा दृग - गंगा में हो जैसे यह कोई बाला ;
लहरों पर नाच रही हो कोमल - तम कुन्तल काला !
अथवा भयभीत दृगों में माधव हों बैठे छिपकर,
जिनकी यह श्यामल आभा फूटी पड़ती है बाहर !
ये नयन नहीं ; रसवाले जामुन के मीठे दोने !
या रतिरानी के छोटे छौने दो श्याम - सलोने !
अथवा सिवार में उलझे ये फूल खिले दो सुन्दर ;
ये अलकावृत पलकें हैं, या नयनों के कोमल पर !

४३०

मैं नन्दन - वन का माली !
मन्दार - वकुल - शेफाली बरसाते तारक - मोती ;
कल - कपीतनों के तन को निर्मल पुष्करिणी धोती !
पुलकित वसन्त कर जाता सुमनों की डाली - डाली ;
मैं नन्दन - वन का माली !
है यहाँ लगा ही रहता परियों का जमघट - मेला ;
उस मेला का अलबेला मैं हूँ सरदार अकेला !
मुझपर ही ढलती सौ - सौ कलियों की यौवन - प्याली ;
मैं नन्दन - वन का माली !
मेरे उपवन में निश - दिन चंचल षोडशी किशोरी ;
करती है मादक अभिनय गा - गा रस - बोरी लोरी !
लद जाता मलयानिल उनकी तानों से मतवाली ;
मैं नन्दन - वन का माली !
मेरी द्राक्षा - कुंजों में होतीं सदैव रँगरलियाँ ;
आलिङ्गन, चुम्बन, परिरम्भण, हास्य - लास्य, गलबहियाँ !
रहती गुंजित पायल की झंकारों से हरियाली ;
मैं नन्दन - वन का माली !
हँसती है रम्भा खिल - खिल इस मधुवन की माया में ;
नाचती मेनका छम - छम मौलसिरी की छाया में !
उर्वशी सितार बजाती, इन्द्राणी दे कर ताली !
मैं नन्दन - वन का माली !

४३१

रजनी के अन्तिम प्रहरों में आया मेरा दीवाना !
कलियों ने सम्पुट - दल खोले, अलियों ने गाया गाना !
जग-जग खग-कुल चहक चहक कर करते थे स्वागत तरु से !
उपवन में आरम्भ हुआ मृदु मलयज का आना - जाना !
अम्बर के नीले अधरों पर थी विषाद की काली रेखा ;
बुनने लगा प्रभात कनक के किरणों का ताना - बाना !
वञ्जुल मंजु-निकेतन में कुछ कोलाहल - सा हुआ अधीर ;
नाच उठीं कोकिल - किन्नरियाँ मस्ती से - ताना नाना !
थोड़ी-सी अँधियाली थी ; था थोड़ा - सा उजियाला भी ;
जब प्रभात - सा आया था प्राची से मेरा दीवाना !

४३२

मा, क्यों साँझ-सेबेरे मन्दिर में कर नित्य पुजारी स्नान
भोग लगाते ठाकुर जी को धूप - दीप - पूजा सविधान ?
घण्टी बजा, कपाट बन्द कर रख आते हैं वे थाली ;
क्या ठाकुर जी खाते भी हैं ? होती क्या थाली खाली ?
हाय, हमारे ही जैसा क्या भूख उन्हें भी लगती है ?
तब तो निस्सन्देह बनी यह अन्धी अबतक जगती है !
जिसके दिये अन्न से सुख से जीता है सारा संसार !
क्या न वही भगवान कहीं पा सकता है अपना आहार !
श्यामा, तुम भोली - भाली हो, अभी बालिका हो नादान !
ऐसी नास्तिक - सी बातें कर सकते हैं केवल अज्ञान !
ठाकुर जी तो स्वयं पूर्ण हैं, सर्व शक्तियों के भण्डार !
कौन पार पा सकता उनकी लीलाओं को अपरम्पार ?
वह तो श्रद्धा की थाली है ; भक्तों की पुष्पाञ्जलि - भेंट !
जो भोजन दे त्रिभुवन को, भर सकता कौन उसीका पेट ?

४३३

कल-कल स्वर से सरिते, गाना ;
गाती जाना - गाती जाना !
मचल - मचल कर ताना - नाना ;
सरिते, कल-कल-स्वर से गाना !

बाधाओं को सहती जाना ;
कानों में कुछ कहती जाना ;
मन्थर - मन्थर, लहरा - लहरा ,
बहती जाना , बहती जाना !
कल - कल - स्वर से सरिते, गाना !

फेनिल उच्छ्वासों को भर भर,
लतिका-रति-श्रम - सीकर पीकर,
प्रिय - संकेत - निकेतन से मृदु
बह - बह वंशी - रव उकसाना !
सरिते, कल-कल स्वर से गाना !

कलियों - कलियों को सरसाना ;
अलियों - अलियों को तरसाना ;
इस पथ से भी - उस पथ से भी
आना जाना - जाना आना ;
कल - कल- स्वर से सरिते ! गाना !

४३४

खोलो, खोलो, घूँघट का पट !
नीरव अवनी, नीरव अम्बर ;
नीरव - नीरव वह वंशीवट ;
खोलो, खोलो, घूँघट का पट !

कानन - कानन में मधु गुंजन !
पल्लव - पल्लव पर नवजीवन !
सुन्दर - सुन्दर है निर्जन-वन ;
कज्जल कालिन्दी का पनघट !
खोलो अब भी घूँघट का पट !

सरसिज-सुरभित-सुरभि निरामय
पवन-प्रगति पर अभिनव अभिनय-
काट रहा मादक-मनसिज का ,
जीवन के सारे भय - संकट !
खोलो , खोलो घूँघट का पट !

वकुल-मुकुल-स्मित,नव,परिमित,नित,
कुवलय-वलय मलय-लय-वलयित ;
अन्ध-गन्ध वह अहरह बह-बह
चंचल करता अलकों के लट !
खोलो , खोलो घूँघट का पट !

४३५

सत्य - सरल, सुन्दर - अविरल !
मा , मेरा कवि का जीवन है
पुष्करिणी - जल सा शीतल !

करुणामय, अकलुष, चिरपावन ,
शैशव - सा सब का मन-भावन ,
मा , मेरा कवि का जीवन है
तार-तरल , अतिशय-निर्मल !

बादल-सा ही स्नेह - भरित मन ,
सुमनों-सा चिर-प्रमुदित आनन ;
मा , मेरा कवि का जीवन है
शतदल - परिमल-सा कोमल !

खंजन - से अनजान नयन ;
पल्लव - से प्रिय - सुलभ शयन ;
मा , मेरा कवि का जीवन है
गन्धफली - सा कल - उज्वल !

४३६

जग-जीवन रे जग का जीवन ;
विद्युत का क्षण भर क्षण-नर्तन !
संध्या के नीले नभ - पट पर
घन-जलद-तूलिका का चित्रण !

बन्धन रे उसको क्या बन्धन ?
अस्थिर चिर-अस्थिर परिवर्तन !
पाटल-पलाश-से क्षण-क्षण के
मुँदते - खुलते रहते लोचन !

दिखता मृग का सा जलाभास ;
बालू से कैसे बुझे प्यास ?
बह रही निकट ही अमृत-धार ;
पर, वह न उसे सकता निहार !

जड़ता - दीपक की परिछाँई ;
जिसमें जग-जीवन की झाँई !
लखता औरों को घूर - घूर ;
तमसा न किन्तु, निज हुई दूर !

कुहरे - सी फैली यह माया ,
पड़ जिसमें जन - मन बौराया ;
दिखता न कहीं भी आर-पार ;
है ऐसा यह घन - अन्धकार !

रोतीं वय की घड़ियाँ जल-जल ;
युग-युग,ऋतु-ऋतु,दिन-दिन,पल-पल!
कोई न जहाँ अपना - अपना ;
जग एक भूल ; भूला सपना !

इस मीठे सपने में विस्मृत ,
सोई विशाल संसृति अविकृत ;
जगती जगती की वृत्ति विकल
जब मृत्यु उठाती-चल, री चल !

बस,चल ही चल;चल-चल,चंचल
जड़-चेतन,दिक-नभ,भू,जल-थल!
लघु सरिता-सा प्रतिक्षण प्रतिपल
यह चलता ही रहता केवल !

रे नश्वरता का नाग - पाश—
आबद्ध विश्व के रास - लास ;
करुणा, ममत्व, छलना, क्रन्दन ;
जग-जीवन रे जग का जीवन !

४३७

अयि मधुर-मधुर-पद-गामिनी !
आओ , आओ , बन मेरे
निर्जन - से उर की स्वामिनी !

घोर निराशामय , तमसावृत ,
हो जाये यह अचिर चमत्कृत ;
तव प्रिय-मुख-शशि-रश्मि-राशि से
मेरी जीव - यामिनी !
अयि मधुर-मधुर-पद-गामिनी !

मधुवर्षन, अकलुष , अघमर्षण ,
प्रिये, तुम्हारे हैं शुभ - दर्शन !
छिटका दो मम मन - घन-गगण में
निज मधु - स्मिति - सौदामिनी !
अयि मधुर-मधुर-पद-गामिनी !

बुलबुल

किस प्रेम - देवता से , निर्जन वसन्त - वन में ;

४३६

मेरी जीवन - गोधूली
कब से है रँग रही जलद के
चित्रों को लेकर तूली !
मेरी जीवन - गोधूली !

ममता की लहरों में पड़कर
काँप रही तिनकों - सी थरथर ;
हाय , कौन-सी रूप - राशि पर
अब भी है ऊली - ऊली !
मेरी जीवन - गोधूली !

डूबे ,अस्ताचल पर दिनकर ;
बढ़ा विहग-कुल का आकुल स्वर !
पता नहीं , किस सुन्दरता पर
यह अपने मन में फूली !
मेरी जीवन - गोधूली !

ताक रहे पथ शशि, ग्रह, तारे !
नील छितिज के खड़े किनारे !
फिर भी चलती ना , मनमारे
बैठी क्यों किसपर भूली ?
मेरी जीवन - गोधूली !

४४०

कुसुमित केशर के सर में—
अयि मायामयि, कौन मौन तुम
बैठी 'हो शोभाकर में ?
कुसुमित केशर के सर में !

शुभ्र भाल, भ्रू ईषदराल ;
गुहे मोतियों से कल बाल ;
मानों, बाल - मरालों की वे
छाया हो धाराधर में !
कुसुमित केशर के सर में !

पद्म - पलाशों - से लोचन ;
करते मन - बन्धन - मोचन !
रदन - राजि विकसित है उडु-सी
उषारक्त अधराम्बर में !
कुसुमित केशर के सर में !

अलसित देह - लता असँभार ;
स्मर-कुमार-कुच कलश-उभार !
मानों, दो इन्दीवर फूले
हों ये इन्दीवर में !
केशर के कुसुमित सर में !

४४१

आशा, आशा, मेरी प्यारी !

आ री, आ री, राजदुलारी ;
कुसुमित कर जीवन-फुलवारी !
आशा, आशा, मेरी प्यारी !

तुझपर अलि, तन-मन बलिहारी ,
वारीं जग की निधियाँ सारी ;
कुसुम - कुमारी, कर दे कूजित
उर-उपवन की क्यारी - क्यारी !
आशा, आशा, मेरी प्यारी !

अधरों पर मुसकान लिये आ ;
मुहमाँगे वरदान लिये आ ;
और लिये आ सुरापान - घन
प्रणयस्मृतियाँ न्यारी - न्यारी !
आ री, आ री, आशा प्यारी !

विपुल दुःख - धाराहत जर्जर ;
तड़प रहे अरमान निरन्तर ;
निशि-विजड़ित नयनों पर पलभर
अपनी प्रिय-छवि दिखला जा री !
आ री, मेरी आशा प्यारी !

४४२

सुन, कहता मेरा आहत उर—
जग निष्ठुर रे कितना निष्ठुर !
मादक मंजीर बजा रुनझुन ;
गाती वन मे कोयल गुनगुन ;
और, वहीं काँटों को चुन - चुन
पछताती बुलबुल सिर धुन-धुन !
सुन, कहता मेरा विकल हृदय—
जग निर्दय रे कितना निर्दय !

स्वर्णिम प्रभात की मधु-लहरी ;
जीवन की ज्योतित दोपहरी !
कह, किसके लिये सदा ठहरी ?
फिर तो संध्या -रजनी गहरी !
सुन, कहता मेरा मन विह्वल—
जग चंचल रे कितना चंचल !
अस्थिर, एकाकी, मधु - लेखा ,
सरिता-जल पर अंगुलि -रेखा !
उपवन में कलियों को नित दिन
खिल कर मुरझाते ही देखा !
सुन, कहते मेरे भाव विषम—
जग निर्मम रे कितना निर्मम !

४४३

ठहरो, ठहरो, मेरे मोती !
अपने करुणा के गीतों से
उकसाओ मत पीड़ा सोती !
ठहरो, ठहरो, मेरे मोती !

आओ मत, राखों - लाखों में ;
उलझे रहो पलक - पाँखों में ;
बरसो मत, बरसो मत, मेरी
आँखों से कलहार पिरोती !
ठहरो, ठहरो, मेरे मोती !

ऐ मेरी रानी दीवानी ,
करो न यह दुनिया वीरानी ;
रुको, रुको, क्षण भर मत छलको
पलकों से यों सुधबुध खोती !
ठहरो, ठहरो, मेरे मोती !

रूठ पड़ो मत जीवन के वर ;
तुम्हें झुलाऊँ पलक-दोल पर !
ढुलक करो मत पुलक-चकित तुम
इन नयनों की जगमग ज्योती !

ठहरो, ठहरो, मेरे मोती !

४४४

उज्वल-उज्वल तुहिनों के कण !
श्यामल - श्यामल दूर्वादल पर
शीतल-शीतल कोमल-से मन !
उज्वल-उज्वल तुहिनों के कण !

जगमग-जगमग कर किरणों में ;
बिखरे उपवन, विजन-वनों में ;
नीरव - नीरव क्या कहते हो
डुलमुल-डुलमुल छोटे-से तन ?
उज्वल-उज्वल तुहिनों के कण !

धीरे - धीरे पिघल - पिघल कर ,
कहाँ चले मुझसे छल-छल कर ,
किस अनन्त की ओर अतनु-से
अतनु, उड़े जाते हो क्षण-क्षण ?
उज्वल-उज्वल तुहिनों के कण !

छवि के तरल-मुकुल शुचि-सुन्दर
पल भर खिल तृण-मसृण-नाल पर;
शोभा के शुभ स्वर्ण - सौध तज
चले कहाँ पाने नव - जीवन ?
उज्वल-उज्वल तुहिनों के कण !

४४५

जीवन का अविरल प्रवाह—
रे कितना चंचल है मानव—
जीवन का यह बेसुध प्रवाह !
सरिता की तरल - तरङ्गों-सा ,
पावस की जलद - उमङ्गों - सा ,
यह उमड़ उमड़ वर्तुल अपार !
बढ़ रहा विश्व के आर-पार !

कंचन का मायावन उजाड़ ,
कर नष्ट-भ्रष्ट तट, वन, कछार !
सागर से आ-आ क्षण प्रति क्षण
यह बहता रहता उसी ओर !
यह धारा ही अविरल ऐसी ,
मिलता रे जिसका नहीं छोर !

आ गई कहीं से पथ-भूली ,
पथ - भूली रे भूली - फूली ;
सरसों - सी वन में मृत्यु - परी ;
जा जग के नयनों में झूली !
खोई है उसकी कहीं राह !
जीवन का यह बेसुध प्रवाह !

४४६

झरना, झरना, झरझर झरना !

ताप - तपित जगती का हीतल
करना, करना , शीतल करना !
झरना, झरना, झरझर झरना !

छवि की मृदुल वृन्त पर खिलना ;
शैल - पथों से हिलना-मिलना ;
सौरभ - हीन विजन - कानन में
भरना , भरना , जीवन भरना !
झरना , झरना , झरझर झरना !

खेल खेल कल उत्पल -दल से ,
उलझ नमित कोमल द्रुमदल से ,
फुल्ल स्फार बुद्बुद - मुकुलों को
धरना , धरना , चुन - चुन धरना !
झरना , झरना , झरझर झरना !

भर भर कर प्रिय-प्रेम-पियाला ,
पहन कनक-किरणों की माला ;
विरह - व्यथातुर मधुबाला की
हरना , हरना , ज्वाला हरना !
झरना , झरना , झरझर झरना !

४४७

आज, शरत का प्रथम प्रभात ;
निभृत, निवृत, नीरव, निर्वात ;
नवल पल्लवों से अवियात
आई स्नेह - पुलक अज्ञात !

यह सुखमा - सुख-पूर्ण सकाल ;
निर्मल जल,स्थल,व्योम विशाल!
निर्मल वारिवाह, सर, ताल ;
निर्मल वन, पथ, वारिद-माल !

हरित तृणों पर हरसिंगार
गूँथ दिये मोती के हार !
उड़ते उज्वल पंख पसार
काश केतु - से वल्गु, अपार !

काँपी लवँग - लता सुकुमार
खोल सुरभि मन्दिर का द्वार !
केसर - कुंकुम से अविकार
भर लाई जीवन - शृङ्गार !

फैल गया उत्सव का वास ;
मचल - मचल पड़ता उल्लास !
नील - उत्पलों का मधुहास ;
कुमुद्वती का विमल विकास !

सिखा 'गये मन्मथ के बाण
मधुपों को मधु की पहचान !
ओस - विन्दुओं से अम्लान
सिहर उठे कलिका के प्राण !

सप्तपर्ण - सौरभ - संचार ;
स्वर्ण-वर्ण-वन - विजन-विहार !
कर निज यौवन का प्रस्तार
हिलता नव प्रियंगु - प्रावार !

वेशन्तों का मृदु उच्छ्वास
देता विधु - शीतल आभास !
अमल, धवल, यह विरल प्रकाश;
आज, शरत का शारद हास !

४४८

देखो, रुज - संकट - होमाहुत ;
मा, रोते आज तुम्हारे सुत !

दिशि-दिशि में छाया हाहा-रव ;
भव लाँघ चला दुख का अर्णव !
निर्जन श्मशान में रक्तेच्छुक
नाचते शवों पर श्वा - जम्बुक !

हर-प्रलय-नृत्य में अयुत - अयुत
मा, मरते आज तुम्हारे सुत ;

अम्बर में व्याप्त तुमुल - रोदन ;
संहार - नाश का अनुमोदन !
हो गई निमिष में ही हा हा
फाहा - सी वसुन्धरा स्वाहा !

जलते ज्वाला में दारुण द्रुत
मा, आज तुम्हारे विश्रुत सुत ;

मुर्दा जड़ ; मुर्दा नर - रौरव ;
दानव - से डोल रहे मानव !
खाण्डव-सा जलता नन्दन - वन
ऐसा यह रण - ताण्डव- नर्तन !

नरकों में देखो, स्वर्गच्युत ,
मा, सड़ते आज तुम्हारे सुत ?.

४४६

पतझड़ का मर्मर - स्वर चुन-चुन ;
अलि, सुन सुमनों का' क्रन्दन सुन !

हिरणी - सी हाय नचा चितवन ,
पथभ्रष्ट किया जिसने जीवन ;
अब वही बनी है वीरानी !
ऐसी तो दुनिया दीवानी !
रोती उपवन में सिर धुन - धुन ;
अलि, सुन बुलबुल का रोदन सुन !

वैभव के आँगन में पल पल ,
दिन यौवन का ढल रहा विफल ;
बहती निर्झरिणी - सी करुणा !
दो नयनों की गंगा - यमुना !
कह जाती हृदय - व्यथा गुन गुन ;
अलि, सुन सरिता का गुन गुन सुन !

सन्ध्या - तारा सा मेरा मन ,
अम्बर से देख रहा निर्जन ;
जगती की मृत्यु-निशा अपलक !
आशा की फिर भी एक झलक !
दिख पड़ती ध्वनियों मे रुनझुन ;
अलि, सुन नूपुर का रुनझुन सुन !

४५०

तुम्हारा स्पर्श—
प्रणय का मौन मुकुलितादर्श !
निखिल विश्व में भर देता है
स्पन्दित , उदित , सहर्ष ,
तुम्हारा कोमल स्पर्श !

तुम्हारा वेश—
रूप का सौम्य - समष्टि अशेष !
कुटिल दृगों में भी ला देता
करुणा का उन्मेष ;
तुम्हारा पावन वेश !

तुम्हारा गान—
सृष्टि का प्रथम - गूढ़ आख्यान !
हृदय - तंत्रियों में भर देता
प्रचुर प्राण - परिमाण,
तुम्हारा आकुल गान !

तुम्हारा हास—
मधुरिमा का नव ज्योति-विकास !
हर लेता विधुरों के अधरों
का दुख - व्यङ्ग उदास;
तुम्हारा उज्वल हास !

४५१

ले व्यथा का भार—
जीर्ण जीवन - तरी जर्जर ,
काँपती अविराम थर्थर
एक झोंके में पवन के
आ पड़ी मँझधार ;
ले व्यथा का भार !

खे रहा लाचार—
मैं प्रहत, कृशकाय, दुर्बल ,
विविध चिन्ता - ग्रस्त चंचल,
खर-तरंगों में विभीषण

अज्ञ , शून्याधार ;
खे रहा लाचार !

आँसुओं की धार—
दग्ध उर को बना सावन ,
सजल भावों से सुहावन
बह रही अविरल दृगों से
आज , बारम्बार ;
आँसुओं की धार !

प्रलय - पारावार—
आक्षितिज-विस्तीर्ण, धूमिल ;
अगम,अकूल,अनन्त,ऊर्म्मिल,
फेंकता लहरें तटों पर
रुद्र भीमाकार ;
प्रलय - पारावार !

हाय रे संसार—
बन्द अपने ही घरों में ,
लीन सुख-दुख के स्वरों में ,
तनिक भी सुनता न मेरा
करुण - हाहाकार ;
हाय रे संसार !

कब लगेगी पार—
कौन जानें , नाव मेरी ?
असह अब हो रही देरी !
दुःख के इस नीरनिधि में
यह विजय या हार ?
कब लगेगी पार !

रक्तपर्व

आज सर्वनाश के

४५३

सुख - दुख के शतदल - दलपर ,
वारि - कणों - सा चिर - सुन्दर ;
ढलमल कर अविकल पल-भर खो
दे अपना अस्तित्व चिरन्तन ;
मा , मेरा जीवन पावन ,
जग के वृहत सरोवर में !

इन्द्रधनुष - सा मृदु , सुकुमार ,
फैल क्षितिज पर वृत्ताकार ;
बादल की शीतल छाया से
सीखे मिटना प्रतिक्षण , प्रतिपल
मा , मेरा जीवन - निर्मल ;
आडम्बरमय अम्बर में !

उतर आप ही आप अजान ,
तन्द्रिल पलकों पर छविमान ,
करले मादक गति से छुम-छुम
सपनों-सा सुख - विकसितनर्तन
मा , मेरा जीवन उन्मन
रजनी के मधु - यौवन में !

हेम - दण्डिका पर मृदुतर ,
खिल,हिलमिल, हँसकर,पलभर ;
अनाघ्रात ही मुरझा जाये
कानन के कुसुमों - सा कोमल
मा , मेरा जीवन चंचल
जगती के निर्जन वन में !

तापसी

कोलाहल से दूर विश्व के, निश्चल मौन प्रशान्त !

विधवा

हार हूँ टूटा गले का, किसी
हिय का ठुकराया-सा प्यार हूँ मैं !
आहों में सूनी खिजाँ की पड़ी
उजड़ी-सी वसन्त-बहार हूँ मैं ।
डोल उठे क्यों धरा न स्वयं
अपने ही शरीर का भार हूँ मैं !
नाविक रूठ गया है चला मेरा ,
नाव पड़ी मँझधार हूँ मैं !

रोती हूँ स्नेह के साधनों से सभी ,
दासी से भी गई - बीती हूँ मैं ।
मीठी बनी मिसरी-सी कभी, पर
मिर्च-सी आज तो तीती हूँ मैं ।
सीती हूँ आँसुओं के पट को; नित
घूँट लहू के ही पीती हूँ मैं ।
देखना है कौन-सा दुःख मुझे अब
भी, जिसके लिये जीती हूँ मैं !

धर धीरज कौन सुने बतियाँ, फिर
व्यर्थ किसे समझाऊँ कहाँ ?
दिल की यह आग बुझाऊँ कहाँ ?
किसको दुख-दर्द सुनाऊँ कहाँ ?
हिय से झट दौड़ लगा लूँ जिसे,
उस श्याम-सलोने को पाऊँ कहाँ?
वरदान मिला है यही प्रभु का
तब रोऊँ नहीं तो मैं जाऊँ कहाँ ?

मूल हूँ सारी बुराइयों की, किसी
राही के पैरों की धूल हूँ मैं ।
वेदना - सी खटके जो निरन्तर
अन्तर में, वह शूल हूँ मैं !
बाग के कोने में वृन्तविहीन
गिरा, मुरझाया-सा फूल हूँ मैं ।
छिन्न दुकूल हूँ रंकिनी का, करुणा
का भरा उपकूल हूँ मैं ।

सब स्वार्थ के प्रेमी बने हैं घने,
वह न्यायानुकूल विचार नहीं !
मैं किसीकी नहीं, मेरा कोई नहीं,
मिला एक भी जीवनाधार नहीं !
वह भूल हूँ भीषण भेद - भरी ,
जिसका फिर होता सुधार नहीं !
चुकी ढूँढ़ मैं सारी मही कब की,
पर पाया कहीं दिलदार नहीं !

४५६

मेरे उर में क्यों निराधार
भर दी तुमने करुणा अपार ?
इतनी करुणा, इतना ममत्व ;
जिसका रे कहीं न ओर-छोर !
छूते ही जिसके द्रवीभूत
हो गये अङ्ग के पोर - पोर !

सकता न स्वयं जो क्षुद्र पात्र
जल के लघुकण को भी सँभाल;
कैसे लहरा दी उसमें फिर
लहरें रत्नाकर की विशाल ?
वामा के स्वर्णाभूषण - सी
जो पहले थी तन का शृँगार ;

अब वही बनी है आज हाय ,
सुकुमार हृदय का विपुल-भार !

वह रे ऐसी ही कृपा - कोर ;
गति उसकी ऐसी ही अबाध !
हो जाता जिससे पाप पुराय ,
सुख दुःख, क्षम्य घोरापराध !

बन जाते गुण अवगुण महान ;
कार्पण्य और सर्वस्व - दान !
पा जिसे सताती है न चाह ;
प्रभुता - लघुता, मानापमान !

कैसे, बतला दो, कैसे फिर
सह लूँगा यह खर स्नेह-धार ?
क्यों मेरे रोएं - रोएं में
भर दी इतनी करुणा अपार ?

४५७

किसी तरह यह भार ढो रहा !
तुमने लाद दिया जो सिर पर ,
किसी तरह वह भार ढो रहा !
बे-माँगे वरदान मिला है ,
करुणा का कल कुसुम खिला है ;
कैसे 'ना' कह दूँ , जब उनके
ही चरणों की धूलि धो रहा !
चिन्ता की ज्वाला में पल-पल ,
जल-जल उठता है मन दुर्बल ;
लहरों के सुकुमार अङ्क में
प्राणों का आधार सो रहा !
विविध-भीति-कातर, भय-पंकिल ,
मिटती जाती रेखा झिलमिल ;
दुख के दारुण आघातों से
मेरा आहत हृदय रो रहा !
इस जीवन का कौन ठिकाना ?
हो जायेगा कब बेगाना ?
ताल - ताल पर महाकाल के
निःश्वासों का नृत्य हो रहा !
विपुल वासनाओं में फँस कर ,
मोह-निशा में घिर कर , हँस कर
हिमोपलों-सा गल गल प्रतिपल
अपना ही अस्तित्व खो रहा !

४५८

शिशु के अधरों का विस्मय—
कितना मृदु , कितना रहस्यमय
जीवन का वह प्रथम-प्रणय !
चन्दा मामा का कलहास ;
अस्फुट आभा का आभास !
नील - नील अम्बर में मोहक
तारक-चय का शुभ - परिणय !
मौन-गूढ़ इङ्गित - आशय ,
निस्पृह , चिदानन्द , अव्यय !
नेत्रद्वय की वेदी पर वह
रुदन-हास्य का लय - परिणय ;
परियों का दूरान्त प्रदेश ;
कलित कल्पनाओं का वेश !
किस छवि का प्रतिविम्ब उड़ाले
आता है सुकुमार , सदय
शिशु के अधरों का विस्मय !

४५९

मा, मेरे प्राणों में—
तू निवास कर सदा सुरभि-सी
सुमनों की मुसकानों में !
जिसके स्पर्शों से सुकुमार
वासित हो जाये संसार !

मा, मेरे भावों में—
तू छा जा नीहार-जाल-सी
ऊषा के श्री-श्रावों में !
बन जगती के लिये अवश्य,
एक अगोचर, अगम रहस्य !

मा, मेरे कर्मों में—
तू प्रतिचरण झलक उठ तरसत-
सी नव मानव-धर्म्मों में !
कर पृथिवी पर पूर्ण-प्रचार
अपनी मञ्जुल शान्ति अपार !

मा, मेरे जीवन में—
तू बस जा कंचन-प्रतिमा-सी
निशिदिन महाकृपण-मन में !
जिससे पा न कभी निरुपाय
खो दूँ मैं तुझको असहाय !

४६०

यह चिर विषाद, अस्थिराह्लाद ;
सब तेरे चरणों का प्रसाद !

क्या जानें, तेरे यौवन में
है कितनी मादकता अछोर ?
बस, एक घूँट ने ही जिसके
कर दिया मुझे बेसुध-विभोर !
पागल, का प्यारा यह प्रमाद–
प्रिय, तेरे चरणों का प्रसाद !

इतना मधु इतनी रूप राशि,
उतराता था जिसमें दिगन्त !
संकीर्ण नयन-पथ में मेरे
कैसे वह पाती समा अन्त ?
अब तो बस, उसकी एक याद–
प्रिय, तेरे चरणों का प्रसाद !

जब छोटा-सा ही एक बूँद
उर में न सका मैं कभी झेल ;
फिर कैसे तुमने दिया हाय,
सारा का सारा रस उँड़ेल !
यह प्रेमवाद - अद्वैतवाद ;
सब, तेरे चरणों का प्रसाद !

४६१

चुप चल इस दुर्गम पथ में, चुप ;
अलि, डोल रहे मधुमत्त मधुप !

नीरव वनान्त, कान्तार विजन ;
एकाकी तेरा दुर्बल मन !
तरु मूक ; अचंचल जड़-जंगम ;
सखि, दूर-दूर वाञ्छित संगम !
कुञ्जों में बैठे तस्कर छुप ;
अलि, चुप चल दुर्गम पथ में चुप !

रोना न पड़े पीछे खोकर ;
लग जाय न पैरों में ठोकर !
निर्लिप्त सदा चलना, रहना !
अब और तुझे क्या-क्या कहना ?

देखती चपल - चितवन लोलुप ;
अलि, चुप चल दुर्गम पथ में चुप !
होता ऋतुपति का मधु गायन ;
है खुला मदन का वातायन !
गुपचुप ही चले निशा का क्रम ;
श्रम हो न ; शान्त जीवन का श्रम !
चुप चल इस दुर्गम पथ में चुप !
अलि, डोल रहे मधुमत्त मधुप !

तकदीर

पड़ी जरूरत जिन्हें कभी जुग की न अजब तहजीबों की ;
फूट गई कौड़ी - ही जिनके ना - उम्मीद नसीबों की !
पलता सारा जगत आज जिनकी ही कठिन कमाई पर ;
नीचे उतर जरा देखें वे, यह तकदीर गरीबों की !

कल तो की लंका पर शंका ; आज करोगे अपने पर !
सम्पादक को लिखो, भेज दें पत्र लेख के छपने पर !
पैसे — दो पैसों - में बेचूँ ; आब नहीं क्या मोती में ?
कहो, फेंक दूँ सिल लोहे की भी सोने के सपने पर !

आग लगे दुनिया में, सुख की खेती जले, पड़े पाला ;
बीबी पढ़े फातिहा, मुँह में पड़ा अलिगढ़ का ताला !
खुश - किस्मत घनघोर मियाँजी शायर हुए ए कायर ;
चूहे कूद रहे घर - भीतर ; बाहर हाला - मधुशाला !

ग्वालों ने ली पहन जनेऊ ; डोम नहीं पत्तल छूते !
पूजा करे चमार, कौन तब बढ़इ - कहारों को कूते !
पानी भरने दिया न, फिर भी कुआँ बोर्ड ने खुदा दिया ;
कहा द्विजों से, ढ़ोल बजायें, मरा उठाँय, सियें जूते !

सूखा तो सूखा ही मासों, पानी तो पानी - पानी ;
रौदी आज, अभी तो दाहर ; इतनी भी क्या मनमानी ?
तीसों दिन - चौबीसों घण्टे, एक न एक नई आफत ;
दाढ़ी पकी विष्णु - बाबा की, मरी विधाता की नानी !

बाप विविध - फल - भोगी ; बेटा घर से भागा बन जोगी !
रोती विधवा बहन, न लेकिन भाई को ममता होगी !

यह भी कैसा देश कि जिसमें गंगा की धारा बहती ;
एक बूँद के लिये किन्तु, मर जाते तड़प - तड़प रोगी !

पहने भोला सिंह खड़ाऊँ और सरूप कहार बधे ;
कोई तोशक - खाट बिछाये, टाट किसीको भी न सधे !
अरे, न पूछो इनकी किस्मत ; ऊँट बटेर भले इनसे !
क्या न सहारा में घोड़े औ होते काबुल में न गधे ?

लुट चुके सब, जो भी कुछ था ; अब क्या आये हो कहने ?
सोना-चाँदी तुम्हें मुबारक, ये तो पीतल के गहने !
चौकीदारी माँग उसी चौकी से, जिसपर हो बैठे ;
घर में भूँजी भाँग नहीं जी, बीबी क्या पत्थर पहने ?

खाद नहीं खेतों में पकतीं बड़ी पूरियाँ कण्डों से ;
इस युग में परहेज करोगे कबतक मछली - अण्डों से ?
सात पुश्त तर जाते कैसे कुछ सिक्कों में ताँबे के ?
कभी पूछ लेना यह जाकर जरा गया के पण्डों से !

धरम-करम खो दोगे सब कुछ अब जो ज्यादा लिखा-पढ़ा ;
पोते का मुँह क्यों न देख लूँ, लड़का भी तो खूब बढ़ा !
उधर तवायफ नाच रही बर - बादी में या शादी में ?
और इधर नीलामी बोली पर सारा घर - द्वार चढ़ा !

उड़ा रहे गुलछर्रे नौकर, मालिक फाँक रहे लावा ;
रोटी कैसे तवे, यहाँ जब जलता है खाली तावा !
यह पिशाच - बाधा या राधा को सचमुच उन्माद हुआ !
अरे, बुलाओ किसी भगत को ; कहाँ गये हरखू बाबा ?

खैर मनाती वह बच्चों की तावीजों से, गण्डों से ;
चढ़ती देवों के सिर सिन्नी, सेरों - मानों वितण्डों से !
तोड़ रही खपरों को दरवाजे पर लाठी मोगल की ;
हम तो कर्ज वसूलेंगे अपने मुस्तण्डे डण्डों से !

ठकुराइन तो डाइन है, ठाकुर को ठसक लगी भारी ;
बबुआ जी सुकुमार न पचती आलू की भी तरकारी !
सिर पर हैट, नाक पर चश्मा, पान - भरे मुँह में सिगरेट ;
महरिन भी शैतान ; कह दिया, भले कहाँ की तैयारी ?

मुझको मिले हजार, मालिकों की गणना लाखों ही में ;
परियों की गुलगुली गोद, चाँदनी रात - धड़कन जी में !
मर जाये संसार — चवन्नीवाले पर आबाद रहे ;
किन कम्बख्तों की रहतीं न उँगलियाँ पाँचों ही घी में ?

जीते - जी तो खाते ही हैं; मरने पर भी भोज खिला!
थाली - लोटा बेच ब्राह्मणों - बिरादरी को दूध पिला!
हम समदर्शी - हमें प्रयोजन क्या उत्सव से, रोदन से?
नरक - वास होगा, यदि तेरे पितरों को कुछ भी न मिला!

रोटी की चिन्ता में जिसके कट जाते नित दोनों जून;
मिट्टी खाकर भूख बुझाते, प्यास बुझाते पीकर खून!
हाँ स्वराज्य के पहले इन कंकालो को जी लेने दो;
रख दो इनकी जीर्ण हथेली पर थोड़ा - सा सत्तू - नून!

घर की छाछ फूँक कर पीते, लाला जी ऐसे शक्की;
वह तो जरा कभी पी लेते, कहो न तुम उनको झक्की!
रोज नया पैगाम निकलता इस बुढ़भस में भी देखो;
विधवाएं भी मरीं; न फिर क्यों बात कहीं होती पक्की?

मरते हम सरकार, स्वयं ही; हाय, चलाते क्यों गोली?
डरा पटाखें ही दे तुझको, हुई अरी क्या यों पोली?
आज, जरा हँस कर तो बोलो, रोना और रूठना छोड़!
रहे मुबारक तुम्हें मुहर्रम, हमें मिली हँसती होली!

माघ महीना, हवा तीर - सी; पड़ा कड़ाके का जाड़ा!
हँसता महल, अँगीठी जलती, शाल - दुशाला है सारा!
टाट ओढ़ कर बैठी रानी, अब क्या आसमान ओढ़े?
कैसे उर से उसे लगा लूँ, बना रक्त भी जब पारा!

आँसू पर भी कैद, लगाया टैक्स भले ही साँसों पर;
चमड़े के टुकड़ों से तुमने मुहर किया अब काँसों पर!
नून बना कानून न तोड़ा, तो क्या तुम भी समझोगे?
छत पर नहीं, नहीं छतरी पर, झण्डा उड़ता बाँसों पर!

तैंतिस कोटि देवता जिसकी पुण्य - भूमि में सदा पले;
सुबह - शाम घड़ियाल गरजते, अगर - धूप का दीप जले!
लगते भोग विविधि - व्यंजन के नित दिन ठाकुरद्वारे में;
क्या अचरज, जो उसकी छाती पर कोई भी मूँग दले!

'लिख लोढ़ा, पढ़ पत्थर' जनता, किसी तरह मरते - जीते;
पशु तो पशु, मनुष्य भी जब हैं पशु से भी अन्धे - बीते!
कहता कौन, राज्य में उन्नति प्रभो, तुम्हारे हुई नहीं?
दही — आह, मत कहो छाछ भी; नाली का पानी पीते!

आँख मूँद कर फेरो माला; रोज राम का नाम जपो!
काम करो मत, दाम न छोड़ो; भसम रमा कर धुनी तपो!
आजादी की हमें जरूरत? कोई हो जाये राजा!
हम तो नौकर बने उसीके, सिर्फ उसीके लिये खपो!

भीख माँगना यहाँ पुण्य है, भिखमंगों की बनो यहाँ!
गली - गली में लगी खुदाई फौजों की यह भीड़ जहाँ!
बे पूँजी के व्यापारी, यह भिक्षा का व्यापार अजब;
अन्धे, लूले, लँगड़े, बहरे; यों तो होते नहीं कहाँ?

चंचल पति, तो फूहड़ पत्नी; खूब बनी यह तो जोड़ी!
स्वामी साहब, स्त्री देहाती; पुरुष श्याम - ललना गोरी!
कहाँ तलाक गया वह? कोई जल्दी पास करा आओ!
आज बसा नयनों में मेरे रूप किसीका बरजोरी!

घरवालों से हँसी - दिल्लगी; और मुझीसे यह परदा!
देवर बाबू पान चबाबें मिले मुझे सूखा जरदा!
इससे तो अच्छी किस्मत है उसी जानवर की भाई;
खा पुआल, पी माँड़ रात में, सो जाता चुपके बरदा!

सुनते, उधर हवा में उड़तीं; और, औरतें भी लड़तीं!
कार चलातीं, दौड़ दौड़तीं, जलधि तैर कर सर करतीं!
पच्छिम से पूरब में आकर देखो, वही पुराना राग;
हँसी - खुशी में, रंजोगम में गला फाड़ रो - रो मरतीं!

चले कोर्टशिप त्रिया सिपाही; लीडर-प्लीडर विज्ञ बनें!
लेक्चर झाड़ें, करें पढ़ाई; मुझे प्रेम के गीत घने!
दे दो सब अधिकार; पुरुष की समता चाह रहीं जो ये!
पर, सवाल तो यह है टेढ़ा, आखिर बच्चे कौन जनें?

जिनको कभी न फुरसत होती नोन, तेल औ धनियों से;
पूछो, दो पैसों की कीमत उन देहाती बनियों से!
तुम तो किन्तु, हमारे दुख का कर लेते हो बस, अन्दाज;
धुआँ निकलता देख मिलों की ऊँची - खड़ी चिमनियों से!

सारी दुनिया है साहब की, चलें न क्यों वे मेलों में?
रेल मुयस्सर नहीं — गुलामों को ठेलों बस ठेलों में!
कहता आज लँगोटीवाला, घर - घर सब चर्खा कातो;
लेकिन यहाँ कैद है जीवन, जेल नहीं जी, सेलों में!

उड़ते राजों - महराजों के दूत हवाई - यानों पर!
चहल - पहल होती शहरों की भड़कीली दूकानों पर!
खड़े किये तम्बू मैदानों में सरकारी अफसरने;
किसकी नजर गई पर, गाँवों के हतभाग्य किसानों पर?

गजलों के आगे महफिल में पूछ न होती सोहर की;
भूत भगा कर लोग लगे खोजों में छिपी धरोहर की!
आटा आया कल का दुधिया, बन्द हुई घर की चक्की!
पानी नहीं धान में - बाहर वर्षा होती मोहर की!

प्यादे खड़े द्वार पर, घर में डंड पेलते हैं भूसे;
बाकी दाखिल करो, नहीं तो लगते हैं चाँटे - घूसे!
जलती है तकदीर जलावन बन कर देखो, चूल्हों में;
खाली पेट, रोटियाँ दुर्लभ; भर दो भैसों - सा भूसे!

कहते हैं सब - बदली दुनिया, बदल गया घर का छप्पड़;
डाक चली, अखबार निकाले, दौड़े तार, उठा लङ्गर!
लेकिन, मैं तो देख रहा हूँ अब भी वही बैलगाड़ी;
पगड़ी वही, वही पाजामा कोल्हू वही, वही चक्कर!

कारबार जारी लाखों का, हाट - बजार हजारों में;
मूँछें तोड़ रहे बाबूजी भाँड़ो के जयकारों में!
कब देखेंगी हाय सेठजी की तिजोरियाँ नोट - भरी;
अब भी कितनी दर्द - भरी तस्वीरें पड़ीं मजारों में!

रुचें नीम के पत्ते कैसे? जी रसगुल्लों का आदी!
तागे - सुई चलावें, जिनके घर में हो बूढ़ी दादी!
देस जहन्नुम में जाय, आबाद अमीनाबाद रहे;
मलमल छोड़ भला पहनेंगी रानी भी कैसे खादी?

चला रेस; बंबे का पानी, बम्बे - कलकत्ते में;
ऐश - मौज मिलता वेतन से, कुत्ते - घोड़े भत्ते से!
किन्तु, किसीने देख न पाया कौन ठिठुरते पेड़ - तले -
बचा रहे हैं लाज देह की कैसे लत्ते - पत्ते में?

मास - मास दिन बीत चुके हैं भूख - प्यास बेकलियों में;
रन करतीं मोटरें दनादन, तेज़ी से रँगरलियों में!
लिखा गया है किन्तु, अभीतक भी रपोट रे कहीं नहीं;
कहते, मुफ्त पड़े - रहते हैं रुपै न सड़कों - गलियों में!

आती है आवाज आज भारत के कोने - कोने से;
किसको दें, सब परीशान हैं भिखमंगो के रोने से!
सच है यह कि करोड़ी मल का टूट गया नौलखा मकान;
डूब रही पर, नाव यहाँ तो दो - मुट्ठी ही खोने से!

बहता है बन जहाँ पसीना खून अरे, हलवाहों का!
भर्त्ता होता मेशीनों में मज़दूरों की चाहों का!
वहाँ बैठ कुर्सी पर सुख से बिजली - पंखों के नीचे -
कर दोगे फैसला कलम से क्या उन आँसू - आहों का?

जकड़ करों की कड़ियों से कर, पाँव बैर की बेड़ी से;
तौल मनों के मन को फेंका तुमने सेर - पसेरी से!
कफन छीन जो टोप बनाये, ऐसी भी सरकार कहीं!
है अफसोस यही केवल, क्यों आये इतनी देरी से!

४६३

इतना समीप रहता, तो भी पता न तेरा पाता हूँ!
कौन कहे, तू मुझे भुलाता मैं ही याकि भुलता हूँ?
तू रोज सुबह में आता है! कलियों को मन्द, जगाता है!
तृण-तृण को, उपवन-उपवन को, अपना मृदु प्यार जताता है!
जानूँ कैसे, फिर भी तुझको मैं खोया - ही पाता हूँ!
कौन कहे, तू मुझे भुलाता, मैं ही याकि भुलता हूँ!
देखो, पौधों को बागों में कमलों को खिले तड़ागों में!
ये तारे कैसे हैं! मानों गूँथे ज्योत्सना के धागों में!
मैं इन्हें निरख कर मन ही मन चकित-चकित रह जात हूँ!
तुझको क्यों पर, पता नहीं, - पहचान न कुछ भी पाता हूँ!
जो हो, सुन आज रहा तो मैं; जीवन-सुख साज रहा तो मैं!
लखता न तुझे, लेकिन निशिदिन लख तेरा काज रहा तो मैं!
गुण-गरिमा गाता हूँ, पैरों पर यह शीश झुकाता हूँ!
क्या हुआ, तुझे जो आँखों से मैं देख नहीं पाता हूँ!

भोजन

ले आओ मा, दूध - जलेबी भर - भर यहीं कटोरे में;
रुपये की क्या कमी? भरे हैं बाबूजी के तोरे में!
मैं खाऊँ, तुम तबतक देखो; अपने मन में ही कुछ लेखो!
देखो, कहीं छुहाड़े तो है रखे न मेरे झोरे में?
ले आओ मा, दूध - जलेबी भर - भर यहीं कटोरे में;
अरी, खड़ी तुम हँसती हो क्यों? किस उलझन में फँसती हो क्यों?
बुरा न मानो, तुष्ट नहीं मैं होनेवाला थोड़े में!
ले आओ मा, दूध - जलेबी भर - भर यहीं कटोरे में;
जब तक मा, न खिलाती हो तुम; मेरा चुम्बन पाती हो तुम?
हँस कर मुझे उठा लो, आऊँ अहा! तुम्हारे कोरे में!
ले आओ मा, दूध - जलेबी भर - भर यहीं कटोरे में;

बालहठ

यों ही झूठ - मूठ बतला कर कब तक मुझे रुलाओगी !
कह दो साफ साफ क्या आज न चंद - खिलौना लाओगी !
पानी में देखी थी छाया ; किन्तु , कहाँ हाँथों में आया !
समझ गया, सब चाल तुम्हारी ; कैसे भला भुलाओगी ?
कह दो , साफ साफ तुम कब तक चंद-खिलौना लाओगी !
दूध - भात अपना रहने दो ! खाऊँगा न ; सुनो, कहने दो ।
जब तक तुम आँचार के अपने फन्दे में न फँसाओगी ;
यों ही झूठ - मूठ बतला कर कब तक मुझे रुलाओगी !
देखो , बे जो बल रहे दिये । कह दो , आ जाये उन्हें लिये !
मेरे आँगन में सबको परियों की कथा सुनाओगी ;
यों ही झूठ - मूठ बतला कर कब तक मुझे रुलाओगी !

बेल का पेड़

आज , हमारे बेल - वृक्ष में फल आये हैं हरे - हरे !
कैसे लगते हैं सुहावने कुछ छोटे , कुछ बड़े बड़े !
पत्तों की शोभा ही न्यारी ! हरियाली में प्यारी प्यारी !
झूल रहे झोंको में मारुत के देखो , ये कड़े - कड़े !
आज , हमारे बेल - वृक्ष में फल आये हैं हरे - हरे !
छुटपन में जो की थी सेवा ; इसीलिये अब पाता मेवा !
सफल हुआ श्रम; सफल अहा ! हो गये भरे जल घड़े-घड़े !
आज हमारे बेल - वृक्ष में फल आये हैं हरे - हरे !
पकने पर इनको खायेंगे ! इससे अच्छा क्या पायेंगे !
देख रहे हम सभी अभी से उन्हें एकटक खड़े - खड़े !
आज हमारे बेल - वृक्ष में फल आये हैं हरे - हरे !

४६७

जब आओ, तब दिनकर-से तुम ; जब जाओ, तब तारों से !
भर दो मेरे अन्तरतर को अपने मधु गुंजारों से !
बोलो, मुसका-मुसका प्यारे ! हँसी-खुशी में रोना क्या रे !
खिल लो ऋतुपति के फूलों से, मिल लो प्यार-दुलारों से ;
जब आओ, तब दिनकर-से तुम; जब जाओ तब तारों से !
दो दिवसों का ही जब जीना ! तब क्यों दुख का प्याला पीना !
भर दो निखिल विश्व को अपने जीवनमय उद्गारों से !
जब आओ, तब दिनकर-से तुम ; जब आओ, तब तारों से !
आज उमङ्ग उठी है उर में; यौवन के प्रिय अन्तः पुर में !
देखो , कहीं न वञ्चित रह जाये रजनी अभिसारों से !
जब आओ , तब दिनकर-से तुम जब जाओ तब तारों से !

४६८

इस शून्य गगन में भूली-सी मैं हूँ हिमकर की एक किरण ;
किस पाप-शाप ने किया निमिष में मृत्यु-भुवन में अधः पतन !
क्या जानूँ ,कितना पथ चलकर;अन्तर की ज्वाला में जल कर ,
आई हूँ भूपर तज अपना वह सुख शोभामय स्वर्ग-सदन ;
इस शून्य देश में भूली-सी मैं हूँ करुणा की एक किरण !
कुररी-सी डोल रही वन-वन , कर कण-कण पर मादक नर्तन ;
पर, कहीं न मिलता स्वप्न-नीड सम्पूर्ण विश्व में विकल,विजन ;
इस शून्य देश में भूली-सी मैं हूँ हिमकर की एक किरण !
ज्यों-ज्यों बढ़ रही निशा आली त्यों-त्यों मेरा विभ्रम आली ;
जीवन में जड़ता का बंधन औ बन्धन में सौ - सौ उलझन ;
इस शून्य देश में भूली-सी मैं हूँ हिमकर की एक किरण !
कलुषित न करे कोई छू कर मेरा भोला बचपन सुन्दर ;
हूँ दूर अभी, पर जला रहा यह गलित अपावन नरक-पवन ;
इस शून्य देश में भूली-सी मैं हूँ हिमकर की एक किरण !
किस पाप-शाप ने किया निमिष में मृत्यु-भुवन में अधः पतन !

४६९

नदिया गहरी,निँदिया गहरी, गहरी नव-यौवन की लहरी ;
कैसे उतरूँ पार ! ढ़ल रही जीवन की अलि , दोपहरी !
सब अपने थे, जब खुले नयन; अब कौन करेगा अश्रु-चयन ?
मैं रोती, सुनतीं नहीं किन्तु; घड़ियाँ बेहोशी की बहरी !
नदिया गहरी,निँदिया गहरी,गहरी अलि,यौवन की लहरी !
मैं सोती हूँ या जाग रही ! कुछ पता न; सकती सोच सही !
जी में दुख केवल यही कि पथ में हों न कहीं सखियाँ ठहरीं !
नदिया गहरी निँदिया गहरी, गहरी अलि, यौवन की लहरी !
नाविक, खे चलो मुझे सत्वर ; दूँगी सर्वस्व समर्पित कर !
यह जीवन, यह यौवन, तन-मन शीतल भुज-छाया में गहरी !
नदिया गहरी,निँदिया गहरी, गहरी अलि, यौवन की लहरी !

४७०

हम हिम का महिमामय अंचल ;
कुछ करुणा के लघुकण चंचल !

उन्मद समीर झिलता झिलमिल ;
शीतल जल लहरों से हिलमिल !
उड़ता कुंकुम, पाटल - पराग ;
जलती जीवन की विमल आग !
नाचतीं विपुल आशा - विह्वल ,
आभा में सविता की पिङ्गल ;
फहरा अपना धूसर अंचल
हम मेघ - मुग्ध शिखिणी चंचल !

वन - वीथिराजियों में अराल ,
फैला छाया का इन्द्रजाल !
मदिरालस , वासर - स्वप्न - मग्न
ऊँघती प्रकृति - छवि ज्योति नग्न ,
तरु - वन में जगा पुलक - मर्मर ,
नव ऋतु का प्रथम मिलन गति-स्वर,
खिल उठतीं बिछा मसृण अंचल !
हम निधुवन की बाला चंचल !

मायामयि , 'खोल पलक मुद्रित ,
जग उठीं कामनाएं निद्रित ;
चुन ले री जूही की कलियाँ ;
अलि, नव दल पर मुक्तावलियाँ !
अपलक दृग , कुञ्चित कवरी-वन ,
अभिनव सन्देश , नवल जीवन !
आईं ले कौतूहल चंचल !
हम सुखमा का सुखमय अंचल !

४७१

रिझाऊँ कैसे हे कल्याणि ?
न सुर-लय , ताल-बोल का ज्ञान ;
न गति - नियमों का ध्यान !
तार छूते ही मेरे प्राण
काँप उठते नादान !
उठाऊँ कैसे फिर सुकुमार
भावना का यह भार ?
बता दो ना , हे वीणापाणि !
तुम्हारा सुर - मुनि - सेवित द्वार ,
कल्पना का आधार !
विविध - बुध - वन्दित काव्योद्गार
मधुकरों का गुंजार !
लाज आती रे लाते आज
वहाँ यह लघु उपहार !
हंस-वर-वाहिनि , हे वरदानि !
चपल शिशु की क्या मृदु मुसकान ,
सुनोगी तुतला गान ?
सरल रे यह अबोध - अनजान ,
मूक मुरली की तान !
आज दो अनुचर को आशीष
झुका चरणों पर शीश !

अमृतलता

आई इतनी दूर कहाँ से तुम भूली - भाली सजनी !

पाषाणी

मौन ! मौन क्यों आज , नियति की महानिशा कल्याणी !

पुल पर

यह गंगा का भीमाकृत पुल,
करता अलि, मुझको पुलकाकुल!
नीचे अगाध सरिता आवृत,
ऊपर अनन्त अम्बर विस्तृत।
उठ-उठ लघु-लघु जल की हिलोर
छू-छू फिर आती क्षितिज-छोर;

यह जन्म-मरण-संघर्ष तुमुल;
करता अलि, मुझको पुलकाकुल!
पुल पर से जाते विपुल-विपुल!
नगरी से नारी-नर-संकुल;
बतराती प्रेमी से चंचल—
उस ओर प्रेमिका मचल-मचल!

मारुत सुरसरि-जल से धुल,
करता अलि, मुझको पुलकाकुल!
हम दोनों सर के खड़े तीर,
उस कोलाहल से हो अधीर!
देखते लहरियों को चंचल;
ताली-तमाल-तरु का अंचल!

कुन्तल समीर-सिहरन से खुल
करता अलि, मुझको पुलकाकुल!
यह नगरी का एकान्त प्रान्त;
दिशि-दिशि का वातावरण शान्त!
अँधियाली संध्या की झुटपुट,
करते क्रीड़ारव जल-कुक्कुट!

भँवरों में नौका-दल हिलडुल,
करता अलि, मुझको पुलकाकुल!
कर कंचनमय सर का मृदु-उर,
उतराती रवि-आभा पाण्डुर;
सुकुमार तरङ्गों पर विलोल
उड़-उड़ खगकुल करते किलोल

गोधूली धूलि-कणों से धुल,
करता अलि, मुझको पुलकाकुल!
लो, अब हम सब भी चलें शहर,
लखते ही बीता एक पहर!
होगी तम-घनीभूत छन में
रजनी प्रशान्त कानन-वन में!

अब भी गंगा का रूप निचुल!
करता अलि, मुझको पुलकाकुल!

४७५

सघन-मगन, घेर गगन
नव-घन घिर आये!
वन-वन में, कण-कण में,
क्षण-क्षण में छाये!
रिमझिम-झिम, रिमझिम-झिम,
फुहियों में मधुरिम-रिम,
उपवन-वन नन्दन-वन
बन कर मुसकाये!

सुरधनु-मणि-लतिका कल
चपला का चाप चपल,
पल-पल पर, दल-दल पर
झलमल झलकाये!

डुलता सर - तीर - तीर
सीकर पीकर समीर ;
केकी रव सुन अभिनव
पल्लव हुलसाये !
कुंजों में मधु रसाल ,
दोला कल डाल - डाल ,
यौवन - रति - निरत - युवति—
जन - गन - मन भाये !

४७६

इस विभीषण विषम जग - कान्तार से
जा रही एकाकिनी मैं बालिका ;
सजनि, अपने ही मदिर - सम्भार से
झुकी पड़ती तनु-मुकुल-कल-मालिका !
वय चतुर्दश, अलि ! चतुर्दश रत्न से
झूलते हैं देहली पर सुनहली ;
चाहती कितना छिपाना यत्न से
उझक पड़ती किन्तु, फिर भी कुच-कली !
रोम - सरसिज-विपिन की नव गन्ध से
लो, सुवासित हो गई दिग्लालिमा ;
डोलते मधुकर-निकर सखि ! अन्ध से ;
मधुकरी-सी नयन - अंजन कालिमा !
वेदना पाथेय, यौवन का नवल—
लोचनों में खिँचा मधुरिम-चित्र - सा ;
हिम-विमण्डित शैल - शृंगों पर धवल
पथ-प्रदर्शक मिला मन्मथ मित्र - सा !
बरस पड़ती मृदु - पदों पर प्यार से
रसिक जन की कामना - शेफालिका ;
इस विभीषण विषम जग - कान्तार से
चल रही एकाकिनी मैं बालिका ;

४७७

इन्हीं वन - वल्लरियों के नीचे—
लाज लुटा दी व्रज वनिताओं
ने वंशी की ध्वनि सुन कर ;
मृग के ही सँग विद्ध हुआ था
किसी कुमारी का अन्तर !
सौंप दिया था वनकन्या ने
नरपति को अपना यौवन ;
और न जानें, छली गईं कब
कितनी प्रतिमाएं किस क्षण ?
उन्हीं वन - वल्लरियों के नीचे—
जहाँ, मुकुलों का वन - संगीत
फूट पड़ता स्वर में अनजान ;
मधुप के आकर्षण से मौन
सिहर उठते कलिका के प्राण !
जहाँ, मृदु श्यामा-ध्वनि दिनरात
लुटाती राशि - राशि उन्माद ;
कलापी के उर का उच्छ्वास
बहा देता है सभी विषाद !
वहीं, चल रे मन मेरे लुब्ध ;
छोड़ यह संघर्षण - चीत्कार !
जहाँ द्रुम की छाया में मूक
शान्ति की बहती निशिदिन धार !
खुला तप-साधन, हे गुणवान ;
जुड़ा ले तू भी अपने प्राण !

नारी

आदि-शक्ति-रूपा-जननी तुम , गौहर की जौहर - ज्वाला !

गान-गरिमा

उमड़ बन जाता पारावार
कोक-मिथुनों का दारुण शोक ;
दूर तम - तमसा के उस पार
काँपता नक्षत्रों का लोक !
डोल उठता शर्वरी - वितान ;
करुण सुन मेरा कोमल गान !

खिसक, गिर पड़ता सुमनस-बाण
पंचशर के कर से सुकुमार ;
ताल पर एक एक लय - लीन
थिरकता किसलय - सा संसार !
सिहर उठते अणु-अणु के प्राण ;
करुण सुन मेरा कोमल गान !

उषा में खिल पड़ती कनकाभ
चकित-सी नवकलिका अनजान ;
निकलते नीड़ों से तत्काल
प्रथम किरणों को द्विज पहचान !
सजग हो उठता जग म्रियमान ,
करुण सुन मेरे कोमल गान !

मलय का ले कल परिमल-भार ,
पवन वन - वन में जाता फैल ,
ठिठक जाती निर्झरिनी भूल
विजन कानन में अपना गैल !
पिघल उठता हिमवत पाषाण ,
करुण सुन मेरा कोमल गान !

बिखर-से पड़ते निश्चल, मौन ,
विश्व - वीणा के तार अधीर ,
इन्दु - उडु - कुमुदों से परिपूर्ण
महानभ की वापी गम्भीर !
मुसकिरा उठता द्रुमदल नादान !
करुण सुन मेरा कोमल गान !

अशोक

प्रिय, शीतल करले दृग विलोक
मेर उपवन का तरु अशोक ;

श्यामल किसलय का कल वितान
करता कितना सौन्दर्य - दान ?
फुनगी पर करते विहग रोर
छू-छू वन-छवि का कलित कोर !
देता छाया रवि - रौद्र रोक
मेरे आँगन का तरु अशोक ;

बन्दर बच्चों को पीठ लाद
डाली - डाली पर रहे फाँद ;
नटखट शिशुओं का दल चंचल
नीचे है मचा रहा हलचल ;
मानता न नेक भी रोक - टोक ;
लो, देखो—मेरा यह अशोक !

दो दिन का यह तरुवर, मृणाल ,
है हरी - हरी - सी भरी डाल !
कितनों को प्रतिदिन पाल - पाल
देता निकाल सायं - सकाल ;
हँसता मधु, हँस ले हृदय-कोक
तू भी यह तरु-पल्लव विलोक !

४८१

यह विश्व हेम का मायावन—
कुछ सोच समझ कर चल रे मन!

मरु में मिलता है जलाभास;
तम में केवल मिथ्या प्रकाश!
रवि-ज्योति-विभासित काचों में
पाता हीरक का अनृत हास!
यह स्वप्नों का सुकुमार सदन,
कुछ सोच-समझ कर चल रे मन!

बढ़ता आता पलपल विनाश,
हँस रही मृत्यु रे आस-पास!
पर किसे होश? क्या बुझी कहीं!
प्रिय, ओस-बूँद से प्रखर प्यास?
यह दुर्लभ, दुर्गम गगन-सुमन;
कुछ सोच समझ कर चल रे मन!

सुन, द्रवीभूत सुख का पानी
चलनी में उठा रहा प्राणी,
दुनिया यह एक कहानी-सी,
हर वस्तु यहाँ की फानी-सी!
यह माया का कंचन-कानन;
कुछ सोच समझ कर चल रे मन!

४८२

तकली, तकली, तकली!
बितिया मेली, अली दुलाली!
तूने क्यों कल पकली?
तकली, तकली, तकली!

यह तो दीन-दुखी का सम्बल,
शत-शत प्राणों का प्रिय सहचल;
अली, चलाने दो ली पगली,
जीवन की चकली—
तकली, तकली, तकली!

मेरे मोहन की मधु-मुलली;
कितनी मोहक, कितनी सुलली;
देखो ना—देखो ना प्याली,
सूतों की मकली—
तकली, तकली, तकली!

नाच रही प्याली में कैसे?
पानी में मछली हो जैसे!
खल-खल, कल-कल, मल-मल पल-पल
फिर तूने ढ़क ली—
तकली, तकली, तकली,

कातोगी—कातो, सुकुमाली;
खाली यों न बैठना आली!
लखो कलों में यही छोल कल
आभूषण नकली—
तकली, तकली, तकली!

४८३

प्रिय, तेरी ही याद—
आवे मार्ग-प्रदर्शक बनकर,
दिव्य ज्योति-सी, तेज-पुञ्ज धर,
तरुण तिमिरमय मृत्यु-निशा में
रक्त-चिता के बाद
प्रिय, तेरी ही याद!

तेरा ही उल्लास—
बिखरावे करुणाकर क्षण-भर,
मेरे चिन्ता-ग्रस्त वदन पर,
सरल हास के मणि-किरणों का
उज्वल-विमल प्रकाश
तेरा-ही उल्लास।

तेरी ही शुभि भक्ति—
देव दुर्दिन की घड़ियों में
अगणित आँसू की लड़ियों में
कातर-उर में विप्रयोग-दुख
सह लेने की शक्ति,
तेरी ही शुचि भक्ति!

४८४

तुम करुण का चिर ज्योतिर्पट;
टुक देखो मेरा भी संकट!

लपटों में झुलस गया उपवन;
काला तन-काला सा ही मन।
आँगन उजाड़, धरती ऊसर;
नंगा शरीर, मैला, धूसर।
फिर भी न तुम्हारी छूटी रट;
टुक देखो मेरा भी संकट!

दो दिन के बच्चे हैं भूखे;
घर में न कहीं रूखे-सूखे।
रोती है रानी एक ओर,
आँखों से अविरल बहा लोर।
यह भी क्या दुख? क्या अकुलाहट
टुक देखो मेरा भी संकट।

तुम कहाँ छिपे हो आज नाथ?
मुझसे भी करते कहो, छ्लाथ?
यह तो है अच्छी नहीं रीति;
छोड़ो अब अपनी कुटिल नीति।
रहते जब देव, सदा घट-घट;
टुक देखो मेरा भी संकट।

४८५

सजनि, मेरी भावना के लोक में
मूक किसका यह करुण संवीत है?
शोक-जर्जर व्रतति-छाया-ओक में
आँसुओं का एक कोमल गीत है।
जा रहे क्यों नाथ? मैं कैसे कहूँ?
हाय मुझसे कहा भी होता कभी।
वेदना यह आज मैं क्यों कर सहूँ?
चल दिए बस, आ गया जी में जभी।

रोक लूँगी शिथिल कवरी से जकड़
सान्त्वना-सिञ्चित हृदय के ज्वार को?
मना लूँगी प्रेम से पैरों पकड़
आज रूठे हुए उर के प्यार को।
जान पायी मैं न किसके जाल में
हार आया रूप-धन मेरा पथी।
देखता भावी जरा के भाल में
वयःकुंठित मन मनोरथ-रथ-रथी।

प्रेम, छलको मत सिहरते वदन पर
अश्रुकण बन, लोचनों की कोर से;
मत विदा की करुण घड़ियों में उमड़
अशुभ सूचित करो मेरी ओर से।

चींटियाँ

चींटियाँ छोटी हुईं, तो क्या हुआ ?
है न उनमें एकता के भाव तो ?
जानतीं पारस्परिक सहयोग को ;
बन्धुता के बरततीं बर्ताव तो ?

जाग कर नित बड़े तड़के ही सभी
निकल पड़तीं काम करने के लिये ;
मग्न रहता विश्व सारा नींद में
जब कि बेसुध कान में उँगली दिये !

जानती हैं भूल कर भी वे कभी
पैर पीछे युद्ध में देना नहीं ;
दाँत खट्टे द्विरद के हो जायँ जो
दाँव में पड़ जाय वह उनके कहीं !

स्वर्ग - से उनके निराले देश मे
कहीं आलस का न कोई काम है ;
भाग्य के निष्फल भरोसे हाथ पर
हाथ देकर बैठने का नाम है !

व्यय करो मत व्यर्थ ही, संचय करो ;
कह रही हैं आज सबसे चींटियाँ !
मुदित खाने के लिये बरसात में
जुगा रखतीं अन्न कब से चींटियाँ !

श्रम किया करतीं सुबह से शाम तक ;
नित्य दिन अविराम, जिससे लौ लगी!
धन्य है उनकी अलौकिक वीरता ;
धीरता, श्रमशीलता, मरदानगी !

खींच कर ले जायँगी झटपट, कहीं
राह में जो मिल गया भुनगा मरा !
सोचने का वक्त उनको है नहीं—
जन्तु छोटा है कि उनसे भी बड़ा !

एक का आह्वान पाते ही, तुरत
पहुँच जाती हैं करोड़ों ही वहाँ ;
कामयाबी जब तलक होती नहीं ;
चैन कैसी ? दम उन्हें मिलता कहाँ ?

बिल रसातल में, पहुँचतीं मेरु पर ;
लाँघती घाटी, तरङ्ग, तराईयाँ !
साहसी हैं वे बला की, किस तरह
काँइयाँ - परले सिरे की काँइयाँ !

शूरता ही पुरुष का शृङ्गार है ;
पाप है दौर्बल्य, रे लघुता नहीं !
भेद देते पर्वतों के हृदय को
बूँदियाँ मिल जायँ दो-दस जो कहीं !

सीख लो;—अतएव तुम भी इन्हीं से
एक होकर काम करना सीख लो ;
जिन्दगी में दुःख जब जो आ पड़े ,
मेल से, मल सब जने उनको दलो !

४८७

नव जलधर - सा मेरा जीवन ;
कानन - कुसुमों - सा मेरा मन !
निस्सीम व्योम में उमड़ - उमड़ ,
प्राणों में करुणा - रस भर-भर ;
मैं बहा जगत में अमिय-धार ;
धो देता मानस के विकार !
ले आता रे प्लावन पावन ;
नव जलधर - सा मेरा जीवन !

उद्ग्रीव शाल - द्रुमके नीचे ,
तरु - तुहिन - अश्रु - जल से सींचे ,
वृन्तों पर लिखकर अविज्ञात ,
मुरझा जाता स्वयमेव रात ;
मुसकान इधर, उस ओर रुदन ;
कानन - कुसुमों - सा - मेरा मन !

४८८

ये फूल मटर के श्वेत - लाल ;
फूले हैं कैसे डाल - डाल !
ये मधुर छीमियाँ स्निग्ध, स्वादु ;
ये सुन्दर दाने गोल - गोल !
आवाहन करते सर्वकाल
मानो मुझको ही हृदय खोल !
है भरा धरा का उर विशाल ;
इन फूलों से ही श्वेत लाल !

विस्तृत - सुषमा में हरी - भरी ,
देखो, वसन्त - श्री की लहरी ;
प्रिय, डंठल में कोमल-कोमल ,
हैं झूल रहे झलमल-झलमल ;
कुछ छिपे, रहे कुछ सिर निकाल ;
ये फूल मटर के श्वेत लाल !

जा कुसुम, तोड़ ला तनिक साग ;
इन पत्तों की ही सानुराग !
तू बहिन बना कर दे प्रसाद ;
मैं भाई - इसका चखूँ स्वाद !
हाँ, रहे इसीकी आज दाल ;
ये फूल मटर के श्वेत लाल !

४८९

कैसे अलि , होगा संयम ?
जिन उपकरणों से मेरा यह
बना असाधारण जीवन ;
वे इतने कोमल कि तनिक भी
रोक न सकते आकर्षण !
इन नयनों का दोष नहीं , कह
देगा उर का मृदु स्पन्दन ;
तन बन्धन में रहे भले ही ;
मन न मानता पर , नियमन !

हाय , वासनाएं दुर्दम !
घुली-मिली जल-पय-सी इच्छा ,
जगती के अणु में प्रत्येक ;
सजनि , अबोध कहाँ से लाऊँ ,
मैं मराल का विमल विवेक !
बसी हुई मुझमें तो प्रिय की
वही सलोनी छवि न्यारी ;
मैं भोली कैसे बच निकलूँ
इन प्रलोभनों से प्यारी ?

पथ न प्रेम का सहज - सुगम !
ऊँचा - नीचा , कँकड़ीला यह ,
सरिता - का - सा क्षिप्र प्रवाह !
कहीं लुप्त , तो कहीं प्रकट-सी ,
घूम - घूम कर जाती राह !
आशा और निराशामय अब ,
जो हो संवेदन - पीड़ा ;
मीरा - सी मैं चली खोजने
अपना गिरिवरधर - हीरा !

४६०

चल री सजनी धीरे - धीरे—
धीरे - धीरे , धीरे - धीरे !
प्रेम-सदन में, मान - भवन में ;
यौवन के मोहक कानन में ;
तू मतवाली भोलीभाली
पग रख सोच-समझ कर मन में !
ले अनन्त आशा का सम्बल ,
चल री. सजनी धीरे - धीरे !

यह दुनिया 'निर्मम दीवानी ,
ना देखी - जानी - पहिचानी ;
रानी, इसके कुटिल दृगों ने
की कितनी बस्ती वीरानी !
क्या तेरी इसमें बिसात ही ?
चल री सजनी धीरे - धीरे !

अस्थिर यौवन - भार लिये तू ,
मद का पारावार पिये तू ;
आई है किस अलख लोक में
सखि, सोलह शृङ्गार किये तू ?
रङ्ग नहीं–यह रुद्र चितानल ;
चल री सजनी धीरे - धीरे !

यह माया का मोहन वन है ;
जीवन और मरण का रण है !
भस्मीभूत त्रिलोचन - ज्वाला
से कराहता यहाँ मदन है !
सावधान ! दृग खोल, सजग हो–
चल री सजनी धीरे - धीरे !

होती यहाँ सदा बटमारी ,
यह कानन, तुम मृदु पदचारी !
इसीलिये तो मुझको भय है ,
खो न कहीं जाओ सुकुमारी !
दुर्गम पथ , दुस्तर मरुथल में
चल री सजनी धीरे - धीरे !

सँभल सँभल कर रख पद कोमल ;
मिलन-मोद में मत हो चंचल !
इस एकान्त - शान्त रजनी में
कर न उठे नूपुर कोलाहल !
धर उतार कर वसनाभूषण ,
चल री सजनी धीरे - धीरे !

४६१

अलि, वन्दनवार सजाये—
नव-गति, नव-मति, नव-यति, नव-रति ,
नव ऋतु के पति आये !
अलि , वन्दनवार सजाये !

जग-जग में जग गया नवल रव ;
बिकी पिकी सुन पिक-स्वर अभिनव !
विभावरी में नवल मनोभव
कैरव के मनभाये !

छाया पुनः पुनः दलदल-पर ,
जगका शैशव रूप मनोहर ,
मन्द गन्ध-श्लथ मलय-पवनपर ,
दूत सुमन - शर धाये !
अलि , वन्दनवार सजाये !

मरीचिका

दुर्गम मरु-प्रान्तर में विशाल ;—
होता यह कैसा सतत्काल
नटि, जटिल तुम्हारा इन्द्रजाल ?

कण-कण पर, तृण-तृण पर सहास ,
तुम प्रतिपल, प्रतिक्षण, नृत्यशील ;
पद - चपल - तूलिका से चित्रित
करतीं छाया - छवि अरुण - नील !

अंकित कर अन्तर - अन्तरिक्ष ,
ऋजुरोहित रेखा से नवीन ;
उपजातीं जल का भ्रान्ति स्रोत ,
सिकता - पथ में वीरुध-विहीन !

जल उठता जब बालुका - लोक
रवि - रश्मि - राशि से भासमान ;
तुम 'रजकण पर रचतीं मिथ्या
शीतल पुष्करिणी का विधान !

चलता तृष्णाकुल हरिण - यूथ
खोजने सलिल का पुण्य प्रान्त ;
विवरों से शुचि के निकल-निकल
ज्वाला-विदग्ध, विकलाङ्ग-भ्रान्त !

मिटतीं बन फिर फिर तुम रँगीन
संध्या के नीरद - चित्र क्रूर ;
पारा - सी चपल, अ-स्पृश्य, तरल ;
क्षण में समीप, क्षण में सुदूर !

सुन्दरि, देतीं मुसकिरा मन्द ,
तुम घूँघट का कर तनिक ओट ;
उस मौन, किन्तु कल इंगित पर
हो जाता मृग-दल लोट-पोट !

दौड़ता वशीकृत, मन्त्र - मुग्ध ;
अकलुष - अबोध वह उसी ओर !
बन जाती बस, विभ्रम - विभोर
शय्या ही उसका मृत्यु - क्रोड़ !

वह अरुण-नील, प्रज्वलित शिखा
जलती जो दीपक के समान !
न्यौछावर करता है जिसपर
मृग-शलभ-पुञ्ज निज सहज-प्राण!

फैलाया अणु - अणु में जग के
अपना प्रपंचमय कपट - जाल ;
निर्गत हो वन के द्रुमाच्छन्न
हो रहे पतित नित हरिण - बाल !

अयि महानियति की गूढ़ गिरा ;
कपिशान्ध अगति के कुटिल व्यङ्ग!
अब सह न सकेगा मूढ़ जगत
उन्मत्त तुम्हारा भृकुटि - भङ्ग !

मायाविनि, आतीं धर अनेक
आकृति, जगती में विविध रूप ;
वैभव, यशैषणा, धन, प्रभुत्व ;
तुम स्वर्ग - शिखर, तुम अन्ध-कूप !

यौवन मदालसा - सी मोहक ,
तुम महा-काल का उग्र क्रोध !
तुम चंचल, गन्धोत्तेजक तुम ;
तुम अनियन्त्रित, तुम अनवरोध !

कितना तुममें छल-बल कौशल ;
जल में स्थल, स्थल में जलाभास !—

माया में आवृत कर सब को
करतीं कौतुक, क्रीड़ा, विलास !

ठहरो ओ रूपसि, एक निमिष ;
रोको अपना चंचल विनृत्य !
छटपटा रहा असहाय जगत
निर्मोह तुम्हारा देख कृत्य !

४६३

अधोवय में आज मेरी प्रियाके
काश-केशों में वेणी-सूचिका ;
अनाकर्षक अङ्ग-भङ्गी क्रियाके
भाव चित्रित कर न सकती तूलिका !

जीर्णदल-से शीर्ण अधरों पर विरस ,
शेष मदिरा का न किंचित सार है !
किन्तु, फिर भी भावना मेरी अलस ;
पूर्व-सा ही अटल निर्मल प्यार है !

अन्त में मुक्ताभ दाडिम-दन्त के
अभिनिहित सौन्दर्य सारा विश्वका ;
कौन हृदयाङ्कित अनन्त वसंतके
रुचिर शाश्वत-रूप का लय कर सका !

तनु विनश्वर वस्तु किसको चाहिये ?
अमर आत्मा ही बनी आराधिका !
जरा-जीवन-भय रहित वह, इसलिये
आन्तरिक ही सुछवि मेरी प्रेमिका !

प्रीति मुझको वासना से है नहीं ;
विफल रे अतएव गुरु कालेक्रिया !
दो दिनों का जाय यह यौवन कहीं ,
मैं रहूँ जगमें - रहे मेरी प्रिया !

पिपनियाँ

लोचनों से भी कहीं बढ़कर नहीं
लाभकारी क्या हमारी पिपनियाँ !
कुछ कहो तुम , पर हमें लगती सदा
जान से प्यारी दुधारी पिपनियाँ !

देखते ही किसी ऐसी वस्तु को
झेंपतीं , झँपतीं , लजातीं पिपनियाँ !
निकलने देतीं नहीं , यों बेतरह
आँसुओं से उलझ जातीं पिपनियाँ !

टूट नयनों में जहाँ कोई पड़ी ;
हाय, काँटा-सी खटकतीं पिपनियाँ !
किये देतीं किरकिरा सारा मजा ,
किरकिरी-सी जब झटकतीं पिपनियाँ !

गर्क हो जाओ भले तुम नींद में–
किन्तु,जगकर निशि बितातीं पिपनियाँ,
पुतलियों की पहरुआ-सी रात-दिन
धूल - चोटों से बचातीं पिपनियाँ !

लो , स्वयं सुकुमार वन्दनवार बन
द्वार जो दृग के सजातीं पिपनियाँ !
लोचनों का चिर-सुभग शृङ्गार बन
चैन की बंशी बजातीं पिपनियाँ !

डालियों में लटक पलकों की अहा !
झूलतीं सारी दुलारी पिपनियाँ !
मूँछ-दाढ़ी-सी जरा ज्यों काट दो ,
जायँगी बन बस कटारी पिपनियाँ !

पटने के गोलघर से

अरे कौन तुम अन्ध-सुरा पी, गन्ध-सुरा पी रक्त !

४६६

अलि, वे वसन्त - युग बीते !
अब आये जग में निदाघ के
ये उदास दिन रीते !

गया मलैय-वलयित-लय अनुपम,
यह दिनकर'की ज्वाला दुर्दम !
संगम के विभ्रम में सरिता
भूल गई अपना भी उद्गम !
जब यौवन की मधुशाला में
हम मधुरासव पीते—
अलि, वे वसंत - युग बीते !

अब न स्नेह के भाव विमोहित,
हुई प्रणय की ग्रन्थि तिरोहित !
झलक उठा गम्भीर गगन में
सन्ध्या का पावन पट लोहित !
जब ये विधुर चकोर तुम्हारा
शशि - मुख लख - लख जीते;
अलि, वे वसन्त - युग बीते !

४६७

अहा, आज यह जग में कैसी
वासन्ती - छवि छाई ?
वन-वन में इभ - मद - कल - सौरभ - परिमल;
नव - दिनकर - कर - निकर - करम्बित नभतल;
चन्दन - चर्चित - शिला - शकल-कल अविकल,
बरस रही अनवरत कुसुम - कुल—
मुकुलों से अरुणाई !

कलित कल्पतरु - किसलय - मण्डप—
मण्डित - लता - भवन में !
सोती पाण्डुर पर्ण - शयन पर बाला,
पहन सुपुञ्जीकृत गुञ्जाफल - माला;
पीते मधुलिह अगुरु - विलेपन - सुरभित - हाला,
पुष्कर - सीकर - राजि विराजित—
विकसित कुवलय - वन में !

फहराती सखि माधविका की
नव जलधर - सी कवरी !
बिखरा रोचन, केसर, धूलि - विधूसर,
सकुतूहल, हारीत - हरित मृदुदल पर,
सरभस - मृग - रोमन्थन - फेनिल सुन्दर,
मलय - शिशिर - पवमान - यान पर
मुसकाती निशि - शवरी !

४६८

हृदय चाहिए हृदय, सदय !
सुन्दर तो होते हैं हीरक - मणि - रतनों के भी लघुकण !
कैसा चिकना - चिकना है वह बहती सरिता का पाहन !
पर, क्या पा सकता वह निर्मल वारि-बुद्बुदों का-सा मन ?
मधुकर तो सुकुमार, किन्तु कर देते तरु का भी भेदन !
हृदय चाहिये शुचि - सुन्दर !

स्नेह-हीन दीपक कब तक कर सकता है प्रकाश का दान ?
सुमन न हों तो कौन करेगा शीतल जगती - तल के प्राण ?
सारी रात बिता देता क्यों चक्रवाक कर हाहाकार ?
खा लेता है कौन कहेगा, क्यों चकोर जलता अङ्गार ?
हृदय चाहिए सत्य - सरल !

प्रेम - प्रेम तो दो हृदयों का एक अनाविल आकर्षण;
आकर्षण ही क्यों, वह जीवन - सूत्रों का पावन बन्धन !
जिस बन्धन में बँध कर दो प्राणों का होता है मिश्रण;
दो ही नहीं, समन्वित होते जहाँ विश्व भर के मन - तन !

अभिशाप

जिसकी बेपर्द निगाहों से रे हरा चेहरा बना जर्द ;
कर जिसे याद अब भी भरता दिल मेरा रह-रह आह सर्द !
फूटी तकदीर अभागी भी ; बरबाद हुई जिन्दगी शाद !
देखे वह एक नजर - मेरे इस स्वर में कितना दाह-दर्द !

मैं थका हुआ हूँ राहगीर ; मैं रे अनन्त का पथिक एक !
चल रहा दीन, कृशकाय क्षीण, बूढ़ों-सा लकड़ी टेक-टेक !
सिर पर दुःखों का लदा बोझ, कुछ देख-भाल, कुछ फूँक-फूँक ;
मेरे पथ में हैं वन अनेक , पर्वत अनेक , खाई अनेक !

गम्भीर वेदना - सरिता में मेरी जीवन - नौका अधीर ;
बहती है डगमग डगमग कुछ अटपटी चाल से नीर चीर !
वासना - वायु के झोंकों में पड़ भटक रही चंचल-चंचल ;
इस पार कभी , उस पार कभी रे घाट - घाट रे तीर - तीर !

चाहते सभी मधुकर लेना फूलों - फूलों का वास - हास ;
वन में जब खिलें अनेकों ही तब व्यर्थ एक की क्या न आस !
यह विद्युत ही कुछ है ऐसी, इस घनचक्कर की अजब चाल ;
दोषी फिर कैसे कहूँ - कौन ? जब सबकी योंही बुझी प्यास !

मादक आलिङ्गन-पाश-बद्ध सुख-दुख चलते जब आस-पास ;
रे तभी पुलक का वह प्रकाश , अन्तर का वह सच्चा हुलास !
वह अविरल सुख है सुख ही क्या, वह अविरल दुख है दुःख कौन!
फिर भी तुम पूछ रहे मुझसे, क्यों रहते जीवन से निराश !

देखा है फूलों में काँटा , ऋतुपति के उत्सव में करील ;
देखा कल-कुंजों में भुजंग , सूनापन नभ में नील - नील !
पीयूष - पात्र में गरल-यही तो देखी जग की कुटिल चाल ;
भीतर से कस कर नाग-फाँस, ऊपर से देना ढील - ढील !

खुलते ही आँखों के , आगे यह कैसा आया चित्र नग्न !
मैं सिहर उठा-भगवन ! जरूर हो गईं गलतियाँ;अशुभ लग्न !
यदि सचमुच ही तस्वीर यही दुनिया की असली दर्दनाक ;
सन्देह नहीं तो - एक दिवस हो जायेगी यह प्रलय - मग्न !

दिल तो बेकाबू हुआ और मन चिन्ताओं से चूर - चूर ;
है ताक रही कब से मुझको ममता - पिशाचिनी घूर - घूर !
रे यद्यपि है वह रूप - राशि ; इतनी कठोर, इतनी निर्मम !
पा जाता फिर भी झलक कभी, कुछ पास-पास, कुछ दूर-दूर !

क्या यही प्रेम का है स्वभाव ? क्या यही प्रेम का है स्वरूप ?
यह दीख रही जो वस्तु हमें, क्या सभी सुघड़, क्या सब अनूप ?
अब समझा-हाँ,अब समझ गया;सब छलना हैं,है सब माया ;
यह घोर-नरक की वह्नि-शिखा,यह घोर-नरक का अन्ध-कूप !

तन - मन मरोड़ - झकझोड़ रहा रे उद्वेगों का घूर्णि-वात ;
मुझ पर अनभ्र ही रह रह क्यों हो रहा व्योम से वज्र-पात ?
उफ ! असहनीय यह पापों का अभिशाप,भर्त्सना,उत्पीड़न ;
मैं चाह रहा हूँ आत्म - प्रलय, मैं आज करूँगा आत्म-घात !

कुछ हँसी-खुशी में कह देना; यह तो नगण्य-सा दोष गौण !
बौछाड़ उलहनों की जब मैं खाकर भी रहता शान्त, मौन !
मैं कब समझूँगा यह रहस्य; सुलझेगी कब उलझन अजीब ?
क्यों वंचकता की यों उसने , था मेरा ही अपराध कौन ?

मालूम एक दिन जाना है ; जाना है - जाना है जरूर !
मिल जायेगा उस मिट्टी में , आया यह जिससे एक नूर !
फिर क्यों दो-दिन की दुनिया में जाने अथवा अनजान कहीं ;
क्यों करूँ किसीसे बैर-भाव ? क्यों राग-द्वेष ? क्यों रे गरूर ?

देखा इस जग के तार-तार ; रे बार-बार , पर मजा नहीं !
हँसता विनोद जिस नन्दन में, बसती प्राणों की सजा वहीं !
इस कोलाहल में कहीं नहीं पाया वह सुख-आनन्द अमर ;
आया जैसे ही - वैसे अब ले चले मुझे भी कजा कहीं !

मैं मना रहा हूँ सदा यही , हो जाये बस अब जल्द अन्त ;
यह जीना मरने से कठोर, यह कष्ट घोर, यह दुख अनन्त !
निश्चय ही, जीवन का मुझको सुख-भोग कभी है बदा नहीं ;
फिर मुझको क्या ! आये-जाये; जैसा पतझड़-वैसा वसन्त !

चलती थी, चलती है, चलती ही और रहेगी यह बहार ;
संसार सभी , घर-द्वार सभी , व्यापार सभी , सब कार-बार !
हो सकती है किसकी क्या क्षति? यदि मृत्यु उठाले मुझे कभी !
क्यों एक बूँद घट जाने से सूखे सागर विस्तृत अपार !

जिसको जी से कर रहा प्यार , वह होती औरों पर निसार ;
जिसपर तन मन-मन-धन दिया वार, वह रही दूसरों को पुकार !
नित शाम - सबेरे वह - बहकर आती है पेड़ों से बयार ;
पाया न कहीं निश्छल दुलार , वैसा न मिला प्रेमी उदार !

हाँ , वहीं कहीं उस सरिता के तट पर होवे मेरा मजार ;
कुछ दूर शहर की हलचल हो, कुछ दूर वहाँ से हो बजार !

लोटूँ मैं शूल-धूल में ही ; कोई क्यों जाये चढ़ा फूल !
पर, हाँ, हजार मृग-खग-वानर डोलें हजार , बोलें हजार !

बालू के घर-सी यहाँ नित्य मिटती - बनती रहती प्रतीति ;
चाहिये उन्हें नित नया रूप, है यही जगत की प्रीति-नीति !
नित नवल प्रेम,नित नवलपात्र;नित नया महल,नव चहलपहल!
बस, यही रही है रीति यहाँ , फिर यही रहेगी यहाँ रीति !

अब तो मैं मरने को तयार जग के प्रतिबन्धन सभी तोड़ ;
आ रहा वहीं, सुनता उसके ही रथ का घर्घर शब्द घोर !
आ, मेरी चिर-सहचरी मृत्यु; ले मुझको निज उरमें समेट !
मैं भी जाऊँगा उसी ओर, अब उसी ओर-बस, उसी ओर !

क्या जानूँ, है क्या पाप-पुण्य ! फैला यह कैसा अन्धकार !
मैं देख रहा हूँ एक शून्य; बस, और नहीं कुछ आर-पार !
फिरशान्ति मिलेगी या कि भ्रान्ति?कुछ मुझेनहीं इसकाखयाल!
अब तो मुझको इस जीवन से दे दो छुटकारा ही उदार !

कोई क्षण-भर के लिये यहाँ करले अलिङ्गन, प्यार, स्नेह ;
फिर तो जगती में वही ग्रीष्म; फिर वही ताप, फिर दग्ध देह !
विश्वास-घात,छल-बलप्रपंच,वहगुप्त-मिलन,कलुषित-विचार;
चलता है दिन-भर, रजनी भर हर गाँव-गाँव, हर गेह-गेह !

हाँ, इसीलिये तो मैंने भी तज दिया जगत का रास-लास ;
कबसे रहता इस निर्जन में , कबसे करता हूँ विपिन-वास !
तुम क्या जानो प्रिय, इर्द-गिर्द फैला यह कैसा जटिलजाल !
पूछो मुझसे - आई कैसे इतनी विरक्ति , इतना उदास !

कोशिश हो क्योंकर? किसीतरह अब झेल सकूँगा न यहआह!
मुझको पल - पल है जला रहा मेरा अपना ही उर-प्रदाह !
वे सपनों के दिन बीत चुके, अब केवल उनकी एक याद ;
बाकी है दिल में मरने की, बस, मर मिटने की एक चाह !

हो गया प्रबल तूफान बन्द ; हो गया साफ अब आसमान !
वह देखो, बादल से निकला नव-जीवन का प्रमुदित विहान !
कैसा विलम्ब अब ओ नाविक , काटो लंगर खे चलो तरी ;
गाते चिर - नूतन मुक्तगान , फहराते उज्वल पाल तान !

रे अभी - अभी तो खिल पायी थी पत्ती - पत्ती, दूब-दूब ;
फिर इतनी जल्दी-ऐसा क्यों ! बेतरह गया मैं ऊब - ऊब !
पर, यह न कहो, कुछ हूँ कोरा ; ना; सारी चीजें पहचानी !
देखा है जग को खूब-खूब , मछली - सा जलमें डूब-डूब !

हाँ, इतना देखा है कि तनिक भी चाह देखने की न और ;
खाई है दर - दर की ठोकर; घूमा मग-मग में , ठौर-ठौर !
जब मैखाने में चला दौर पी साकी से अलमस्त हुआ !
मैं दौड़-दौड़ गिरपड़ा और गिर-गिर कर भी झट पड़ा दौड़ !

यह क्या ! मैं सोच रहा हूँ क्या ? हाँ,ठीक;नहीं रे यह प्रमाद !
जी करता है दिल खोल हँसूँ ; कर उठूँ नाद-भीषणनिनाद !
पर , उसी वक्त यह कैसी रे उठती है दिलमें एक टीस !
चिल्ला उठता मैं पीड़ा से ; कैसा विषाद - यह रे विषाद !

लाओ, दो ईंटें उठा मुझे, उस खँड़हर से , मत करो देर !
सिर आज तोड़ लूँगा अपना, साक्षी ये जंगल, हवा, पेड़ !
मैं इस क्षण खूनी शेर बना पी अपना ही स्वादिष्ट खून ;
देखो , मुर्दों की दुनिया में आया लपटों को आज छेड़ !

अबतो उजड़ा वह हरा बाग ; थे जिसके मोहक रंग-ढंग !
मनमें न निराली वह तरंग, हिय में न जवानी की उमंग !
लहराती रस की धार नहीं; वह अन्तर में मंजुल , निर्मल !
विजड़ित हैं नस-नस,तार-तार हो गये शिथिल-से अङ्ग-अङ्ग !

ऐसी स्थिति में, इस हालत में गाऊँ मैं किस मुँहसे मलार !
वह कौन भला सकता सँभाल आजीवन मेरा दुःख - भार !
चाहिये न अब वह पुलक-स्पर्श,चाहिये नहीं सुस्मिति अमोल ;
दो एक आह, बस , एक कसक ; रोऊँ मैं जिससे बेकरार !

लाँछित, अपमानित, पतित-नीच नजरों से सबकी गिरी हुई ;
बहु-रोग, शोक-भय-ग्रसित, सघन संकट-जलदों से घिरी हुई ;
ठहरी प्रत्याशा में किसकी क्या जानूँ, यह जीवन - लहरी !
क्यों इस प्रकार निष्ठुर दुनिया की आँखों की किरकिरी हुई !

ऊषा में हँसते हैं खिल-खिल ये कानन के जो फूल - फूल ;
निर्मूल उन्हें करके संध्या झोंकती बदन पर धूल - धूल !
क्या कहती है वह, सुनो वहाँ मधुकरी विरह की जरी-मरी ;
रे प्रेम एक है बड़ी भूल ; जीवन की सबसे बड़ी भूल !

इस मृत्यु-भुवन में मर्त्य-शील, कोई गरीब हो या कि शाह !
सब को यमदूत पकड़ , आकर रे ले जायेगा एक राह !
फ़ुर्सत है नहीं देखने की नर कौन कहाँ हँसता - रोता ?
वह बहता - बहता ही जाता ; परवाह नहीं करता प्रवाह !

जकड़ा जंजीरों से मानस ; अकड़ा तन , सूखे केश-वेश !
चलने का करता ज्यों उपक्रम, लगती है त्योंही एक ठेस !

वह ठेस-अरे, वह ठेस ! प्राण हो जाते हैं कम्पायमान ;
आती भूकम्प-लहर-सी झट; हिल उठते जल-थल, देश-देश !
यह कैसा आया है विराग ? यह कैसी आई अनासक्ति ?
छू जिसे तिरोहित हुई सभी अन्तर की पूजा, भक्ति, शक्ति !
वह शस्य-श्यामला भूमि कहाँ ? धू-धू करती है मरुस्थली !
ज्वाला ने जिसकी महाचण्ड स्वाहा कर दी स्नेहानुरक्ति !

क्यों तारे होते टूक-टूक ? क्यों छिपा छपाकर में कलंक ?
क्यों पंकों में खिलता पंकज ? क्यों रत्नाकर का शून्य अंक ?
यह नियति-चक्र का चलच्चित्र, यह झंझा का झकझोड़ वही !
जो बढ़ता ही जाता अछोर, रे बढ़ता ही जाता अशंक !

होता जो उत्सव-गान कहीं, तो कहीं कूच का राम - राम ;
यह दरिया - जीवन की दरिया अविराम सदा बहती अकाम !
खिलना, मुरझाना, मुसकाना, रोना, इठलाना, झड़ पड़ना ;
बेजार कहीं – बाजार कहीं ; हर रोज सुबह, हर रोज शाम !

दुनिया में मुझको जब यों ही जीना - मरना है बेर - बेर ;
तब क्यों फिर ओ मेरे स्वामी, स्वामी मेरे, कर रहे देर ?
भेजो परवाना, माफ करो; की हो जो मैंने भूल - चूक !
हो रहा असह उफ यह अँधेर ; अब उकसाओ मत छेड़-छेड़ !

कैसे फिर, कहो तुम्हीं कैसे मैं सह लूँ यह दुख आँख मूँद ?
किस खल ने की मिट्टी पलीद मेरी पैरों से रूँद रूँद ?
बाकी न रखूँगा ऐ साकी, आओ, लाओ अपना हिसाब !
दो नाम काट, दूँ चुका अभी तुमको शराब की बूँद-बूँद !

लो, सुधा-सरोवर सूख चला रे डाली-डाली, पात - पात !
जब मधु-पूनों में था खिलता हाँ, बात-बात पर गात-गात !
वह रात-रात भर जग-जगकर कीं धूप - दीप से पूजाएं ;
अब वही हाय मुह मोड़ चलीं छै-छै ऋतु, वासर सात-सात !

यदि मर कर भी इन कष्टों से मिल जाये मुझको कहीं शान्ति ;
मिट जायें दिल के दाग-दर्द, मानस की तमसामयी भ्रान्ति !
तो फिर इस पापी जीवन से कैसा ममत्व ! रे कौन मोह ?
मैं खो दूँगा सब कुछ सहर्ष-यह शुक्ल-पक्ष की चन्द्र-कान्ति !

मैं प्रेम - प्यार से हूँ वंचित ; मैं अपने भावी से निराश !
मैं हूँ मुरझाया - सा प्रसून ; कोई न कहीं भी आसपास !
सम्मुख ही तो मैदान पड़ा, मीलों तक, कोसों तक फैला ;
पाता हूँ अपने को केवल रे एकाकी, उन्मन, उदास !

आती जब आँगन में दृग के उन मधु दिवसों की याद आज ;
वह बचपन का आनन्द-नृत्य, वह बचपन का भोला समाज ;
उठता मैं मन-ही-मन तत्क्षण, अज्ञात - वेदना से कराह !
हा ! बदल न देगा कोई क्या ले पृथिवी का सम्पूर्ण राज !

अब भी वैसा ही रात - दिवस, बह आती वैसे ही समीर ;
संध्या की मृदुल थपकियों से छल-छल कर उठता नदी-नीर !
पर, मेरे लिये न हास्य कहीं, आनन्द कहीं-उल्लास कहीं !
मैं आप खोल कर बैठा हूँ अपने पत्थर का हिया चीर !

वह देखो, नाच रहा दिनकर; नाचती धरा, सागर, तड़ाग !
छाया है कण-कण में जग के यह कैसा रे आतंक - राग ?
सामने धधकती रक्त-चिता किन सुकुमारों का शोणित पी ?
मैं काँप रहा थर - थर, मेरे रे रोम - रोम में लगी आग !

जिस कनक-वल्लरी को पाला था अधर-सुधा से सींच-सींच ;
लिपटाया था कस बाँहों में चुम्बक - सा बरबस खींच - खींच !
कैसे वह विषकी वेलि हुई ? मालूम नहीं - कुछ पता नहीं !
क्योंकर मैं समझूँ उसे नीच, मानूँ मैं क्योंकर उसे कीच ?

मन पर तो चपल प्रतीति नहीं; होता नयनों पर अविश्वास !
अपने ही हाथों किया हाय मैंने अपना ही सर्वनाश !
तब क्या था वह भ्रम-दिग्भ्रम; वह दृश्य न था क्या अरे सत्य ?
पूछो उसाँस से अन्तर की, थर्राती मेरी साँस-साँस !

आई सौरभ की अभी एक पतली सी धारा भी न क्षीण !
बुझ सकी न दुःसह कंठ-ज्वाल, दृग में न नशे की द्युति नवीन !
उतरा न हलक से था निर्मम, रे एक घूँट भी मदिरा का ;
तुम कैसे साकी, हाथों से प्याला ही मेरा लिया छीन !

प्रिय रूपराशि का निज अनुपम सोचो, क्या फल पाता गुलाब ?
बह खर-तृष्णा की लहरों में सुन-सुन, वह क्या गाता गुलाब ?
अति-तीक्ष्ण कंटकों से बिँधकर उड़ जाती बुलबुल और कहीं !
पतझड़ की सूनी वेला में रोता ही रह जाता गुलाब !

मेरा निवास अब बने कहीं, रे जंगल में झंखाड़ - झाड़ !
हो वहाँ न कोई कोलाहल; बहती गंगा की विमल धार !
मैं देख रहा हूँ दूर - दूर, मिटता-बनता - सा एक स्वप्न ;
वह नीचा-नीचा जलप्रपात, वह ऊँचा - ऊँचा - सा पहाड़ !

शरद-मिलन

आज शरद हो रहा तरंगित श्वेत काश-वन में अभिराम !

५०१

ज्योति के जगमग आँगन में—

फूली नहीं समाती बाले, क्यों तुम आज अहा ! मन में ?
यह कैसा उल्लास-हास नव अधरों में, मृदु लोचन में ?
पतित चन्द्रिका निर्झरिणी हो रही विरल छन-छन वन में !
बोर गया सुकुमारि, तुम्हारा निर्मल तन कैसे क्षण में ?
धीरे धीरे मिलती जाती हो तुम इन्दु-किरन-गन में !
समा रहा है स्वयं चन्द्र यौवन-मद-विह्वल आनन में !
पल भर में सखि, तुम-ही-तुम रह गईं एक इस उपवन में !
और-तुम्हारी ही छाया बस, निशा-दिशा के नर्तन में !
तेरा ही प्रतिविम्ब दिखाई पड़ा मुझे अलि कण कण में !
छवि बन गई तुम्हारी ही उस सरिता के कल कम्पन में !
वह मुसकान-वही मादकता; वही सरसता जीवन में !
किरण समाई तुममें, तुम जा मिलीं समोद किरण में !
यह परिवर्तन, सोचा-देखा मैंने कभी न त्रिभुवन में !
विस्मित-सा रह गया ढूँढ़ता सजनि, तुम्हें मैं बन-बन में !

५०२

मेरे आँगन में जब देखो; तब होता ही रहता उत्सव !
बहता नव रस का स्रोत विमल कर ओत-प्रोत जीवन अभिनव !
नितदिन मरीचि-माली सहास आ उदयाचल से अनायास;
कर देता जाग्रत अन्तर में कामना-विहङ्गम का कलरव;
मेरे आँगन में जब देखो, तब होता ही रहता उत्सव !
करती उत्प्राणित कल्याणी रानी गृह-लक्ष्मी की वाणी;
रोता न कभी यौवन अधीर आई न जरा-न गया शैशव !
मेरे आँगन में जब देखो तब होता ही रहता उत्सव !
निश में शशि की चन्द्रिका धवल वासर में रवि की प्रभा नवल !
उपवन में हँसता चिर-वसन्त खिल उठता एक एक पल्लव !
मेरे आँगन में जब देखो, तब होता ही रहता उत्सव !
गूँजता तपोदित मन्त्र प्रणव; ढलता करुणा का सोमासव !
परिपूर्ण स्वर्ण-सन्तोष-कोष; फिर ज्यों अभाव, त्यों धन-वैभव !
मेरे आँगन में जब देखो; तब होता ही रहता उत्सव !
बहता नव रस का स्रोत विमल कर ओत-प्रोत जीवन अभिनव !

५०३

जीवन था जिससे ही जीवन; यौवन था यौवन आज तलक !
वह छद्म-वेशिनी कहाँ गई दिखला कर केवल एक झलक !
सामने भरा मधु-सुरा-पात्र; पर हिलता कर, काँपता गात्र !
उर स्पन्दित, पर निष्पन्द प्राण; तन हार रहा-मन रहा ललक !
कह, क्या न मिलेगी जीवन में यौवन की फिर भी एक झलक ?
था विश्व जहाँ कल; आज वहीं ! पर, अपना कोई कहीं नहीं !
बदला जग, होते ही मेरे कण शिथिल, शिथिल मन, श्वेत अलक !
मैं भ्रम में था मुख देख सुखों का; वैभव का रस आज-तलक !
पीले कपोल, लोचन गीले; रोम-रोम के बन्धन ढीले !
अब सब असार, संसार न जब रुँध गया गला, मुँद गई पलक !
वह मंजुभाषिणी चली गई दिखला कर केवल एक झलक !
जब जब फिरते बनकर सपने; शैशव के वे निशि-दिन अपने !
तब तब उर आता उमड़-उमड़, आँखों से आँसू छलक-छलक !
मैं ढूँढ़ रहा भवसागर में अब भी आशा की एक झलक !

५०४

उस दिन वहाँ समस्त सृष्टि की सारी सुषमा छाई थी;
जिस दिन मैंने अपने जीवन की अमूल्य निधि पाई थी !
कहूँ, सखी क्या, कैसा था वह मेरे नव-जीवन का क्षण ?
जब एकत्र हुए थे मिलकर दोनों के तन-मन पावन !
मैं अपने मनमें फूली थी; वे मेरी छवि पर भूले !
दोनों भूल रहे थे; दोनों के ही मानस थे भूले !
मेरी आँखों में लजा थी, उनमें पागल प्यार-भरा !
मेरी बातों में अल्हड़पन; उनमें पौरुष भाव कड़ा !
वे रह रह मुसका पड़ते थे, मैं शर्मा-सी जाती थी !
पर, भीतर-ही-भीतर मैं भी चुप के तीर चलाती थी !
कब रजनी बीती; प्रभात ने कब मुखपर रोली घोली !
आँखें खुलीं अचानक, ज्यों ही काली कोइलिया बोली !

पूर्णिमा

व्योम उर मेरा विपुल, तुम शारदीया पूर्णिमा-सी !

बालक और तितली

कौन कौन तुम वन-उपवन में ?
उड़ती फिरती हो कानन में ?
चंचल-चंचल, कोमल-कोमल ।
झलमल-झलमल,प्रतिक्षण-प्रतिपल।

तितली, तितली ; मैं हूँ तितली ।
बच्चों की आँखों की पुतली ।
इस दुनिया में दो ही प्राणी ।
तुम हो राजा, मैं हूँ रानी ।

तितली रानी , तितली रानी !
क्यों करतीं ऐसी मनमानी ?
आ जाओ मेरे आँगन में !
नाचो तो सखि मेरे मन में !

आती हूँ रे , आती हूँ मैं !
फूलों का रस लाती हूँ मैं !
मै भी पीऊँ , तुम्हें पिलाऊँ ;
मेरे प्यारे , बलि-बलि जाऊँ !

हाँ , हाँ आओ , जल्दी आओ !
बैठ तनिक तो गुनगुन गाओ !
कहाँ तुम्हारा घर , सुकुमारी ?
क्या खाती - पीती हो प्यारी ?

खाती हूँ पुष्पों का परिमल ;
पीती झरनों का मीठा जल !
रहती हूँ मैं कुञ्ज - भवन में ;
सोती जाकर किसी चमन में !

कैसी हो तुम भोलीभाली !
मचल रहीं यों डाली - डाली !
जी करता है , तुम्हें बुला लूँ !
खेलूँ - गाऊँ ; हँसूँ - हँसाऊँ !

कैसे सुन्दर पंख तुम्हारे !
आँखों को लगते हैं प्यारे !
क्या अनमोल तुम्हारी सूरत !
सोने की जैसे हो मूरत !

और , तुम्हारा यह मुसुकाना ;
मान - मनौती , हँसना - गाना !
मैं तो कभी न कहने जाती ;
फिर तुमको क्यों ईर्ष्या आती ?

ईर्ष्या नहीं , अरी सुकुमारी ;
सचमुच तुम त्रिभुवन में न्यारी !
रंग - बिरंगी शोभा प्यारी !
पा सकता है कौन तुम्हारी ?

मेरे इस गुड़िये को देखो !
मन ही में तुम जरा परेखो !
आओ , इससे कर दूँ ब्याह ;
फिर तुम बिचरो बेपरवाह !

बस , अब जो हो ली , सो हो ली !
करो मुझीसे यों न ठठोली !
लो , मैं चली ; हँसो तुम अपना !
हो जाऊँगी फिर मैं सपना !

आह प्रिये , मत जाओ , रह तो !
मुझसे रूठ गईं क्यों , कह तो !
लो , अब तुमसे कुछ न कहूँगा !
जान - बूझकर अजस न लूँगा !

जाने दो वे बातें रानी !
कोई - सी हाँ, कहो कहानी !
बैठो, इस तरु की टहनी पर !
और, सुनूँ मैं ध्यान लगा कर !

कौन कथा मैं तुम्हें सुनाऊँ ?
कैसे मैं तुमको बहलाऊँ ?
तुम - सी पढ़ीं न कभी किताबें !
तुम - सा ज्ञान कहाँ से आवे !

अरे, अभी तुम निकट बुलाते !
पकड़ जभी तुम पर हो पाते,
बाँध डोरियों से मेरा तन,
मुझे उड़ाते हो तुम वन वन !

ना - ना, अब मैं कभी न आती !
तुमको अपना नाम बताती !
खेलो तुम, जाओ अब सत्वर !
मैं भी उड़ जाती अपने घर !

एक पल

उस दिवस कुछ अनमनी-सी मैं निकल
जा रही थी चंचल पद घर से कहीं ;
सुन पड़ा सुकुमार कण्ठस्वर विकल -
'एक पल क्या आप ठहरेंगी नहीं ?'

'एक पल !' हाँ, एक पल, 'है काम क्या ?'
शीघ्रता से, चौक कर, मैंने कहा !
'मधु नहीं, जल ही, न हो विश्राम क्या ?'
बोलते देखा, युवक वह रुक रहा !

स्तब्ध ! शीतल हो गया मेरा लहू,
प्रश्न मेरे लिये बिल्कुल था नया !
कुछ न सूझा मुझे उत्तर, क्या कहूँ ?
आह भर कर वह अभागा रह गया !

'एक पल !' मैं सोचती हूँ एक पल,
एक पल ही में समाया विश्व है !
एक पल पहले जिसे पड़ता न कल,
एक पल के बाद ही वह निःस्व है !

एक पल ! कहते मधुप, रुक तो प्रिये !
एक पल ही इन निकुंजों में जरा !
रखा तेरा अधर-रस जिसके लिये
अब, पिपासित देख, वह जाता मरा !

अश्रु सुस्मिति, सृष्टि-लय, जीवन - निधन
एक पल ही का करुण व्यापार है !
दुःख - सुख का एक पल ही लय-रुदन !
वर्ष मिथ्या, एक पल ही सार है !

एक पल का सहज सुख ही भस्म कर
डालता उर वह्नि में सन्ताप की !
एक पल का पाप ही रे जन्म भर
काटता प्रतिमूर्ति बन अभिशाप की !

जो न उठती एक पल की यों लहर ;
जग कभी होता न यह निरुपाय तो !
वेग सर का एक पल जाये ठहर,
एक पल यह सृष्टि - क्रम रुक जाय तो !

बैठती हूँ जब कभी एकान्त में ;
हाय अब भी याद आ जाती वही !
गूँज उठता है हृदय के प्रान्त में —
'एक पल क्या आप ठहरेंगी नहीं ?'

५०८

क्या कह दूँ तुमसे आज, प्रिये ?
कर उन दिवसों की याद बहुत
आती है मुझको लाज प्रिये !

वह प्रथम-मिलन का स्वर्ण-काल ;
था सुप्त विश्व - मानव विशाल ;
सावेग चुम्बनों से मैंने
जब लाल लाल कर दिये गाल !

थीं खीझ उठी तुम रीझ - रीझ
भी, कर विमान का व्याज प्रिये।
क्या कह दूँ तुमसे आज, प्रिये ?

मन में क्या - क्या जानें न सोच ;
मेरा गाढ़ालिङ्गन विमोच ;
थीं बैठ गई तुम एक ओर
गठरी सी- सिकुड़ी ; ससंकोच !

उस समय व्यर्थ - से हुए सभी
वे समझाने के काज प्रिये !
क्या कह दूँ तुमसे आज, प्रिये ?

क्यों प्रणय - दीप तव ज्योतिहीन ?
मानाभिमान में अति - प्रवीण !
अब क्यों होते विह्वल - चंचल
सुकुमारि, तुम्हारे प्राण दीन ?

आयीं अनङ्ग - मन्दिर में अब
क्यों सजा रभस का साज प्रिये ?
क्या कह दूँ तुमसे आज प्रिये !

चल दिया कहीं यौवन अचेत ;
लो, सेंतमेंत ही असंकेत !
पहुँची ले अब तो जरा हाय,
जर्जर तन, हतबल, केश श्वेत !

हो गया कहानी ही तो वह
सपनों का मोहक राज प्रिये !
क्या कह दूँ तुमसे आज, प्रिये ?

५०९

रूप - राशि की ज्वाला से—
सँभल - सँभल कर चल मन मेरे,
बालापन की ज्वाला से !

लाखों बार तुझे समझाया ;
लेकिन तू न राह पर आया !
खेल न चपल शलभ - सा दीपों
की इस मोहन - माला से !

सुन्दरता है सुलभ न इतना !
समझ रहा मन में तू जितना !
यहाँ प्रणय का वृन्त झुलसता
है विस्मृति के पाला से !

मत कह इसको मादक हाला !
कुटिल हलाहल यह तो काला !
सोच - समझ कर उलझ सदय,
सौन्दर्य - सुरा के प्याला से !

५१०

मैं रहता अनुपस्थित जब, तुम नाथ ! यहाँ पर आते हो ;
जाते हो, पर, रूठ चले तुम ; पता न मेरा पाते हो !
तुम्हें ढूँढ़ने चलता हूँ जब मैं, मिलते हो कहीं नहीं !
खो देता हूँ मग ही में मैं आशाओं को रही - सही !
प्रिय, इस आँख-मिचौनी का कब बतलाओ टूटेगा तार ?
कभी मिलोगे भी या यों ही धोखा तुम दोगे प्रतिबार !

५११

कितना समझाऊँ प्रिय मन ?
यह न स्नेह का सरस सुमन !

लखते ही छवि - परिमल ;
हो उठते चंचल - चंचल ;
यह न प्रेम का पथ उज्वल ;
एक वासना ही केवल !
काँटों से आच्छादित वन !
कितना समझाऊँ कल मन ?

क्या यही चाहते हो बस ?
अधरों का मधुरामृत - रस !
नयनों का प्रिय मदिरालस ;
दर - परस , मज्जन , हँस हँस !
अहि - फण रे यह कटु अहिफण !
अब क्या समझाऊँ कल मन !

तुम नित्य देखते हिल - मिल ,
हँसते जो वन में खिलखिल !
पौधे ये रज में तिल - तिल
मिल जाते आखिर झिलझिल !
क्षणभर यौवन के क्षण !
कितना समझाऊँ अब मन ?

५१२

विकच बचपन ही मेरा धन ;
सरलपन ही स्वर्णाभूषण !
न जीवन में संघर्षण ,
वासना में दर्शन ;
न नयनों में आकर्षण !
रोम लतिका-हर्षण !
अपरिचित बिछुड़न , पुनर्मिलन ;
विपुल - पुलकावलिकृत सिहरन !
न प्राणों में आक्रन्दन ,
शिराओं में कम्पन ;
न वाणी में रस - वर्षण ;
अधर पर स्फुटस्फुरण ;
न यौवन - सुरसरि में मज्जन ;
कपोलों पर लज्जा - व्यञ्जन !
मुक्त विहरण ही मधुवन ,
स्नेह - पुलकित बन्धन ;
कपीतन - सा नूतन तन ,
उपल मणि, तृण कंचन ;
आप ही हँस , रो-रो क्षण - क्षण ;
प्रफुल्लित रहता है कल मन !

५१३

जीवन का यह नलिन - पुलिन !
अमलिन है वैभव - सरिता पर
दो ही दिन—केवल दो दिन !

रोते नयनों में जल भर - भर ,
विरहाहत सम्पुट - गत मधुकर !
असफल आशा के वृन्तों पर
गिनगिन कर पलपल छिनछिन !

इसीलिये तो किरण कह रही !
इन लहरों में व्यर्थ बह रही !
सजनि , कंटकाकीर्ण जीर्ण यह
मरीचिकावृत विजन - विपिन !

५१४

यह मन्दिर ही क्षण भर, नश्वर!
मुग्ध, देवता तो तेरा है
अजर-अमर, शाश्वत-सुन्दर!

यह उपासना कैसी तेरी?
लगा रहा बाहर ही फेरी!
हाय, छोड़ अन्तर-प्रतिमा को
भूल पड़ा किसकी छवि पर?

भीतर तो घन तम है छाया;
गलित गन्ध का जाल बिछाया!
बाहर क्यों? किसलिये सँजोता
मनहर दीपमालिका प्रियवर?

घट-घट में वह राम रमा है;
करता तू मठ-परिक्रमा है!
मिथ्या! फूलों से किसकी तू
पूजा करता है निशिवासर?

आओ, अन्तरतम में प्यारे!
ये तो बाह्य-रूप हैं सारे!
इष्टदेव तो भीतर तेरे
बैठा है शुचि प्रेम-रूप धर!

५१५

कलिका के ये कोमल प्राण—
अन्तराल से रह रह किसका
करते हैं आतुर आह्वान?
उल्लासमयी, परिहासमयी,
नव रूप वेश, नव वासमयी;
खुली-अधखुली, सहमी-सकुची;
लखती नव जीवन-अभियान!

यह वय, यह लय; इतनी चंचल!
नव किसलय में लिपटी अविकल!
नव वसन्त के नव विहान में
फूट-फूट पड़ती मुसकान!

भटक रहे गन्धाकुल मधुकर,
पी उत्कट पराग-मद-निर्झर;
गाते किस प्रस्तुत अतीत का
विस्मृत-सा शैशव-आख्यान;
कलिका के ये कोमल प्राण!

५१६

यह प्रस्तर हिय हिल न सकेगा!
कर न व्यर्थ तप रे कोमल मन;
तप का फल प्रिय, मिल न सकेगा!

पावन-प्रेम-पराग-पिपासा;
निष्फल मधुप-निकर की आशा!
यदि वसन्त आया ही तो क्या?
यह करील-तरु खिल न सकेगा!

विफल मनोरथ होंगे तेरे,
इस पथ में कंटक बहुतेरे!
लाद लिया क्यों? तुझे स्नेह का
हार-भार यह झिल न सकेगा!

उल्लास

सुन्दरता अभिशाप विश्व का; सुन्दरता वरदान प्रिये!

५१८

विफल रे परदेसी का प्यार !
कितना अस्थिर है उसका यह
छोटा — सा संसार ;
विफल रे परदेसी का प्यार !
उसका अपना लक्ष्य निराला ,
जिसकी धुन में वह मतवाला ;
फिर किसको पहनाये माला
जीवन — निधियाँ वार ?
विफल रे परदेसी का प्यार !
सरिता - सा उसका पथप्रवाह ;
क्यों पुनः किसीकी उसे चाह ?
चलता रहता , बहता जल-सा ,
निर्मल, कोमल , उज्वल , चंचल ;
तट पर वह रुके कभी कैसे ?
हो जाय न दूषित मन - परिमल !
दो क्षण की है उसकी दुनिया ,
दो ही क्षण का उसका प्यार !
फिर कैसे वह किसके उर पर
रख जावे दो क्षण का भार ?
इसीलिये तो वह बहता रे ,
बहता जगती के आर - पार !
अपनी लघु सीमा में सीमित
कर छोटा - सा संसार - सार !
इसीलिये तो — व्यर्थ प्यार ;
रे, परदेसी का प्रेम प्यार !

५१९

पल-पल उपल-समान गल रहा !
यह संसार असार ; प्यार
करुणा का कोमल वृन्त मल रहा !
ममता स्नेह , वर्तिका माया ;
बलती इस प्रदीप की काया !
जिसमें पड़ कर जग - जीवन के
शलभों का हत पुंज जल रहा !
सरिता की लहरों - सा चंचल ,
अस्थिर रे सुख - दुख का अंचल !
नियति - चक्र दुर्दम्य सभीका
दुर्बल मानव - हृदय दल रहा !
व्यर्थ यहाँ चिर जीवन - आशा !
गलत प्रेम की यह परिभाषा !
वञ्चक जग का स्पष्ट ढोंग यह ,
मुझको अब बेतरह खल रहा !
जीवन और मृत्यु का नर्तन ;
शैशव , यौवन , जरा - विवर्तन !
कौन कहे , कबसे यह आवा -
गमन - पथिक अविराम चल रहा !

५२०

उर की प्रलयंकरी आग में किस सुहाग की घड़ियाँ सोतीं ?
पीड़ाओं में अरे , कौन-सी सुख की ये क्रीड़ाएं होतीं ?
दारुण ज्वाला में भी कैसी शीतलता का यह आभास ?
पुलक-स्पर्श कर गया ग्रीष्म में भी क्यों मलयानिल का वास ?
बेकलियाँ बन गईं हृदय की किसके पथ की कोमल कलियाँ ?
किसके स्वागत-हित नभ की जल उठीं आज ये दीपावलियाँ ?

दिग्भ्रम

विपिन - विपिन में प्रात - पुष्प - परिमल-सा
यह किसका सौन्दर्य - जाल छितराया ?
घूम रहा सर्वत्र कौन पागल - सा
अपने ही नव - यौवन पर इतराया ?
किसकी उत्कट रूप गन्ध पर मादक—
फिरता व्याकुल मलय - पवन बौराया ?
क्यों जग - जीवन के नयनों पर अपलक
माया का यह अन्धकार है छाया ?
जरा बता तो दो करुणाकर, चंचल !
कहाँ मिलेगा मुझको मेरा प्यारा ?
भव की तुङ्ग तरङ्गों में उच्छृङ्खल
तृण-सा ही अब होगा कौन सहारा ?
देख रही क्या सागर में झुकझुक कर
अम्बर की वह निलय-नीलिमा नग्ना ?
किस झंझा के वज्रघात से रुक कर
तरणी मेरी हुई अतल - तल - मग्ना ?
प्राची से सन्देश कौन वह लेकर
आई रक्तिम कनक - किरण की माला ?
अभ्यन्तर में रह - रहकर प्रलयंकर
उठती है यह कैसी भीषण ज्वाला ?
चले मुदित - मन मेरे साथी सारे ;
उठा ; देखलो, वह दो दिन का मेला !
कोई नहीं यहाँ पर—मैं मनमारे
जाती पथ में ; मेरा हृदय अकेला !
किस वनदेवी ने निर्जन में इतना
अलस - भाव है प्रचुर - प्रचुर फैलाया ?
एक पुलक - इङ्गित ही में यह कितना
उमड़ आज उन्माद हृदय में आया ?
अरे, दयाकर याद दिला दो कोई
बीती बातें जीवन की दीवानी ;
क्योंकर मैंने सुध - बुध सब की खोई ?
भूल रही हूँ अपनी करुण - कहानी !
विष पी - पी कर प्राण बने मतवाले ;
अंग - अंग से छलकी - यौवन - लीला !
ऊपर नाचें बादल काले - काले ;
नीचे मैं केकी निकुंज - परिशीला !
अमर रहेगी यह हालाहल - शाला ;
अन्तरिक्ष का संध्या - तारा न्यारा !
रोको मत मुझको, मैं सौरभ - बाला
आज बहा दूँगी जग में मद - धारा !
कहाँ लिये जाते हो मुझको भाई ?
इस सुतीक्ष्ण कुश-कंटक-पूरित पथ से !
किस निर्मम ने हाय दिखाई खाई
यों उतार वैभव के कंचन - रथ से !
होता रोदन आर्त्त - नाद यह कैसा ?
व्याप्त वेदना वसुधा के कण - कण में !
हाहाकार करुणतम कभी न ऐसा
मुझको पड़ा सुनाई निज जीवन में !
धकधक कैसी धधक रही प्रान्तर में
यह विनाश की चिता गलित दुर्गन्धा ?
इस रौरव के दाह - प्रवाही सर में
डूब रही है मनुजात्मा अनुबन्धा !
नरक ! अरे, यह घोर तमिस्रा-धारा ;
प्रहरी अग्नि - द्वार पर क्रूर निशाचर !

वह सम्मुख ही दीख रही दुख-कारा !
आह, न ठेलो उसमें हे करुणाकर !

जलती हूँ मैं अपनी ही ज्वाला से ;
नस-नस में अँगड़ाता उग्र हुताशन !
एक घूँट की बन्दी हूँ प्याला में,
लादोगे क्यों पुनः किसीका शासन ?

किसकी छवि को लखकर मेरे मन में
आग लगन की ऐसी दारुण जागी ?
मुग्ध मृगी-सी मैं कानन-कानन में
घूम रही सुन किसकी तान अभागी ?

भूल चुकी हूँ जीवन की सुख-निधियाँ ;
किसी अपरिचित पथ में मोह-विघूर्णित !
कीलित-सी हैं अन्तर की गति-विधियाँ ;
नियति-कुलिश से टकरा चूर्ण-विचूर्णित !

पतित हो रही उल्का-सी चकरा कर
धराकक्ष की ओर, अरे ! अम्बर से ;
शीघ्र रोक ले कोई मुझको आकर
सहसा अपने ग्रह-से विस्तृत कर से !

किस जादू से हुआ हाय, छूमन्तर
क्षण में मेरा स्वर्ग — स्वर्ग का कोना ?
एक बार ही जरा मन्द मुसका कर
छुपा कहाँ वह छलिया श्याम-सलोना ?

मुझे बता दो डगर पिया की ; वन में
भूल गई हूँ तरु-कुंजों की गलियाँ !
अरे, कौन मायावी आकर क्षण में
लूट ले गया राग-भरी रँगरलियाँ !

सिन्धु-पार उस राक्षस की नगरी में
गया कभी का राजकुमार अकेला ;
युग-युग बीत रहा है घड़ी-घड़ी में ;
क्या जानूँ, कब लौटेगा अलबेला ?

आज मचा है मेरे अन्तःपुर में
झंझा का उत्पात, प्रलय की क्रीड़ा !
किसके विष-दशनाघातों से उर में
होती शत-शत वृश्चिक दंशन-पीड़ा !

नित्ययौवना लहरा कर पट झीने
रहती कौन वहाँ पर दानव-बाला ?
किस अलका की मायावती परी ने
मेरे मानस को छलनी कर डाला !

कहाँ छिपा है ? किस प्रदेश में, बोलो,
मेरा जीवन-धन वह भोला-भोला ?
होगी अवधि पूर्ण कब ? खोलो, खोलो ;
प्रिय, अतीत का लौह-द्वार अब खोला !

मैं कुररी-सी रो-रो तारस्वर से
खोज रही हूँ किसको महा-अधीरा ?
तृण-तृण, पादप-लता, मृणाल-निकर से
पूछ-पूछ कर हारी विकल-शरीरा !

मधुकर-रव-गुंजित द्राक्षा-कुंजों में
बैठ बिताती मैं उदास दोपहरी !
विम्बित करती लवँगलता-पुंजों में
दुख-रेखा मैं अपने सुख की गहरी !

लाती एकाकिनी नित्य सर-तीरे
गूँथ-गूँथ कर माला, भर-भर डाली ;
पर, आकर पलकों को धीरे-धीरे !
लेगा झट-से मूँद कौन वनमाली !

शून्य दिशाएं, महाकाश भी सूना ;
वक्र-उदधि का चक्रवाल, ग्रह-मण्डल !

काल - दंष्ट्र - सा देखो क्षण-क्षण दूना
बढ़ता जाता मृत्यु - निशा का अंचल।

किस हिमकर के तरल स्पर्श से शीतल
सकुचाईं ये चम्पक की नव - कलियाँ।
छुईमुई के गालों से मृदु - कोमल
हाय, छुला दीं किसने चपल-उगलियाँ।

मैं चिर-व्यथिता, विकल-विरहिणी नारी
लगा आग आशा के स्वर्ण-सदन में,
भटक रही हूँ पदव्रज ही सुकुमारी
उपवन-उपवन, विजन-विजन, वन-वन में।

बैठी प्रिय की स्मृति में धुनी रमाकर
विरह - विदग्धा, संतप्ता यह दासी,
बतला दे तो कोई आज दया कर
कब लौटेगा घर मेरा वनवासी?

जनम-जनम तक विलपेगी दुख - कातर
चक्रवाक - सी यह हे अन्तर्यामी!
धो देगी भू को आँसू बरसा कर
हाय, कहीं यदि मिला न जीवन-स्वामी।

शरत्पूर्णिमा में हिमकर - शीकर - सी
बिछ जाती हूँ शुचि सिकतामय भूपर,
बना-बना छवि प्रियतम की सुन्दर-सी
तैराती सरसी - लहरों के ऊपर।

नित्य प्रेयसी के सँग उतर परेवा
मचल - मचल जाता मेरे आँगन में;
करूँ तुम्हारे चरणों की मैं सेवा—
मुझको भी ले चलो वहीं, उस वन में।

वातायन से उमड़ - उमड़ कर अहरह
आता खगकुल - कलरव साँझ - सबेरे;
क्या जानूँ, वह कौन भावना दुःसह
भर देता है अन्तरतर में मेरे।

विकल, पूछने जाती हूँ मैं सत्वर
पथ में जाता कोई कहीं बटोही।
कब आवेगा प्रियतम मेरा सुन्दर?
कब लौटेगा मेरा वह विद्रोही?

५२२

तजकर असीम का मुक्त - चरण,
खोकर अम्बर का नील - सदन;
मैं ढुलक - ढुलक पड़ता जग में;
किस पुलक-स्पर्श से अग-मग में!
आँसू की बूँदों - सा सहसा;
जाता पल-पल बरबस बह - सा!

सादर सुहासिनी बिठला कर
नव - गन्धवाह के दोला पर,
हैं मुझे झुलाती किन्नरियाँ;
सुकुमारी सुरपुर की परियाँ!
ऊपर से नीचे आ सहसा;
जाता कुछ कानों में कह - सा!

पड़तीं रिमझिम-रिमझिम फुइयाँ;
चुभतीं तन में विष की सुइयाँ!
जग के आँगन में प्रकृति - परी;
लो, नहा रही वह खड़ी - खड़ी!
केकी - रव कर्कश सुन सहसा;
जाता मैं चकित नयन रह - सा!

अनाश्रित विहंगम

उड़ चला तो; पर कहाँ जाऊँ कहाँ उड्डीन होकर?

सरला

सरला एक सरल बाला थी ; स्नेह - भरी , सुकुमारी थी !
माँ - बापों की बड़ी दुलारी ; पुर - परिजन की प्यारी थी !
गोरे - गोरे गाल , कमल - लोचन पर हरिणी वारी थी ;
बिम्बाफल - से अधर , चमकते दाँतों की छवि न्यारी थी !

सावन में जब काली - काली बादरिया मँड़राती थी !
मोर नाचते , चातक रोते , कोयल शोर मचाती थी !
हिलमिल सखियों के सँग वह पावस का स्वागत गाती थी ;
मानवता के विगत स्वर्ण-युग की वह याद दिलाती थी !

खिला नवल फूलों को वन में आता था जब कुसुमाकर ,
सरला उपवन में आ जाती हाथों में डाली लेकर !
भर - भर फूलों से डाली को घर वापिस आ जाती थी !
और उन्हें शिव - मन्दिर में जा, चढ़ा, बड़ा सुख पाती थी !

नहीं किसीसे लड़ती थी वह , पथ में कहीं झगड़ती थी !
किसी बात के लिये न यों ही माता से हठ करती थी !
जो कुछ मा दे देती , उसको बाँट बहिन से खाती थी !
बिना किसी आग्रह के खुद ही विद्यालय नित जाती थी !

सुन्दरता के साथ सादगी के अपूर्व सम्मेलन में -
वह फूलों - सी खिल पड़ती थी प्रतिक्षण, जीवन के वन में !
फूलों के ही आभूषण-गण , शोभित थे उसके तन में ;
फूलों - सा ही मन , फूलों का-सा ही सीधापन मन में !

वातायन से आती ज्योंही प्रथम-प्रथम किरणों की कोर ;
छूते प्रात - समीरण उसके स्वप्निल सुषमाँचल का छोर !
उधर चौंक उठती वह सुनकर विहगों का अविरल-कल रोर !
इधर सप्रेम सारिका कहती - 'उठ री' सरले ! आया भोर !

तितली-सी चंचल थी , परियों-सी थी वह कोमल , सुन्दर !
चिकने , काले बाल सदा ही खेला करते थे मुख पर !
चालों में कुछ आकर्षण ; बोली में मिसरी घोली थी !
सभी प्यार करते थे उसको ; सबकी वह हमजोली थी !

हँसना ही सीखा था उसने ; नहीं जानती थी रोना !
तुतली में सौरभ का संचय , पुतली में जादू - टोना !
सरल-स्नेह से प्लावित उसके उर का था कोना-कोना !
कल्लोलों से बरस - बरस - सा पड़ता राशि - राशि सोना !

कभी बीनती थी महुओं को , कभी रहर के पीले फूल !
कभी मटर की मधुर छीमियाँ ले आती थी तोड़ समूल !
कातिक में कल हरसिँगार के नीचे लगता था मेला !
मकई के खेतों में होता आँखमिचौनी का खेला !

चम्पा उसकी बूआ - रानी, जूही सखी - सहेली थी !
रजनीगन्धा के सँग तो नित करती वह रँगरेली थी !
'सामा' को कहती वह मौसी, 'कोदो' को वह नानी थी !
धानी धानों के हित तो वह भरती रहती पानी थी !

गाँवों के आनन्द - विपिन में यों उसका जीवन फूला -
बना हुआ था सब लोगों के मानस में पावस - झूला !
गरल नहीं, पीयूष - वर्षिणी उसकी चंचल चितवन पर -
अखिल लोक का राज्य निमिष में कर दे यह कवि न्योछावर !

५२५

सखि, देख सुधा की धारा !

यह बरस रही जो पल-पल अम्बर - चर हिमकर - कर से ;
मृदु मर्मर - स्वर से निर्झर झरते ज्यों गिरिवर पर से !
तिरता-फिरता , उतराता जिसमें वसुधातल सारा !
सखि , देख सुधा की धारा ।

वह शुक्र, शुक्र ज्योतिर्मय उठ रहा क्षितिज के ऊपर ;
सप्तर्षि स्नान करते हैं प्रिय छायापथ में सुन्दर !
वह झलक रहा झल-झलमल निश्चल - विमूक ध्रुवतारा ;
सखि, देख सुधा की धारा !

निर्मल, निर्मेघ गगन में वह रे चाँदी का गोला ;
आ स्वर्गंगा के तट पर ज्यों ही घूँघट - पट खोला !
भर गया भुवन मन - मोहन उज्वल किरणों से प्यारा ;
सखि, देख सुधा की धारा !

सिहरीं अलियाँ , नवकलियाँ ; हँस पड़ीं पुलक स्पन्दन से !
बदली छवि, मन्द - समीरण वह आयी कदली - वन से !
अलसाई ले वल्लरियाँ तरु का सुकुमार सहारा ;
सखि, देख सुधा की धारा !

उल्लोल वीचि - मालाहत , दूरागत , नत , क्षतविक्षत ,
होतीं मरीचियाँ शतशत खण्डों में प्रतिक्षण परिणत ;
लद गया फेन - फूलों से सरिता का सुभग किनारा ;
सखि, देख सुधा की धारा !

५२६

घंटा औ घड़ियाल बजा कर,
धूप - दीप आरती सजा कर,
काशी या कि त्रिवेणी - तीर,
नित्यस्नायी, शुद्ध - शरीर;
पूजा करते विमल चित्त से
शैव, शाक्त अथवा ब्राह्मण;
मैं खिल उठता—यह तो मेरे
प्रियतम का ही आराधन !

'अल्ला-हो-अकबर'-स्वर-गुंजित,
काबे में, मस्जिद में पुंजित;
अनुयायी प्रभु के लेखों के,
शिया, सुन्नी या शेखों के,
जब लाखों सिर उठते - गिरते
एक साथ ही—एक समान;
मैं खिल उठता, यह तो मेरे
प्रियतम का ही पावन ध्यान !

नभ चुम्बी गिरजे में भारी,
एकत्रित होकर नर - नारी;
प्रति आदित्य-वार को निर्मल,
मन से करते जब अविचंचल,
पादरियों के मुख से यीशू के
उपदेशामृत का पान;
मैं खिल उठता, यह तो मेरे
प्रियतम का ही है गुण-गान !

नम्र, नम्र-शिर, दया - निधान,
निरभिमान, गैरिक - परिधान;
भर प्रदत्त भिक्षा झोली में,
कोई बौद्ध मधुर - बोली में;—
कहता जब भगवान बुद्ध का
राग, विराग, ज्ञान - निर्वाण;
मैं खिल उठता, यह तो मेरे
प्रियतम का ही महिमाख्यान !

मुसलिम, आर्य, ब्राह्म, ईसाई;
सभी परस्पर भाई - भाई !
एक विश्वपति, एक कहानी;
एक - एक ईश्वर की वाणी !
वेद, उपनिषद, गीता, त्रिपिटक,
बाइबिल और कुरान - पुरान;
मैं पाता सब में अपने ही
प्रियतम का सन्देश महान !

५२७

अजर जरा के नश्वर क्षण !

ले लो जीवन-धन, यह अपना नव जीवन - साधन पावन;
पतझड़ की पीली - सी घड़ियाँ, आँखों का सूना सावन !
उज्वल केश, वेश भी उज्वल, उज्वल उर के भाव रतन;
शिथिल गात्र, शोणित हिम-शीतल, हीतल सकरुण, दुर्बल मन !

मुझे न देना फिर यौवन !

काले मन-घन-गण में क्षण-क्षण आशा-विद्युत का नर्तन;
धूसर - वर्ण स्वर्ण-कानन में मुक्ताकांक्षा का विहरण !
वह ललाट गौरव-नभ-चुम्बित, अभिमानी मतवाला मन !
हिमगिरि के उत्तुङ्ग श्रृङ्ग - सा श्वेत - दर्प-विस्फीत वदन !

ले आओ फिर भी बचपन !

अरे, वही मेरा भूला - सा भोला - भाला नन्दन - वन !
माता के चिर सजल हास से धुला हृदय का क्रन्दन-कण !
विधि के जग-प्रपञ्च-सा जीवों - उपजीवों का जन्म-मरण !
लौटा दो, फिर भी वह मेरा पारिजात - सा कोमल तन !

संकेत

जहाँ कल - अलकालय में बैठ
हिमानी करती हिम-शृङ्गार ;
वसन्तानिल ऋजु मलयज-स्निग्ध
सुरभि से भर देता भृङ्गार !
वहीं चुम्बन का चरम निदान ,
चलो, ले तुम भी मेरे प्राण ;

जहाँ छायापथ में राकेश
बिछा देता ज्योत्सना का हार ;
उतर कर करतीं वारि - विहार
स्वर्ग को सुन्दरियाँ सुकुमार !
वहीं अपनी पिछली पहचान ,
चलो, ले तुम भी मेरे प्राण ;

जहाँ करते तारक अभिसार
पहन किरणों का चिर-परिधान ;
निशा का बन जाता छवि-जाल
आप ही अपना मधु - उपमान !
वहीं सागर का ऊर्म्मिल गान ,
चलो, ले तुम भी मेरे प्राण ;

जहाँ स्मृति की तन्द्रा में मौन
सिहरता स्वप्नों का संसार ;
ढुलकते आँसू का सन्तप्त
हृदय ही बन जाता आधार !
वहीं नव-कलियों की मुस्कान ,
चलो, ले तुम भी मेरे प्राण ;

जहाँ वाडव बन छिपा अगाध
उदधि के उर का हाहाकार ;
सिसकता बन वंशी की साँस
क्षितिज का उत्तरीय प्रावार !
वहीं युग-युग की प्यास अजान ,
चलो, ले तुम भी मेरे प्राण ;

५२६

इतनी जिसकी कल्पना मधुर ;
कैसा होगा सच में वह उर ?
हँसते केतकी-कुसुम खिल-खिल ,
मधु-मलयानिल में जब हिल-मिल ;
द्रुम से किसलय का आकर्षण
खींचता मुझे प्रतिपल, प्रतिक्षण !
इङ्गित जिसका इतना सुन्दर ;
कैसा होगा सच में वह कर ?
सपने में छूकर तन क्षण - भर ,
रख अधरों पर सुकुमार अधर ;
मैं हो जाता बेसुध - विह्वल !
पावस का जैसे हो पल्वल !
स्मृति देती जिसकी इतना सुख;
कैसा होगा सच में वह मुख ?
रे कौन उसे कहता निष्ठुर ?
वह तो करुणा का नव - अंकुर ;
रहता मृदु गुंजित प्रेमातुर
नूपुर से निशिदिन अन्तःपुर !
इतनी जिसकी कल्पना मधुर ;
कैसा होगा सच में वह उर ?

कवि की मृत्यु

आज हुआ दिनमान तुम्हारा अधःपतित हे जर कवि !

स्वागत

क्यों आज चतुर्दिक नव उमङ्ग ! छाई है, छाई है बहार !
क्यों है रे इतनी चहल पहल ! यह उत्सव-रव मादक अपार !
क्यों उमड़ पड़ा मधु-स्रोत यहाँ कर जीवन-तरु को ओत-प्रोत ?
क्यों छू-छू, हिल-हिल, सिहरसिहर, फिरफिर जाती शीतल बयार ?
यह विभव-भूति का पुरा-केन्द्र; कर्मठ, उदार, शुचि, यशागार !
युग-युग से, वत्सर-वत्सर से ढो रहा ज्ञान - विज्ञान - भार !
हरती दुख-भय, सन्ताप-शोक, करती मृदु-मृदु कल-कलनिनाद-
बहती रे बहती गंडक की बस, पास - पास ही प्रखर धार !
आकर जिस जगह लखी मैंने जीवन में पहली बार रेल;
कितनों से परिचय हुआ और कितनों से पाया हेलमेल !
कैसे जाऊँगा उसे भूल ! वे दिन रे वे घड़ियाँ अमोल !
नव जीवन का वह स्वर्ण-प्रात, वह राग-रङ्ग, वह हँसी-खेल !
पुलकित उपवन के आल-बाल पाकर तव नव करुणा अनन्य;
गूँजा कल-तानों से क्षण में मानस का निर्जन-सा अरण्य !
इस सरस समागम से आगत, इस सरस्वती के आँगन में;
हो गये आज हम सब कृतार्थ, हो गये आज हम धन्य धन्य !
आओ, घर-घर में, बाहर में स्वागत के सारे सजें साज;
जीवन का नव सन्देश लिये आ जाओ हे अतिथि, आज !
स्वीकार करो 'पत्रं-पुष्पं', ठुकरा दो हिय से भूल - चूक;
आओ अपनी ही कुटिया में, रख लो सेवक की लुटी लाज !
स्वागत, अभ्यन्तर की समस्त अभिलाषाओं से नवीन;
प्राणों के कण-कण से मलीन, प्राणों के क्षण-क्षण से मलीन !
आओ, निज कृपा-दृष्टि-जल से लहरा दो सूखी हरियाली;
स्वागत, कुटिया में दीन-हीन, आओ, कुटिया में दीन-हीन !
भगवान करें, आवे ऐसा ही अवसर रे प्रत्येक वर्ष;
हम होकर यों एकत्र सभी कुछ सोचें, कुछ समझें सहर्ष;
यों ही शुभ स्वागत के स्वर में खिल उठे हमारी विमल तान !
हम आ-आ कर के मिलें यहाँ, मिल करें देश का नवोत्कर्ष !

सान्ध्य-गीत

पश्चिम-पयोधि - तट पर शीला सुलच्छिणी-सी !

५३३

तेरे प्राणों की प्यारी यह तेरी गोदी की श्यामा,
जननि, जानती हो क्या तुम, है इतनी क्यों वह अभिरामा ?
वन में इतने फूल खिले हैं, इतना है सौरभ छाया !
फिर भी मधुकर सरसिज पर ही लुभा गया क्यों ? बौराया !
उसे मिली है तेरे कोमल अंचल की करुणा - छाया,
सब से बढ़ पायी है उसने तेरे आँसू की माया !
छिपने को वक्षस्थल तेरा, बाहु - वल्लरी का उपधान !
उस पर तेरा प्यार और पय अमृत सदृश, मधु चुम्बन दान !
किसमें है क्षमता करने की तेरी ममता की समता ?
इसीलिये तो अभिरामा यह तेरी मूर्तिमती ममता !

५३४

जीवन की इस महानिशा में सखि, क्यों तू आई – आई ?
प्राणों की मृदु पंखुड़ियों पर परिमल - सी छाई - छाई !
मुसकाई दुख - घनावरण में तडिल्लता बनकर सुन्दर;
पतझड़ के मर्मर में किस युग की मधु स्मृति लाई - लाई !
अँगड़ाई ली अश्रुकणों के तरल तल्प पर पीड़ा से;
बता, कहाँ तूने प्रियतम की छवि - छाया पाई - पाई ?
यह मेरी विषशाला कैसे आज, तुझे भाई - भाई ?
जीवन की इस महानिशा में सखि, क्यों तू आई - आई ?

५३५

मेरे मालञ्च - शयन पर
मधुबाले मेरी, सो जा;
निशि - नयनों में अपने ही
सपने बन सरले, खो जा !
अधरों में बाल - जगत के
भर दे विद्रुम का विस्मय !
रोमाञ्चित कर दे छू - छू
श्वासों से किसलय-किसलय!
वासा में सुरभि - प्रकम्पन,
कवरी में अमृत - पिपासा;
कूका पिक; तरु-तरु पर लो,
रोओं-सी सिहरी आशा !

फिर खींच भाल पर अलि, मेरे
निर्मम भावी का अश्रु - लेख !

जा, नाच न
तू नूपुर का कल –
हाँ, नूपुर का कल - ताल दिये
फैला मत तट पर गुंज - पुंज ;
मत मुखर कनक - कर-कंकण से
शिंजित कर तरु-तरु कुंज-कुंज !
इस संन्यासी के
क्या विजयी हो सक
हो रहा त्याग का र
इस वीतराग की को
उर में यह पूजा - प्रतिमा जो ,
अब और चाह क्या? क्या उछाह ?
क्यारियाँ स्नेह की झुलस चुकीं ;
मैं सह न सकूँगा अग्नि-दाह !
खो चुका पुरातन प्रेम —
अब वह न कामना की
जा, किसी विपञ्ची में
इस प्रणय - प्रपञ्ची की

अबोध

मैंने तो बस, एक बार ही देखा तेरी
पर, निष्ठुर ! सारा तन ही तूने डाला झ
यों झकझोर कि देखो, अब तक काँप रहा हिय
लगन भगी बेतरह; हुआ मन कुंठित यह बे

कुसुमों के उर में आग लगी ,
जलता सौरभ का नन्दन-वन ;
इस अग्निचिता में सम्भव हो
कैसे मधुपों का प्रिय - गुंजन ?
इच्छाओं के अवसान - काल में
लाये तुम क्यों उद्दीपन ?
क्षण भर ही जीवन, संध्या के
अम्बर में चित्र-विचित्रित घन !
अब आया है उन्मन वसन्त ;—
जब मेरे सम्मुख फैला यह
संसार हुताशन का अनन्त !

उठतीं ज्वालाओं की लहरें ,
छू आतीं चंचल क्षितिज-छोर ;
प्राची से उमड़, प्रतीची - तक
यह पावक—पारावार घोर !
मलयानिल पहुँच नहीं सकता ,
सन्देश न उत्सव का अशेष ;
उस वन का मैं निर्वासी हूँ ;
वह मेरे प्रिय का एक देश !

कथन

मैंने कहा, मुझ में जो कुछ भी विशेषता है ,
उसका नहीं मैं लेश - मात्र अधिकारी हूँ ।
फूल भी तुम्हारे और कंटक तो तुम्हारे ही ;
मैं तो देव - मन्दिर का केवल पुजारी हूँ !
यश हो तुम्हें ही और निन्दा भी तुम्हें मिले ,
कल्पना के कानन का मैं चिर - विहारी हूँ ,
सौरभ - प्रसारी मन्द - मलयानिल मंजु मैं ;
चित्रकार मेरे तुम , तूलिका तुम्हारी हूँ !

वीतराग

प्रिये, प्रिये !
मेरे एकान्त तपोवन में
तू क्यों आई शृंगार किये ?
हाँ, मन - मोहन शृंगार किये ,
मोती से अलकों को सँवार ;
चरणों में तरल महावर मल ;
सज अङ्ग - अङ्ग में अलङ्कार !
उतरी नवमेघ - परी - सी इस
शारद सन्ध्या में छवि रसाल ;
फेंकती उर्वशी-सी दिशि-दिशि में
वशीकरण का मोह - जाल !
उड़ती श्लथ केश - कलापों से
मन्दार-मुकुल की विकल गन्ध ;
मधु रूप - सुरा प्रचुरा पी - पी
बन गया चराचर मत्त अन्ध !
रति, तेरे इंगित पर तत्पर
ये कोकिल, ऋतुपति औ अनङ्ग ;
आये इस कानन में करने
किस विमल-व्रती का तपो-भङ्ग ?
प्रिये, प्रिये !
वह कौन देश ? किस ओर चली ?
कह, कहाँ आज तू मुझे लिये !
हाँ, कहाँ आज तू मुझे लिये
जा रही अनाहत अनाहूत ?
इतना आकर्षण बिखराया
क्यों इस वन में हवि-धूम-पूत ?

मैं तपोभ्रष्ट; साधना स्खलित ;
खोजूँगा कैसे किसे अज्ञ ?
परिपूर्ण करेगा कौन सजनि ,
आ इस ऋत्विज का होम यज्ञ ?
तेरे स्मित - विकसित नयनों में
सुन्दरि, यह कैसा अन्धकार ?
इस महामिलन की वेला में
लायी चिर-नीरव पुलक प्यार !
मेरे तृष्णाकुल अधरों पर
बजती विष की वंशी उदास ;
किस विरही ने भर दी ऐसी
संहार - कारिणी प्रलय-प्यास !
प्रिये, प्रिये !
मत पिला गरल, कर क्षमा हाय ,
इस नरक-लोक में कौन जिये ?
हाँ, नरक-लोक में कौन जिये ;
इस रक्त-क्षुधा से क्षिप्र प्राण !
सन्तप्त हृदय, विष-तिक्त-कण्ठ ;
अवरुद्ध अपरिचित व्यथा-गान !
पल - पल जलता पल्लव -पल्लव ;
किसलय-किसलय में आग लगी !
मेरे रहस्य जीवन - पथ में
दुख-दावानल की ज्वाल जगी !
तू विधि की छलनामयी सृष्टि
सौन्दर्य - काम की स्वर्विभूति !
अनिमेष देखती किसको ? यह
कैसी तेरी सुषमानुभूति ?
यह मर्मर - वन का आराधन ;
तापस - कुमार की व्यथा देख !

फिर खींच भाल पर अलि, मेरे
निर्मम भावी का अश्रु - लेख !

प्रिये, प्रिये !
जा, नाच न मेरी पर्णा में
तू नूपुर का कल - ताल दिये !

हाँ, नूपुर का कल - ताल दिये
फैला मत तट पर गुंज - पुंज ;
मत मुखर कनक - कर-कंकण से
शिंजित कर तरु-तरु कुंज-कुंज !

इस संन्यासी के प्रति तेरा
क्या विजयी हो सकता प्रयास ?
हो रहा त्याग का राग यहाँ ;
इस वीतराग की कौन आस ?

उर में यह पूजा - प्रतिमा जो ,
अब और चाह क्या? क्या उछाह ?
क्यारियाँ स्नेह की झुलस चुकीं ;
मैं सह न सकूँगा अग्नि-दाह !

खो चुका पुरातन प्रेम - न्यास ;
अब वह न कामना की उमङ्ग !
जा, किसी विपञ्ची में भरना
इस प्रणय - प्रपञ्ची की तरङ्ग !

अबोध

मैंने तो बस, एक बार ही देखा तेरी ओर ;
पर, निष्ठुर ! सारा तन ही तूने डाला झकझोर !
यों झकझोर कि देखो, अब तक काँप रहा हिय सारा ;
लगन भगी बेतरह; हुआ मन कुंठित यह बेचारा !

उस तिरछी चितवन का बोलो, तो क्या अर्थ लगाया ?
किसने उन संकेतों का ऐसा मतलब समझाया ?
रह कर इतने निकट-निकट भी मुझे नहीं पहचाना ;
मेरे मूक इशारों का प्रिय, कुछ भी मरम न जाना !

कैसे कह दूँ ?—की है तूने कितनी भीषण भूल !
जनम-जनम की मौन साधना को कर दिया अमूल !
बेध दिये धोखे से—निर्ममता से हिय में हूल !
आज, लाज की भली कली में दरस-परस के शूल !

अभिलाषा, आशा नित-नूतन, पावन-प्रेम-पिपासा ;
अन्तर्धान हुई अन्तर की उत्सुकता - जिज्ञासा !
भरे हुए थे मंजूषा में घनानन्द भरपूर ;
तूने तो कर दिया आरसी को ही चकनाचूर !

हाय, सँभलने का भी तूने दिया न टुक अवकाश ,
बस, निरीह हरिणी पर फेंका आलिङ्गन का पाश !
छू दी नव-कलिका की आँचर सुध-बुध खोते-खोते ;
मेरी तो बँध गईं हिचकियाँ उस दिन रोते-रोते !

आज अचानक ही आया तू घर में क्यों अलबेले ?
हँस - हँस कर ये खेल अनोखे तूने कैसे खेले ?
जतला देता जो पहले, तो मैं भी ना सुकुमार ,
हो जाती इन प्रतिकारों - प्यारों के लिये नयार !

पर अब तो सब शेष हुआ; आदान नहीं, प्रतिदान ;
खाली ही क्यों मेरे रहने दिये सभी अरमान ?
ठहरो, ओ ठहरो बेदरदी ! कर दी यह क्या लीला ?
भर दी स्नेह-लकीरों से क्यों परिणय-ग्रंथि, छबीला !

सुनो, सुनो; पीछे करना मेरे गालों को गीला ;
पहले तो हाँ, होने दो यह बन्धन हो प्रिय, ढीला !
ढीला,—इतना ढीला कि तुरत खिसक पड़े हिय-हार ;
वैसा ही बन जाय सलोना मेरा भी संसार !

कठघोड़ा

मेरा घोड़ा बड़ा उड़ाका,
बाज़ारों में देता डाका;
उड़े पीठ पर राष्ट्र-पताका!
मैं सवार भी मिला बला का!
चल बे घोड़े टिक-टिक-टिक!

कदम सड़क पर, दुलकी, सरपट,
खुटकी मैदानों में परपट!
पोश्रा श्रौर छारदक भरपट!
चारों श्रोर मचा दे हरपट!
चल बे घोड़े टिक-टिक-टिक!

इस घोड़े पर दौड़ लगाऊँ;
लन्दन से पेशावर धाऊँ!
आसमान में चङ्ग उड़ाऊँ;
विन्ध्याचल पर चढ़ कर गाऊँ—
चल बे घोड़े टिक-टिक-टिक!

दुनिया भर की सैर करा दो;
असवारी का मजा दिखा दो!
दैत्यपुरी की राह बता दो!
उस राक्षस-कन्या को ला दो!
चल बे घोड़े टिक-टिक-टिक!

पर्वत-नदी-झील के ऊपर,
चाँद और सूरज को छूकर;
खेल परों को अपने सुन्दर,
उड़ ऐ मेरे चेतक फर-फर!
चल बे घोड़े टिक-टिक-टिक!

चल बे घोड़े, चल बे घोड़े;
तुझे नहीं मारूँगा कोड़े!
ढील लगाम, बाग के छोड़े;
बन जा खुद बिजली तू ओ रे!
चल बे घोड़े टिक-टिक-टिक!

अकिंचन

प्राण, अपनी क्षुद्रता पहचान ले;
पार जाने के प्रथम पथ जान ले!

स्वर्ग की यह फुल्ल-विकसित वाटिका;
हो रही क्रीड़ा-कुतूहल-नाटिका!
हाट में बिखरे रतन-मणि-हाटिका;
पास मे तेरे परन्तु, वराटिका!
ठहर जा, टुक बात मेरी मान ले!
प्राण अपनी क्षुद्रता पहचान ले!

डोलता नित जहाँ पृथ्वी-राज है;
जा रहा उस ठौर कैसे आज है?
कौन-सी कमनीयता पर नाज है?
क्या न अपनी रंकता की लाज है?
कल्पना की मत असीम उड़ान ले!
मान ले, प्रिय, बात मेरी मान ले!

लाभ क्या?यदि मिल गया अभिशाप ही;
पुण्य के बदले भयंकर पाप ही!
क्या करे उस काल करुणालाप ही!
हँस पड़े क्यों मुक्त, अपने आप ही—
'बनूँ दानी क्या किसी का दान ले?'
पार जाने के प्रथम पथ जान ले!

५४२

आज, जीवन का प्रथम विहान ;
प्रथम अलि, फूटा मेरा गान !
छिपी निज छाया - छवि में आप,
नवल - कलिका - सी थी चुपचाप ;
अचानक आकर कौन
मौन, नीरव-पद, उत्सुक, मौन ?
हटाई अवगुण्ठन की लाज ;
आज रे छुईमुई - सी लाज !

प्रथम माधव का सुरधनु - प्रात,
मधुप - से मचल रहे जलजात ;
गुदगुदाया किसने पल्लव - गात ?
पुलक - विस्मित उर अवदात ;
हँस दिये प्रथम प्रात में प्राण ;
आज, अलि प्रथम-प्रथम यह गान !

प्रथम ही फूटा मेरा कंठ,
प्रथम खग - कलरव, स्वर-संधान !
सफल होने अब आया आज,
न जानें, किसका वरदान !
प्राण में पुलक, पुलक में प्राण ;
प्रथम अलि, मेरी यह मुसकान !

मूक जग, नीरव थी पहचान ;
हृदय - प्रान्तर सुनसान !
किसीके मधुर - स्पर्श से प्रात ;
मचल -सी पड़ी विकल - सी तान !
आज, पिक-शिशु ने पाया प्यार !
सजनि, शत-शत उद्गार !

प्रथम जीवन का पहला गीत,
हृदय - इङ्गित भय - भीत ;
बालिका का मधु - व्रीड़ा - हार ;
लाज, यह लाज अपार !
रुचेगा रसिकों को उपहार,
आज, क्या कविता का शृङ्गार ?

५४३

प्रिय, खा ले पँचमेल मिठाई ;
यह तेरे ही लिये बनाई !
यह बना बड़ा ही चोखा ;
लाखों में एक अनोखा !
खुश्की है नहीं, तरावट ;
है इसमें मिली मलाई !
प्रिय, खा ले पँचमेल मिठाई !
यह मधुर अपूर्व सलोना ;
लाया हूँ भर - भर दोना !
रसगुल्ले, पेड़े, पापड़ ;
लड्डू औ नान — खताई !
प्रिय, खा ले पँचमेल मिठाई !
रोओ मत ; प्यारे, सिसको !
आओ तो, खाओ इसको !
खिल पड़ो न अगर खुशी से,
फिर नाम न लेना भाई !
प्रिय, खा ले पँचमेल मिठाई !
बस, एक बार ही चख कर
देखो तो मुख में रख कर !
फिर बरबस ही कह दोगे—
हो बेशक तुम हलवाई !
प्रिय, खा ले पँचमेल मिठाई !

दूध और पानी

सुनो बालको, दूध और पानी की प्रेम - कहानी !
जिसे कहा करते हैं जग के सभी विबुध, विज्ञानी !
क्या है प्रेम ? कौन - सी सच्चे प्रेमी की पहचान ?
तुम्हें सुनाता; आज, सभी उन बातों को लो जान !
जिससे तुम न कभी धोखे में आ जाओ अनजान;
रक्षा करें तुम्हारी नित शठ मित्रों से भगवान !

दूध और पानी दोनों ही बड़े दोस्त दिलदार !
रहते एक दूसरे के हित मिटने को तैयार !
ज्यों ही मिल जाता है आकर पय से पानी निर्मल;
दूध रूप दे देता त्यों - ही उसको अपना उज्वल !
किन्तु, आग पर जब चढ़ते हैं वे दोनों ही प्राणी;
जल उठता है पय से पहले ही 'छन-छन' कर पानी !

"मेरे लिये" दूध रो पड़ता - "तुम क्यों जलते हाय !"
"ठहरो प्रिय, जलने दो मुझको समझो मत निरुपाय !"
"एक बूँद भी" कहता पानी—"जब तक मुझमें शेष;
आँच न तुम पर आने दूँगा कभी बन्धु, लवलेश !"
जलने लगा तुरत 'छन-छन' कर इस प्रकार कह कर जल !
मित्र - विरह से हुआ दूध का उर तब अतिशय विह्वल !

कैसे रहे भला वह ऐसे संकट में भी शान्त !
उबल उबल कर आया उससे मिलने हो उद्भ्रान्त !
किन्तु, वहाँ तो वाष्प; धुएं के अन्धकार में हलके !
पाया हाँ, दो एक सुशीतल मीठे छींटे जल के !
समझा, प्रियवर का ही मृदु आलिङ्गन कोमल - कान्त;
औ क्षण भर के लिये हो गया पहले - सा ही शान्त !

किन्तु; कहाँ वह मिलन; भूल ही केवल उसकी, हन्त !
दूध दग्ध हो गया स्वयं भी मित्र - विरह में अन्त !
यह कैसा उत्कृष्ट प्रेम का उज्वलतम आदर्श !
कर सकते क्या इससे विपुल न शिक्षा - ग्रहण सहर्ष ?
इसी तरह जो दोस्तों के हित दे सकते हो जान;
तो तुम भी निःसंशय पाओगे यश - कीर्ति महान !

५४५

यह रत्नाकर की वेला !
टकराती तरल तरङ्गों की जिससे तान निराली;
विपिनान्त गुँजा देती हैं प्रतिध्वनियाँ काली-काली !
लगता नित जहाँ मचलते मोती - फेनों का मेला !
यह रत्नाकर की वेला !
विस्तीर्ण क्षितिज - सीमा तक बालुका - राशि यह फैली !
ओढ़े जो अस्फुट तृण - तरु वीरुध की चादर मैली !
लड़-झगड़ परस्पर जिसपर करते जल - शिशु - गण खेला;
यह रत्नाकर की वेला !
उत्थान - पतन, परिवर्तन, पल - पल आवर्तन चंचल;
बस,उथल-पुथल,कल-कल-कल;कोलाहल,हलचल-हलचल !
ज्वालामय बडवानल का नर्तन एकान्त - अकेला;
यह रत्नाकर की वेला !
नीलोपकूल - परिशोभित वन - राजि तमाली - माला;
शुचि शुक्ति-मुक्ति-शय्या पर तन्द्रिल कुमीर अहि - बाला !
हो रहा सदा आपस में तिमियों का रेलम - पेला;
यह रत्नाकर की वेला !
है इधर भीम हर - हर - हर, है उधर महा मर - मर-मर !
इस पार लहर का गर्जन, उस पार घनों का तर्जन !
नित जहाँ मरण - जीवन का होता झकझोर - झमेला;
यह रत्नाकर की वेला !

५४६

आ, करुणा की धार बहाती, स्नेह - नीर बरसाती आ !
आ, जीवन-कानन में कोकिल - सी कल कूक मचाती आ !
आ, सरिता की लहरों-सी उठ,उठ कर फिर गिरती-पड़ती;
तरल - तरङ्गों पर बल खाती, लहराती, फहराती आ !
आ नव व्यथित विरह मानस में प्रियतम की स्मृति-सी सुन्दर;
कुंज-कुंज में बंशी - ध्वनि - सी इठलाती, इतराती आ !
आ रोमावलियों पर नीरव एक पुलक - सी, छाया-सी;
बेसुध हिय के तार - तार को झुक, झकझोर हिलाती आ !
आ, जीवन के रहस - केलि में सुख का जाल बिछाती आ !
आ, चिर विस्मृत दरस-परस के मञ्जुल दृश्य दिखाती आ !

५४७

किसलय के कोमल लघुवय—
देख जलाशय में न मृणालों
का विगलित जीवन मृणमय !

प्रणय - घृणा, विग्रह-परिणय ;
चय-व्यय, विनिमय, क्रय-विक्रय !
अस्तोदय के रथ पर द्रुत चल
रहा प्रलय का क्रम अव्यय ;
किसलय के कोमल लघुवय—
देख न वन्या में वनकन्या
का विकसित वसन्त - अभिनय !

बढ़ अपने पथ पर निर्भय ;
ले अनन्त आशा अक्षय !
यह सीमा को लाँघ पड़ी हिम–
गिरि की वरमाला दुर्जय ;
किसलय के कोमल लघुवय—
देख न भाग्य - विपर्यय में परि–
मन्द भाल - लिपि का आशय !

अनुप्राणित कर अतनु - हृदय ;
अचल-लक्ष्य, साहस अनिलय !
दुस्तर है इस कंटक - वन में
शीतल छाया का आश्रय ;
किसलय के कोमल लघुवय—
देख न कंथा के कोने में
दुर्बल संबल का संचय !

अप्रस्तुता

आज बाँधी नहीं कवरी ; सखि, न गूँथा हार !

५४८

जागो भविष्य के कर्णधार ,
सुन, सुन; नवयुग कहता पुकार !
यह विप्लव का नवप्रात, भ्रान्त ;
दिग्चक्र वक्र, विक्षुब्ध भ्रान्त !
कर क्षणभर भी तो दृगोन्मेष ;
रे आज हर्षमय वर्ष - शेष !
काटो संकट - पर्वत अपार ;
भावी भारत के कर्णधार !

सन्देश आज लाया अतीत ;
विस्मृत स्वदेश का विजय-गीत !
करता विग्रह - विद्रोह कौन ?
गृह में ही, क्यों प्रच्छन्न मौन !
रे हार नहीं - यह सुमन - हार ,
मेरे भविष्य के कर्णधार !

हाँ, पुनः संगठित , पुनः पीन ,
सर्वस्व - समर्पित , तपोलीन !
फिर से जीवित, फिर से नवीन
ठुकरा दिवसों को विगत, दीन !
जागो , बस जागो एक बार ,
भावी भारत के कर्णधार !

फूलवती

फूलों के ही गहने पहने , फूलों का ही है परिधान !
फूलों की लाली अधरों पर; फूलों-सी ही मृदु मुसकान !
फूलों की-सी ही कोमलता ; फूलों की छवि न्यारी है !
फूलों - सी सुकुमार और वह फूलों सी ही प्यारी है !
फूलों की मृदु गन्ध गात में , फूलों -से ही घिरती है !
फूलों पर फूलों की नैया - सी वह तिरती - फिरती है !
फूल-फूल का रस एकत्रित करना ही है उसका काम !
रहती निशिदिन फूलों में; है फूलवती ही उसका नाम !

मधुमक्खी

करती फिरती है यह भन-भन, इधर-उधर जो उड़-उड़ कर ;
नन्हें - नन्हें पंखों - वाली नन्हीं - सी काया सुन्दर !
अहा ! जानते हो क्या तुम ? हैं इसके कौन-कौन से काम ?
उड़ती फिरती बागों में क्यों ? बोलो, इसका क्या है नाम ?

क्या ही मोहक, कितनी चंचल ; कहते इसको मधुमक्खी ;
पहुँच जायगी तुरत, मिठाई जहाँ कहीं तुमने रक्खी !
फूलों-फूलों का रस लाती ; सार इकट्ठा करती है !
हिम्मत की पुतली, न किसीसे कहीं कभी यह डरती है !

कठिन परिश्रम कर सारा दिन करती है यह मधु एकत्र ;
पर, हम नीच उसे लाते हैं चुरा, तोड़ कर मधु का छत्र !
एक ओर वह मज़दूरों - सी मिहनत करती है अविराम ;
और दूसरी ओर लोग हैं करते उसका काम तमाम !

पत्तों में, खलिहान - घरों में, देखोगे इसका छत्ता ;
छत्ता क्या ! - छत्ते में छोटी बसी हुई - सी कलकत्ता !
उसी किले में जुगा - जुगा वह रखती रस का कर संचय ;
रस से मधु, मधु से मीठापन ; छत्ता मधुर मोम का घर !

इसके लिये पेड़ - घर ज्यों, त्यों - ही पहाड़ की चोटी भी ;
जैसी छोटी है, वैसी ही कभी कभी यह खोटी भी !
डँस लेगी, तुम रहो भले ही खाते माखन - रोटी भी !
नाचोगे तब तुरत खोल तुम धोती फेंक, लँगोटी भी !

इसकी जाति बँटी दो हिस्सों में, नर-मादा, दो प्राणी ;
एक छत्र में लाखों ही नर, मादा किन्तु एक - रानी !
घटते - बढ़ते रहते कुछ कुछ, शुक्ल-कृष्ण, दो पाखों में !
जब पलते तब एक साथ ही, जब चलते तब लाखों में !

आमों की मंजरियों पर नव करती यह कोमल गुंजार ;
खुश हो जाती देख प्रसारित महुए का मँहमँही पथार !
लगने पर फिर प्यास कुआँ के नीचे में पीती पानी !
तो भी इसे सता कर क्या हम करते कहो, न नादानी ?

बड़ी साहसी, बड़ी निराली, दानी, मानी, मर्दानी !
काहिलपना किसे कहते हैं ? कभी न कायरता जानी !
कहते लोग, स्वर्ग में देवों को भी मधु न मिला करता !
इसीलिये क्या इसे लूटने में कुछ भी न मनुज डरता ?

मक्खी

दुनिया में जितनी चीजें हैं, सुन, सबसे नटखट मक्खी !
क्या मरघट में, क्या महलों में, रहती है घट-घट मक्खी !
डरती है न किसीसे ; करती नित अपनी ही मनमानी !
फुर्तीली तो यों कि सकेगा कहीं न मिल इसका सानी !
हो जाती नौ-दो-ग्यारह पाते ही कुछ भी आहट मक्खी !
दुनिया में जितनी चीजें हैं, सुन, सबसे नटखट मक्खी !

जड़ समस्त रोगों की ; फैलाती घर - घर में बीमारी !
मैं तबाह हूँ, तुम तबाह हो, औ तबाह दुनिया सारी।
हैजा, प्लेग, शीतला आदिक इसी गंदगी से फैली !
रहती देखो तो कैसी यह कितनी मल, कितनी मैली !
लिये परों - पैरों में उड़ती है कूड़ा - करकट मक्खी।
दुनिया में जितनी चीजें हैं, सुन, सब से नटखट मक्खी !

आती तीसी के फूलों पर, रहती सुख से गर्मी भर !
इतने ही में उछल - कूद पर, खूब मचाती यह जी भर !
पहुँचाती सुरधाम अनेकों लोगों को यह जीते जी !
सोते दिक्कत, जगते दिक्कत, दिक्कत खाते - पीते भी !
जिद्दी पहले दर्जे की, ले आती सौ सौ झंझट मक्खी !
दुनिया में जितनी चीजें हैं, सुन, सब से नटखट मक्खी !

५५३

इतने दिन के बाद अचानक मेरी कुटिया में आकर !
हाय, लौट जाओगे अब क्या यों ही तुम हे करुणाकर ?
ठहरो तो, कुछ सुन लो, होने दो घुल-मिल कर दो बातें ;
तुम्हें पता क्या, यहाँ प्रतीक्षा में बीतीं कितनी रातें !
पूजा के इन फूलों को क्या पैरों से ठुकराओगे ?
अरे, अवन्दित ही तुम कैसे चले यहाँ से जाओगे ?
यह मेरा शिर आज तुम्हारे चरणों पर अवनत होगा ;
'पत्रं - पुष्पं' से ही आगत का सेवा - स्वागत होगा !
अश्रु - रूप में छलक पड़ीं पलकों से स्मृति की सहचरियाँ !
तड़प रहीं किस तरह विरह से देखो, ये पगली घड़ियाँ !
बैठो क्षणभर भी तो, अपना चरणामृत पा जाने दो !
अतिथि, विदा हो जाना, प्राणों को तो जरा जुड़ाने दो !

५५४

आज, मुझे क्या हो गया ?
हाय, कहाँ किस वन में निष्ठुर
प्रियतम मेरा सो गया !
आज, मुझे क्या हो गया ?

कौन अमित यों अश्रु बहाता ?
क्या अभाव–कुछ पता न पाता ;
फिर भी इतना ज्ञात कि मेरा
कभी कहीं कुछ खो गया !
आज, मुझे क्या हो गया ?

किसका विरह जगा अन्तर में ?
सिसक रही किसकी स्मृति स्वर में?
कौन, नहीं मालूम, कि उर में
प्रणय - बीज कब बो गया ?
आज, मुझे क्या हो गया ?

देखा कभी न उसको सस्मित ;
रहा सदा अज्ञात - अपरिचित !
जान पड़ा, जैसे चुपके - से
कोई दृग में रो गया !
आज, मुझे क्या हो गया ?

रमा हृदय में ध्यान किसीका ;
प्राणों में वरदान किसीका !
निर्मम कभी किसीका इंगित
सहसा तीर चुभो गया !
आज, मुझे क्या हो गया ?

तब से एक वेदना उर में ;
बजती वंशी विष के सुर में !
कौन अचिन्त्य - पुलक आ मेरे
लोचन - पलक भिगो गया ?
आज, मुझे क्या हो गया ?

आज, कल्पना नाची मन में ;
घिर आये घन सांध्य-गगन में !
इच्छाओं के स्वर्ण - द्वार पर
शत - शत दीप सँजो गया !
आज, मुझे क्या हो गया ?

मौन - जटिल संभाषण - भाषा ;
यह कैसी दुर्बोध दुराशा ?
अरे, कौन वह गोपन मेरा
उर दृग - जल से धो गया ?
आज, मुझे क्या हो गया ?

५५५

तारावलि का यह कुंद-हार ;—
किस इन्दुमुखी के कम्बु - कण्ठ
में डोल रहा अलि, बार-बार ?

बिखरा अनन्त के आँगन में
किसका इतना वैभव अपार ?
जो , समा नहीं पाता जीवन्मृत
विस्तृत वसुधा में असार !

मुकुलित नभ-पल्वल में असंख्य
कल-शुक्ल -कमल-वन निराधार ;
विचरण करता जिसमें निशीथ–
कान्तार-कमल-सा शशि-कुमार !

छवि कौन अपरिचित वह जिसको
छू काँप रहा कवि - चित्रकार ?
तारावलि का यह कुंद - हार !

भिखारिणी

मैं अभागिनी—मा, निर्धन ;

आ निकली पथ भूल इधर से
यहाँ निरख कुछ कोलाहल ;
अथवा मुझे खींच ले आया
यह नर - संकुल, आकर्षण !

हाय, तुम्हारे आँगन में
होता यह कैसा संघर्षण !
अभिमानी भक्तों का क्षण-क्षण
परिवर्तित, कुत्सित आनन !

आई मैं भी आज तुम्हारे
करने मा, पावन दर्शन ;
पर, पाई क्या ? पाखण्डी
मनुजों का वाक्य - वाण-वर्षण !

किन अपराधों का प्रतिफल यह ?
किस जीवन का पापोदय ?
देखा द्वार तुम्हारे भी तो
ऐसा अनाचार भीषण !

मैं भिखारिणी—मा, निर्धन ;

आज तुम्हारे घर में होता
उत्सव - मंगल - यश - कीर्त्तन ;
नृत्य और वादन की लीला—
लहरी पर मंजुल गायन !

कंचन का प्रासाद तुम्हारा ,
रत्नाभूषित सिंहासन ;

तुम कैसे मेरी जननी, फिर
जब मैं करती भिक्षाटन !

वसन-हीन तनु, अशन-हीन-मुख;
मेरा मन दुख - म्लान मलिन !
और, तुम्हारे तो हीरक-मणि ,
मुकुट, किरीट, वलय, भूषण !

अन्धकार में पालित, जन से
दूर, वनानी में निर्जन ;
सह न सकेंगे लोचन शत - शत
दीपालोकित स्वर्ण - सदन !

मैं विरागिनी—मा, निर्धन ;

मेरे यहाँ प्रलय - जल - प्लावन ;
क्रीड़ा करता भूकम्पन !
उदर - पूर्ति - हित एक मधुकरी
ही केवल अब अवलम्बन !

विस्मृत कर दोगी तुम कैसे
मूक बालकों का क्रन्दन ?
अस्थि - शेष कंकालों का
अभिशाप-निराहत अभिनन्दन !

हाय, तुम्हारे सम्मुख भी यह
करुणोत्पादक उत्पीडन !
पूजा का पाखण्ड, भक्ति का
स्वांग, शक्तियों का प्रहसन !

मेरे गृह में शुष्क शाक भी
नहीं—यहाँ लुटता व्यञ्जन ;
बोलो ना, यह कौन रीति ?
क्यों इतना अनाचार भीषण ?

मैं भिखारिणी—मा, निर्धन !

५५७

अलि, मेरा यह कवि-शलभ-बाल
फिरता क्यों उन्मन डाल डाल ?
द्योतित रे जिसका भव्य - भाल
रवि-शशि-ग्रह-उडुओं से विशाल;
कर पार महायुग,—महाकाल
जलती नव-ज्योतिर्पिण्ड-ज्वाल !
रे वहीं, उसी जग में अराल
मेरा यह लघु खद्योत - बाल
गूँथता अश्रु की सजल माल
जल-जल बुझ-बुझ कर सतत्काल;

प्रज्वलित जहाँ प्रतिभा - प्रयत्न
शतशः विबुधों के विविध रत्न ;
क्या हास्यापद न वहाँ मेरे
खद्योत - बाल का यह प्रयत्न ?

हे अम्बर की नक्षत्र - माल ,
इस दुर्विध पर क्यों रोष-ज्वाल ?
सुरतरु के आश्रय में विशाल
होता न पल्लवित क्या तमाल ?

हों लुप्त-प्राय-से शशि - दिनकर
जब कुहू - यामिनी में प्रतीप ;
झिलमिल कर क्षण-भर,क्षण-भर ही
जलने दो मेरा शलभ - दीप !

जग-मग जग-मग कर डाल-डाल
तरु - तरु, डाली-दूर्वा-मृणाल ;
सेंकता रश्मियों का प्रवाल ,
पल-पल पीछे मृदु लाल - लाल
दीपित कर दे तम - अन्तराल
अलि, मेरा यह कवि-शलभ-बाल!

ये मुक्ताओं से गुहे लाल
रजनी-बाला के अलक - जाल ;
खेते जीवन का लघु सकाल ,
तमसा - तरणी में अमा - ताल
रे उड़ा कनक का मुक्त - पाल
अलि, सहज-सुलभ खद्योत-बाल!
भय क्या तो फिर? यदि, आया ले
अपनी मन्दद्युति यह कंगाल ;
हे नभ के मणि - प्रदीप, मेरा
उन्मन-उन्मन कवि-शलभ-बाल !

५५८

एक गीत-स्वर, एक तान-लय ;
हो मेरे प्रिय - प्रणय - राग में
प्रिये, एक ही गति, यति, अव्यय !

एक याम, यम, एक कण्ठ-रव ;
नियम एक, ध्वनि एक नित्य-नव ,
सजनि, एक ही महाकाल-रथ
करे प्रचालित जीवन-क्रम-वय !

स्वर-व्यञ्जन - प्रपात- धारा-स्नुत ,
मिलन-वियोग-आदि गरिमा-युत,
सर्वनाश के क्रूर - हास पर
चले श्वास-गति चंचल,निर्दय !

एक प्राण-प्रण, एक ध्यान-धन ;
एक मरण-मन, एक जन्म-जन !
इन विकसित प्रभात - कुंजों में
बहे एक ही पवन निरामय !

खोज

वे कहते, तुझको परमेश्वर; मैं कहता, मुरलीवाला!
वे अनादि मानते तुझे; मैं कहता गोकुल का ग्वाला!
वे कहते, तू सब से ऊपर स्वर्ग लोक में रहता है!
मैं कहता, तू कल कल करती कालिन्दी में बहता है!

उनके लिये सुखाता क्षण में तू गागर सा भव - सागर!
पर, मेरे हित बना वही तू वंशीवट का नटनागर!
देख रहे ज्ञानी - जन तुझको मन्दिर और शिवालों में;
लेकिन, मैं तो झाँकी पाता सदा बाल - गोपालों में!

सुनता, भक्तों के हित तूने चक्र - सुदर्शन धारा था!
कितने दानव, दुष्ट - नरों को मुष्टिघात से मारा था!
मेरे प्रभो, लड़ाई - दंगों की मुझको है चाह नहीं;
चल, नाचें हम सभी जने मिल वृन्दावन में वहीं, कहीं!

मान त्रिलोकाधीश सभी ने तेरा वन्दन - यश गाया;
पर, मेरी आँखों में तेरा सखा - रूप ही है छाया!
कैसे लाकर धरूँ सामने अक्षत - पूजा की थाली!
क्या न पुनः होगी कुंजों में आँख - मिचौनी, वनमाली?

तू खाये माखन - मिसरी; मैं छीन - छीन लूँ भय-त्यागे;
तू हँस पड़े ठठा कर प्यारे! मैं नाचूँ तेरे आगे!
पढ़ लूँगा तेरी गीता को होने दे कुछ और बड़ा;
किन्तु, अभी तो वही सुनूँगा मुरली की ही टेर जरा!

५६०

मा, मैं पुनः एक छोटा सा सरस - सलोना शिशु होऊँ!
नित तेरे स्नेहामृत - वर्षी उर से लग निर्भय सोऊँ!
चढ़ कर काष्ठ - वाजि पर दौड़ूँ सैनिक - सा मैं तेरे द्वार!
पार करूँ कागद की नौका से आँगन का पारावार!

पाऊँ तेरे मुख का चुम्बन, तेरा मंजुल - मधुर दुलार!
बिहँस पड़ूँ तेरी गोदी में मैं मोती बनकर सुकुमार!
बन जाऊँ तेरे उपवन का एक सुभग मृगछौना मैं!
तैराऊँ चाँदी की थाली में मा, चन्द्र - खिलौना मैं!

तेरे करुणामय अंचल को रो - रो आँसू से धोऊँ।
मा, मैं पुनः एक छोटा - सा सरस - सलोना शिशु होऊँ।

५६१

कालिन्दी के हरित कूल पर मोहन का लीला - नर्तन;
अलि, मैंने अब भी देखा है वृन्दावन में सम्मोहन!
राधा - रानी थीं परकीया; याकि स्वकीया, ज्ञात नहीं!
हमें चाहिये सफल प्रेम का एक उच्च आदर्श - रतन!
गूँज रही अब भी कुञ्जों में मुरली की सुर - वन्दित तान;
ब्रज-बालाओं की नूपुर-ध्वनि शरद-ज्योत्स्ना में निःस्वन!
एक एक पल्लव में चित्रित व्यथा सलोनी श्यामा की,
इंगित करते उस युग की ही ओर अभी भी खल - कूजन!
चौंक-चौंक उठता है मानस आहट पा किसकी प्रतिक्षण?
अलि, मैंने अब भी देखा है वृन्दावन में सम्मोहन।

५६२

सरिता - सा ही तो मेरा भी है जीवन का अलि, प्रक्रम;
फिर क्यों मेरे जीवन - पथ में इतनी बाधा, इतना श्रम?
वह तो बहती ही जाती है तोड़ शृङ्खलाएँ — संकट;
कौन चुनेगा पर, मेरे इस पथ के इतने कुश - कंटक?
प्रियतम की सुकुमार कल्पना, मिलनोत्कण्ठा छिपा ललाम
किस निर्मोही के चरणों पर लूँ मैं क्षण भर का विश्राम?
करते कानन के ये तरुगण किस रहस्यमय का संकेत?
पहुँच सकूँगी क्या अलि, मैं भी अपने संगमपर अभिप्रेत?
सरिता तो आली, दीवानी; ज्ञात नहीं शंका, संभ्रम!
इसीलिये क्या मेरे पथ में इतनी बाधा, इतना श्रम?

५६३

सांध्य - काल मेरे जीवन का उनके लिये विहान हुआ!
अन्त अमित अरमानों का ही नवल सृष्टि - निर्माण हुआ!
रोता था अपने उदास पतझड़ की करुणा छाया में,
विकल रुदन मेरा अधीर ही उनका मंगल - गान हुआ!
चरण चाप जिनका कोमल उपमान बना था ऋतुपति का;
उड़े भ्रमर आहट पाते ही, यह कैसा आह्वान हुआ?
छवि देखी ऊष्मा में मैंने आली, सावन - भादों की,
हिम - विषाद अधरों का कम्पित उनका मृदु मुसकान हुआ!
दुर्दिन ही दुर्दैव - दलित—उनका उत्सव - कल्याण हुआ;
सांध्य - काल मेरे जीवन का उनके लिये विहान हुआ!

५६४

हम कवि, कोमल - कान्त तपोधन ;
हम सुन्दर ; हम सरस वेणु - रव ;
हिम-शीतल हम शान्त, तुहिन-कण !

कलित - कल्पना के चिर - सहचर ;
शिशिर - हार , नीहार मनोहर !
नवयौवन की नव - उमङ्ग से
हो उठते उद्भ्रान्त , प्राण - तन !

विश्व रूप , एकान्त निरञ्जन ;
राग - हीन छवि - दृग का अंजन !
शब्द-पीठ , हम स्वर - वाहन , जित—
सुख-दुख , नव रस-दान्त , अकिंचन !

स्वप्नों के उपवन के माली ;
भर - भर लाते उर की डाली !
इन्द्रधनुष से चित्रित करते—
हम अम्बर - उर - प्रान्त , सघन - घन !

देवदूत , उच्छ्वसित , विवन्दित ;
अणु-अणु से परिचित, जग-नन्दित !
सरल - स्वभाव , अभाव - रहित , हम
नव - नव - भावाक्रान्त , निमिष - क्षण !

करते नित कण - कण पर अंकन ,
हास - विलास , जगत का क्रन्दन !
होते मेरे मधु - गीतों से
गुंजित जलधि , वनान्त , विजन-वन !

विहग-बाल - सा श्रम कर , दिन भर ,
कर्म - निरत , अनवरत , धरा पर ;
गोधूली - वेला में हम फिर
सो जाते पथ - श्रान्त , अनुन्मन !
हम कवि कोमल - कान्त, तपोधन !

५६५

लद गई डाल, लद गई डाल ;
कोमल मुकुलों से लाल - लाल !
वन - पथ में मुझको मिले प्राण ;
मुख पर परिचित मुसकान - बाण !
हम दोनों ही निश्छल, अजान ;
मिल गये एक में एक - प्राण !

आ सहचरि, सत्वर गूँथ माल ;
लो, फूलों से लद गई डाल !
बिखरा दे तरु-वन में मृणाल ;
पल्लव - पल्लव पर नव - प्रवाल !
मैं आज हँसूँगी हृदय खोल ;
मेरे सुख का मत करे मोल !

झुक गई डाल, झुक गई डाल ;
कोमल मुकुलों से लाल-लाल !
अब-तक जिसकी दृग-दीप बाल,
की प्रेम - प्रतीक्षा सतत्काल !
आ गया स्वयं ही अनाहूत
मेरे गृह में वह देवदूत !

डोला मधु-आशा का रसाल ;
लो, फूलों से झुक गई डाल !
पा किसकी छवि का ज्योति-जाल
ये उमड़ रहे सर-सरित ताल ?
मैं आज करूँगी नृत्य - रास ;
मेरे सुख का यह अट्ट - हास !

चाँदपरी

चाँदपरी हूँ, चाँदपरी हूँ; चन्द्रलोक में रहती हूँ!
छायापथ में उतराती हूँ, इतराती हूँ, बहती हूँ!
बड़ी दुलारी, कभी किसीकी बात न कोई सहती हूँ!
सभी कहानी जाकर चन्दा-मामा से नित कहती हूँ!

उतर मन्द पड़ती हूँ नभ से मौलसरी की कलियों पर!
निशिगन्धा के सौरभ में मिल नाच-नाच उठती घर-घर!
बकुल, चमेली, चम्पा, जूही और बेलियाँ सब सुन्दर—
मुझे बुलाती हैं सोत्सुक दृग-कोरों से मृदु इंगित कर!

मेरे मा न पिता—भाई हैं; एकाकी ही हूँ जग में!
सिर्फ एक मामा हैं मेरे सूने जीवन के मग में!
पाती हूँ मैं प्यार उन्हींका; समुद खेलती खाती हूँ!
नन्दन-वन में, कुंज-कुंज में सुख का उत्स बहाती हूँ!

मुक्त व्योम में बादल-दल से मैं मधुक्रीड़ा करती हूँ!
चढ़ ज्योत्स्ना के उज्वल रथ पर मैं सानन्द विचरती हूँ!
जब आती हूँ धराधाम पर सब का मन हर लेती हूँ!
शत-शत इच्छाओं-सी भूपर लोट-लोट मैं पड़ती हूँ!

नीरव रजनी में सूनी-सी सपना बन कर आती हूँ।
गा-गा कर सुकुमार लोरियाँ तुमको सदा रिझाती हूँ!
निशि-भर गाती, हँसती हूँ मैं खिलखिल, तुम्हें हँसाती हूँ!
होते ही विहान ओसों के मिस रो-रो कर जाती हूँ!

देख रहे तुम आसमान में ये सब ग्रह, उपग्रह, तारे;
सबकी मैं प्यारी हूँ; मेरे प्यारे हैं तारे सारे!
जो भी देश-नदी-नद-सागर; जग में तृण-तरु खिलते हैं;
प्रेम-पुरस्सर सभी परस्पर मुझसे हिलते-मिलते हैं!

५६७

अर्द्धरात्रि; वह क्षण था मेरे जीवन का सुख-सुखमामय;
मैं सोया था विकल विश्व के गाढ़ालिङ्गन में निर्भय!
सहसा पड़ा सुनाई तेरे रथ-चक्रों का स्वर घर्घर;
तुझे देखने को सत्वर मैं दौड़ा शय्या से उठ कर!
पर, तब तक तो चला गया था बहुत दूर ही तू रथ में!
मिला मुझे क्या? एक धूल का झोंका ही केवल पथ में!

तब से नित्य उसी वेला में नींद टूट जाती मेरी;
मैं पागल-सा उसी राह पर बार-बार देता फेरी!
लेकिन, पुनः कभी तेरी मैं पा न सका किंचित आहट;
राजन, तेरे श्वेत स्यन्दनों का स्वर, रथ की घर्राहट!

फिर भी नितदिन उसी वक्त मैं पागल-सा उठ जाता हूँ!
और, तुम्हारे पथ की धूली लेकर वापिस आता हूँ!

५६८

उस दिन बड़े सवेरे ही तू आई थी मेरे द्वारे!
अन्तर में समेट कर अपने साहस, बल, संयम सारे!
खड़ी प्रतीक्षा में थी मेरी कुछ सहमी-सकुचाती-सी;
डोल रहा था मानस, फिर-फिर आती-सी तू, जाती-सी!
देखा मैंने, तुरत दौड़ कर अपने यहाँ लिवा लाया;
बड़े प्यार से तुझे पास ही अपने मैंने बैठाया!

यह सब कुछ तो ठीक, किन्तु क्या पूछूँ? मुँह पर था ताला;
खो डाला सारा दिन मैंने भी सचमुच बैठाठाला!
देख रही तू उत्सुकता से मेरे मुख की ओर मलीन;
और, स्वयं मैं हाय, न जानें, किस चिन्ता में था लवलीन!
कब तक रही अवस्था मेरी ऐसी-समझ नहीं आया;
शीश उठाया ज्यों ही ऊपर, एकाकी ही बस पाया!

५६९

कर न सकी उनकी बातों को उस दिन अलि, मैं हृदयंगम;
इसीलिये तो भूल गई पथ, कैसे पहुँचूँगी संगम?
तपना व्यर्थ प्रणय-पावक में; निष्फल स्नेह-मंत्र जपना!
यहाँ प्रीति के पर्दे में सुख खोज रहा प्राणी अपना!
तरी नहीं; कोई न कूल पर; बरसाती धारा गहरी!
कैसे उतरूँ पार! बता दे; कब से हूँ तट पर ठहरी!
किस कुघड़ी में, किस मण्डप में ग्रन्थि प्रणय की थी बाँधी!
छूट गये जो साथी सारे उठती बाधा की आँधी!
दे सकता क्या मुझको भी सखि, कोई नहीं खगों का पर?
उन्हीं वलाकाओं-सी मैं भी डोलूँ इधर-उधर फर-फर!
पूछूँ क्या तटिनी से आली, वह है जड़-मैं तो जंगम!
कौन कहे! पहुँचूँगी कब मैं ऐसे ही अपना संगम!

५७०

मा, मैं फूलों की डाली ;
मुझे वहाँ पर डाल, जहाँ
मधुकर-गण कभी न आते हों ;
विकल गन्ध-पथ से नित पागल
सेवक तेरे जाते हों !
करूँ किसीके पावन पद-रज से
उज्वल काया काली ;
मा, मैं फूलों की डाली !

मा, मैं वन की हरियाली ;
ले चल मुझे न व्यस्त विश्व के
वन्दी-गृह में करुण, उदास ;
कवि के मुक्त कलानालय-सा
कानन ही मेरा अधिवास !
सहचर जहाँ निसर्ग, प्रकृति ही
स्वर्ग, विहंगम वनमाली ;
मा, मैं वन की हरियाली !

मा, मैं संध्या की लाली !
मुझे बना उस चित्रकार की
कुशल तूलिका का शुचि रंग ;
जिसकी अग्नि-उमंगों पर
उभरे यौवन की तरल तरंग !
अब न अन्त होने दे मेरा
कुहू-निशा की अँधियाली ;
मा, मैं संध्या की लाली !

मा, मैं मुक्ता की थाली ;
भर दे मेरे स्फीत हृदय से
किसी रंकिनी की झोली ;
खेले क्यों कोई मदमाता
मेरे जीवन से होली ?
मैं न चाहती सुख पर पहरा ;
विक्रय, बन्धन, रखवाली !
मा, मैं मुक्ता की थाली !

५७१

चहक चहक खग, चहक चहक खग,
जग-जग जग-जग कर कल-कल रव ;
यह सौरभ का श्री-प्रपात, गिरि—
निर्झर'-सा झड़ता सुख-उत्सव !
नित-नित अमित-अमित कोलाहल,
क्षण-क्षण पल-पल कल-कल कल-कल ;
लो, फूटा हिम-स्नात क्षितिज के
मस्तक पर मरीचि का चन्दन ;
चहक चहक खग, चहक चहक खग,
नव-प्रभात का कर अभिनन्दन !
भर-भर चंचु-पुटों में स्वर-सुर,
उड़-उड़ डाल-डाल पर फुर-फुर ;
रश्मि-दूत तुम प्रथम-प्रात के
ले आओ जागृति, नव-चेतन ;
चहक चहक खग, चहक चहक खग
नव-विधान का कर आवाहन !
विकच सुमन-गण नव-नव अभिनव,
निर्जन जन-पथ, पल्लव नीरव ;
विचर मुक्त, द्रुत निकल नीड से,
विजन-विजन में कर आन्दोलन ;
चहक चहक खग, चहक चहक खग,
भर जड़-जंगम में सुख-स्पन्दन !

५७२

ओ मेरे दुर्बल हृत्कम्पन !
अंकित क्यों करते वक्षस्थल
पर तुम यों इतना अपनापन ?

छू न अधर पाये अधरों को,
हृदय हृदय से जुड़ा न तिल-भर ;
अवयव बँध परिरम्भ - पाश में
एक हुए मिलकर न परस्पर !
हाय, किया क्यों तुमने इतना
शीघ्र भीति का सीमोल्लंघन ?
ओ मेरे दुर्बल हृत्कम्पन !
सिहर रहे क्यों प्राण तुम्हारे
शतदल-दल-से प्रतिपल, प्रतिक्षण?

प्रथम-पुलक में ही जब सिहरन,
तब कैसे विश्वास करे मन ?
सह लेगा व्यक्तित्व तुम्हारा
प्रियतम का चिर-गाढ़ालिङ्गन !

मचल न चंचल, मचल न खो
जायेगा यह कंचन-सा जीवन ;
ओ मेरे दुर्बल हृत्कम्पन !
शेष अभी तो पड़ा पन्थ में
आत्म-समर्पण औ सम्भाषण !
आज साधना सफल, तपस्या
पूर्ण, प्रभावित प्रेमोपासन ;
मिलना था वरदान जभी, तुम
स्वयं भङ्ग कर बैठे शासन !
कैसा मान ? मौन परिवर्तन ;
छोड़ पलायन का अभिमन्त्रण !
ओ मेरे दुर्बल हृत्कम्पन !
देख, न व्यर्थ अकिंचन का हो
किंचित पूजा का आयोजन !

तब तो बलि हो गये वशीकृत
प्रेम-ज्योति पर दीप-शलभ बन ;
अब क्यों लज्जा का प्रपंच ? यह
वारण किया न उसके कारण !

खींचा था चुम्बक बन जिसने,
वह कैसा था स्नेहाकर्षण ?
ओ मेरे दुर्बल हृत्कम्पन !
किस प्रतिमा ने दिया स्वप्न में
अपनी छवि का दर्शन पावन ?

५७३

क्या न वासना का अधिवास—
सखे, तुम्हारे अन्तस्तल में क्या न वासना का आभास ?
जो सत, चित है, अन्तर्हित भी सदा उसीमें है आनन्द ;
फिर क्यों तम में ढूँढ़ रहे हैं अपना जीवन-पथ वे मन्द ?
मोह - भावना - हीन, सत्य है यदि कटु सखे, तुम्हारी प्रीति,
तो प्रकाश से भीति, तुम्हें क्यों तम से होती सतत्प्रतीति ?
भ्रमर, भ्रमर भी तो करते हैं कानन के कुसुमों को प्यार !
बनती लतिका भी तो तरुवर की ग्रीवा का मञ्जुल हार !
चूम किरण भी जाती नित प्रति अविकच कलियों को सुकुमार !
अन्धकार में ? नहीं, अरे वह प्रणय शुभ्र, उज्वल, अविकार !
जो दुनिया की ओट चाहता, प्रेम नहीं, वह तो व्यभिचार !
क्यों लुकना - छिपना चाहेगा सत्याचरण, शुद्ध व्यवहार ?
सूत्रपात करता है जिसका निर्जन वन, उपवन एकान्त,
प्रायः उनमें रोना पड़ता निश्चय ही दिन के उपरान्त !
विमल प्रेम की निर्मल प्यास—
जागी क्या न तुम्हारे उर में शुद्ध प्रेम की सात्विक प्यास ?

५७४

मैं दर्पण ही प्रिय, निर्मल;
जैसा वदन तुम्हारा, वैसा
ही इसमें प्रतिबिम्ब धवल!

निशि-दिन विश्व-करों में शोभित,
स्वच्छ, शुभ्र, वसुधा-जन-वन्दित;
सुन्दर, सुन्दरतर से उपमित;
शुभ-शृङ्गार सुकेशिनियों का
मुकुलित, वारि-सदृश उज्वल,
मैं दर्पण ही प्रिय, निर्मल!

तनु पाषाण, किन्तु उर दुर्बल;
कुलिश-कठोर, कमल-दल-कोमल!
स्नेह-हीन, पर, हिम-जल-शीतल;
सह न किसी चंचल का सकता
ईषत भी कल-कर-कौशल;
मैं दर्पण ही प्रिय, निर्मल!

यह जो काच-विकच मन-काया;
इतना मृदु आकर्षण पाया!
इसमें तनिक न मेरी माया!
देखोगे अपने ही मुख की
छाया मुझमें सदा सफल;
मैं दर्पण ही प्रिय, निर्मल!

५७५

इस पृथ्वी पर कौन अमर-पद पायगा?
यश-अपयश ही शेष एक रह जायगा!
आती है यदि, आज, मृत्यु तो आवे;
महाप्रलय विध्वंस-रागिनी गावे!
किन्तु, हमारा हृदय भीति क्यों पावे?
नयन-पुटों से अश्रुधार बरसावे?
प्रबल-जीतता, दुर्बल धक्के खायगा!
इस पृथ्वी पर कौन अमर-पद पायगा?

ये जो दिखते रवि, शशि, ग्रह, उडु नाना;
अन्त सभी का, मिट्टी में मिल जाना!
सबको पड़ा चिता की गोद सजाना,
स्वाद मौत का सबने मर कर जाना!
किसे न माया-कानन यह भरमायगा?
इस पृथ्वी पर कौन अमर-पद पायगा?

इसीलिये झटपट कुछ कर लो, धर लो;
जीवन-नौका हिले न, साहस वर लो;
बीत रहा वय, याद जरा यह कर लो;
पूजा के सुमनों से झोली भर लो!
रोओगे, जब समय-स्रोत बह जायगा!
इस पृथ्वी पर कौन अमर-पद पायगा?

५७६

उमड़ा मेरा बाला-यौवन;
आज, अमावस में पावस के
बादल-सा ही काला यौवन!

यह तमसा-मधु-रभस-यामिनी;
अन्तरिक्ष में चपल दामिनी!
मचल पड़ा अलि, सुरा-सुन्दरी–
सुरभि-प्रमत्त निराला यौवन!
बाले, मेरा बाला यौवन!

हृदय उल्लसित, कम्पित तन-मन;
क्रीड़ा, कौतुक, चुम्बन, निधुवन!

महामिलन के प्रखर स्रोत में
उतराये मतवाला यौवन ;
बाले , मेरा बाला यौवन !
आज , शेष रह जाय न इच्छा ;
कोई तृष्णा , कोई पृच्छा !
छलक उठे इस मधुशाला में
हालाहल का प्याला यौवन ;
बाले , मेरा बाला यौवन !

५७७

छायापथ का नक्षत्र-हार ;
उज्वल-उज्वल, निर्मल-निर्मल ;
कितना प्रशस्त, कितना उदार !

सोया वन में निश्चल निशीथ
ले पलकों पर मृदु पुलक-भार ;
उडुओं से इंगित करती यह
किसकी छवि-चितवन बार-बार ?
छू सघन-क्षितिज का ओर-छोर
फैला अम्बर के आर-पार ;
छायापथ का नक्षत्र-हार !

लहराता सद्यस्नाता कल—
रजनी-बाला का अलक-जाल ;
चूती नीलाञ्चल से चञ्चल
हिम-धवल-धवल जल-विन्दु-माल!
करुणा के विधुर हृदय से यह
उसका ही उमड़ा मृदुल प्यार ;
छायापथ का नक्षत्र-हार !

उतरे शैवालें - मृणाल - भरे
मानस में मोती के मराले ;
तिर रहा तरङ्गों में जिसकी
यह परिवा का शिशु-शशि-प्रवाल!
जगमग-जगमग नभ-जग का मग
झिलमिल दीपों से स्फीत-स्फार;
छायापथ का नक्षत्र-हार !

करता भूतल का उर शीतल
कोमल किरणों का ऋजु प्रसार ;
लघु-लघु प्रकाश-कण का कम्पन
उठ-उठ मिट जाता निराधार !
सरि-वीचि-चुम्बि मन्दार - पवन
करता निसर्ग का मुक्त द्वार ;
छायापथ का नक्षत्र-हार !

शोभित अनन्त के वक्षस्थल
पर तारावलि का चन्द्रहार ;
लद गया कुन्द की कलियों से
उच्छ्वसित-सिन्धु का हृदय-ज्वार!
कल-कल करती, उर्म्मिल,फेनिल,
कल्लोलमयी यह रजत - धार ;
छायापथ का नक्षत्र-हार !

५७८

कवि को रे जग से कौन काम ?
वह तो निर्भय, निरलस, अकाम ;
खिलता वन - कुसुमों - सा अजान ;
वन में ही विकसा प्रतनु प्राण !
दुर्लभ्य जहाँ माया - वितान ;
रे जग का कलुषित ज्ञान - ध्यान !

बहता प्रतिदिन प्रातः - समीर—
लेकर उसका परिमल अधीर ;
जुड़ आती भारी भौंर - भीर ,
गुंजित - मधु गुंजित सरि - प्रतीर !
वह बना आप ही स्वर्ग - धाम ;
कवि को रे जग से कौन काम ?

व्यापे न विश्व का छल - प्रपंच ,
वासनाभिनय का रंगमंच ;
वह इसीलिये, सकरुण, उदास ,
करता वन में एकान्त - वास ;
दुख क्या उसको ? अविकल-अमन्द ;
निखिलात्म - लीन वह निरानन्द !
कर रहा दिवस निस्पृह व्यतीत
अज्ञेय - अगम वह गुणातीत !

यह तो रे उसका विजन - प्यार ,
क्यों तुम कहते हो अहंकार ?
पा फूलों का ही मृदु दुलार
वह प्रमुदित रे प्रमुदित अपार !
आँगन में फैली हरी घास ;
ऊपर नीलम का घनाकाश !
दिन में दिनकर का ज्योति - हास ;
निशि में शशि - तारों का प्रकाश !
सागर - तट, सरिता का दुकूल ;
आहार विटप का, कन्द - मूल !
क्या सकता वह यह दृश्य भूल ?
रे फूल बने हैं स्वयं शूल !
भय क्या ? विधि भी यदि हुआ बाम !
कवि तो निस्पृह, निरलस, अकाम !

५७६

सीखता मन्त्र मैं वशीकरण ;
तेरे कारण ही हृदय - हरण !
पाकर के भी खो दिया तुझे ;
कैसे ? ना कुछ भी पता मुझे !
तू आया जीवन में जैसे ;
आकर फिर चला गया वैसे !
प्रिय, इसीलिये तो तपः - चरण
सीखता मन्त्र मैं वशीकरण ;

भाया न भावना - सुमन - चयन ;
अचपल; आकर्षण-हीन नयन !
यह रूपराशि; कल केश - काम ;
कर सका न मोहित मन अकाम !
कर देगा सफलीभूत वरण
अब मात्र मन्त्र यह वशीकरण ;

सुख त्याग, राग-व्यञ्जन-विभोग
लाया वियोग में योग - योग ;
दी इच्छाओं की जला आग ;
बन गया भस्म ही अङ्गराग !
प्रिय, निभृत, निरामय, निराभरण
सीखता मन्त्र मैं वशीकरण !

व्रत अनुष्ठान मेरा पावन ,
आमरण अरे, यह आजीवन ;
तप-आतप में युग - कल्प चीर
मैं दग्ध करूँगा यह शरीर !
कर सकता मुझे न विमुख मरण ;
यह मन्त्र प्रणय का वशीकरण !

मोती का झूला

मा, कह तो किसने मोती के ये झालर लगवाये हैं !
आसमान में कैसे ये तारे मेरे मनभाये हैं !
चोटी पर पेड़ - पहाड़ों की, इन ऊँचे ऊँचे ताड़ों की !
ये तायदाद में कौन कहाँ से आये लाख - हजारों की !
काले नभ के एक छोर से दुतिय छोर तक छाये हैं !
मा, कह तो किसने मोती के ये झालर लगवाये हैं ?
आँगन में अपने ही शशि के नौसिखिये बच्चों-से निखरे !
लगते हैं दानों - से सुन्दर मानों अनार के ये बिखड़े !
ऊपर से सघन कालिमा के जैसे चिर-छत्र लगाये हैं !
आसमान में कैसे ये तारे मेरे मनभाये हैं !
चकमक चकमक चकमक अपार; कुछ पास, दूर कुछ बेशुमार
अपलक दृग से किसको निहार ये बुला रहे हैं बार-बार !
इस विस्तृत अम्बर - पथ में साथी भी कैसे पाये हैं !
मा, कह तो किसने मोती के ये झालर लगवाये हैं !

शिक्षा

फूलों से सीखा हँसना; सुग्गे - मैने से तुतलाना ;
पंछी से सीखा है गाना; नवकलियों से मुसकाना !
माँग लिया केसरी - बाल से दर्प - भाव यह मस्ताना !
पाया औढरदानी से हो औढरदानी का बाना !
दूर जगत के छल प्रपञ्च से बसती है मेरी दुनिया !
एक हँसी है, एक खुशी है; कुछ गुड़िये हैं, कुछ मुनिया !
उछल-कूद ही पाठ, चाहिये नहीं पोथियों की ढेरी ;
वानर ही सहपाठी मेरे, विजन पाठशाला मेरी !

५८२

मेरे इस एकान्त - रुदन से प्रतिध्वनित हों उनके प्राण;
छा जाये कण - कण में उनके मेरे ये विरहाकुल गान !
पिघला दे उनका मानस - तल मेरा यह सुख का अवसान ;
वे रो उठें, यही हैं मेरे भग्न - हृदय के लघु अरमान !
युग - युग की करुणा उनके अन्तर में आह उमड़ आये !
चिर-दिन के वियोग से पागल की उनको स्मृति आ जाये !

५८३

प्रियवर, जैसे दूर बसे तुम; वैसे दूर डाकघर मेरा !
जल्द जबाव तुम्हें देने में इसीलिये हो गया बखेड़ा !

इसीलिये यह देर हो गई ;
कम क्या ? दो - दो बेर हो गई !
यह जो दूर देश की पाती ;
देर दूर में हो ही जाती !

बहुत दूर से दूत चले ही आखिर फिर भी आये घर पर ;
लेकिन उस दिन तो सवार था अजब भूत - सा मेरे सर पर !

बन्धु, कहाँ बीमारी छूटी ?
नस - नस दुख से पड़ती टूटी !
आयी जभी गृध्रसी, समझा
अब तकदीर अभागी फूटी !

पढ़ना लिखना बन्द, हुआ दिल इस दुनिया से कोसों न्यारा ;
आज, पत्र - लेखन ही मेरा एकमात्र है बना सहारा !

कभी - कभी तुम - से ही प्रियजन
याद कर लिया करते दो क्षण ;
कम क्या! यदि उससे ही दो क्षण;
सो जाता मेरा घायल मन !

यों ही द्रवित दया फिर होगी; भूल न जाओगे-यह आशा !
हे अनुभूति-विभूति, हृदय यह इसी सहानुभूति का प्यासा !

क्या उत्तर दूँ ?—सूझ न पड़ता ;
हृदय न जाने किससे डरता !
कुछ का कुछ लिख दूँ मैं तब क्या?
किन्तु, न दिल तो हामी भरता !

जब से छोड़ा जग को मैंने, जग ने भी बस, मुझको छोड़ा ;
अब तो जीवन-घट में बाकी—थोड़ा रस है, विष भी थोड़ा !

आज, सुत वह शूर हो गया ;
भाग्य - देवता क्रूर हो गया !
साहस थका, थकीं इच्छाएं ;
पीड़ा से हिय चूर हो गया !

इस जीवन में फिर न दिखेगी मनमोहन की वह मृदु छवि क्या ?
काव्य-पुरुष, मर एक बार फिर जी न उठेगा यह लघु कवि क्या?

५८४

कुमुद - बालिका के अधरों पर
तुम विस्मय की मुक्तावलियाँ !
कलियों-कलियों में कीलित सुख-
स्वप्नों की मृदु पुलकावलियाँ !
शिशु के कमलानन पर लम्बित
तुम अलकों की मधुपावलियाँ ;
विपुल वेदना के वृन्तों पर
करुणा की कल मुकुलावलियाँ !

नव - परिणीता के उर में तुम
लज्जा की हिम - किरणावलियाँ ;
सुरसरि की कल वीचि - मालपर
फेनों की शुचि कवितावलियाँ !
वारिद की छाया में शीतल
तुम केकी की लीलावलियाँ ;
विश्व - सुन्दरी के मणि-निर्मित
नूपुर की झंकारावलियाँ !
प्रथम - समागम में ऋतुपति की
तुम कोकिल की विरुदावलियाँ !
गायक के मादक - नयनों में
तुम विहाग की मुद्रावलियाँ !

५८५

जीवन की ज्योतिर्धारा ;
कहाँ रुकेगा आज कहो तो,
हिम का प्रखर स्रोत प्यारा ?

महाकाश के नील - नीड में
सिहरा क्यों यह विश्व-विहंगम ?
किरणों की स्वर्णाभ शलाका
भेद चली तम का अन्तर्तम !
जीवन की ज्योतिर्धारा—
यह किसके ललाट पर चमका
प्राची का प्रभात - तारा ?

जागे पद्म - मुकुल - मानस में
सुख-मधु-नैश-जागरित अलिगण;
प्रतिगुंजित पल्लव - पल्लव पर
स्फीत भावनाओं का शिंजन !
जीवन की ज्योतिर्धारा—
भर जाने दे तनिक रश्मियों
से मेरी तमसा - कारा !

मंगलमय यह बेला, नीरव
वातावरण, शान्त उपवन-वन ;
द्रुम-द्रुम पर, उत्पल-उत्पल पर
छाई सकल कामना उन्मन !
जीवन की ज्योतिर्धारा—
संचित कर दे नव - कलियों में
अपना स्नेह - पुलक सारा !

५८६

मन ही मन गुन-गुन गाती चल ;
सरि, बहती चल; कुछ कहती चल ,
कल-कल-संगीत सुनाती चल !

भय क्या, यदि पथ में पड़ा अचल ;
दल शिला-शकल, नग का शृङ्खल !
कतराती — बाधा से टकराती
इतराती , इठलाती चल !

शिंजित कर गुंजन से प्रतिपल,
ताली - तमाल - तट का अंचल !
सिकता - समूह पर धवलांकित
चंचल-पद-चिह्न मिटाती चल !

यह पथ अनन्त, तू मृदु आली ;
अलबेली, यौवन - मतवाली !
सुकुमारि, अकेली ; तस्कर जग
यह हृदय-तरंग छिपाती चल !

हो जायँ शिथिल जब चरण चपल,
इन कल - कुंजों में ही कोमल,
बिरमाती चल, दो क्षण - दो पल,
श्रम-सीकर-निकर सुखाती चल !

पथ में न पड़े तू कहीं मचल,
खो जाय न यह लघुतम संबल ;
बावली, ग्रन्थि सुलझाती चल ;
जगती की प्यास बुझाती चल !

सुन, रह न जाय कोई प्यासा,
अविपूर्ण किसी जन की आशा ;
गृह-गृह में निस्पृह-मन से करुणा—
जल छल-छल छलकाती चल !

अज्ञात मार्ग, संकट दुर्गम ;
सुनता न तनिक प्रियतम निर्मम !
पद - पद पर अलि, महामिलन का
मधु-उत्सव-मोद मनाती चल !

५८७

लज्जासरि में केलि - प्रवीण,
मीन - सदृश आकण्ठ विलीन ;
छवि की नवल उँगलियों से मत
छुओ छबीले इसके प्राण !
छुईमुई है मेरा जीवन !

न कर आप औरों पर रोष,
फल - फूलों पर ही सन्तोष ;
अक्षय - कोष लुटा याचक को
देता मुँहमाँगा वरदान !
कल्पविटप है मेरा जीवन !

खिल निसर्ग में भी सुर-भोग्य,
दुर्लभ दीन - नरों के योग्य ;
भर देता अपने सौरभ से
मर्त्यलोक का मरु - उद्यान !
पारिजात है मेरा जीवन !

इतना मद - उत्तेजक गन्ध,
जला ज्वाल वन-वन में अन्ध—
भुला दिया करता रुरु को भी
अपनी गुरुता की पहिचान !
कस्तूरी है मेरा जीवन !

रह जग में अमूल्य, असमान,
तनिक न महिमा का अभिमान ;
कर देता कुधातु को भी शुचि
स्वर्ण-सदृश उज्वल, अम्लान !
पारस - मणि है मेरा जीवन !

उमड़-घुमड़ नभ में अविकार,
हुंकृत मेरु - शिखर, संसार ;
ऊपर उठ कर भी गिर पड़ता
पर-हित तज पवमान-विमान !
सजल जलद है मेरा जीवन !

निष्फल

वनमाली, चुप - चाप कहो तो, यहाँ कहाँ से तुम आये ?
वन-पथ में एकान्त सुमन-दल राशि राशि क्यों छितराये ?
इस विजनस्थल में प्रिय, इनको कौन करेगा अवलोकन ?
इससे तो अच्छा है मेरे भावों का फूटा दर्पण !
सोचा था - आओगे तुम, तो आकर्षण कुछ लाओगे ;
अपने लघु विराम के कुछ क्षण बिता यहाँ भी पाओगे !
किन्तु, हुआ दुर्लभ-सा मुझको एक झलक भी तव पाना ;
हाय, अभी तक खटक रहा है देव ! तुम्हारा वह जाना !
अब कैसे मैं चित्र तुम्हारा उर पर अरे, उतारूँगी !
अपने पूर्व - प्रणय का अतुलित मूल्य चुका मैं पाऊँगी !
विफल साधना, व्यर्थ प्रतीक्षा; आकांक्षा निर्मूल हुई !
हाय, कहूँ क्या प्रियतम, तुमसे कितनी भीषण भूल हुई !
जो विरक्त मेरे जीवन में एक बार भी आ जाते ;
तो अपने प्रति जनित प्रेम के भाव हृदय में लख पाते !
रखती हूँ किस भाँति हृदय में प्रणय - भावना को संचित ;
किन पापों ने किया तुम्हारी कृपा - दृष्टि से हा ! वंचित !
डरती हूँ कुछ कुछ अपने से, कुछ अपने दुर्बल मन से ;
धो डालोगे क्या न अभी भी हृदय-भार करुणा-कण से ?
दिन बीता, संध्या हो आई; भर रिनझिन रिनझिन शिंजन ;
करुणामय, जल उठा प्रतीची में तारा बन लो, बिछुड़न !
नव कदली-दल कोमल करतल; पुण्डरीक प्रायत लोचन ;
कनक-कलश-जल, मृदु अनुलेपन, साक्षत दूर्वा-गोरोचन ;
ग्रथन-स्फीत कबरी-कलाप कल,कुन्द-धवल मुख चन्द्र-शकल ;
निष्फल आज अधर विरहातुर, मुक्त दृगों का मुक्ताफल !
हाँ, अब तो अस्तित्व देव ! मेरा असफल मिट जाने दो ;
उठ जाने दो, आज मुझे जग से ऊपर उठ जाने दो !

अन्धा

मत पूछो उससे कि रोशनी कैसी होती सूरज की !
नदियों का पानी, हरियाली घासों की, शोभा वन की !
कहते किसे चन्द्रमा, कैसा लगता नभ तारोंवाला ;
विविध भाँति के रङ्ग-बैगनी, लाल, हरा, पीला, काला !
हाय ! जनम का अन्धा - कैसे कहो, किसीको पहचाने ?
कैसी हैं माँ, भाई, बहनें; वह बेचारा क्या जाने ?
उसको नहीं हमारे - जैसा अच्छे और बुरे का ज्ञान ;
शाम-सुबह,बादल औ बिजली,रात तथा दिन की पहचान !
उसके लिये कौन क्या भू पर ? सारी दुनिया सूनी है !
ज्यों - ज्यों उमर बीतती, त्यों - त्यों बढ़ती पीड़ा दूनी है !
छीन ऊपरी लोचन प्रभु ने दीं उसको आँखें अन्दर !
बाहर अन्धकार है, लेकिन भीतर दिया उजेला कर !
लाठी टेक - टेक चलता है वह हर रोज अकेला ही ;
रुपयों की इच्छा न, चाहिए केवल एक अधेला ही !
निःसहाय है—इसीलिये कुछ उसको तुम भी दे देना !
अगर राह पूछे वह तुमसे, सच-सच बता सुयश लेना !

निवारण

आज, भाग्य-लिपि क्रूर; क्षितिजपर छाई अमा-निशा काली !
मिलन - मार्ग में सुख के फैली अन्त - हीन - सी अँधियाली !
हूँ सुदूर जग से; जीवन में लोम - विहर्षण संघर्षण !
इन घड़ियों में देव ! तुम्हारे हो न सकेंगे क्या दर्शन ?
मैं प्रवासिनी; पड़ी विमूर्च्छित इच्छा आँगन में मेरे !
मर्दित कमल - कोष में तुमको दोष मिलेंगे बहुतेरे !
सिहर रहा अस्तित्व जहाँ मेरा ही अपना क्षण - प्रति - क्षण;
उस लघु - सी सीमा में कैसे समा सकोगे जीवन - धन ?
आज, आ रही याद युगों की बात; सुखों के दिन बीते !
वनवासी हो गये हृदय के भाव तिरस्कृत मनचीते !
जब कि प्रणय-वीणा-वाणीसे मुखरित हुआ प्रथम परिचय ;
कौन लूट ले गया हाय ! वह सुख - सुहाग का स्वर्णोदय ?
आज, प्रलय का प्रहर; सघन घन-घोष प्रकम्पित गिरि-कानन ;
वारि - मग्न कर रहा धरा को अन्तरिक्ष का आक्रन्दन !
समा रहा पल-पल प्राणों में व्याकुल शम्पा का कम्पन;
एकाकी कर लोगे कैसे पार कंटकों का कानन ?
मुकुलित - बकुल-मालिकालंकृत केलि-कुञ्ज, पुष्पासव-दान ;
पारिजात की मञ्जु - मञ्जरी, गन्धर्वों का मञ्जुल गान !
कुचल चलोगे क्या दर्भाङ्कुर-पथ तज कंचन-सौध महान ?
पाटल-पटल-कलाप विकल्पित कोमल-अमल तल्प रुचिमान !
हुंकृत महाजलधि का वक्षस्थल, पूर्वाचल का शृङ्खल ;
मेरु - मेखला - कम्प - भीरु झंझा से झंकृत उच्छृङ्खल !
पथ पिच्छल, शंकित उर मेरा; उमड़ा आँखों में सावन ;
प्राणनाथ ! सह लोगे क्या तुम सस्मित जल-धारा-प्लावन ?
भले न मेरी रुके वेदना; रुके न पीड़ा मतवाली !
मत आओ प्रिय, किन्तु आज तुम इस रजनी में अँधियाली !

अश्रुमुखी

मैं डूब गई रे डूब गई दृग - जल में ;
बहती कल रेवा - धारा अंचल - चल में !

सम्मुख पीड़ा का पुलिन-प्रान्त विस्तारा !
उस पार प्रलय का विस्तृत पारावारा !
करता झल-झलमल जिसपर संध्या-तारा !
मेरे कानन का श्रान्त पथिक पथ - हारा !

सुनती अति व्याकुल राग एक प्रान्तर में ;
'झर-झर' टकराता निर्झर का अम्बर में !
फूँकी यह ज्वाला किसने अन्तरतर में ?
अहरह कराहती विषम मृत्यु के ज्वर में !

छवि सुन्दर मिलती कहीं न वह त्रिभुवन में ;
मैं डूब गई रे डूब गई दृग - जल में !

रोता सखि, मेरा कण-कण, क्षण-क्षण पल-पल;
जैसे घनश्याम-विरह में यमुना कल-कल !

है निखिल विश्व में छाया हाहाकारा ;
रोदन से मेरे प्रतिध्वनित वन सारा !
छल छल करती सर्वत्र वेदना - धारा ;
कानन - कानन में मेरा जीवन - पारा !

बजती यह कैसी वंशी ? किसके कर से ?
मिलनातुर जिसके अधर सजल जलधर से !
मैं रे कुररी - सी रो - रो तार - स्वर से
दुख - कथा सुनाती तारक - रजनीकर से !

क्यों बुझ-बुझ जाती हूँ उल्का-सी जल-जल ?
रोता सखि, मेरा कण-कण, क्षण-क्षण, पल-पल !

अलि , कहाँ गया वह मेरा इन्दीवर-सा ?
कोमल किसलय-सा, रुचिर विमोहन स्मर-सा?

फिसली हिम-उज्वल फेनों पर मैं चलती ;
भेदन कर नग-उर सरि-सी कभी निकलती !
जब नाभि-गन्ध अपनी ही मुझको खलती,
उन्मत्त - सदृश कंटक - वन पद से दलती !

उठती हूँ रह - रह चौंक पत्र - मर्मर से ,
जब इंगित करते पल्लव प्रिय के कर - से !
मैं दौड़-दौड़ पूछती विटप, गिरिवर से ,
जाते देखा क्या उसको आज इधर से ?

जीवनधन मेरा नटवर मुरलीधर - सा !
अलि , कहाँ गया वह सुन्दर इन्दीवर-सा ?

नभ में जब आती उमड़-उमड़ घनमाला ,
मैं विकल सिसकती विधुरा तापस-बाला !

उड़ता अमिताभ-सौध पर मकर - पताका ;
सखि , पंक्ति - बद्ध हो वलयाकार वलाका !
मैं नहीं जानती , होती कैसी राका ?
आकाश मिला है मेरे लिये अमा का !

जलता पलाश - उल्लास , वसन्त विरागी ;
धू - धू करती है कुंज - कुंज में आगी !
सचमुच क्या ऐसी ही मैं हाय, अभागी ?
मेरे उर में यह कौन वेदना जागी ?

सजती सावन में जब पावन मधुशाला ,
मैं विकल सिसकती विधुरा तापस - बाला !

किसको पा कर सखि, आज बनूँगी धन्या ?
क्रन्दन करती क्यों अन्तःसलिला वन्या ?

छाया वन-वन में यह किसका मधु विस्मय ?
कुवलय-कुवलय पर बिखरा है लय निर्दय !

दक्षिण - समीर वातायन - पथ से अव्यय
श्वासों के किसकी दे जाता नित परिचय ?

बहती जाती यह करुणा - कुल्या - धारा ।
सुख-दुख का लेकर दोनों ओर किनारा ।
कह, कहाँ मिलेगा किस निर्जन में प्यारा ?
वह वहन करेगा कौन सुरभि - सम्भारा ?
ले भ्रष्ट-माल क्यों नाच रही वन - कन्या ?
किसको पा कर सखि, आज बनूँगी धन्या ?

शंकित क्यों सखि, संकेत-चकित वन-नीला ?
यह सृजन मरण की उन्मद ताण्डव-लीला !
मैं चिर-बाला, चिर-सती, अनन्त कुमारी ;
पीकर विषाद - विष अनादृता नीहारी ।
रे किस रहस्य - मंत्रणा - मुग्ध दुर्वारी
फिरती वन - उपवन - नभ में मारी - मारी ।

देता न कहीं भी कोई तनिक सहारा !
अपने भुज - पाशों का ही बन्धन प्यारा ।
किस प्रीति-सुधा की क्षुधा ? कंठ यह न्यारा ।
वन्दिनी ; बना अपना ही यौवन कारा ।
मैं सह न सकूँगी दुर्बल, चिन्ताशीला ;
यह सृजन-मरण की उन्मद ताण्डव-लीला ।

अलि, आज व्यथा-पथ गन्ध-विधुर मदमाता ;
उर जगा उग्र सुख-काम ; कठोर विधाता !
रे किसने मुझको यों विरहिणी बनाया ?
हा, एकाकिनी अतृप्त - तृषा भरमाया ?
मैं हरिणी संभ्रमिता ; मरीचिका - छाया ।
यह हाहुताशिनी महा - हुताशन - माया ।
जल रही दिवानिशि कंगाली मैं दीना !
यह प्राण-शिखा मम क्षोम-क्षिप्र, क्षय-क्षीणा।

किस पथिक - वधू - सी नग्ना, लज्जा-हीना
मैं तड़प रही मीन - सी सिकता - लीना ।
तनु-तन्तु-शिरा सुकुमार स्वेद-जल-स्नाता ।
अलि, आज व्यथा-पथ गन्ध-विधुर मदमाता।

रोती जयलक्ष्मी, रोती शिशिर - वनानी ;
हिम-शैल-शिखर पर रोती स्फीत हिमानी !
रोती जल-लहरी कल-कल्लोल - विकासी !
रोती वन-लतिका दीर्घ श्वास-उच्छ्वासी !
युग-चक्रवाक, शेफाली, बकुल उदासी ;
फिरता वन - वन में रोता मम वनवासी ।

जब व्यथा-जलधि में जीवन-ज्वार उमड़ता,
रोता छायापथ ; तारक-शशि रो पड़ता ।
दिग्वेणु, लोक-लोकान्तर क्रन्दन करता ।
दिशि-दिशि में कातर-तर रोदन-स्वर भरता ।
कहता कोकिल से कैरव रुदन - कहानी ।
रोती जयलक्ष्मी, रोती शिशिर - वनानी ।

भीता सशोक मैं आज, कोकनद - वदना ;
कलधौत-कलभ-मद-धौत-गुल्मिनी-सदना ।
मुक्ताफल मानस - राजहंसिनी चुनती ;
कल ज्योतिष्मती यती-सी स्वर-पट बुनती !
ध्वनि विकला कभी कलापी की ज्यों सुनती,
मैं मुक्त-केशिनी रो - रो कर सिर धुनती !
उठता खर झंझावात, प्रपात, प्रभंजन ;
जगती के उत्पल-लोचन में निशि-अंजन !
मैं फिरूँ खोजती अपना नयन - निरंजन !
खो घूर्णि-चक्र में जाय न मेरा खंजन !
चिपका कर उर से प्रियतम-छवि उन्मदना
रोती सशोक मैं विकल कोकनद-वदना ।

मैं करुण कपोती, यह कर्कश कुज्झटिका ;
अलि, ध्वंसावेशित महानाश की घटिका !
रो निशि-वासर , युग-वर्ष-मास-कल्पान्तर ;
कदली , कदम्ब, अश्वत्थ, कपित्थ, उदुम्बर !
रो अप्सरि, सुर-गन्धर्व, नाग-नर-किन्नर !
गोधूलि - लग्न में मेरे सागर , निर्झर !
काँदे वन-राजा , वन की विजया रानी ;
रो धूमध्वज, रो निखिल विश्व के प्राणी !
काँदे मेरी करुणा - वीणा - वाणी !
हाँ, हा-हा स्वर में काँदूँ मैं कल्याणी !
फेकूँ पट - भूषण, अलंकार कल कटि का !
मैं करुण कपोती, यह कर्कश कुज्झटिका !

५६२

श्वेत कुन्द के नव - मुकुलों में
मिला मधुरिमा का आभास ;
अधरों पर अनुराग - निरंजित
पाया सरसीरुह का हास !
रोम - रोम में भरा नवागत
ऋतुपति का यौवन - उल्लास ;
उमड़ रहा कुन्तल - पाशों से
रजनीगंधा का मधुवास !
लहराता अनन्त अन्तर में
सागर का दिगन्त - विस्तार ;
नयनों की राका - रजनी में
दीख पड़ी ज्योत्सना साकार !
यों तो पृथक पृथक हैं शोभित
अम्बर में रवि - शशि-नक्षत्र ;
देव, कहीं पर, मिलीं न मुझको
सारी उपमाएं एकत्र !

विस्मृति के पथ पर

पथ भूल चला—मैं भूल चला !
प्रिय, मेरे कल्प - विटप में यह
कटु विष-फल कैसे आन फला ?
शैशव-स्वप्नों में जब सकाल ,
बेसुध था मेरा विहग - बाल ;
सोया मधु-मानस का मृणाल !
अस्पन्दित अधराधर - प्रवाल !

धीरे - से उतर कौन आली ,
छू गया हृदय का ओर - छोर ?
उठते ही विपुल उमङ्गों के
मचली उर में सौ-सौ हिलोर !
पावस - सरिता - सा उमड़ पड़ा
जग में कविता का सरस स्रोत ;
परिदग्ध विश्व के आल - बाल
हो गये रसों से ओत - प्रोत !

पर, यह स्रावन रे रस-स्रावन ;
दो ही क्षण का—केवल दो क्षण !
जाते ही सावन के जैसे
लुट गये कल्पना के मधुकण !
भावों की नवल परी वह दो
दिवसों की बस, मिहमान रही !
कुंजों में कोयल की वह तो
क्षण भर ही मीठी तान रही !

आई औ आ कर मचा हृदय की
गलियों में रे रँगरलियाँ ;

लो, सूखीं निदाघ - ज्वाला से
अब ये चम्पा की कल कलियाँ !

वह दिन, सुख की वह स्वर्ण-घड़ी,
जब मेरे जीवन में उदास ;
किरणों - सी नाच उठी रुमझुम
वह जीवन की रानी सहास !

मैं था सुख से विह्वल, विभोर ;
प्रमुदित गृह, गृह के आसपास !
सुषमा की अविरल वर्षा से
उल्लसित हुआ मेरा प्रवास !

पथ सरल, सुगम, कण्टक-विहीन;
मैं यात्री एकाकी नवीन !
चलतीं दिन - रजनी को घेरे
सोने की निधियाँ रभस - लीन !

चुनता उपवन में जवाकुसुम ;
द्रुमदल पर बिछा कलित कुंकुम !
नित नई कल्पना, नई लहर ;
नव-नव अभिलाषाएं मनहर !

लेकिन, अब वही निराशाओं में
भूल गया मैं पथ अपना ;
दुर्दिन के प्रबल थपेड़ों से
खोया वह बचपन का सपना !

परियों की दुनिया वह सुन्दर
आँखों से ओझल, दूर हुई ;
निर्मोह नियति की मारों से
इच्छाएं चकनाचूर हुईं !

मासों का बिछुड़न ही लगता
जैसे हो वर्षों का बिछोह ;
मैं छोड़ चुका वह मार्ग आज ,
छोड़ा जग का जंजाल, मोह !

भूला प्राणों का स्वर्ण - गीत ;
रे भूल गया वह मधु-अतीत !
पतझड़ की डालों पर पीली
अब डोल रही बुलबुल सभीत !

चुक जाती बोतल की स्याही
एक ही बूँद में भली - भली ;
लेखनी लाख अरमान लिये
ढूँढती शब्द को गली - गली !

गालों पर हाथ रखे आती
भावुकता मेरी मचल - मचल ;
वापिस हो जाती फिर यों ही
पा कर न किसीको वहाँ अचल !

हैं ये ही मेरे विरहाकुल
अन्तर के धुँधले शब्द - चित्र ;
धो जिन्हें आँसुओं से अपने
मैं करता हूँ नित-प्रति पवित्र !

जिस दिन से पैठी है उर में
अनाहूत यह बीमारी ;
ठीक उसी दिन से रूठी
मेरी कविता - बाला प्यारी !

कैसे उसे मनाऊँ, दिल में
साध नहीं; कुछ चाह नहीं !
आ पहुँचा हूँ वहाँ कि जिसके
आगे कोई राह नहीं !

श्याम - मरण

श्याम-सम सुकुमार; तुम प्रियतम मरण, हे मरण मेरे !

भोर का पंछी

किस श्यामा के करुण - स्वरों में
अपनी वंशी बजा रहे हो ?
किसके आगमनी - उत्सव में
राग भैरवी सुना रहे हो ?
सावधान कर अकर्मण्य जगती को
चंचल, चिता रहे हो !
हे प्रभात के पंछी, किसको
पुनः पुनः यों जगा रहे हो ?

सोया था सपनों में खोया
दिन-भर का हारा, जग सारा ;
प्राची के शान्त तपोवन में
करता झिलमिल संध्या-तारा !

बस, एक बार ही एक बार ,
जग उठे हृदय के तार - तार ;
स्वप्निल दिगन्त के आर - पार
बह चली स्वरों की प्रखर धार !

शाखा-शाखा पर कल कलरव ,
रे चौंक उठे पल्लव - पल्लव ;
किरणों की डोरी पकड़ उतर
आईं भू पर घड़ियाँ अभिनव !

कलियों को थर - थर कँपा गया
शीतल बयार का स्पर्श एक !
ऊषा के स्वर्ण - सिंहासन पर
वह दिनमणि का राज्याभिषेक !

जागा सरवर में शत शतदल ;
पुष्करिणी का कल-कल छल-छल!
आँगन में शिशुओं का टलमल ;
पल-पल पर कोलाहल, हलचल !

जग उठे बिछावन छोड़ - छोड़
बूढ़े - जवान आँखें मल - मल ;
हँसती सुहासिनी बन दुनिया
वन-पराग-वीथिका में खल-खल !

मैदान हँसा; वीरान हँसा ;
रे जीवन का अभिमान हँसा !
फूटा मस्ती का स्रोत जभी ,
इन्सान हँसा, शैतान हँसा !

इस हँसी - खुशी की बस्ती में
तुम रहे आज किसको पुकार ?
लाये हो किसका शुभ सँदेश ?
किस कुसुम-कुमारी का दुलार ?

पी लो, पुष्पों की प्याली में
लो, परिमल का है सार भरा ;
सौरभ के एक बूँद में ही
है अखिल उदधि का ज्वार भरा ;

पत्ती - पत्ती में, कण-कण में ,
उपवन-उपवन में, वन-वन में ;
तन-उर-मन में, जीवन-रण में ,
जगा जागरण निखिल भुवन में !

काननचर, किसका विजय - केतु
फहराते हो दिग्मण्डल में ?
भर दिये मधुरतम गीत विपुल
जल में, थल में, नभ में, पल में !

बोलो, वह बाला आज कहाँ ?
नन्दन का सुमन समाज कहाँ ?

रहता बारहों महीने ही
किस कानन में ऋतुराज कहाँ ?
आता है झोंकों में बह - बह ,
सुन;चिड़ियों का चह-चह,चह-चह!
रह-रह कर बरस-बरस, कह-कह
कुछ हँस पड़ता महुआ मह-मह !

नीला, सफेद, पीला; काला ;
हे चित्र-विचित्रित छवि-धारी !
किसका आमन्त्रण लाये यह ,
उन्मुक्त व्योम - वर - पथ-चारी !
आगमन - गान सुन कर प्यारा
खोलता नयन यह बेसुध जग ;
कैसे प्रतिदिन तुम स्वयं कहो ,
जग प्रथम-प्रथम जाते हो खग ?

लो, सजी आरती की थाली ;
बेला - शेफाली की डाली !
लाली में कैसी हरियाली ?
ऐ विहग, विहग; ऐ वनमाली !
जाना दूर देश के राही ,
तुम न व्यथा से भाग कहीं पर ;
इस तड़ाग में जल न; आग है !
जल में कालिय-नाग कहीं पर !
गाना सरस - विहाग विहंगम ,
मधु-मलार का राग कहीं पर !
रस - पराग से भरे बाग में
पड़े न नख का दाग कहीं पर !

विभेद

हम दोनों में कितना अन्तर; तू मधुसेवी, मैं विषपायी !

५६७

यह करुण - रस की निर्झरी !

आल , बह चली,क्यों आज मेरे
मरु - हृदय में हिमकरी ?
यह करुण - रस की निर्झरी !

विसृत धारा - पात - प्रप्लुत ,
विजन - जनपद संवसथ - च्युत ;
प्रतिध्वनित कल्लोल से द्रुत
शैल - माला गिरि - दरी !
यह करुण - रस की 'निर्झरी !

श्राव से चिर - भाव श्लथ-से ;
वितथ , भय, विस्मय विपथ - से !
कनक के कमनीय - रथ से
उतरती आशा - परी !
यह करुण - रस की निर्झरी !

मुदित सुख , नवपय-प्रपालित ;
मधुरिमा का लोक लालित !
छिन्न षडऋतु-चक्र-चालित
कल्पना की शर्वरी !
यह करुण - रस की निर्झरी !

धृति मिली, मिल गई निष्कृति ;
वेदना की विफल विस्मृति !
तोड़ दृढ़ तट, डुबा संसृति ,
बह चली अलि, मद-भरी—
यह करुण रस की निर्झरी !

एक दोस्त से

भैया, आज ठीक रक्षाबन्धन के दिन पाई है चीठी ;
क्या जानूँ, भर गई हृदय में कैसे एक कसक-सी मीठी !

सजल धरातल, सजल व्योमवर ;
रिमझिम रिमझिम रस का निर्झर !
फूट पड़ा सर्वत्र स्रोत मधु—
जीवन का नवप्लावित, सुन्दर !

इस वर्षा में पत्र तुम्हारा आया नव सन्देश सुनाता ;
और, इधर मैं पड़ा तोड़ कर दुनिया के दुख-सुख से नाता !

आज सभी स्थानों में मृदुस्वर ;
उत्सव - मंगल बाहर - भीतर !
लिये बगल में सूत पुरोहित
डोल रहे हैं द्वार - द्वार पर !

सिर्फ एक पैसे के हित यजमानों की जयकार मनाते ;
और, वहीं पर एक दीन के नम्र प्रणामों को ठुकराते !

पर वह भी क्या मानव - जीवन ?
जीवन जिसका केवल रोदन !
स्मृति - पथ में आ रहे आज सब
एक - एक कर वे दिन, वे क्षण !

जब ऐसे ही श्रावणी पूर्णिमा पहुँची थी उस बार सलोनी ;
और, अभी देखो तो इस राखी-पूनम की सूरत रोनी !

दारुण - कुटिल - वात के खरतर ,
विष - दंष्ट्रों में पड़कर, पिस कर
बहुत दिनों से पड़ा हुआ हूँ
इस दुर्दैव रोग - शय्या पर !

घूमा ज्यों रथ-चक्र भाल का, भूल गया सब दुख-सुख अपना;
बदला दृश्य-निराली दुनिया; लगा देखने मानो सपना !

पहले आई याद : कहानी—
बात बहुत ही एक पुरानी ;
फिर झाँसी वाली रानी की
युद्धच्छवि चमकी मस्तानी !

जलियाँ वाला बाग, पलासी आदि स्थलों का रंग पलटना ;
बक्सर, पूने, जसीडीह की और अभी ताजी सी घटना !

सोचा, किसने अब तक जाना !
बीत गया किस तरह जमाना !
आज मदुमी वहाँ, गूँजता
आजादी का जहाँ तराना !

मूल-मंत्र हो गया बहिन के स्नेह-तार का टके कमाना ;
मर्दानों के रण - शृँगार को मिला रोजगारी का बाना !

कहीं निहत्थों पर मदमाती
तोपों के गोले बरसाती ;
और , कहीं सरकार हमारी
'क्रान्ति' शब्द से ही घबड़ाती !

क्या न खबर इतनी भी उसको कि न झुकता झंझा ओलों से।
कभी कहीं क्या क्रान्ति रुकी है तोपों, बन्दूकों, गोलों से !

अच्छा है हम पर न रहम हो ;
जुल्मों का अन्धेर न कम हो !
हो लगाम हरदम जबान पर ,
साँसत में दम, बँधी कलम हो !

किन्तु, कौन अन्तर के द्रोहानल को बुझा सकेगा सुलगे ?
यों ही इस उधेड़-बुन में थे भाव भग्न-से मेरे उलझे !

इतने में सिर पर कुछ खटका ;
आगम हुआ किसी द्विज-भट का !
चौंका मैं ; त्यों रहा ठिकाना
निरख न मेरी घबड़ाहट का !

एक ओर यह, देवदूत था खड़ा दूसरी ओर वहीं पर ;
उठा एक कर इधर - बढ़ाया उधर अपर कर मैंने सत्वर !

पता न बन्धु, दर्द क्यों जागा ?
सचमुच मैं हूँ बड़ा अभागा !
डरती बहना, इस दुर्दिन में
कैसे बाँधे कच्चा धागा ?

काँप रहीं उगलियाँ, भरी हैं आँखें सुकुमारी की जल से !
बिछड़ गया जब एक बारगी ही मैं सब लोगों से कल से !

बस, अब मुझको अजस न दोगे ;
आशा है - अपना ही लोगे।

देख संकटापन्न अवस्था
इस दुर्बल पर दया करोगे !

जब से रोगाधीन, हुए तब से ही प्रियजन भी बेगाने !
जरा न लिख सकता मैं; फिर भी बोल दिया कुछ इसी बहाने !

उत्तर में

देव, तुम्हारी चीठी प्यारी जब से मैंने है पाई;
पता न तब से कौन वेदना रहती अन्तर में छाई !

सोच रहा मैं— क्या उत्तर दूँ !
किस प्रकार 'हाँ' या 'ना' कर दूँ ?
कैसे रे किस रस से जीवन
के इस शुष्क स्रोत को भर दूँ ?

इस वर्षा में-रिमझिम रिमझिम फुहियों में पहुँची पाती ;
क्या जानूँ कि गई क्यों धड़का उत्पाती मेरी छाती ?

आज, रागिनी रूठी बैठी ;
तार - तार , मिजराब उमैठी !
रोग - राग - लय - कम्पित उर में
एक विचित्र भावना पैठी !

रोता मैं इसलिये, नहीं कुछ रोना दिल से भाता है ;
किन्तु, बिना रोए अब मुझसे बरबस रहा न जाता है !

इसीलिये लेखनी झुक रही ;
भावुकता, मसि - विन्दु चुक रही !
मुँह तक पहुँच - पहुँच कर मेरी
कंठ - ध्वनि सुकुमार रुक रही !

प्रतिभा सोई - कौन हृदय में कोमल भावों को लावे !
इस दुर्दिन में देव, तुम्हारा यह आहत कवि क्या गावे ?

आशा है, प्रिय, क्षमा करोगे ;
यों ही सहज - स्नेह बितरोगे ;
कभी - कभी यों ही करुणा कर
दुखिया का दुख - भार हरोगे !

तड़प रहा जो पड़ा-हुआ क्या ? मैं संकट के शूलों पर ;
भूल न जाना भाई मेरे मेरी अगणित भूलों पर !

६००

चुका स्नेह सारा, लेकिन, है लगा अभी तक तार एक ;
इसी तार में बसा हुआ है सुषमा का संसार एक !
भूली प्रेम-नगर की गलियाँ; सुख की रँगरलियाँ भूलीं !
जीवित है फिर भी मानस में स्मृतियों का परिवार एक !
रीता सुधा-पात्र, दृग प्यासे; कम्पित हृदय-शृङ्खलाएं !
खटक रहा अब भी अन्तर में उस दिन का उद्गार एक !
सूख चली हरियाली, सरिता का रुकने आया रस-स्रोत ;
बहती अब तक भी अतीत-मरु पर पतली-सी धार एक !
खोया सब कुछ, मिला वेदना का अन्तिम उपहार एक ;
चुका स्नेह सारा, लेकिन, है लगा अभी तक तार एक !

६०१

सखे, भूल जाऊँगा तुमको हाय, बात यह किससे जानी ?
सच बतलाओ, यह सवाल क्यों? फिर इसके क्या होता मानी?

मुझको कैसे भूल गये तुम ?
....
अरे यार ! मेरे आँगन में
आये हो क्या नये - नये तुम ?

जो यह खबर सुनाने मुझको पहुँचे आज अचानक प्रियवर !
खूब रही यह अकथ-कहानी; ठिठकी कलम, विकम्पित-सा कर !

क्या बतलाऊँ, रहता कैसे ?
जीवन - सर में बहता कैसे ?
किस्मत ही फूटी जब मेरी ,
इन कष्टों को सहता कैसे !

जीवन और मरण के दोनों ही पाटों के बीच पड़ा हूँ ;
यदि यह जीना है, तो जीवित; और, नहीं तो बन्धु, मरा हूँ !

समझो मत आखिर इतनी ही ;
अब तक भूल हुई जितनी ही !
अभी न जानें सखे, गलतियाँ
हुईं और होंगी कितनी ही !

इसीलिये यह रोग अमिट है; इसीलिये जाता न असर है !
इसीलिये अच्छे होने में, अब भी कुछ-कुछ कोर कसर है !

६०२

आज, माधवी - मण्डप में मेरे
उत्सव का उत्स बहाती—
आई उतर हिमानी - सी
मधु-राका मन्द-मन्द मुसकाती !

नीड़ों में विहगों को उसका,
लतिका को विटपालिङ्गन में—
उतराती शुचि रजततरी - सी
जलथल, नभवन, भुवन-भुवन में !

बहती मृदुल बयार मधुर - गति
कुंजों - कुंजों में मदमाती !
आज, माधवी - मण्डप में मेरे
आई राका मुसकाती !

सोई रजत - पाश में मधु - श्री ;
आस-पास में शैल - तटी के !
जाग्रत रोम - रोम में कम्पन
नृत्य-लास-रत प्रकृति-नटी के !

झूम रही उन्मुक्त - कुन्तला
दिग्वसना दिग्चक्र चलाती !
आज, माधवी - मण्डप में मेरे
आई राका मुसकाती !

देवदारु की चारु वीथिका ;
हिमगिरि के उतुङ्ग - शृङ्ग पर !
क्षितिज-विचुम्बित महासिन्धु के
ऊर्मि-गीतियों में जीवन भर !

लज्जावती - लता - सी छिपती,
सकुचाती, छवि-मुग्ध, लजाती ;
आज, माधवी - मण्डप में मेरे
आई राका मुसकाती !

राशि - राशि सौरभ उँड़ेलती
रजनीगन्धा के प्राणों में !
भूल रही पथ रेणु - रेणु मधु—
वेणु-ध्वनित, शिंजित तानों में !

रस बरसाती, तरसाती उर,
जग सरसाती, मग हरसाती,
आज, माधवी - मण्डप में मेरे
आई राका मुसकाती !

६०३

आनन्द की कादम्बिनी !
अलि, जटिल मेरे मुग्ध जग में
छा रही सुख - वर्द्धिनी !
आनन्द की कादम्बिनी !

आज, परिणय का द्रवित रव ;
प्रथम-निशि का मिलन-उत्सव !
बह चला रति - उत्स अभिनव
ले सुधा रस - वर्षिनी !
आनन्द की कादम्बिनी !

सुमन - शय्या - शायिनी - सी,
मैं बनी वरदायिनी - सी ;
प्रणय - पथ - अनुयायिनी - सी
नन्दिनी, भुज - वन्दिनी !
आनन्द की कादम्बिनी !

कब मुँदे लोचन ? खुले कब ?
चेतना आई पुनः जब—

कलरवित मन्दाकिनी तब ,
मन्द मन्द प्रवाहिनी !
आनन्द की कादम्बिनी !

हाय , तृप्त न हुई आली ;
रसवती रसना निराली !
लौट जा प्रिय अंशुमाली !
उषा में प्रतिवेशिनी !
आनन्द की कादम्बिनी !

आज पायी चिर-अभीप्सित ;
स्नेह - धारा रभस - विगलित !
रहे युग - युग तक नवल - नित
यह समाकृति मोहिनी !
आनन्द की कादम्बिनी !

६०४

सहकार की ले मञ्जरी ;
अलि , आज मेरे प्रमद वन में
नाचती सुर - सुन्दरी ;
सहकार की ले मञ्जरी !

थी स्वगृह में . ससुद सोई ,
जगा जैसे गया कोई ;
सुन पड़ी ध्वनि मुरलिका की
मद - भरी , सुषमा - भरी !

थरथराई गिरा ज्यों ही ,
खुल पड़े दृग - पलक त्यों ही !
सुमन - दल में दी दिखाई
नृत्य - निरता किन्नरी !

तन विभूषण से सुसज्जित ;
स्वरों में जल - थल निमज्जित !
मुक्त कर जड़ - बन्ध - जग थी
गूँजती आसावरी !

स्वर - सुरा मैं पी निराली ;
बन गई उन्मत्त आली !
फिर , न जानें , किस दिशा को
ले उड़ी वह कल परी !

आज पाई हूँ उसे फिर ,
चिर दिनों पर चपल , अस्थिर !
मुखर मेरा मंत्र, गति, लय ,
निर्झरी रे निर्झरी !

६०५

हे प्राणों के प्रिय, जीवन - धन !
खुला सर्वदा ही रहने दो मेरे अन्तर का वातायन ;
जिससे त्रिविध समीरण आये सभी दिशाओं से मनभावन !
भर जाये यह शान्ति-निकेतन मधु-गन्धा-सौरभ से पावन !
लेकिन हाँ, इतना मत खोल ;
डोल उठे जिसकी झोंकों में हृदय - दीप की लौ ही लोल !

हे प्राणों के प्रिय, करुणामय !
रहे अरुद्ध सदा ही मेरा जीवन - द्वार निरामय, निर्भय ,
झाँक सके जिससे कुटीर में प्रथम - प्रात का नित सूर्योदय !
देती रहें निरन्तर किरणें अपनी कान्त-कला का परिचय !
किन्तु, न हो इतना मोचन;—
प्रखर प्रभा की चकाचौंध से बन्द न हो जाये ही लोचन !

हे प्राणों के प्रिय, चिर - नूतन !
हों न बेड़ियाँ पैरों में, हाथों में कड़ियाँ, तन में बन्धन ;
पड़ा लोचनों के आगे हो विस्तृत भू , प्रशस्त जग-प्रांगण !
कोई रोक न टोक कहीं हो, गूँजे स्वतंत्रता का गायन !
सदा मुक्त हो मानस - प्राण;—
पर, न कहीं इस महामुक्ति में मिले विशृङ्खलता का दान !

अनुनय

जब छा जावे जीवन - पथ में
रजनी तमसाकार ;
अन्तर्हित नभ से रवि-शशि हों ,
सूझे आर - न - पार !
तब हे प्राणाधार—
सुप्रकाश की एक ज्योति बन
आना तू सुकुमार !

जब विलुप्त संज्ञा हो, चिर-दिन का
अस्तित्व मलीन ;
स्नेह - हीन जीवन - प्रदीप की
लौ हो जाये क्षीण !
तब हे करुणागार—
अमृत - स्रोत में मज्जित मेरा
कर देना संसार !

जब संसार - सिन्धु में मेरी
जीवन - नौका क्षुद्र ;
डगमग डोल उठे झंझा का
सह न प्रताड़न रुद्र !
तब हे जीवन-नाथ;—
झट उबार लेना तू मुझको
धर दृढ़ता से हाथ !

आगे बढ़ न सकूँ जब लेकर
भूली - भटकी चाह ;
किसी गहन - कानन में खो
जाये मनचाही राह !
तब हे महिमावान—
ध्रुव बन कर आना तू मेरे
मनोलोक में म्लान !

विकट प्रहारों से जब जग के
मन हो जाय अशान्त ;
भ्रष्ट विवेक, नष्ट हो साहस ,
और हृदय भय-क्रान्त!
तब हे मायातीत—
अपनी चरण - रेणु से मानस
कर देना विस्फीत !

चलते - चलते आ जाये जब
दुनिया से कुछ दूर ;
हो जाये यह जीवन - यात्री
थक कर चकनाचूर !
तब हे महा-विराट !—
देना सत्वर मेरे सारे
भव-बन्धन को काट !

जब विषयों के गुरु - निनाद से
मानस हो विभ्रान्त ;
विपुल वासना के प्रवाह में
बह जाये उर-प्रान्त !
तब हे दीनदयाल—
फैला देना शिर पर अपना
करुणा-छत्र विशाल !

६०७

यह जीवन की लौह - शृङ्खला
कब टूटेगी, क्या जानूँ मैं ?
तन से आवागमन - मेखला
कब छूटेगी, क्या जानूँ मैं ?

जैसा करुणानिधि को भाया,
वैसा ही बस, मुझे बनाया!
यह कंचन की निर्मित काया,
शरद निशा में मृत्यु - सुन्दरी
कब लूटेगी, क्या जानूँ मैं?
यह जीवन की लौह - शृङ्खला
कब टूटेगी, क्या जानूँ मैं?
अरे, एक ही यात्रा - पथ पर
चलते चलते श्रान्त हुआ मैं!
जर्जर देह, शिथिल पद दोनों;
विकल प्राण-मन, भ्रान्त हुआ मैं!
अब तो दया करो कल्याणी!
ले लो इन आँखों का पानी;
मिले न जो फिर मुझको रानी;
दे दो मरण - दान वह मेरा
खिन्न हृदय, विक्लान्त हुआ मैं!
चलते चलते आज एक ही
यात्रा-पथ पर श्रान्त हुआ मैं!
जग के वात - चक्र से निर्मम
नयन म्लान, पद घूर्णित मेरे;
आशाओं की कली प्रताड़ित,
भाव हृदय के चूर्णित मेरे!
एक इशारा अब हो जाये;
जीवन के सुख-दुख धो जाये!
चिर-दिन के हित दिन सो जाये!
आज, महानिद्रा में तत्पर
स्वप्न जगत के पूर्णित मेरे!
जग के वात - चक्र से निर्मम
नयन म्लान, पद घूर्णित मेरे;

माया-मृग

किया स्वर्ण-मृग हित हठ, सीता
को इतनी भी समझ नहीं!
क्या न राम को पता कि कंचन
का भी होता हरिण कहीं!
कैसे पुरुषोत्तम कहलाये?
जो उसके पीछे यों धाये!
बच न हाय लक्ष्मण भी पाये!
ज्यों ही सुना कण्ठ - स्वर अग्रज
का पहुँचे तत्काल वहीं;
क्या न राम को पता कि कंचन
का भी होता हरिण कहीं।
बन जाता सर्वज्ञ राम - सा
भी भव में यों अज्ञानी।
पहचानी न सुमित्रानन्दन
ने भी भ्राता की वाणी!
यद्यपि संगति आजीवन की,
सीता तो प्यासी भूषण की!
राम कामिनी की चितवन की!
यह तो उसकी ही पुकार थी,
जिसपर दुनिया बौरानी!
बन जाता सर्वज्ञ राम - सा
भी सुन जिसको अज्ञानी!
आदि - काल से यों ही कंचन
और कामिनी की माया
झुलसाती आती खर - मरु में
दुर्बल मानव की काया!

कितने राम भटकते वन में ;
सीताएं रो रहीं विजन में !
किन्तु, न वह मिलता त्रिभुवन में !
मरु - मरीचिका की विस्तृति पर
कह, किसने कब जल पाया ?
आदि काल से यह रे कंचन
और कामिनी की माया !

मुकुल

मुकुल , मुकुल ;
मृदु-मृदु , लघु-लघु, मंजुल-मंजुल !
लज्जा में नव अवयव सिकोड़ ;
अपने ही सुख - दुख में विभोर ;
आई रे किरणों की हिलोर !
हँस पड़े - पड़े हँस आज , भोर !
ये विपुल - विपुल ;
किस पुलक - स्पर्श से हो व्याकुल !

डाली - डाली पर झूम उठीं
धानों की धानी मञ्जरियाँ ;
उतरीं अलका से नृत्य - निरत
यौवन की लाखों ही परियाँ !
सरिता के सरस दुकूलों पर ,
फूलों - फूलों पर फुलझड़ियाँ ;
कानकी विभा में तड़ित्प्रभा
मुसकायीं कानन - किन्नरियाँ !

मुकुल , मुकुल ;
सुषमा का स्नेह - स्रोत वर्तुल !
करते भावों के भग्न ध्यान ,
चल मदन - प्रिया के नयन - बाण !
शीतल रे ऊषा का वितान ;
सौरभ से मादक विकल प्राण !
ये मृदुल - मृदुल ;
सिहरे एक बार ही मिल - जुल !

कलियों के रोएं - रोएं पर
उमड़ीं अनन्त पुलकावलियाँ !
पलकों पर , कोरों में दृग के
भर आईं जल - मुक्तावलियाँ !
कोने - कोने में उपवन के
मचलीं लोलुप मधुपावलियाँ !
मँड़राईं अधरों पर जग के
करुणा की प्रेमघनावलियाँ !

मुकुल , मुकुल ;
उलझा क्यों उर में मधु संकुल ?
कलरव से मुखरित विहग - नीड़ ;
तन्द्रा - निमग्न सालस शरीर !
बहता अलसित विलसित अधीर
रे मन्द - मन्द प्रातः - समीर !
ये बहुल - बहुल ;
मुसका दीं आज सुधा से धुल !

हम खोज रहे उत्सुकता से
अम्बर में चन्द्रकान्त मणियाँ ;
वन वन में आग लगा देने
वाली वे वंशी की ध्वनियाँ !
रजनी के कृष्णाञ्चल - पट में
लिपटी थीं मानस की कृतियाँ ;
लो ; पुनः नवीन विवर्तन से
जागीं ये स्वप्नों की स्मृतियाँ !

मार्ग-भ्रष्ट

अन्तराल ;
तमपूर्ण निशा का निबिड़ जाल !
झुकता विराट का तुङ्ग भाल ;
झंझा के झोंकों से कराल !
व्याकुल नीड़ों में विहग-बाल ;
बेसुध रे जग के आल - बाल !
पथ अन्तहीन, मरुवत विशाल ;
यह घोर विपिन का अन्तराल !

महानाश ;
उमड़ा नटवर का ध्वंस-लास !
उन्मुक्त महाम्बर, महावात ;
पल - पल पर होता वज्रपात !
दारुण प्रलयानल - भस्मसात ,
दिनकर-निशिकर, संध्या-प्रभात ;
करता ताण्डवकर अट्टहास !
यह रक्तपर्व का महानाश !

सावधान ;
रे खो न अविचलित दिशा-ज्ञान !
हो रहा कहीं यदि मृत्यु-घात ;
तो कहीं तीव्र-ध्वनि जल-प्रपात !
तू कोमल-उर; तन वारिजात !
अज्ञात देश—अज्ञात यात !
हों शिथिल न भय से लता-प्राण;
इस अग-जग में रे सावधान !

क्या दिग्भ्रम ?
असफल तव तापस का सब श्रम !
यह निशाचरों का मायावन ;
छलनामय इसका रज-कण-कण !
रलमल करता पथ पर भुजङ्ग ;
हरि-करि, लवङ्ग, शूकर, कुरङ्ग !
चल देख-भाल सम्मुख क्रम-क्रम ,
हो गया तुझे क्या रे दिग्भ्रम ?

दृढ़ निश्चय ;
कर प्राणों में साहस - संचय !
आये यदि शंका - विघ्न - बोध ,
तू रुक न, रोक मन; चल अरोध !
संग्राम ग्राह्य; होता न त्याज्य !
शूलों में ही वह फूल - राज्य !
हो तेरा यहीं शक्ति-परिचय !
रे दृढ़ निश्चय कर, दृढ़ निश्चय !

कस्तूरी-मृग

अरे, कहाँ से आज सुरभि यह
इतनी उमड़ाई ?
तृण-तृण में, कण-कण में कैसी
मादकता छाई ?
मैं पागल बन भटक रहा वन - वन में ;
जल में, थल में, उपवन-पवन, गगन में !
मेरे सौरभ - व्याकुल - पीड़ित मन में
अलस-वेदना आई !
अरे, कहाँ से आज सुरभि यह
इतनी उमड़ाई ?
मुझे न कोई इस रहस्य का
उद्गम बतलाता !

हाय, कहाँ से इतना सौरभ
उमड़-उमड़ आता ?
कुसुमित गिरि-कानन में द्रुमदल हिलता ,
सरि-पल्वल में अमल कमल-दल खिलता!
किन्तु, कहाँ त्रिभुवन में प्रिय वह मिलता
वह मेरा मदमाता ?
हाय, न कोई इस रहस्य का
उद्गम बतलाता ?

अरे, न जाना जिसपर मैं था
इतना बौराया ?
वह तो मेरे ही यौवन की
थी मोहन-माया !
सुरभित जिससे फूल-पत्तियाँ सारी ;
हिम-मंडित गिरि-शृङ्ग-शृङ्खला प्यारी !
होता जिसपर निखिल विश्व वलिहारी ,
स्वयं न मैं लख पाया;
वह तो थी मेरी ही काया की
छाया - माया !

६१२

दीपावलि बन गये निमिष में
अपने ही विरहाकुल प्राण !
झुके वासनाओं के शत शत
शलभ - पुञ्ज होने वलिदान !
क्या जानें , क्यों जलती रहतीं
घड़ियाँ यों दीवाली - सी ?

क्षणभर का ही परिचय, क्षणभर
की ही तो उस दिन पहचान ;
फिर कैसे बस गई अनुपमा
छवि वह मेरे उर में आन ?
रहती हूँ बेपिये हाय , क्यों
निशि-दिन मैं मतवाली-सी ?

उमड़ाता जब रजनी के पलकों
में मदिर - तिमिर का भार ;
क्षितिज चूमने को उठता रत्ना-
कर के अन्तर का ज्वार !
सारी रात किया करती मैं
किसकी यों रखवाली - सी ?

यहाँ न अपना दिखता कोई ,
रमता शून्य - निरत सुनसान ;
पथ अज्ञात, दिशाएं अविदित ,
कंकड़ - पत्थर , राह अजान !
आई इस ज्वाला - प्रान्तर में
मैं क्यों भोलीभाली - सी ?

आज, शिशिर के तुहिन-प्रात में
काँप रहा है दक्षिण - वात ,
शिथिल पड़ा नीरव निशान्त में
हिमस्नात ऊषा का गात !
लिपटी क्षितिजाचल से आमय
यह कैसी अँधियाली - सी ?

हे मेरे प्राणों के पति , हे
करुणा के शुचि पारावार ;
आज , तुम्हारे ही चरणों पर
अर्पित यह जीवन सुकुमार !
लो समेट अपने ही उर में
मुझे उषा की लाली - सी !

भाग्य-रेख

अजब गरीबी यह भी भाई, जिसका पता न कोई पाता;
यह भी दुख कैसा कि भोगने जिसे अमरपति भी ललचाता!

हृदयहीन समझेगा कैसे?
जैसे तब था, अब भी वैसे!
सपनों की दुनिया यह, बिकते
माटी की कीमत में पैसे!

मोती का बाजार लगा है—रुपै ठीकरे, उपले सोना;
अपना दिन, अपनी ही रातें, गाना-सोना, हँसना-रोना!

झूल रहे हैं लत्ते तन पर,
नमक-दाल का सौदा दिन भर!
कागज नहीं पास में, क्योंकर
दिया जाय मित्रों को उत्तर!

पूर्ण कल्पना हुई न; देखो तो-चुक गई कलम की स्याही!
उधर तकाजा है पत्रों का, इधर द्वार पर खड़ी तबाही!

लिखने कुछ बैठा कवि ज्यों ही,
कहने आई गृहिणी त्यों ही;—
अरे, जलावन नहीं-खबर है?
मानेंगी न रोटियाँ यों ही!

रोते मोहन-सुधा भूख से; बैठे हो-पीटो भी पानी;
मुसकाया कवि साश्रु दृगों में-सुखी तुम्हें पा कर ही रानी!

बाहर सन्नाटा - खामोशी;
बहती गंगा, कमला, कोशी!
लेकिन तो भी छाई रहती
आठों पहर यहाँ बेहोशी!

दिलके पर्दे पर जब आती छम छम करती बोतलवाली!
सब कुछ जाता भूल जगत का;दुख-सुख,पाप-पुण्य सित-काली!

मैं दीवाना; जग दीवाना!
कारूँ का है खुला खजाना!
भले कहीं पर मिले न जल भी,
चलता मगर यहाँ मैखाना!

ढलता मै, अलमस्त हुआ दिल, पस्त हुई फिक्रों की बस्ती!
अजब हमारी बन्धु गरीबी, अजब हमारी फाकेमस्ती!

६१४

आज, विरह में माधव के रो रही राधिका भयभीता;
लंका के अशोक-उपवन में रोती कुररी-सी सीता!
सुनें, कदम्ब की सूनी डाली पर बुलबुल कुछ गाती है!
ताजमहल के नीचे यमुना क्यों रह-रह बल खाती है!
सुनता हूँ, दूरान्त क्षितिज में मैं मुरली की मोहक तान!
भागी जातीं व्रज-बालाएँ तज ललनोचित लज्जा, मान!
अहा, एकचक्रा में आया बक का क्षुधा-क्षुब्ध आह्वान;
चिन्तित है कुन्ती द्विज-दुख से; लेगा यह किसका बलिदान?
देखा था कल जिन फूलों को फुलवारी में मुसकाते;
चारों ओर भाँवरे भरकर भौंरों को भन-भन गाते!
आज, वही सो रहे वृन्त से च्युत हो, मिट्टी में मिलकर;
क्या मुरझाना ही जीवन का चरम लक्ष्य है इस भूपर!
अभी-अभी तो खोली ही थीं सोने की पलकें सुकुमार;
इतने में अज्ञात रूप से देव, तुम्हारी हुई पुकार!
कैसे उस पुकार को ठुकरा दूँ! आज्ञा सिर-आँखों पर!
किन्तु, जरा जाने के पहले हँस लेने दो तो खुल कर!

६१५

घटना क्यों इतनी अद्‌भुत?
हम पूजा करते नित तेरी; करते तेरा आराधन।
किन्तु, न मिला कभी सुख हमको, मिटा न करुणामय क्रन्दन!
और, भुला तुझको जो करते पापों में पद-प्रक्षालन;—
वे ही पाते ऋद्धि-सिद्धियाँ; औ समाज में उच्चासन!
क्या असत्य ही श्री-धीयुत?
फिर क्यों यह पाखंड? जगत में छल-प्रपंच का संचालन!
अथवा तस्कर और हिंस्र ही तेरे प्रीति-कृपा-भाजन?
क्या इसका कारण! की ऐसी क्यों कटु-कुटिल-नीति धारण?
यदि अपना ही कर्म शुभाशुभ; तो फिर क्यों सेवा-अर्चन!
कभी ज्ञान भी होता च्युत!
देख न्याय तेरा हो जाती बुद्धि भ्रान्त, मानस चंचल;
दुर्लभ बनी हमें क्यों तेरी वरद-हस्त-छाया निश्छल!
जय अधर्म की, हार सत्य की, दलित पुण्य-कलिका कोमल;
यदि तू है, तो निश्चय ही फिर तेरी महिमा अमर प्रबल।

छोटे बाबू

छोटे बाबू, छोटे बाबू, तुम भी कैसे बावन हो।
बावन तो भगवान स्वयं थे, तुमतो तिरपन, पचपन हो!
बुरा न मानो, सच कहता हूँ, तुम भादों हो, सावन हो!
जब चाहा, तो बरस पड़े, बस, हँसमुख हो, मनभावन हो!
चींटे की मोटर - बस दौड़ी, एरोप्लेन तितलियों का!
कागज की तो नाव चलाई, पाल उड़ा नवकलियों का।
हम तो गेंद खेलते, गुल्ली-डण्डा और कबड्डी जी!
तुम कैसे दौड़ोगे? रह जाओगे सदा फिसड्डी जी!
सीढ़ी पर चढ़ बैंगन तोड़ो, फूल टटोलो अंधे - से;
छूओ घर की कोरो - बत्ती भैया जी के कंधे से!
दाँत नहीं-बूढ़े हो, जाओ, कैसे खाओगे अमरूद?
पीते दूध रबर की नल से, तुम तो हो बिल्कुल ही ऊद!
आसमान में क्या न उड़ोगे? करो अभी तो ताथैया!
इन डगमग डगमग पैरों से काम न चल सकता भैया!
पहले टिक-टिक करो काठ के घोड़े पर, फिर लट्टू पर!
इसके बाद बैठ तुम जाओ निर्भय अपने पट्टू पर!
कुत्ते की दुम से फीते बँध चली रेलगाड़ी कैसे?
ट्राम और लाड़ी को खींचे बकरी बेचारी कैसे?
देखो, आमों में आये हैं मंजर, लीची - कटहल में;
तुम भी क्या आनन्द करोगे बागों में, फूलों, फल में!
हम तो जाते अभी उन्हें बस, ढेले मार गिरायेंगे!
छोटे बाबू, कहो तुम्हारे लिये न क्या कुछ लायेंगे?

लँगोटीवाला

अजी लँगोटीवाले, बोलो, कैसा वेश बनाये हो?
मिट्टी खाकर आये हो, क्या मुझे खिलाने आये हो?
सारे तन में धूल लगाकर लगते सच भोलाबाबा;
लावा - चने चबाओगे या लाऊँ कुछ मिसरी - मावा?
बड़े बने हो पहलवान यदि, मुझसे कुश्ती खेलो तो!
लाओ गाल इधर तो, मेरी एक चपत ही झेलो तो!
कानों में कुंडल, हाथों में कड़े, पाँव में हों जूते;
खाने को चीनी ही, गुड़ तो राजा जी न कभी छूते!
बालू का घर, खपड़े रुपये, ईंटों का चूल्हा - जाँता!
कुत्ते और बिल्लियों से यह जोड़ा है कैसा नाता!
यह कैसी सूरत मनभावन, अदा बनाई है बोलो?
गूँगे हो क्या जो न बोलते हो कुछ भी, मुँह तो खोलो!
तुम्हीं ताड़ के पत्ते की बाँसुरी बजानेवाले हो!
जंगल में मंगल, ऊसर में फसल लगानेवाले हो!
यार, तुम्हीं हो सूरत मस्ती की, शीराजी का प्याला!
उजियाला है वहीं जहाँ तुम, जहाँ नहीं, वह अँधियाला!
फेरो तो उँगलियाँ पियानो - सारंगी के तारों पर!
नाचो तो बन कुँवर कन्हैया, भैया के पुचकारों पर!
कहो, आज किसका मुखड़ा हँसता-सा तुम लख पाये हो?
अजी लँगोटीवाले, कैसा वेश बना कर आये हो?

भारतेन्दु

अस्तप्राय था जब हिन्दीका भाग्य - प्रभाकर ज्योतिर्मय,
भारतेन्दु, साहित्य - गगन में हुआ तुम्हारा पूर्णोदय!
हे नवीन युग - धर्म - प्रवर्तक! तुमने नवयुग पहचाना!
फूटी शत - शत धाराओं में रस - निर्झरी, विकल - प्राणा!
रीति-छन्द - इतिहास-नाटिका, पाया सबने स्वर्ण - प्रकाश;
सुकवि! सर्वतोमुखी तुम्हारी प्रतिभा का उन्मुक्त विकास!
दीख रही जो आज पल्लवित काव्य - वाटिका की क्यारी;
देव, तुम्हारी ही सेवाओं का फल है निश्चय सारी!
परोपकार-रत, रसिक-शिरोमणि, राधावर-पद-भक्त अनन्य;
एकनिष्ठ तुम - सा सेवक पा आज राष्ट्र - भाषा है धन्य!

६१६

सरिता - सा ही तो मेरा भी है जीवन का अलि; प्रक्रम;
फिर क्यों मेरे जीवन - पथ में इतनी बाधा, इतना श्रम?
वह तो बहती ही जाती है तोड़ शृङ्खलाएं - संकट;
कौन चुनेगा पर, मेरे इस पथ के इतने कुश - कंटक?
प्रियतम की सुकुमार कल्पना मिलनोत्कण्ठा छिपा ललाम?
किस निर्मोही के चरणों पर लूँ मैं क्षण भर का विश्राम?
करते कानन के ये तरुगण किस रहस्यमय का संकेत?
पहुँच सकूँगी क्या अलि, मैं भी अपने संगम रर अभिप्रेत?
सरिता तो आली, दीवानी ज्ञात नहीं शंका, संभ्रम;
इसीलिये क्या मेरे पथ में इतनी बाधा, इतना श्रम?

६२०

इस विजन - वन में पहुँच कर
रुक रही अब राह क्यों?

दीखता कोई पथिक जाता न इस सुनसान में;
गूँजती ध्वनि घोर-कानन - चारियों की प्राण में!
वृन्त ही पर गई मुरझा
अधखिली - सी चाह क्यों?

हाय, कैसे हो सकूँगी अग्रसर मैं बावली?
मैं अकेली और मेरी यह अधीर उतावली!
हो रही वन - रुदन - सी सखि,
व्यर्थ मेरी आह क्यों?

आँसुओं से छलछलाते लोचनों की कोर से;
देखने का किया उपक्रम उँगलियों की पोर से!
आ गई सहसा—समाई
भावना में लाज क्यों?

अर्द्ध-मुकुलित बालिका—शेफालिका से मान कर,
मैं चली थी बादलों की आर्द्रता पहचान कर!
धूल में मिल गई फिर भी
कामनाएं आज क्यों?

चूम कोमलतम कपोलों को मधुरतम प्यार से;
अलि, कहा मैंने उन्हें झुक चाँदनी के भार से!
डालते भ्रम में मुझे ही
निठुर मेरे प्राण क्यों?

जा रही हूँ आज अपने उस अपरिचित-देश में;
क्या पता किन ग्रहों से टकरा पड़ूँ अवशेष में!
उमड़ आते दृग - पथों से
अश्रु के मिस गान क्यों?

नग्न-पद बरसात की रस से सिसकती रात में;
मचल आई तुहिन-वन के शिशिर-विकसित प्रात में।
शिथिल श्रम से हो गई
अब आपही मैं आप क्यों?

खिन्न-मन, अवसन्न अन्तर; दुःख से, अवसाद से!
समझ बैठी बिम्ब को प्रिय-मूर्ति ही उन्माद से!
आज, वर भी बन गया
शुचि-तापकर अभिशाप क्यों?

दिग्वसना

इन्द्रधनुष के रंग बिरंगे परिधानों को त्याग
अरी, किन्नरी-सी तुम वन में गातीं कौन विहाग?
भाग सजनि, अलका से तजकर यक्षों का अनुराग
फैलाने आईं क्यों भू पर तुम पराग की आग?

नैश मारुत में शिथिल शरीर
किसी की स्मृति में विकल, अधीर
खोजते पल्लव का परित्राण!
तुम्हारे चिर -विरहाकुल प्राण!

नील-गगन में खींच पिङ्गला रेखाओं को वक्र
चालित दिग्दिगन्त में करतीं महा-प्रलय का चक्र;
मुक्त, मेघ - वर्ण वर्णों में लिखतीं मरण-मुहूर्त्त
स्वर्ण-शलाका से दिङनागों के मुख पर अविमूर्त्त!

निराशाओं का हाहाकार;
तुम्हें क्या ज्ञात विधुर का प्यार!
इसीसे यों उन्मत्त अपार,
एक पग इधर, एक उस पार!

रौंद अशिव शिव-वक्षस्थल को कुचल गौरवोत्कर्ष;
जिह्म वह्निजिह्वे, बन आईं स्वयं शक्ति दुर्द्धर्ष!

लक्ष-लक्ष लोलेक्षण अक्षौहिणी सैन्य कर नाश,
अये अलक्ष्ये,क्यों विपक्ष में? मथित उदधि-आकाश!

नग्न नर्त्तन अवलोक त्रिलोक
काँपता ज्यों श्वासों का ओक;
महोदधि की लहरों को रोक
उमड़ता सजनि, तुम्हारा शोक!

ले फणीश के विष-दन्तों में अधरामृत की प्यास;
आँखमिचौनी खेल रहीं क्यों जग से आज सहास?
रूपसि, रुको-एक पल रोको, कर्कश जय-उद्घोष!
हमें लुटा दो अपने विह्वल नयनों का ही कोष!

६२२

आज, यह गन्धर्व-बाला;
गूँथती किसके लिये
कल-हासिनी मृदु-किरण-माला?

पद्म-पद में मधुप-नूपुर;
विधुर उर मधु-मिलन-आतुर!
गन्ध-पुंजित, गुंज-शिंजित,
किन्नरों की रंगशाला!

स्वर्ग-च्युत मन्दार-रथ से,
आ गई वाताक्ष-पथ से;
प्राण-पिक ने प्रेम-तरु से
प्रथम पंचम-स्वर निकाला!

जा रही अभिसारिका-सी,
भू-पतित नीहारिका-सी;
चाहती चपला किसीके
मृदु-प्रणय का एक प्याला!

रुचिर-चिर-कल प्रचुर कुंकुम,
खुल पड़े ये अधर-विद्रुम;
जलद-रशना को विवसना
ने कुचों पर सकुच डाला!

स्पर्श-सुख से पुलक-अभिनव,
कलित-कान्त कपोल-पल्लव;
प्रथम-संगम-जनित लज्जा—
रुण तरुण-यौवन निराला!

नैश-जागर खिन्न मानस;
पीत-विधु-मुख, दृग मदालस;
लो, प्रपंची पंचशर ने
कुसुम-केशर-शर सँभाला!

नृत्य-श्लथ, जीवन-पवन से;
उतरती वह मुकुल-वन से!
आज हर लेगी मधुरिमा
प्रेम की चिर तृषा-ज्वाला!

सावन

सावन आया, मनहर सावन;
मनहर सावन, सरस सुहावन!

काले-काले जलधर आये;
आसमान में सजल, सुहाये!
बिजली चमकी, बादल गरजा;
चारों तरफ़ अँधेरा छाये!
आई सुख की घड़ियाँ पावन;
सावन आया, सरस सुहावन!

अम्बर में उड़ते बक सुन्दर;
मन्द समीरण बहता मृदुतर!

मोर नाचते सघन विपिन में
अपने मोहक पर फैला कर ।
सरस हुए मथुरा , वृन्दावन ;
सावन आया , सरस सुहावन !

रिमरिम रिमझिम बूँद बरसती ;
कुहू-कुहू - ध्वनि कोयल करती !
झीम रहे रस से सारे तरु ,
भींग रही वर्षा में धरती !

घिरे सघन-घन अति मनभावन ;
सावन आया , सरस सुहावन !

इन्द्रधनुष की छटा कहीं पर ,
कहीं निर्झरी का झरझर-स्वर !
'पिया' पपीहा कहीं पुकारे ,
कहीं नदी का हर-हर-हर-हर !
दुर्लभ - सा सर्वत्र जलावन ;
सावन आया , सरस सुहावन !

आम खूब इस साल फले हैं ;
लड़के सब उस ओर चले हैं !
कुछ कागज की नाव बहाते ;
कोई गाते ही निकले हैं !
उछल-कूद कर प्राण - लुभावन ;
सावन आया , सरस सुहावन !

देखो तो ईश्वर की माया ;
कहीं धूप , कैसी यह छाया !
जला गया जिसको निदाघ है ,
जलधर आज जिलाने आया !
हरी दूब की बनी बिछावन ;
सावन आया , सरस सुहावन !

मुक्ति

प्रिय, आज तुम्हारा कीर मुक्त ;
पुर - परिजन - बान्धव - विप्रयुक्त !
एकाकी यह एकान्त - वास ;
खोजता शून्य में चिर - प्रकाश !
रुज-मलिन, केश-मुख वेश दीन !
सुख यही, न अब यह पराधीन !
चिर पारतन्त्र्य - दुख - रोग - मुक्त
प्रिय , आज तुम्हारा कीर मुक्त !

भूला कारागृह का विहान ;
वन्दी - प्राणों का रुद्ध गा
बढ़ चले कहीं भी, किसी ओ
यह जीवन की शृङ्खला तोड़ !
व्यापे न जगत-संताप उक्त ;
प्रिय, इसीलिये यह कीर मुक्त !

सन्देह नहीं , यह मार्ग ध्वंस ;
बाधा अपार , निर्मम नृशंस !
फिर भी न दूसरी आज राह ,
मेरे स्वामी की यही चाह !
पुर - परिजन, बान्धव - विप्रयुक्त
प्रिय, आज तुम्हारा कीर मुक्त !

प्रिय , आज पिंजराबद्ध कीर
हो गया मुक्त, हो गया वीर ;
बन्धन आजीवन का विभेद ,
यह आज शाश्वतानन्द , खेद !
कह रहा अन्नदाता पुकार—
आ जा, ओ, आ जा एक बार !

ले स्वर्ण-पात्र में क्षीर-नीर;
प्रिय, किन्तु, आज यह मुक्त कीर!

कितनों के उर में चुभा शूल;
कितने मित्रों का मंत्र भूल;
भागा यह कंचन-नीड़ छोड़;
बन अब कृतघ्न, कपटी, कठोर!
निर्द्वन्द्व प्राण, अशिथिल शरीर;
प्रिय, आज तुम्हारा मुक्त कीर!

सच, कितने अपनों को उदास;
कर दिया अनेकों को निराश!
पर विवश, पन्थ मेरा अनन्त;
सागर असीम–दुस्तर दिगन्त!
उड़ चला महा आकाश चीर!
प्रिय, आज तुम्हारा मुक्त कीर!

निष्फल कर जग का मोह-मंत्र
यह कीर तुम्हारा प्रिय, स्वतंत्र!

सुख से जो करता आर-पार
निस्सीम व्योम-पथ में विहार!
कड़ियों में बाँधे उसे कौन?
बँध कर भी क्यों वह रहे मौन?
खण्डित कर क्षण में लौह-यंत्र
हो गया आज यह प्रिय, स्वतंत्र!

अब से न कहीं, कुछ पृथक स्वत्व;
व्यक्तित्व नहीं, कोई निजत्व!
मानव-समूह हो एक देह;
सारा जग ही हो गया गेह!
मिल गई प्राण-धारा अपार
जग-जीवन-अम्बुधि से उदार;
मेरा दुर्बल अस्तित्व क्षीण
जग-उर में मिल हो गया लीन!

निष्फल कर जग का मोह-मंत्र!
यह कीर आज सचमुच स्वतंत्र!

६२५

आप ही तो आज लगती;
सखे, मुझको छेड़ते क्यों?
प्राण में सिहरन उमगती!

कल्पित मेरा गात लज्जावती—
लतिका-सा सलोना;
उँगलियों से मत छुओ,
प्रिय, स्पर्श से गुदगुदी जगती!
आप ही तो लाज लगती!

विश्व का अभिशाप मैं
चुपचाप सह लूँ; हो सके;
किन्तु, पूछो मत, हृदय में
कौन-सी ज्वाला सुलगती?
आप ही तो लाज लगती!

आज, क्या लोगे परीक्षा
ही व्यथित पिक-कण्ठ की?
रो पडूँगी-तुम न जानो;
जानती पर इसे जगती!
आप ही तो लाज लगती!

मोल मेरा हाट में क्या
भला कूता जा रहा!
बन्धु, अपने भग्न स्वर से
जा, किसीको मैं न ठगती!
आप ही तो लाज लगती!

मरण - मार्ग

आज, मृत्यु इठलाती आई मेरे आँगन में हँसने ;
या कि मुझे नागिन बन विष-दन्तों से हँस-हँस कर डँसने ?
बाँधो अब तकदीर न मेरी ममता की जंजीरों से !
कह लेने दो व्यथा जरा - सा अपनी ही तसवीरों से !
जलता हूँ मैं आज, आप ही अपने उर की ज्वाला से !
मेरा भी इतिहास बनेगा कभी अश्रु की माला से !

आज तोड़ आया हूँ सारा बन्धन, युग-युग की ममता ;
जीवन का सुख-स्वर्ग, स्नेह का स्रोत, भुजाओं की क्षमता !
छोड़ दिया संसार हार कर मैंने एक उदासी - सा ;
भसम रमाये निकल पड़ा हूँ मैं विरक्त संन्यासी - सा !
वनरानी, मत रूठो तुम भी; जी में आस - भरोस बड़ा !
आज, आखिरी बार हृदय से कर लेने दो प्यार जरा !

रोक सकेगा अब न प्रियों का आग्रह, स्नेही का क्रन्दन ;
मोहित कर न सकेगा अम्बर-चुम्बि प्रसौध, अपरिमित धन !
बन्धु श्मशान, सखा पुर, गृहिणी अन्तःपुर में ही रोई !
मैं पहुँचूँगा वहाँ, न जिससे आज तलक लौटा कोई !
सभी प्रलोभन - साधन छोड़ो; होने दो निष्काम मुझे !
आज, चिता की मृदुल गोद ही देगी चिर-विश्राम मुझे !

राजा मेरे

मेरे राजा, बाहर आ जा; दूध - बताशा खा जा रे !
लाया तेरे लिये सबेरे, खाजा ताजा ताजा रे !
आसमान में मधुर तान में बजा विहग का बाजा रे !
लल्लू मेरे लड्डू - पेड़े, आ जा आ जा आ जा रे !

जागी दुनिया, दुन्नी - मुनियाँ; जागे भाई - भाई रे।
नदी घाट पर, राह - बाट पर, पहुँचे लोग लुगाई रे।
मोती - तारा, वह लो, मारा; करते देख लड़ाई रे !
तू ही सोया, सब कुछ खोया, बहती मृदु पुरवाई रे !

बाबू - भैया, ताई - मैया, खड़े सभी आँगन में रे !
फूल सलोने, दोने - दोने, चिटख रहे उपवन में रे।
काठबिड़ाली भोलीभाली, है आनन्द - मगन में रे ;
रामू - सोहन, जद्दू - मोहन, हँसते अपने मन में रे।

सुग्गा मैना मीठी बैना, कह कर मुझे बुलाती रे !
गैया तेरी देती फेरी; काली भैंस रँभाती रे।
जागो प्यारे; डूबे तारे, पूर्व दिशा मुसकाती रे।
सूरज चमका, कानन गमका, रजनी गम की जाती रे।

खिली चमेली, चम्पा - बेली, वन - बागीचा तेरा रे।
पंछी चह चह करते रह रह, छोड़ा बास - बसेरा रे।
नयन खोल कर, बिहँस बोल कर, आओ छोड़ बखेड़ा रे।
बोला कौआ, भागा हौआ, जागो हुआ सबेरा रे।

मेरी बच्ची

'बच्ची' मेरी बिलकुल बच्ची, अभी उमर की है कच्ची !
इसीलिये होती हैं इसकी बातें सब सच्ची - सच्ची !
जब जब मैं जाता खाने को, थाली पर आ जाती वह !
आप न खा कर मुझे खिलाने को ही हाथ बढ़ाती वह !

कभी पूछती मौन भाव से - 'अम्मा, बाबू गये कहाँ ?'
उँगली बता - बता मा कहती, तेरे बाबू खड़े वहाँ !
होते ही जब शाम, लौटता; गोदी में झट आ जाती !
'पाकिट' से 'पेन्सिल' निकाल कर क्या जानें क्यों मुसकाती !

उसे चाहिये रोज नये ही गुड़िये, गुड़ियों के गहने !
और, खेलने को आवें फिर मिल जुल कर भाई-बहनें !
हँसी - खुशी की घड़ियों में तो फूलों से घर भर देगी !
मगर, जहाँ रोई वह, फिर तो घण्टों चैन नहीं लेगी !

मजा सेब - अंगूर - दाख के चखने का उससे पूछो !
मुँह में विष-पीयूष सभी को रखने का उससे पूछो !
यह खयाल मत कर कि उसे भाता सदैव झूला-पलना !
सीख रही है धीरे - धीरे अपने पैरों पर चलना !

दे दो अथवा दिया छीन लो; किसी वस्तु की चाह नहीं !
आवे सर्प समीप भले ही, कुछ चिन्ता - परवाह नहीं !
वह अबोध शिशु, शत्रु-मित्र का भेद-भाव क्योंकर जाने !
बाघ - नेवला, चींटी-बिच्छू; कैसे दुनिया पहचाने ?

उगे आ रहे दाँत दूध के मोहक रूप किये धारण ;
किलकारी भरती है केवल; सही न कोई उच्चारण !
जो मिठास पाया है मैंने उस तुतली - सी बोली में !
वह न मिला 'छुठ' के ठकुओं में; होली-रंग-ठठोली में !

६२९

उस दिन ज्यों ही घर में आये दूर देश के पाहुन मेरे ;
मचल पड़े अन्तर के आँगन में भावों के शिशु बहुतेरे !

कितनी दूरी का पथ हल कर,
पहुँचे मन - कामना सुफल कर ;
पल में सारी क्लान्ति मिट गई ;
हृदय द्रवित हो उठा पिघल कर !

बिठलाया पलकों पर, पूछा उत्सुकता से खबर तुम्हारी ;
बोले - यार, पूछ ही लेते क्यों न इन्हीं बूदों से प्यारी !

देखा, काले काले अक्षर ;
इधर - उधर अंकित थे निःस्वर !
सूझ न पड़ा - यही लाये क्या
प्रियवर के सन्देश प्रीति कर ?

इतने में खिलखिला पड़ा बस, जैसे कोई कुछ कह कर यों !
चौंका मैं, सचमुच ही कोरा कागज क्या हो उठा मुखर यों !

अब भी जब - जब दर्द उभड़ता,
और, न पीड़ा से कल पड़ता !
तब - तब मैं जी भर कर अपने
इन्हीं अतिथि से बातें करता !

इतनी करुणा, श्रवण पुटों ने वचन किसी के जिस क्षण हेरे;
उछल कहीं से झट हाथों में आ जाते ये पाहुन मेरे !

६३०

दाता, तुम जो ही कुछ दोगे; हँस कर उसे उठा लूँगा !
तुम राजा, मैं दीन भिखारी; क्या लूँगा, मैं क्या दूँगा ?

आज, तुम्हारे द्वारे आया ;
जीवन भर की करुणा लाया !
अपने ही घर के घेरे में
मैं पथ - भ्रान्त पथिक भरमाया !

मिले, तुम्हें जो ही कुछ भावे ; मैं न व्यर्थ हठ ठानूँगा !
तुम राजा, मैं दीन भिखारी; क्या लूँगा, मैं क्या दूँगा !

ऐसा दान कहाँ पाऊँगा !
सदा तुम्हारा यश गाऊँगा !
अब तो आ पहुँचा हूँ मालिक,
बिना लिये कैसे जाऊँगा ?

देना ही होगा कुछ भी तो ; आज नहीं मैं मानूँगा !
बहुत दिनों पर पाया दानी, तुम्हें कहाँ जाने दूँगा !

आती लाज मुझे रोने में ;
क्या संशय - भय कुछ होने में ?
देखो, जो ही कुछ लाये हो—
रख दो इधर, इसी कोने में !

फटी गूदड़ी, फटा स्नेह - पट; नहीं रतन - धन मागूँगा !
दाता, तुम जो ही कुछ दोगे; हँस कर आज उठा लूँगा !

६३१

क्या सचमुच ही तुम निष्ठुर ?

इतनी रक्त - पिपासा तुमको; जग - जननी क्यों कहलाती ?
अपनी पय - पालित सन्तानों की ही शोणित पी जाती !
कैसा निर्मम हृदय तुम्हारा ? कैसी पत्थर की छाती !
क्या विमूक पशुओं को कटते देख न तुम्हें दया आती ?

तुम तो मा, सुत - स्नेहातुर !

भूखी क्यों फिर इस शरीर की ? क्यों हम पर इतना आक्रोश ?
क्या न तुम्हें मिल सकता व्यञ्जन-मिष्टान्नों से कुछ सन्तोष ?
तुम्हीं बताओ, तो इसमें इन अज्ञ प्राणियों का क्या दोष ?
करते मांसाहारी नर निष्फल निरीह जीवों पर रोष !

क्या न पिघल उठता तव उर ?

तुम भी तो चुप रह जातीं, क्या जाने, क्यों आशंकित मन !
[illegible] क्यों स्पष्ट न मुझको नहीं चाहिये बलि - साधन !
प[illegible]तिमा पाकर हो गया हृदय भी क्या पाहन ?
हाय, मानवों के पापों का कौन करेगा प्रक्षालन ?

नदी के तीर पर

वह कौन अजय, अक्षय हिमतल ?
सरि, जिसके अंचल से कामर
भर-भर ले आती है तू जल !
यह राशि-राशि, कल्लोल-विरल ;
शीतल-शीतल, उच्छल-उच्छल !
इतना उज्वल ! इतना निर्मल !

गिरिराज-शिखर से उच्चतर ,
समतल में शस्य-श्याम, सुन्दर ;
किस गति से, किस उत्सुकता से
तू सजनि, उतरती हर-हर कर !
हर-हर - निनाद - कम्पित भूधर ;
इतना है तुझमें वेग प्रखर !
कर देते अपने को ही लय
मिल तुझमें शत-शत-शत निर्झर!

आकर्षण कैसा वह पाया ?
अपना गौरव भी बिसराया !
वह कौन बला, जिसने तुझको
नीचे - ही - नीचे बौराया ?
क्या वह न प्रेम का मोह-मन्त्र ?
हैं विफल जहाँ सब शक्ति-यंत्र !
होते फिजूल जिस वशीकरण के
आगे भौतिक मंत्र - तंत्र !

पर, प्रणय - भूमि में आते ही
क्यों सखि, तेरा स्वरूप बदला ?
जितना विस्तृत हो आई तू ,
उतना ही अन्तर्तम गदला !

ऐ अधोगामिनी, किस निष्ठुर ने
दिया तुझे यों विकट शाप ?
पगली, तुझको क्या ज्ञात नहीं ,
है यहाँ प्रेम भी महापाप ?

अनजाने यह अपराध हुआ ;
हाँ-हाँ; फिर भी तो उर न विमल !
जाती बहती ही—बहती तू ;
करती कल-कल, छल-छल, चल-चल!
उड़ते खग फर-फर, फहर-फहर ;
झीनी बूँदों की झहर - झहर !
गिरते पानी में ऊँचे से
बालू के टीले भहर - भहर !

होते वक्र उज्वल पर पसार
इस तेज धार के आर - पार ;
बत्तक - पारावत - काक - हंस
करते मिल जुल कलरव-विहार !
गायों की गर्दन का टन - टन ,
घंटों - घड़ियालों का रन - रन ;
सुन - सुन, चंचल पनिहारिन की
पाजेब-चूड़ियों का झन - झन !

हो सभी एक रस, एक तार ;
गूँजते कान में बार - बार !
उसपर ऋतुपति की और, अरे
यह मदमाती मीठी बयार !
तू कभी निकलती मरघट से ,
घाटी - पहाड़ से बियावान !
अप्सरि, कर देती गुंजित तू
अपनी तानों से वन - वितान !

करती जंगल में मंगल सरि ,
गाती जीवन का मधुर गान ;
तू भागी जाती—बता कहाँ ?
तोड़ती प्रकृति का मौन ध्यान !

इस पार नगर की भीड़-भार ;
उस पार वनाली का सिँगार !
ताड़ों का गर्वित शीश उच्च ,
श्यामल-घन-तरुओं की बहार !
झोपड़ियाँ जहाँ तपोवन-सी
सुषमा बरसातीं निर्विकार ;
उस स्वर्ग और इस नरक-बीच
बहती सखि, तेरी विमल धार !

तू तनिक ठहर चंचल सरिते ,
ओ रोक जरा अपना बहाव !
मैं भी मलीन हूँ—दुखी-दीन ;
क्यों करूँ प्रिये , तुझसे दुराव ?
है हृदय एक ही भाव-लीन ,
है एक–एक ही सखि, अभाव ;
टुक लेती चल तो मुझको भी ,
खेती चल—खेती तनिक नाव !

क्या सुना नहीं?-'प्रिय,पुनः कहो!'
इतनी शोखी—इतनी उदार !
क्यों धूल झोंकती दुनिया की
आँखों में यों तू बेशुमार ?
विश्राम नहीं—आराम नहीं ;
चहिये न किसीका स्नेह-प्यार !
कुछ ठहरी,कुछ सुन ली, हँस दी ;
चल पड़ी पुनः–बस, वही ज्वार !

आतुरता किसके दर्शन की ?
किससे मिलने की चाह अभी ?
इतनी उत्कण्ठा—इतना मद ;
आया विचार, उठ चली तभी !
छोड़ा सुख जन्मभूमि का वह ,
तज बचपन के आमोद सभी ,
तू निकल पड़ी घर से ऐसे—
देखा पीछे मुड़ कर न कभी !

मैं बैठ गया दोनों टाँगें
फैला कर दूबों पर कोमल !
लोचन थे अँटके किन्तु, कहीं ;
मन था सुदूर, कल्पना अचल !
कैसे अनन्त नभ में झलमल
मिटती-बनती रेखा पल-पल !
अंकित हो रूप किसीका झट
दृग से हो जाता फिर ओझल !

यदि शान्ति चाहते हो सच्ची ,
दिल में हो कोई कसक-आह !
यदि जला रहा हो अन्तर को
विषमय वसुधा का खर-प्रवाह !
तो, भूल-भटक जा पंथ कहीं ,
आ जा अलबेले ! इसी राह ;
ले जाने दे, ले जाय जहाँ
तुझको इस सरिता का प्रवाह !

लोटें रेती पर, करें कभी
हम कंकड़ियों से हँसी-खेल ;
लहरों के कल-कल छल-छल में
भूलें दुनिया का दुख-झमेल !

आरसी

भर - भर लें आँखों में, उर में
दरिया का सारा रस उँड़ेल !
तैरें पानी में—मौज करें
हम मचा वीचि में रेल - पेल !

गँदगी शहर की नाली की ;
मक्खी-मच्छड़ का दल अपार !
मेशीनों का हर-हर खट-खट ;
जहरीली रोगों की बयार !
घनघोर शोर, खर कोलाहल ;
लम्बी बाजारों की कतार !
ट्रामों का यातायात, मोटरों के
पीछे उड़ती गुबार !

सौन्दर्य - सुरा के दीवानो !—
क्या यही तुम्हारी प्रीति-रीत ?
सुख दे सकती क्या फेनिल 'ह्विस्की'?
इन मरे तवों में भरे गीत ?
परियों के 'चौक'—पुते मुखड़े ;
अस्वस्थ, अरुचिकर, क्षणिक-कान्ति!
शौकीन 'सिनेमा' के जाने
क्या, किस चिड़िये का नाम 'शान्ति'?

सच कहता हूँ, रे देर न कर ;
इन सामानों में फूँक आग !
बस, एक लँगोटी पहन सिर्फ
फिर किसी ओर तू निकल भाग !
क्यों व्यर्थ बखेड़ों में फँसता ?
सब विफल यहाँ के रंग-राग ;
हरियाली ही वन - पर्वत की
धो सकती दिल के मैल-दाग !

तज 'चाप' और 'बिस्कुट-सोडा'
पी तो इस मय का एक घूँट ;
रोशनी छोड़ रे बिजली की
चाँदनी रात का मजा लूट !
इस 'बाल-नृत्य' में टिकट नहीं ;
उन्मुक्त—सभी को मिली छूट ;
आ एक बार इस उत्सव में ;
जी चाहे—फिर, तो क़रम कूट !

तू कहीं छोड़ कर कानन को
करती जन - पद में है प्रवेश ;
कितने तीर्थों का पुण्य लिये
दीखती—घूमती देश - देश !

तू काट मनोहर भूमि कहीं
देती अपनी तलहटी पाट ;
है कहीं बालुका, ढाल; कहीं
टीले - टापू, तो कहीं घाट !

यदि कहीं हिमालय-सा ऊँचा ,
तो, कहीं दीखता अतल-लोक ;
सजनी, है तेरी गति अबाध ,
तू अस्थिर, तू बेरोक - टोक !

सो रहे धूप में सुख - पूर्वक
कितने कुमीर, जल-जीव पीन ;
खेलते महोदर में तेरे
सखि, कितने मेढक, कमठ-मीन !

छप - छप - स्वर डाँड़ों का करता
क्षण-भर को तेरा जल अशान्त !
नौकारोही के शब्दों से
प्रतिध्वनित पुलिन का सजल प्रान्त!

घुटने - भर जल से पुरुष कई
हँस - हँस धारा कर रहे पार ;
हाँ, स्त्रियाँ जरा घाँघरा उठा ,
औ बच्चे धोती को उतार ।

दो बैल बमुश्किल कीचड़ से
गाड़ी को आगे रहे खींच ।
सींचता वहाँ क्यारी माली ,
धोबी कपड़ों को रहा फींच ।

कुछ लोग किनारे टहल रहे ,
कुछ लड़के मौजी रहे फाँद ;

लो, सूरज छिपा, साँझ आई ;
झुटपुटा अँधेरा, उगा चाँद ।

पाँवों को लटका पानी में
बालिका एक बेसुध, विभोर ;
जैसे हो अपने गीतों की
टूटी कड़ियों को रही जोड़ ।

रे उसके इस अवसन्न गान ने
दिल को मानो दिया तोड़ ।
आकर हिलोर स्मृति की कोई
चुप गई कली उर की मरोड़ ।

अब चलें लौट हम घर वापिस ,
ले चिर दिन की सुख-सौम्य-शान्ति।
फिर कभी मिलेंगे यहीं शीघ्र ,
अब तो सारी मिट गई क्लान्ति !

६३३

प्रेयसी मेरी जो अज्ञात ।

सात-बहिन

सात बहिन थी बेली ;
गेंदा, जुही, गुलाब, मालती ,
चम्पा और चमेली ।

एक रात मिल सखी - सहेली ,
निकलीं सब घर से अलबेली ;
रात सलोनी पूनो की थी ,
करती आपस में रँगरेली !

कोई नीली, कोई पीली ,
कोई उजली साड़ी पहने ;
चाँद उगा काले बादल से ,
चलीं नहाने सातों बहनें ।

बहती थी सन - सन पुरवाई ;
छटा घटा ने क्या ही पाई ।
चाँदी की पतली लकीर - सी
आगे धारा पड़ी दिखाई ।

छाया और चाँदनी दोनों ;
बिहँस रहे थे चन्द सितारे ।
आँख - मिचौनी खेल खेलती
सातों बहनें खड़ीं किनारे ।

कूद पड़ीं सब की सब जल में ,
तैर चलीं नंगी - ही पल में ;
करने लगीं किलोल उछल कर ,
मचल नदी के कल-कल-छल में !

इतने में पानी से निकली
कोई एक रूपसी नारी ;

लगीं देखने अति अचरज से
सातों ही बहनें सुकुमारी !
बोली तभी सुन्दरी नारी—
'मैं जननी हूँ प्रिये, तुम्हारी ;
तुम हो मेरी सुभग पुत्रियाँ ,
प्यारी - प्यारी, न्यारी, न्यारी !'

सुख के आँसू ढुलके दृग से ,
उमड़ चला माता का शुचि मन ;
किया तुरत बारी - बारी से
सातों ही बहनों का चुम्बन !

'अम्मा, अम्मा, सच बतलाई ;
अब - तक कैसे थी भरमाई ?
आई अभी यहाँ तू कैसे ?
कहाँ हमारा भोला भाई ?

'अब-तक तुम थीं किस दुनिया में?
कब का परिचय इन झरनों से ?'
सातों बहनें एक साथ ही
लिपट गईं माँ के चरणों से !

'सुनो, जुही ! मालती सयानी ,
बेला, गेंदा, चम्पा - रानी !
अरी गुलाब, चमेली, ओ री ,
सुन, कहती मैं वही कहानी !

'पहले तुम उत्पन्न हुईं सब ,
आज याद मुझको है आई ;
क्रमल तुम्हारा सबसे छोटा ,
बहनें सात—एक वह भाई !

'बढ़े सभी तुम एक साथ ही ,
पढ़े सभी तुम एक साथ ही ;
उड़न - खटोलों, कठघोड़ों पर
चढ़े सभी तुम एक साथ ही !

'जाती नन्दन - विपिन टहलने
नित दिन तुमलोगों को लेकर ;'
लगीं थिरकने सातों बहनें
ताल मधुर नूपुर का देकर !

'हाँ, तो हम सुरपुर के वासी ,
सुखी - विनोदी, हास-विलासी ;
रहते थे सानन्द स्वर्ग में
अमरों - से सुन्दर, अविनाशी !

'डुबकी देते स्वर्गंगा में ,
पारिजात - वन - कुंज विहरते ;
इंदुकुमार नित्य तुम सातों
बहनों से आ क्रीड़ा करते !

'एक रात देवेन्द्र - महल में ,
उत्सव था कोई मंगल में ;
पहुँची मैं भी तुमको लेकर ,
उस कोलाहल में, हलचल में !

'शान्त हुई जब सभा, सो गई ;
आँधी एक अचानक आई !'
मुँह पर सातों ही बहनों के
तत्क्षण उड़ने लगी हवाई !

'आँधी आई, तुम्हें उड़ा कर ,
चली गोद से हाय, चुरा कर ;
पता नहीं कुछ, कहाँ छिपाया
मुझसे उसने तुम्हें दुरा कर !

'बिछुड़ गये तुम सभी परस्पर ;
बहनें अलग, अलग था भाई !'

रोते - रोते सातों बहिनों के
हिचकी - सी झट बँध आई !
'इसके बाद चली मैं घर से ,
उतरी निर्मल शैल-शिखर से ;
चली खोजती तुमको वन से ,
गिरि से, घाटी से, खँडहर से !
'कहा किसीने, मर्त्य - भुवन में
फेंक गया है तुमको कोई !'
सातों बहिन और वह भाई ,
सुख - सम्पति सब मैंने खोई !
'तुम कानन का फूल हो गई ;
मैं सरिता निर्मूल हो गई !
आज, शाप का अन्तिम दिन यह,
मुझसे जो कुछ भूल हो गई !
'तुम तो मिलीं, परन्तु, कहाँ वह
विकल उदासी बन्धु तुम्हारा ?'
सातों बहनें एक साथ ही
बोलीं—'भाई कहाँ हमारा ?'
'अच्छा, खोजें, चलो, चलें सब ;
पथ के कंटक-कुटिल दलें सब !
तीर - सदृश इस कानन - पथ से
हम बढ़ आयें, हम निकलें सब !'
उँगली पकड़ विकल-तम स्वर में
लगी पुराना किस्सा कहने ।
सरिता जाती आगे - आगे ,
उसके पीछे सातों बहनें !
चल दिन-दिन-भर, रात-रात भर,
कितने जंगल - गाँव पार कर ,
आखिर, सभी पथिक जा पहुँचे
एक विशुष्क ताल के तट पर !

विरल पंक में सूख रहा था
कमल मन्दभागी बेचारा ;
सातों बहनें एक साथ ही
बोल उठीं—'हा! अनुज हमारा !'
सरिता ने पय से जब सींचा ,
बहनों ने मृदु स्नेह उलीचा ;
अमल विलोचन खुले कमल के ,
उसने प्रथम श्वास तब खींचा !
उठा लिया माता ने सुत को
गोदी में सामोद ललक कर ;
सातों बहनों के अधरों पर
बिखर गई मुसकान छलक कर !
उसी दिवस से सातों बहनें
लगीं कमल के सँग ही रहने ;
आधा अंग कमल का जल में ,
आधा आया स्थल-दुख सहने !
और, बहन का भाई जैसा ,
बहनें भी आ गईं वहीं पर !
सातों बहनें औ माँ - भाई
लगे बिताने दिन हँस-हँस कर !
लहरें आतीं, लहरें जातीं ;
पंछी उड़ते डाल - डाल पर ;
सरिता के निर्जन दुकूल पर
खिल उठता बुदबुद का मर्मर !
वहाँ नित्य ही छाया रहता
वासन्ती फूलों का मेला ;
कहीं न जाने पाता सातों
बहनों को तज कमल अकेला;-
सात बहन थी बेली !

तारागण

मा, वे आसमान में कौन
झिलमिल झिलमिल करते मौन?

होते ही सूर्यास्त, नित्य - प्रति
बाहर सभी निकल पड़ते;
सारी रात न जानें, क्यों वे
जग - जग कर चकमक करते!
किस घर के दीपक ये सारे;
कौन भाव उर में भरते?
आये तो लाखों ही मिलजुल;
किन्तु, न अँधियाली हरते!

क्या वे जुगनू हीरों के हैं?
अथवा शशि के शिशु प्यारे!
उजियारे मा, किस कुटिया के?
किसकी आँखों के तारे?

सरले, वे तारे हैं सारे;
रहते सब दिन भर छिप कर!
संध्या होते ही आ जाते
वे अपने बिल से बाहर!

सूर्य - चन्द्रमा के आगे में
उनकी छवि फीकी लगती;
किन्तु, अकेले में ही कुछ-कुछ
उनकी सूक्ष्म ज्योति जगती!

बहुत दूर हैं, इसीलिये ये
दिखलाई पड़ते कम - कम;
यों हैं बहुत बड़े; कितने तो
रवि से भी भारी - भरकम!

ज्यों - ज्यों दूरी बढ़ती जाती,
त्यों - त्यों वे छोटे होते!
ऊँचे चढ़ कर अपने को
दुनिया की नजरों से खोते!

कितनों के प्रकाश पृथिवी तक
कुछ ही क्षण में आते हैं!
और, किसीके आने में तो
कई बरस लग जाते हैं!

तुम भी भले बड़ी हो जाओ
विद्या और बुद्धि - धन में!
किन्तु, कभी ऊपर मत जाओ;
गर्व करो मत निज मन में!

यदि औरों को तजकर नीचे
दूर चली तुम जाओगी!
तो अवश्य ही लघुतर बन
तुम भी निकृष्ट फल पाओगी!

६३६

वृश्चिक-सा उर को काट रहा मेरा अपना ही पाप आप;
पीड़ित कर रहा मुझे ही मेरा अपना ही सन्ताप आप!
मिट्टी के किसी खिलौने को पाने की इच्छा की मैंने;
पागल-सा बना रहा मुझको उस दिन का आलाप आप!
फूलों की लता लगाई थी; बन गई कंटकों की बाड़ी;
धिक्कार रहा मुझको मेरा अपना ही रे अभिशाप आप!
औरों के लिये बनाई थी, फँस गया स्वयं ही जा उसमें;
लो, मृत्यु-मन्त्र-सा बना आज अपना ही मृदु पद-चाप आप!
अपने ही हाथों से देता तन पर लोहे की छाप आप;
वृश्चिक-सा उर को काट रहा मेरा अपना ही पाप आप!

६३७

तू मा, मेरी प्रिय - पुष्करिणी ;
मैं तेरी पद्मा सुकुमार !
एक स्पर्श में उमड़ पड़ी जो,
पाकर तेरा मञ्जुल प्यार !

खिला भानु जाता प्रति - वासर ;
होते शलभों - से न्यौछावर !
राशि-राशि मधु-लोभी मधुकर !

यह तो तेरा ही सौरभ, जो
व्याकुल बना सकल संसार ;
तू न अगर होती, तो जीती
कैसे यह पद्मा सुकुमार ?

तू मा, मेरी मूक - मुरलिका ;
मैं तेरी सुमधुर झंकार !
एक श्वास से निकल पड़ी जो,
पा कर तेरा मञ्जुल प्यार !

सफल हुई यह तेरी वाणी ;
आई अब जग में कल्याणी !
मुखरित सिन्धु-शिला-पाषाणी !

यह तो तेरे ही अन्तर के
उद्वेलित अशेष उद्‌गार ;
तू न अगर होती, तो उठती
कैसे यह कोमल झंकार ?

तू मा, मेरा महिम-हिमोद्‌गम ;
मैं तेरी लघु - सरिता - धार !
एक पुलक पर मचल पड़ी जो,
पा कर तेरा मञ्जुल प्यार !

उत्पल - उपलों में स्वर भरती,
विजन-वनों में गिरती - पड़ती ;
शैल-शिखर से मन्द उतरती !

छन्द नहीं मेरे गीतों में ;
यह तो तेरी ही गुंजार !
तू न अगर होती, तो कैसे
आती मैं लघु - सरिता - धार ?

६३८

मंगलमय यह परिणय हो !
पुण्य-प्रणय का यह मधु-अभिनय
गौरवमय, सौरभमय हो !

मुखरित हो सुख-अलि-गुंजन से,
प्रतिक्षण, प्रतिपल, पद्म-सुमन-से;
प्रीति - मिलन यह दो आत्माओं
का निर्भय, निःसंशय हो !

स्नेह-ग्रन्थि, कृतधूमपूत मण ;
अचल रहे यह आत्म-समर्पण !
हृदय - हृदय के इस विनिमय में
जीवन भर का परिचय हो !

यह भवधारा जितनी सुन्दर ;
उतनी ही छलनामय, दुस्तर !
इसीलिये इस खर - प्रवाह में
संयम हो, गति हो, लय हो !

जय हो पद - पद पर जीवन के ;
वय - किशोर राधा - मोहन के !
प्रिय - पथिकों के प्रेम-मार्ग के
कुटिल कंटकों का क्षय हो !

मंगलमय यह परिणय हो !

६३९

मा, मैं तेरे उर का हार ;
कर दुलार अपनी करुणा को ;
मुझको मा, केवल कर प्यार !
जब वसन्त की मधु-लहरी में,
अलस शिथिल-सी दोपहरी में ;
मैं तेरी छाती में चुप के
आकर छिप जाऊँ सुकुमार ;
तब तू मुझपर फैला देना
अपने अंचल का विस्तार !
मा, मैं तेरे उर का हार !

मा, मैं तेरी छवि का सार ;
कर दुलार अपनी प्रतिमा को ;
मुझको मा, केवल कर प्यार !
धूम मचा सारे आँगन में,
अपने मोद-भरे बचपन में,
ले लूँ कोलाहल कर मैं जब
तेरी गोदी का आधार ;
तब तू सस्मित मुख पर मेरे
देना चुम्बन का उपहार !
मा, मैं तेरी छवि का सार !

मा, मैं तेरा ही शृङ्गार !
कर दुलार अपनी छाया को ;
मुझको मा, केवल कर प्यार !
जग-जीवन-पावक में तपकर,
मेरा स्वर्ण-वर्ण चिर-सुन्दर ;
निकले विमल ज्योति ले जब, तू
देना तब अपना आकार ;
अश्रु पोंछ, साहस-संचय कर
बरसाना मृदु-स्नेह अपार !
मा, मैं तेरा ही शृङ्गार !

६४०

आ गया ऋतुराज री !
खोल उर का द्वार ; वन्दनवार
से सज आज री ;
आ गया ऋतुराज री !
विजन-वनपथ गन्ध-नन्दित,
वाटिका शुक-पिक-विवन्दित ;
मुदित द्रुम, लतिका सुविकसित,
फुल्ल सुमन-समाज री !
आ गया ऋतुराज री !
स्निग्ध दक्षिण-पवन-सुरभित,
हृदय, तन, मन, प्राण कम्पित ;
शिथिल अलसित अङ्ग-अवयव ;
तज विरह-दुख-व्याज री ;
आ गया ऋतुराज री !
रोम-रोम अपार-हर्षित ;
कामना सुख-पुलक-स्पर्शित !
सजा पल्लव-सेज पर मधु—
मिलन-उत्सव-साज री ;
आ गया ऋतुराज री !
देश-दिशि नव मंत्र-मुखरित,
हृदय में उल्लास अगणित ;
नाच मधुवन में—सिहर मत ;
आज भी क्या लाज री ?
आ गया ऋतुराज री !

शरारत

वह शरीर भी है फिजूल ही, जिसमें बिल्कुल प्राण नहीं जी;
वह इन्सान कहाँ का, जिसमें वतन-कौम की शान नहीं जी!
है वीरान चमन वह, जिसमें फूलों की मुसकान नहीं जी!
वह भी क्या सन्तान किसीकी, कुछ भी जो शैतान नहीं जी!

दुनिया का इतिहास बताता बचपन में सब ही नटखट थे;
ईसा, मूसा और मुहम्मद; सबके जीवन में संकट थे!
नेल्सन, बोनापार्ट, शिवाजी आदि वीर जो रण - खेले थे;
सभी दुसाहस के चेले थे—सभी अनोखे, अलबेले थे!

इसीलिये, तो मैं भी कहता—अरे, खूब बदमाश बनो तुम!
नहीं किसीका दास, किसीके लिये राह की घास बनो तुम!
जैसे तन की शोभा कुरता, चपकन, धोती, टोपी, गंजी;
वैसे ही बचपन की शोभा निरा-निराला नटखटपन जी!

घर की मेज - कुर्सियाँ तोड़ो; परिजन में तूफान उठाओ!
तैरो नदी - झील में निर्भय, उड़ो - हवाईयान उड़ाओ!
चढ़ें मोटरों पर मरीज, तुम कसो बिना हौदे का हाथी!
करो सवारी घोड़े की, हो जहाँ न कोई संगी - साथी!

कूदो ताड़ों से, पीपल से,—नाचो तुम छप्पर चढ़ कर!
चिनगारी पर चलो, आग से निकल पड़ो कंचन-सा कढ़ कर!
तुम्हें फिक्र क्या? कुश्ती खेलो, मुद्गर फेरो, गेंद उछालो!
नंगे बदन धूप में दौड़ो; पर्वत का भी बोझ सँभालो!

लेकिन, एक बात हाँ, फिर भी याद रहे तुमको दीवानो!
कह देता हूँ चलते-चलते; मानो या न इसे तुम मानो!
पढ़ना भी है एक चीज ही, उछल-कूद में मत बिसराओ!
ओ मस्ती की फौज रँगीली, पढ़ो-लिखो तुम खेलो-खाओ!

अश्रु - पूजा

आँसू बन आँखों में मेरी जब उमड़ - उमड़ आता विषाद,
स्वीकृत कर लेता उसे समझ मैं अपने प्रियतम का प्रसाद!
करुणा कर कभी दिया जिसने यह पीड़ा का उपहार मुझे;
बस, वही जानता है केवल दुनिया में एक उदार मुझे!

जग मूक जहाँ, गूँजता वहीं निशिवासर मेरा प्रणव - नाद;
मेरी आखों में उमड़-उमड़ जब आँसू बन आता विषाद!
लगता अब वृश्चिक-दंशन सा सुख का पिछला वरदान मुझे;
लौटा दो, वही दयामय, फिर करुणा का वारिद-गान मुझे!

बढ़ कर है देव, मिलन से भी उसकी चुभती-सी एक याद;
आँसू बन मेरी आँखों में जब उमड़-उमड़ आता विषाद!
लेकर मैं कहो, करूँगा क्या? चहिये न सलोना प्यार मुझे!
पहना दो सदा खटकनेवाला काँटों का ही हार मुझे!

जिससे अन्तर में फिर न जगे भावों का आकुलतम विवाद;
मेरी आँखों में उमड़-उमड़ जब आता आँसू बन विषाद!

६४३

आज, बजी किस वन में मुरली? मेरा चंचल मन बौराया!
अजी, बता तो नाम-पता कुछ; यहाँ कहाँ तू? कैसे आया?

रात अँधेरी, पथिक अकेला;
ज्यों ही भाव विकल हो जागे!
दृग का भ्रम, विश्वास नहीं रे;
खड़ा कौन तू मेरे आगे!

पलकें मलीं; वही आकर्षण! देख रहा तो कहीं न सपना!
लाँघ देहली भीतर आया; सपना ना; कोई वह अपना!

धन्य भाग! जो भूल पड़ा तू
मेरी इस सुनसान गली में;
आ जा, तेरे चरण पखारूँ;
बिठलाऊँ गीली पुतली में!

जिगर चीर दिखला दूँ क्या मैं? नहीं; नहीं; तू मचल न जाये!
आज, अचानक ही मनभावन, मैंने तेरे दर्शन पाये!

बोल अरी, तसवीर यार की;
पाई कहाँ प्यार की सूरत?
वही हँसी होठों पर विकसित;
वही नेह - रस - भोली मूरत!

आँखों का पानी पी - पीकर हुई सनम की याद सलोनी;
धो ले इस दिल की दरिया में तू भी अपनी लाज, लजोनी!

६४४

उतरो मेरे आँगन में तुम सावन - घन की एक बूँद बन ;
एक बूँद ही; अधिक न, जिससे प्लावित हो न जाय यह आँगन !
सुप्त चेतना की कल-कलिका, शिथिल कामनाओंका उत्सव ;
जीवन-वन में आज न होता जीवन-धन का वह क्रीड़ा-रव !
गीला कर दो हृदय, हृदय का ढीला हो जिससे सब बन्धन ;
आलिङ्गन के स्नेह-पाश में बँध जाने दो देह, प्राण-मन !

सूखी हरियाली उपवन की नीरव मधुप - गणों का गुञ्जन ;
छाया अलस-भाव कुंजों में, एक विषाद—एक ही क्रन्दन !
इस चातक के तृषित चंचु को एक बूँद की ही अभिलाषा ;
बनी रहे जिससे अन्तर में पीकर भी फिर अमृत पिपासा !
भर दो प्रेम - पात्र में मेरे अपनी करुणा के कुछ मधुकण ;
कुछ ही, क्योंकि, पात्र है मेरा क्षुद्र और सीमित-साधारण !

मिले न वही वस्तु बदले में, लुटा दिया उर जिसके कारण ;
मेरी छोटी - सी कुटिया में लाओ कुछ ऐसा आकर्षण !
छोटी - सी इच्छाएं मेरी , छोटी सी ही आकांक्षाएं ;
इस छोटी सीमा में कैसे सारे लोक समा ये पायें ?
इसीलिये, बस, एक बूँद ही—बरसा दो मेरे सावन - घन ;
एक बूँद ही, जिससे प्लावित हो बह जाय न यह लघु आँगन !

६४५

आज, पाया प्रिय, तुममें प्राण !
सफल हुआ मानो करुणानिधि का पावन वरदान ;
आज, पाया प्रिय, तुममें प्राण।
महामिलन के उत्सव में हो गया दुःख अवसान !
नश्वरता ने लिया अनश्वरता को जब पहिचान !
आज, पाया प्रिय, तुममें प्राण !
उर उल्लसित, कण्ठ-स्वर विगलित दलित हुआ अभिमान !
अनायास खिल पड़ी विकम्पित अधरों पर मुसकान !
आज, पाया प्रिय, तुममें प्राण !
लोट रहा चरणों पर युग - युग का ईप्सित निर्वाण ;
मिला हृदय से हृदय, पुलक से पुलक, प्राण से प्राण !
आज, पाया प्रिय, तुममें प्राण !

६४६

कलिके, अलिके उरमें जिस दिन पैठी थी तू एक किरण बन ,
मैंने भी देखा था तेरा स्नेह - विराग - विमिश्रित लोचन !
लोचन झाँक रहे डाली से खोल पलक - पल्लव - वातायन ;
गूँज उठा था गली-गली में सप्त-स्वरों का मधु-श्री-गायन !
नव-वसन्त की स्वर्ण विभा से तन-मन जब थे किये समर्पण ,
अलि, मैंने भी देखा था वह रूप, गन्ध, रस, मादक यौवन !
यौवन क्या ? जब जीवन ही था बना हृदय-धन की फुलवारी ;
खिलतीं फूलों - सी इच्छाएं ; वृन्त-वृन्त पर न्यारी - न्यारी !
स्वप्न-सेज से तुझे जगाने आई थी गिर-बाला जिस क्षण ,
अलि, मैंने भी देखा था वह तेरा लाज - भरा अवगुंठन !
अवगुंठन में अलसाई - सी सोई थी तू प्रेम - पुलक भर ;
एक स्पर्श में विहँस पड़ी बस, लज्जा खेल गई अधरों पर !
छलका रस पलकों से, आई अँगड़ाई जब, बिखरा मधुकण !
अलि, मैंने भी देखा था तब तेरा वह उन्मीलित लोचन !

६४७

दो ही दिन का परिचय , जैसे
सब कुछ जान गई हूँ मैं !
दो ही दिन में क्या-क्या देखा ,
समझ चुकी घट-घटकी लेखा ;
एक - एक क्षण जीवन - पट पर
खींच चला युग - युग की रेखा !
धुँधली आँख , पुरानी काया—
कहता कौन नई हूँ मैं ?

आज अचानक बोली मैना ;
डोल उठा पिँजड़े में डैना !
पहुँचे अपने और पराये ,
भर आये ये दोनों नैना !
कैसे कहूँ स्वयं ही , इतनी
क्यों उन्मादमयी हूँ मैं ?

प्रेम - प्रवास

प्रेम, तुम किस वन में हो आज ?
कहाँ अज्ञात तुम्हारा वास ?
मलिन क्यों मधु-राका का इन्दु ?
सिसकती धरणी, व्योम उदास !
दुखी उपवन के सुमन-समाज ;
प्रेम, तुम किस वन में हो आज ?

लुटा कर उर का मधु - मकरन्द
चले तुम प्रेम, कहाँ किस ओर ?
हृदय - मन्दिर कर मेरा शून्य
किधर जा छिपे कहो, चितचोर ?
स्वप्न - सा हुआ हाय, आनन्द
लुटा कर उर का मधु-मकरन्द !

कभी तुम आये थे प्रिय-प्राण ,
मरुस्थल - सा था हृदय अनन्त ;
तुम्हारे मलय - स्पर्श से स्निग्ध
मुसकिरा उसमें पड़ा वसन्त !
खिला नव जीवन का उद्यान ,
कभी जब तुम आये थे प्राण !

कामना के तरु पर सुकुमार
उठे तुम कोकिल बन कर कूक ;
आज यह कैसा प्रिय, प्रस्थान ?
हुई क्या मुझसे बोलो चूक ?
करूँगा किसे हाय, अब प्यार
कामना के तरु पर सुकुमार ?

कहाँ ढूँढूँ मैं तुमको हाय ?
निठुर, तुम ऐसे हो नादान !
अकिंचन मुझे बनाकर प्रेम ,
चले तुम किधर गये अनजान ?
विकल चिर-एकाकी, निरुपाय ,
कहाँ ढूँढूँ मैं तुमको हाय ?

तुम्हारे विप्रयोग में लीन
बना प्रिय, पावस यह मधुमास ;
अश्रु बन मुझे रुलाने आज
अरे, आया अधरों का हास !
पुरातन संगम, विरह नवीन ;
तुम्हारे विप्रयोग में लीन !

कहाँ पूछूँ मैं किससे, कौन ?
अमित यह मेरी पीड़ा, प्राण !
कभी गुंजित कर वन-वन, आज
अचानक गये किधर वे गान ?
निरुत्तर जगत, दिशाएं मौन ;
कहाँ पूछूँ मैं किससे, कौन ?

कहाँ वह गया हृदय का नेम ?
विपिन का गौरव, मधु-उल्लास ;
आज, रोता पथ में ऋतुराज !
पिकी के मधुवन में इतिहास !
बताओ, बोलो, मेरे प्रेम !
कहाँ वह गया हृदय का नेम ?

प्रेम की ऐसी थी वह राह ,
बिहँसता आता कनक - प्रभात ;
चाँदनी से धुल कर सुकुमार
दूध - सी बन जाती थी रात !
न कोई दुःख, न सुख की चाह ;
प्रेम की ऐसी थी वह राह !

६४६

आज मरण प्रियतम बन आया !
दोनों बाँहों को फैला कर,
मुझे उठाया उसने ऊपर,
महामिलन के उस चिरसुख में
मैं तो मन-ही-मन मुसकाया !

आँखें चार हुईं बस, ज्यों-ही,
प्राण हुए व्याकुल-से त्यों-ही;
अकस्मात उस प्रथम समागम में
जानें क्यों, मैं शरमाया !

मेरे मुख पर रख अवगुण्ठन,
उसने दिया गरल का चुम्बन;
खींच मुझे अपने प्राणों में
उसने दो का भेद मिटाया !

छू-छू कर मेरा मर्मस्थल,
नीलांगुलियों से हिम-शीतल,
मेरे रोम-रोम में आ कर
वह जैसे सम्पूर्ण समाया !

कितना उसका रूप मनोहर;
मेरे प्रियतम की छवि सुन्दर !
उसे देखते ही सम्मुख, मैं
मूर्च्छित-मन, थरथर-सी काया!

भूल गया था मैं जो जीवन,
वह परिचय, सम्बन्ध पुरातन,
आज वही, निःश्वास विजड़ कर
उसने विस्मृत प्रणय जगाया !

६५०

आज, मेरा खो गया क्या ?
ढूँढ़ती यों अलि, किसे मैं ?
हाय, मुझको हो गया क्या ?

सिसकती वनराजि जब घन-सजल कीचक-श्वास से;
दीखने तरु-लता-वीरुध मरु-मृता-निर्वास-से !
पूछती पतझाड़ से फिर
आयगा वह, जो गया क्या ?

निशि-दिवा प्रिय-चिन्तना-रत अनमनी रहती बनी;
एक तापस-बालिका मैं विधुर विधु-सी उन्मनी !
हो सका ज्ञात न, हृदय में
कौन चुप आ गो गया क्या ?

आ गया—चल भी दिया, लो, कौन वह, किस ओर से !
एक रेखा, और कुछ परिचय नहीं चितचोर से !
नींद में प्रेमाश्रु-जल से
गाल मेरे धो गया क्या ?

लीन थी मैं कमल-दल में मधुर-मधुपालाप-सी;
पड़ी छाया बादलों के तल्प पर सुरचाप-सी !
पूछ तो सजनी, किसीसे
तुहिन जग में बो गया क्या ?

दुपहरी में, चाँदनी में, धुली मधु की रात में;
वेदना मेरी छलकती नित्य संध्या-प्रात में !
बोलते तारक नहीं,
शर्वरीकर भी सो गया क्या ?

काल की लिपि जटिल, भाषा प्रेम की दुर्बोधतर :
मैं चली पाषाण-पट पर विरह-गाथा व्यक्त कर !
बाँसुरी की साँस से
कोई हृदय में रो गया क्या ?

६५१

सोच रही तू क्या हत-भागिनि ,
आज स्वर्ग के इस खँड़हर में ?
मणि के दीप जहाँ जगमग थे ,
अँधियाली छाई उस घर में !

जब यौवन-वसन्त आया था ,
तेरा नन्दन मुसुकाया था ;
तुझे याद है, तूने कितनों को
पैरों से ठुकराया था ?

मधु में मोह-ममत्व तनिक भी
कभी नहीं था जिसके स्वर में ,
आज वहीं क्यों कूक उठी
कोयल जीवन के इस पतझड़ में ?

जिस मदिरा को पी कर आली ,
बनी एक दिन तू मतवाली !
उतर गया क्या नशा आज वह ?
टूट गई क्या मरकत-प्याली ?

आग लगा सकती थी जिसकी
एक नजर ही दुनिया भर में ,
आह ! उन्हीं आँखों में पानी ?
ज्वाला अपने ही अन्तर में ?

तुझपर वलि हो जानेवाले ,
तेरा दिल बहलानेवाले ,
चले गये दिन वे जीवन के ,
जो न कभी फिर आनेवाले !

जिसकी तरुण चाँदनी फैली
थी उस दिन अम्बर-अम्बर में !
आज, अमा की घोर कालिमा
छाई है उस रजनीकर में ।

लगा प्रात में जब था मेला ,
तूने की हँस कर अवहेला ;
अब तो दिन ढल गया, आ गई
यौवन की यह संध्या-वेला !

छूटा पड़ता था जिसका जल
तीर-तीर पर, लहर-लहर में !
हाय, जवानी उसी नदी की
समा गई किस काल-विवर में ?

६५२

मंगलमयि , मंगल कर !
निर्मल कर , उज्वल कर ,
सहज-सरल , कोमल कर !

प्रति दिन को विहसित कर ,
प्रति निशि को सस्मित कर ;
प्रति क्षण को स्वस्थ-सबल ;
सुन्दरतर प्रति पल कर !

जाग्रत कर , निर्भय कर ,
मन को निःसंशय कर ;
वितरित कर सुख , विकसित
दिशि-दिशि का शतदल कर !

उर-उर में गौरव भर ,
सुषमा , श्री , छवि , सुन्दर !
जीवन को ज्वालामय ,
प्राणों को शीतल कर !

६५३

ये मेरी कविताएं,
आगे - पीछे, दाएं - बाएं,
छोटी - बड़ी,
साँवली - गोरी,
दुबली - मोटी,
रंग - बिरंगी,
एक दूसरे के पीछे जो,
मेरी आँखों के इंगित पर,
बढ़ी चली आती हैं
आँख मूँद कर,
नियम - रहित
क्रम-हीन, अशृङ्खल,
भ्रष्ट - पंक्ति
अनपवाद,
चुपचाप, झुकाये सिर, बेचारी
जैसे भेड़ें
झुण्ड के झुण्ड।

६५४

अरुण-रक्त चिर-शक्त तरुण हम !
आँधी - से छा जाते सत्वर
चिर - यौवन के अन्तरिक्ष पर,
हम कठोर - निर्द्वन्द्व वज्र - सम,
हिम - से मृदु-सुकुमार करुण हम !
चलते जब हम मुक्ति-सैन्य-दल,
व्योम विकम्पित, पृथ्वी टलमल;
ले आते जग में नवीन युग,
नवजीवन का प्रात अरुण हम !

६५५

आज अचानक जैसे मेरा
प्रियतम मुझको बुला गया है !
मैं रो - रो कर नयन गँवाऊँ;
भीतर - ही - भीतर अकुलाऊँ !
कितनी दूर, कहाँ जानें वह ?
पंख रहे, तो मैं उड़ जाऊँ !

एक इशारा ही उसका
मुझको विह्वल कर रुला गया है !
प्रथम बार ही ज्यों जीवन में;
देखा उसको मंगल - क्षण में;
मुझे लगा, मानो, युग - युग से
वह रहता आया हो मन में !

मैंने त्यों पहचान लिया, वह
मेरी सुध - बुध भुला गया है !
हवा याद उसकी ले आती !
कोयल उसका गीत सुनाती !
पतझड़ के सूखे पत्तों पर
मुझे भेजता लिख-लिख पाती !

वर्षा में कदम्ब की फूली
डाली पर वह झुला गया है !
मेरे पास नींद में आया,
मुझसे हँस बोला, मुसकाया;
गीली पलकों को अधरों से
छू कर पल में मुझे जगाया !

बार - बार मैं चौंक पड़ा हूँ,
बार - बार वह रुला गया है !

६५६

देख कर भी मैं भुला दूँ ,
प्राण, इतने पास हो तुम !

विश्व-छवि खिँच कर इन्हीं दो प्यालियों में उतर आई ;
आँख की पुतली पड़े प्रिय, आँख को कैसे दिखाई ?
बस गया मेरे हृदय में रूप जब मोहन, तुम्हारा ;
चीर कर अनुभव करूँ क्या चपल मृदु स्पन्दन तुम्हारा !
एक लघु - घट में बने
वन्दी महा-आकाश हो तुम !

जानते हो तुम न जिसको, दुख भला अज्ञात कोई ?
कौन - सा सन्देश भेजूँ, है न ऐसी बात कोई !
दूत भी पहुँचे तुम्हारे देश में क्यों कर अगोचर ?
किस घड़ी में,किस जगह,किससे मिलूँ मैं हाय छिप कर!
दे रहे सन्देश घट-घट में ,
मधुर वातास हो तुम !

विश्व - दर्पण में सुनिर्मल अन्य किसका रूप पाऊँ ?
देवता वह कौन जिसकी, आज मैं प्रतिमा सजाऊँ !
चित्र क्या अंकित करूँ मैं, जब न कोई दूसरे हो ;
हाय, मेरे सामने तो तुम स्वयं आकर खड़े हो !
प्राण, तरु - तरु में तरंगित
चिर-मधुर मधुमास हो तुम !

नित्य मैं किसकी करूँ आराधना - सेवा - निवेदन ?
तुम न चाहो एकता में साधना यह, भक्ति-पूजन !
मैं न मागूँगा क्षमा, यदि तुम न मेरा प्यार पाओ ;
वेदना-विस्मय न होगा, तुम मुझे यदि भूल जाओ !
मूक अधरों पर खिले जो ,
प्राणधन, वह हास हो तुम !

६५७

प्रेम अपूर्व पदार्थ, प्रेम ही प्रभु की मोहक माया है ;
व्यथित हृदय की प्यास बुझाने प्रेम जगत में आया है !
भरमाता जब ज्ञान बुद्धि को, अन्धकार बढ़ता मन में ;
प्रेम-प्रदीप जला प्रियतम ने जीवन पथ दिखलाया है !
यौवन के मरु में पथिकों का कंठ शुष्क जब हो जाता ;
मधुर प्रेम ने अपने कर से शीतल वारि पिलाया है !
थक जाते जब चरण अनाश्रित परदेशी के मरु-पथमें ;
एक प्रेम ही, जो करता उनपर करुणा की छाया है !
झड़ जाते आशा के पल्लव, जब वियोग की पतझड़ में ;
प्रेम - कोकिला ने पंचम में मधु - सन्देश सुनाया है !
जल न जाय दुख की ज्वाला में तृषावन्त प्राणी जगमें,
प्रेम - भगीरथ ने सुरसरि को उर के बीच बहाया है !

६५८

झड़ गया काल के तरु से जो यह शुष्क-पत्र सा एक वर्ष ;
लो, खिल आया उसमें तत्क्षण पल्लव नवीन युग का सहर्ष !
मिट्टी में मिल कर बीज जन्म
देते नव - वृक्षों का विशाल ;
निष्फल होकर ही प्रति वत्सर
झुकता मधुमय फल से रसाल !
यह नाश-सृष्टि की गति शाश्वत,यह प्रलय-सृजन का क्रम अनन्त;
रो - रोकर जाती है वर्षा, हँस - हँस कर आता है वसन्त !
शत-शत क्षण मिट कर रचते दिन,
दिन हैं करते निर्माण वर्ष ;
ये मास बनाते वर्ष, वर्ष से
होता युग - युग का विकर्ष !
प्रतिपल के हटते ही उसपर हो जाते सौ-सौ पल तत्पर !
ज्यों एक लहर के जाते ही आ जाती तत्क्षण अन्य लहर !
द्रुत ठेल एक को पीछे, यह
बढ़ता आगे जीवन - प्रवाह ;
क्षण - क्षण के कंकड़ - पत्थर से
बनती युग - युग की एक राह !
जो बीत चुका वह क्षण निष्फल,जो वर्त्तमान,वह चिर उज्वल !
जीवन को आगे बढ़ना है; सम्मुख प्रकाश शाश्वत, निर्मल !

६५९

लो, देखो मेरे आँगन में ये खेल रहे जो मेघ - बाल,
कितने प्रसन्न, कितने चंचल; जैसे मानस में हों मराल !

चपला का ज्योति - हिँदोल लगा
उन्मुक्त व्योम - तरु में विशाल ;
झलमल करते जिसमें मोती—
हीरे - मानिक - दल लाल - लाल !

कोकिल गाते आनन्द गीत, केकी-कुल देते मधुर ताल !
लो, देखो मेरे आँगन में ये खेल रहे हैं मेघ - बाल !

फूली न समाती मौलसिरी,
खिल पड़ी जुही की डाल - डाल !
कमलों के वन में उठता अब
जल से ऊपर पुष्पित मृणाल !

यह इन्द्रधनुष कमनीय विपुल किस स्वर्ग-परी की कंठमाल ?
लो, देखो मेरे आँगन में ये खेल रहे जो मेघ - बाल !

मधु - सौरभ से भर गया कौन
जग के जीवन का अन्तराल ?
यह बूँद कहाँ से आई, जो
हो गये सरस ये आल - बाल !

नव-नृत्य-गान, मंगल-विनोद, उत्सव-अनन्त, प्रिय स्वर्ण-काल!
लो, देखो मेरे आँगन में ये खेल रहे हैं मेघ - बाल !

६६०

मेरे उरके रौप्य - पात्र में भरी स्नेह की स्याही काली ;
रङ्ग अमिट हो जिससे, मैंने उसमें अपनी पीड़ा डाली !
किया कठिन श्रम दिन-भर थक कर चूर हुआ, जब धूप कड़ी-सी;
प्रिय-पलकों की घनी छाँह में मैंने तब दोपहर बिता ली !
अंकित की निसर्ग की शोभा; वन-कानन का किया विचित्रण !
सुन्दरियों के गीत बनाये, वैभव की तस्वीर निराली !
कर्मनिष्ठ जग के कोलाहल में जब उठा विमन व्याकुल हो ;
रूपहली - सुनहली तितलियों से अपनी तबियत बहला ली !
लगा स्वर्ण-निब अपने मनकी खींचीं कई लकीरें काली ;
जग की सुख-सुषमा को लिखकर मैंने अपनी व्यथा छिपा ली !
तीर्थ-भवन में शान्ति न पाई, भरा न जी सौन्दर्य-जगतसे ;
मन के साजन की प्रिय-सुध में सारी दुनिया देखी - भाली !
जीवन के सुफेद कागज पर चमक उठे मोती के अक्षर ;
मैंने जीवन को तराश कर एक मनोहर कलम बना ली !
पहले आसमान को देखा, वह अलक्ष्य, दुर्बोध शून्य था ;
मैंने जग का चित्र बना कर अपनी अमर कला वह पा ली !
आईं कितनी मधु की घड़ियाँ; कितने चाँद - सितारे आये !
फिर भी मेरे अन्तर - गृह में थी वैसी ही नित अँधियाली !
फूल खिले सुन्दर - से - सुन्दर; थी सुन्दर-से-सुन्दर तरुणी !
ठहर सकूँ मैं जहाँ, न देखा कोई भी ऐसा घर खाली !
सारी रात जागते बीती, देखा सपना एक मनोहर ;
आँखें ज्यों-ही लगीं कि जग में फैल गई ऊषा की लाली !
एक घूँट भी पी न सका मैं था तेरी सौन्दर्य - सुरा का ;
तूने मेरे दुर्बल कर से छीन हाय, लुढ़का दी प्याली !
उड़ न जाँय प्राणों के खग, दी आँखों की खिड़की पर जाली !
मेरे उर के रौप्य - पात्र में भरी स्नेह की स्याली काली !

६६१

वर्षा का बीता वर्ष सरस, जगमें जिसकी थी मची धूम ;
वे बादल भी तो बरस गये मेरे आँगन में झूम - झूम !

खिलता उपवन का हर-सिँगार ;
पंछी गाते कुछ बोल - बोल !
चुगते मोती ये राज - हंस,
जो बिछे दूब पर गोल - गोल !

पलकों को देता खोल - खोल प्रातः-समीर यह घूम-घूम ;
वर्षा का बीता वर्ष सरस, जगमें जिसकी थी मची धूम !

थक गई मयूरी नाच - नाच ;
चातक रटता है—'प्यास, प्यास !'
खिल गये काश के पुष्प श्वेत
निर्मल सरिता के आस - पास !

हो गया शून्य आकाश, जहाँ बिजली करती थी 'छूम-छूम'!
वे बादल भी तो बरस गये मेरे आँगन में झूम - झूम !

६६२

आज, मेरे शून्य गृह में
आ गये तुम प्राण ! कैसे ?
इस पुरानी देहली को
फिर सके पहचान कैसे ?

जब था बुलाया प्यार से ;
तब थे उठे दुत्कार - से !
अब स्वयं आकर खड़े हो
गेह में नादान कैसे ?
इस पुरानी देहली को
तुम सके पहचान कैसे ?

आओ, मिले अवकश भी ;
बैठो जरा - सा पास भी ;
यह बताओ तो, यहाँ तुम
आ गये अजान कैसे ?
इस पुरानी देहली को
फिर सके पहचान कैसे ?

सागर यहाँ से दूर है ;
जल भी नहीं भरपूर है !
एक पल में ही बसा
दोगे भला वीरान कैसे ?
आज, मेरे शून्य गृह में
आ गये तुम प्राण ! कैसे ?

आ ही गये, तो रोक क्या ?
पथश्रम मिटा लो, शोक क्या ?
जा सकोगे आ यहाँ
इस रात्रि में सुनसान कैसे ?
इस पुरानी देहली को
तुम सके पहचान कैसे ?

भ्रू-शर खिँचे, दृग-बाण तो ;
मोहन - मधुर मुसकान तो !
आज आँगन में निबाहोगे
निठुर, अभिमान कैसे ?
आज मेरे शून्य गृह में
आ गये तुम प्राण ! कैसे ?

६६३

आई लो, मधु - ऋतु अभिनव।
हो गया पुष्प - परिमल से धूसर गिरि, उपवन, वन-पथ ;
जाता कुंजों से द्रुम की ऋतुपति का कल विद्रुम-रथ !
माधव के देवालय में सुमनों का होता उत्सव ;
आई, लो मधु - ऋतु अभिनव !

मलयानिल मलयज - वासित सिहरा सरसी - जल छूकर ;
मृगनाभि-गन्ध से जग के प्राणों में चुभे विषम - शर !
जागा तरु-तरु पर खग-कुल, कोकिल का पंचम - कलरव ;
आई लो, मधु - ऋतु अभिनव !

फूटे द्रुम - द्रुम में, डाली - डाली में सुख के अंकुर ;
अज्ञात स्पर्श से किसके व्याकुल रे जगती का उर !
सुषमा से पुलकित तृण-तृण; उन्मन - सा पल्लव-पल्लव !
आई लो, मधु - ऋतु अभिनव !

विगलित - करुणा से पिघली निर्झरी, द्रवित - सा हिमकर !
उतरी मधु - राका जग के नयनों में सपना बन कर!
काँपीं आकाश - दिशाएं, वसुधा का अवयव - अवयव !
आई लो, मधु - ऋतु अभिनव !

छाया सरोज - कानन में कल्लोल मधुर मतवाला ;
कण - कण पर जग के होता नर्तन - संगीत निराला !
वन-वन में, भुवन - भुवन में बिखरा वसन्त का वैभव ;
आई लो, मधु - ऋतु अभिनव !

६६४

देखा था उस दिन लतिका को खिली हुई थी जो वन में ;
जानें, वह आ गई कहाँ से विकसित होने निर्जन में !
वह सुन्दर थी, आकर्षक थी, सोचा मैंने यह मन में !
वन में इसे कष्ट हो, लाकर इसे डाल दूँ उपवन में !
उपवन में रख दिया उसे जब समझा मैं श्रम हुआ सफल ;
देख - रेख करने को सेवक रखा एक, जो लाता जल !
सेवा में थी कमी न; फिर भी लता नहीं क्यों बढ़ पाती ?
पता लगा, पर, पीछे, मेरी गाय इसे है चर जाती !
चारों ओर लगाया घेरा, मिट्टी को कोरा - गोड़ा !
घास - फूस की क्या, क्यारी में तिनका भी न कहीं छोड़ा !
मैं प्रसन्न था, अब लतिका को खिलने का होगा अवसर !
कहते मित्र प्रशंसित स्वर में, सचमुच यह कितनी सुन्दर !
एक दिवस मैंने अवाक हो सुना, भृत्य बोला सिकुड़ा—
'मालिक, जानें कौन रात में हाय, उसे ले गया चुरा !'

६६५

जानें क्यों, अब नहीं तुम्हारी
कभी याद भी मुझको आती ?

चिर - अतीत के अन्धकार से
तुम जो मुझे पुकार रहे हो,
मेरी स्मरण - शक्ति को युग से
बारम्बार उभाड़ रहे हो !

अब तो प्रिय, आवाज एक भी
यहाँ तुम्हारी पहुँच न पाती !

यह जो तुम उपहार भेजते
मेरे पास प्रेम का प्रतिक्षण,
पुष्प-गन्ध, द्राक्षा-रस, परिमल—
अङ्गराग, ज्योत्सना के मधुकण !

गिरते तरु से पत्र तुम्हारी,
व्याकुलता मुझको न सताती !

शत-शत मिलन-यामिनी मधुकी
हार गई है मुझे मना कर !
प्रणय - दूत अज्ञात तुम्हारे
लौट चुके हैं कितने आकर !

हँस-हँस कर वसन्त रह जाता,
सिसक-सिसक वर्षा रह जाती !

६६६

तड़ित-पताका उड़ती जिसपर,
झंझा मेरा रथ है !

हिल उठता है जिससे तरुवर,
थर - थर करने लगता भूधर,
विह्वल हो जाता है सागर,
शंकित जिसके भय से अम्बर,
आँधी मेरा पथ है !

सूर्य - चन्द्र मेरे दो लोचन,
वज्र - पात है मेरा गर्जन,
धूमकेतु मेरा है वाहन,
माना नहीं किसीका शासन,
मेरा बन्धन श्लथ है !

लोक - लोक में मेरा परिचय,
महाकाल का भी मैं हूँ भय,
प्रलय-सृजन है मेरा अभिनय,
मेरी दृग - ज्वाला से निर्दय,
मूर्च्छित - सा मन्मथ है !

६६७

लेखनी लुण्ठित हमारी ;
आज कुण्ठित कल्पना ;
शून्य उर में भर सकेगा
कौन अभिनव भावना ?

मेघमाला आज श्रावण
की नयन - वन - वासिनी ;
वाष्प - व्याकुल कण्ठ में
उच्छ्वास भरती मूर्च्छना !

कालिमा बसती अमावस
की हृदय के प्रान्त में ;
शान्ति से सोती हमारी
पूर्णिमा की कामना !

शुष्क पत्रों पर शिशिर के,
अन्त में हेमन्त के ;
जग सकेगी क्या मलय की
मधुर - मर्मर - वेदना ?

आज, किस निर्मम - हृदय के
स्नेह - व्याकुल श्वास से,
हो चली चंचल हमारी
मानसी की चेतना !

बन गया वर भी हमारे
भाल पर अभिशाप ही ;
क्या तिरोहित हो सकेगी
यह युगों की साधना ?

६६८

बोल, तुझको आज बरबस
रोक लूँ मैं प्राण, कैसे ?
एक पल ही में युगों की
तोड़ दूँ पहचान कैसे ?

देख ली दुनिया हृदय के
द्वार पर सागर बहाकर ;
रह अधूरे ही गये
फिर भी अरे, अरमान कैसे ?

एक इंगित पर कभी
जिसके बरस पड़ते जलद ;
वह स्वयं माँगे किसीसे
बूँद का वरदान कैसे ?

खिल उठा उस रोज तेरे
आगमन से प्रात जग का ;
आज भर लाता दृगों में
जल विदा का गान कैसे ?

एक बन्धन स्नेह का था,
आज वह भी खो रहा ;
अब बता किस पाश में
बाधूँ तुझे कल्याण, कैसे ?

आज आई उमड़ करुणा
कण्ठ में आजन्म की ;
वधिर अधरों पर खिलेगी
मधु - मधुर मुस्कान कैसे ?

रो रही ममता विकल ;
फिर भी विवशता है बड़ी !
हाय, सुन कर भी भुला दूँ
यह प्रलय - आह्वान कैसे ?

चाँदनी

खिल रही कैसी मनोहर चाँदनी ;
आज , भू पर और ऊपर चाँदनी !
घूमती घर-घर, नगर, मर्मर-विपिन ;
देख बाहर और भीतर चाँदनी !

नाचती वन-वन, नचाती तरु-लता ;
बन गई लो, आज नटवर चाँदनी !
है नहीं फूली समाती मोद में ,
हो रही किसपर निछावर चाँदनी !

बोल , किसके प्रेम में पगली हुई ;
भाग जाती देह छूकर चाँदनी !
प्राण, कर ले पान छककर प्रेम-रस ;
ला रही भर आज सागर चाँदनी !

६७०

ले नूतन सन्देश सन्धि का ,
राजदूत ये फिर आये ;
घिर आये मेरे आंगन में ,
ये सावन - घन घिर आये !

विद्रुम के बीजों में मेरे
फूटे अंकुर सोने के ;
ये ही मोती बोने के दिन ,
ये दिन मोती बोने के !

आशा के पौधों में देखो ,
ये नीलम के फूल लगे ;
आज , जगे जीवन के दोनों ,
दोनों ही उपकूल जगे !

क्यारी - क्यारी फुलवारी की
भरी बेलियों से न्यारी ;
हरी उमंगों की खेती , वह
चली प्रणय - धारा प्यारी ;

धरा - जलधि के एक तीर पर
सुमन - तरी - से तिर आये ;
घिर आये मेरे आँगन में ,
ये सावन - घन घिर आये !

६७१

हे भुवन - मोहिनी मा पृथिवी ,
मैं तुझे छोड़ कर उठ न सका ;

तेरी मिट्टी में मेरा तन ,
जो एक बार खोया यह मन ;
वह अंकुर भी दे सका नहीं ,
मैं उसे फोड़ कर उठ न सका !

तेरी बाँहों में ममतामय ,
जो एक बार यह बँधा हृदय ;
तेरे ममत्व की कारा को
फिर कभी तोड़ कर उठ न सका !

जो कभी उड़ा भी तो क्षण-भर ,
मैं ललचा कर नभ की छवि पर ;
तूने यों खींच लिया मुझको ,
फिर पंख जोड़ कर उठ न सका !

मुझसे है जकड़ गया कण-कण ,
है लिपट गया मुझसे क्षण-क्षण ;
तेरे अंचल में बँधा हुआ
मैं तुझे छोड़ कर उठ न सका !

६७२

जब पावस - निशीथ में अन्ध ,
खो जाती वन - पथ की गन्ध ,
तुझे ढूँढ़ता हूँ मैं व्याकुल
तमाकीर्ण संसृति में सुप्त ;—
दीप-शलभ-सा बुझ-जल-जल !

चरणों से ठुकरा सुकुमार ,
जतलाता जब निर्मम प्यार ;
हो जाता हूँ मैं तेरी ही
चिन्ता - चिता - ज्वाल में लुप्त ;—
तुहिनोपल - सा घुल - गल - गल !

अन्तराल से घन के श्याम ,
निरख तुझे सुन्दर - अभिराम ;
तेरे मृदु - सुरचाप - कण्ठ का
बन जाने को मंजुल हार ;—
मचल-मचल उठता प्रतिपल !

यह किसका यौवन - उन्मेष ?
शरत - पूर्णिमा का राकेश ;
तेरे एक अधर - चुम्बन को
मैं करता रहता विभ्रान्त
नील-जलधि में कल - छल - छल !

दिव्य स्वर्ण - रथ पर आसीन ,
आता जब तू नित्य - नवीन ;
तेरी एक झलक पाने को
बाल - विहग - सा प्रथम - प्रभात
उड़ - उड़ जाता हूँ चंचल !

जब तेरा रथ - चक्र - निनाद ,
भर देता उर में आह्लाद ;
राजेश्वर, तेरी करुणा की
एक बूँद के लिये दरिद्र
मैं फैला देता अंचल !

६७३

इस व्यथित विश्व में आज, आप
अपना उपमान बना हूँ मैं !

जाना न किसीने कभी सदय
मेरा उन्माद - भरा परिचय ;
अपनी आँखों में आज आप
अपनी पहचान बना हूँ मैं !

ये अधर बिहँसना क्या जानें ?
कैसे प्रिय, दुख को सुख मानें ?
सुरधनु - कपोल पर आज, आप
अपनी मुसकान बना हूँ मैं !

विपरीत विधाता की गतिविधि ;
काली कपाल - रेखा-जलनिधि ;
एकाकी जग में आज , आप
अपना भगवान बना हूँ मैं ,

मेरा संसार निराला ही ,
हिम-बिन्दु जहाँ हैं ज्वाला ही ;
भोले मानस में आज , आप
अपना वरदान बना हूँ मैं !

पीड़ा के जलद सिसकते हैं ,
आँखों से उमड़ छलकते हैं ;
वाष्पार्द्र - कण्ठ में आज , आप
अपना पिक - गान बना हूँ मैं !

६७४

खिल गई अपराजिता ;
आज, इस अभिनव शरत के प्रात में मधुरस्मिता !
ऊषसी यह शारदीया ,
स्वर्ग से आई उतर
सुषमामयी, अभिनन्दनीया ;
नव - वधू - सी आप ही लज्जावरण - परिगुण्ठिता !
खुल गये नीलम-नयन-दल ,
तुहिन - कण से धुल गये जब
स्वप्न-चकित कपोल कोमल !
काँपती दक्षिण - पवन के स्पर्श से रोमाञ्चिता !
श्लथ हुए ज्यों बन्ध - कुन्तल ,
राज-पथ में अन्ध - जग के
भर गया मृदु-गन्ध-परिमल !
मुसकिरा दी अलि, अकारण प्रथम-परिचय-लज्जिता !

६७५

रूपहली - सुनहली रश्मियाँ ,
औ चाँदी - सोने के दिन ;
ये मेरी मरकत की कलियाँ ,
ये मोती बोने के दिन !
नीली - पीली - हरी उमंगें ,
लाल - लाल लालस के फल ;
अब आये सजनी , मेरे ये
अब आये ढोने के दिन !
झुकीं डालियाँ फल - फूलों से ,
इच्छाओं का अलि - गुंजन ;
जाने दो सिसकियाँ-हिचकियाँ ,
जाने दो रोने के दिन !
धूप और छाया मिल दोनों
आज चाँदनी हुई घनी ;
आओ, सखि ! सर्वस्व लुटाओ ;
ये खाने - खोने के दिन !
दृष्टि किसीकी कुत्सित इनपर
देखो , कहीं न पड़ जाये ;
ये विष की घोई घड़ियाँ हैं ,
ये जादू - टोने के दिन !
आज, विश्व के उर-उर में नव-
सुख - अंकुर होने के दिन ;
ये मेरी मरकत की कलियाँ ;
ये मोती बोने के दिन !

६७६

स्नेह - मयि, होगा क्या स्वीकार ?
आज, अकिञ्चन के सुख-व्याकुल अन्तर का उद्गार !
देकर भी सर्वस्व नहीं मैं पा सकता उद्धार ;
शुभे, तुम्हारे योग्य नहीं कुछ बचा शेष उपहार !
मिली एक संगम - वेला पर दो जीवन की धार ;
प्रिये, सँभालो मधुर - प्रणय का मधुर मधुर यह भार !
सफल हुई मेरे भाई की यह जय - गर्वित हार ;
बन जायें कड़ियाँ फुलझड़ियाँ ; बन्धन ही आधार !
भागी हूँ सुख - दुख का मैं भी भैया का सुकुमार ;
छोड़ न सकता—याद रखो, अपने हिस्से का प्यार !
इसीलिये, आशा है अन्तःपुर में निज इस बार ;
दोगी स्थान देवि, इस लघुजन को भी दोष बिसार !
स्नेहमयि , अयि अनुपमे , उदार !

६७७

शरत का हास
लोटता काश - वन में ; वारिद्-
रहित आकाश !
फुल्ल दिशि - पाटल - दल के प्राण ,
किरणों की प्रथम छवि - मुस्कान !
विश्व में निखिल, मुक्ति का गान ;
शेष , लो , पावस - कारावास !
शस्याधर - मञ्जरी नव - श्याम ,
पराय - वन - वीथि नयनाभिराम ;
प्रेम - लीला - कुंज में सकाम
देखो, यौवन का नृत्य - लास !
रज - हीन मेदिनी , पथ अदोष ;
स्निग्ध, परिमल से शतदल-कोष !
व्योम में सुनो, जय - शंख - घोष ;
छाया सुषमा का बाहु - पाश !

६७८

कौन तुम आलोक - बाला ?
किस हृदय का हार होगी
यह किरण - मन्दार - माला ?
वदन नव - रवि-विभा-भासित ,
श्वास मलयज - मलज-वासित !
जल उठी प्राची - क्षितिज पर
आज किसकी रूप - ज्वाला ?
मत्त मधु से प्राण - मधुकर ,
नाचता अविराम नटवर ;
हुई किसके आगमन से
धन्य जग की नृत्यशाला ?
यह प्रथम मधु - प्रात - बेला ,
किन्नरों का लगा मेला !
भर गया जग के हृदय में
गीत - स्वर किसका निराला ?

६७९

छू न मेरे प्राण तू ;
आज, करुणा के स्वरों में
गा न गीले गान तू !
छू न मेरे प्राण तू !

चल गई आँखें जरा उस रोज यों ही राह में ;
चू पड़े उद्गार अन्तर के किसीकी चाह में !
क्या हुआ, यदि दे न पाई
मुझे मधु का दान तू ;
छू न मेरे प्राण तू !

वर्ष कितने हो चुके इस ग्राम में बसते मुझे ;
नाम मेरा है नहीं मालूम अब तक भी तुझे !
एक ही तरु - डाल के
पंछी, तनिक पहचान तू ;
छू न मेरे प्राण तू !

आज तो यों ही विवशता, और उसपर चाँदनी !
माधवी का सार पीकर बन गई रजनी घनी !
रंग लायेगी भला
प्रिय की मधुर मुस्कान तू ?
छू न मेरे प्राण तू !

६८०

आज सुबह में तार और कल पत्र तुम्हारा मिला सखे ;
कठिन कलेजा पत्थर का भी एक साँस में हिला सखे !

उस दिन जब था गगन रो रहा ;
नींद आ गई रात, सो रहा !
सुबह खुलीं जो आँखें; देखा
सचमुच मेरा मोल हो रहा !

देगा कौन हृदय की कीमत ? यहाँ स्वर्ण के फूल बरसते !
ना-ना; मैं न इन्हें बेचूँगा, प्राण न मेरे इतने सस्ते !

छिपा किसी से क्या रहस्य यह ?
फूटेगा कब स्वर्ण - शस्य यह ?
सूख जायगा स्रोत एक दिन ;
विहँस उठेगा कवि अवश्य यह !

उसी दिवस की आज प्रतीक्षा, एक तपस्वी बन रहने दो !
रोने का अधिकार न मेरा छीनो; रो - रो कर कहने दो !

बैठ गया जब प्यारे, तुलकर
क्यों न खेल लूँ क्षण भर खुलकर ?
देखूँगा दुनिया के पानी
को चीनी - सा मिलकर, घुलकर !

एक बार नाचूँगा जग की विषय - वासना के मधुवन में !
अभी न पूछो, बन्धु, कौन-सी अग्नि-पिपासा जागी मन में ?

६८१

भैया, इस असहाय-अकिंचन के प्रति ऐसी अनुकम्पा क्यों ?
समझ लिया इस नीरस-किंशुक-कवि को सौरभमय चम्पा क्यों?

मैं भी क्या कविता करता हूँ ?
व्यर्थ बखेड़ों में पड़ता हूँ !
यह तो उस दिलवर की खूबी ;
बिना मौत के ही मरता हूँ !

सब कुछ लुटा दिया है जगको, फिर भी गई नहीं खुदगर्जी !
अब अपना क्या बचा ? विचारो, करो वही जो होवे मर्जी !

यहाँ एक से एक निराले,
अमिय - हलाहल - भरे पियाले !
कहा एक दिन मुझे किसी ने-
बड़े बने हो भोले - भाले !

तुमको भी क्या मिली तबीयत, रखते जब न अक्ल भी थोड़ी !
बोला मैं-बस, बन्धु ! यही तो सब से बढ़ मेरी कमजोरी !

जब पथ में आ गया, डरूँ क्या ?
झोली में फल - फूल भरूँ क्या ?
ये तो मेरे दिल के कतरे ;
मैं खुद इनका मोल करूँ क्या ?

यह टेढ़ा सवाल ही उनका; प्रिय, मेरा कुछ दोष नहीं है !
उन्हें कौन-सी चीज चाहिये ? क्या इससे सन्तोष नहीं है ?

कैसा आज, तुम्हारा निश्चय ?
लोगे ही क्या मेरा परिचय ?
इस डाली में फूल नहीं रे ;
किया कंटकों का ही संचय !

इसीलिये तो, इच्छा है - कुछ सुन लेते वे कहना मेरा !
इस दुनियाँ के पानी में हाँ, कमल - पत्र - सा रहना मेरा !

६८२

देखा, नीरव रजनी में तारों के दीप जलाते !
देखा, सागर की अनन्त लहरों पर चुहल मचाते !
देखा, दीनों की सकरुण आहों पर वलि-वलि जाते ;
देखा, कितनी बार द्वार से उर के आते - जाते !
इतने पर भी किन्तु, न तेरा भेद समझ में आया ;
देखा; लेकिन कभी नहीं पहचान तुझे मैं पाया !

६८३

आती हो, तो आओ मेरे प्राणों की लघु प्याली में !
आती हो, तो आओ मेरे भावों की हरियाली में !
संध्या की लाली - सी मेरे मानस - नभ में छा जाओ !
मलयानिल-सी हृदय-विपिन की डाली-डाली सरसाओ !
प्रथम उषा-सी मुसकाती, मृदु गति-से प्रिये, चली आओ !
सपना बन मेरे इन नयनों में तुम आह, बिखर जाओ !

६८४

जिस दिन आग लगाई मैंने खुशी - खुशी अपने ही घर में,
मर जाने पर रखी कफन को कानी कौड़ी भी न कमर में !

बन्धु, उसी दिन समझा अच्छी
तरह मनुज का जीवन क्या है ?
कीमत पत्थर के टुकड़ों की ;
मुक्ति और भव - बन्धन क्या है ?

अब तक भुला रही थी मुझको घेर घेर यह ठगिनी माया ;
उस दिन बीच - सड़क पर मैंने ही प्रिय, उसको खूब छकाया !

महल बनाया जीवन - भर जो
दाम और यश - नाम कमा कर ;
आज भस्म कर दूँगा उसको
एक फूँक में, धुनी रमाकर !

हाथों पर जो दाग खून के, शीशे का दिल मोह - भरा है ;
आज, राख से मल देखूँगा, उसमें क्या क्या भेद पड़ा है !

कपड़े की क्या चिन्ता, भाई,
बहुत बड़ा है मेरा दानी !
भूख मिटेगी फल - फूलों से,
पीऊँगा गंगा का पानी !

अब न, बुलाओ बन्धु, मुझे फिर बड़ी मधुर वह जादूगरनी ;
कितनी मोहमयी है रौरव की वह पंकिल - सी वैतरणी !

जंगल - जंगल मंगल करता,
डोल रहा मैं आज उदासी ;
अब न पुनः बहुरेंगे दिन वे,
प्राण हुए मेरे वनवासी !

कपट - जगत से तोड़ा नाता, विषय-वासना अब न सताती ;
दग्ध हुई सुकुमार कल्पना, मधुमासों की याद न आती !

वह सुवर्ण का बन्दी - गृह औ
फूलों की कोमल हथकड़ियाँ ;
बन्धन है बन्धन ही आखिर,
लोहे की हो या पंखड़ियाँ !

आग लगा कर अपने घरमें जीवन का सर्वस्व जला कर ;
आज चला हूँ मैं कानन में सब का अन्तिम बार भला कर !

राज-भोग जब किया, किया, अब उर में विकट पिपासा जागी ;
बागी मैं विख्यात तंत्र का, मंत्र, यंत्र - षड्यंत्र, विरागी !

आज, उदधि - मंथन की वेला,
निकलेंगे नव रत्न चतुर्दश ;
वितरण अन्य पदार्थों को कर
आप करूँगा पान गरल - रस !

दस दस दिन का कभी पिपासी, मास मास दिन का उपवासी !
फिर भी एक मधुरिमा इसमें, जान चुका मेरा संन्यासी !

६८५

ले आवेगा चार दिनों का ही परिचय इतना आकर्षण !
सोचा था न अमर हो जायेगा यों वही एक ही दर्शन !

कुछ भी तो प्रिय, पास नहीं था,
जीवनमय इतिहास नहीं था !
सखे, कहूँ क्या—स्वयं मुझे इन
नयनों पर विश्वास नहीं था !

अंग-अंग में जग जायेगा क्षण ही में रोमांकुर - हर्षण !
सोचा था न बन्धु, सच होगा, इस जन में इतना आकर्षण !

आज, हृदय कुछ कड़ा हो गया ;
जीवन का दिन बड़ा हो गया !
किया किसीने प्रेम - समर्पण,
मेरा सावन हरा हो गया !

इस वर्षा में, इस रिमझिम में, इतना मधु, इतना रस-वर्षण !
सोचा था न बन्धु, लावेगा एक पुलक ही यह आकर्षण !

६८६

छोड़ राजपथ रम्य, विपिन में काँटों पर चलना होगा ;
जीवन - रजनी भर दीपक - सा तिल-तिल कर जलना होगा !
बिना - मोल बिक जाना होगा, रह - रह कर न मचलना होगा ;
सुख-दुख के कटु-तरु पर निर्मम अमर-बेलि बन पलना होगा !
इसे भूल कर भी न समझना शिशुओं का वह सरल घरौंदा ;
प्रेमी, जरा सँभल कर लेना प्राणों के विनिमय का सौदा !

६८७

कि, मेरा मौन - परिचय क्या ?
सुमन, मैं एक वन - वासी !
विदाहक स्पर्श भी मेरा,
कठिन मैं अग्नि - उल्लासी !
जला करता जगत में जो,
तुम्हारे रूप का दीपक;
उसीको चूमने आते
स्खलित हो ये शलभ - तारक !
असम्भव व्योम से मेरा
पतन, मैं इन्दु-स्मित-हासी;
कि, मेरा मौन-परिचय क्या ?
सुमन, मैं एक वन - वासी।
प्रलय उच्छ्वास - सा भरता
तुम्हारे श्वास में प्रतिक्षण;
निखिल - सौन्दर्य यह, घन के
हृदय पर इन्द्रधनु - चित्रण !
मुझे क्यों मृत्यु से भय हो ?
अमृत मैं पूर्ण अविनाशी !
कि, मेरा मौन परिचय क्या ?
सुमन, मैं एक वन - वासी !
तड़पती वन्दिनी जग में
तुम्हारी कल्पना आतुर;
शिथिल - से छन्द - बन्धन में
चरण के नृत्य - मय नूपुर !
सुलभ क्यों गीत हो मेरा ?
मधुर मैं शान्त पिक - भाषी !
कि, मेरा मौन - परिचय क्या ?
सुमन, मैं एक वन - वासी !
चपल मुस्कान अधरों की;
तुम्हारा कण्ठ - स्वर नश्वर !
अमर मैं देव, मर कर भी;
अमिट हूँ आज मैं मिट कर !
करे क्यों वंचना मुझसे
जगत ? मैं लोक - विश्वासी;
कि, मेरा मौन परिचय क्या ?
सुमन, मैं एक वन - वासी !
व्यथा जो जल रही बनकर
जलधि के वक्ष में वाडव;
उसीका एक लघु - कण हूँ
चिरन्तन मैं अतनु - अभिनव !
न तुम छू भी मुझे सकते;
तडित मैं ज्योति - अभ्यासी !
कि, मेरा मौन परिचय क्या ?
सुमन, मैं एक वन - वासी !

६८८

फैल गई अब तो बदनामी,
फैल गया अपयश घर - घर !
यो - ही अब इंगित करती है
लोगों की उँगली उठकर !
जो भय था, अब दूर हुआ
वह भी, प्रेमी मन गाता है !
कान हुए बहरे सुन-सुन कर—
'लो देखो, वह जाता है !'

६८६

तुम्हारी नाभि से ही जो
निकलती, विकल मृग-मद गन्ध हूँ मैं !

अचल हूँ, क्षुद्र हूँ, लघु हूँ ;
अगोचर एक जल - धारा ।
किये आबद्ध यह जब तक
मुझे पाषाण की कारा !
नहीं तो, मुक्त, बन्धन से
अचानक निर्झरी निर्बन्ध हूँ मैं !

शरत के मेघ - जल - सा मैं
समुज्वल, विमल हूँ, शुचितम ;
अपावन स्पर्श कर देता
जगत - कर का मुझे कर्दम !
विपुल आकाश के उर में
विहारी सलिल-दल स्वच्छन्द हूँ मैं !

खिला हूँ आज उपवन में,
कभी हो जायगा कल, लय ;
प्रथम मुस्कान, फिर रोदन ;
यही तो पुष्प का परिचय !
नलिन के दृग-दलों में निशि—
प्रणय-वन्दी मधुप निस्पन्द हूँ मैं !

छिपा था जलद के उर में
तडित मैं मुग्ध प्रिय - दर्शन ;
मुझे तो खींच कर लाया
तुम्हारा रूप - आकर्षण !
किसीकी ज्योति से छवि की
बना दिग्मूढ, उन्मन, अन्ध हूँ मैं !

हृदय में मल्लिका के जो
अमुकुलित स्वप्न - कौतूहल ;
मलय का एक ही इंगित ;—
खुले दृग, खिले गया परिमल !
भटकता खोजता तुमको
निखिल जग में, पथिक निर्द्वन्द्व हूँ मैं !

न जय की कामना मेरी,
पराजय का न किंचित भय ;
मुझे वर की न अभिलाषा ;
नहीं अभिशाप का संशय !
स्वयं उन्माद यौवन का ;
जगत-सौन्दर्य, मुक्तानन्द हूँ मैं !

६६०

एक लघु मणि - दीप हो ;
प्राण, मैं पतंग तुम्हारा ;
तुम प्रतनु मणि-दीप हो !

आज, जीवन - धन मिले हो,
तुम स्वयं आकर खिले हो !
मैं कहाँ खोजूँ तुम्हें,
तुम तो अतीव समीप हो !

अरुण तव नव - हास लाया,
पवन सौरभ - श्वास लाया ;
कौन कहता प्रिय, जगत के
तुम विकूल - प्रतीप हो !

रेत पर जग की न आओ,
ज्योति मत दृग की लुटाओ ;
प्राण, तुम मेरे हृदय - सर
के मनोहर सीप हो !
एक लघु - मणि - दीप हो !

६६१

आज, मेरे शून्य गृह में
आ गये तुम प्राण! कैसे?
इस पुरानी देहली को
फिर सके पहचान कैसे?
जब था बुलाया प्यार से;
तब थे उठे दुत्कार-से!
अब स्वयं आकर खड़े हो
गेह में नादान कैसे?
इस पुरानी देहली को
तुम सके पहचान कैसे?
आओ, मिले अवकाश भी;
बैठो जरा-सा पास भी!
यह बताओ तो, यहाँ तुम
आ गये अनजान कैसे?
इस पुरानी देहली को
फिर सके पहचान कैसे?
सागर यहाँ से दूर है;
जल भी नहीं भरपूर है!
एक पल में ही बसा
दोगे भला वीरान कैसे?
आज; मेरे शून्य गृह में
आ गये तुम प्राण! कैसे?
आ ही गये, तो रोक क्या?
पथ-श्रम मिटा लो, शोक क्या?
जा सकोगे आ यहाँ
इस रात्रि में सुनसान कैसे?
इस पुरानी देहली को
तुम सके पहचान कैसे?
भ्रू-शर खिंचे, दृग-बाण तो;
मोहन-मधुर मुसकान तो!
आज आँगन में निबाहोगे
निठुर, अभिमान कैसे?
आज मेरे शून्य गृह में
आ गये तुम प्राण! कैसे?

६६२

थी अभी तो बालिका;
गिर पड़ी भू पर सुरभि-अभिमानिनी शेफालिका!
जब खुले छवि के विलोचन,
नैश के भुज-पाश में
आबद्ध था जग का तपोवन;
लख सकी न प्रभात यौवन का अनङ्ग-कुमारिका!
जागरण का पुलक-कम्पन,
सुन पड़ा मधुपावली का
कुंज में न अनन्त गुंजन!
रह गई तृष्णाकुलित-ही शरत-वन की वीथिका!
नव-वधू का प्रथम-परिचय,
एक क्षण ही तो किया
सीमन्तिनी ने प्रणय-अभिनय!
बन न पाई फिर किसीके कंठ की वर-मालिका!
रख कपोलों पर किरण-कण,
(पूर्व का अमिताभ उदयन)
एक कंचन के शिलीमुख ने
लिया ज्यों अधर-चुम्बन;
किस कुटिल विधि ने किया खण्डित सुहाग-मृणालिका!

६६३

प्रेम - मय, आनन्द - मय,
ये प्राण दो प्रिय, प्राण दो;
प्रेम के पापी हृदय को
प्रेम की पहचान दो!

प्रेम - पिक को मुक्त कर दो;
स्नेह दो, उन्माद - स्वर दो!
कंठ दो, वाणी - विनय दो,
प्रेम ही का गान दो!

हास हो या वेदना हो;
प्रेम की ही कामना हो;
भावना हो प्रेम की प्रिय,
अश्रु या मुस्कान दो!

ज्ञान हो, तो प्रेम ही का,
ध्यान हो, तो प्रेम ही का;
प्रेम दो, अनुरक्ति भी दो,
भक्ति का वरदान दो!

दर्द दो, दिल में कसक दो;
बेकली - पीड़ा - सिसक दो!
जन्म दो प्रिय, प्रेम ही में,
प्रेम में निर्वाण दो!

हो अमर तस्वीर मेरी;
प्रेम की यह पीर मेरी;
पैर में जंजीर हो, मंजीर
का अभिमान दो!

फूल के हो जायँ बन्धन;
चरण - रज बन जाय चन्दन;
प्रेम ही जीवन बने, प्रिय,
प्रेम - मय अवसान दो!

६६४

गाल मेरे लाल कर दो;
प्रिय, उषा के चुम्बनों से
युग-कपोल रसाल कर दो!
गाल मेरे लाल कर दो!

आज, यौवन का कुतूहल;
कर रहे ये प्राण कलकल!
मूक - मधु अधराधरों को
चूम कर वाचाल कर दो!
गाल मेरे लाल कर दो!

हो रहा आकुल-विकल यह;
वेदना से हृदय रह - रह!
बाँध कर भुज - पाश में
इसको विवश तत्काल कर दो;
गाल मेरे लाल कर दो!

कर रहीं छल-छल उमंगें;
अश्रु से फेनिल तरंगें!
खेल लो उर के उदधि में,
मुक्त कुन्तल-जाल कर दो;
गाल मेरे लाल कर दो!

आज तन-मन वार कर मैं;
आ गई शृङ्गार कर मैं!
अंकुरित कर रोम - तृण,
मधुमय मनोज-मृणाल कर दो!
गाल मेरे लाल कर दो!

६६५

मेघ - किन्नरी
करती नृत्य सुन्दरी यौवन—
रूप - मद - भरी !

डोलती ग्रीवा में बक - माल,
चितवन तड़ित की जग पर डाल,
बाँध कटि-भुज में प्रति-गति-ताल,
व्योम से चली गीति - निर्झरी !

घुँघरू चरणों में मराल - स्वन;
वक्ष में श्वास श्लथ, श्याम-वसन;
वंकिम आनख-शिख, हँस प्रति क्षण,
खोंस कच में कदम्ब - मञ्जरी !

६६६

प्राण, सुख की बात कर;
हो सके, तो इस अमा को
पूर्णिमा की रात कर !
जिन्दगी रो - रो बिताई;
आज भी तो बिहँस, भाई !
आँसुओं से मत हृदय—
मधुमास को बरसात कर !
शूल को भी फूल कर दे;
धूल में भी स्नेह भर दे !
खिल उठे जग-पद्म, शुचि को
भी शरत का प्रात कर !
गान भर पाषाण में भी;
हो सुधा विष-पान में भी !
रुदन हो मुस्कान, कुछ यों
तार पर आघात कर !
पा किसीको आप खो जा;
प्रेम - मधुपालाप हो जा !
शाप हो वरदान, पवि को
भी विमल जलजात कर !
प्यार दिल से करे अरि भी,
बिन्दु-सम हों सिन्धु-सरि भी;
मार दे भृगु लात, तो
हरि का क्षमामय गात कर !

६६७

हृदय, मैं रूप - सरिता का
तरंगित वेग चंचल हूँ;
किसीकी प्रेम - ज्वाला का
तरल अंगार शीतल हूँ !
दृगों का भ्रम, पिपासा की
विकल उन्मादना जग की;
मरुस्थल के हृदय - तल में
प्रवाहित भ्रान्ति - मृगजल हूँ !

न नयनों में सलिल, वाणी
न मुख में, स्मिति न अधरों पर;
शरत के नील - मानस - लोक में
मैं मुक्त बादल हूँ !
विमुख कर दे शिलीमुख-वृन्द
को संकेत ही जिसका,
विजन में शून्य - चम्पक का
अपरिचित गन्ध - परिमल हूँ !

हृदय, मैं रूप - सरिता का
तरंगित वेग शीतल हूँ !

६६८

ननद, जरा तू यहीं ठहर;
सचमुच तुझ-सी मैं न निडर!
गये सबेरे-ही खेतों में
भैया तेरे हल ले कर;—
और, साथ में हैं देवर!

कातिक का यह कटु आतप;
ज्वाला में जलते पादप!
दस बज गये, कौन दे आये
उन्हें हाय, पानी-जलपान?
कड़ी धूप से अलि, चलकर!

नहीं वहाँ छाया शीतल;
औ न पास में मिलता जल!
प्यासे-ही बबूल के नीचे
भूख-प्यास से व्याकुल म्लान,
सुस्ताते होंगे प्रियतम!

किससे कहूँ हाय, मैं आज?
मुझे बड़ी-ही लगती लाज!
तुम तो एक बालिका हो अलि,
एक बालिका हो नादान!
भूल जायगी मार्ग अगम!

लाओ जल, लाओ रोटी;
मुझे न तुम समझो छोटी!
जाऊँगी मैं आज स्वयं ही
भाभी की दूती बनकर;
पहुँचा आऊँगी सत्वर!

तुम्हें न मैं जाने दूँगी,
सेवाफल पाने दूँगी!
अपने भैया को मैं ही सखि,
आज खिला लाती, देखो;
तुम इस घर में ही रह कर!

६६९

प्रेम के इस पात्र को प्रिय,
आज केवल प्यार कर;
प्यार कर सुकुमार, प्रियतम,
प्राण, प्रणयाधार कर!
खेल ले क्षण भर उमंगों
से हृदय की आज तू;
शूल भी आ जाय तो,
उसको गले का हार कर!

रात पूनो, चाँदनी के
जाल में शशि तिर रहा!
आ न जा दिलदार, आ क्यों
जा न तू शृंगार कर?
हो रहा उर विधुर-व्याकुल
आज भावों से मधुर;
एक चुम्बन और बस,
हलका हृदय का भार कर!

हों मुखर नव-मंत्र से
निर्झर-नदी-नद-सिंधु भी;
फूँक मोहन, आज बंशी,
मुक्त जीवन-द्वार कर!
कौन जादू वह, न जिससे
हो वशीकृत मेदिनी?
खोल दे बन्धन सभी प्रिय
नृत्य कर, अभिसार कर!

७००

हीरे का यह हृदय हमारा,
प्राण हमारे सोने के;
नीलरतन की बनी बाँसुरी,
गान हमारे सोने के!

विद्रुम की मुस्कान-माधुरी,
अश्रु-वेदना मोती की;
मरकत के विस्मय हैं ये,
वरदान हमारे सोने के!

मधु-शिरीष की वदन-कल्पना,
केश-पाश ये केशर के;
पारिजात की रूप-गन्ध,
परिधान हमारे सोने के!

इन्द्रधनुष की रँगी उमंगें,
सजल बादलों की इच्छा;
स्पृहा तुषारों की उज्ज्वल,
अरमान हमारे सोने के!

मानिक-पन्ने की प्रत्यंचा,
बाण हमारे सोने के;
हीरे का यह हृदय हमारा,
प्राण हमारे सोने के!

७०१

नाच ले मानस-मयूरी,
गर्विता अलकापुरी के,
पास ही तो है मसूरी!

चंचला चपला गगन की,
जानती है वेदना मेरी,
सलोनी पीर मन की!
आज हम दो प्राणियों के
बीच में यह अमित दूरी!

शैल के इस चित्रपट पर;
मैं खड़ा हूँ अश्रु का ले
अर्घ्य स्मृति के शून्य-तट पर!
हाय, क्या होंगी कभी
वन-वास की घड़ियाँ न पूरी?

प्रणय-कंचन-वलय खोकर,
मैं शिखर से रामगिरि के
देखता हूँ विकल होकर;
मार्ग वह परिचित युगों का,
कामना मेरी अधूरी!

मेघ-माला यह मनोहर;
उमड़ आती नेत्र-पथ से
तनु-लता को कण्टकित कर!
लख शिखी का नृत्य मुझको
याद आ जाती अजूरी!

७०२

प्राण, तुम्हारी यह प्रवंचना अब तो जान गया हूँ मैं!
इतने दिन तक रहे निराले;
बने बड़े ही भोले-भाले!
आज, अचानक ही तुमको सचमुच पहचान गया हूँ मैं!
दे न सकोगे तुम अब धोखा;
प्राणों का यह पन्थ अनोखा!
अपनी हार कभी का प्यारे, कहता, मान गया हूँ मैं!
इसीलिये तो चेता मानस,
तोड़ दिये सब बन्धन बरबस!
एक बार ही सारा जीवन-रस कर पान गया हूँ मैं!

७०३

आया हूँ मैं आज पान कर नीलकंठ - सा गरल निराला ;
यह देखो, मेरे प्राणों में कैसी सर्वनाश की ज्वाला !

रक्त - चिता का हू - हू - उत्सव ;
जलता धू - धू - धू कालानल !
आग लगी उर - खाण्डव - वन में,
हृदय - महोदधि करता खलबल !

मैं शंकर - सा तपोमग्न, किसने सुमनों का विशिख सँभाला ?
चरण-प्रहार - चिह्न मैं भृगु का लिये डोलता उर पर काला !

ध्रुव की पर्वत—अटल तपस्या,
सत्याग्रह प्रह्लाद - सरीखा ;
चिरकुमार - व्रत शान्तनु - सुत - सा
तुमने भी क्या देखा - सीखा ?

पी ले ओ सुकरात, उठा कर पी ले आज जहर का प्याला ;
देगी साथ जान ले कोई कृष्णकुमारी - सी चिर - बाला !

'लैला - लैला' कर बन - बन में
भटक रहा हूँ मैं मतवाला ;
अरे, आज मजनूँ पागल है,
क्यों न जपे फिर उसकी माला !

तोड़ कोह फरहाद लायगा नहर बहा निर्मल - जल - धारा ;
सुनो, सुनो शूली से किसने मेरे प्रिय का नाम पुकारा !

ऐ मन्सूर, तुम्हें ईसा ने
तो न प्रणय का मंत्र दिया है ?
क्या जानें, क्यों आज भर्तृहरि
ने निर्जन वनबास लिया है !

राज - पाट सर्वस्व त्याग कर बना अशोक भिक्षु वैरागी ;
क्या न तुम्हारे प्राणों की भी कीमत कुछ ओ मेरे बागी ?

अंग - अंग में भसम रमाये,
हृदय - हार उरगों की माला ;
आँखों में तसवीर यार की,
पड़ा लबों पर विष का प्याला ;

पी ले, पी ले ओ अलबेले, फिर न मिलेगी यह पथशाला ;
कर ली जान हथेली पर जब, फाँसी हो या देस - निकाला !

७०४

प्राण, जानता जो यह जीवन हो जायेगा इतना बोझल,
कभी न होने देता तुमको मैं अपनी आँखों से ओझल !

रखता तुम्हें छिपा कर निशि - दिन
अन्तःपुर के अन्तर्तम में ;
कर देता निश्चय ही कोई
विघ्न तुम्हारे यात्रा - क्रम में !

खोद राह में देता खाई, रखता रोक दृगों की घाटी ;
प्राण, जानता जो आओगे सीख नई तुम यह परिपाटी !

बन्दी बना हृदय - कारा में,
रखता बाँध प्रणय - बन्धन से ;
विलग न होने देता क्षण भर
भी तुमको काया से, मन से !

गिर पड़ता पैरों पर प्यारे, कर देता वचनों से बरबस ;
प्राण, जानता जो यह जीवन हो जायेगा इतना नीरस !

जी न सकेगी यह प्रस्तर की
प्रतिमा प्रियतम, बिना तुम्हारे ;
सच कहता, हो जाय न निष्फल
चिर-दिन के ये साधन सारे !

कर देता मुँह देख तुम्हारा प्रात लोचनों में आँसू भर ;
प्राण, जानता जो यह जीवन हो जायेगा इतना दूभर !

चुगते मोती राजहंस बन
आर - पार ही सुख से लहरा ;
भय क्या तुम्हें, दुःख ही क्या था ?
मेरा मान - सरोवर गहरा !

आठों पहर स्वयं ही देता पहरा मैं अवरुद्ध द्वार पर ;
प्राण, जानता अगर किसी दिन भाग चलोगे तुम यों छुपकर !

द्वार खुला क्यों छोड़ा मैंने
तुम्हें, समझ पिंजड़े का तोता ?
सोता, हाय न यदि मैं उस दिन,
आज भला तब फिर क्यों रोता ?

शिथिलीकृत कर बाहु-पाश में कर देता तत्काल वशीकृत ;
प्राण, जानता बना मुझे जो जाओगे तुम यों जीवन्मृत !

७०५

चल दोगे चुपचाप किसी दिन अतिथि, छिपी यह बात नहीं ;
तुम न किसीके परिचित प्रियतम, यह भी है अज्ञात नहीं !

सारा बन्धन तोड़ प्रेम का,
छोड़ जगत, दुनिया रोती,
निकल पड़ोगे प्राण, कहीं तुम
किसी दिवस बिखरा मोती !

देखा तुम्हें प्रात जो, पाया पुनः सलोने, रात नहीं ;
तुम न किसीके दुख के साथी, अतिथि, छिपी यह बात नहीं !

इसीलिये क्या इतनी पूजा,
इतना मंगल - गान किया ?
सदा तुम्हारी कीं सेवाएं,
जप - तप, साधन - दान किया !

ऐसी कौन वस्तु वह, जिससे सखे, सजाया गात नहीं ?
चल दोगे चुपचाप किसी दिन, क्या यह मुझको ज्ञात नहीं ?

आये जब, तब किसे पता था,
जाओगे अनजान कहीं !
यों जीवन में आग लगा कर
भटक पड़ोगे प्राण, कहीं !

परदेसी, तुम दूर देश के वासी, यह अज्ञात नहीं ;
चल दोगे चुपचाप किसी दिन अतिथि, छिपी यह बात नहीं !

७०६

तब न हँसे थे प्रथम - प्रात ही इस घर में आने के दिन ;
अब फिर क्यों रोते हो प्यारे, अब मेरे जाने के दिन ?
आज, खुशी की घड़ी; बिदाई खुशी-खुशी दे दो मुझको !
आज, नहीं प्रिय, आज नहीं रे आँसू बरसाने के दिन !
दुनिया रोती है सारी, तो पागल, रोने दो उसको ;
प्राण, हँसो दिल खोल आज तुम, यह सुख से गाने के दिन !
बन्धन तोड़ चुका जब पंछी, पिंजड़े का दुख क्या जाने ?
ये घड़ियाँ हैं महामिलन की, अमर - तत्त्व पाने के दिन !
मान किया था उस दिन अपने, गौरव पर अभिमान किया !
अब क्यों स्वयं मनाने आये खिल कर मुरझाने के दिन !

७०७

आज, प्राण - पिक मेरा नूतन गान सीख कर आया है ;
प्रथम - प्रात ही में ऋतुपति के यह मद से बौराया है !
डाली - डाली पर जीवन की करता उड़ - उड़ कर कलरव ;
अरे, कहाँ से चंचु - पुटों में अभिनव - स्वर भर लाया है !
बिखरीं तान-मान की कड़ियाँ एक - एक पल्लव - दल पर ;
वह कैसा सम्मोहन, जिससे सारा जगत भुलाया है !
ज्वाला में वसंत की इसने आहुतियाँ घृत की दे दीं ;
नव - ऋतु का सन्देश विश्व के आँगन में पहुँचाया है !
वीणा का पंचम - स्वर जिसकी एक कुहू की छाया है !
आज, प्राण - पिक मेरा नूतन गान सीख वह आया है !

७०८

शरद - वन में आज, मेरे
आ गई श्री - सुन्दरी ;
फूट निकली विश्व - उर से
मोद - रस की निर्झरी !
वह किरण का हास आया ;
व्योम में उल्लास छाया !
नाचती ज्योत्स्ना - निशा में
मुग्ध कानन - किन्नरी !

देख निज छाया मधुरिमे,
विमल पल्वल के मुकुर में ;
फूल उठ तू, फूल उठ पी
प्रेम - परिमल मधुकरी !

उड़ न जाये लो, निरंजन ;
यह दृगों का बाल खंजन !
खींचती अब भी मुझे, वह
कौन अलका की परी ?

वन-कुसुम के बाण ये प्रिय ;
आज, व्याकुल प्राण ये प्रिय !
झुक रही लघु - बालियों से
शालि की मृदु - मंजरी !

७०६

माधवी की वल्लरी में—
एक दिन आया उमड़
घनश्याम नभ में सजल-शीतल ;
और, जो दो - चार बूँदें
चू पड़ीं तत्काल निर्मल !
बीज से द्रुत भेद भूतल ,
आ गये अंकुर सुकोमल ;
फूट निकले स्वर्ण के दल ;
किन्तु, मेरा मेरु दुर्बल !
रुक रही गति, बाहु का
मुझको सहारा चाहिये !

गीत की चंचल तरी में—
एक दिन उतरी जगत के
नीर - निधि में मैं बिहँस कर ;
शान्त था दिग्प्रान्त, नीरव
वायुमण्डल, व्योम सुन्दर !
तिर रही थी मैं तरंगों पर
मधुर - गति से मधुर - तर ;
और, करती हंसिनी - सी
नृत्य मैं जल पर मनोहर !
आज, जब आंधी चली ;
मुझको किनारा चाहिये !

मुक्त - वन की निर्झरी मैं—
एक दिन पर्वत - भवन से
तोड़ कर पाषाण - बन्धन ,
आ गई मैं तलहटी में
सुन जगत का तृषित - रोदन !
किन्तु, जब सम्मुख मिला
मरुभूमि का हा-हा - हुताशन ;
हो गया आकुल पिपासा से
स्वयं मेरा विकल - मन !
आज बहने के लिये लघु
एक धारा चाहिये !

७१०

श्लथ, दिग्बाला की कुसुमाकुल
नव-कवरी के परिमल - बन्धन ;
भुज - पाश बढ़ा मलयानिल का
वन-वन में मुकुलित आलिङ्गन !
कोकिल के कलरव से कूजित
तरु - तरु में विद्रुम का वैभव ;
निःश्वास अगुरु का छोड़, चपल
हँस दिया सजग जग का शैशव !
नत, सौरभ के तन्द्रालस से
मधु-छवि रसाल का छायावन ;
कलि-दल के मानस-पुलिनों पर
अलि-कुल का नृत्य-विकल गुंजन!
हीरक-प्रभात, मरकत - निशीथ ,
संध्या कोमल, मध्याह्न प्रखर !
कोदण्ड खिँचा—लो, पुष्पों के
पाँचों शर उड़ने को तत्पर !
चाञ्चल्य, पुलक, कौतुक, सुषमा ;
रजतातप से ढल स्वर्ण-हास !
मेरी वासन्ती के उर में
रोमांच - प्रेम - श्री का समास !

७११

प्राण, जो मन में तुम्हारे ,
वह मुझे अविदित नहीं है ;
प्रेम का संसार मेरा
स्वप्न से निर्मित नहीं है !
भ्रष्ट मुझको कर न पाती
मार्ग से किंचित निराशा ;
मिट न सकती है विकल
सौन्दर्य की मेरी पिपासा !
कौन कहता, वासना यह
प्रेम से परिचित नहीं है ?

जो तुम्हारे मर्म में, वह
भाव भी पहचानता मैं ;
कह न पाती हो जिसे तुम
स्पष्ट, वह भी जानता मैं !
मानता, जग आज उस
संकेत से विस्मित नहीं है !

प्रेम की मधु - वेदना से
जो न तड़पा, वह नहीं उर ;
वह कठिन पाषाण, जिसपर
प्रेम का फूटा न अंकुर !
किन्तु, यह भी सच कि यह पथ
पुष्प-सा विकसित नहीं है !

प्रेम यदि बन्धन, भला तो
मुक्ति का तात्पर्य क्या है ?
पुण्य को भी त्याग पाऊँ
मैं तुम्हें, आश्चर्य क्या है ?
क्या तुम्हारी दृष्टि में
उस पार का इंगित नहीं है ?

रह सका बन्दी सदा
दल-पाश में कब सुमन-सौरभ?
हो कभी जाता प्रकट ही
लोक में, जो प्रेम दुर्लभ !
धूल भी इस प्यार के
अधिकार से वंचित नहीं है !

कब अलक्षित रह सका है
प्रेमियों से स्वर हृदय का ?
पक्षियों के मुक्त कूजन-सा
विकल कल-रव प्रणय का !
मैं समझता, प्रेम कर
भगवान भी निन्दित नहीं है !

तुम जहाँ हो, प्रेम है ;
आनन्द का मधुमास भी वह !
मैं तुम्हारे साथ सह
लूँगा नरक का वास भी वह !
प्रेम - सुख से हीन यदि हो
स्वर्ग भी, इप्सित नहीं है !

हम परस्पर यदि रहे
निष्कपट, मानस शुद्ध मेरा ;
तो, प्रलय भी कर न सकता
स्वयं पथ अवरुद्ध मेरा !
उन करों के स्पर्श से
तृण कौन रोमांचित नहीं है ?

निर्झरी मिलती नदी से
और सागर से नदी-जल ;

पवन लतिका से लिपटता
औ लता तरु से अचंचल ।
यों, कहीं भी प्रेम
प्रिय के मिलन से वर्जित नहीं है!
कल हुआ परिचय, छिड़ी है
आज घर-घर में कहानी ;
मृत्यु को भी मिल सकेगी
कल न ढूँढे भी निशानी ।
अमृत - पायी प्रेम मेरा,
काल पर आश्रित नहीं है ।

७१२

चले अनल-शर फिर केशर के ;
मदन-सखा की रूप - शिखा से
जले अगुरु-वन मलय-शिखर के।
ऋतुपति की ज्वाला में जल-जल,
डाल-डाल मधुवन की विलसित,
विहसित लाल-लाल नव-द्रुमदल ।
विश्व - विजय की सफल कामना
जगी आज मानस में स्मर के।
मधुपों के गुंजन से आकुल ;
वन-वन, उपवन, आज प्रेम की
लीला-ध्वनि से मुखरित, मंजुल ।
बाल - युवतियाँ झूम - झूम कर
चलतीं पथ में प्रेम - नगर के ।
तृष्णा से आकुल-तम रज-रज ;
दग्ध हुआ जो योगानल से,
आज अनङ्ग बना मकरध्वज ।
विष के बाण खिँचे पाँचों ही,
चुभ न जायँ प्राणों में हर के ।

७१३

प्रात की मैं तारिका ।
इस अनन्ताकाश में मैं वन्दिनी नीहारिका ।
हो चला जग में सबेरा ;
ढूँढ़ती ही रह गई निशि—
भर मिला प्रियतम न मेरा ।
स्वप्न के नन्दन - विपिन की मैं विफल अभिसारिका ।
चल पड़ा प्रातः - समीरण ;
ज्योति की निरवधि प्रतीक्षा में
विकल कोमल कमल - वन ।
मैं खड़ी तृष्णा - जलधि के तीर पर सुकुमारिका ।
विश्व में असहाय पाकर,
रश्मियों के पाश से
मुझको न तुम बाँधो दिवाकर ।
एक क्षण में मैं स्वयं ही मिट चली पथ - चारिका ।
शर्वरी के भाल पर कल,
शेष मैं श्री - विन्दु हूँ,
सौभाग्य का परिदग्ध चंचल ।
मृत्यु के कर से मिटी सौन्दर्य - चित्राधारिका ।
सृष्टि जो यह अचल-अपलक,
मैं उसीके द्वार पर हूँ
टिमटिमाता एक दीपक ।
काल के निःश्वास से लौ काँपती स्मृति - कारिका ।
मिट गये नक्षत्र सारे ;
रात-भर जल - जल शलभ - से
हो चुके जब शान्त तारे,
किस वियोगी के हृदय की मैं ज्वलित अंगारिका ?

७१४

पांथ, रुक जा एक पल भी,
इस अकिंचन के सदन में!
बज रही वीणा जहाँ
सुर - भारती के प्रिय भवन में!

आम्र - कुंजों से सुशोभित,
शस्य से श्यामल मही है;
अश्रु - धारा - सी किसीके
नेत्र की कमला बही है!

हास प्रतिमुख पर जहाँ,
माधुर्य स्वाभाविक वचन में;
पांथ, रुक जा एक पल भी,
इस अकिंचन के सदन में!

पावनी सुरसरि प्रवाहित,
है जहाँ प्रहरी हिमाचल;
गण्डकी औ वाग्मती के
वारि से सिंचित धरातल!

गन्ध - वन विकसित जहाँ,
सौन्दर्य अनुपम प्रति सुमन में!
पांथ, रुक जा एक पल भी
इस अकिंचन के सदन में!

भूमि जो गौतम - जनक के
ज्ञान से महिमामयी है;
कीर्ति से बहु - पण्डितों की
पुण्यशीला बन गई है!

रत्न कंथा में जहाँ,
मणियाँ छिपी हैं धूलि-कण में;
पांथ, रुक जा एक पल भी
इस अकिंचन के सदन में!

भुवन - मोहन सुकवि नव—
जयदेव विद्यापति विनन्दित;
प्रखर उदयन के तरणि से
जो विभासित, देव - वन्दित!

स्वर्ग - मिथिला की शरण में,
मैथिली के कल - चरण में!
पांथ, रुक जा एक पल भी
इस अकिंचन के सदन में!

७१५

प्राण, रह आसान ही, रे आज मत पाषाण बन;
आज आई लोचनों में वेदना मुस्कान बन!
शूल बन या धूल; लेकिन रह सदा अनुकूल ही;
फूल भी बन तो तनिक रे पंचशर का बाण बन!
धूप भी निकले कहीं से, तो यहाँ हो चाँदनी;
जान क्यों लेता किसीकी आज यों अनजान बन?
रे हलाहल भी अमृत बन जाय छुन कर कण्ठ से;
मान बन, अभिमान भी बन, किन्तु मत अपमान बन;
चाँदनी हो, यह हवा हो, और फिर दिलदार हो;
प्यास से मर जाय बुलबुल, तू न वह सुनसान बन;
हार हो या जीत, उर में प्यार हो, मनुहार हो;
दान ही केवल न ले, आदान बन, प्रतिदान बन!

७१६

मधुप खोजते कमल-दलों को,
कोकिल ऋतुपति की डाली;
और, ढूँढते मल के कीड़े
नरकों की गन्दी नाली!

७१७

मैं तुम्हें चाहूँ, मुझे तुम
निठुर, ठुकरा दो अहो;
मैं करूँ पूजा तुम्हारी
और तुम पाषाण हो!
पास ही तो नीर है,
वह तरणिजा का तीर है!
मैं तुम्हें खोजूँ विकल हो,
और तुम छिप-छिप रहो;
मैं तुम्हें चाहूँ—मुझे तुम
निठुर, ठुकरा दो अहो!

जब पुकारूँ नाम लेकर,
भाग जाओ शोक देकर;
पास पहुँचूँ, तुम हटो,
इंगित करूँ, सब कुछ सहो!
मैं तुम्हें चाहूँ—मुझे तुम
निठुर, ठुकरा दो अहो!

मैं व्यथा तुमको सुनाऊँ,
तुम हँसो, मैं रो न पाऊँ!
मैं करूँ बातें हृदयधन;
चुप रहो तुम, यों कहो!
मैं तुम्हें चाहूँ—मुझे तुम
निठुर, ठुकरा दो अहो!

मैं बुलाऊँ, तुम न आओ,
दूर ही वंशी बजाओ!
मैं जताऊँ, प्यार — तुम
सुकुमार, निर्ममता गहो!
मैं तुम्हें चाहूँ—मुझे तुम
निठुर, ठुकरा दो अहो!

हो अमर आराधना यह,
प्रेम की मृदु-साधना यह!
मैं चलूँ, तुम भी चलो,
यों ही तरंगों पर बहो!
मैं तुम्हें चाहूँ—मुझे तुम
निठुर, ठुकरा दो अहो!

७१८

आज, लेखनी उठी मचल;
भाव हृदय के सकल-सचल!
आ कविते, शृङ्गार सजाऊँ;
किरण-करों से रच सुन्दर
तुझको प्रिये, अमर कर दूँ!

पल्लव-बालों का इतिहास,
दूर्वादल पर तुहिन-विकास!
आज, जगत के सुख-दुख को चिर—
सहज वासना से लिख कर—
पत्र-पत्र पर सखि, धर दूँ!

विमल-कौमुदी से उज्वल,
उतर किसी निशि में निर्मल;
सखि, कर तू अभिसार-कल्पना;
मैं तेरे मोती-मुँह में
लहरों का कम्पन भर दूँ!

बिछा किरण का तल्प तरल,
कुसुम-कुंज में स्वच्छ-सरल;
पी मेरे मानस का मधु तू,

व्यजन - पवन से मैं शीतल
तेरे श्रम - सीकर हर दूँ !

गा कुछ हास्य - रुदन के गान ;
जग की कसक-जलन पहचान !
बैठ प्रिये, उर की डाली पर
मैं तुझमें जीवन लाऊँ—
कोकिल का पंचम स्वर दूँ !

मंत्र - मुग्ध कर दे त्रिभुवन ;
तेरी वीणा का गायन !
आ, मैं तेरे तार सजा दूँ,
कण्ठ मिला दूँ, दूँ गति-लय ;
कविते, वाणी का वर दूँ !

७१६

तुम ठगते हो दुनिया को, फिर
मैं भी धोखा देता हूँ ;
तुम उनका आदर पाते हो,
मैं कलंक ढो लेता हूँ !

मेरा यह कलंक मिथ्या है ;
मिथ्या है वह आदर भी !
किन्तु, जहाँ ऐसी समता है ;
वह बड़ा - सा अन्तर भी !

मेरे इस कलंक में हँसता
मेरा है जीवन निर्मल !
किन्तु, तुम्हारे आदर के
पीछे मानस का तम कज्जल !

७२०

मेरे एक मित्र ने पूछा—
'क्या यह बात, कहो, सच है ?'
'कैसी बात ?' कहा मैंने—'प्रिय,
तुमसे कौन अनिर्वच है ?'

'यही कि...,बोला कुंठित-सा—
'आचरण तुम्हारा खेद-जनक !'
'क्या सन्देह तुम्हें भी ?' बोला
हँस कर—'कहाँ रहे अब तक ?

'यदि सच, तो विश्वास न तुमको
होगा मेरी बातों पर !
यदि असत्य है, तो, जाने दो ;
चिन्ता करो न तुम, प्रियवर !'

७२१

अपने घर के दरवाजे पर
मैंने लटकाया है सुन्दर,
लकड़ी का टुकड़ा एक सुघड़,
जिस पर अंकित हैं ये अक्षर—

'इसमें रहता जो एक दीन,
उसको कहते, आचरण-हीन ;
क्या तुमको भी है यह न ज्ञात ?
तो, मुझसे ही लो जान बात !

'वह पतित,तिरस्कृत,चिर-लाँछित;
उसका जीवन ही विष-बाँछित !
सन्देह - जनक उसका चरित्र ;
फिर भी वह मानव है पवित्र !'

भगवती

मा, वीणा को छोड़ किया तूने कैसे यह असि - धारण ?
शतदल - निवास तजकर रण में आई तू किसके कारण ?

यह विकराल मूर्ति लख तेरी
डरता मेरा बाल - हृदय ;
रक्त - वसन - धारिणी, गोद में
आऊँ मैं कैसे निर्भय ?

परशु-पाणि मा, शंख-नाद कर यह किसको आह्वान किया ?
मृत्यु - क्षुधा - दग्धे, यह कैसा तूने भीषण - गान किया !

डोल रही काले उर - घन पर
मुण्डों की बिजली - माला ;
अपने ही वत्सों के गृह में
फूँकी रक्त - चिता - ज्वाला !

तू स्नेहमयी मा, क्षमामयी, जग - जननी, तू जगमाता ;
तेरे ही करुणाञ्चल में यह विश्व - बाल आश्रय पाता !

आज स्वयं फिर क्यों कर तूने
उनका भवन श्मशान किया ?
अरी चण्डिके, अपने ही लालों
का शोणित पान किया !

देवि, दया कर, मा, प्रसन्न हो, यह कलंक की छाप न ले !
इन निरीह - निर्दोष प्राणियों के वध का सन्ताप न ले !

७२३

अब न बचेंगे प्राण हमारे, विष का असर हुआ तन में ;
ये वर्षा की घड़ियाँ आईं, कूक उठी कोयल वन में !
उमड़ - उमड़ आते मानस में भाव मेघ - से ही नभ के,
आग लगे ऐसी दुनिया में, जिसके दया नहीं मन में !
आज, मयूरी ने क्या देखा, कानन - कानन नाच उठा !
हाय, साँप बन बिजली मेरे दिल पर लोट गई क्षण में !
आज, चाँदनी ही पावस की बनी मौत की रात घनी ;
जनम - जनम की प्यास हमारी फूट पड़ी लो, लोचन में !
यह किसका आह्वान, स्वप्न में रोए—रोए चौंक पड़े !
छलक पड़े न जहर का प्याला, कस कर बाँधो बन्धन में !

फुलवारी

आज हमारी फुलवारी में फूलों का दरबार लगा है !
डाली - डाली निखर उठी है, फूल - फूल आनन्द पगा है !

तनी चाँदनी नील - गगन की ;
आई है बहार उपवन की !
कली - कली की रंगत चमकी ,
चाह निराली सुमन - सुमन की !

क्यारी - क्यारी में हरियाली, पत्ता - पत्ता देख, जगा है !
आज हमारी फुलवारी में फूलों का दरबार लगा है !

बना गुलाब चमन का राजा स्वर्ण-मालती वन की रानी ;
शेफाली, चम्पा, वैजन्ती, और मोतिया सखी सयानी !

गुलसब्बो, कचनार, चमेली ;
गेंदा, रजनीगंधा, बेली !
जुही, केतकी और मल्लिका
सब अलबेली चतुर सहेली !

पैर दबाती समुद कुमुदिनी, लवँग - लता भरती है पानी !
बना गुलाब चमन का राजा, स्वर्ण-मालती वन की रानी !

मंत्री पद्म - कुमार यशस्वी, सेनापति बलवीर धतूरा !
बैठे अन्य सभासद, गाता तानसेन लेकर तम्बूरा !

नाच रही है संध्या - चीना ;
जवा - पलाश बजाती वीणा !
चमर डुलाती अरहुल - कलिका ,
हँसती कलित कनेल मलीना !

सिंहासन के पास विराजित नवरत्नों का मण्डल पूरा !
मंत्री पद्म - कुमार यशस्वी, सेनापति बलवीर धतूरा !

मलय-समीर खींचता पंखा, कोकिल पंचम-गान करे नित !
स्वयं वसन्त सहायक होकर सबका सुख कल्याण करे नित !

दीपक बने सुधांशु - दिवाकर ;
चरण पखारे कल - कमलाकर !
छम-छम करती तितली रानी ,
उड़ती फूल - परी सुख पाकर !

मधुकर ले अशेष मधु-सौरभ वसुधा को वर-दान करे नित !
मलय-समीर खींचता पंखा, कोकिल पंचम-गान करे नित !

चाह

देव, बनूँ मैं मुरली तेरी; तू मेरा मुरलीधर बन!
मैं श्यामा - रजनी बन जाऊँ, तू राका - रजनीकर बन!
मैं फूलों की डाली होऊँ;
तू उपवन का वनमाली!
झर - झर जाऊँ मैं तेरे
आँगन में बन कर शेफाली!
मैं सकाल का मृदु - समीर; तू भर दे प्राण सुरभि बनकर!
मेरे हृदय-गगन में छा जा तू सावन का घन बनकर!
तेरी यमुना की कुंजों में
नाचूँ मैं मृग - छौना बन;
इतराऊँ मोहन मैं तेरे
कर में चन्द - खिलौना बन!
मुझे बना दे तू जलकण या विस्तृत पारावार करे;
चाह यही - तू मुझे पास ही रखे और नित प्यार करे!

उलटबाँसी

उलटी नगरी देख चुके, अब सुन लो मेरे उलटे काम;
उलटा नाम, ग्राम भी उलटा, उलटे मेरे काम तमाम!
बाबूजी जब खाने कहते, मैं पीता हूँ तब पानी!
आग पटक देता हूँ सर पर, जब पानी लाती नानी!
सारी दुनिया सो रहती जब, मैं करता हूँ होहल्ला!
भाग निकलता, मुझे बुलाती मा कह जब लल्ला-लल्ला!

पेड़ किसीका, फल हैं मेरे, घर कोई, आँगन मेरा!
खेत किसीका रहे, न मुझको रोक कभी सकता घेरा!
दूकानों से चीज उठा लूँ, बिना - दाम ही, मनचाही!
गठड़ी छीन, मार भी बैठूँ - जो बोले कुछ भी राही!
रोज मुफ्त का पान चबाऊँ, भय खाता ताँगेवाला;
चोर नहीं मैं - अजी, सामने ही तोड़ूँ घर का ताला!
लेकर टिकट रेल में बैठूँ, मुझसे यह होगा कैसे?
दो आने का माल खरीदूँ और फेंक दूँ दो पैसे!
पढ़ना - लिखना साढ़े - बाइस, भरी सदा रहती झोरी!
आती जभी परीक्षा, करता आँख बचा कर मैं चोरी!
डरते दोस्त, काँपते परिजन, ऐसी यह मेरी मस्ती!
मेरे डर से गुरू न बोलें - चुप रहती सारी बस्ती!
शाम-सुबह करता है सारा जगत मुझे झुक दण्ड-प्रणाम;
उलटी नगरी देख चुके, अब सुन लो मेरे उलटे काम!

उलटपुरान

कुक्कुट मुनि ने लिखा कभी था भीमकाय जो उलटपुराण;
आज, उसीका एक खण्ड मैं थोड़े में कर रहा बखान;
लंका का राजा था कोई राम - नाम का अति - बलवान;
सूर्पनखा थी उसकी पत्नी शीलवती, गुण - रूप - निधान!
एक रोज वह गई टहलने वृन्दावन में ललित - ललाम;
मुग्ध हुआ मथुरापति रावण रूप देख उसका अभिराम!
साथी उसका योद्धा अर्जुन वहीं खड़ा था दैत्याकार;
आज्ञा पाते ही प्रणाम कर राजा को हो गया तयार!
फिर क्या था? बस, किया हरण तो उसने रानी को सुनसान;
चला राम - लंकेश तोड़ने तब मथुरापति का अभिमान!
मची लड़ाई उभय दलों में कुरुक्षेत्र में ही घनघोर;
इधर खड़े थे आर्य वीर औ राक्षस वंश बढ़े उस ओर!
कुम्भकर्ण था अनुज राम का, पहले पड़ी उसीपर चोट;
फिर रावण के सखा जयद्रथ ने की भारी लूट - खसोट!
रावण का प्रधान सेनापति महावीर था बहु - रण - जीत;
किन्तु, दुष्ट मिल गया राम से सेना-साथ, लगा नव-प्रीत!
मथुरा के गढ़ पर लंका के उड़े अनेक हवाई यान;
हाहाकार मचा तोपों से, बम से नगरी बनी श्मशान!
पुत्र - विभीषण ने रावण का यद्यपि दूर हटाया शोक;
अपने भुज-बल से अरि - दलको एक वर्ष तक रक्खा रोक!
हार गया मथुरेश्वर फिर भी, जीत हुई लंकापति की!
जयी राम ने आर्य - वीर की हाय, बड़ी ही दुर्गति की!
रावण ने संन्यास लिया औ मिली राम को सूर्पनखा;
मथुरा की गद्दी पर बैठा शकुनी - उसका एक सखा!
रामचन्द्र के ससुर कंस ने ज्यों ही सुना सकल आख्यान;
स्वयं भिखारी हुए, राज्य को किया ब्राह्मणों को शुभ-दान!
लंकापति साम्राज्य-विजयकर लौट चले वापिस सामोद;
भोज दिया असुरों को भारी, लिया पुत्र-हित ध्रुव को गोद;
मरे राम, ध्रुव ने भी जग का अचल-राज पाया कल्याण!
जो कुछ सुना, किया वह वर्णन, कुक्कुटि मुनि का उलटपुराण!

७२८

ले सकोगे ?

बावले, इतना दुसाहस - मोल मुझको ले सकोगे ?
कल्पना भी मत करो दिलदार, सस्ते भाव की ;
आज दर दिल की नहीं वह-और दिल के घाव की !
सच कहो, कीमत भला क्या देव, मेरी दे सकोगे ?
यह अजब सौदा, अनोखी चीज तुमको मिल रही ;
खड़ी बिकने के लिये हूँ हाट में मैं आप ही ।
भरी जीवन - तरी मेरी अगम - जल में खे सकोगे ?

हिल सकोगे ?

प्राण, क्या वन पवन मेरे गन्ध-पथ पर हिल सकोगे ?
आज माखा नहीं कर में, गोपबाला - सी दही ;
स्वयं ही बाजार में मैं मोल अपना कर रही !
स्नेह-शर्बत में सलोने, सिता - से घुलमिल सकोगे ?
आ गये हो, तो न क्यों मैं बात कुछ अपनी बता दूँ !
कुछ सता लूँ, कुछ जता लूँ प्यार, कुछ घर का पता दूँ !
दाग बन कर गुंचये-दिल पर कभी क्या खिल सकोगे ?

रो सकोगे ?

आज दिल में पैठ, प्यारे, एक आँसू रो सकोगे ?
बेच दूँगी आज अपनी फूल की मुस्कान मैं ;
एक जल - कण पर लुटा दूँ विश्व की पहचान मैं !
प्राण, क्या मेरे हृदय में तरल मोती बो सकोगे ?
आ गई हूँ अश्रु - वन में हास्य का अपमान कर ;
स्वर्ण-स्मिति की मधुर-मंगल ज्योति का बलिदान कर ;
प्रिम, अधरों पर मरण का विधुर चुम्बन हो सकोगे ?

चल सकोगे ?

पथिक, मेरे प्रणय-कंटक-मार्ग पर क्या चल सकोगे !
खो चुके नक्षत्र अगणित इस अनन्ताकाश में ;
बुझ चुके रवि - चन्द्र - दीपक काल के निःश्वास में !
एक दीपक बन हृदय में निशि-दिवा क्या जल सकोगे ?
उस दिवस जब नींद से मैं उठी सारी रात सोकर ;
देखती क्या हूँ कि कोई रो गया ये गाल धोकर !
वेदना के पालने पर प्राण, क्या तुम पल सकोगे ?

७२९

कस लो, कस लो, नीवी - बन्धन !
आई हो तुम इस पनघट पर ;
मुसुकाई मेरी आहट पर !
खिल-खिल पड़ती हो क्यों मेरी
तुम चितवन की अकुलाहट पर !
पत्थर भी प्यासे हैं, मुख पर
रख लो, रख लो सखि ! अवगुण्ठन !
पैरों में पायल की झन - झन ,
हाथों में कंकण की खन-खन ,
मृदुल तुम्हारा तलवा छू - छू
खिला हुआ है रज का कण-कण ;
अंचल को चल - चंचल करने
आता है वह धृष्ट समीरण !
कटि पर होगी रस की गगरी ,
उस रस का प्यासा यह जग री ;
पग-पग पर मन डग-डग होगा ,
यह भूखे - प्यासों की नगरी !
फूटेगा घट, छलकेगा रस ;
अस्थिर मत होने दो लोचन !

७३०

आह, प्राण तुम कितने शीतल !
जब मैं पास तुम्हारे आता
तन की सारी सुध-बुध खोकर,
अपने मन की प्यास बुझाने,
प्रेम - व्यथा से व्याकुल होकर !
क्या अनिमेष देखते मेरी
ओर अचल तुम हिम-से शीतल ?

आह, प्राण तुम कितने निष्ठुर !
मैं झुकता हूँ, तुम्हें समर्पित
करने को ज्यों अपना यौवन,
मैं भुज - पाश बढ़ा कर देता
ज्यों-ही आलिङ्गन का बन्धन !
हो जाते अवाक - से तत्क्षण
तुम पाषाण - सदृश क्यों निष्ठुर ?

आह, प्राण तुम कितने नीरस !
एक शब्द भी नहीं प्रणय का,
एक हास भी नहीं उमड़ता !
एक तार भी कभी तुम्हारी
हृदय-बीन का हाय न बजता !
एक बूँद भी जिसमें दुर्लभ,
प्रियतम, तुम उस मरु-से नीरस !

आह, प्राण तुम कितने दुर्गम !
इतना धैर्य्य और यह संयम,
जीवन में न तनिक भी कौतुक ;
टकरा कर फिर - फिर जाती हैं
आँधी - सी इच्छाएं उत्सुक !
जिसे समझने में मैं अक्षम,
प्रियतम, तुम उस गिरि-से दुर्गम !

आह, प्राण तुम कितने दुस्तर !
मेरी सारी लज्जा को कर
अपनी मर्यादा में सीमित,
चिर-गम्भीर बने हो ज्वालामुखी
हृदय में लेकर जीवित !
मैं तट का कलरव हूँ मर्मर,
प्रियतम, तुम सागर - से दुस्तर !

७३१

ये कुसुम के बाण कोमल ;
रूप की ज्या पर चढ़े
फिर-से विशिख विष से हलाहल !
विश्व को उन्मत्त करने ;
आज, सुमनों के धनुष को
है उठाया पंचशर ने !
प्रेम के तूणीर से सुकुमार
केशर - शर विचंचल !

तितलियों के जग सजग हो ;
आज, उड़ने को स्वयं
उद्यत चपल मन्मथ विहग हो !
वासना के पंख से थर—
थर विकल नभ से धरातल !

रूप की सुकुमारियाँ - सी ;
जल रहीं ये कौन किंशुक—
विपिन में चिनगारियाँ - सी ?
रेशमी जिसके मलय—
निःश्वास से सुरभित कमल-दल !

७३२

मञ्जुल मन्दार-मुकुल—
अभिनव वनकन्या !
चपला - चल - चपल -हास ,
मलयज - मधु - अगुरु-वास ;
नूपुर - रव शिथिल - श्वास ,
नृत्यमती वन्या !

प्रति - गति में कल्प - भङ्ग ,
वंकायित अङ्ग - अङ्ग ,
चरणों में नत अनङ्ग ,
पूजित सुरधन्या !

७३३

हो गया है भोर पीतम ,
मैं मरी जाती शरम से ।
लाज लगती, हाय, कैसे
आज मैं निकलूँ हरम से ?

दिन निकल आया प्रहर - भर ,
गान पंछी गा गये हैं ;
खिड़कियों से, सेज पर आ ,
रवि-किरण-कण छा गये हैं ।
लाज दुनिया की समाई
आज है मेरे मरम से ।

प्रेम से बेसुध मुझे कर ,
ओ निठुर, उर से लगाया ,
लालिमा के पूर्व ही
मुझको न क्यों तुमने जगाया ?
क्या करूँ, जाऊँ कहाँ अब ?
मैं मिलूँ किस घोर-तम से ?

दी बिता मधु रात सारी
जाग कर भुज - बन्धनों में ;
लग गईं आँखें तनिक
आनन्द के अन्तिम क्षणों में ।
प्राण हैं आकुल दिवस के
सुनहले - मीठे भरम से ।

कर रही झनकार पायल ,
चूड़ियाँ कर की खनकतीं ;
जागती है सास, आँगन में
चपल ननदें चहकतीं !
विश्व के कल - कल डगर पर
पैर हैं उठते सहम - से ।

७३४

तुम न जानो , प्रिय ! मुझे पर ,
मैं तुम्हें पहचानता हूँ !

मर्म में मेरे चिरन्तन ;
कर रहे चिर - काल से जो
प्राण, तुम कलरव विकल-मन !
प्रेम की वह मौन भाषा ,
आज मैं भी जानता हूँ !

तुम रहे युग - युग अदर्शित ;
पर , तुम्हारे श्वास से
प्रति - रोम ये मेरे प्रहर्षित !
दे तुम्हें जयमाल प्रियतम ,
हार अपनी मानता हूँ !

७३५

गाल मेरे छू न ले !
प्राण, नव - अंकुर - कलित
कुच - बाल मेरे छू न ले !
गाल मेरे छू न ले !

आज, आई रभस-गृह मे मैं उमंगों को सजा कर ;
आप ही अपने लजाकर, पैर की पायल बजा कर !
माधवी - कुडमल - ग्रथित
कच - जाल मेरे छू न ले !
गाल मेरे छू न ले !

स्वप्न-सुख-सस्मित शिराओं में मिलन-मकरन्द भर अब ;
तू न क्यों मेरी सरलता-लता पर आनन्द कर अब !
ये उषा - से अधर रस से
लाल मेरे छू न ले !
गाल मेरे छू न ले !

एक चुम्बन, और फिर मधुमय कहीं हो जाय जीवन ;
कामना के कोकिलों से कलरवित हो उठे कानन !
हाँ, उठा दे चिबुक, त्रिवली—
ताल मेरे छू न ले !
गाल मेरे छू न ले !

मैं खड़ी अभिसार-पथ में आज, प्रिय, उपहार लेकर !
जल रहा दीपक हृदय का प्रेम - पीड़ा - प्यार लेकर !
स्मर - सरोवर के अमोल
प्रवाल मेरे छू न ले !
गाल मेरे छू न ले !

७३६

गूँथ लो हे बालिके,
यह मालिका मेरे सुमन की !

भाव ये जो डोलते हैं ;
आज वन - वन में विहङ्गम—
स्वप्न के दृग खोलते हैं !
आँक लो हे बालिके,
यह अश्रु- लिपि मेरे नयन की !

आज, आँधी चल रही जो ;
व्योम की ज्वाला - मुखी में
तारिका यह जल रही जो !
रोक लो हे बालिके,
उद्भ्रान्त - गति मेरे चरण की !

कामनाएं जो हृदय की ;
जागतीं अपलक, अवचना,
ये पिपासाकुल प्रणय की !
बाँध लो हे बालिके,
उन्मादना मेरे मिलन की !

आज, व्याकुल प्राण मेरे ;
मेघ बन आते दृगों में
सजल—श्यामल गान मेरे !
नाच लो हे बालिके,
इस रात्रि में मेरे मरण की !

क्षितिज पर राकेश चुप है ;
नलिन - कुंजों में तड़पता
विरह से वन्दी मधुप है !
देख लो हे बालिके,
यह कालिमा मेरे गगन की !

७३७

आज, मेरा मरण देखो ;—
मृत्यु - भय से स्वयं आया
प्रलय मेरी शरण, देखो !

विश्व से जितना न पाया ;
व्याज में ही हाय, उससे ही
अधिक मैंने चुकाया !
जो मिला, सर्वस्व खोकर
विकल अन्तःकरण, देखो !

कंठ में कुछ गान थे जो ;
कर दिये सब दान मैंने,
चिर - पिपासित प्राण थे जो !
आज, गृह - गृह में उसी
स्वर का मधुर उद्धरण, देखो !

एक दिन जीवन मिला था ;
काल भी मेरे हृदय में
प्रेम - पाटल बन खिला था !
आज, मेरे देवता का
नृत्य यह मनहरण, देखो !

विजय में भी हार हूँ मैं ;
खो गया चिर - शून्य में जो,
एक वह झंकार हूँ मैं !
मैं बुझा अंगार हूँ, यह
क्षार का आवरण, देखो !

द्वार पर यह कौन है, जो ;
मधु-मिलन की चिर-प्रतीक्षा में
विकल - सा, मौन है जो !
अश्रु के शृङ्गार मेरे,
रक्त - ज्वालाभरण, देखो !

पत्र जो गिरते पुरातन ;
जन्म दे जाते सुकोमल
पल्लवों को नवल तत्क्षण !
आज नूतन लोक में यह
प्रथम कम्पित चरण, देखो !

प्रेम - यौवन - वासना - मय ;
जग - जलधि के तीर पर था
चपल - कौतुक - मग्न, निर्भय !
आज, सागर की तरंगों में
विफल संतरण, देखो !

७३८

प्रिय, मुझे तू भूल जाना ;
साँप की जयमाल बन
मेरे गले में झूल जाना !

किस प्रपंची ने कहा, मैं
प्राणधन ! अभिमान में था ;
मौन था, तल्लीन भी यदि,
मैं तुम्हारे ध्यान में था !
याद कर मेरी कभी मत
बो हृदय में शूल जाना !
प्रिय, मुझे तू भूल जाना !

जो कभी उमड़ा, उसीको
अन्त मिटना भी पड़ा है ;
हाय, खोने और पाने
की जगह ही तो धरा है !

मिट न जाये प्यास यह ,
ऐसे न सरि के कूल जाना ;
प्रिय, मुझे तू भूल जाना !

प्रेम कर पाया जगत में
सुख किसीने कौन-सा कब ?
क्या यही होगा न अन्तिम
बार मेरा प्रथम अनुभव ?
जो अमृत-फल था, उसीको
आज विष का मूल जाना !
प्रिय, मुझे तू भूल जाना !

इसे खरे विज्ञान-युग में
प्रेम करना भी कला है ;
इसलिये, तो यह पुजारी
चाहता तेरा भला है !
जल रहे अरमान कितने ,
मत सुनो, दे तूल जाना ;
प्रिय, मुझे तू भूल जाना !

पूछ मत, सुकुमार ! कितनी
बार मेरा दिल जला है ;
आज समझा, जिन्दगी में
यह मुहब्बत भी बला है !
सीखता मैं तो किसीके
पैर की हो धूल जाना ;
प्रिय, मुझे तू भूल जाना !

जान कर तुम क्या करोगे ?
कौन मन ही मन मचलता ?
ठीक है विस्मृति तुम्हारी ,
यदि न पत्थर-दिल पिघलता !
मृत्यु ही यह आज मेरी ;
हर्ष से अब फूल जाना !
प्रिय, मुझे तू भूल जाना !

७३९

मिल गये पथमें कभी यदि प्रिय अचानक,
तो रहा आभार ही क्या ?
हो गईं यदि और आँखें चार यों-ही ,
एक क्षण का प्यार ही क्या ?

और, यों-तो मार्ग में, जानें न, कितने पथिक मिलते ;
हो मिलन की कामना भी यदि न, तो संयोग पाकर !
एक धारा में किसी अज्ञात-दिशि से विवश बहते ,
दो अपरिचित पुष्प हो जाते कभी एकत्र आकर !
और, यह भी तो न जो, मुसकान को ही रोक सकते,
किन्तु, उसमें सार ही क्या ?

दूर से ही देख जैसे , अब कहीं टकरा न जायें ;
और, कोई लख न ले यह दृष्टि भी चंचल, सँभलकर ;
झेंपते, कुछ-शील से, संकोच से कुछ, खिंच न आयें ,
वे निकलने-से लगे बचकर, चपल, चलकर, मचलकर !
छू गये फिर भी परस्पर तन हमारे बाहुओं से ;
किन्तु , अब अधिकार ही क्या ?

इस मनोहर राज-पथ पर, जो अनिद्रा से मदालस ;
क्यों कभी दो व्यक्तियों का क्षण-मिलन हो यह असम्भव?
डोलते तरुणी-तरुण इतने जहाँ उत्फुल्ल-मानस ;
फिर, वहाँ इस भाँति मेरा ही प्रथम क्या प्रेम-अनुभव ?
पर, हृदय के सूक्ष्म भावों से नहीं सम्बन्ध जिसका ,
प्रेम का आधार ही क्या ?

बल और बुद्धि

किसी घोर वन में रहता था कभी एक हाथी बलवान ;
उसके उपद्रवों से थे सब पशुओं के संकट में प्राण !
जिसे सामने पा जाता, वह उसको मार गिराता था !
डरते सभी लोग थे उससे, ऐसा वह मदमाता था !
छोड़ चले बन्दूक दिखा कर कई शिकारी यह संसार ;
भागे कितने हाकिम भी दुम दबा, फेंक हर्बे - हथियार !
'कालनेमि' था नाम उसीका; था भी तो वह काल-स्वरूप !
उसे देख कर सब भय खाते; क्या दरिद्र, क्या राजा-भूप !
पन्द्रह सौ का पुरस्कार भी उसपर बोल गई सरकार ;
किन्तु, किसीने पार न पाया-गये सभी उस गज से हार !

आखिर, जानवरों ने जंगल के आपस में किया विचार ;
कैसे सुख से सोयें हम इस मतवाले हाथी को मार ?
'सभा बुलाई जाय'-अन्त में निर्णय हो पाया इस बार ;
बजा नगारा - 'आज रात में पहुँचें सब मरघट के पार !'
नियत समय पर सब आ धमके; भालू ,चीता, बाघ,सियार !
लोमड़ियाँ टीले पर बैठीं, सिंह बना सबका सरदार !
ऊँट, भेड़िया, घोड़े, कुत्तों की थी सबसे अलग कतार ;
सिंहासन के तले विराजे मंत्रीजी 'बन्दर' हुशियार !
चींटी, तितली, मधुमक्खी के खड़े झुण्ड के झुण्ड हजार !
गाती थी कोयल औ बुलबुल; लगा वहाँ शाही दरबार !

बहुत देर तक चुप थी मजलिस;मौन-भङ्ग तब हुआ निदान!
बोला सिंह-'आप लोगों को आज किया हमने आह्वान !
कौन वीर है यहाँ, कर सके जो उस कालनेमि का अंत ;
आये आज हमारे आगे; दें उसको धन-धान्य अनन्त !'
किन्तु, किसीकी हुई न हिम्मत; झुके हुए ये सबके माथ !
आखिर उठे स्वयं मंत्री जी, पटक दिये जोरों से हाथ !
व्यर्थ बाघ सेनापति, भालू टिकटिकियों का है सरदार !
लानत है उनकी बहादुरी पर जो भगें छोड़ मैदान !
जाओ; पहन चूड़ियाँ तुम सब सोओ घर में लम्बी तान ;
मैं बुड्ढा हो गया, हर्ज क्या ? नस में हनूमान की आन !

'धन्य-धन्य' कह उठे सैकड़ों कण्ठ एक स्वर से उस वक्त ;
सहमे कायर, छिपे विपक्षी; खौल उठा वीरों का रक्त !
राजा ने खुश होकर उसको गले लगा कर किया दुलार ;
पहना दिया और रानी ने अपना 'गिरमल' हार उतार !
भोला भगत दही ले आये, नटखट पाँडे लाये भात !
बिल्ली मौसी दौड़ी दौड़ी ले आई केले का पात !
कुछ ले आये बर्फ़ी-पेड़े; कुछ किशमिश अखरोट-बदाम !
चुहिया पान लगा कर लाई; गिलहरियाँ कटहल औ आम !
खा-पीकर विश्राम किया कुछ; पुनः चले करने निज काम !
दगी सलामी अस्सी तोपों की, गूँजा संसार तमाम !

चार दिनों के बाद ठीक वह पहुँच गया उस कानन में ,
जहाँ काल - सा वास किया करता था हाथी निर्जन में !
देख भीम - सा वेश भयंकर, शंका हुई उसे मन में ;
कैसे विजय मिलेगी मुझको इससे आज प्रकट रण में ?
तरु की फुनगी पर चढ़ कर वह लगा सोचने कोई युक्ति !
किस प्रकार इस महादुष्ट से प्रभो, मिलेगी हमको मुक्ति ?
इतने में आ गई याद उसको बस, एक पुरानी बात !
क्यों न आज अपने उन मित्रों से सहायता लूँ मैं, तात ?
मेढ़क, मच्छड़ और काक; ये बचपन के साथी थे तीन !
तुरत बुझाया उन्हें ढूँढ़ कर अपनी विरद अवस्था दीन !

दुखी हुए वे मित्र-दुःख सुन, बहने लगी-नयन-जल-धार !
सभी तरह से दिया भरोसा; रण के लिये हुए तैयार !
कहा-फिक्र मत करो यार, हम विजयी होते दम-भर में ;
जब तक हम होते हैं वापिस, तब तक तुम बैठो घर में !
इतना कह कर वे तीनों ही साथी उधर बने चलते !
और, इधर से कालनेमि भी निकला पृथ्वी को दलते !
बड़े-बड़े थे दाँत नुकीले; गज-गज भर के दोनों कान !
जो कहते-'हम चूर करेंगे केहरियों का भी अभिमान !'
आगे - आगे हाथी चलता; औ पीछे से तीनों यार !
हाहाकार मचाता जाता कालनेमि करता चिंघार !

गर्मी का दिन, धूप तेज थी; मन्द मन्द बह रहा समीर !
कालनेमि को प्यास लगी, वह ज्वाला से हो उठा अधीर !
दिखा पास ही एक बड़ा सा कुआँ, किनारे वृक्ष विशाल !
पानी था नीचे; पाने की कोशिश व्यर्थ हुई तत्काल !
जब तदबीर न कोई सूझी, बुझ न सकी जब गज की प्यास !
तब आकर वह बैठ गया उस बरगद के ही तले, उदास !

मच्छड़ की तो यही चाह थी; बस, इस मौके को पहचान -
आया, लगा छेड़ने कानों में कोई मीठी - सी तान !
इतनी थी वह तान सुरीली; इतना उस 'भन-भन' में जोश !
कालनेमिजी लगे ऊँघने; सुख की तन्द्रा में बेहोश !

लगीं नींद में झँपने पलकें, लेट रहा गजराज विशाल !
बरगद के ऊपर से कौआ देख रहा था सारा हाल !
ज्यों ही सोया कालनेमि, वह त्यों ही उतर पड़ा तत्काल !
और, नयन उसके दोनों ही आहिस्ते से लिये निकाल !
आँख फूटते ही उस दानव - तनुधारी को आया होश !
गरजा जोरों से, चिल्लाया; दिखलाया भीषण आक्रोश !
दारुण पीड़ा से कराहता लगा रौंदने वन - उपवन ;
आखिर, थक कर वहीं बैठ फिर करने लगा विकट रोदन !
कभी क्रोध से दाँत पीसता; कभी दुःख से था रोता !
मगर, हाय अब इन घड़ियों में रोने ही से क्या होता ?

अहा ! अहा ! ऐसे ही अवसर पर मेढ़क का टर-टर-टर !
पड़ा सुनाई आस - पास ही किसी पोखरे के भीतर !
मूरख कालनेमि ने सोचा, कहीं जलाशय है सुन्दर !
लोचन गये, गये-जाने दो; जल ही क्यों न पिऊँ चल कर !
प्यासा तो था ही पहले से, अनुगामी बन उस स्वर का
गड्ढे में गिर जान गँवाई, ग्रास बना रजनीचर का !
बल से बुद्धि बड़ी है निश्चय; जय मिलती चतुराई से !
मच्छड़ से मरता है हाथी, पिसता पर्वत राई से !
लिख दो जीवन के पृष्ठों पर, सबसे बुरी चीज अभिमान ;
पर-हिंसा में शान नहीं कुछ, सब दुष्टों का यही निदान !

उलटा - पुलटा

एक शहर है ऐसा, जिसका सीधा - सा है 'टालू' नाम ;
उलटे लोग जहाँ रहते हैं, उलटा ही जिनका हर काम !
जो बोलोगे वहाँ, लगेगा उसका उलटा ही मानी ;
नाम बताओगे तुम 'नीरा', वे तब समझेंगे 'रानी' !
तुम माँगोगे 'राखी', वे झट लाकर दे देंगे 'खीरा' !
चण्डिदास की 'रामी' को वे कहते गिरिधर की 'मीरा' !
तुम बोलो 'राका' है सुन्दर, वे समझें सुन्दर 'कारा' ;
तुम कह दो 'राधा' आती है, वे समझें आती 'धारा' !
तुम पूछोगे, 'राम' कहाँ है ! वे कह देंगे कौन 'मरा' !
तुम कह दोगे 'लाज' न आती ! वे समझेंगे, मैं न 'जला' !
अपने को तुम 'दीन' कहोगे, वे कह देंगे 'नदी' रहो !
पूछोगे तुम 'बीन' कहाँ है ? वे समझेंगे 'नबी' अहो !
तुम बोलोगे, 'माला' लाओ, वे झट ला देंगे 'लामा' !
तुम माँगोगे 'मावा', तो वे ला कर दे देंगे 'वामा' !
'सर' को 'रस', 'राघो' को 'घोड़ा', काढा को बोले 'ढाका' !
किन्तु, कहे क्या! जब बोलो तुम 'नवजीवन' 'मामा' 'काका' !

कवि और वेदना

करुणानिधि, कवि के जीवन में इतना दुख, इतनी ज्वाला !
भर दी क्यों प्राणों में तुमने उग्र वेदना की हाला !
पीड़ा, तड़प, निराशा, चिन्ता; जलती वैभव की होली !
रक्त - चिता पर इच्छाओं की रोती जीवन - लिपि भोली !
बुलबुल की व्याकुलता, कोयल के अन्तर का कुहू-विषाद ;
रवि शशि का उच्छ्वास, तारकों का कम्पन, घन का उन्माद !
एक-एक बिछलन में लिपटी जन्म-जन्म की कथा उदास !
सागर का अवसाद, कलापी का नर्तन, चातक की प्यास !
जिस प्रकार केतकी - सुरभि में छिपी हुई कंटक की चाह ;
मेरी स्मित - रेखा में रहती गुप्त हृदय की आकुल आह !
भूल न जाये जिससे दुनिया का उत्सव, जग का आह्लाद ;
इसीलिये क्या दिया देव, तुमने इस कवि को अमर विषाद ?
निर्जन सदन, वास एकाकी, विहरण महाव्योम के पार !
जो जगती के लिये कर्मयुग, मेरे लिये स्वप्न का द्वार !
हिम-निशीथ में, शुचि-प्रभात में चौंक अलस-तन्द्रा से मौन ;
किसकी स्मृति में क्रन्दन करता ! वह निशान्त-अज्ञाता कौन !
जीवन - दीप जलाकर कह तो, मैं कर दूँ संध्या से भोर !
मन का पाप छिपाऊँ कैसे ? चोर नहीं, यह तो चितचोर !
धन कागद, सर्वस्व लेखनी; अपमानित उर के अरमान !
फिर भी आठों पहर सिसकते ही रहते हैं मेरे प्राण !
पागलपन का जब वर पाया, कसक-सिसक का ही उपहार ;
बने आज दिल के टुकड़े ही दिल के टुकड़ों का आधार !
खूब पिलाया अहा ! अमृत के बदले जहर - भरा प्याला !
विश्वेश्वर, कवि के जीवन में इतना दुख, इतनी ज्वाला !

७४३

भाई नेपाली ! प्रिय, उदार ;
स्वीकार करो नव नमस्कार !
आशा है होगा दुखद न यह
सुकुमार हृदय का स्नेह - भार !

बीते रीते ऋतु - युग अनेक ,
फिर भी रे फिर भी है नवीन !
उस पुण्य दिवस की पुलक-लीन
मंगलमय,जलमय स्मृति अक्षीण!

देखा था जब वह साधु रूप ,
निर्मल, प्रशान्त, सस्मित,अनूप ;
खादी की गंगा में उज्वल
दीपित, ज्योतित, सुषमा-निकेत !

मेला के प्रांगण में विशाल
जब डोला 'पीपल', 'हरी घास' ;
होगा निहाल—आया विचार—
ऐसे ही जन से मरु - विहार !

फिर मिले वहीं कुछ काल-बाद ,
उस विद्यालय ही में समोद !
उस एक निमिष में बहा वहाँ
कितना जीवन, कितना विनोद !

पूछा था तुमने—सखे, नाम ?
मैं ठिठक गया; बोला, प्रणाम !
फिर किस खूबी से कहा, वाह !
उमगा कर तुमने नवोत्साह—

लिखते हैं कविता खूब आप !
(बस, सफल हुआ मेरा मिलाप;)
खोला ज्यों मैंने नयन बन्द ,
गोपाल बिहँसते मन्द - मन्द !

कविता करना तो रहा दूर ;
अपना ही उर जिसका विषण्ण !
कैसे बतलावे रे कितना
वह हुआ उसे सुन कर प्रसन्न !

निन्दित, निर्जन, निर्धन, नगण्य
मेरा दुर्बल मानस - अरण्य !
पा बन्धु ! तुम्हारा प्यार हुआ
नन्दन - कानन - सा धन्य-धन्य !

तब तो मैं था इतना प्रफुल्ल ;
कुछ कह न सका, बस रहा मूक !
मन में ही मन के भाव रहे—
अब रोता हूँ—हो गई चूक !

इतने - इतने मासोपरान्त
सुध ली उस दिनकी हाय आज ;
अपनी करुणामय दशा देख
आती है मुझको स्वयं लाज !

भूला न अभी तक वह मुखड़ा ,
बिसरी है मिसरी-सी न याद ;
सुन कर न कहीं मेरा दुखड़ा
होवे तुमको पीड़ा - विषाद !

इसलिये लिखूँगा नहीं और ;
सूचित कर देंगे यही प्रणय !
हो जहाँ कहीं—सानन्द रहे
कवि, मुक्त तुम्हारा हृदय सदय !

जवानी का लड़कपन

आज लड़कपन फ़िदा हुआ रे
कुछ इस तरह जवानी पर ;
तैर चले कागज के दिल के
पुर्जे - पुर्जे पानी पर !

बदला सीन, निराला आलम—
एक नई दुनिया, मानो !
नाव लगी ऐसी घाटी में
जहाँ न कोई, सच जानो !

आफत के दीवाने राही
कुछ उतरे, कुछ फिसल पड़े ;
खोये कुछ, कुछ भूले - भटके ;
कुछ तट पर ही रहे खड़े !

रूठे - विलुठे लैला - मजनूँ
पुर - परिजन - घर छोड़ चले !
तोड़ मुहब्बत की जंजीरें
क्या जानें, किस ओर चले !

यह पगडण्डी बड़ी अनोखी ;
आठों पहर कुशल - मंगल !
कदम - कदम पर बाग-बगीचे,
कोस - कोस पर वन - जंगल !

बजी बाँसुरी, डोला मनुआ ;
ग्वाल - बाल की मति न्यारी !
ले लो गोद ; चूम लो मुखड़ा ;
ठुमक पड़ूँ भर किलकारी !

पत्थर पर भी घास उगाई ;
पानी पर रेखा खींची !
बाँधा सागर को गागर में,
राह चला ऊँची - नीची !

लाल कटोरा, दूध गुलाबी ;
जय हो चंदा मामा की !
राजभवन बन गई झोपड़ी ;
मैत्री कृष्ण - सुदामा की !

धनुष - बाण सुकुमार करों में ;
पर्वत का शिखरारोहण !
कछनी काछ कदम्ब-तले, सुन ;
नाच रहे राधा - मोहन !

बनी भीत बालू की, सींकों
का पुल, जब मोहर कौड़ी ;
तारें बिछीं ; बहाई दरिया ;
रेल - ट्राम - मोटर दौड़ी !

मूँछों का हो गया सफाया ;
दाढ़ी पर उस्तरा फिरा !
गिरीं लटें अटपट कानों पर,
कुछ जादू का चक्र घिरा !

पढ़ा पहाड़ा, ओनामासी ;
सीखी फिर बोली तुतली !
नाठी उठी कुछ अजब शरारत
से दोनों दृग की पुतली !

राजकुमार, धूल में लिपटा ;
पीताम्बर की सुध न रही !
पृथ्वी का सम्राट बेचता
हाट - बाट में दूध - दही !

आँधी और पानी

आँधी आई, आँधी आई ;
आसमान में बदली छाई !

पत्तों का संसार उड़ाती,
दुनिया में हड़कम्प उठाती,
घर-घर को झकझोर हिलाती,
पंछी - गण के प्राण कँपाती,
बाँसों की बाँसुरी बजाती,
हा-हा, हू-हू, शोर मचाती,
धूल उड़ाती, पेड़ गिराती,
जग को अपना जोर दिखाती ;
जल में मर्मर, नभ में हर-हर,
थल में खड़-खड़, झड़-झड़, घर-घर!

घर से बाहर निकलो भाई !
आँधी आई, आँधी आई !

पानी आया, पानी आया ;
आसमान में बादल छाया !

बिजली चमकी; गरजा बादल ;
हवा बही रेशम - सी शीतल !
टप - टप रस की बूँदें पड़तीं ;
फूलों की पत्तियाँ सिहरतीं !
पेड़ खड़े हैं, झूम रहे हैं ;
मोर मगन हो घूम रहे हैं !
उमड़े आते नद औ नाले ;
भींग रहे रस के मतवाले !
बाँध तोड़ निर्झरिणी भागी ;
खेतों में हरियाली जागी !
जल में छम-छम, नभ में चम-चम,
थल में रिमझिम, रिमझिम, झम-झम!

लोगों ने आनन्द मनाया ;
पानी आया, पानी आया !

आँधी आई, पानी आया ;
काला घन मेरे मन भाया !

एक पहर रहती है हलचल ;
जल-थल में भारी कोलाहल !
रोर - शोर, चीत्कार भयंकर ;
रहता एक दृश्य प्रलयंकर !
फिर वर्षा की परियाँ आतीं ;
रस की, मधु की घड़ियाँ लातीं !
रिमझिम गीत सुना जाती हैं !
जीवन का फल बरसाती हैं !
पहले आँधी का डिम-डिम-डिम ;
फिर वर्षा का रिमझिम-रिमझिम!

रोम-रोम जग का हरसाया ;
आँधी आई, पानी आया !

७४६

मेरे दिनकर, मेरे उदार !
बरसाया था बरसों - पहले
तुमने जो मुझपर अमित प्यार ;
है फेंक दिया उस पार आज
उसको इस दूरी ने अपार !
हूँ एक छोर पर, पर कैसे
सकता हूँ तुमको मैं बिसार ?
फिरती साकार तुम्हारी छवि
उत्सुक दृग - पथ में बार बार !
मेरे दिनकर, मेरे उदार !

क्या ऐसी ही प्रिय, तुमको भी
आती है मेरी कभी याद ?
या भूल चुके उन पटने की
गलियों का चंचल मिलन-स्वाद ?
तुम क्यों कर जानोगे उर के
इस विधुर स्नेह का सरस भार ?
सच जानो, दर्शन को आकुल
हैं कब से आँखें बेकरार ।
मेरे दिनकर, मेरे उदार !

मत कहो कि विस्मृति-सरिता में
खो गया हृदय का विहग-गीत ;
जाग्रत है स्पन्दन - स्पन्दन में
अब भी अतीत का स्वर विनीत ।
हाँ, नियति-पाहनों से कुछ कुछ
रुक-रुक चलती है स्नेह-धार ;
टूटा मृणाल है यद्यपि, पर
कृश लगा हुआ है एक तार ।
मेरे दिनकर, मेरे उदार !

चल रहा आज भी कुछ यों ही
जीवन का अटपट क्रम-विचार ;
मैं निखिल विश्व में अपने को
पाता, एकाकी निराधार !
इस महाशून्य में कभी - कभी
तुम आ जाते बन किरण-हार ;
हूँ इसी प्रतीक्षा में, किस दिन
प्रिय, होंगी आँखें पुनः चार ?
मेरे दिनकर, मेरे उदार !

मेरी हँसी

रुकती न हँसी, रुकती न हँसी ;
मेरी नवनीत - नवीन हँसी !

क्या सुना, मुझे कुछ याद नहीं ;
क्या देखा, अब आबाद नहीं !
आया कोई, फिर जुदा गया ;
दिल को जैसे गुदगुदा गया !

मैं हँसते - हँसते फूल गई ;
जग को, अपने को भूल गई !
ऐसी यह हँसी बसी आली ;
मैं आज बनी हूँ मतवाली !

यह अधरों की तल्लीन हँसी ;
रुकती न हँसी, रुकती न हँसी !

रोको मत, हँसने दो अमोल ;
मैं आज हँसूँगी हृदय खोल !

ऐसी यह मादक हँसी मिली ;
मेरे दिल की मृदु कली खिली !
फूटे - से पड़ते अंग - अंग ;
कुछ अजब आज उर की उमंग !

हँसते - हँसते मैं रो दूँगी !
मैं रो - रो कर फिर हँस लूँगी !
जल - थल में अपना हास भरूँ ;
मै जल - प्लावन - सी उमड़ पड़ूँ !

आया हिय-सागर में हिलोल,
रोको मत, हँसने दो अमोल !

अनमोल हँसी, अनमोल हँसी ;
ले ले रे कोई मोल हँसी !

ऐसी यह हँसी , कहाँ पाओ ;
फूलों की फँसी , कहाँ पाओ !
यह हँसी , न जैसा शशी कहीं ;
ऐसी मादक उर्वशी नहीं !

नभ में ऊषा खिलनेवाली
मेरे ही अधरों की लाली ;
खिलती वन - फूलों की डाली
मेरे ही हँसने से आली !

यह लोल हँसी, उल्लोल हँसी ;
ले ले रे कोई मोल हँसी !

मैं हँसते - हँसते कल अविकल ;
हो गई विकल , हो गई विकल ;

मेरे दाँतों में जो प्रकाश ;
मेरे अधरों में जो विहास ;
जीती उससे वसुधा सारी ;
राका - शशि उसपर बलिहारी !

मेरे हँसने से प्रात हुआ ,
सौरभ - प्रसन्न जलजात हुआ ।
वन-वन में बहता मधु - समीर ;
रोमांचित कर जग का शरीर ।

मैं अस्त-व्यस्त , व्याकुल चंचल
हो गई विकल, हो गई विकल ।

मैं जब हँसती खल-खल-खल-खल
जग हो जाता बेसुध - चंचल ;

इस हँसने में जादू बसता ;
प्रिय, जहाँ अमृत भी कटु, सस्ता !
ऐसी यह हँसी मृदुल , प्यारी ;
बस में जिसके दुनिया सारी !

रोको मत मेरी हँसी आज ;
ठुकरा दूँगी त्रैलोक्य - राज !
बस , एक हँसी पर मैं अपनी ;
मैं आज हँसी की बनी धनी !

हो जाता है संसार विकल ;
जब मैं हँसती खल-खल-खल-खल !

पढ़ना

पढ़ , मेरी बिटिया रानी पढ़ ;
उन्नति के उच्च शिखर पर चढ़ !

भर दे यह छोटा-सा आँगन ;
मृदु-गुंजित कर दे लघु-जीवन ।
अपनी मृदु - वाणी से तुतली ,
तू मेरी सोने की पुतली !

सोने की सुन्दर प्रतिमा गढ़ ;
पढ़ , मेरी बिटिया रानी पढ़ !

ला दूँ मैं तेरे लिये अभी ,
पेन्सिल, किताब, औ स्लेट सभी;
दूँगा खरीद साड़ी , चप्पल ,
जिनके हित मचल पड़ी थी कल !

तू लिख भी तो, कक्षा में बढ़ ;
पढ़ , मेरी बिटिया रानी पढ़ !

निकलेगी जब तू लिख-पढ़कर ,
सब लोग करेंगे तब आदर ;
जा विद्यालय लेकर पुस्तक ।
बेकार कहीं मत कर बकझक !

उन्नति के उच्च शिखर पर चढ़ ;
पढ़ , मेरी बिटिया रानी पढ़ !

लक्ष्मी - पूजा

आई आज तुम्हारे गृह में
देवि, राजलक्ष्मी सुकुमार ;
वन्दन गीत न गातीं क्यों तुम ?
करतीं क्यों न अतिथि-सत्कार ?
खड़ी श्वेत शतदल - निवासिनी
स्वयं देहली पर साकार ;
पवन चरण-मणि - नूपुर-झंकृत ,
अंग - अंग अभिनव शृङ्गार !

उठकर क्यों न सजातीं आँगन ?
करतीं स्वच्छ वेश्म का द्वार ;
आई आज तुम्हारे गृह में
देवि, राजलक्ष्मी सुकुमार !

कौन तुम्हें कहता भिखारिणी ?
तुम तो निखिल विश्व की प्राण !
तुम्हीं अन्नपूर्णा हो, जग का
कमला - सी करतीं कल्याण !
गाते कोटि-कोटि सुत निशिदिन
देवि, तुम्हारा गौरव - गान ,
आज स्वयं ही देने आई
तुम्हें जगतजननी वरदान !

भर - भर पात्र लुटाओ मुक्ता ;
दो दीनों को धन - परिधान !
कौन तुम्हें कहता भिखारिणी ?
तुम तो निखिल विश्व की प्राण !

चिन्ता करो न इस उत्सव में ;
हो न तुम्हें अतीत का ध्यान !

बिहँसो आप, हँसाओ सबको ,
भर दो कण-कण में मुसकान !
ले आओ कंचन की थाली
सजा गन्ध - नैवेद्य - विधान !
धूप - दीप दूर्वाक्षत - चन्दन ;
सफल करो पूजा - सम्मान !

देगी मा, सम्पत्ति विपुल वह ;
और तुम्हें ऐश्वर्य महान !
चिन्ता करो न इस उत्सव में ;
हो न तुम्हें अतीत का ध्यान !

पुनः उड़ेगी अतलान्तक में
विजय - जयन्ती विपुलाकार ;
चमकेगा व्यापार हमारा
फिर प्रशान्त - वारिधि के पार !
चीर व्योम का वक्ष उड़ेंगे
शत - शत वायु - यान दुर्वार ;
होगा द्वीपान्तर में भी
नव भारत का वाणिज्य-प्रसार !

रोके कौन, उठा लो, देखो
हिन्द महासागर में ज्वार !
पुनः उड़ेगी अतलान्तक में
विजय - जयन्ती विपुलाकार !

जाओ मा, भर लाओ मंगल–
कलश, सजाओ वन्दनवार !
प्यार करो, आनन्द मनाओ ;
दो शिशु - बालों को उपहार !
कर दो मार्ग-मार्ग आलोकित ,
होने दो शोभित संसार !

देवि, जलाओ दीपावलियाँ,
करो मुरज - वीणा झंकार!
आई आज तुम्हारे गृह में
महाराजलक्ष्मी सुकुमार;
जाओ मा, भर लाओ मंगल–
कलश, सजाओ वन्दनवार!

सुविधा

भाई, कैसे मूँगा - मोती? कैसे व्याकुल प्राण रे!
भर लाये आँखों में आँसू आज तुम्हारे गान रे!
शब्दों ने आकर्षण लाया, पंक्ति - पंक्ति पहचान रे;
मिली कोयले के पर्वत में हीरे की यह खान रे!
मैं क्या जानूँ, कैसा मोहन? कौन तुम्हारे वे प्राणी?
किस प्रदेश से आकर प्यारे; चले गये राजा - रानी!
कंकड़-पत्थर चुन-चुन लाया; उसमें भी कुछ बास रे?
सोना-रूपा बन्धु, कहो मत, विजन विपिन की घास रे!
नील चँदोवा तना हृदय का; भावों का वातास रे!
जोगी मेरा अलख जगाता; एकानन्द, प्रकाश रे!
उसे उदासी से क्या नाता? वैरागी भी, अनुरागी!
वह अपना अधिकार समझता हास्य-रुदन का समभागी!
नेह-नगरिया, प्रेम-बजरिया; बसे सनम अनजान रे!
वह तो तुम्हें जगाने आया, तुम सोये नादान रे!
एक दिना, प्रियतम ने माँगा अधरामृत का पान रे;
यह भी कठिन परीक्षा मीता, उचित तुम्हें क्या मान रे?
अब तो भाग चला यह पंछी; कब बैठे किस डाली पर?
मुझे न कुछ मालूम, फिदा है कब से वन-हरियाली पर!
अब तुम समझ गये प्रिय, होंगे क्यों गुलशन गुलजार रे?
छाले बने स्नेह-रसवाले; दाग बने दिलदार रे!
देती जैसा मजा चाँदनी; कुछ वैसा ही धूप रे!
धृष्ट चरण, दृग तरल, हृष्ट उर, मैं बहुरूप अनूप रे!
मौजी जीव मौज क्यों छोड़े? रो रो कर भी हँस लेता!
रोना-हँसना एक समझता; हँसने में भी रो देता!
छीन चला कोई मन जैसे; यह कैसी आसक्ति रे?
सूक्ति नहीं-यह मौन तुम्हारे अन्तर की अभिव्यक्ति रे!
सच बोले, सब ही तो राही; सब की अपनी राह रे!
इसीलिये तो मैं भी ऐसा - ऐसा लापरवाह रे!
देव, हृदय के धनी! भिखारी का कुछ दुख-सम्भार हरो;
यदि न प्यार कर सको आज तो कम से कम मत घृणा करो!
राम-रमैया, कृष्ण-कन्हैया, दोनों मेरे मन-भाये!
राजमहल क्या राम-मरैया, आहट पा दौड़े आये!
आज प्रणय की नदिया गहरी; बैरिन निँदिया क्यों भागे?
मेरा जीवन बड़ा सरस रे जल पीछे, ज्वाला आगे!
आफत से घबड़ाये मनुआ; ऐसी कोई बात नहीं!
सखे, सहे पापी प्राणों ने कैसे - कैसे घात नहीं!
यही प्रीति की रीति पुरानी; इसका ही अवलम्ब बड़ा!
राम तुम्हारे भीतर बैठा; घूँघट के पट खोल जरा!

नेह की भीख

कुछ अजीब-सी मिली तबीयत, बन्धु, तुम्हारे भाई को!
कहीं अनोखी हवा छू गई उर की इस अमराई को!
ढला, सदा के लिये ढल गया एक अजब ही ढाँचे में!
सच मानो - अब समा न सकता किसी दूसरे साँचे में!

जोड़-तोड़ कागज के टुकड़े, टेढ़ी-सीधी खींच लकीर—
अरे, आजमाई थी काली स्याही से अपनी तकदीर!
छला कला के मधुर नाम पर, बला मोल ली लोगों से;
आखिर, अब चेता है मनुआ, काम न चलता ढोंगों से!

अपराधी मैं-जरा न संशय सीमा नहीं कुटेवों की!
जाँचोगे क्या झोली? लोगे गिनती आज फरेबों की?
हाय, न फिर भी पतन-गर्त में गिरने को लाचार करो!
घृणा नहीं-दिलदार, आह! मेरे पापों को प्यार करो!

प्यार करो इस प्रेम-पात्र को, केवल प्यार-दुलार करो!
ठुकराओ मत कमजोरी पर, कुछ भी सोच-विचार करो!
क्या हिसाब? कितने राही आ भटके नेह - तराई में!
क्षमा करो - गलतियाँ न ढूँढ़ो अपने भोले भाई में!

अपना रंग, ढंग भी अपना प्यारे, एक निराला ही!
अचरज नहीं, तुम्हें जो दीखे कहीं दाल में काला ही!
काँटे चुन - चुन कर जीवन भर मैंने दुनिया में बाँटे!
फूल कहाँ फिर पाऊँ, चुभते पैरों में वे ही काँटे!

पर-उपदेश-कुशलता ही बस; जीवन का आदर्श रहा !
मोह न छूटा अब तक भी रे, भूल गया सब सुना-कहा !
यह तो खैर कहो जो, उतनी अभी न बदनामी फैली !
फिर भी दोषी हूँ जरूर, की है सचमुच चादर मैली !
घर में जला चिराग नहीं-मस्जिद की दौड़ लगाई क्यों ?
आप ठोकरें खा दर-दर, औरों को राह बताई क्यों ?
आज, फैसला करो न मेरी किस्मत का; दिल में लेखो !
दया-धरम रख मन में दर्पण में अपना मुखड़ा देखो !

स्वदेश - शिक्षा

झगड़ो मत साथी से अपने; मा - बापों से सदा डरो !
लड़ना बेशक बुरी चीज है; नहीं किसीसे कभी लड़ो !
पढ़ो-लिखो; आनन्द करो; उर में सुन्दर-से भाव भरो !
उतरो देवदूत-सा जग में, छोटों को भी प्यार करो !

तुम मस्ती के जीव-अजी, हाँ, चिन्ता को मारो गोली !
देखो, नाखुश हों न तुम्हारे व्यवहारों से हमजोली !
भोली-सी तसवीर स्नेह की; बोली में मिसरी घोली !
दुनिया को अलमस्त बना दो, ऐ अलमस्तों की टोली !

दिखलाओ पग-पग पर जीवट; संकट विकट धकेल चलो !
बिगुल बजे साहस का, सारी बाधाओं को ठेल चलो !
लाओ बाँहों में कुछ ताकत, कंधों पर दुख झेल चलो !
हँसी-खेल के पुतले, हँस-हँस, खेल-खेल हँस-खेल चलो !

देखो, दुनिया कितना आगे आ पहुँची है क्षण भर में !
पड़ा पड़ाव पहाड़ों पर, चल पड़ीं बग्गियाँ सागर में !
हाथ जोड़ कर खड़ी मेदिनी ; उड़ी तिलंगी अम्बर में !
'भूत' और 'हव्वा' के डर से बैठोगे क्या तुम घर में ?

भसम रमाये हम जंगल में मंगल करने आज चले !
धूल उड़ा शूलों की आये, हम फूलों की गोद - पले !
भारत के हम वीर - केशरी, कायरता का नाम न ले ;
पड़े हमारे पैर - तले जो, चले गये सब दले गये !

आज, तुम्हारा अपना कोई ध्येय नहीं, आचार नहीं ;
ढलो अभी से उस साँचे में, जो हो फिर बेकार नहीं !
करो प्रतिज्ञा - 'होता जब तक भारत का उद्धार नहीं ;
शान्ति मिलेगी इस जीवन में हमको किसी प्रकार नहीं !

देह-राज्य

देह-राज्य के राजा पेटूमल औ मंत्री थे मुख वीर;
शासन और व्यवस्था से आनन्दित सारा राज्य शरीर !
छायी थी सर्वत्र शान्ति औ धर्म-कर्म से प्रजा प्रसन्न ;
सभी सुखी थे, सभी तुष्ट थे; कहीं न कोई खिन्न, विपन्न !
आई किसी दूर टापू से एक रोज उड़ चिनगारी ;
और उसी क्षण देह-राज्य में एक अशान्ति मची भारी !
राज-मार्ग से बढ़ी सामने उत्तेजित लोगों की भीड़ !
घबड़ाये मुख वीर देख कर, पेटूमल हो गये अधीर !
बोले तब कर सिंह जोश से मुट्ठी बाँध, अरे ठहरो !
काम करें हम भला और तुम खाओ, पीओ, मौज करो !
यह बेगार न हम से होगी, झंझट में न पड़ेंगे हम।
हम न आज से काम करेंगे, अब विद्रोह करेंगे हम !
आगे आकर चरणदास तब बोला-यह कैसी है बात ?
खाने को मुख और पेट हैं; चलते रहें पैर दिन-रात !
प्रजा परिश्रम करे और शासक-गण खा-खा मुस्तण्डा ?
हम भी यहाँ खड़ा करते हैं आज बगावत का झंडा !
लोचन शर्मा ही क्यों चुप-से रहते तब इस अवसर पर ?
इस राजा में न्याय नहीं है ! कहा लाल-पीले होकर !
जिसके बिना अँधेरी दुनिया, भला उसीकी मिटे न प्यास !
यह नगरी अँधेर, करेंगे हम चौपट राजा का नाश !
कर्ण देव ने कहा कुपित हो, इससे बढ़ कर है क्या स्वार्थ !
छेद बने कानों में, पावे औ पेटूमल भोज्य पदार्थ !
बढ़े चलो, आते हैं हम भी विद्रोही लोगों के साथ !
राजा औ मंत्री दोनों को कर देंगे हम आज अनाथ !

दुबली-पतली नाक तिनक कर बोली, मुझको भी है ज्ञात !
जिसके बस में प्राण, उसीको मिले न मुट्ठी भर भी भात !
मैं भी रण में कूद पड़ूँगी, अब नारी भी है जागी !
मेरे दिल में भी हसरत है, बन जाऊँगी मैं बागी !
एक - एक आये यों ही देह - राज्य के लोग सभी !
बिना अन्न-पानी के सारा राज्य हो गया नाश तभी !
और एक दिन वह भी आया जब न सहन कर भारी कष्ट !
साथ देह के ही, शरीर के हुए अंग भी सारे नष्ट !

रुकती न हँसी

रुकती न हँसी, रुकती न हँसी ;
मेरी नवनीत - नवीन हँसी !
मैं हँस-हँस पड़ती हूँ रह-रह ;
भंडार हँसी का मेरी यह !
होता न कभी खाली, आली ;
उन्मत्त हँसी की यह प्याली !

इसमें जीवन, मस्ती पूरी ;
मैं आप बनी हूँ कस्तूरी !
आतीं मधु-घड़ियाँ झूम-झूम ;
मेरे हँसने की मची धूम !
ऐसी यह मधु-रस-लीन हँसी ;
रुकती न हँसी, रुकती न हँसी !

मैंने सीखा पल - पल हँसना ;
केवल हँसना—केवल हँसना !
इस हँसने में जादू बसता ;
जिसके आगे मधु भी सस्ता !
वन-वन में लतिका हिल जाती ;
यह हँसी फूल-सी खिल जाती !

रुकती न कहीं पल-भर, छिन-भर ;
मैं हँसती रहती हूँ दिन - भर !
मैं बिजली—बिजली-सी चंचल ;
करती ही रहती कोलाहल !
कल-कल खल-खल छल-छल हँसना;
मैंने सीखा केवल हँसना !

यह शोख हँसी, सुकुमार हँसी ;
यह लगातार, हर - बार हँसी ;
मुखरित हो उठता घर-आँगन ;
हो जाता सोना रज का कन !
वरदान हँसी का मुझे मिला ;
मैं हँसती हूँ खिलखिला-खिला !

सरिता-जल-सी कल-कल छल-छल,
लहरों-सी उठ-उठ, मचल-मचल ;
चलती है मेरी हँसी चपल,
उर के उद्गम से निकल-निकल !
इस पार हँसी, उस पार हँसी ;
यह शोख हँसी, सुकुमार हँसी !

मैं हँसते - हँसते चल-चंचल ;
हो गई विकल, हो गई विकल !
जब - जब मैं हँसती हूँ अधीर,
तब - तब वन में उन्मद समीर !
रोको मत, हँसने दो अमोल !
मैं आज हँसूँगी हृदय खोल !

मेरे दाँतों में जो प्रकाश,
मेरे अधरों में जो हुलास ;
चाँदनी मलिन उससे होती !
अलि, बरस-बरस पड़ते मोती !
मेरे हँसने से जग पागल ;
मैं हँसते - हँसते चल - चंचल !

यह लोल हँसी, उल्लोल हँसी ;
ले ले रे कोई मोल हँसी !
मेरे हँसने से प्रात हुआ ;
सौरभ-प्रसन्न जल जात हुआ !
ऐसी यह हँसी कहाँ पाओ ?
फूलों की फँसी कहाँ पाओ ?

नभ में ऊषा खिलनेवाली ,
मेरे ही अधरों की लाली ;
ऐसी मादक उर्वशी नहीं !
अम्बर का उज्वल शशी नहीं !
मैं बेच रही दिल खोल - हँसी ;
यह लोल हँसी , उल्लोल हँसी !

यह हँसी खास मेरी अपनी ;
मैं आज हँसी की बनी धनी !
मैं मन ही मन गुन गुन गाती ;
हँस-हँस कर मचल-मचल जाती !
भागती कभी , रूठती कभी ;
थक जाते मुझको मना सभी !
फिर भी न हाय, वह प्रचुर हँसी ;
रुकती–रुकती चिर-मधुर हँसी !
इन होठों को क्या समझाऊँ ?
मैं कहाँ मूकता वह पाऊँ ?
मिसरी-सी मीठी सुधा - सनी ;
यह हँसी खास मेरी अपनी !

जिसको लगती यह हँसी भली ,
मैं उस भाई की हूँ पगली !
मैंने न कभी रोना जाना ;
आँसू की बूँदों को लाना !
रोना भी मेरा जब गाना ,
यह हँसना किसने पहचाना ?
मैं हँसते - हँसते मतवाली ;
वह हँसी एक मैंने पाली !
जिस हँसने से प्रतिदिन , आली !
खिलती वन - फूलों की डाली !
मैं उस भाई की हूँ पगली ,
जिसको लगती यह हँसी भली !

केसर ही मेरा मधुर नाम ;
हँसना ही मेरा एक काम !
जग हो जाता व्याकुल बरबस ,
ज्यों खुलते मेरे दृग सालस ;
संसार चकित , उन्माद-विवश !
इतनी मेरी मुस्कान सरस !
पर , उससे भी बढ़कर मेरी ,
यह हँसी मोतियों की ढेरी ;
ऐसा इसका चंचल प्रवाह ;
ऐसी इसकी अटपटी राह !
हर रोज घड़ी , हर सुबह-शाम ;
हँसना ही मेरा एक काम !

चलते - समय

दिलदार नसीब हुआ न कहीं ,
दुनिया से सखे , मुँह मोड़ चले ;
तुम चोर , चुरा धन - वित्त सभी ,
हृदयोदधि को हिलकोर चले !
अब माँगते रो के - रुला के विदा ,
सबको दुख - सिन्धु में बोर चले ;
अरे पंछी , बताओ तो छोड़ मुझे
इस भाँति कहाँ ; किस ओर चले ?
यह डाल वसन्त की फूली - फली ,
यह नेह - कली प्रिय , पाते कहाँ ?
सुख - रंगरली , यह कुंज - गली ,
मृदु - मन्द - समीर डुलाते कहाँ ?

पर कंचन के , कल - चंचु फुलो ,
मधुमत्त प्रभात में गाते कहाँ ?
सच बोलो , पुकार हुई किसकी ?
अरे पंछी , मुझे तज जाते कहाँ ?

किस मूर्त्त घड़ी में विदेशी , यहाँ
बतलाओ तुम्हारा बसेरा हुआ ?
तनु-नीड हुआ सुख-स्वर्ग, निसर्ग—
निकेतन जीवन मेरा हुआ !
वह कैसी निशा , वह कौन दिवा ,
वह कैसा सुवर्ण - सबेरा हुआ ?
कब रूठ चला इतने दिनों से
वह पाहुन प्यार से घेरा हुआ !

गृह सूना हुआ , बुझ दीप गया ;
हुई सौरभ - सौख्य - विहीन धरा !
उजड़ा कल - कानन कामना का ,
मकरन्द - भरा वह फूल झड़ा !
जलधार बहाते दृगों से द्विरेफ ,
हहा , वनमाली का छोह बड़ा !
सुन लो अरे पंछी , न जाओ अभी ;
रुकना ओ जरा—ठहरो तो जरा !

चल दोगे कभी चुपचाप, इसीके
लिये इतना क्या विमोह रहा ?
बहु सेवा की , प्यार किया इतना ,
शिर पे सब कष्ट सहर्ष सहा !
पथ रोकते मित्र , कुटुम्ब - सहोदर
आदि विलोचन - नीर बहा !
चले ! शीघ्रता क्यों इतनी ? अरे
पंछी, रुको तो जरा, रुक जाओ हहा !

दिलरुबा

ओ नाज - भरे यौवन - वाली ,
अन्दाज - भरी चितवन - वाली !
मदमस्त बना दे तू मुझको ,
ओ लाज - भरे बचपन - वाली !
बेखुद कर दे, बेसुध कर दे ,
ओ राज - भरे तन-मन वाली !
अन्दाज - भरी चितवन - वाली ,
ओ नाज - भरे यौवन - वाली !

सौन्दर्य - शमा है तू, मुझको
उस लौ का परवाना कर दे ;
तेरी आँखों में मदिरा है ,
तू मुझको दीवाना कर दे !
तेरा दिल फेनिल सागर है ,
तू मुझको पैमाना कर दे !
बुलबुल कर दे, गुल कर दे, हो
खत्म न जो, अफसाना कर दे !

आँधी कर दे, तूफान बना ;
मुझको तू बना बवण्डर दे !
सौदा दे, मुझे तमन्ना दे ;
रुसवा दे, मिटने का वर दे !
कर दे तू चाक - गरेबाँ, मत
भर जख्मों को, घायल कर दे !
विह्वल कर दे, चंचल कर दे ,
आकुल कर दे, व्याकुल कर दे !

बेहोश बना दे मुझको तू ,
इतना मदहोश बना दे तू !

दे असन्तोष मुझको दारुण,
फिर भी निर्दोष बना दे तू।
मस्ती भर दे, पागल कर दे;
मुझको पुरजोश बना दे तू।
मधुमास बना दे, मधु कर दे;
मधुमय, मधुकोष बना दे तू।

लबरेज पियाले को कर दे,
सूखे होठों को तर कर दे;
बाजू भर दे, सीना भर दे,
आँखें भर दे, तू दिल भर दे।
डगमग पग, जग जगमग कर दे,
अलमस्त बना, तू अल्हड़ दे।
तू जो चाहे, कुछ भी कर दे,
लैला कर दे, मजनूँ कर दे।

वह दर्द मुझे दे, जो न मिटे;
जिससे मैं तड़पूँ जीवन-भर।
वह आग मुझे दे, जो न कभी
ठंढी हो, राख बनूँ जल कर।
वह प्यास मुझे दे, जो न बुझे;
अधरों में जो नित रहे अमर।
वह जुनूँ मुझे दे, जो शबाब
बन छाया रहे सदा मुझपर।

७५७

नील गगन का उत्पल।

७५८

कल खिली थी कामिनी।

७५६

प्रेम - देव - निवेदिता।

शरत - संगीत

शरद - वन में आज मेरे प्राण, सुख से झूल ले;
ये जुही की डालियाँ ले; ये कमल के फूल ले।
आज घर-घर में मिलन-स्वर, प्रेम की आसावरी;
बह चली मिल स्नेह गंगा से प्रणय - गोदावरी।
सज रहे आँगन - निकेतन, बज रहीं शहनाइयाँ।
आज घर-घर में सखे, आनन्द की अँगड़ाइयाँ।
गूँजता सन्देश अभिनव वर्ष का प्रति - द्वार से,
मत्त पुर - परिवार सारा हर्ष - पारावार से।
नाच ले खंजन सलोने, आज क्षण भर नाच ले।
आज प्राणों की परीक्षा, प्रेम का फल जाँच ले।

हो गई पाकर शरत का हास वसुधा बावली;
आज वन - वन में सिहरती गन्ध पी मधुपावली।
खिल गई दिल की कली रे सुख-समीरण-श्वास से।
नाचता जग का कलापी हर्ष से, उल्लास से।
आज घर - घर में सजी रे प्रेम की दीपावली;
कंटकित सुख से, पुलक से, विश्व - तनु - रोमावली।
व्योम की सुषमा नवल यह, प्रिय नवल रस-भारती;
चूम लो प्रिय-पाद-पंकज, प्रिय, उतारो आरती।
वीचि-वन में आज क्षण भर प्राण, कर अभिसार ले।
यह हमारी रागिनी ले, यह हमारा प्यार ले।

आज का यह दिन निराला, कल्पना - उन्माद रे;
बाँसुरी बजती प्रणय की, प्रेम का ही नाद रे।
चिलचिलाती धूप औ फिर खिलखिलाती चाँदनी;
दिवस सोने का बना औ रात चाँदी की बनी।
हो गई कविता हरी लख धान की मृदु-मंजरी;
आज यह आनन्द - उत्सव, मोद-मधु की निर्झरी।

बाँध दो संसार को प्रिय, प्रेम - वन्दन - वार से;
रोक लो प्रिय, राहियों को प्यार से, मनुहार से!
प्राण, कोकिल बन तनिक तू आज क्षण भर कूक तो!
आज खुलने के सखे, दिन; आज मत रह मूक तो!

मुसकिराती सुन्दरी - अपराजिता सुख भार से;
खिल पड़ा कादम्ब जग का ज्योति के संचार से!
स्वर्ग का नन्दन - विपिन यह, यक्ष की अलका-पुरी;
आज आई राजलक्ष्मी, यह शरत की माधुरी!
बन्धु, गाओ मुक्त - स्वर से आगमन का गान रे;
आज सौरभ - मत्त उर, उन्मुक्त पागल प्राण रे!
गूँथ ले कबरी विमोहन प्राण, हरसिंगार से;
आज, जग को जीत लो उर - वेणु की झंकार से!
खोल दे बन्धन हृदय का, प्राण, मृदु-मृदु बोल ले!
यह सुरभि - उन्मादना ले, यह किरण-हिन्दोल ले!

हिना

आ रही जिसकी नशीली गन्ध वन की झाड़ियों से,
और मैं जिसके नशे में होश अपना खो रहा हूँ;
नींद - सी वह कौन फूलों की रसीली क्यारियों से?
और, जिसके राज में मैं झूमता हूँ, सो रहा हूँ!
क्या उसे तुम जानते हो?
वह हिना है!

लड़खड़ाती आ रही है रस-भरी जो खिड़कियों से,
चाँदनी है, भोर-सा है, और यह ठंढी हवा है!
जल गया है रात में जो दिल किसीकी झिड़कियों से,
और जिसकी गंध ही उस दर्द की मीठी दवा है!
क्या उसे तुम जानते हो?
वह हिना है!

रात भर प्रिय-संग जो रति-रंग में बहती रही है,
और, मैं तिनके वियोगी - सा कहीं चुनता रहा हूँ;
रात भर सुख की कहानी जो उसे कहती रही है,
और, मैं बुत-सा बना जिसकी कथा सुनता रहा हूँ!
क्या उसे तुम जानते हो?
वह हिना है!

शाम को ही जो खिली, मुरझा गई बस, भोर में,
एक दिन भी दुःख का देखा नहीं जिसने कभी;
बूँद - भर आँसू न छलका है कभी दृग - कोर में,
और मेरे सामने ही झड़ रही है जो अभी!
जानते हो क्या उसे तुम?
वह हिना है!

देखते - देखते ही यह पेड़ सूना हो गया लो,
गन्ध ही अवशेष केवल, फूल सारे झड़ गये हैं;
कह रही जो आज अन्तिम बार मुझसे लो, सँभालो;
और जिसके श्वास मेरे प्राण सुरभित कर गये हैं!
क्या उसे तुम जानते हो?
वह हिना है!

उलटी नगरी

उलटी नगरी एक अनोखी;
वस्तु जहाँ की उलटी - पुलटी!
उलटी दुनिया, उलटा पर्वत;
उलटे पेड़, चिमनियाँ उलटी!

देतीं दूध चींटियाँ, खरहे
हल खींचें, चूहे हलवाहे।
पैसा दुर्लभ, सुलभ अशर्फी;
भोजन सबको खाना चाहे!

मूँछ - दाढ़ियाँ रखती औरतें ;
मर्द जना करते हैं बच्चे !
रहते लोगों में मकान ही ;
झूठे जीते, मरते सच्चे !

सर पर जूता, पगड़ी पैरों में ,
मच्छड़ की बनी सवारी !
दिन में चाँद चमकता, सूरज
सारी रात करे उजियारी !

जलता पानी , आग बुझाती ;
चलते सर के बल नर - नारी !
छप्पड़ तो जमीन पर रहती ;
घोड़ा पीछे , आगे गाड़ी !

नाव चलाते मरुस्थली में ;
साँझ जागते , सोते तड़के !
पाँच बरस तक रहते बूढ़े ;
साठ बरस में होते लड़के !

सुनतीं आँखें , कान देखते ;
नीचे बाबू , कुर्सी ऊपर !
चढ़ जातीं पहाड़ पर नदियाँ
सिन्धु-झील से निकल-निकलकर !

एक बात का वहाँ बड़ा सुख ,
पढ़ते गुरू , पढ़ाते चेले ;
मौज उड़ाते बैठ भिखारी ;
शाहंशाह चलाते ठेले !

राही ज्यों - के - त्यों रह जाते ;
और , चला करती है डगरी !
उलटी सारी वस्तु जहाँ की ,
देखी ऐसी उलटी नगरी !

आवाज

मरघट में जब गीदड़ करता ,
ह्याऊँ, ह्याऊँ, ह्याऊँ ;
पलने पर तब लल्लन करता ,
च्याऊँ, च्याऊँ, च्याऊँ !
आँगन में जब बिल्ली करती ,
म्याऊँ, म्याऊँ, म्याऊँ ;
गोदी में तब लल्लन करता ,
प्याऊँ, प्याऊँ, प्याऊँ !

जंगल में जब बाघ गरजता ,
हाँय, हाँय, हाँय ;
लल्लन तब कोने में रोता ,
भाँय, भाँय, भाँय !
खूँटे में जब बछड़ा करता ,
बाँय, बाँय, बाँय ;
घर से लल्लन बाहर आता ,
धाँय, धाँय, धाँय !

छप्पड़ पर जब कौआ करता ,
काँव, काँव, काँव ;
पीढ़े पर तब लल्लन कहता ,
खाँव, खाँव, खाँव !
गलियों में जब कुत्ते करते ,
झाँव, झाँव, झाँव ;
बिस्तर पर तब लल्लन कहता ,
आँव, आँव, आँव !

पेड़ों पर जब हवा सिहरती ,
सन, सन, सन ;

ठुमुक, ठुमुक कर लल्लन चलता ,
रुन, रुन, रुन !
मन्दिर में जब घंटा बजता ,
टन, टन, टन ;
तब लल्लन की पायल करती ,
झन, झन, झन !
पिंजड़े में जब सुग्गा करता ,
टाँय, टाँय, टाँय ;
लल्लन तब खिल खिलकर हँसता ,
आँय, आँय, आँय !
जब दोपहर रात हो जाती ,
साँय, साँय, साँय ;
सपने में लल्लन कह उठता ,
माँय, माँय, माँय !

बच्चे की शादी

हट जाओ जी, हट जाओ जी; जाता हूँ अपनी ससुराल !
मैं न बोलता, मुझे न छेड़ो; आज बड़ा - ही हूँ बेहाल !
चढ़ा लालकी पर हूँ सुख से, ढोते जाते चार कहार ;
बजते बाजे, घोड़े सजते, कुछ पैदल कुछ चले सवार !
बैलगाड़ियों पर बाराती, बजा रहे मिल ढोलक-झाल !
हट जाओ जी, हट जाओ जी; जाता हूँ अपनी ससुराल !

आ पहुँची लो, आ पहुँची लो, ड्योढ़ी पर मेरी बारात ;
दरवाजे आ लगी सामने, बीत चली जब आधी रात !
बाजे गरजे, हाथी तरजे, घोड़े लगे दिखाने चाल ;
चौतरफी हो गई रोशनी, मण्डप में सब जुड़े विशाल !
बरसे चावल, ठंढा पानी; काँप उठा झट मेरा गात !
आ पहुँची लो, आ पहुँची लो; ड्योढ़ी पर मेरी बारात !

नाई आया, बाभन आया; आया 'परिछन' भी तत्काल !
पहुँचे सब आँगन में डट कर जहाँ बना था वह पंडाल ;
पंडित जी पिल पड़े किसीसे दो-दो गज की जीभ निकाल !
उसके बाद निमन्त्रण आया, आया भोजन भर-भर थाल !
लपके सभी दही-चूड़ा पर, चट कर लिया तरावट - माल ;
नाई आया, बाभन आया; आया 'परिछन' भी तत्काल !

हुआ ब्याह फिर, हुआ ब्याह फिर; पूरी हुई सभी की चाह !
लगे पढ़ाने मुझे पुरोहित ; मैं निद्रा में पड़ा अथाह !
लाल हुईं आँखें धूए से, मुझे लगा जैसे वह काल !
इधर सो गया मैं, औ उसने उधर फुलाये अपने गाल !
चौंक पड़ा, जब हुआ सबेरा; पढ़ा उन्होंने 'स्वाहा-स्वाह' !
ब्याह हुआ फिर, ब्याह हुआ फिर, पूरी हुई सभी की चाह !

कितने रस्म, रिवाजें कितनी; बीच - बीच में आई और !
मैं दुलहा था, वह दुलहिन थी, हँसते - रोते, जाते दौड़ !
कभी रुपै के लिये रूठता, कभी किसीपर करता गौर !
गातीं गीत औरतें, नौकर मुझको घेर डुलाते चौर !
दुलहिन की थी भरी माँग औ मेरे सिर पर था मृदु-मौर ;
कितने रस्म, रिवाजें कितनी बीच - बीच में आईं और !

बिगड़े बाबू, बिगड़े बाबा ; मिला न पूरा दान - दहेज ;
कलम तोड़, दावात फोड़ दी, और छोड़ दी कुर्सी-मेज !
बोले पैसा-पैसा रख दो; हिन्दू हम - न फ्रेंच - अँगरेज !
बुला लिया मुझको अन्दर से एक आदमी को झट भेज !
डरे दिहाती, अरे ! दूसरा कौन आज आया चंगेज !
बिगड़े बाबू, बिगड़े बाबा ; मिला न पूरा दान - दहेज !

विदा हो गये, विदा हो गये, तब सारे - के - सारे लोग ;
बाबू जी ने रुपै उड़ाये, बाराती ने मोहन - भोग !
मिली बहू - रानी मुझको भी गुड़िये - सी ही छोटी एक ;
दोनों ही मिल पतँग उड़ायेंगे, खेलेंगे खेल अनेक !
मैं भी लड़का–वह भी लड़की; खूब मिलाया जोगम-जोग !
विदा हो गये, विदा हो गये, फिर सारे - के - सारे लोग !

गिरते हुए पत्ते से

अभी-अभी तो झूल रहे थे तुम विटपी की डाली में !
भूल रहे थे सुख में दुख को, फूल रहे हरियाली में !
सहसा कौन पकड़ कर खींचा ? निराधार-से छूट गये !
बन्धु, बताओ कैसे पल में, सारे बन्धन टूट गये !
आज, उत्तरापथ से निष्ठुर यह किसका आह्वान हुआ !
जीवन-दीप बुझा, युग-युग का, महा-पर्व निर्वाण हुआ !
आई एक लहर-सी, सिहरी देह, प्राण लड़खड़ा पड़े !
प्रखर पवन कर तुम्हें वृन्त-च्युत कहाँ उड़ा ले चला, अरे !

क्या त्रिशंकु-से अधर-बीच ही रुक न सकोगे यार, जरा !
यह आकर्षण बड़ा प्रबल है; इस दुनिया का मोह बड़ा !
सिसक रही पतझाड़ बनों में; बुला रहा सुकुमार, सखे !
कहाँ छुपा आधार प्यार का ? यह कैसी है हार सखे ?

मर्मर-वन की प्रणय-रागिनी; पल्लव-दोलन छोड़ चले !
चिर-सम्बन्ध तोड़कर तरु से, अकस्मात मुँह मोड़ चले !
रोकर आप, रुला औरों को, सब का हृदय मरोड़ चले !
टूट रहे तारों-से क्यों तुम आह, धरा की ओर चले !

देख सकोगे फिर न कभी क्या ऋतुपति की क्रीड़ा चंचल ?
नीचे सरिता, ऊपर अम्बर, आगे पर्वत का अंचल !
गरम-गरम आँसू बुलबुल के धो न सकेंगे वक्षस्थल !
विरह-व्यथा अब सुना न पायेगी तुमको चातक-कोयल !

जाओ, जाते हो प्रसन्न,तो; प्रिय ! हँसकर प्रस्थान करो !
यह भिक्षुक जग लुब्ध सदा का, कुछ इसको भी दान करो !
जीवन की अन्तिम घड़ियों में रोने का क्या काम सखे ?
मिलन-विरह का कौतुक कैसा ? लो न भीतिका नाम सखे !

मिथिला

गंध - हीन किंशुक - सी वन में कौन निदारुण वनमाली
छोड़ गया तुमको अतीत - वैभव की अयि मतवाली !
महामहिम हिमवान तुम्हारा द्वारपाल, निर्भय प्रहरी ;
सुमनस - वन्दित चरण निरन्तर धोती सुरसरि की लहरी !
कमला जिसका हृदय, लक्ष्मणा वाणी, वागमती उद्गार ;
शत-शत रक्त शिराओं - सी निर्मल सरिताओं का प्रस्तार !
कर अचेत चैतन्य - देव को हुए कहाँ वे अन्तर्धान ?
गूँज रही अब भी नदिया में किस कवि-शेखर के मृदुगान ?
भूली कहाँ किरीट, इन्दिरे ! अपना वह मरकत - शृङ्गार ?
वीणा-पाणि कहाँ वह तेरी वीणा की मादक झंकार ?
शस्य - श्यामला मही आज सिकता - शय्या पर सोती है ;
मिथिले, आज तुम्हारी महिमा खण्डहरों में रोती है !
शंकर से शास्त्रार्थ करे जो बोलो, वह भारती कहाँ ?
सारा विश्व उतारे जिसकी दीप - गंध आरती कहाँ ?
चीख-चीख उठती है कोयल उजड़े उपवन में निर्जन !
किसी नष्ट प्रतिमा को कब से ढूँढ़ रहा मारुत वन-वन !
तू ही बता कल्प - निर्वासित अरी, अहल्या पाषाणी !
कहाँ गई सर्वस्व लुटा कर मेरी गरिमा गीर्वाणी !
लोट रहे राजा धूलों में ; भटक रही पथ में रानी !
प्यास लगी, जल रहा कंठ है; किन्तु, कहाँ मिलता पानी ?
हाय, ऊर्म्मिला की मधु-स्मृति में किसकी जलधारा न बही !
मिथिले, आज तुम्हारे दुख की कोई भी सीमा न रही !
चिता राजधानी में जलती, जनक-पुरी बन गई श्मशान ;
योग-भ्रष्ट क्यों जनक, तुम्हारा ? गौतम, कहाँ तुम्हारा ज्ञान ?
वसुधे, कहाँ स्वर्ग की सुषमा, वाचस्पति का बुद्धि-विकास ?
सीता - सी देवी को लेकर भी न मिटी हा, तेरी प्यास !
फटती क्यों न धरा की छाती ? क्यों न उमड़ता पारावार ?
अरी, फिरा दे फिरा हमारी पुनः मैथिली को सुकुमार !
वह अरण्य, वह पण्य-वीथिका, पुण्य-तपोवन का ओंकार ;
लौटा दे री आज, अभागिनि, वही ज्ञान, वह ज्योति-प्रसार !
महा-शक्ति, इस पुण्य देश में एक बार फिर लो अवतार ;
पुनः तुम्हारी कीर्ति - सुरभि से सुरभित हो सारा संसार !
एक बार बन मार्ग-प्रदर्शक मिथिले, पुनः विकल जग में ;
ज्ञान-दीप ले चल इस दुर्गम जग के तमसावृत मग में !
संग्रह कर अवशेष अस्थियाँ, नवयुग का नव-शोणित डाल ;
फूँक नवल प्राणों को उनमें, पुनः खड़े हो ये कंकाल !
साहस भर पल्लव - बालों में, कर तनु में विद्युत - संचार ;
मिथिले, कोटि - कोटि कण्ठों से गूँज उठे तेरी जयकार !

स्वर्ण - सीख

वह शरीर क्या, जिससे जग का कोई भी उपकार न हो ;
वृथा जन्म उस नर का, जिसके मन में दया-विचार न हो !
उस जीवन से मृत्यु भली, जिसमें यौवन का ज्वार न हो ;
पत्थर है वह हृदय, अरे, जिसमें लहराता प्यार न हो !
कहता वन्दी देश, यन्त्रणा से मुझको उद्धार करो ;
रोती दुखिया जननी, बेड़ा भवसागर से पार करो !
साहस खड़ा पुकार रहा, बाधा से नहीं डरो प्यारे ;
बनो वीर, ललकार रहे वे दिग्विजयी सैनिक सारे !
यों तो सभी मरण के राही, एक रोज मर जाते हैं !
किन्तु, धन्य वे जो मर कर भी बन्धु, नाम कर जाते हैं !

७६८

मेघ - नगर - निवासिनी !

विश्व - सुन्दरी

उसके एक चरण-रजकण पर
अमरपुरी भी ठुकराऊँ ;
पृथ्वी का साम्राज्य लुटा दूँ,
फिर भी तृप्ति नहीं पाऊँ !

एक मदिर चितवन पर उसकी
कोटि पंचशर हों मूर्च्छित ;
व्याकुल हो महेश का मानस ,
कमलासन विह्वल—विस्मित !

उसके एक श्वास पर शत–शत
मलयानिल उच्छ्वास भरे ;
पारिजात का स्वर्ग—पतन हो ,
नन्दन—वन निर्वास करे !

मृदु मुसकान खिला दे उसकी
शत-शत ऋतुपति का आनन ;
लक्ष-लक्ष सुमनों के सुख से
विहँस पड़े जग का कानन !

उसके एक शब्द पर शत-शत
कोकिल पंचम-गान करें !
किन्नर - सुर—गन्धर्व— यक्ष
उसका चरणामृत पान करें !

चिकुर-जाल पर उसके शत-शत
बादल-दल विस्मृत कर दूँ ;
एक खण्ड से उसके उर के
कोटि-कोटि सागर भर दूँ !

एक मधुर इंगित पर उसके
शत-शत रवि हों न्यौछावर ;
सुन्दरता पर उसकी वलि दूँ
कोटि-कोटि राका-हिमकर !

लोटें शत-शत अरुण धरा पर
अधरों की मृदु-लाली पर ;
शत-सहस्र पावस बस जायें
मानस की हरियाली पर !

भर दे एक स्पर्श मृदु उसका
लोक-लोक में चिर-स्पन्दन ;
सृष्टि-सृष्टि के रोम-रोम में
पुलक-तड़ित-व्याकुल कम्पन !

युग-युग का इतिहास लुप्त हो
एक हास उसका पाकर ;
कोटि-कोटि वाणी विमूक हों
उसका गुण-गौरव गाकर !

वह छवि, जहाँ तूलिका रुकती
चित्रकार की—कवि ठहरे ;
शेष कला की सीमा हो,
शिल्पी की भावुकता सिहरे !

वह प्रतिमा, जो दीप-शिखा-सी
जलती विश्व विलोचन पर ;
ऐसी रूप-सुरा , जिसको
उन्मत्त रूपसी ही पी कर !

छलक रहा मधु-पात्र करों में ,
आते विकल नयन भर-भर ;
वह सौन्दर्य , स्वयं ही जिससे
काँप रही साकी थर-थर !

तण-तृणको कर अचिर-अंकुरित,
जड़ - जंगम को चिर - चेतन ;
रज-रज के जीवन में उसने
भर-भर दिया अमित गुंजन !

मधुप-मधुप के उर में आशा ,
कण-कण के प्राणों में वास ;
कलिका-कलिका के अधरों पर
भर दी प्रणय-मिलन की प्यास !

उडु-उडु में चांचल्य, विपिन के
पुष्प-पुष्प में सुख का हास;
रेणु-रेणु में चिर-सजीवता,
नक्षत्रों में किरण--विकास!

कवियों की सुकुमार कल्पना,
योगधारियों का आयाम;
सृष्टि-मूल, उपकूल जगत के;
उर-उर में चिर-ऊर्म्मिल काम!

पल्लव-पल्लव के अन्तर में
जला मदन-केसर की आग,
तृष्णामयी किलोल कर रही
कब से दिवा-स्वप्न-सी जाग!

वह रहस्य जगती का शाश्वत,
जीवन का चिर-सत्य अनन्त;
पड़ता प्रथम रूप-पद उसका,
जहाँ विश्व की छवि का अन्त!

उसके पद-नख की कोमलता
लेकर ही उत्पल खिलते;
पता बता उसकी महिमा का
वन-वन में द्रुमदल हिलते!

इन्द्रधनुष पर पड़ी उसीकी
वासा की मोहन-छाया;
यह उसकी ही रूप-गन्ध, जो
मृग को वन-वन बौराया!

शीतल हुआ उसे छू मलयज,
निर्झरिणी की गति चंचल;
चरण-माधुरी पाकर उसकी
बनी हिमानी महिमोज्वल!

मेरु-मेरु पर मदिर उसीका
यौवन मद उभरा पड़ता;
यह अनन्त ग्रह-तोम भ्रमण कर
उसका ही वन्दन करता!

यह आकर्षण, रोक न सकती
कोई शक्ति जिसे जग में;
वह नूपुर, बजता जो निशिदिन
दिग्बालाओं के पग में!

पतित स्वर्ग से होते सुरगण,
हिलता अचल, विकल संसार;
भग्न समाधि शम्भु की होती,
वह ऐसी मादक झंकार;

जन्म-मरण की परम्परा यह,
प्रलय-सृजन का कल्पान्तर;
उसके भृकुटि-भंग पर चलता
मास, वर्ष, युग, मन्वन्तर!

निशा-दिवस उसकी कवरी के
कृष्ण-श्वेत वेणी-बन्धन;
यह विस्तृत आकाश उसीकी
गरिमा का लघुतम विकरण!

यह अनन्त उडु-पुंज, पुंज-ग्रह,
उस प्रकाश के दीप-शलभ;
छायापथ पर उसी रूपसी
की छवि-छाया कोमल-प्रभ!

क्षितिज-नीलिमा उसकी ही मृदु-
मरकत-साड़ी की सिकुड़न;
पत्र-पत्र पर उसकी पद-ध्वनि,
अणु-अणु में उसका नर्तन!

वह उमंग, चंचल कर देती
जो वन, सरित, उदधि, नग को;
वह यौवन, बेसुध कर देता
जो ध्रुव, धरा, निखिल जग को!

एक-एक भ्रू-पात बनाता
शत-शत कल्पों का अन्वय ;
वह जग के कण-कण में लक्षित ,
यह विशाल वसुधा तन्मय !
महासृष्टि जिसकी आकाँक्षा ,
प्रलय उसीका कौतूहल ;
उत्कण्ठा ही उसकी जग में
ले आती विद्रोह विकल !
संध्या के पाथोद - द्वार पर
अपनी रूप-शिखा चंचल ,
विश्व-सुन्दरी रख आती मृदु
नित्य जलाकर स्नेह-विमल !

प्रेयसी

कहता जग, मैं इन फूलों को
क्यों करता हूँ इतना प्यार ?
सदा किये धारण क्यों रहता
उर पर इन फूलों का हार ?
फूल नहीं , ये खिले तुम्हारी
छवि के मूर्तिमान इतिहास ;
वृन्त-वृन्त पर जिनके कोमल
नृत्य-शील उर का उल्लास !
छाया अन्तर में पराग बन
प्रिये , तुम्हारा ही अनुराग ;
परिमल के सौरभ में पाता
तव मुख का सुरभित निःश्वास !
अधर-माधुरी से कर देती
तुम फूलों में रस संचार ;
इसीलिये तो , इन फूलों को
करता अलि , मैं इतना प्यार !

कहता जग , में नव-पल्लव को
क्यों करता हूँ इतना प्यार ?
सदा बनाये रखता क्यों निज
हृदय—द्वार का वन्दनवार ?
पल्लव नहीं , तुम्हारे मानस—
सागर के ये विपुल प्रवाल ;
रश्मि-जाल से जिनके लगती
लाल-लाल-सी तरु की डाल !
मेरे प्रेम-पथिक को देता
पत्र-पत्र जिसका संकेत ;
प्रेयसि , वह अज्ञात तुम्हारी
इच्छाओं के बाल—मराल !
मिलता उसमें मुझे तुम्हारे
कर का मृदुल स्पर्श सुकुमार ;
इसीलिये तो , मैं करता अलि ,
नव-पल्लव को इतना प्यार !

कहता जग , मैं मलयानिल को
करता हूँ क्यों इतना प्यार ?
रहता क्यों उसके प्रति मेरा
नित कोमल-मंजुल व्यवहार ?
मलयानिल यह नहीं , तुम्हारे
प्राणों का व्याकुल सन्देश ;
देश-देश कर पार पहुँचता
जो मेरे उर में अवशेष !
प्रति आश्लेष सुवासित जिसका
तव श्रमकण से गन्ध-विभोर ;
खुल पड़ते मृदु पद्म-पाश-से
मुक्त कभी जिसमें घन-केश !
छूकर तुम्हें , तुम्हारे तनु से
वह कर आता बारम्बार ;
इसीलिये तो , मैं करता अलि ,
मलयानिल को इतना प्यार !

कहता जग, मैं उषा-सुन्दरी को
करता क्यों इतना प्यार ?
बज उठते क्यों उसे देखते
ही मेरे अन्तर के तार ?

उषा नहीं, यह मृदुल तुम्हारे
अधरों की मादक मुस्कान ;
अन्तरिक्ष में जो खिलती नित
कनक-वल्लरी-सी रुचिमान !

वह सौन्दर्य, तुम्हारे चरणों का,
जिससे आरक्त दिगन्त ;
फूट पड़े शत-शत छन्दों में
तरुओं पर विहगों के गान !

देखा उसमें प्रिये, तुम्हारे
आनन का उज्वल आकार ;
इसीलिये तो, उषा-सुन्दरी को
करता मैं इतना प्यार !

कहता जग, मैं निखिल जगत को
क्यों करता हूँ इतना प्यार ?
कण-कण को अपने ही कर से
करता क्यों वेणी-शृङ्गार ?

निखिल जगत आधार तुम्हारा ;
निखिल जगत की तुम आधार !
यह संसार तुम्हारी महिमा का
केवल असीम विस्तार !

सृष्टि-सृष्टि के हृदय-मुकुर में
प्रिये, तुम्हारा ही प्रतिविम्ब ;
तुम जग का आनन्द निकेतन,
जगत तुम्हारा स्नेहागार !

निखिल जगत से तुम करती हो
निशि-वासर लीला-अभिसार ;
इसीलिये तो, निखिल जगत को
करता हूँ मैं तना प्यार !

हर रोज

हर रोज गुरूजी आते हैं ;
हर रोज पढ़ाई होती है !
हर रोज बेंत चमकाते हैं,
हर रोज 'मालती' रोती है !

हर रोज चमकता है सूरज,
हर रोज हवा यह बहती है ;
हर रोज चहकती है चिड़िया ;
हर रोज नदी कुछ कहती है !

हर रोज काम करती दुनिया,
हर रोज रात में सोती है ;
हर रोज गुरूजी आते हैं,
हर रोज पढ़ाई होती है !

हर रोज गाड़ियाँ चलती हैं,
हर रोज डाकिया आता है ;
हर रोज शहर में हलचल है,
हर रोज आदमी खाता है !

हर रोज कहीं सोना--चाँदी,
हर रोज बरसता मोती है ;
हर रोज गुरूजी आते हैं ;
हर रोज पढ़ाई होती है !

अखबार छपा करते हर दिन,
हर रोज नई कुछ बातें हैं ;
कुछ नई खबर मिलती हर दिन,
हर रोज नई—सी रातें हैं !

हर रोज 'सुमित्रा' उठती है,
हर रोज हाथ—मुँह धोती है ;
हर रोज गुरूजी आते हैं,
हर रोज पढ़ाई होती है !

हर रोज फूल खिलते वन में,
हर रोज रमेश टहलता है;
हर रोज भूख लग जाती है;
हर रोज मुसाफिर चलता है!

हर दिन दुनिया कुछ पाती है,
हर दिन दुनिया कुछ खोती है;
हर रोज गुरूजी आते हैं,
हर रोज पढ़ाई होती है!

हर रोज लड़ाई होती है,
हर रोज सिपाही लड़ते हैं!
हर रोज भले लड़के पढ़ते,
मूरख हर रोज झगड़ते हैं!

हर रोज काटती है दुनिया,
हर दिन दुनिया कुछ बोती है;
हर रोज गुरूजी आते हैं;
हर रोज पढ़ाई होती है!

वलाका

सहसा, आज न जानें, क्यों जीवन के शून्य गगन में घिर आये ये मेघ सान्द्र-सुकुमार मनोहर ? क्षण में चन्द्रातप छाया चिर-शीतल, चिर-निर्मल, चिर-चंचल राशि-राशि वारिद-माला का नीलोत्पल-सा कोमल गन्ध-वीथिका में भावों की, स्निग्ध श्यामघन, मेदुर जीवन के सम्पूर्ण व्योम में करते चिर—क्रीड़ातुर कौतुक और कुतूहल-लीला शिशुओं के कलरव-सा ; मेरा हृदय सिहरता प्रतिपल द्रुम के नव-पल्लव-सा अगणित इच्छाओं के मंजुल-मृदु समीर से कम्पित। यह किसके मद-विकल-स्पर्श से तनु समस्त रोमांचित मेरा ? रस-वंचित मानस के शत-सहस्र-दल विह्वल अकस्मात हो उठे प्रतीक्षा में वर्षा की शीतल। खोल द्वार प्रत्येक पिपासित प्राणों का उत्कंठित लतिकाएं वन की करतीं संकेत। सकल तरु पुलकित आशा से नवीन धारा की। निरख हर्ष के जलधर नीर-भरे सुख के, आते ये लोचन मेरे भर-भर आज, न जानें किस परदेशी प्रियतम की मधु-स्मृति में ? गूँज रही जय - मंगल - ध्वनि इस तृष्णा की संसृति में। और, क्षितिज के पास, दूर, मेघों के वन में श्यामल मन्द-मन्द उड़ रहा मनोहर एक वलाका उज्वल!

मैं अपने गृह का वातायन खोल एक टक, अपलक, देख रहा हूँ पुंज-पुंज जो, यह आवेश क्षितिज-तक एक-वर्ण श्यामल जलदों का छाया लोक निराला। दिशि-दिशि में जलती यह किसके नव - यौवन की ज्वाला नील-नील, जिसके तमसोपम नील-जटा-बन्धन में बेसुध-सा संसार पड़ा है। सहकारों के वन में छलक रहा मधु मंजरियों के अधरों से। अकुलाया रोम-रोम क्यों मेरा ? देखो, कौन द्वार पर आया पथिक श्रान्त किस प्रेम-नगर से ? यह दिनांत का अंतिम प्रहर। अदृश्य तपन अम्बर में। निबिड कालिमा अप्रतिम अमा-शर्वरी-सी पृथिवी को अपने कृष्णांचल में मोहावृत कर रही। कहीं से आती इस भूतल में दिवालोक की नहीं एक भी रेखा। करते गर्जन उमड़-घुमड़ घन निखिल गगन में भीम: भयंकर प्रतिक्षण वज्र-घोष से कम्प-कंटकित कर भू का वक्षस्थल; विस्मित-चकित विलोक रहा अनिमेष दृष्टि से निश्चल शैल-प्रान्त, कान्तार, तृषित चातक-सा मेघाडम्बर महाकाश की ओर। नमित पर्वत-शिखरों पर अम्बर सफल भार से सजल-जलद के सरस। और, मृदु कलरव वह, कर रहा सुदूर व्योम में एक वलाका उज्वल!

देख आज कज्जल मेघों को स्मरण मुझे हो आता कज्जल-रंजित नयन प्रिया का। मैं विरही मदमाता

युग-युग से व्याकुल, बाँहों को फैलाता मिलनातुर
विफल शून्य में। अहो, न जानें, क्यों मेरा विकल उर
मरु-मृग की उद्भ्रान्त तृषा-सा प्रतिपल विह्वल चपल-पद।
स्वप्नमयी किस मानवती की मन्द-मन्द-स्मिति उन्मद
मूच्छित-सा कर रही मुझे? किस सुरबाला का यौवन
जगा रही मेरे प्राणों की प्रखर पिपास। उन्मन?
कौन षोडशी मेघ-पुरी से करती मुझको इंगित
बिहँस-बिहँस कर? जैसे, वह मुख हो युग-युग से परिचित!
अन्तरिक्ष के रंगमंच पर वह अज्ञात—अनामा
कौन मुग्ध नर्तन करती उन्मुक्त-कुन्तला श्यामा
विकल अनंगवती चिर-तरुणी रूप-सुरा से चंचल?
महा-सिन्धु-सा क्षुब्ध-विलोड़ित मेरा यह अन्तस्तल।
मेघ-राग में, यह किस गायक का स्वर-कंठ गरजता
मन्द्र-दीर्घ, गम्भीर-ताल पर जिसके अविरल बजता
विपुल वाद्य। यह किस युवती सौन्दर्यवती की सस्मित
बाहु-वल्लरी बढ़ आई परिरम्भ-पाश में पुलकित
बद्ध मुझे करने, जिसके घन-केश-जाल में कोमल
चमक रहा मौक्तिक-माला-सा एक वलाका उज्वल!

कहाँ आज माधविका, बोलो, कहाँ मदनिका प्यारी?
और, कहाँ सुन्दरी शोभना अवन्तिका सुकुमारी?
भटक रहा किस दुर्गम कानन में चिर-क्लान्त उदासी
प्रिया-विरह में कातर उन्मन मेरा प्रणय प्रवासी?
रूम-झूम रिम-झिम अम्बर से बरस रही जल-धारा
दुःख-दग्ध पृथिवी पर। मेरा चिर-विदग्ध दृक्-तारा
अन्धकार से समाच्छन्न, खोया विभ्रान्त विरागी।
हाय, आज मेरे अन्तर में कौन वेदना जागी
प्रलय-निशा की मृत्यु-गहन निद्रा से? आज बरसते
नभ की वारिद-माल निरख मेरे भी नयन। सिसकते
व्याकुल मेघों-से ही शत-शत वर्षों के मधु-वेदन;
किस सुहासिनी के चित्रित-नवनीत करों का कंकण
झनक रहा मेरे जीवन के अन्तःपुर में। अभिनव
लाल, मेंहदी से अनुरंजित यह किसका कर-पल्लव
मृदुल-मृदुल कर रहा स्पर्श मुझको? नूपुर-स्वन कोमल
धीरे-धीरे निकट—निकटतम होता जाता प्रति—पल
किस मराल-गामिनी प्रिया का? सुन जिसको मैं विह्वल
हो उठता मोहित भुजंग-सा बीन-नाद, चिर-चंचल।
और, गगन का वक्ष चीर कर, गृह से विमुख, असम्बल
लाँघ रहा घन-शैल-शिखर को एक वलाका उज्वल!

दौड़ रहा झंझानिल बाहर चपल-चरण मदमाता
पागल-सा जन-हीन-मार्ग में, सीकर की रस-माला
धारण कर विक्षिप्त कण्ठ में, दिग्दिगन्त-भुज विस्तृत;
और, इधर एकान्त कोष्ठ में किसी वियोगी कवि-कृत
विरह-काव्य का पाठ करुण कर रहा विकल एकाकी
दत्त-चित्त मैं। शेष रागिनी यह वर्षा-संध्या की
निर्जन गृह के कोण-कोण में बिलख रही चिर-कातर।
दीप जलाकर मैं बैठा हूँ। दृग के सम्मुख आकर
मूर्त्तिमती हो जाती अलका की वह छवि उन्मदन!
जब-जब घिरते मेघ व्योम में, तब-तब वह विधुवदना
मुझे डाल जाती विभ्रम में, सुधि की जल-धारा में;
कौन वन्दिनी रोती युग से मेघों की कारा में?
मैं पढ़ता हूँ कविता-पुस्तक। वर्ण अश्रु से गीले;
प्रति अध्याय सजल। नीद-से श्लोक-श्लोक हैं नीले!
खुलते जाते पृष्ठ पृष्ठ पर। पिघल-पिघल कर अक्षर
बहते सरस दृगों से आकुल। मैं वनवासी सुन्दर
देता हूँ सन्देश रामगिरि से आजन्म वियोगी;
कनक-वलय खोकर निरवधि अभिशाप दण्ड का भोगी!
और, वहीं शिप्रा के तट पर, जम्बू-वन से उड़, चल
तैर रहा मेघों के सर में एक वलाका उज्वल!

मुझे खींचता प्रतिपल नभ से कौन धृष्ठ अविवेकी
बाहु पकड़ कर? जैसे, वन में नर्तन करता केकी
वैसे नाच रहा मन मेरा शत-शत कामों के पर
फैला कर रंगीन। कुंज में नीपों की वंशी-स्वर

गूँज रहा है किसी कुशल वादक का मधुर। निरन्तर
इक्षु वनों में वर्षानिल निःश्वास फेंकता सर्मर !
जी करता, मैं आज विश्व की सारी बातें भूलूँ!
इच्छाओं के हाथ बढ़ा कर इन्द्रधनुष को छू लूँ!
विद्युत-वन में हँसू, खिलूँ मेघों के मुक्त नगर में;
मैं चिर-प्रेमी गीत रचूँ झंझा के विरही स्वर में!
पुराकाल के स्वप्न मधुर वे फिर सजीव हो आते;
प्रखर पवन के झोंके उद्धत-से आकर टकराते
बाहर, उस गवाक्ष से; भीतर मैं गुनगुन कर गाता
सजल अश्रु-संगीत सरस वर्षा का। यदि मैं पाता
झाँक आज उस अपरूपा का बिरह-व्यथा दृग पट पर!
उधर गगन से पृथिवी-तल पर बूँदें गिरती झड़-झड़,
और, इधर भींगी है मेरी पलकें, लोचन छल-छल;
मेरा मानस एक नया पावस बन गया विचंचल;
जीमूतों के अन्तराल से प्रियदर्शी चिर-निर्मल,
तीर-सदृश निकला जाता है एक वलाका उज्वल!

एक वलाका, कहाँ चला यह तरुण वलाका मेरा,
दूर, महा-नभ में सुदूर-तम? लेगा कहाँ बसेरा?
किसने देखी मेरे अन्तर की असीम व्याकुलता?
किसे खली प्राणों की नीरस आजीवन नीरवता?
प्रतिपल दूर दृष्टि से, प्रतिक्षण होता जाता ओझल!
कहाँ रुकेगा जाकर यह परिश्रान्त, भार से बोझल?
कब-तक चलता अथक रहेगा तीव्र वेग से अविरल
यों, अनन्त-पथ पर? जानें, क्या पक्ष न होंगे दुर्बल?
यह नवीन यौवन के आगम से प्रदीप्त, उत्तेजक
छोर चला छूने किस चपला के अंचलका मादक?
पहुँचेगा नक्षत्र-लोक में, किस ग्रह से टकराता?
किस कुमारिका को मेरा सकरुण सन्देश सुनाता?
लौट सकेगा क्या पृथिवी पर कभी व्योम से वापिस?
माप रहा आकाश, एक गति केवल-मात्र अहर्निश
चरणों में, फिर कर न देखता भू की ओर प्रगतिमय
बढता ही जाता असीम-पथ यात्री यह चिर-निर्भय!
सीमा नहीं, न आश्रय-चिन्ता; फिर भी नहीं निराशा;
लक्ष्य अगम, अज्ञात देश-पथ; केवल एक पिपासा!
निरुद्देश्य, निस्संग, निरालस; जैसे, अग्नि-शलाका,
चीर चला निर्द्वन्द्व व्योम को मेरा तरुण वलाका!

शेफालिका

मधुकरी, इस विश्व-वन की मैं सरल शेफालिका हूँ;
छवि--सुरभि से निज स्वयं पागल नवल मधु-बालिका हूँ!

प्रात ही उठ नित्य बिहगावलि विरुद मेरा सुनाता;
दूर दक्षिण—देश से आ मृदु—पवन मुझको जगाता!
चकित-सस्मित, चौंक ज्यों-ही नयन खुलते अलस मेरे;
बाँध नव-कर-पाश से शारद-तरणि मुझको लजाता!
गिर पड़ी आकाश से जो, विकच तारक—मालिका हूँ;
मधुकरी, इस विश्व—वन की मैं सरल शेफालिका हूँ!

अप्सरी नन्दन—विपिन की, यक्षिणी मैं चन्द्र-उज्वल;
गन्ध—व्याकुल कर रही हूँ हास से निज नृत्य—चंचल!
हाय किस अरविन्द-अंगुलि-स्पर्श से सुध-बुध सभी खो,
भूमि पर असहाय झड़—झड़ झड़ पड़ूँ मैं मृदुल-कोमल!
जगत—मानस—मानसर में चपल श्वेत मरालिका हूँ;
मधुकरी, इस विश्व-वन की मैं सरल शेफालिका हूँ!

मृदुल दूर्वादल—शयन पर मैं शिथिल-सुकुमार-अचपल;
रूपसी निशि-नर्तकी का छिन्न मुक्ताहार निर्मल!
रो गई जिस कुंज में वसुधा बहा कर अश्रु-सरिता;
मैं उसी सरि में प्रवाहित रजत-नौका हास्य—कलकल!
प्रकृति-अंचल में सुरभि-उन्मादना की तालिका हूँ;
मधुकरी इस विश्व—वन की मैं सरल शेफालिका हूँ!

जाग निशि-भर शुक्ल-वसना सुन्दरी अभिसारिका मैं ;
किस निठुर की प्रिय-प्रतीक्षा में प्रणय-परिचारिका मैं !
आगमन से पूर्व ही हा ! चटुल अलि के वृन्त-च्युत हो ,
टूट पड़ती उडु-मुकुल-सी चिर-अनन्त-कुमारिका मैं !
पवन—रथ पर चपल वन-वन में सुरभि—संचालिका हूँ ;
मधुकरी, इस विश्व—वन की मैं सरल शेफालिका हूँ !

श्वास से मेरे सिहरता विमन—मन प्रातः समीरण ;
अरुण-सालस, नयन-पाटल-पटल, जागर-खिन्न, उन्मन !
मदु-मृदुल पत्रांक में अति श्रान्त वासक—सज्जिका-सी ;
प्रिय—मिलन के गीत गाऊँ, वेदना पुनरपि चिरन्तन !
स्निग्ध-अंचल--दान दे लघु--वय--जगत-शिशु--पालिका हूँ ;
मधुकरी, इस विश्व—वन की मैं सरल शेफालिका हूँ !

दुनिया

हर रात हुआ करती काली ,
सब दिन उजला ही होता है ;
दिन में करते हैं काम सभी ,
आदमी रात में सोता है !

पेड़ों पर रहते हैं पंछी,
नदियाँ सागर से मिलती हैं ;
खिलते हैं फूल बगीचे में ,
हर रोज पत्तियाँ हिलती हैं !

मरघट में गीदड़ चिल्लाते ;
गाँवों में कुत्ते भूक रहे !
जंङ्गल में शेर गरजते हैं ,
तरु पर कोकिल-गण कूक रहे !

डालियाँ प्रेम से झुक जातीं ,
जिस ओर हवा बह जाती है ;
बढ़ जाते राही दूर कहीं ,
यह राह पड़ी रह जाती है !

पानी में चलती है नइया ;
चिड़िया उड़ती है अम्बर में !
हमलोग आदमी हैं , रहते
परिवार - सहित अपने घर में

तोता पिँजड़े में पलता है ,
कल-कल कर बहता सोता है ;
हैं चतुर हँसाते , हँसते भी ;
मूरख कोने में रोता है !

पानी में तैर रही मछली ;
ऊपर हैं बन्दर उछल रहे !
यह हरी घास, वे भरे खेत ;
धरती से अंकुर निकल रहे !

वर्षा में होता है पानी ;
चलता वसन्त में मलयानिल !
आँगन में बहनें हँसती हैं ,
भाई दरवाजे पर खिल-खिल !

होली है आज , दिवाली कल ;
तो , कभी मुहर्रम भी आता !
हमको रमेश अच्छा लगता ,
हमको सलीम भी मन भाता !

पर्वत हैं कहीं , कहीं घाटी ;
सागर है , रेगिस्तान कहीं !
यह देश हमारा भारत है ,
किसको इसका अभिमान नहीं ?

जीवन-कथा

अरे, पूछते हो क्या भाई !
मेरी करुण कहानी ?
बीते वर्षों की धुँधली-सी
आती याद पुरानी !
दिल क्या, जब दिलदार नहीं ;
यह बस्ती ही वीरानी !
जीवन है बस, अरमानों की
जलती एक निशानी !
सूना उर का कोना-कोना ;
सूनी हिय—अमराई !
जाग्रत कण-कण में दुख-क्रन्दन ;
घोर उदासी छाई !
वन उजाड़, झंखाड़-झाड़ ; उड़
गई विपिन की रानी !
एक दर्द है—एक टीस है ;
एक कसक की वाणी !
तुम हँस देते सुन कर मेरी
बातें पागलपन की ;
किन्तु, यही तो एक साध है
मेरे आहत मन की !
सनकी—हाँ, कुछ तो जरूर ही
लगता हूँ मैं सनकी !
इसीलिए तो राख उड़ाये
चलता भुवन-भुवन की !
खोज रहा आनन्द सिसकियों में
मैं व्याकुल होकर !
उलझ रहे हैं प्राण निराशाओं
में सब कुछ खोकर !
धधक रही उर स्नेह-कुंज में
दावानल की ज्वाला ;
मतवाला—मदहोश बना मैं
पी विषाद का प्याला !
नयनों में गंगा-यमुना की
छहरी मुक्ताहारा !
अभ्यन्तर में सरस्वती की
अन्तः— सलिला धारा !
लहराती विस्तीर्ण बालुका—
स्थल में तरल त्रिवेणी !
डूब रही मेरी दुनिया;—
साँसें ही बनीं निसेनी !
आशा पर पानी, कराहते
सुख के दिन, ममता भागी !
अभिलाषाओं के श्मशान में
अलख जगाता वैरागी !
मेरा सारा जीवन गाथा
केवल बलिदानों की !
यज्ञ—कुण्ड में बार-बार
आहुतियाँ दीं प्राणों की !
इस गम्भीर-वदन-मण्डल पर
दुख की छाया ऐसे—
अतल सलिलनिधि के जल में
वडवाग्नि खेलती जैसे !
होती मुसकानों के पीछे
सर्वनाश की क्रीड़ा !
मेरे हास्य—किलोलों में है
छिपी वेदना-पीड़ा !
हँस देता मैं कभी तुम्हारी
खातिर कर नत-चितवन ;
सुखी समझ लेते हो इससे
ही मुझको भी तत्क्षण !

लेकिन भूल तुम्हारी है यह,
यही विकट नादानी;
तुम भोले, क्या जानो मेरी
हँसी-खुशी के मानी ?

हुई प्रणय-परिणय में मेरे
महा-प्रलय की लीला!
बस, पतझड़ के बाद कभी
आया न बसन्त रँगीला!

द्वन्द्व और संघर्षण भीषण;
भावों का रण-ताण्डव!
मेरे रोम-रोम में जलते
अहरह शत-शत खाण्डव!

उतर चला है नशा; किन्तु, है
अभी खुमारी बाकी!
रिक्त पात्र, मदशेष; डोलता
दीवाना—सा साकी!

यौवन-वन में आग लगी है;
स्तब्ध विश्व का नाता!
एकाकी क्या करे, यहाँ पर
मेरा भाग्य-विधाता ?

× × ×

फिर भी मैं खुश हूँ कि मिला
कोई तो मेरा संगी!
प्रतिपल, परिवर्तित, आन्दोलित,
सरल-गरल, बहुरंगी!

पाया इस अद्भुत मिश्रण का
मैंने स्वाद निराला!
झाँक रहा बारी-बारी से
अँधियाला - उजियाला!

रोता हूँ, फिर भी मत समझो
अश्रुबिन्दु को सस्ती!
पस्ती में भी एक अजब-सी
छाई रहती मस्ती!

जग से दूर बसाई मैंने
अपनी छोटी बस्ती!
जहाँ सदैव छलकती रहती
मेरी अपनी हस्ती!

जलता हूँ बेशक दीपक—सा
तिल-तिल मैं बेचारा;
पर, क्या यह कम कि प्रकाशित
कर देता जग सारा!

अनाहूत

अभी-अभी तो तोड़ रहा था
मैं गुलाब की कलियाँ;
उलझी पड़तीं घुँघराले
बालों से भ्रमरावलियाँ!

लिपट क्षितिज से विदा माँगती
थी संध्या की लाली!
साँसों से समीर की डुलती
तरु की डाली-डाली!

सहसा कैसे नत-पलकों पर
छाया एक नशा-सा!
मैं बन गया पहेली, दुनिया
मेरे लिये तमाशा!

उस दिन, ठीक इसी वेला में
आई थी तू बाले!
मुख पर वासित अंचल से कुछ
अवगुण्ठन-सा डाले!

मन्द-मधुर नूपुर-ध्वनि सुन कर
ज्यों-ही ऊपर देखा;
त्यों-ही बस, खिँच गई दृगों में
तेरी मृदु छवि-रेखा!

पाया था जब-तक न आँक भी
भली-भाँति निज मन में;
प्यारी, चौखट पर से ही झट
लौट गई तू क्षण में!

वह दिन, उसी वक्त से ही आ
चुपके--चुपके रानी,
एक दर्द पैदा कर जाती
तेरी स्मृति दीवानी!
खोकर अपने को पीड़ा में,
दिल की बेकलियों में;
तुझे ढूँढता फिरता हूँ मैं
गलियों में, गलियों में!

खाकर जिसकी चोट किसीने
माँग न पाया पानी,
शब्दों में बाँधू कैसे
उसकी भाषा अरुझानी?

तुझे पता क्या, की तेरे हित
कितनी जप-तप-पूजा!
झाँक सका मानस-मन्दिर में
कोई कभी न दूजा!
आया जान द्वार पर धीरे—
धीरे साँझ—सकारे,
कितनी बार किसी अज्ञाता के
मृदु-चरण पखारे!

किन्तु, खुलीं जब आँखें, मैंने
उसे नहीं पहचाना;
पाकर भी खो दिया तुझे जब,
कैसा तेरा पाना?

कौन निगोड़ी आँखों से
उलझे, सुलझे, समझाये?
किसके अधरों में अमृत, आज
जो इनकी प्यास बुझाये?
नाच उठूँ जिसकी चितवन पर,
ऐसा कौन सलोना?
मौन-मौन; नीरव है मेरे
उर का कोना-कोना!

आ इस मैफिल में भी क्षण-भर
आली, नृत्य किये जा;
हा—हा! मेरे हाथों से भी
तो दो घूँट पिये जा!

खैर; आज तो खुलवा ही मैं
लूँगा बातें सारी!
अच्छी नहीं चाल यह लगती
तेरी अजब दुधारी!
जला करे, परवाह नहीं; पर,
फोडूँगा ही छाले!
तू भी क्या समझे कि पड़ी थी
कभी किसीके पाले!

पूछ न मुझसे यों-ही इस
आने जाने के माने!
आना था—बस, इसीलिये
आ पहुँचा किसी बहाने!

मेरी झोली में कुछ तस्वीरें
हैं प्रिय-बचपन की ;
दाग कहीं पर जायँ न इनपर
तेरे नटखटपन की !
लिये उन्हें फिरता बेचैनी में
इसलिये छिपाये ,
दूर-दूर ही चलता , तेरी
छू न छाँह भी जाये !

अचल हो गईं कण्ठहार पर
तारों की परिछाँही ,
पड़ी गले में ज्यों-ही तेरी
नागिन-सी गलबाँही !

ले आया हूँ रोम-रोम में
जनम-जनम की तृष्णा !
जैसे शून्य व्योम में फैली
जलधर-माला कृष्णा !
एक बूँद ही सही , मिटे
चातक की विकल पिपासा ;
पूछ न अब तिरछी नजरों से ,
कै तोला , कै माशा ?

घट भर दे सखि,चला जाय बस;
पीकर मस्त अकेला !
गुन गावेगा जीवन-भर तक
तेरा यह अलबेला !

दिलदार

जिस जीवन में गया , वहीं पर
मेरा वह दिलदार मिला !

तरु-पत्रों की मर्मर-ध्वनि में
कोमल पद - संचार मिला !
जिस प्रदेश में गया , निराला
एक नया संसार मिला ;
प्यार मिला , अभिसार मिला ;
प्रिय , प्राणों का आधार मिला !

कुंजों-कुंजों में जीवन-धन का
स्वरूप साकार मिला ;
जिस जीवन में गया , वहीं
प्यारा मेरा दिलदार मिला !

जीवन-हीन , अनादृत , निन्दित ,
दीन विजन-प्रान्तर उजड़ा ;
मेरे लिये स्वर्ग से बढ़ कर
भी है सुन्दर हरा—भरा !
प्रिय की पावन स्मृतियों में क्या
राजमहल , क्या शून्य श्मशान ?
नरक और अमरेन्द्रपुरी भी
मेरे हित हैं एक समान !

मेरे ही संकेतों से जग—
तंत्री का मधुतार हिला ;
जिस जीवन में गया , वहीं पर
प्यारा वह दिलदार मिला !

मेरे ही प्रिय के गीतों को
गाती रहती निर्झरिणी ;
उसके ही कल—आह्लादों से
छल-छल करती पुष्करिणी !
देखो जिधर , उधर ही फैली
उसकी विमोहिनी माया ;
पुलक प्रकट करती कुसुमों से
वासन्ती की मधु—छाया !

ज्योतित उसकी रूप—राशि से
नग-नग , मग-मग, शिला-शिला ;
जिस जीवन में गया , वहीं
प्यारा मेरा दिलदार मिला !

सागर-जल में निरखी उसके
ही आनन की परिछाईं !
मदिरा के फेनों में उसकी
ही मादकता की झाँईं !
इस स्वाती के चाहक चातक को
न पड़े जल के लाले !
साकी एक——हजारों, लाखों
खड़े यहाँ पीनेवाले !
एक बूँद भी लिया न जो
मदिरा का पारावार पिला ;
जिस जीवन में गया, वहीं
प्यारा मेरा दिलदार मिला !

मेरी एक अनोखी दुनिया ;
सबसे बढ़ चोखी मस्ती !
चलती है अनन्त आशाओं को
लेकर मेरी हस्ती !
भरे हुए अरमान लबालब ;
जानी ना हिम्मतपस्ती !
मेरे सम्पर्कों में आकर
वीरानी बनती बस्ती !
मैं वसन्त ; सौरभ से मेरे
कंटक का भी हृदय खिला !
जिस जीवन में गया, वहीं पर
प्यारा वह दिलदार मिला !

मुझे कहो मत, काल बली है ;
बच जाऊँ डँसते—डँसते !
जग के पाप—पंक से नकलूँ
पंकज—सा फँसते—फँसते !
कितने हँसते आये जग में,
जायेंगे रोते —— रोते ;
मैं रोता ही आया, लेकिन
जाऊँगा हँसते——हँसते !
विजय मिली हारों में ; फूलों-सा
ही नव भव-भार झिला !
जिस जीवन में गया, वहीं
प्यारा मेरा दिलदार मिला !

उसे छोड़ समझी कब किसने
मेरे प्राणों की भाषा ?
रोम-रोम में व्याप्त उसीकी
इच्छा, आशा, जिज्ञासा !
अश्रु--करों से लिख जाता नित
सरसिज एक कहानी-सा ;—
पानी में रह कर भी देखो,
कैसे रहा न पानी—सा !
दया—दृष्टि ही देती उसकी
सर को सरसासार दिला ;
जिस जीवन में गया, वहीं
प्यारा मेरा दिलदार मिला !

हाहाकार रुका ; उद्वेगों का
अशेष चीत्कार नहीं !
उठती करुण पुकार ; हृदय में
ईर्ष्यानल का ज्वार नहीं !
राग—विरागों का सन्देशा
लेकर आती नहीं बयार ;
प्रेम नहीं , प्रतिकार नहीं ;
इस पार नहीं——उस पार नहीं !

मरुथल में स्नेह-स्रोत ; निर्जन में
भी मन्दार खिला !
जिस जीवन में गया, वहीं पर
मेरा वह दिलदार मिला !

विजन—विजन में झाँकी मैंने
मनमोहन की ही झाँकी !
जल-थल-विपिन और नभ में छवि
अंकित उसकी ही बाँकी !

सौरभ का सुमेरु—नग झुकता
उसके स्वर्णाभरणों पर !
सौ—सौ फूल लोट--से पड़ते
प्रति दिन पावन चरणों पर !

उसकी ही आभा से भासित
रवि, शशि, ग्रह, नक्षत्र, इला ;
जिस जीवन में गया, वहीं पर
प्यारा वह दिलदार मिला !

मरुथल में भी स्नेह—स्रोत ;
निर्जन में भी मन्दार खिला !
विजय मिली हारों में, फूलों–सा
ही नव भव—भार मिला !
मैं वसन्त ; सौरभ से मेरे
कंटक का भी हृदय छिला !
संकेतों से सरस. विश्व—
तंत्री का कोमल तार हिला !

मृतकों को भी सकता जिसका
केवल एक कटाक्ष जिला ;
जिस जीवन में गया, वहीं पर
प्यारा वह दिलदार मिला !

विहार का भूकम्प

उसदिन फट पड़ा अचानक ही
कैसा रे यह संकट कराल !
सारे भारत में आ पहुँचा
मानो कल्पान्तक प्रलय-काल !
बिजली बन तड़प उठा पल में
ठोकर खा फणि-सा भूमिकम्प ;
जल गया स्फुलिङ्गों में जिसके
विश्रुत विहार पावन विशाल !

वह था दारुण दैवी प्रकोप ?
या शेष-नाग का अङ्ग-चाल ?
पर, धूलि-धूसरित हुआ हाय,
मेरे स्वदेश का दिव्य भाल !
तुम करुण पड़ोसी देख जरा
इसकी भी करुणाजनक दशा ;
मिट गये और मिटते जाते
अपनी जननी के अमित लाल !

भाई बहनों को ढूँढ़ रहे,
बच्चों के हित मा बेतहाश ;
पत्नियाँ याद में पतियों की
हैं फूट-फूट रोती उदास !
मर गये और कितने घायल ;
कुछ मरघट में, कुछ खँड़हर में !
ईंटों के नीचे दबी पड़ी
अब भी कितनी सड़ रही लाश !

बस, क्षण-भर के ही लिये किया
तो अग्नि-मुखी ने दृगोन्मेष ;
हो गया युगों का संचित धन
उस ज्वाला में भस्मावशेष !

पृथ्वीतल—शायी नगर हुए ;
हो गई विपुल बस्ती उजाड़ !
ऊपर-से टूट पड़े उल्का—
से अविरल नाना विपद् क्लेश !

इस माघ मास में ठिठुर रहे
लाखों ही नर घर-द्वार-हीन ;
उफ ! भूख-प्यास से तड़प रहे
कंगाल अनेकों दीन-क्षीण !
तुम देखो ;—इसको देख जरा
जी में निज करना कुछ खयाल !
रे अछूत तुम्हारे एक प्रान्त
हो रहा मृत्यु-मुख में विलीन !

पीने का घर में पात्र नहीं ;
रहने का कोई ऐन नहीं !
नैनों में नींद नहीं रैनों ;
कहने को कुछ भी बैन नहीं !
रह-रह कर लहर उठा करती
रे कभी इधर, रे कभी उधर ;
वीरान महल !—इन फूसों की
झोपड़ियों में भी चैन नहीं !

वह पावन मिथिला स्वर्ण-भूमि
शोभा विदेह की पुण्य-मयी ;
निर्मोह-नियति के पैरों से
अति निष्ठुरता से दली गई !
ओ धर्मवीर, तुम धो लेना
बहती गंगा में आज हाथ ;
रे उत्सुक हो लखतीं निरीह
तुमको ये आँखें लाख कई !

छिन्नपत्र

प्रिय,

प्रिय, कभी तुम्हारी स्मृति में फूटी जो उर की वाणी;
लो—आई आज जगाने यह जग-प्रतिमा पाषाणी !
प्राणोपम, समझ सकोगे तुम भली-भाँति यह भाषा;
पहचान तुम्हीं सकते हो मेरी उन्मत्त-पिपासा !
तुम बने रहे निशि-वासर मेरे मानस के दर्पण;
इसलिये, तुम्हें ही करता सादर यह पत्र समर्पण !

मैं

मैं लिखने ही जाता था तुमको कुछ उसदिन प्रियवर;
पहुँचा मधु-पत्र तुम्हारा कितनी ही स्मृतियाँ लेकर !
उन कतिपय कोमल शब्दों में मादकता थी कितनी;
प्राणों में बन्धु, तुम्हारे देखी थी मैंने जितनी !
वह कौन मोहिनी डाली इस मन पर ओ जादूगर !
सचमुच भर दिया जरा-सी गागर में तुमने सागर !
करुणा अनन्त लहराती , तट मेरा बना हृदय था;
अन्तर के नील-निलय में भावों का तारक-चय था !
पहले छवि मंजु तुम्हारी नयनों में रुमझुम नाची;
पीछे — प्रेमातुर होकर वह पाती मैंने बाँची !
उतराया हिय रस-सर में, होठों पे छाई लाली;
फिर भी न स्वर्ण-मदिरा की होती थी प्याली खाली !
मस्ती से झूम रहे थे मेरे तन-मन इठलाते;
कुछ था मिठास ही ऐसा जो पी-पी कर न अघाते !
पूछोगे भँवें नचा कर- सम्भव होता यह कैसे ?
छू आँखों से आँखों को मैं कह दूँगा-प्रिय, ऐसे !

वह

वह प्रणय मौन था मेरा जिसने यों तुमको खींचा;
बहती थी रस की नदिया, भर-भर कर प्यार उलीचा !
सोचा था, बुरा फँसा मैं; यह चाल अजब बेढंगी !
होता है कौन यहां पर रोने में किसका संगी ?

अब पर, सन्तोष यही है, हम दोनों ही हैं आहत;
मत कहो बिदाई आई, आ जाओ भाई, स्वागत!
तुम जलते हो न अकेले; याँ भी वह आग लगी है!
मेरे इन प्राणों में भी दारुण—सी टीस जगी है!
निकलेगा तो फिर कैसे आहों का आज दिवाला?
पाले में आया मेरे जब तुम—सा भोला—भाला!
मेरी क्या? मारो गोली; तुम अपनी जरा खबर लो!
जीना तो भई, हँई है— जीने के पहले मर लो!
यह बटमारों की बस्ती; हाँ, आहिस्ते से बोलो!
कुछ सोंच-समझ कर अपनी आफत की पुड़िया खोलो!
है दूर अभी वह मंजिल; तोड़ो सराय से डेरा!
बस, चला कारवाँ पथ पर; देखो, हो गया सबेरा!

कुछ

कुछ फिक्र करो मत मेरी; सूनापन मुझे न खलता!
यह पथ है देखा-भाला; जानें, किस युग से चलता!
मैं तो हूँ उनमें से जो, करते घर फूँक तमाशा!
फिर व्यर्थ करे क्यों कोई बसने की मुझसे आशा?
वह कम्पन ही था ऐसा, जिसने यह जाल बिछाया;
वह हँसी बसी यों, जिसपर मैंने सर्वस्व गँवाया!
शीतल समीरका झिलना; कोमल द्रुमदलका हिलना!
ऋतुपतिके केशर-शरसे किसलय के उरका छिलना!
बस, शेष कथा हैं मेरे इस जीवन की धूमिल-से;
प्रिय, सिसक रहे नित जिसमें दुर्दिन ये वर्षानिल-से!
यह अकथ कहानी ऐसी, जो कभी न इति होने की!
रह-रह कर इच्छा होती जी भर, प्यारे रोने की!
वेदना-विरह-मूर्च्छा ही मेरा इतिहास बनाती;
घन-माला पावस की ही मेरा दृग-द्वार सजाती!
आँगन में पतझड़ मेरे आकर जल—धार बहाती!
कोकिला कूक कर सूने तरु-कानन में खो जाती!

तुम

तुम इच्छुक होगे कब से सुनने को मेरा परिचय;
पर, समय नहीं, जो लाऊँ अधरों पर आकुल विस्मय!
बस, एक वाक्य में समझो विद्रोही देश—निकाला;
दस-बीस-सैकड़ों में ना– लाखों में एक निराला!
मैंने भी देखा सूखे पतझड़ का कभी जमाना;
मेरे चल-मन को तुमने क्या खूब वाह, पहिचाना!
क्यों हो न जबकि हम दोनों- के–दोनों ही दीवाने;
एक ही दीप पर जल कर मरने वाले परवाने!
पर, यह स्पर्द्धा का युग है; हाँ, राहजनों का डेरा!
हो जाये ना बातों-ही-बातों में कहीं बखेड़ा!
इसलिये कहे देता हूं, नाजुक सनेह की डोरी;
आकर काबू में पहले ही जाओ मत बरजोरी!
गूँजा कैलाश-शिखर पर फिर से घन-घोष निराला;
उड़ चली मार्ग से नभ के मंजुल मराल की माला!
कैसी वह यक्ष-कुमारी? किस वन में अलका-बाला?
जल रहा शाप-ज्वाला में मैं चिर-विरही मतवाला!

सुन

सुन, मेरे मानस-मधु में स्मृति किसकी सहसा छाई?
किसकी मोहन-छवि नयनों में उतर तरी-सी आई?
जीवन-सागर के तट पर तम का घन-जाल बिछाये
दुख-दग्ध निराशाओं के क्यों श्याम-जलद घिर आये?
क्यों गगन चूमतीं लहरें? करती गर्जन जल-धारा!
टकराता शैल-शिला से पीड़ा का अगम किनारा!
यह हृदय बना ही ऐसा, सहता आघात कुसुम-सा;
खिलता कंटक-वन जिसपर मधु-कुंकुम-सा, विद्रुम-सा!
जानें क्या हँसनेवाले नयनों की अश्रु-मधुरिमा?
आहों में कितना सुख है; ममता की मीठी महिमा!
इस मोती-वन में मादक लुटता है कितना वैभव!
इन प्यालों में पलकों के ढलता नित कितना आसव?
उन्माद-प्रलय की झंझा, ये झोंके हैं तूफानी!
पत्थर का चीर कलेजा बहता सोते-सा पानी!
इस पानी में उतराई कागज की नाव पुरानी!
जिसकी न आज तक मैंने दुर्गम गहराई जानी!

उस

उस शरत-पूर्णिमा में जब रजनीगन्धा मुसकाई;
सौरभ के सौ-सौ वृन्तों पर आई वह अलसाई।
चाँदनी चकित हो जाती; उठती शेफालि सिहर-सी।
बजती तरु-वेणु किसीके ज्योंही कोमल-पद-स्वर-सी।
छा जाती एक विकलता कलिका के बाला-मन में;
होता ज्यों वन्दन-गायन ऋतुपति के मर्मर-वन में।
स्वागत-हित कब से बैठा था मिलन-प्रदीप जला कर;
वह लौट गई, क्या जानें, क्यों मुझको लख, मुसकाकर।
निश्चल-निस्पन्द खड़ा मैं; ड्योढ़ी पर जीवन-धन की।
वलि जाऊँ उस चितवन पर; जय हो उस भोलेपन की।
तब से अवसित युग-लोचन, उसकी स्मृति छुईमुई-सी
अपनी ही छाया-छवि में जाती तल्लीन हुई-सी।
करता मृदु-इंगित जिसका वन में समीर का कम्पन;
झुकता चरणों पर जिसके वसुधा का सुख-दुख-क्रन्दन।
बस, वही— उसीने केवल मेरा अन्तर-पट देखा;
यों रखता कौन किसीके आँसू-रोदन की लेखा?

यह

यह कौन अरे, जो मेरे गालों को छू-छू देता।
ओष्ठाधर-शुक्तिपुटों से रस चुम्बन का ले लेता?
देता जो उकसा चंचल लौ स्मृतियों की दीवानी;
गूँजी, प्रिय, शिरा-शिरा में यह किसकी करुणा-वाणी।
उच्छ्वास और आँसू पी बन गई अमर मधु-पीड़ा;
मेरे प्राणों की प्यासी वेदना सदा-गम्भीरा।
स्वप्नों की मोह-पुरी में ये राग कौन—से बजते?
किसका जय-यात्रा-उत्सव? रण-कर्कश कम्बु गरजते।
चातक की चकित चितौनी; आलाप पिकी का तीखा,
प्राणों में मेरे विह्वल चुभ जाता विशिख-सरीखा।
श्यामा का काला अंचल ढँक लेता पुतली मेरी;
आकाश काँपता भय से; सजती ज्यों घन की भेरी।
घड़ियाँ वियोग की मेरी, मुझको तुम भूल न जाना;
आना आंगन में स्मृति के; जीवन के पथ पर आना।
अन्तर में बनी रहे यह अक्षय यौवन को पाकर;
प्रिय, टीस निराली मेरी; दुख-जलन-वेलि सरसा कर।

अब

अब तक तो समझ रहा था मेरे सुकुमार भले थे;
जीवन में आग लगा कर पर, वे तो भाग चले थे।
सच कहो, कहाँ मैं खोजूँ? उस सुन्दरतम को पाऊँ।
उर की बेचैन कसक को किस ज्वाला से धो पाऊँ।
कितने छायापथ मैंने तारों को देख बिताये;
प्राची के भाल-गगन पर ऊषा के तिलक लगाये।
कितनी चाँदी की प्याली पी-पी कर कर दी रीती;
फिर भी न मिली जीवन में वह मादकता मनचीती।
अब भी ऋतु-वर्ष-महीना अंगुलियाँ गिनती रहतीं;
बुलबुलें करील-विपिन में काँटों की पीड़ा सहतीं।
रजनी भर बैठ किसीके मैं सिसका हूँ सिरहाने;
किसको क्या गरज पड़ी है? कोई क्यों इसको जाने?
नरगिस की खिली पँखुड़ियां छूते मेरे मुरझाई;
अपराध बड़ा था भीषण, अस्पृश्य बनी परछाईं।
बेजाने, कैसे कह दूँ— दुर्लभ है उनका पाना।
दुख को न किसीने मेरे पहिचाना, जाना, माना।

सब

सब समझ रहा हूँ, फिर भी मैं परबस हूँ— लाचारी;
समझो जी में यह दुनिया है ऐसी ही हत्यारी।
जिसमें दुख ही चिर-जीवन; सुख, सत्य-स्नेह है सपना।
बन जाता बेगाना वह, जो आज बना प्रिय, अपना।
मत पूछो, इस मधुवन की तुम मायामय संस्मृतियाँ;
भय है, न कहीं सिहरा दें तुमको ये काली कृतियाँ।
यह तो गूँगे का गुड़ है; अनुभव करने की बातें।
यह वही जानते जिनकी बीतीं कुछ रोती रातें।
मोहन की मोह-निशा में, नभ-गंगा की धारा में;
मैंने प्रिय, तुमको ढूँढा मधु-राका में, कारा में।

दोपहरी में आलस की, निर्झरिणी में, पत्रों में ;
भरमाया तुमने मुझको अम्बर में, नक्षत्रों में !
कितने आये आँखों में, पुतली के वशीकरण में ;
कितने ही पान्थ-प्रवासी ठहरे विश्राम-भवन में !
कितने सुकुमार खिँचे कच- पाशों के आकर्षण से ;
लेकिन, न कभी सुख पाया प्रिय-दर्शन के स्पर्शन से !

इन

इन मेघ-मन्द्र प्रहरों को अपने मधुमाते क्षण से,
देखो तो देव, मिलाकर इस मन को अपने मन से !
कहता हूँ, सिहर उठोगे; कम्पित हो जायेगा तन !
तड़पोगे रेणु-कणों पर तुम तोड़ निखिल-जग-बन्धन !
रोकोगे, रुक न सकेगी गति मेरी धूमध्वज की;
वासुकि-विषदन्त हिलाऊँ, मैं तोड़ूँ मति दिग्गज की !
दौड़ूँगा झंझा-रथ पर चपला का दीप जला कर ;
जग में संहार मचा दूँ माधव का चक्र चलाकर !
मैं लाऊँगा कण-कण में उद्धत-अपार भूकम्पन !
भेदूँ पाताल-गगन को; कर दूँ सागर-जल-मंथन !
तैरूँगा रत्नाकर में; पर्वत को पार करूँगा !
अपने हा-हा-क्रन्दन से प्रतिध्वनित विजन कर दूँगा !
नाचूँगा ज्वाला में मैं; अभिसार करूँ चिर-सुख में;
पैठूँ अमरत्व-वरण कर मैं मत्त मृत्यु के मुख में !
कर पान अमृत का सागर, उगलूँगा उग्र हलाहल !
ताण्डव का रूप दिखा दूँ; मैं आज बनूँ कालानल !

जिस

जिस प्रेम-सूत्र में तुमने अपना संसार पिरोया ;
जिन तुतली-सी बातों में पाया निज वैभव खोया !
सच जानो, वही बनी है मेरे हित आज पहेली !
अच्छी तो यार, बड़ी ही यह आँख-मिचौनी खेली !
मुझमें आकर्षण कब ? यह क्या कहते हो जीवन-धन ?
मैं तो हूँ उनके चरणों का ठुकराया-सा रजकण !
हाँ, एक तुच्छ कण जिसपर दुनिया है सारी रीझी !
उसपर ही हाय, तुम्हारी भावुकता क्योंकर रीझी !
क्या कहूँ, याद जब आती रस-भरी कभी वे बतियाँ !
मैं तुरत सोचने लगता कालिन्दी-तट की रतियाँ !
फिर आगे क्या तब होगा ? यों जबकि अभी बेहाली;
मथ देंगी अन्तर-तर को भीषण लहरें मतवाली !
मत पूछो, क्या क्या देखे अपने नन्हें जीवन में !
क्या-क्या गुल खिले अभी तक मेरे वीरान चमन में !
नित-अभिनव-आशा-कोकिल कल-कूजित वह अमराई;
शत-शत वृश्चिक-दंशन की पीड़ाएं बन कर आई !

उफ,

उफ, वे भी दिन थे कैसे ? पुलकित थी डाली-डाली !
ले परियों के सपनों को आती थी निँदिया-वाली !
बिछता जब शतदल-दल पर तुहिनों का तरल बिछौना !
मेरा कवि हाथ बढ़ाता लेने को चन्द-खिलौना !
वह आज जवनिका बदली; यह दृश्य नया ही आया !
क्यों, हाय न करुणामय को मेरा भोलापन भाया ?
मैंने जलना सीखा है; जलना-जलना ही केवल !
मैं सर्वनाश-पथ यात्री; कंथा ही मेरा सम्बल !
आ गये आजमाने, या रूठे को आज मनाने ?
इस चिर दिन के दुखिया को अपना कर गले लगाने !
लेकिन क्या तुम्हें पता है इसका विषाक्त फल चोखा ?
यह राह बड़ी बेढब है; दुर्गम, एकान्त, अनोखा !
इस पर वे ही जन चलते, जिनको न मोह जीवन का ;
लेते आनन्द बिहँस कर जो शूली के चुम्बन का !
जिसमें पड़ कर बन जाता अमृत हलाहल भी तीखा !
रण-ताण्डव-कर से मैंने वह मन्त्र आज है सीखा !

क्यों

क्यों हो विश्वास किसीपर यह जग दो दिन का मेला;
नाहक ही मूर्ख परस्पर करते हैं यहां झमेला !
चिथड़े में बाँध चला हूँ हीरे का कठिन मसौदा ;
गाहक, साहस है ? लोगे क्या इतना मँहगा सौदा ?

मरना आसान नहीं है ; क्यों करते हो नादानी ?
मनमानी ही सब कहते बादल की कसक-कहानी !
विनिमय को खेल न समझो; जूझना समर-प्रांगण में !
यह रे कृपाण की धारा ; खोना हस्ती को क्षण में !
वेदना-विरह के सिल पर होगा चन्दन-सा घिसना ;
चक्की में जौ के सँग ही पड़ता घुन को भी पिसना !
फूलों के आलिङ्गन की बुलबुल ही कथा कहेगी ;
जब मुरझाने पर उनके काँटों की चुभन रहेगी !
दिख अगर आज भी जाता मेरा वह श्याम-सलोना ;
तो कहीं लुटाया होता अञ्जलि में भर-भर सोना !
यह तो जागृति की स्मृति पर, मुश्किल है इसका होना;
कैसे मुसकाऊँ ? आगे जब मुझे पड़ा रे रोना !

ले

ले आया मृगमद-सौरभ मरघट में नन्दन-वन का ;
वह एक पुलक ही अबतक साक्षी है महा-मिलन का !
जिस मरण-ज्योति-छाया में ले बचपन का निर्मल मन
बेसुध-सा ऊँघ रहा है मेरा विरक्त यह यौवन ;
मोती के ढेर पड़े हैं ; सुध इनकी मुझे न होती !
जब झूल रहे हैं मेरी आँखों से अगणित मोती !
मैं वह हूँ , छेड़ जगाता जो उँगली से सूखा व्रण ;
विह्वल हो बढ़ता करने रक्तिम-ज्वाला का चुम्बन !
अपना ही शीश कटा कर लेते अनुभूति पराई ;
निज प्राणों से अन्तर के धोते अन्तर की खाई !
देखो , घनघोर गगन से पानी चहुँ ओर बरसता ;
फिर भी पातक-हत चातक बूँदों के लिये तरसता !
यह तो विचित्र लीला है; बिरले ही जिसे समझते !
इस फिसलन पर न सभीके देखा है पैर ठहरते !
इतना परिवर्तन, संकट ; क्या विचलित कभी न होगे ?
दुख का यह भार, बताओ, किस तरह सँभाल सकोगे ?

तो ,

तो, रोऊँ मैं न, करूँ क्या ? इसमें क्या किसको घटती ?
भौतिक उपचारों से भी क्या अमर भाग्य-लिपि मिटती ?
चुटकी से मसल कलेजा तुम निष्ठुर, हँस-हँस पड़ते !
तानों से रुला-रुला कर कहते हो-यह क्या करते ?
जिसने था कभी पिलाया औरों को भर-भर कर घट ;
वह साकी चाट रहा है, खुद आज देख लो तलछट !
लेगा क्यों बाँट कहो तो , तकदीर किसीकी कोई ?
यह सम्पति वह है , खोई– बस, एक बार जो खोई !
कितने ही हार चुके हैं प्रिय, निबट न इस नटखट से ;
क्या अचरज जो मैं प्यासा लौटूँ सागर के तट से !
चिन्ता ? चिन्ता फिर क्यों ? ओ मेरे अलबेले भाई !
पीड़ा की बलि--वेदी पे अब होने दो शैदाई !
चरणों पर देव , तुम्हारे अर्पित हो सब कुछ मेरा ;
चाहो तो, पलकों में ही दे दूँ एकान्त बसेरा !
मैं सिसक रहा था गीले अंचल में वदन छिपाये ;
मेरा दुख-दर्द बँटाने तुम आश्वासन-से आये !

दो—

दो–एक हिचकियों की ही तो और तनिक थी देरी ;
इतने में कैसी तुमने यह मोहन-बंशी टेरी !
मैं दौड़ पड़ा, क्या जानूँ- किस भ्रम में सुध-बुध खोता;
हँसता-हँसता अधरों से , आँखों से रोता—रोता !
निर्मम , क्यों दिया न रोने तुमने मुझको एकाकी ?
जो यों उगाहने आये सिसकी का पिछला बाकी !
अच्छा, आते हो-आओ ; स्वागत , आँसू-लड़ियों से !
पर, देखो ऊब न जाना सावन-घन की झड़ियों से !
जगमग हो प्रलय-प्रभा से अन्तर का कोना—कोना ;
कह दो—हम खोने आये ; है ध्येय हमारा खोना !
आहट न जरा भी होये ; वे भी सुख-पूर्वक सोएं !
आओ, रोएं हम दोनों ; गुपचुप ही मिलकर रोएं !

जंगल में अमंगल

एक कहानी।
महज जरा – सी।
जिसको बीते हुआ जमाना।
एक भेड़िया था जंगल में।
और उसी में
एक लोमड़ी भी रहती थी।
इसके सिवा और भी कितने
छोटे-छोटे जीव-जन्तु थे।
और भेड़िया था भूखा।
जानवरों की एक सभा जो थी,
उससे था कुछ असन्तुष्ट-सा
रुष्ट भेड़िया।
क्योंकि, सताया था उन सबने
मिल कर उसको।
साथी जब न मिला कोई भी
तब उसने तत्काल बनाया
एक अलग ही गुट अपना भी।
और लोमड़ी से दोस्ती की।
एक रोज क्या हुआ कि
सहसा पकड़ किसी काली बिल्ली को
ले आई लोमड़ी कहीं से;
सभी सज्जनों के सम्मुख ही
और लिया उसको दबोच।
तो, कहा भेड़िये ने मन ही मन—
'वही भला चुपचाप रहे क्यों?'
और पेट में डाल लिया चट
एक भेड़ को बस, उसने भी।
वहीं, एक टापू में रहता था
अपने प्रभुत्व के मद में
बना मत्त-सा एक सिंह भी।

उसको अच्छी लगी नहीं
यह बात भेड़िये की सचमुच।
शान्ति चाहता था वह वन की।
उसको था न पसन्द अमंगल
जंगल में कोई।
किन्तु, करे क्या?
धृष्ट और उद्दण्ड भेड़िया जो था।
नख-रद-केशर-गलित सिंह वह वृद्ध।
रह गया गुर्रा कर केवल।
किन्तु, इसीने बढ़ा दिया
चालाक भेड़िये का साहस।
वह चढ़ बैठा संयोग देख कर
एक गधे पर।
और मार डाला उसको भी
गला घोंट कर।
अब तो सिंह बहुत ही बिगड़ा,
झुँझलाया;
बुलवाया धूर्त भेड़िये को ड्योढ़ी पर।
पूछा कारण और उसे समझाया।
क्योंकि, सिंह था शान्ति-उपासक।
और, भेड़िया बोला—
'बस, होना था, जो हो चुका।
खत्म है।
इससे ज्यादा और नहीं कुछ
मुझे चाहिये।'
यों-ही कुछ दिन गुजर गये फिर।
एक स्यार आया चपेट में
पुनः भेड़िये की।
अब तो बेतरह सिंह घबराया।
अर्थ, भेद, भय;
सभी व्यर्थ-से हुए प्रमाणित।
वह न राह पर आया।

कान खड़े तब हुए सिंह के।
नख पर लगा सान वह देने।
दाँतों को घिस कर पत्थर पर
लगा बनाने तेज।
एक भालू रहता था
वहीं भेड़िये के पड़ोस में।
दोनों में दुश्मनी पुरानी।
बढ़ा दिया झट हाथ सिंह ने
भालू से दोस्ती करने को।
पर, उसके पहले ही दुश्मन
वे दोनों मिल गये।
तीन अब हुए।
और उसीके बाद भेड़िया
टूट पड़ा पूरी ताकत से
एक हिरण पर।
मिला सहारा
जब न कहीं पर, डर के मारे
भागा, भागा वह बेचारा।
सिंह और बाघिन ने मिल कर
युद्ध-घोषणा की,
सहायता भी तत्काल हिरण को दी।
किन्तु, भेड़िये का हमला
जबरदस्त था कुछ ऐसा ही,
और अन्त में पहुँचा भालू भी
कि हिरण के उखड़े पैर,
गया वह मारा।
और मांस को बाँट लिया दोनों ने।
अब तो बाघिन पर ही
धावा बोला।
हुई लड़ाई घमासान।
था एक तरफ भेड़िया अकेला
और दूसरी तरफ सिंह के
साथ युद्ध करती थी बाघिन।
और समन्दर-पार दूर जो
रहता था दोनों का चाचा,
सूअर, मोटा-ताजा,
तेज-नुकीले दाँतों-वाला।
वह भी आर्त्त-वचन सुन आया।
मदद कर्ज में दी।
आखिर में
लेकिन, बाघिन हार गई।
जब कि ऐन मौके पर आ कर
किया अचानक वार लोमड़ी ने भी
पीछे से।
फिर तो एक तहलका-सा भारी
मच गया विपिन के
शान्त वायु-मण्डल में।
थोड़े डर कर
बाकी लड़ कर
मान भेड़िये की अधीनता
ली सबने।
तब भालू की बारी आई।
भालू का दुश्मन था बन्दर।
और भेड़िये ने पहले ही
कर ली थी बन्दर से दोस्ती।
भालू से भिड़ गया भेड़िया।
सन्धि सिंह ने की फिर उससे।
और, मदद की भालू की।
पर, भालू भी तो
होता है खूँख्वार जानवर।
एक बार वह लड़ा हौसले से,
लड़ता ही गया।
अन्त में

× × ×

हार गया यदि भालू,
(सच हो जाय न कहीं यही ।)
तो, रक्षा करे
सिंह को ईश्वर ही ।
उसको सुबुद्धि दे ।
यह जो आज खड़ा है
एक गाय की सड़ी लाश पर ।
पुण्य नाम पर प्रजातंत्र के
भरता है दम ।
देता सदा दुहाई ईश्वर,
धर्म और न्याय की,
जिसका नाम भेड़िया भी लेता है ।
और, सिंह भी ।

उमङ्ग

मधुमय मेरे उर की उमङ्ग ;
रसमय मेरे मन के विचार !

जीवन की सुन्दरतम विभूति ;
गौरव--रव--मुखरित नव-सकाल !
तुम यश के निर्मल धवल केतु ,
हिमगिरि से भी उन्नत, विशाल !
आये वह मन्दाकिनी—सदृश
ले मन्दारों का मधु—मरन्द ,
मरु-उर-प्रान्तर में तुम मेरे
किस अगम दिशा से मन्द-मन्द ?

हरते कर कल-कल ध्वनि कोमल
जग के दुख-कल्मष , रुज-विकार ;
शीतल मेरे उर की उमङ्ग ;
मंजुल मेरे मन के विचार !

तुम मेरे कवि की गूढ़ गिरा ,
मेरी कविता के आदि—स्रोत ;
है आज तुम्हारे रस से ही
मेरा यह जीवन ओत—प्रोत !
करते हो तुम्हीं निखिल जग में
मेरे सद्भावों का प्रचार ;
कब से वसुधा पर बहा रहे
उन्मुक्त , सुधा की विमल धार !

तुमको क्या ज्ञात—तुम्हें कितना
मैं करता हूँ निशि-दिवस प्यार ;
उज्वल मेरे उर की उमङ्ग ,
निर्मल मेरे मन के विचार !

तुम भावुकता के नव--अङ्कुर ,
प्राणों का कुसुमोत्फुल्ल गान ;
मेरी रस--वरुणा का उद्गम ,
करुणा का निर्जन वास-स्थान !
कुवलय-कल- कुंज- विहारी तुम
दक्षिणी-पवन की गति अबन्ध ;
लाते हो उड़ा मलय--गिरि से
प्रतिदिन पावन मृगनाभि-गन्ध !

गूँथती तुम्हारे ही निमित्त
वन में वनदेवी पुष्पहार ;
पावन मेरे उर की उमङ्ग ,
पूजित मेरे मन के विचार !

बादल—से उमड़—घुमड़ मानस
में उड़ते—फिरते अनायास ;
तुम चित्रकार , अंकित करते
संध्या की आनन—छवि उदास !
तुम कभी नाच उठते वन की
नैसर्गिक सुषमा में विभोर ;

व्याकुल बढ़ते हो बालक—से
छूने सुरधनु का ओर-छोर !
कर लेते मृत्यु—भुवन में ही
अमरों का नन्दन—वन—विहार ;
चंचल मेरे उर की उमङ्ग ,
कोमल मेरे मन के विचार !

तुम मेरे सुख का महानन्द ,
चिर—विरही का उद्भ्रान्त शोक ;
कल्पना तुम्हीं मेरी असीम ,
नव-नव भावों का स्वप्न—लोक !
आते बन निशि में तुम सुषुप्ति ,
वासा में जागृति का विकास ;
करते हो निशि—दिन तुम यों ही
मेरे हृत—शतदल में निवास !

मेरे चिन्तन की तुम प्रतिध्वनि ,
मेरे यौवन का तुम शृँगार ;
विह्वल मेरे उर की उमङ्ग ,
उन्मन मेरे मन के विचार !

तुम मेरे चिर—सहचर अनन्य ,
करते पद—पद पर बल—प्रदान ;
रोने पर रोते फूट—फूट ,
हँस उठते हँसने पर अजान !
तुम मूक ; किन्तु , वाचाल बने
पढ़ते ही मेरे मुखर—मन्त्र ;
इंगित पर एक—एक स्वर के
हिल उठता हिय का वाद्य-यंत्र !

रख दिया तुम्हीं करते मेरी
छवि को स्तर—प्रस्तर पर उतार ;
सस्मित मेरे उर की उमङ्ग ,
विस्मित मेरे मन के विचार।

तुम मेरे हो आनन्द कन्द ;
तुम पर मेरा सर्वाधिकार ;
मैं कृपा—पात्र हूँ वाणी का ,
तुम उस वीणा की झंकार !
निशिवासर शत—शत मुक्त कण्ठ
गा रहे तुम्हारा यश अपार ;
तुम अनुपमेय, शाश्वत , अनन्त ;
मैं बिना तुम्हारे निराधार !

भरते हो मेरे अन्तर में
बस, तुम्हीं प्यार, उद्गार, ज्वार ;
सुन्दर मेरे उर की उमङ्ग ,
अक्षर मेरे मन के विचार !

तुम में कोकिल की कुहू और
केकी का विलसित जलद-रास ;
हो तुम्हीं त्रिलोचन-वह्नि-शिखा ,
रतिपति का कोमल-कान्त-हास !
मेरी प्रतिभा के केन्द्र—विन्दु ,
मेरी गरिमा के शब्द—चित्र !
चुम्बन हो तुम्हीं कुमारी का
नवनीत-स्निग्ध , उन्मद , पवित्र !

तुम मायावी का इन्द्रजाल ;
चिर-तापस, चिर-शिशु, चिर-कुमार !
पुलकित मेरे उर की उमङ्ग ;
सुरभित मेरे मन के विचार !

तुमपर अक्षरशः पड़ी सदय
अन्तर की मेरे स्नेह—छाप ;
कर रहा तुम्हींमें आज , व्यक्त
मैं अपना ही व्यक्तित्व आप !
वर मेरी कठिन साधना के ,
निर्जीव लेखनी के प्रसाद !

तुममें ही अथ से इति होता
मेरा रहस्य, छाया, विषाद !

तुम घर-घर जाते हो लेकर
मेरे सुख-दुख, इच्छा, दुलार !
वन्दित मेरे उर की उमङ्ग,
नन्दित मेरे मन के विचार !

प्रणय-मिलन

आज सजनि, अभिसार-शर्वरी;
शिशिर-मधुर अभिराम !
एक-एक स्पन्दन में नन्दित-सा
अनन्त सुख — काम !
बहने दो; मत रोक उमङ्गों का
उद्दाम प्रवाह ;
यह विभावरी कितनी मोहक,
अगणित मेरी चाह !
घिर आये अलि, सान्ध्य-जलद-से
भाव विपुल समवेत ;
मधुमय हो सुकुमारि, आज
मेरा संकेत — निकेत !

एक प्राण, हम दो तन; निष्ठुर
यह पार्थिव आचार !
वहीं बनाना होगा अपना
अब नवीन संसार !
जहाँ शून्य से गिरती निशि—
वासर अविरल जल-धार !
श्रान्त - पथिक - सा सो जाता
चिर-विधुर क्षितिजका प्यार !
एक बूँद में मिलने आया
विस्तृत पारावार ;
प्रिये, छिपा लो आज मुझे भी
अपनी भुजा पसार !

इन्द्रधनुष के रंगों से
निर्मित मेरा संसार;
यह घनमाला कितनी सुन्दर,
कितना मृदु आसार !
प्रेयसि, मैं हूँ शब्द; और, तुम
विद्युत का संचार !
तुम स्वप्नों का मुक्त-चरण, मैं
अम्बर का विस्तार !
आज सृष्टि के महानन्द का
खुला पूर्णिमा — द्वार !
हुए प्रणय के मिलन — सूत्र में
कण - कण एकाकार !

लौट-लौट आता प्रतिध्वनि-सा
विरही का उद्‌गार !
कौन सहेगा उपल — सदृश
भावों का अमित-प्रहार !
सहसा लुप्त हुआ पैरों से
पृथिवी का आधार !
मै असीम में उड़ा जा रहा
लिये व्यथा का भार !
यह अक्षय उच्छ्वास और यह
मेरी गति दुर्वार ;
लो, मेरा अस्तित्व सँभालो,
प्रलयोदधि का ज्वार !

किस कान्ता के विप्रयोग में
अचल पड़ा कान्तार ?
करता अन्तरिक्ष नित किसकी
स्मृति में हाहाकार ?

हृदय-चिता में आज, निराशा-
ज्वाला का अभिसार;
और, वहीं देखो — इच्छाओं का
पुष्पल शृङ्गार!
मैं वनवासी, पड़ा स्नेह-शतदल पर
शिशिर — तुषार!
ढँक लो प्रिये, आज तुम मुझको
बन कर घन—नीहार!

सिसक-सिसक उठती वंशी की
ध्वनि में मलय—बयार;
जीवन के मधु-गीतों में यह
छन्दों का प्रस्तार!
साँसों का संसार सिहरता
आज यहाँ प्रति-बार;
यह वसन्त-सुख-स्वप्न नहीं, हो
रही नियति - पतझाड़!
बनी बन्दिनी महा-मृत्यु; दृग
मेरे कारागार!
आ जाओ धारण कर रूपसि,
मोती का आकार!

तुम नीरव भाषा युवती की;
मैं शिशु की मुस्कान!
मकरध्वज ने आज किमा शर
कुसुमों का सन्धान!
आँखों में सावन बन आया
मेरा शून्य अतीत;
पर्वत के शिखरों से उतरा
उर का निर्झर — गीत!
फूट पड़ो शत-शत उत्सों में
तुम मेरे कल—हास;
आज जगाने आया जग को
पावस में मधुमास!

स्वर्ण—कल्पना उतरी नभ से
खोल इन्दु का द्वार;
गूँजी ज्यों ही प्रिये, तुम्हारी
किंकिनि की झङ्कार!
वृन्दावन, कालिन्दी—तट हो;
वंशीवट की छाँह!
कण्ठहार बन कर लिपटी हो
तुमसे मेरी बाँह!
मुरली हो अधरों से मेरे;
शरत—चन्द्रिका-बाल!
प्रेयसि, नृत्य करूँ मैं; तुम दो
नूपुर का मृदु—ताल!

आज, एक उन्माद प्रेम का;
भुवन—विमोहन रूप!
प्रणय—नगर में मिला अचानक
मेरा पथिक अनूप!
कहता उडु—प्रदीप, मैं होता
यदि दूर्वादल वन्य;
श्यामा के मृदु चरण—स्पर्श से
करता जीवन धन्य!
प्रिये, न पूछो, सहसा आया
क्यों वसन्त का ध्यान?
अपनी अधर—सुधा से छिद्रों में
भर दो तुम प्राण!

रूठ चला मेरा वनमाली;
आज, कहाँ, किस ओर?
भटक रहा जन-शून्य राज-पथ पर
प्यारा चितचोर!

मुक्त—केशिनी गिरि—बाला का
विरहाकुल आह्वान ;
तरुण—तपस्वी की यह भिक्षा ,
दो मधु का वरदान !
स्वर्ग ; प्रिये , अब इसी मर्त्य पर
होगी उसकी सृष्टि !
आज , अन्ध—कवि की वाणी ने
पायी अन्तर्दृष्टि !

अङ्ग—अङ्ग में भरा विश्व के
आज रङ्ग—उल्लास !
हाय , यत्न का हो न सकेगा
क्या समाप्त निर्वास ?
देव—बालिके , यही प्रवासी
बना तुम्हारा दास !
अपनी श्वास—गन्ध से भर दो
जीवन का वातास !
हो न तुम्हें भी अपनी अनुपम
छवि का रूपसि , गर्व ;
आज देख आया मैं उन्मद
मदन—दहन का पर्व !

हृदय का भार

मत पूछो, सरकार ! शून्य में
मैं क्यों आहें भरता हूँ ?
मिलता जो भी मुझसे पथ में ,
प्यार उसीको करता हूँ !
किस निष्ठुर विधि ने इतना
सुकुमार हृदय है दिया मुझे ?
शूल-शूल को धरता चुन-चुन ,
फूल-फूल पर मरता हूँ !

पत्थर से भी नेह लगाया ,
रजकण पर कुर्बान हुआ ;
जोड़ी प्रीति-रीति नदियों से ,
निर्झरिणी का गान हुआ !
न्यौछावर कर दिया हृदय को
दूबों की हरियाली पर !
कालकूट भी मेरे हित
परमेश्वर का वरदान हुआ !

दौड़ा तितली के पीछे ,
सुरधनु के पंखों पर घूमा ;
दक्षिण-पथ की अगुरु-गन्ध से
पुलक-चकित होकर झूमा !
रूपराशि देखी जो, मन में
समझ उसीको प्रभु की मूर्ति;—
झुका दिया मस्तक, सादर
चरणों को श्रद्धा से चूमा !

क्या बतलाऊँ, कवि बन कर
मैंने किसका उपकार किया ?
हाहाकार किया जीवन-भर ,
करुणा का शृंगार किया !
पाई ऐसी विकल वेदना
प्रियतम से उपहार-स्वरूप ;
एक मद-भरी चितवन पर
बलिहार सकल संसार किया !

रहा देवता के मन्दिर का
पूजा का अधिकारी बन !
सुन्दरता की प्रिय-प्रतिमा का
केवल एक पुजारी बन !
दर्शन का ही मिला मुझे
सौभाग्य, नहीं अधिकार विशेष;

कभी भिखारी-सा ही आया ,
जाता आज भिखारी बन !

कोयल तो मीठी ही, काकों का
भी क्रन्दन सुना अहो !
क्यों इतना उन्माद प्राण में
तुमने प्रिय, भर दिया कहो ?
लगा हृदय से लेता तत्क्षण
पथ के कटु कंटक को भी ;
उन बेचारों के जी में भी
जिससे कोई कष्ट न हो !

गरल-पान कर आप सुधा का
जग को दान दिया मैंने !
नीलकंठ-सा स्वयं अशुचि हो
भव-कल्याण किया मैंने !
कब समझेगा मूल्य जगत
मेरी मतवाली चाहों का ?
मत पूछो, हे देव ! किसीसे
क्यों अभिमान किया मैंने ?

पश्चात्ताप

आज, समझ पाया हूँ पहली
बार न क्यों आराम किया ;
इस दुनिया में आकर मैंने
अहो, कौन-सा काम किया !
आज, देख पाया हूँ पहली
बार, बन्धु ! अपनी तसवीर ;
एक तिरस्कृत मानस, जिसका
बना आवरण मनुज-शरीर !

देव, मिली किस लिये जिन्दगी;
औ मैंने क्या किया अहो !
आज, कर्म के पृष्ठ सामने
खुले ; न छल की बात कहो !
यह प्रपंच का जीवन, घड़ियाँ
शेष आज अन्तिम दिन की ;
काल प्रतीक्षा करता किसकी ?
लेता खोज-खबर किनकी ?

अरुणोदय से मध्य, मध्य से
संध्या, संध्या से रजनी ;
एक घड़ी शत-कोटि युगों के
आदि-अन्त की नटी बनी !
इसीलिये तो आज खोल उर
मैंने अपना ही देखा ;
पढ़ी भ्रष्ट-लिपि-लिखित भाल की
नियति-दग्ध अक्षर - रेखा !

हार-विहार किया वन-वन में
जीवन-धन बलिहार किया ;
चंचरीक-सा फूल-फूल पर
मरा, लुट गया, प्यार किया !
यौवन का व्यापार किया ,
सुन्दरता का शृङ्गार किया ;
चाँदनी रात में जाग' चाँद—
तारों से अभिसार किया !

समझा तृण-सम भी न किसीको
अपने प्रभुता-धन-मद में ;
अधर-सुधा का पान किया औ
लोटा प्रमदा के पद में !
देखा जग के हृदय - दीप को
अपने यश के सविता से ;

गान किया अपना ही अपनी
काव्य-कला से, कविता से !

बैठ रत्न-सिंहासन पर मैं
ढाल रहा मद का प्याला !
राज-भवन था बना सुरा औ
सुन्दरियों से मधुशाला !
खींचा किसने मुझे पकड़ कर,
खड़ा कौन यह यों आगे ?
होश हुआ, जब प्राण काल के
पद-प्रहार से ये जागे !

आज, खुला अन्तर-पट; नयनों के
जल से ही धुले नयन !
लेगा कौन शाप युग-युग का,
आजीवन का कलुष-चयन !
जो भी मिला, उसीको मैंने
अपनाया, कुछ दिया, लिया;
मैं अबोध बालक क्या जानूँ,
पुण्य किया या पाप किया ?

अपने ही लघु ज्ञान-वृत्त में
चक्कर काटा किया सदा !
घिरा स्वयं निज के घेरे में,
अपने ही हित जिया सदा !
फिसले क्यों न चरण, खाऊँ मैं
आज ठोकरें दर-दर की ?
बना मोम का दिल मेरा,
तकदीर किन्तु, यह पत्थर की !

कल्पों का संताप, आज
युग-युग की ठेस खड़ी आगे;
एक याद मादक अतीत की
धर मृदु वेश खड़ी आगे !

यह मानव उर की दुर्बलता,
मत मेरा कुछ दोष कहो;
पूजा की प्रतिमा वह फिर भी
इन आँखों से दूर न हो !

लाखों बार बुझाया मन को,
लाखों बार किया वारण;
फिर भी रुकता नहीं वेग यह,
ऐसा हृदय असाधारण !
फीके भावों के सौदा पर
भले मुफ्त का नाम किया;
आज, समझ पाया हूँ पहली
बार कौन-सा काम किया !

पंडित जी

एक पुराने पंडित जी थे;
घर पर थे बेकार पड़े !
पंडित जी की पत्नी बोलीं—
'तुम भी लापरवाह बड़े !
अरे, कहीं से पैसे लाओ;
जाओ, कोई काम करो !
दिन—भर मक्खी मारा करते;
अच्छा इससे डूब मरो !'

तम्बाकू की पीक फेंक कर
बोले पंडित जी हँस कर—
'लाओ पानी, डूब मरूँगा;
पर, न मुझे भेजो बाहर !'

'नहीं, नहीं तुम फौरन निकलो;
यहाँ न पानी लाऊँगी !
मेरे सम्मुख मर जाओगे;
तो, विधवा हो जाऊँगी !'

करते क्या ? आखिर, पंडित जी
चलने को तैयार हुए !
पत्नी ने दी उन्हें बिदाई
झाड़ू लेकर— 'चलो, मुए !'

सोचा, चलो, भिण्ड के राजा
साहब से हम अर्ज करें !
शायद कोई काम हमें मिल
जाय, नहीं तो डूब मरें !

पंडित जी ड्योढ़ी पर आये,
फाटक से झांका अन्दर ;
स्वागत प्रथम किया कुत्तों ने,
फिर सिपाहियों ने उठ कर !

पड़े जहाँ दो तगड़े झापड़,
पंडित जी सरपट भागे;
किसी तरह जा पहुँचे फिर भी
राजा साहब के आगे !

दिन था, कुर्सी पर लेटे थे
खा-पी कर राजा साहब !
लेटे—लेटे नींद आ गई,
आँखें लगीं न जानें कब ?

दीख रहे थे एक भयंकर
स्वप्न, दैत्य कोई आकर
उनसे यों कहता है— 'दे दो
अपना राजमुकुट लाकर !
अब से मैं राजा हूँ, मेरी
सेना और खजाना है;
नहीं, मार डालूँगा तुमको;
आज तुम्हीं को खाना है !'

'अरे, बचाओ !' राजा साहब
चौंक पड़े भीषण भय से !
'पहले मुझे बचाओ !' पंडित जी
भी काँपे संशय से !

भौंक रहे थे कुत्ते पीछे,
और सिपाही थे सिर पर ;
पीपल के पत्ते—से पंडित जी
थे डोल रहे थर—थर !

राजा साहब ने ज्यों खोलीं
आँखें, त्यों फौरन डर कर
लिपट गये पंडित जी उनसे—
'भगवन ! यह दानव का घर !'

'कहाँ गया वह दानव ?' बोले
राजा साहब घबरा कर—
'तुम हो कौन ? बचाये तुमने
मेरे प्राण यहाँ आकर !'

'राजन ! यह जो दास, ज्योतिषी;
भिक्षुक बन कर आया है !'
'मैं प्रसन्न हूँ, अति-कृतज्ञ हूँ ;'
'सब ईश्वर की माया है।'

'नहीं !' कहा राजा साहब ने—
वह दानव था मदमाता !
अगर न मौके पर तुम आते,
ईश्वर भी न बचा पाता !,

यों, राजा साहब ने सारा
किस्सा उन्हें सुना डाला !
कैसे एक दैत्य से उनका
पड़ा नींद में था पाला !

पंडित जी की आँखें चमकीं;
अब न रहा कोई खतरा !
सारी बातें समझ गये वे,
पुलकित हो खोला 'पतरा' !

'हाँ, राजन ! शनियोग आज था;
जो राजा के हित घातक !
अवसर पर न पहुँच कर, कैसे
लेता मैं दारुण पातक ?

देखा था घर ही पर मैंने
दिव्य-दृष्टि से यह अशकुन,
जो होनेवाला था भीषण;
लग्न लिया था मैंने गुन!
फिर कैसे मैं बैठा रहता?
चला वहाँ से मैं झटपट!
किन्तु, हो गई सबसे पहले
पत्नी से ही कुछ खटपट!
फिर फाटक पर रोक लिया
कुछ देर मूर्ख संतरियों ने!
और आपके कुत्तों को
भड़काया शनि की घड़ियों ने!
फिर भी मैं रुक जाता कैसे?
भागा मैं—भागा बच कर!
शुभ कर्मों में यों—ही कितने
विघ्न हुआ करते अक्सर!
आया, तो देखा सचमुच ही
संकट—काल उपस्थित है!
इस अवसर पर कायर-सा
चुप रहना बिल्कुल अनुचित है;
मैंने दानव को ललकारा;
पर, वह भाग गया डर से!
वह अदृश्य हो गया कूद कर
खिड़की के पथ से, घर से!
हो सकता है, फिर वह आये;
मरा नहीं, वह जीवित है!
इसीलिये कुछ रोज यहाँ पर
मेरा रहना निश्चित है!'
राजा साहब ने खुश होकर
उन्हें हृदय से लगा लिया!
और सदा के लिये उन्हींको
राज—ज्योतिषी बना दिया!

कहा—'आपने राज बचाया;
और बचाया है जीवन!
इसीलिये, जो माँगें, दूँगा
राज—कोष से जितना धन!'
फाटक पर रोका था, वे
बर्खास्त हुए पहरेवाले!
बाँध दिया कुत्तों को, मुँह पर
पड़े अलीगढ़ के ताले!
कहते हैं, तब पंडित जी
हाथी पर चढ़ कर आये थे!
और, तिरासी घोड़ों पर वे
मुहर लाद कर लाये थे!

दाल में टाँग

वर्षा में इस तरफ कभी जब
पानी नहीं बरसता है,
बढ़ जाती है गरमी बेहद,
सारा जगत तरसता है;
तब कुछ लड़के बेंग पकड़ कर
हण्डी में हैं रख लेते;
और किसी घर में ले जाकर
चुपके उसे पटक देते!

सो, आषाढ महीने में था
मेरे घर में कोई भोज!
पकड़ बेंग को रक्खा मैंने
भी था हण्डी में उस रोज!
डूब जायगा ज्यों-ही सूरज,
सोचा था मैंने मन में,
त्यों-ही इस हण्डी को दूँगा
तोड़ किसीके आँगन में!

पर, ऐसा संयोग कि मैंने
बेंग दिया था जिसमें डाल,
उस हण्डी में किसी व्यक्ति ने
रख दी गरम भोज की दाल!
गरम दाल में पड़ कर फौरन
बेंग बना हलवा जल कर!
और दाल के संग भोज में
आया पत्ते पर ढल कर!

एक-एक कर सब चीजें जब
गईं परोसी खाने की!
तब बारी आई पत्ते पर
जल्दी हाथ चलाने की!
इतने में ही किया किसीने
भात-दाल में कुछ अन्दाज!
अरे, चौंक वह पड़ा जोर से—
'देख, चीज है यह क्या आज?'

भारी गड़बड़ मचा भोज में,
उठे लोग सब पत्तल छोड़!
कहा किसीने, बाबा, सचमुच
आया अब कलियुग घनघोर!
कोई कहता, खा लो भाई;
कोई कहता, खाना मत!
कोई कहता, चलो उठो जी;
कोई कहता, जाना मत!

मैंने देखा, हुआ चाहता
यह तो सारा गुड़ गोबड़!
बाबूजी डर गये, कहीं वे
चले जायँ सचमुच न बिगड़!
आखिर मैं आगे आ बोला—
'अरे, आप क्यों देते बाँग?
चख कर जरा देखिये तो, यह
कैसी बनी दाल में टाँग?'

'भला दाल में टाँग?' लोग सब
लगे देखने अचरज से;
'हाँ-हाँ' मैंने कहा—'न हो
विश्वास पूछ लो, तो, जज से!'
रुके सभी, फिर तो टाँगों की
आने लगी माँग पर माँग!
मगर, एक ही बेंग, कहाँ से
आये और दाल की टाँग?

विराग-राग

आज, सान्त्वना - हीन हृदय
मेरा जीवन से ऊब गया है;
सखे, भावना - जगत दुःख के
अतल - सिन्धु में डूब गया है!
कैसे जगे ममत्व? प्रलय का
दुर्दम - वेग रुकेगा कैसे?
हाय, वेदना - मरु में सुख का
शारद - जलद झुकेगा कैसे?
मोती - वन के लोने - लोने
मृगछौने को पाल सकोगे?
ईंचों के आँचल में कैसे
पारावार सँभाल सकोगे?

दो - दिन के मिहमान जहाँ से
आये, वापिस चले गये रे!
झड़ते फूल पुराने, कितने
खिलते नित दिन नये - नये रे!
परदेसी का किस्सा ही क्या?
जहाँ उठे, बस, वहीं सबेरा;

कूच किया अब इस पड़ाव से
कारवान ने अपना डेरा!
मैं न रहूँगा; किन्तु सभी को
यही कहानी याद रहेगी!
अमर मौत की एक निशानी
मरने के भी बाद रहेगी!

तड़पेगी उस दुनिया में भी
मेरे जी की कचट अनोखी;
आह, जरा देखो तो उनकी
निष्ठुर हँसी और वह शोखी!
दिल पर दाग, विराग हिये में;
राग ध्वंस का मैं गाता हूँ!
एक वेदना, एक निराशा,
एक उफान लिये जाता हूँ!
अरे, पिपासाकुल प्राणों में
वही अतृप्ति, वही अकुलाहट!
पत्तों को भी चौंका देती
मेरी पद—ध्वनि, मेरी आहट!

ना - ना - ना; अब रोक न सकता
कोई मुझको, मुझे न कहना!
आह, आप खल रहा जगत में
शून्य भाव से अपना रहना!
लाओ काँटों का सौदा वह,
आज आखिरी बार प्यार कर!
दे देने उस देवदूत को
दो मैली चादर उतार कर!
झूठ - फरेबों की इस दुनिया में
न जिऊँगा भाई मेरे!
इस सोते का कड़वा पानी
फिर न पिऊँगा भाई मेरे!

अपने को ही खोज मरा मैं
विपुल मेदिनी के कण - कण में!
कहीं शान्ति पर, मिली न कुछ भी;
इस विभ्रान्ति-क्रान्ति के वन में!
माया - जग के वन्दी - गृह से
आज, मुक्ति निश्चय ही होगी!
विचरूँगा स्वच्छन्द व्योम में
मैं अनन्त सुख - मधुरस-भोगी!
प्रेम - प्रपंच, वासना - माया;
हार गया मन इन द्वन्द्वों से!
अरे, वियोगी ऊब चला मैं
अपने ही गीतों, छन्दों से!

मुझे न चिन्ता; लोग कहेंगे
क्या - क्या मेरे पीछे, स्वामी!
सुनने आऊँगा न कभी मैं
अपना यश अथवा बदनामी!
स्वयं किसीका मैं न शिष्य, हो
कोई क्यों मेरा अनुगामी?
रहे प्रसन्न सदा बस, मुझसे
मेरा अपना अन्तर्यामी!
चाह नहीं मृदु पुष्प - शयन की;
सोना मुझे न मीनारों में!
मैं हूँ खार, फेंक प्रिय, देना
कहीं कटीले झंखाड़ों में!

रहम करो बेदर्द, बेबसी पर
मेरी यों मत मुसकाओ!
यह दिल करुणा का अधिकारी;
जरा तरस खाओ, झुक जाओ!
कभी जमाना था मेरा भी;
कटतीं घड़ियाँ मौज - मगन में!

आज उन्हीं दिवसों को अपने
ढूँढूँगा मैं शान्त - गगन में !
लगन सिखा दो स्थिर निश्चय की ;
नेम - छेम का मन्त्र सिखा दो !
परबस भटक रहा रे ; कोई
डगर पिया की मुझे दिखा दो !

मोती—भैया

मोती—भैया घोड़ा बनते ;
घोड़ा चलता ठुमकी चाल !
मैं उसकी मजबूत पीठ पर
हो जाता सवार तत्काल !
लगती ज्यों चाबुक, हो जाता
हवा तुरत मेरा घोड़ा ;
मैं करता हूँ टिक टिक टिक टिक;
अड़ता ज्यों, पड़ता कोड़ा !
मोती—भैया कभी न बनते
किन्तु, भूल कर भी अंगूर ;
क्योंकि, उन्हें खाने को तब तो
हो जाऊँगा मैं मजबूर !

मोती—भैया हाथी बनते ;
देता उस पर हौदा लाद !
और, बैठकर राजा—सा मैं
चलता हूँ फिर इसके बाद !
रुकता ज्यों—ही, होती उसके
मस्तक पर अंकुश की मार ;
अंकुश के लगते ही हाथी
कर उठता भीषण चीत्कार !
मोती—भैया लेकिन बनते
कभी न मेरे आगे दाल ;
क्योंकि, उन्हें डर है—दूँगा मैं
तुरत पेट में उनको डाल !

मोती—भैया बकरा बनते,
उद्यपि वे ठाकुर गहलोत ;
मैं देता हूँ उनको अपनी
छोटी—सी गाड़ी में जोत !
होता खड़ा जहाँ बकरा, मैं
पकड़ खींचता उसके कान ;
हट जाते मोटर औ इक्के
देख निराली मेरी शान !
मोती—भैया कभी न बनते
अरे, भूल कर भी पर, भात ;
क्योंकि, उन्हें डर है-मुँह में ही
होगी तब तो उनसे बात !

मोती—भैया कुत्ता बनते ;
टेनी—कुत्ता ऐसा चोर !
ले जाता रोटियाँ चुरा कर
दरवाजे का ताला तोड़ !
फिर भी वह है बड़ा साहसी,
मेरे घर का पहरेदार ;
चोरों के आने के पहले
कर देता सबको हुशियार !
मोती—भैया लेकिन बनते
कभी न मेरे आगे आम ;
क्योंकि, उन्हें डर है-शायद मैं
कर दूँ उनका काम तमाम !

मोती—भैया गदहा बनते,
गदहा होता सीधा—सुस्त ;
बिना लट्ठ खाये वह सुनता
नहीं, न चलता होकर चुस्त !
गट्ठर लाद रोज ले जाता,
नदी—किनारे देता छोड़ ;
गाता गीत, रेंकता, चरता
नाच—नाच कर चारों ओर !

मोती—भैया लेकिन बनते
कभी नहीं कोई अमरूद ;
क्योंकि, उन्हें डर है-खाने को
कहीं न जाऊँ उनपर कूद !

मोती—भैया बिल्ली बनते,
घर में छिप कर करते म्याँव ;
मोती—भैया कौआ बनते,
करते छत पर चढ़कर काँव !
मोती—भैया कोयल बनते,
भरते कुहू—कुहू की टेर ;
मोती—भैया खूब गरजते
बनकर फिर जंगल का शेर !
मोती—भैया सब कुछ बनते,
किन्तु, न बनते कभी अनार ;
क्योंकि, वहाँ तो हो जायेगी
हम—दोनों में ही तकरार !

मधुमय

अधरों से मधु का प्याला हो ;
मेरी बाँहों में मधुबाला !

मैं भी था ज्ञानी कभी और
मेरी चर्चा घर-घर में थी ;
मैं पूजित था, वन्दित; मेरी
इज्जत भी दुनिया-भर में थी !
दुनिया की नजरों में मैं था
धर्मावतार साक्षात बना ;
लेकिन, क्या खबर उसे, कैसी
हलचल वह मेरे सर में थी !
आचार, बुद्धि, संयम, विवेक;
सबको सोल्लास जलांजलि दे-
मैंने तिलोत्तमा की कटि से
मधु-घट उतार पी ली हाला !
अधरों से मधु का प्याला हो,
मेरी बाँहों में मधुबाला !

कल्पना नरक की कर सकती
मुझको भयभीत, उदास नहीं !
आकर्षित मुझको कर सकता
है कभी स्वर्ग का बास नहीं !
मैं जो-कुछ हूँ, बस वही सत्य;
इसके सिवाय सब झूठ, गलत !
मैं सोचूँ क्या, समझूँ ही क्या ?
मुझको उसपर विश्वास नहीं !
होगा उस पार, न जानें, क्या ?
हो कुछ भी, जो कुछ हुआ करे !
क्यों फिक्र अभी से, दुःख मुझे ?
क्यों पड़े वेदना का पाला ?
अधरों से मधु का प्याला हो,
मेरी बाँहों में मधुबाला !

तूफान उठा, मैं दीवाना ;
उल्का-सा विकल-अधीर चला !
मैं निकल गया उस तरफ, जिधर
हो मेरे मन का तीर चला !
मुझको कुछ 'अपनों' ने रोका ;
औ टोका मुझे परायों ने !
उन सभी विरोधों के दल को
बेरोक-टोक मैं चीर चला !
यह लोक और परलोक नहीं ;
मैं छोड़ूँ क्यों आये धन को ?
मैंने श्रम-कण-सा पोंछ, भाल से
जीवन का संकट टाला !
अधरों से मधु का प्याला हो,
मेरी बाँहों में मधुबाला !

दुनिया की आँखें लाल हुईं
लख मेरी आँखों में लाली !
कितनों की भौंहें खिंचीं, देख
मेरे हाथों में मधु—प्याली !
अभिशाप किसीने दिया, घृणा से
नाक सिकोड़ चला कोई ;
जब झूम रहा था मैं पी कर,
मति मेरी मद से मतवाली !
दुनिया की नीयत बदल गई,
ज्यों पैर हुए मेरे डगमग !
मस्ती की मुझे जरूरत है ;
मैं झूम – झूम पीनेवाला !
अधरों से मधु का प्याला हो,
मेरी आँखों में मधुबाला !

'कापुरुष !' ज्ञान ने कहा 'रुको !
अपना विवेक यों खोते क्यों ?'
बोला कर्त्तव्य–'समर जीवन ;
पागल ! शिशु-से तुम रोते क्यों ?'
पाखण्ड युगों का चिल्ला कर
तब लगा मुझे धमकी देने !
'विष-बीज' धर्म गरजा-'कायर !
जगती में तुम यों बोते क्यों ?'
कब बात सुनी मैंने उसकी ?
परवाह किसीकी मैंने की ?
मैं रुकनेवाला था न कहीं ;
थी मंजिल मेरी मधुशाला !
अधरों से मधु का प्याला हो ,
मेरी बाँहों में मधुबाला !

मन्दिर में शंख बजा, तत्क्षण
मुझपर बरसाये कुछ पत्थर !
मस्जिद में अजाँ पड़ी, ईंटें
तत्काल गईं फेकी मुझपर !
'पी ले नादान, जरा पी तो !'
मैं बोला हँस कर उनसे यों ;
मन्दिर औ मस्जिद दोनों में
रख दिया कलश मधु का भरकर!
जब रहा बुतों से गया नहीं ,
साकी बन घट को उठा लिया ;
तसबीह शेख जी भूल गये ,
दी फेंक पुजारी ने माला !
अधरों से मधु का प्याला हो ,
मेरी बाँहों में मधुबाला !

हो राज-भवन अथवा मरघट ;
निर्जन या उत्सव-कोलाहल !
उत्ताप ग्रीष्म का हो अथवा
ऋतुपति का मलयानिल शीतल!
मस्तक पर चन्दन - कुंकुम हो
अथवा श्मशान की भस्म-लेप ;
हो खिली चाँदनी या जग में
छाई हो अमा-निशा कज्जल !
शिर पर कंटक हो या किरीट ;
मुझको न तनिक चिन्ता नभीति!
भर जाम रहे देता कोई ;
मैं कहता रहूँ 'पिला, ला-ला !'
अधरों से मधु का प्याला हो ,
मेरी बाँहों में मधुबाला !

बज उठी सुन्दरी की पायल
उस दिन ज्यों-ही झन-झनन-झनन !
औ सुरा सुराही से ढल कर
आई पैमाने में बन – ठन !
उस रोज तबीयत जो डोली ,
गुल खिला जिन्दगी में मेरी !
वह सुरा-सुन्दरी नाच रही
अब-तक आँखों में छूम-छनन !

अपने चरित्र पर आह, कभी
था जबरदस्त अभिमान मुझे !
वह एक घूँट ही, समझ गया,
मैं मस्त हुआ बैठा-ठाला !
अधरों से मधु का प्याला हो,
मेरी बाँहों में मधुबाला !

जाहिद ने कहा, अरे तोबा !
कुछ 'उससे' भी तो हाय डरो !
चल्लू-भर पानी में, बोली
दुनिया फिर, जाकर डूब मरो !
पंडित ने कह कर 'राम-राम'
मुझको प्रभु का भय दिखलाया;
'पथ-भ्रष्ट !' पुजारी ने डाँटा—
'मन्दिर में पूजा-पाठ करो !'
चल्लू-भर पानी में मैंने
अपना ईमान बहाया जब !
तब समझा, उन गुमराहों ने
था मुझको क्यों भ्रम में डाला ?
अधरों से मधु का प्याला हो,
मेरी बाँहों में मधुबाला।

ढल कर जब मेरे शीशे में
आती अंगूरी लाल-परी !
ढँक लेती मुझको जब उसकी
फीरोजी नीलम की चुनरी !
आँखों से उतर, समाती जब
तसवीर सलोनी साकी की !
तब मेरे सपनों की अपनी
दुनिया हो जाती हरी-भरी !
होता संसार सजग मेरा,
आशा की किरणों से जगमग;
खुल जाता नभ का द्वार भव्य,
ज्यों-ही कुछ शर्बत-सा ढाला;
अधरों से मधु का प्याला हो,
मेरी बाँहों में मधुबाला !

हर वक्त मानवों के शिर पर
नंगी तलवार लटकती है !
यह रात कत्ल की, लाचारी
पत्थर पर शीश पटकती है
दुनिया में इतनी खामोशी,
यह प्रलय-निशा का सन्नाटा;
है मौत टहलती आँगन में,
लोगों की चाह भटकती है !
फिर पी ली यदि दो-एक बूँद,
इसमें कुसूर क्या मेरा है ?
है यहाँ लाल यह सुरा-परी,
वह लाल चिता की है ज्वाला !
अधरों से मधु का प्याला हो,
मेरी बाँहों में मधुबाला !

अनुभव

देव, कहाँ से आया बोलो; इतना भावोन्माद यहाँ ?
धूप और छाया से दोनों ये विषाद—आह्लाद यहाँ !
जलती क्यों अनुराग-विपिन में असन्तोष की आग यहाँ ?
एक वेदना का विहाग औ एक व्यथा का राग यहाँ !

'एक बार' ही तो जीवन की सबसे भारी भूल, सखे !
किसने पाया इस सागर में तृप्ति-द्वीप का कूल, सखे ?
अरे, नयन ये बड़े प्रपंची; बोते पथ में शूल सखे !
फूल न इन फूलों पर वन के; यही दुःख के मूल सखे !

महामोह ही बन्धन मन का; कपटों का व्यापार यहाँ !
हिलता प्रलय-शिखा पर निशिदिन साँसों का संसार यहाँ !

उड़े हार में विजय—पताका और विजय में हार यहाँ !
भार स्वयं अपना ही जीवन, आँसू ही आधार यहाँ !

इतराये जो ज्वाला पी कर, ऐसी भी क्या प्यास कहीं !
विष को कंठ लगाये हँसकर, वह भी क्या उल्लास कहीं !
पत्थर की तस्वीर; मगर, फिर भी अन्तर में प्यार कहीं !
फूट वज्र के उर से भी निकली करुणा की धार कहीं !

इन कुंजों की राह निराली, अकुलायें क्यों प्राण नहीं ?
कसक कसौटी प्रेम—कनक की, पीड़ा की पहचान नहीं !
आँखें रहीं सदा की प्यासी, अब तो कुछ भी पास नहीं !
स्वयं मुझे अपने पर ही सन्तोष नहीं, विश्वास नहीं !

दो भाई

दो नाई थे, दोनों भाई;
दोनों भाई थे कंजूस !
पहला बेवकूफ था पूरा;
और, दूसरा था कंजूस !
एक रोज दोनों ने मिलकर
नाव बड़ी—सी बनवाई;
लगे झगड़ने, जब पानी में
उतरी, तब, दोनों भाई !

पहला बोला, जाओ—इसपर
लादूँगा मैं अपना माल !
कहा दूसरे ने—भागो जी !
ऐसी किसकी हुई मजाल ?
तब पहले ने कहा—हमारे
रुपये तुम गिन दो सारे;
बोला तब दूसरा तमक कर,
जा, जा—आगे से जा रे !

पहले ने जब ताना घूँसा,
चला दूसरे का मुक्का !
यों—ही होने लगी वहाँ फिर
मार—पीट, धक्कम—धुक्का !
बीच धार में गई नाव जब,
निकला एक बड़ा कछुआ;
बोला-मूर्खो ! लड़ते हो क्यों ?
मैं देता हूँ तुम्हें दुआ !
आधी—आधी नाव बाँट लो,
सारा झगड़ा खत्म हुआ;
बहतर है तुम दोनों से तो
मेरा यह मेहतर भकुआ !
रखी पास में ही थी आड़ी,
दोनों लगे काटने नाव;
डूब गये दोनों ही भाई,
दूर उन्हें ले गयी बहाव !

पहला पहुँचा चीन, दूसरा
पहुँच गया तिब्बत से रूस;
दो नाई थे, दोनों भाई;
दोनों भाई थे कंजूस !
दो नाई थे, दोनों भाई;
दोनों भाई थे कंजूस !
पहला पहुँचा चीन, दूसरा
पहुँच गया तिब्बत से रूस !
चीन गया जो, चीनी खाकर
हुआ गधे—सा वह मोटा;
और, वहीं से लाया बढ़िया
चीनी मिट्टी का लोटा !
लोटा लेकर चला देखने
साइबेरिया औ जापान;
मिला राह में रूसी भाई,
भालू के समान दो कान !

बढ़े वहाँ से फिर वे दोनों,
आये एक कुएँ के पास;
प्यास लगी जब, लगे झगड़ने;
पर, दोनों ही हुए हताश!

लोटा तान एक ने मारा,
उधर दूसरा था नादान!
फूट गया वह चीनी लोटा,
टूट गये वे रूसी कान!

फिर दोनों भिड़ गये परस्पर,
इसके बाद अनेकों दाँव;
दोनों भाई रोते——गाते,
ढोल बजाते पहुँचे गाँव!

कहा किसीने, शादी कर लो;
फिर दोनों में होगा मेल!
पर, शादी के बदले, देखो,
कहीं तुम्हें मिल जाय न जेल!

दोनों भाई निकले घर से
करने किसी बहू की खोज;
आखिर, सफल हुआ श्रम उनका,
मिली एक औरत उस रोज!
कातिक बीता, अगहन भागा;
आया तब बर्फीला पूस!
दो नाई थे, दोनों भाई;
दोनों भाई थे कंजूस!

दो नाई थे, दोनों भाई
दोनों भाई थे कंजूस!
कातिक बीता, अगहन भागा,
आया तब बर्फीला पूस!

मिली सड़क पर उनको औरत
जो, वह थी काली—कानी;
फिर भी करने लगे वहाँ पर
दोनों ही खींचा----तानी!

पहला बोला, मुझे जरूरत;
मुझे एक बीबी की चाह!
कहा दूसरे ने, चुप रह तू;
इससे होगा मेरा ब्याह!

दोनों ने ही पकड़े उसके
बाँये और दाहिने हाथ;
इस छीना--झपटी में जाये
वह बेचारी किसके साथ?

गूँगी भी थी वह, क्या बोले?
खड़ी रही बिल्कुल ही मौन!
एक मुसाफिर आया इतने में,
बोला--लड़ते तुम कौन?

यदि तुम दोनों ही भाई इस
औरत को करते हो प्यार!
आधा-आधा चीर बाँट लो,
और छोड़ दो यह तकरार!

दोनों भाई उसे पकड़ कर
फिर ले आये घर-तक खींच;
और, काट डाला ककड़ी-सी
उसे खड्ग से बीचों-बीच!

खबर हुई थाने में, आई
पुलिस, फँसे दोनों नादान!
शादी हुई जरूर, जेल में
पर, वे सरकारी मेहमान!

बालू से जो तेल निकाले,
ऐसे थे वे मक्खी—चूस;
दो नाई थे, दोनों भाई,
दोनों भाई थे कंजूस!

आँख - मिचौनी

मैं एक अपरिचित था, फिर भी
मुझको पहचान लिया तुमने!
मैं दूरागत परदेसी था,
करुणाकर स्थान दिया तुमने!
मैं लुटा हुआ था, बसा दिया
मेरा सुनसान हिया तुमने;
मैं लौट चला था, यात्री था;
हँस कर आह्वान किया तुमने!

मेरे दृग शून्य, तुम्हारे तो
ये यौवन - फूल भरे दोनों!
मेरे कर रिक्त, तुम्हारे तो
ये जीवन - कूल हरे दोनों!
मैं निपट अबोध, तुम्हारे तो
चंचल दृग - शूल बड़े दोनों!
मैं लुण्ठित और तुम्हारे तो
छवि के तरु - मूल खड़े दोनों!

तुम जिस दुनिया की रानी थी;
मैं उसका ही दीवाना था!
तुम जिन आँखों पर रीझ उठीं,
मैं उसका ही मस्ताना था!
जो दीप तुम्हारे हाथों में,
मैं उसका ही परवाना था!
उस रोज तुम्हें जो दर्द हुआ,
वह तो बस, एक बहाना था!

मैंने तो प्रेम किया, उसको
तुमने मजाक क्यों समझ लिया?
मैं चरणों में था पड़ा और
ठुकरा कर तुमने दूर किया!

मेरे गुलाब - से दिल को क्यों
चुटकी से तुमने मसल दिया?
मैं जिसके लिये मरा कहता
अब वही-'अरे, तू क्यों न जिया!'

था खींच लिया जिसने तुमको,
वह एक इशारा था मेरा;
थी लगी तुम्हारी नाव जहाँ,
वह एक किनारा था मेरा!
तुम तुच्छ कहा करतीं जिसको,
वह एक सहारा था मेरा!
बिक गया स्वयं ही तुम पर जो,
वह मन बनजारा था मेरा!

मेरे प्राणों में गुंजन था,
तुम खिलती हुई चमेली थीं;
मेरी वाणी में कम्पन था;
तुम लाजवती अलबेली थी!
मेरे स्वर में आमन्त्रण था,
तुम लीलामयी अकेली थी!
मेरे नयनों में क्रन्दन था,
तुम निष्ठुर एक पहेली थी!

मैं प्यासा था, पानी माँगा;
जी-भर कर पिला दिया तुमने!
मैं मुर्दा था, जीवन माँगा;
तन छू कर जिला दिया तुमने!
मैं पत्थर था, सौरभ माँगा;
फूलों-सा खिला दिया तुमने!
मैं शीतल था, पावक माँगा;
यौवन से मिला दिया तुमने!

चौचन्दा

चंदा मामा, चंदा मामा, कहाँ छिपे हो ? आओ, आओ ;
आज पर्व है चौ-चन्दा का, क्या न तुम्हें मालूम बताओ !

भूल गये क्या कहीं राह पर ?
फिर क्यों इतनी देर लगाई ?
आ जाओ मेरे आँगन में,
खा जाओ पकवान मिठाई !

भाँति-भाँति के सरस-मधुर फल, तरह-तरह के मेवे लाऊँ ;
दही-पूरियाँ, बड़े-कचौड़ी ; जो चाहो, सो तुम्हें खिलाऊँ !

पहले तो तुम स्वयं झाँक
जाते मेरे छप्पड़ पर चढ़ कर ;
आज गुरू ने क्या सिखलाया ?
आये पाठ कौन—सा पढ़ कर ?

कहो उड़ा दूँ अग्नि-बाण से, किस बादल ने तुमको घेरा ?
चंदा मामा, बैठे-बैठे यों न कहीं हो जाय सबेरा !

कभी कटोरी में सोने की
दूध-भात तुम मुझे खिलाते ;
आज, निमंत्रण है मेरा ही ;
खाने में क्या अरे लजाते ?

खड़ी नहा-धोकर मा, भाई-बहन मचलते, चलता बन्दा !
सिसक रहा भादो की बदली में कबसे मेरा चौचन्दा !

डूबा कब पच्छिम में सूरज,
कब संध्या आई उपवन में ;
कुछ न पता, झनकार कर उठी
कब झिल्ली पथ में, निर्जन में !

मेरे आँगन में पावस की अँधियाली ने डाला डेरा ;
हुआ-हुआ कर किया ध्वनित स्यारों ने बन का रैन-बसेरा !

हो अजीब शरमीले तुम भी ;
अरे अतिथि, तुम डरते क्या हो ?
आ जाओ, दौड़ो जी, झटपट ;
सहम-सहम पग धरते क्या हो ?

भूख लगी है मुझे, खड़े हैं कब से चम्पा-मोहन-श्यामा !
तुम्हें खिलाकर हम-सब खायें ; आओ, आओ, चंदा-मामा !

प्रणय-याचना

देव, तुम्हारा यह दुर्बल कवि गा न सकेगा—क्षमा करो ;
कोमल हृदय, अकिंचन मानस, उर में गौरव-स्वर न भरो !
राज-सभा यह भरी तुम्हारी ; बैठे विविध-गुणी-गायक !
हाय, शरासन कैसे तानूँ ? मूर्च्छित आज कुसुम-शायक !

प्रतिभा की इस रंगभूमि में शिशु का कण्ठ खुले कैसे ?
जनम जनम से पाला जिसको, अब वह लाज धुले कैसे ?
याद किया-बस, बहुत हुआ ; अब रंग-मंच पर खींचो मत !
देव, आज इस दुर्बल कवि को अमृत-सलिल से सींचो मत !

जलने दो अपनी ही ज्वाला में तिल-तिल कर जलने दो !
इस किंशुक को निर्जन में ही खिलने और मचलने दो !
पाऊँ कहाँ राग वह, जिसपर मोहित हो संसार उठे !
यह वह वीणा नहीं देव, जो छूते ही झंकार उठे !

आज, ऊँगलियाँ काँप रही हैं ; मिल न सकेंगे सातों स्वर !
छिद्र-छिद्र बन गये रागिनी, समा न पाता नीलाम्बर !
फिसल-फिसल पड़ती है वाणी ; सुगम नहीं, स्वर-साध्य बने !
आज, कौन आकर मेरा अवलम्ब बने, आराध्य बने ?

अन्तर्तम की इस विभूति को हाय न यों खिलवाड़ बनाओ ;
देव, न आँसू की बूँदों पर होली का त्यौहार मनाओ !
वहीं, दूर से, उसी जगह से कभी प्यार कर लिया करो ;
अपनी चरण-धूलि ही कृपया कभी भेज तुम दिया करो !

देव, पुजारी को बस, केवल पूजा का अधिकार रहे !
कहीं रहूँ, पर, अमिट निरन्तर बना तुम्हारा प्यारा रहे !
वन्दी करो न विपिन-विहग को ; ऐसा पाठ पढ़ाओ मत !
देव, भक्त को वर दो, गौरव-गिरि पर व्यर्थ चढ़ाओ मत !

जिये तुम्हारे वन के कोकिल, गायें वन्दन-ध्वनि नन्दी !
दया करो इस दुर्विध कवि पर ; देव बनाओ मत वन्दी !

वर्षा—सन्ध्या

सावन की एक सजल-शीतल
संध्या सुकुमार सिसकती थी ;
व्याकुल दिगन्त के आँगन में
मेघों की परी थिरकती थी !
ताजे बेलों के फूलों से
सारी वनराजि गमकती थी ;
आकाश गरज उठता रह-रह,
बिजली-नववधू चमकती थी !

आई उस वर्षा में भींगी,
वह आई पानी से लथपथ ;
वह साड़ी की कछनी काछे,
उसकी वेणी का बन्धन श्लथ !
अंचल अधीर, निःश्वास चपल,
थी भली नाक में लगती नथ ;
शर-चाप उठाते ही भू पर
मूर्च्छित-सा पतित हुआ मन्मथ !

आमों की डाली को छू कर
हल्की पुरवैया बहती थी !
जामुन के पत्ते हिलते थे,
कोयल उनसे कुछ कहती थी !
उस पार, बगीचे से सट कर,
वह नदी सदा दुख सहती थी ;
तट के उस पीपल पर चिड़िया
हर रोज चहकती रहती थी !

मैंने ली उसकी बाँह पकड़,
वह कमलों से भी कोमल था ;
मैंने उसका उर स्पर्श किया,
वह पारद से भी चंचल था !

मैंने उसका सर्वांग छुआ,
वह हिमकण से भी शीतल था;
मैंने उसका यौवन देखा,
वह तो सम्पूर्ण हलाहल था !

पड़ती थीं छोटी—छोटी—सी
फुहियाँ, जलधार सिहरती थी ;
मेरी बाँहों में आने से
सुकुमारी भी कुछ डरती थी !
झलमल कपड़ों से साफ
चाँद-सी देह दिखाई पड़ती थी;
वह थर-थर काँद रही, गुपचुप
मुझसे जिज्ञासा करती थी !

वह अकस्मात आई, आकर
हो गई खड़ी मेरे आगे !
मैं समझा, मेरे भाग आज
चिर—दिन के बाद पुनः जागे !
बाँसों को झुरमुट से उड़कर
पंछी दो—एक निकल भागे ;
बँध गये और तत्काल वहीं
बस, एक सूत्र में दो धागे !

कुछ नशा हवा में ऐसा था,
हो गई मस्त डाली—डाली ;
पायल रुन-झुन बज उठी और
झुक गई हया से हरियाली !
थी लगी झड़ी उस तरफ कहीं,
वह कूक उठी काली-काली ;
किस गन्ध-वेदना से तत्क्षण
हो गईं दिशाएं मतवाली !

वह झुकी और उसके मुख की
हो गई कान्ति कुछ पीली-सी ;

मैंने उसको आबद्ध किया ;
वह विस्मित सी, शरमीली-सी!
कस दी अपने ही हाथों से
उसकी चुनरी कुछ ढीली-सी ;
मैंने केशों की ग्रन्थि ठीक
कर दी कन्धों पर गीली-सी!

लोची की डालें ललचाईं ;
संध्या की आँखें भर आईं!
डूबी मटमैली किरणों की
आभा में सारी अमराई !
मैंने उसको यों खींच लिया,
वह एक बार तो झुँझलाई!
मेरे शरीर से लिपट गई
फिर काम-वल्लरी की नाईं!

ऊपर कदम्ब की शाखा में
सावन का झूला लगा हुआ!
फिर बिठा दिया मैंने उसको,
मैं स्वयं और था ठगा हुआ !
वह जैसे सपनों के वन में,
मैं पूर्ण रूप से जगा हुआ ;
वह शराबोर थी यौवन से,
मैं लीला—रस में पगा हुआ!

दो—एक पेंग ही तो मारी,
झूले में गति आ गई वहाँ ;
उसके मुख पर मुस्कान और
मुझमें मति भी आ गई वहाँ!
छू गया हृदय से हृदय तनिक,
तो अनुरति भी आ गई वहाँ ;
स्वर में आवश्यक विनय और
कटि में नति भी आ गई वहाँ!

झूले का ज्यों—ज्यों वेग बढ़ा ;
आया त्यों-त्यों आनन्द वहाँ!
हम दोनों थे उस दुनिया में
खुल पड़ने को स्वच्छन्द वहाँ!
दे देता दोला एक ओर
ज्यों चाल हुई कुछ मन्द वहाँ ;
इतने में झोंका आया, हम
हो गये शिथिल-से, बन्द वहाँ!

जो पहले थी सहमी भय से,
अब खुद सहयोग लगी देने!
जो भोली थी अनजान बनी,
अब लगी प्रेम का रस लेने!
विरहा की तान लगाई जो,
कुछ दूर वहाँ उस लड़के ने ;
यौवन के पाल उड़ा दोनों
वह नाव लगी खुद ही खेने!

यों पहुँचा जब झूला अपने
उस चरम वेग पर उच्छृङ्खल ;
हम एक अनिर्वच—अकथनीय
सुख से दोनों ही थे विह्वल!
सहसा घन गरजा औ तड़पी
बिजली, वह टूट गया दुर्बल ;
खण्डित होते ही झूला के
गिर पड़े धरा पर हम निश्चल!

जब होश हुआ मुझको, तत्क्षण
मिट्टी से उठा दिया मैंने ;
आमों के मीठे—पके फलों से
भर दी फुलडलिया मैंने!
अंचल में जो रस समा न
पा कर छलका, उसे पिया मैंने!

फिर सिर का वस्त्र सँभाल, उसे
हठ—पूर्वक विदा किया मैंने!

वह निकल बगीचे से उलझी
मेघों की मुक्तावलियों से;
कुछ दूर सड़क से, खेतों से,
फिर यौवन की रँगरलियों से!
टेढ़ी—मेढ़ी पगडण्डी से,
साँकरी गाँव की गलियों से;
घर पर पहुँची करती विनोद
कलियों से और तितलियों से!

अब भी जब नभ में कभी मेघ की
माला घिर—घिर आती है;
झींगुर की एक-सुरी झंकृति
स्मृतियों को छेड़ जगाती है!
मण्डली कलापी की वन में
निज मुग्ध नृत्य दिखलाती है;
वर्षा की एक सजल संध्या
तब मुझे याद पड़ जाती है!

प्रणय-निवेदन

यदि जाना ही था तुझको परदेशी,
तो प्रेम-निकुंज में आया ही क्यों?
कभी अन्त विदा करना ही जो था,
तो वसन्त-विभाको बुलाया ही क्यों?
सुन, चाहता ही था भुलाना जिसे,
उसको मरु में भरमाया ही क्यों?
निरमोही, सनेह गँवाना ही था
किसी रोज, तो नेह लगाया ही क्यों?

कह, कूकूँ कहाँ, किन डालियों पे,
वह पाऊँ सलोना-सा प्यार कहाँ?
किसके उर में सरिता-सा बहूँ,
रख आऊँ अनन्त का भार कहाँ?
वह कौन है, वेदना है किसकी?
दुख का यह दारुण ज्वार कहाँ?
वनमाली, कहो, किस कुंज में गूँजूँ?
मिलेगा मेरा दिलदार कहाँ?

जलती है निरन्तर प्राण-चिता,
फिर भस्म क्यों होती है देह नहीं?
मर जाय पपीहा पियासा भले,
फटता पर वज्र-सा मेह नहीं?
सुन, दो दिन भी रुक जाय बटोही,
कहीं वह पाया है गेह नहीं!
पछताना पड़े प्रिय, पीछे किसीको
लगाना रे ऐसा तू नेह नहीं!

पहुँचा है जहाँ अब लौं न कोई,
वह प्रेम का पंथ बताना जरा!
कुछ राह अँधेरे में भूल रहा,
प्रिय-रूप का दीप दिखाना जरा!
सुन, भूलूँ जभी सुध तेरी अरे,
मन-मोहन वेणु बजाना जरा!
अब तो व्रज का वह देश नहीं,
फिर कैसे कहूँ, प्रिय, आना जरा!

वह प्रीति की रीति मिलेगी कहाँ?
जिसको छल-नीति सताती नहीं!
मधु देने में यौवन का भ्रमरों को
कली वन की सकुचाती नहीं!
सुन, आग लगे उस कानन में
जहाँ प्रेम से कोकिला गाती नहीं!
मरु हो वह नन्दन, रश्मि जहाँ
प्रिय-चुम्बन में सुख पाती नहीं!

वह माने नहीं, मन मेरा सखे !
किसके लिये प्यार उलींचता है ?
टुक देखने दो, दो जुड़ाने हिया ;
अरे, कौन विलोचन मींचता है ?
किसके लिये यों नयनाश्रु बहा,
पद - मंजु - सरोरुह सींचता है ?
रुकते नहीं पैर, नहीं बस में ;
बढ़ा जाता मैं, कौन यों खींचता है ?

मुझे फेंक उसी वन में वनमाली,
जहाँ छल का व्यवहार न हो।
सह लूँगा भले नरकानल-ज्वाल,
घृणा की कहीं पर, धार न हो।
सुन, ऐसा प्रदेश नहीं बसना—
जहाँ प्रातः-समीर-सा प्यार न हो।
जहाँ फूल खिलें परतीति के पावन,
प्यार में कोई विकार न हो।

जिसे फूल बना कर प्यार किया,
अब धूल बना कर जाते हो क्यों ?
तब प्रेम से पास बुलाया स्वयं,
अब नाम उसीका मिटाते हो क्यों ?
जिसको न हटाया गले से कभी,
उसकी अब बाँह छुड़ाते हो क्यों ?
मुँह देख जिया करते जिसकी,
उसको ही रुला मुसकाते हो क्यों ?

हिय-हार बना था कभी जो तेरा,
उसको ही जला कर क्षार किया !
मरते थे कभी दुखी देख जिसे,
कहो, कैसे उसी पै प्रहार किया ?
उजड़ा वह स्वर्ग, कभी जिसमें
सखे, तूने वसन्त-विहार किया।

वह रूप लुटाया गया किस भाँति,
जिसे निज हाथों सिँगार किया !

सुरा-सुन्दरी

उस पार चिता जलती मेरी, इस पार सुन्दरी और सुरा !

जब जी दुनिया के झंझट से मेरा बिल्कुल घबड़ाता है !
हारों की ठोकर से मन का साहस चीत्कार मचाता है !
तब मुझे बुलाता खिड़की से संकेत किसीकी उँगली का ;
'नादान, उठा घूँघट कोई !' तब यों मुझको समझाता है !
तब मुझे खींचता कोई औ मैं स्वयं खिँचा-सा जाता हूँ !
मैं वहाँ पहुँचता, जहाँ प्यास कुछ बुझती है मेरे दिल की ;
मेरी पीड़ा का एक मात्र उपचार सुन्दरी और सुरा !

जंगल में धुनी रमावें वे, जिनको मरकर फिर आना हो ;
गीता-गायत्री जपें वही, जिनको कुछ कर के जाना हो !
मुझको न जगत में कुछ करना ; मरकर न यहाँ वापिस आना !
क्यों ढोंग साधु का रच जग को ठगने का पुनः बहाना हो ?
मैं अपने दिल को जब्त करूँ, कैसे इस दुनिया में रहकर ?
चन्दन औ तिलक लगा कर भी क्या पाया लोगों ने अबतक ?
मेरे जीवन का इतना ही आधार सुन्दरी और सुरा !

जब मन्दिर में करते अन्धे चिल्ला-चिल्ला कर हरि-कीर्त्तन ;
मस्जिद में पढ़ती अजाँ, और गिरजे में यीशू-यश-गायन !
तब मेरे होठों से लगता अंगूरी—मदिरा का प्याला !
प्रमदा के पैरों में पायल बज उठती झन-झन झनन-झनन !
मर जाते मल कर राख मूर्ख अपने शरीर में—कान छिदा ;
यौवन में कितने आग लगा घर फूँक तमाशा हैं करते !
मेरी अलमस्त जवानी का शृङ्गार सुन्दरी और सुरा !

सुनते, बिहिश्त में मिलता है पीने को मदिरा का प्याला !
कुंजों में आँख-मिचौनी को सौन्दर्यवती युवती बाला !

आरसी

जो वहाँ नहीं है पाप, भला क्यों दुराचार हो यहाँ वही ?
मैं इस दुनिया में योगी बन क्यों फेरूँ हाथों में माला ?
जो वस्तु मिले सुरपुर में, क्यों मैं यहाँ न उसको प्यार करूँ ?
सजता उस ओर कुरूप-कुटिल मरघट में मुर्दों का मेला।
इस ओर निराला मेरा यह बाजार सुन्दरी और सुरा।

जब निरपराध जग का वध कर तलवार थिरकती रहती है।
भाई-भाई की अनबन से जब नदी खून की बहती है।
तब मदिरालय के आँगन में जुड़ता दल पीनेवालों का;
'आओ, पी लो, फिर सो जाओ!' मेरी बेहोशी कहती है।
साकी के होठ फड़कते हैं; सबकी तबियत भर जाती है।
चिन्ता की लपटों में कोई जीवित ही रहता है जलता।
मेरे स्वप्नों के केवल दो आकार, सुन्दरी और सुरा।

कर अमृत-पान, बन अमर, मुझे युग-युग तक जीना व्यर्थ नहीं।
ठुकरा दूँ स्वर्ग-पुरी को भी, जिसमें जीवन का अर्थ नहीं।
मैं बसूँ नरक में भी, लेकिन मेरे प्राणों की प्यास मिटे;
प्रासाद तुच्छ वह, जो मधु-रस देने में मुझे समर्थ नहीं।
वह सुरपुर भी मरुभूमि, जहाँ बहती कोई जलधार नहीं।
पुरुषार्थ जहाँ पर मानव का भर लाता आँखों में आँसू;
उस स्वर्ग-नरक की सीमा पर संसार, सुन्दरी और सुरा।

ये फूल और प्रेमी भौंरों का निशिदिन गुन-गुन-गुन;
ये रूपवती तितलियाँ कहा करती हैं मुझको 'सुन-सुन-सुन।
हा! इन्हें छोड़कर इस जग से मैं जा न सकूँगा सुख-पूर्वक।
मेरी प्रेयसि के चरणों में बजते हैं नूपुर 'रुन-झुन-झुन।
मैं कफन ओढ़कर पीता हूँ, यह मेरी लापरवाही है।
मेरे सिरहाने मौत खड़ी; जब मेरी अर्थी सजती है।
मेरे जीवन का यह अन्तिम उद्‌गार, सुन्दरी और सुरा।

जिन फूलों से अभिसार किया, उनको भी तो झड़ जाना है।
जब मुझे स्वयं ही एक दिवस हँसकर-रोकर मर जाना है।
माँगा न किसीसे था जीवन, फिर खोने की चिन्ता क्यों हो?
मैं इस सराय में परदेशी ठहरा, मुझको घर जाना है।
की अगर मुहब्बत की बातें, इन चपल चाँद के टुकड़ों से;
तो, मेरा क्या कुछ बिगड़ गया? क्या हानि हुई उन परियोंकी?
मेरी इस जीवन-वीणा की झंकार, सुन्दरी और सुरा।

बह रही मृत्यु की यमुना यह, तट पर उलंग-लीला-नर्तन;
उस ओर प्रलय की ज्वाला है; इस ओर प्रेम का वृन्दावन।
क्षण भर यह कौतुक होता है; वंशी बजती है क्षण भर ही।
फिर अन्धकार छा जाता है, मुँद जाते हैं मेरे लोचन।
जग फूँक-फूँक कर पीता है, जिस जगह छाछ को भी डर से।
दो-घूँट जहर का पी कर मैं सो जाता चादर तान वहीं।
मेरी समाधि से आती ध्वनि प्रतिबार, सुन्दरी और सुरा।

इन कंगालों के क्रन्दन में देती मदिरा कुछ शान्ति मुझे।
जब यम घसीटता पैर पकड़, सुन्दरियाँ देतीं कान्ति मुझे।
इस कर में लेता सुरा-पात्र, वह कर रूपसियों की कटि में;
देतीं असफलता और निराशा, दोनों जब भ्रान्ति मुझे।
मैं प्रेमनगर से आया हूँ, इस जगती में क्रीड़ा करने।
मुझको मस्ती का राज मिला, वह बन्धन भी तो फूलों का;
पाया स्वतन्त्रता का मैंने उपहार, सुन्दरी और सुरा।

जब-तक चलती है साँस, न यह कल्लोल कभी रुक सकता है।
मेरे अन्तर का स्नेह और अधरों का रस चुक सकता है।
वह सुरा, सुराही औ साकी; मेरी यह तृष्णा अमिट रहे।
जब कुटिल-काल से होड़ लगी, रथ-चक्र न यह झुक सकता है।
किसके मस्तक पर वज्र गिरा सौन्दर्य-सुरा के सेवन से?
पंचाग्नि तापने से किसको इस कारागृह से मुक्ति मिली?
मैं जब-तक जीवित हूँ, चलते दो तार, सुन्दरी और सुरा।

चिरयात्री

मैं एक अपरिचित यात्री हूँ;
जाना है इतनी दूर मुझे!
है किसने पिला दिया जीवन–
मद का प्याला भरपूर मुझे?
बस, खींच रहा कोई मुझको;
मैं विवश खिँचा-सा जाता हूँ!
मैं चलता, चलने को कोई
कर रहा क्योंकि मजबूर मुझे!
मैं किसी दिवस थक जाऊँ भी,
ये पैर नहीं मेरे थकते;
पथ-भ्रष्ट नहीं मुझको जग के
ऐश्वर्य-प्रलोभन कर सकते!
मुझको न किसीसे कुछ परिचय;
कुछ पास नहीं मेरे सम्बल!
मैं एक अपरिचित यात्री हूँ;
इतना ही ज्ञात मुझे केवल!

मत पूछ, कहाँ से आया हूँ;
किस देश आज जाना मुझको!
यह भी न पूछ तू मुझे कि क्यों
जग कहता दीवाना मुझको?
क्या सोच-समझ कर इस पथ पर
रक्खे थे मैंने प्रथम-चरण;
सूझा इस निर्जन कानन में
क्यों मस्ती का गाना मुझको?
दोनों ही पार्श्वों में पथ के
हो रहा कामना का नर्तन;
मैं सुनता कोकिल का कलरव;
इच्छा के भ्रमरों का गुंजन!
किसने भेजा है मुझे यहाँ?
सन्देश कौन-सा लाया हूँ?
कुछ भी है पता नहीं मुझको;
मत पूछ, कहाँ से आया हूँ?

सुन पड़ा किसीका परिचित स्वर;
मुझको किसने आह्वान किया?
चल दिया अचानक मैं पथ पर,
मैंने सहसा प्रस्थान किया!
देखा अवरुद्ध भवन सारे;
सन्तरियों से प्रति-द्वार घिरे!
मैंने मानव की जय कह कर
मानवता का गुण-गान किया!
वह शंख-घोष मेरा सुन कर
जागी अणु-अणु में तरुणाई!
मैंने नगपति के शिखरों पर
निज विजय-पताका फहराई!
फिर मेरी वाणी से उतरा,
पृथिवी का स्वर्ग सुखद-सुन्दर;
मैं चौंक उठा, उस दिन ज्यों-ही
सुन पड़ा किसीका परिचित स्वर!

जब जग के प्यासे अधरों पर
मादक-कारी मधु-पान मिला;
जब लोभ-मोह-मय भूतल को
सुख-निद्रा का वरदान मिला!
तब पाप स्वर्ण का स्पर्श मुझे,
वैभव-विलास सन्ताप हुआ;
मुझको अपना यह मार्ग और
वायव्य तथा ईशान मिला!
मैं सदा एक-सा एकाकी;
मैं नित्य एक-रस गृह-त्यागी!
चलता सदैव अपने पथ पर
मैं निर्वासित हूँ वैरागी!

मलयानिल सुखा नहीं सकते
मेरे शरीर के श्रम-सीकर;
मैं चलता हूँ तब भी, होता
मधु-घट जब जग के अधरों पर!

चिन्तित-सा कभी न कर सकते
ये मान और अपमान मुझे;
मैं यहाँ एक परदेसी हूँ,
बस, इतना-सा है ज्ञान मुझे!
मैं युग-युगान्त से चलता हूँ;
कुछ पता नहीं कब तक चलना!
मैं अमृत-तत्त्व को खोज रहा;
करना उसका 'संधान मुझे!
मैं मुक्ति चाहता कब अपनी?
कब अपनाया मैंने बन्धन?
मुझको तो यहाँ पकड़ लाया
सन्तप्त मनुजता का क्रन्दन!
मैं जब-तक जीवित हूँ, मेरे
निश्वास नहीं ये मर सकते;
कीटाणु अमरता के मुझको
चिन्तित-सा कभी न कर सकते!

इस पथ के वनवासी तरु-वर;
पशु-पक्षी सब स्वच्छन्द यहाँ!
उड़ता पुष्पों के प्राणों से
नित सुषमा का मकरन्द यहाँ!
होता व्यवहार यहाँ निशि-दिन
निस्स्वार्थ प्रेम का आपस में;
मैं चलता, चलने में मिलता
मुझको अतुलित आनन्द, यहाँ!
इस विस्तृत विश्व-सरोवर में
शतदल के शत-शत दल खिलते;
जितने तापस, जो वनचारी,
सब सस्मित-मुख मुझसे मिलते!
मैं देख रहा, मेरे पीछे
चलते द्रुत-गति से जो सहचर;
हँस कर करते स्वागत मेरा
इस पथ के वन-वासी तरुवर!

फैला कर बाँहें वल्लरियाँ
करती हैं मेरा आलिङ्गन;
'दो क्षण भी मेरे निकट रहो'
आता कुंजों से आमन्त्रण!
मैं दो-क्षण भी कैसे अपना
बहलाऊँ जी इस मधुवन में?
द्रुत-गति से भागा जाता जो
मेरा यह आँधी का जीवन!
बहु-मूल्य एक क्षण भी मेरा;
कैसे मैं खो दूँ इस क्षण को?
मैं चल देता तत्क्षण अपने
पथ पर ठुकरा मधु-कण को!
मैं हँसकर बढ़ जाता आगे;
संकेत मुझे करतीं परियाँ!
मैं बच जाता, झुकतीं ज्यों-ही
फैला कर बाँहें वल्लरियाँ!

मेरे असीम नभ में नीरव
होता रवि-शशि का उदय नहीं!
पर, कहो न–मेरे दृग अचपल;
निस्पन्दित मेरा हृदय नहीं!
मैं सुन्दरता का प्रेमी हूँ;
फिर भी बढ़ जाता यह कह कर;–
'कैसे मैं तुमसे प्रेम करूँ?
मुझको इतना भी समय नहीं!'

जब मेरी विनत पुतलियों पर
तितलियाँ बैठ जातीं आकर ;
मैं कहता उनसे—'क्षमा करो ;
जाने दो मुझको हे सुन्दर !'
मैं एक तपस्वी हूँ जग का ;
मैं मना न सकता हूँ उत्सव !
संध्या-प्रभात, कोई न कहीं
मेरे असीम नभ में नीरव !

विस्तीर्ण मार्ग मेरे सम्मुख ;
मस्तक पर शोभित नीलाम्बर !
छाया का शीतल छत्र मधुर,
चलता ले ऊपर नव-जलधर !
फल देते नाना विटपी-गण
कर प्रेम-सहित मुझको इंगित ;
मैं मौन पथिक ; चलता रहता
निशि-वासर अपने ही पथ पर !
कर लूँ आलाप किसीसे मैं,
इतना मुझको अवकाश कहाँ ?
दो शब्द किसीको मैं कह दूँ,
है इसका भी अभ्यास कहाँ ?
मैं जग का दुख लेकर देता
बदले में अपना सारा सुख ;
मैं द्रुत—गामी हूँ पद-चारी,
विस्तीर्ण मार्ग मेरे सम्मुख !

मैं दूर-देश से आता हूँ ;
मुझको क्षण भर विश्राम नहीं !
मैं बढ़ता जाऊँगा आगे,
रुकने का मेरा काम नहीं !
मैं कहीं ठहर जाऊँ दो-पल,
वह आज्ञा मुझको मिली नहीं ;
मेरे नयनों में नींद कहाँ ?
मैंने पाया आराम नहीं !
मुझको न रोक सकते पर्वत ;
निर्झर-नद विचलित कर सकते !
संकट न अपरिमित भी आकर
मेरा साहस-बल हर सकते !
मैं मुक्त मार्ग के गीत बना
इस निर्जन पथ में गाता हूँ !
है दूर—देश जाना मुझको,
मैं दूर—देश से आता हूँ !

वन-गमन

जब मैं मान पिता की आज्ञा
जाऊँगा वन में निर्जन ;
मा, तब लक्ष्मण-भाई मेरा
साथ न क्या देंगे तत्क्षण ?
राजमहल सूना-सा होगा,
अवधपुरी में कोलाहल ;
रुदन करेंगे व्याकुल होकर
कोशल के चर-अचर सकल !
मेरे बिना बचेगा कैसे
हाय, पिताजी का जीवन ?
जब मैं मान उन्हींकी आज्ञा
जाऊँगा वन में निर्जन !

सीता तो मा, भोली-भाली ;
उसे मनाऊँगा कैसे ?
राज—भवन में छोड़ अकेली
उसको जाऊँगा कैसे ?
रथ पर चढ़ कर मैं पहुँचूँगा
सुरसरि के पावन तट पर !
और, वहीं से हो जायेंगे
पुरवासी वापिस रो कर !

उमड़े किन्तु, तुम्हारे नयनों में
न कभी मा, आँसू—करण ;
जब मैं मान पिता की आज्ञा
जाऊँगा वन में निर्जन !

धारण कर मैं वेश तपस्वी का
पहुँचूँगा गंगा——पार ;
और करूँगा ऋषि-मुनियों को
दुष्टों के कर से उद्धार !
देखूँगा शृङ्गार प्रकृति का,
वनदेवी का शोभागार ;
पर्वत पर आखेट रहेगा ;
और वनों में मुक्त विहार !
कोल-किरात सभी आयेंगे
करने को मेरे दर्शन ;
जब मैं मान पिता की आज्ञा
जाऊँगा वन में निर्जन !

इसके बाद करूँगा जाकर
कुछ दिन पंचवटी में वास ;
छद्म-वेश में सूर्पनखा भी
आयेगी लक्ष्मण के पास !
नाक—कान खोकर लौटेगी
जब वह करती आक्रन्दन,
चढ़ आयेंगे अगणित दनुजों की
सेना ले खर—दूषण !
बिठा कुटी में सीता को मैं
युद्ध करूँगा अति भीषण ;
जब मैं मान पिता की आज्ञा
जाऊँगा वन में निर्जन !

एक रोज कंचन का मृग बन
पहुँचेगा वन में मारीच ;
और मुझे भटका ले जायेगा
सुदूर आश्रम से नीच !
मैं मारूँगा बाण, गिरेगा
भू पर वह करके चीत्कार ;
सीता के हठ से लक्ष्मण भी
पहुँचेंगे होकर लाचार !
इतने में हर लेगा उसको
लंका का राजा रावण ;
जब मैं मान पिता की आज्ञा
जाऊँगा वन में निर्जन !

तब मैं जाऊँगा पम्पासर,
सुहृद बनेंगे वन के जीव ;
किष्किन्धा में पहुँच मिलेंगे
जामवन्त, अंगद, सुग्रीव !
सप्त-ताल को वेध वालि के
हरण करूँगा पल में प्राण ;
समाचार सीता का लाने
और जायँगे फिर हनुमान !
आग लगेगी लंका—गढ़ में,
अक्षय-मरण, जलधि-लंघन !
जब मैं मान पिता की आज्ञा
जाऊँगा वन में निर्जन !

फिर मैं चल दूँगा भालू औ
बन्दर की सेना लेकर ;
और, बनायेंगे सागर में
पुल नल—नील सुदृढ़-सुन्दर !
सिन्धु-पार कर लंका-गढ़ में
उतरेंगे सैनिक विकराल !
उभय दलों में छिड़ जायेगा
बस, घनघोर युद्ध तत्काल !

उधर भयानक दानव होंगे ,
इधर विकट मर्कट-भट-गण ;
जब मैं मान पिता की आज्ञा
जाऊँगा वन में निर्जन !

शक्ति-बाण मारेगा लक्ष्मण को
वह मेघनाद बलवान ;
और , तजेगा पुनः उन्हींके
हाथों से फिर अपने प्राण !
मैं मारूँगा कुम्भ-कर्ण को
और , करूँगा निशिचर-नाश ;
कुल-समेत दशमुख का वध कर
तोड़ूँगा सीता का पाश !
स्वर्ग-लोक से विहँस करेंगे
सुरगण सुमनों का वर्षण ;
जब मैं मान पिता की आज्ञा
जाऊँगा वन में निर्जन !

लंका से प्रस्थान करूँगा
राज्य विभीषण को देकर ;
लौटूँगा पुष्पक—विमान से
सानुज सीता को लेकर !
राज—भवन में होगा उत्सव ,
हँस देगा सुख से साकेत ;
स्वागत को पुर-परिजन होंगे
खड़े भरत—शत्रुघ्न—समेत !
बीत जायगा चौदह वर्षों का
क्षण--भर में निर्वासन ;
जब मैं मान पिता की आज्ञा
जाऊँगा वन में निर्जन !

राजकुमार

मा, क्षण भर के लिये कल्पना
करो कि मैं हूँ राजकुमार ;
और, राज-माता हो तुम ,
करती हो मुझको अतिशय प्यार !
वह भारत का राजपूत-युग ;
गौरव का गिरता इतिहास !
घिरा हुआ संकट-जलदों से
जन्मभूमि का भाग्याकाश !
प्रतिहिंसा का राज्य भयानक ,
चारों ओर प्रबल उत्पात !
कब आ जाये शत्रु किधर से ,
नहीं किसीको भी यह ज्ञात !
बिखर चुका बालुका-कणों में
चिर-विद्रोही राजस्थान ;
करती थी जंगल में मंगल
राजपूत वीरों की शान !
शक्ति विभाजित शत-खण्डों में;
कलह-प्रपंच, कपट, विद्वेष !
वातावरण अशान्त राष्ट्र का ,
डूब रहा सौभाग्य अशेष !
एक दूसरे से लड़ मरने में
ही विकल स्वदेश समस्त ;
और, उधर स्वातंत्र्य-दिवाकर
होता पश्चिम—नभ में अस्त !
पूज्य पिताजी किसी प्रान्त के
एक मात्र शासक स्वाधीन !
औ, उनके अधिकार-सूत्र में
एक दुर्ग दृढतम , प्राचीन !
एक दिवस सुन पड़ता सहसा
कुसमय में नर-कोलाहल ;

अश्व-गजों की विकट गर्जना,
चन्द्रहास—उल्लास चपल !
शोर हुआ सारी नगरी में;
मची दुर्ग में यह हलचल ;—
लाँघ प्रान्त की सीमा, शासन में
घुस आये वैरी—दल !
हमला हुआ अचानक ऐसा,
मचा दुर्ग में हाहाकार ;
शाही हुक्म हुआ—क्षणभर में
हो जाये सेना तैयार !
सावधान था नहीं एक भी
योद्धा—फिर भी हुई पुकार;
मरने चले जूझकर रण में
दल के दल क्षत्रिय—सरदार !
गये पिताजी भी उस रण में,
उनके साथ शूर—सामन्त !
मातृभूमि की रक्षा करने
चले विहँस कर वीर अनन्त !
कई दिनों तक हुई लड़ाई,
मिला न कोई सु - समाचार !
मैं कहता-मा, कहीं पिताजी
तो न पड़े सचमुच बीमार ?
'अजी, नहीं !' तुम कहतीं तत्क्षण,-
वे तो लड़ते हैं रण में !
यह अशकुन की बात कहाँ से
आई रे तेरे मन में ?
'आ जा इधर दिखा दूँ तुझको
मैं प्रत्यक्ष विकट संग्राम ;'
चला तुम्हारे पीछे मैं, माँ !
तुम लेती हो मुझको थाम !
दुर्ग—शिखर पर पहुँच बताती
हो तुम उँगली से उस ओर,-

उभय पक्ष के अगणित सैनिक
करते युद्ध जहाँ घनघोर !
कहीं रक्त की नदी दीखती,
और, कहीं भीषण चीत्कार !
योद्धाओं के मेघ—पुंज में
बिजली—सी चलती तलवार !
उधर हजारों अश्वारोही,
पैदल, तोपें, तीर-कमान !
डोल रहे मुट्ठी—भर सैनिक
इधर लिये मुट्ठी में प्राण !
अट्टहास करते वैरी—गण;
मरते कट कर वीर अनेक !
वहाँ, दृश्य यह हृदय-विदारक,
सुभट उद्दण्ड एक-से-एक !
घोड़े पर आरूढ़ पिताजी,
दोनों हाथों में तलवार ;
बागडोर दाँतों से धर कर
करते शत्रु-दलों पर वार !
मैं कहता,–'क्यों आज न जानें
काँप रहा मेरा अन्तर ?
उतर चलो अब नीचे जल्दी,
मा, मुझको लगता है डर !'
'पगले !' तुम कहतीं–डरते हो ?
छिः ! तुम तो क्षत्रिय-सन्तान !
क्या न किया है तुमने मेरे
हृदय—सुधा का पावन-पान !
'तुम सिहों के वंशज, कायर
के समान कैसे डरते ?
मर जायें, पर, सच्चे क्षत्रिय
ऐसी बात नहीं करते !'
दो ही दिन के बाद दुर्ग में
आता यह दारुण सन्देश;

"महाराज हत हुए समर में ;
हाय, हमारा गौरव शेष !'
छा जाता नैराश्य नगर में
राजमहल में अतिशय शोक !
बढे विपक्षी दुगुने साहस से
उत्साह—सहित बेरोक !
किन्तु, न तुम मा, घबराती हो
यह विषाद का बादल देख ;
होता मुख न मलीन तुम्हारा,
जरा नहीं चिन्ता की रेख !
दलित सर्पिणी-सी कर उठती
हो तुम उसी काल फुत्कार !
'परवा नहीं, गये यदि राजा ;
रानी नहीं मानती हार !'
'स्वामी की हत्या का लेगी
अब रानी अरि से परिशोध ;
सिंह गया, जाने दो, देखे
विश्व सिंहिनी कर अब क्रोध !'
मैं कहता हूँ,- 'जननि! अभी तो
जीवित है तेरा यह लाल !
तू चुप बैठ, मुझे जाने दे,
मैं पहनूँगा जय की माल !'
लगा हृदय से तुम लेती हो
मुझे चूम कर बारम्बार ;—
यही चाहती थी बस, सुनना
मैं तुमसे मेरे सुकुमार !
पाकर आज तुम्हारे—जैसा
पुत्र हुई निश्चय मैं धन्य ;
जाओ, वत्स! तुम्हारा यह
प्रस्थान बने आदर्श अनन्य !'
उड़ती पुनः पताका जय की,
होता विजय-विजय का गान ;
बजा युद्ध का मारू—बाजा,
चले युवक होने बलिदान !
तुम देती हो मुझको रण का
भूषण, धनुष, ढाल, तलवार ;
और, स्वयं अपने हाथों से
करतीं मेरा रण—शृङ्गार !
एक बार फिर नूतन सेना का
होता है मा, संचय ;
मैं नायक बन चलता आगे,
मेरे पीछे सैन्य अजय !
रख कर सिर पर मुकुट, रक्त की
टीका तुम कर देती हो !
अपने पौरुष-मय वचनों से
सब संशय हर लेती हो !
एक बार करता प्रघोष मैं,
महाकाल—सा रण—हुंकार !
मेरे एक इशारे पर ही
होने लगती भीषण मार ।
मैं जिस ओर निकल जाता मा,
मच जाता उस ओर प्रलय ;
यों-ही होती रही लड़ाई,
दिन-भर दोनों में निर्भय !
किन्तु, साँझ-तक घोर युद्ध के
बाद शत्रु के उखड़े पैर !
भाग चले मैदान छोड़ कर
भूल अभी कल तक का बैर !
कितने खेत रहे, कितने घायल,
कितने को दिया खदेड़ ;
बाकी जो बच रहे सिपाही,
कैद किया उनको भी घेर !
विजय—पताका फहराती है ;
एक बार फिर विजयाह्लाद !

दुर्ग—शिखर पर होता उत्सव,
कोटि—कोटि कण्ठों का नाद!
सब सैनिक होते हैं वापिस,
करते महा-विकट रण—घोष;
मैं न लौटता हूँ केवल मा,
इसमें किन्तु, न मेरा दोष!
मिलती है उस ओर विजय-श्री,
इधर वीर-गति मैं पाता;
थका हुआ मैं, वहीं सदा के
लिये शान्ति से सो जाता!
चिन्ता क्या, यदि मेरी वलि से
मातृ-भूमि हो गई स्वतंत्र;
मुझको खोकर तुमने पाया
जय का राज, मुक्ति का मंत्र!
किन्तु, अरे यह क्या मा, तुम तो
मुझसे भी अच्छी कायर!
लो, तत्काल तुम्हारी आँखों में
आँसू ये आये भर!
अच्छा; जाओ, नहीं कहूँगा;
अब न बहाओ जल की धार!
तुम न राज-माता हो मा, मैं
और नहीं वह राज—कुमार!

निद्रा

प्रतिदिन संध्या होते ही क्यों
मेरा प्यारा लल्लन मंजुल
अपनी माता की गोदी में
जाने को हो उठता आकुल?

वह कहता, माँ, मैं सोऊँगा;
मुझे झुला दो, नींद सताती!
माँ कहती, तू सो जा मेरे
लाल, नींद को मैं ले आती!

मा गाने लगती तब लोरी,
कोई मस्त झूमता आता;
औ उसके छूते ही लल्लन
धीरे-धीरे तब सो जाता।

चन्द्रलोक से उतर धरा पर
स्वप्न-देश की परियाँ आतीं!
मौलसिरी की तुनुक डालियों से
सब मिलकर उसे झुलातीं!

चंदा मामा नाव चलाते
आसमान के दुधिया सर में!
लल्लन उसमें तर पहुँचता
मामा के चाँदी के घर में!

वन में पेड़ लगे सोने के;
औ हीरे के पत्ते हिलते!
जिनमें पीले-लाल-गुलाबी
फूल सदा मोती के खिलते!

उड़ने वाले घोड़े पर चढ़
पल में सैर जगत की करता;
लाँघ हिमालय की गिरि-चोटी,
मेघों में स्वच्छन्द विचरता!

जल उठते जब तरु पर जुगनू,
झाड़ी में गा उठती बुलबुल;
लल्लन मा की गोदी में क्यों
जाने को हो उठता आकुल?

जीवन का झरना

यह जीवन क्या है ? निर्झर है ;
मस्ती ही इसका पानी है।
सुख-दुख के दोनों तीरों से
चल रहा चाल मनमानी है !

कब फूटा गिरि के अन्तर से ?
किस अंचल से उतरा नीचे ?
किन घाटों से बह कर आया
समतल में अपने को खींचे ?

निर्झर में गति है, यौवन है ;
वह आगे बढ़ता जाता है ;
धुन एक सिर्फ है चलने की,
अपनी मस्ती में जाता है !

वाधा के रोड़ों से लड़ता ;
वन के पेड़ों से टकराता,
बढ़ता चट्टानों पर चढ़ता,
चलता यौवन से मदमाता !

लहरें उठती हैं, गिरती हैं ;
नाविक तट पर पछताता है,
तब यौवन बढ़ता है आगे,
निर्झर बढ़ता ही जाता है !

निर्झर में गति है, जीवन है ;
रुक जायेगी यह गति जिस दिन,
उस दिन मर जायेगा मानव,
जग दुर्दिन की घड़ियाँ गिन-गिन !

निर्झर कहता है बढ़े चलो ;
तुम पीछे मत देखो मुड़ कर !
यौवन कहता है, बढ़े चलो ;
सोचो मत, होगा क्या चल कर ?

चलना है, केवल चलना है !
जीवन चलता ही रहता है !
मर जाना है रुक जाना ही,
निर्झर यह झड़ कर कहता है !

जन्म

शिशु ने कहा एक दिन—'मा, क्यों
मैं तुझको इतना भाया ?
किस वसन्त–कानन से तूने
मुझको यहाँ चुरा लाया ?
उस दिन ऋतुपति के मधु-स्वर में
कोकिल ने था क्या गाया ?
यह जो तेरा लाल, कहो माँ,
तूने उसे कहाँ पाया ?,

मा बोली—'सुन, लालन मेरे !
तू निर्वासन सहता था ;
तब तू स्वर्ग—पुरी के सुन्दर
राज—भवन में रहता था !
तेरी मधुर कहानी मुझसे
मलयानिल आ कहता था ;
औ प्रिय ! तेरे लिये तभी से
हृदय विकल--सा रहता था !

'तू हँसता जब, फूल बरसते ;
रो कर मोती बोता था !
कमलों की पंखुड़ियों में तू
छिप कर सुख से सोता था !
तारों के सँग क्रीड़ा करता,
तेरा कलरव होता था !
बादल तुझको अपने कंधों पर
बैठा कर ढोता था !

'तितली के पंखों पर उड़ कर
आता मेरे आँगन में;
कभी फूल बन खिल पड़ता तू
मेरे उर के उपवन में!
और कभी मैं तुझे चमकते
बिजली—सी पाती घन में;
क्या न कभी आओगे वापिस?
मैं सोचा करता मन में!

'संध्या के झुटपुट में चिड़िया
जब पेड़ों पर गाती थी,
दूबों की शय्या पर ज्योत्स्ना
चादर—सी बिछ जाती थी;
विमल चाँद को लख कर तेरी
याद मुझे तब आती थी;
तुझको पाने के हित निशि—दिन
मैं व्याकुल अकुलाती थी!

'मन ही मन उस दिन जब मैंने
तुझको लालन, प्यार किया!
तूने मेरे मानस—जग पर
तब अपना अधिकार किया!
तेरे लिये युगों से विह्वल
मुक्त हृदय का द्वार किया;
मेरे प्राणों के वन में
तूने स्वच्छन्द विहार किया!

तेरे लिये किया मंगल—व्रत;
एकादशी, अचल साधन!
गंगा—स्नान किया कार्तिक में,
देव—देवियों का पूजन!
नभ में दीप जलाया घृत का,
दान—पुण्य, गीता—वन्दन!

कितनी बार कराया तेरे
लिये ब्राह्मणों को भोजन!

'बरसों तक तेरी ही स्मृति ने
मेरा जी है बहलाया;
तुझे गोद में लेने अपनी
बाँहों को है फैलाया!
एक दिवस तप हुआ पूर्ण,
मैंने जीवन का वर पाया;
'माँ—माँ' कर मेरे जीवन—धन,
सूने घर में तू आया!

'तेरी छवि ने लालन, मेरे
उर के तारों को छेड़ा!
और, उन्होंने व्याकुल होकर
वंशी के स्वर—सा टेरा!
जब तू था मेरे मानस में;
रूप न था कोई तेरा;
किन्तु, आज तेरी हँसियों से
गूँज रहा आँगन मेरा!'

वर्षा-संगीत

मैं न रहूँगा मा, अब घर में;
मुझको जाने दो बाहर!
देखो, आसमान में छाये
वह—काले काले बादर!
उमड़ रहे घनश्याम गगन में
सरसे, सलोने औ सुकुमार;
एक बूँद के लिये तरसते
जंगल, घाटी, खेत, पहाड़!
नीचे क्षुधित-पिपासित पृथिवी;
श्यामल घन—माला ऊपर!

मैं न रहूँगा मा, अब घर में;
मुझको जाने दो बाहर!

मैं बैठा था; मेरे आगे
पड़ी किताबें थीं दो—चार!
इतने में कोई खिड़की से
जैसे मुझको गया पुकार!
रुक जाऊँ कैसे मा, इस क्षण?
सारा पाठ गया मैं भूल!
इन घड़ियों में कौन अभागा
कहो, जायगा पढ़ने स्कूल?
झुक आये पेड़ों पर, छप्पड़ पर,
ये सघन—सजल जलधर;
मैं न रहूँगा मा, अब घर में;
मुझको जाने दो बाहर!

नाच उठा लो, उस बँगले का
देखो—वहाँ पालतू मोर!
इन्द्रधनुष के पर फैलाकर
करता किस प्रकार वह शोर!
इधर बोलता चातक, कोयल
'कुहू—कुहू' करती उस ओर;
चमक रही बिजली, बादल-दल
गरज रहे नभ में घन-घोर!
कुर्सी छोड़ इधर तो आओ;
देखो तो यह दृश्य अमर!
मैं न रहूँगा मा, अब घर में;
मुझको जाने दो बाहर!

नाच रहे आँगन में लड़के
गा-गा कर मेघों का गान;
खेतों से सर पर गट्ठर ले
दौड़े घर की ओर किसान!

मेघों का आकाश उड़ाती
पूरब से बह चली बयार;
पहले 'टपटप', पीछे 'रिमझिम';
रिम-झिम पड़ने लगी फुहार!
क्या रक्खा है बन्द कोठरी में
इस कमरे के भीतर?
मैं न रहूँगा मा, अब घर में;
मुझको जाने दो बाहर!

कह दो, आज न आयें मास्टर-
साहब, मैं न पढ़ूँगा आज!
छोड़ सकूँगा कैसे, यह जो
मिला मुझे त्रिभुवन का राज!
पड़ी रहेगी स्लेट मेज पर,
पुस्तक-पेन्सिल सब बेकार;
दौड़ूँगा मैं आज सड़क पर;
क्षमा करो—मैं हूँ लाचार!
तुम भी यों बैठी हो कब से?
जरा देख जाओ आकर!
मैं न रहूँगा मा, अब घर में;
मुझको जाने दो बाहर!

मैं भीगूँगा वर्षा—जल में;
गाऊँगा वर्षा—संगीत!
पाया आज प्रकृति ने अपने
बालापन का समय पुनीत!
छू लेगी सुदूर अम्बर को
मेरे व्याकुल उर की चाव!
तैर चली, देखो तो पानी में
कागज की मेरी नाव!
यह मेघों का रूप मनोहर,
कितना प्रिय—कितना सुंदर;
मैं न रहूँगा मा, अब घर में;
मुझको जाने दो बाहर!

झीम रही पेड़ों की डाली,
नभ से बरस रही जलधार;
मिले नदी से नाले, नदियाँ
हुई सिन्धु में एकाकार!
सात—समुन्दर—पार लगेगा
मेरा सोना—भरा जहाज;
इस दुनिया का मैं मालिक हूँ,
यह दुनिया है मेरी आज!
यहाँ देखने को मिलता क्या
बार-बार ऐसा अवसर?
मैं न रहूँगा मा अब घर में;
मुझको जाने दो बाहर!

मोह

यह तरी आज ले जा नाविक!
मुझको उस पार न जाना है;
कल ही तो मैंने जीवन को,
जीवन-धन को पहचाना है!
अरमान पड़े लाखों दिल में;
हसरतें हजारों बाकी हैं!
निर्मोह, अभी तो एक नया
अपना संसार बसाना है!
चलने की इतनी जल्दी क्या
है पड़ी तुझे नाविक, निर्मम!
रुक जा दो दिन भी और, अरे!
फिर चिन्ता क्या? चल देंगे हम!
पत्थर का तो न बना है क्या?
इतना अधीर तू क्यों, भाविक?
मैं आज न जाऊँगा निश्चय;
यह तरी फिरा ले जा नाविक!

वह भी था एक दिवस मंगल,
था याद मुझे वादा अपना!
जानें, किस मधु की रजनी में
देखा था मैंने वह सपना?
वह सपना था या मदिरा थी?
मुझको आई मदहोशी—सी!
उस बेहोशी में सीखा था
मैंने यों जीवन—भर तपना!
है कौन बिना मेरे व्याकुल?
किस रूपवती का गृह सूना?
मेरे आगम से किसका सुख
कह तो, हो जायेगा दूना?
वह घाट अभी-तक वैसा-ही,
यह सरिता वैसी—ही चंचल;
उतरा था प्रथम बार तट पर;
वह भी था एक दिवस मंगल!

सच है कि किसी दिन रो-रो कर
मैंने ही तुम्हें बुलाया था;
तू पहली बार विहँस कर जब
मेरे आँगन में आया था!
उस दिन कुछ मुझको होश न था,
क्या-क्या कह डाला था तुझको!
मेरे उस भोलेपन पर प्रिय,
जानें, क्यों तू मुसकाया था?
उस रोज न कोई था अपना;
कोई उस दिन न पराया था!
नादान न कोई यों आकर
दिल में बन दर्द समाया था!
आँखें मलते ही बदल गई
दुनिया, जब सुबह उठा सोकर;

आरसी

मैंने ही तुम्हें पुकारा था
सच है कि किसी दिन रो-रो कर !

इस दुनिया में कितना सुख है !
नाविक, कितना आकर्षण है !
वन - वन में यौवन, जीवन है ;
उपवन - उपवन में गुंजन है !
मैं भूल सकूँगा यह कैसे ?
मैं जा न सकूँगा छोड़ इसे !
सौ--सौ बाँहों से बँधा यहाँ
मेरे जीवन का क्षण-क्षण है !
मैं इस बन्धन को तोड़ सकूँ,
मुझमें न आज है वह साहस ;
मैं जाने को हूँ बाध्य नहीं,
कोई मुझको कर रहा विवश !
सबके अन्तर में स्नेह यहाँ ;
सब सुन्दर हैं, सब हँसमुख हैं !
सब प्रेमी हैं मेरे मन के,
इस दुनिया में कितना सुख है !

तू नाव बाँध निर्जन तट पर
नाविक, क्या सोच रहा मन में ?
प्रतिविम्ब देखता क्या अपना
मेरे मानस के दर्पण में ?
टकटकी बँधी है क्यों तेरी ?
क्यों तेरा मुँह कुम्हलाया है ?
किसकी तस्वीर उतर आई
ओ नाविक, तेरे लोचन में ?
हो मत उदास, हो मत विषण्ण ;
मेरा जीवन - तरु हिलता है !
तू हँसता क्यों न अरे, इससे
मुझको अशेष-बल मिलता है !

खिलता है फूल यहाँ मेरी
बस, एक अनोखी आहट पर ;
है देख रहा किसको अपलक
तू बाँध नाव निर्जन तट पर ?

संसार मानवों का सुन्दर,
यह चिर-सुन्दर मेरा भूतल ;
बुझती है प्यास यहाँ मेरी,
करता सोतों का जल छल--छल !
चाँदनी लिपट जाती मुझसे,
लतिकाएं मुझको अपनातीं ;
मेरे प्राणों में मलयानिल
सौरभ भर जाता है निर्मल !
ये केकी मुझको भाते हैं ;
गाते हैं कोकिल-शुक वन में !
यह दृश्य मिलेगा मुझे कहाँ ?
यह छवि उस अमृत-निकेतन में ?
यह एक प्रलोभन है, बहता
सौन्दर्य यहाँ बन कर निर्झर !
आबद्ध मुझे करता निशि-दिन
संसार मानवों का सुन्दर !

मत बाँह पकड़ तू खींच मुझे ;
तेरी यह नाव पुरानी है !
तू मुझपर जो विश्वास करे,
यह भी तेरी नादानी है !
उठती हैं सागर में लहरें ;
आसार आज ये आँधी के !
यह घटा उठती है काली-सी,
यह हवा बनी दीवानी है !
खो दे न कहीं मुझको, पागल !
हो जाय न नौका मग्न कहीं ;

आकाश युगों से भूखा है,
प्यासी क्या लहरें आज नहीं ?
मैं अनुरागी जल जाऊँगा,
आँसू से मत तू सींच मुझे !
ओ, मान हठीले परदेसी !
मत बाँह पकड़ कर खींच मुझे !

क्या तेरे नन्दन - कानन में
ये फूल मनोहर खिलते हैं ?
यों-ही दो प्रेमी आपस में
उन्मुक्त हृदय हो मिलते हैं ?
होती हैं आँखें चार वहाँ ?
क्या मधुर-मधुर रस की बातें ?
सुरभित वसन्त के श्वासों से
वन -- वन के पल्लव हिलते हैं !
ओ मायावी, सच बोल, वहाँ
एकान्त नहीं क्या खलता है ?
क्या विरह वहाँ भी इसी तरह
सुध से बेचैन तड़पता है ?
उन्माद यहाँ मिट जाने में,
उल्लास यहाँ आलिङ्गन में ;
होती हैं आँख-मिचौनी यों
क्या तेरे नन्दन-कानन में ?

सुन, निठुर ! कदम्बों के वन में
वंशी वह कौन बजाता है ?
वह कौन शिला पर बैठ
प्रेम का गीत विमुग्ध सुनाता है ?
किसके सँग नृत्य करेंगी अब
युवतियाँ, हाय, लीला-गृह में ?
जाने दे, देख, वहाँ कोई
इंगित से मुझे बुलाता है !

वचपना नहीं करते, भाई !
अब भी जैसे कुछ आशा है ;
वह कसक अभी तक मिटी नहीं,
अधरों पर एक पिपासा है !
कैसी अकुलाहट छाई है
संध्या के अलस-समीरन में ?
किसका नूपुर यह बजता है
सुन, निठुर ! कदम्बों के वन में ?

ओ नाविक, ओ नाविक मेरे !
तू नाव आज ले जा वापिस ;
आँखें भर आयेंगी गुल की,
ठंढा पड़ जायेगा आतिश !
वह देख गुलाबों के मुँह पर
झुकती है काली छाया-सी ;
बुलबुल दे देंगे जान तुरत,
मर जायेगी रो--रो नर्गिस !
है मोह मुझे इस दुनिया से,
इन फूलों से है प्यार मुझे ;
तितलियाँ भली लगतीं मुझको,
करना इनसे अभिसार मुझे !
है शेष पड़ा सारा जीवन,
मैं पैर पकड़ता हूँ तेरे !
तू सिर्फ आज भर छोड़ मुझे ;
ओ नाविक, ओ नाविक मेरे !

कल-रव

प्रथम बार जिस दिन जीवन में
शिशु का कंठ मधुर फूटा ;
उस दिन वाणी की वीणा का
एक तार सहसा टूटा !

मधुऋतु की कुंजों से कोकिल
बोला—यह मेरा स्वर है!
शुक ने कहा—यही तो मेरी
निखिल साधना का वर है!
निर्भर ने हँस कर बतलाया—
यह मेरे उर का कलकल!
सरिता बोली चकित—इसीमें
मेरी लहरों की हलचल!
युग-युग से पाषाण मूक है;
नीरव युग-युग से तरु-वर!
हाय, न जानें, किस अतीत
युग से यह मौन विपुल अम्बर!
बुलबुल बोला—अरे, सुनो तो;
यह तो मेरी ही बोली!
कहा पवन ने—किसने मेरे
स्वर में यह मिसरी घोली?
मन ही मन गायक झुँझलाया;
ईर्ष्या से वंशी पगली!
वन-वन में मारी-मारी-सी
फिरती प्रतिध्वनि गली-जली!
मुसकाई मा—यह तो लालन,
मेरे प्राणों का गुंजन;
हँसा जगत सुख से—मेरा ही
होता इसमें विम्बित मन!
व्याकुल होकर कहा मधुप ने—
ये ही मेरे गीत मधुर!
मैं चुप हूँ, अपराध न मेरा;—
लज्जित-सा बोला नूपुर!
वह कवि था, जो उठा विहँस कर-
तुम क्या जानो यह माया?
हे कोकिल, हे निर्भर, तुमने
शिशु से ही कल—रव पाया!
उस दिन पृथिवी के समस्त
वन-विहगों ने जी-भर लूटा;
प्रथम बार आँगन में जिस दिन
शिशु का कंठ मधुर फूटा!

जीवन-वसन्त

मैंने वसन्त के पुष्पों से
पूछा–'तुम कितने हो सुन्दर?'
वे बोले–-'हाँ, हमने पाया
है विधि से सुन्दरता का वर!
हम उपवन में प्रति-दिन खिलते,
प्रतिक्षण हँसते ही रहते हैं!
हम झड़ जाते, मुरझा जाते;
पर, यह न किसीसे कहते हैं!'

मैंने वसन्त के तरुओं से
पूछा–'तुम कितने हो शीतल?'
वे बोले–-'हाँ, हम में आये
हैं नूतन ये पल्लव कोमल!
रस मिट्टी का लेकर, देते
हम फूल और फल मधुर-पके;
यह सघन हमारी छाया है,
रुक जाते राही जहाँ थके!'

मैंने वसन्त की लतिका से
पूछा–'तुम कितने हो कोमल!'
वह बोली–-'हाँ, बढ़ती जाती
मैं अपने पथ पर हूँ प्रति-पल!
सम्बल का ज्ञान नहीं मुझको,
निज दुबलता का ध्यान नहीं;
मैंने सीखा है झुकना; है
मुझमें गौरव-अभिमान नहीं!'

मैंने वसन्त—मलयानिल से
पूछा—'तुम कितने हो निर्मल !'
वह बोला—'मैं वितरण करता
अग-जग में कुसमों का परिमल !
मैं कुंज-कुंज का सौरभ ले,
घर-घर में सब को दे आता ;
सुख-सुषमा-शीतलता देकर,
जग की दुख-ज्वाला ले आता !'

मैंने वसन्त के विहगों से
पूछा—'तुम कितने हो चंचल !'
वे बोले—'हम गाते रहते
आनन्द-गीत, प्रतिक्षण, प्रतिपल !
वन-उपवन में भरते रहते
अपना कल गान, विकल कूजन !
हम में नवजीवन का स्वर है ;
हम में है भरा नवल यौवन !'

मैंने वसन्त--वन को देखा,
फिर एक बार देखा भू को ;
मैंने मलयानिल को देखा,
फिर भू की इस जलती लू को !
उस जग में फूलों की दुनिया,
नव-क्रीड़ा- कौतुक करती थी ;
इस भू में, मनुजों की टोली
रो-रो कर निशि-दिन मरती थी !

मानव, यह दिग्विजयी मानव,
पद-दलित आज रे उत्पीड़ित ;
जग में अशेष चीत्कार, दैन्य,
मानव के शोणित से जीवित !

कंकाल—प्रेत—से भयकारी,
यह लगता है, जैसे दानव ;
व्याकुल श्मशान के रोदन में
यह होता है सुख का उत्सव !

सरिता बहती ही रहती है ;
कोकिल-गण गाते ही रहते !
उन्मद वसन्त के वैभव में
आनन्द मनाते ही रहते !
हँसते ही रहते फूल सदा,
पल्लव-दल हिलते ही रहते ;
उषा मुसकाती ही रहती,
नीरज—दल खिलते ही रहते !

जिन में जीवन है, यौवन है ;
वे सुख से इठलाते ही !
चाँदनी उतरती भूतल पर,
मधुकर-गण वन में गाते ही !
कर लेते ही मन की बातें,
अपना संसार बसाते ही ;
वल्लरियाँ चढ़तीं पेड़ों पर,
तरु का आलिङ्गन पाते ही !

फूलों की दुनिया भी पल-भर,
मधुऋतु का वैभव भी नश्वर ;
फिर भी न जगत में जीवन का,
मधु का प्रवाह रुकता क्षण-भर !
मैंने उस दुनिया को देखा,
वन-वन में छाया था वसन्त ;
फिर, एक बार देखा भू को,
हा-हा-रव मुखरित था दिगन्त !

राजा साहब

अरे, हटो जी, राह छोड़ दो ;
राजा साहब आते हैं !
दोनों तरफ अनेक सिपाही
खड़े सलाम बजाते हैं !
आगे—आगे मंत्री चलता ;
पीछे से सेनापति है !
तुतली—सी बोली है इनकी,
भोल—भाली—सी मति है !

कोट-पैंट पर हैट चढ़ा कर
डगमग पैर बढ़ाते हैं ;
अरे, हटो जी ! राह छोड़ दो ;
राजा—साहब आते हैं !

अरे, सुनो जी, शोर करो मत ;
राजा साहब गाते हैं !
और साथ ही हारमोनियम
भी ये खूब बजाते हैं !
कंठ सुरीला है यों, धोबी
दौड़ वहाँ पड़ता सुन कर ;
और नाचते उछल—कूद कर
जैसे पेड़ों पर बन्दर !

हाथ चलाते, मुँह मटकाते,
कहते जरा लजाते हैं ;
अरे, सुनो जी, शोर करो मत ;
राजा साहब गाते हैं !

लो देखो, किस ठाट-बाट से
राजा साहब खाते हैं ;
रसगुल्ले, सन्देश, मलाई
मोहन—भोग उड़ाते हैं !
ऐसा लगता, जैसे कोई
बकरी करती है पागुर ;
बढ़ कर पेट हुआ है मानो,
बैठा हो चौबे माथुर !

दाँत एक भी नहीं; मसूढ़ों से
किस भाँति चबाते हैं ;
लो, देखो, किस ठाट-बाट से
राजा साहब खाते हैं !

अरे, न बोलो, झोली भर कर
राजा साहब लाते हैं ;
सोना—चाँदी, रतन-जवाहर,
मोती — लाल लुटाते हैं !
कभी बैठ जाते धरती पर ;
कभी राज—सिंहासन पर ;
मौजी जीव धूल में लेटे,
पैर पटकते इधर – उधर !

हँस देते हैं कभी खुशी से,
कभी मन्द मुसुकाते हैं ;
अरे, न बोलो, झोली भर कर
राजा साहब लाते हैं !

अरे, हँसो मत, बुरा न मानो ;
राजा साहब जाते हैं !
क्या है अपना नाम, किसीको
कुछ भी नहीं बताते है !
जूते की फीते ढीले हैं ;
उसे खोलते हैं झुक कर !
पड़ती जिसपर नजर सामने,
उसे देख लेते रुक कर ;

रो देते हैं जब, नौकर
मुश्किल से इन्हें मनाते हैं ;
अरे, हँसो मत, बुरा न मानो ;
राजा साहब जाते हैं !

मरण-पथिक

एक ही पथ पर युगों से मैं निरन्तर चल रहा हूँ !

एक दिन हो जायगा निश्चय कभी अवसान मेरा !
और, विरहातुर करेगा विश्व को विष-पान मेरा !
जब रहा जीवित, कभी तुमने कुशल भी तो न पूछी ?
पर, करोगे मृत्यु के उपरान्त तुम सम्मान मेरा !
मैं उसे क्या देख पाऊँगा, नयन मुँद जाँयगे जब ?
घोर तृष्णा की चिता में मैं शलभ-सा जल रहा हूँ ;
एक ही पथ पर युगों से मैं निरन्तर चल रहा हूँ !

मृत्यु के कीटाणुओं को मैं निमंत्रण दे चुका हूँ ;
और, अधरों पर प्रिया का गरल-चुम्बन ले चुका हूँ !
पा चुका सन्देश अन्तिम मैं विकल पुर-वासियों का ;
काल पारावार में मैं आयु-नौका खे चुका हूँ !
स्वप्न भी यदि बन सकूँ मैं, तो अमित सौभाग्य मेरा ;
मोम के लघु-दीप-सा भव-ताप में मैं गल रहा हूँ ;
एक ही पथ पर युगों से मैं निरन्तर चल रहा हूँ !

जा रहे कितने धुरन्धर वीर, फिर तो गौण हूँ मैं !
तुम न पूछो आज, प्रिय मुझसे-तुम्हारा कौन हूँ मैं ?
बुलबुला था एक, उठकर मिट गया तत्काल ही जो ;
देख यह व्यवहार जग का, इसलिये तो मौन हूँ मैं !
किन्तु, प्राणों की उमंगों को कुचलना भी कठिन है !
मलिन, अस्तोन्मुख तरणि-सा मैं क्षितिज से ढल रहा हूँ ;
एक ही पथ पर युगों से मैं निरन्तर चल रहा हूँ !

ले तुम्हारा शाप, तुमको दे दिया वरदान मैंने !
और, रो-रोकर किया निशि-दिन तुम्हारा गान मैंने !
कामना की सर्वदा कल्याण की मैंने तुम्हारी ;
सह लिये हँस-हँस समझ कर सुमन विष के बाण मैंने !
धूल में मिलना किसी दिन; मान, निन्दा-स्तुति सभी खो-
हाय, फिर भी तो जगत को बेतरह मैं खल रहा हूँ !
एक ही पथ पर युगों से मैं निरन्तर चल रहा हूँ !

पता किसको, कहाँ मैंने प्रणय की बेलि बोई ?
और, मेरे आँसुओं से रात कितनी बार रोई !
हाय, पत्थर की जगह मैं हो गया मानव अभागा !
मैं मरूँगा ; क्या न मुझको रोक सकता आज कोई ?
भूल जाऊँ मैं उपेक्षा ; मान औ अपमान सारे !
श्वास-कारागार में वन्दी विहग मैं पल रहा हूँ !
एक ही पथ पर युगों से मैं निरन्तर चल रहा हूँ !

कर विकृत मस्तिष्क मैंने, खो दिये अपने नयन भी !
दे दिया मैंने तुम्हें प्रतिभा-प्रभा का शेष कण भी !
तुम बना दोगे वहाँ पाषाण का उत्तुङ्ग स्मारक !
पर, यहाँ तो सो न पाया शान्ति से मैं एक क्षण भी !
एक क्षण भी जी सका निश्चिन्त होकर मैं न जग में !
कब सफल था ? दुःख हो जो, आज मैं निष्फल रहा हूँ !
एक ही पथ पर युगों से मैं निरन्तर चल रहा हूँ !

तुम कभी क्या प्राण, समझोगे न-मेरे भी हृदय है !
और, उसमें भी किसीके प्रति क्षमा, करुणा, प्रणय है !
मैं मनुज हूँ ; और, मेरी ये सभी कमजोरियाँ हैं !
किन्तु, मानव के विचारों में विधाता का प्रलय है !
मैं कहूँ क्या, जब चिता ही पुष्प-शयनागार मेरा !
मार्ग की कठिनाइयों को व्यर्थ ही मैं दल रहा हूँ !
एक ही पथ पर युगों से मैं निरन्तर चल रहा हूँ !

दे सकेंगे सुख मुझे क्या शब्द कुछ सुन्दर तुम्हारे ?
और, क्या उस पार पहुँचेंगे करुण-प्रस्ताव सारे ?
तुम करोगे बाद मेरे शोक की कितनी सभाएं ;
सुन सकूँगा, किन्तु, क्या अपनी विजय के मैं नगारे ?
पा सकोगे पुनः स्वजनों में कभी जीवित मुझे क्या ?
देख—कैसे आज अपने आपको मैं छल रहा हूँ !
एक ही पथ पर युगों से मैं निरन्तर चल रहा हूँ !

वन्दी की वेदना

सोचता हूँ मैं, कहीं यदि आज होता एक बुलबुल ;
तो, न मरता यों व्यथा की आग में दिन-रात घुलघुल।
चाँदनी में बैठ सरिता के किसी सुनसान तट पर।
मैं गुलाबों को सुनाता प्रेम का संगीत मंजुल ;
चाहता जिसको, उसी गुल को हृदय से प्यार करता ;
मैं न निष्फल प्रेमियों-सा विरह का उंच्छ्वास भरता।
फूँकता मैं कामना की बाँसुरी में मिलन-वाणी ;
रोक कर कलियाँ मुझे कहतीं प्रणय-सुख की कहानी।
मुक्त रहता कण्ठ-स्वर; स्वच्छन्द यौवन-प्रेम-लीला।
बन स्वयं राजा, बनाता मैं किसीको राज-रानी।
नित्य-प्रति रोता किसीकी याद में होकर न आकुल।
सोचता हूँ मैं, कहीं यदि आज होता एक बुलबुल।

सोचता हूँ मैं, कहीं यदि आज होता एक कोकिल ;
तो, सुखी रहता अधिक-ही इस मनुजता से अनाविल।
डोलता फिरता न जग में यों हृदय का भार लेकर।
प्रति-दिवस मधु-ऋतु मनाता संगिनी के साथ हिल-मिल।
दो विकल प्रेमी-हृदय एकान्त में उन्मुक्त मिलते ;
एक शाखा पर प्रणय के दो मनोहर पुष्प खिलते।
कूकता आनन्द से, उन्माद की धारा बहाता।
डाल जो मुझको सुहाती, मैं उसी पर बैठ जाता।
मैं वहीं रहता, जहाँ मेरे हृदय की प्यास मिटती ;
चाहता जिस कुंज-वन को, मैं उसी में घर बनाता।
शूल-सी चुभती किसीकी स्मृति न नयनों में अतन्द्रिल;
सोचता हूँ मैं, कहीं यदि आज होता एक कोकिल।

सोचता हूँ मैं, कहीं यदि आज होता एक चातक ;
तो, स्वयं बनता न अपने दग्ध प्राणों का विघातक।
अग्नि में जलता न जीवन-भर निराशा-वेदना की ;
आ कभी तो मेघ-स्वाती का मिटाता तृषा-पातक।
प्रेम का अपमान, प्रेमी-जन नहीं होता तिरस्कृत ;
औ प्रिया के मंजु मानस से न परिणय-भाव विस्मृत।
एक आहट पर न जग में रोष का तूफान आता ;
औ घृणा करता न कोई, व्यङ्ग का विष-शर चलाता।
बोल उठता कुंज से ज्यों-ही किसीका नाम लेकर ;
प्रेयसी का, व्योम से इंगित मुझे तत्क्षण बुलाता।
विश्व का उपहास-भय करता न तो गृह से पलातक ;
सोचता हूँ मैं, कहीं यदि आज होता एक चातक।

सोचता हूँ, आज होता मैं अगर वन का कलापी ;
तो, कहीं होता अधिक ही एक भूपति से प्रतापी।
इन्द्रधनुषी रंग मेरा, विश्व-मोहन भाव-भंगी ;
मुग्ध वर्षा-नृत्य करता प्रेम की पावन सुरा पी।
प्रेम-पथ के मधु-मिलन में पवन भी बाधक न बनता;
विघ्न क्या, सहयोग ही देती वनों की चिर-विजनता।
एक ही प्रति-बन्ध, ग्रीवा में मधुर भुज-पाश होता ;
मुक्ति का कान्तार सम्मुख, मुक्ति का आकाश होता।
एक ही उल्लास, होती पास में जीवन-सखी भी ;
स्वर्ग के दो प्राणियों का एक ही इतिहास होता।
दूर तो रहता दृगों से वन्दियों का विश्व पापी ;
सोचता हूँ, आज होता मैं अगर वन का कलापी।

सोचता मैं, क्यों न होता एक साधारण विहग भी ?
औ न क्यों अब-तक रहा मैं जगत-जीवन से अलग भी।
कैदियों के इसे नरक में प्यास से मैं मर रहा हूँ।
एक कारागार से अच्छा नहीं यह क्रूर जग भी।
रूप है—पर, मूँद लो आँखें; न इनको देखना है।
एक वह चितवन, जिसे अब प्यार करना भी मना है।
फूल तो लाखों खिले, कैसे इन्हें पर तोड़ लूँ मैं ?
कह रहा माली, न इनको मैं छुऊँ; बच कर चलूँ मैं।
दीप हँसता; किन्तु, शलभों को न जलने की इजाजत।
बोलना भी पाप, मिँहदी क्यों उंगलियों में मलूँ मैं ?
चल न सकता बेड़ियों से मैं बँधा जब एक पग भी ;
सोचता हूँ, क्यों न होता एक साधारण विहग भी।

देवता के द्वार पर

आज यहाँ सुमनों का उत्सव ;
छाया उपवन में मधुमास !
इन कुंजों में रुका अतिथि-सा
मलय-मेरु से आ वातास !
डाल-डाल पर गाती कोयल ,
मुकुल-मुकुल पर सुख का हास;
रेणु—रेणु से फूट चला
निर्झर—सा वसुधा का उल्लास !
आओ पथिक, बैठ लो क्षण-भर;
मेरे इस कदम्ब के पास !
आज , यहाँ सुमनों का उत्सव ;
छाया उपवन में मधुमास !

मैं न कहूँ , मधुपों से-भर दो
मेरी वीणा में गुंजार ;
कैसे पूछूँ भी कोकिल से ,
कहाँ आज जीवन का ज्वार ?
किसके सदय हृदय में रख दूँ
मैं अपनी मधु व्यथा उतार ?
भर दूँ हाय , बताओ मैं किन
नयनों में यह लाज अपार ?
काँप रहे कर-चरण भयाकुल ,
कौन सँभालेगा आधार ?
मैं न कहूँ , मधुपों से-भर दो
मेरी वीणा में गुंजार !

लो , आई अब यह पुजारिनी
भक्ति—भावना से इस बार ;
विश्व—देव के कनक-भवन में
लेकर अपना लघु उपहार !
कुंकुम नहीं , न अक्षत-मलयज ;
कौन करेगा अंगीकार ?
हाय , मल्लिका के इन नीरस
सुमनों को निर्गन्ध असार ?
खोल कल्पने , आज भारती के
सुवर्ण-मन्दिर का द्वार ;
लो , अब आई यह पुजारिनी
भक्ति - भावना से इस बार !

लज्जित हूँ मैं , यहाँ युगों से
बैठे प्रेमी भक्त अपार ;
कहीं मुरज की ध्वनि सुन पड़ती,
कहीं विपञ्ची की झंकार !
आज कंठ मेरा कुंठित-सा ;
कैसे मैं गाऊँ सुकुमार ?
देख अकिञ्चनता यह मेरी
हाय , कहेगा क्या संसार ?
कर दो मेरे दुर्बल मानस में
नव साहस का संचार ;
लज्जित हूँ मैं , यहाँ युगों से
बैठे प्रेमी भक्त अपार !

हाय , जहाँ करती रस-वाणी
नित मणि-रत्नों से शृङ्गार ;
कौन करेगा भला बताओ ,
मेरे उपल-कणों को प्यार ?
तब क्या लौट चलूँ ? ना , पूजा
का तो है सबको अधिकार !
अर्थ-हीन शिशु के गीतों-सा
यह मेरे उर का उद्गार !
कैसे पाऊँ स्थान ; चकित हूँ
स्वयं देख महिमा—विस्तार ;
हाय , जहाँ करती रस-वाणी
नित मणि-रत्नों से शृङ्गार !

चंदा मामा

मुझे बुलाते चंदा मामा,
मैं मामा—घर जाऊँगा।
और, वहाँ से मा, मैं तेरे
लिये खिलौना लाऊँगा।
मैं खेलूँगा, तू देखेगी
मुझको अचरज से दिनभर।
मा, मुझको तू प्यार करेगी
गोदी में लेकर, हँस कर!
गीत सीख कर जो आऊँगा,
तुझको यहाँ सुनाऊँगा।
मुझे बुलाते चंदा मामा,
मैं मामा—घर जाऊँगा।

रात—रात भर तेरे मुँह से
मैंने सुनी कहानी है।
चंद्र—लोक में रहती जो, वह
चाँद—परी भी जानी है!
तुम क्या समझ रही हो, मुझको
डर होगा कुछ भी पथ में?
मा, मैं सुख से बैठ रहूँगा
धवल चाँदनी के रथ में!
जा सकता मैं वहाँ अकेला,
राह मुझे पहचानी है!
रात—रात भर तेरे मुँह से
मैंने सुनी कहानी है!

तुमने कुछ भी कहा न, मामा
यहाँ कभी क्या आते हैं?
कब रेशम के झूले में
मुझको वे बिहँस झुलाते हैं?
अबतक भी तुमने न बताया,
कैसी है मेरी मामी?
उसके घर में भी बच्चे हैं,
जैसे ये श्यामू, रामी!
और वहाँ भी इसी तरह क्या
गुरुजी उन्हें पढ़ाते हैं?
तुमने कुछ भी कहा न,
मामा यहाँ कभी क्या आते हैं?

ताड़ों के ऊपर मेघों के
सिर पर मामा की बाड़ी!
चंदा मामा के आँगन में
एक चमेली की झाड़ी!
उसमें फूल खिले होंगे जो,
मैं चुन—चुन कर गूँथूँगा;
रोज बगीचे में घूमूँगा,
मनमाना फल तोड़ूँगा!
चढ़ने को मामा देंगे मा,
क्या न मुझे मोटर—गाड़ी?
ताड़ों के ऊपर, मेघों के
सिर पर मामा की बाड़ी!

मा, मैं मामा के घर से
अति शीघ्र लौट आ जाऊँगा!
दीप जलाऊँगा तारों के,
जल में उन्हें बहाऊँगा!
मैं बरसूँगा बादल हो कर,
चमकूँगा बिजली बन कर!
फूल खिलाऊँगा वन—वन में,
तुझे हँसाऊँगा दिन—भर!
तितली बन कर उड़ जाऊँगा,
पंछी बन कर गाऊँगा;
मा, मैं मामा के घर से
अति-शीघ्र लौट आ जाऊँगा!

पर्वत की चिन्ता

अवनत कर पृथिवी पर मस्तक
देव, मुझे रजकण कर दो;
इस विराट गौरव को मेरे
एक प्रतनु-अणु में भर दो!
    यह विशालता, कभी न जिससे
    जगती का उपकार हुआ;
    ऐसी उन्नति व्यर्थ, स्वयं ही
    जो धरणी का भार हुआ!
लज्जित हूँ मैं आप, गगन में
इस प्रकार उठ आया क्यों?
जग-जननी की मृदुल गोद तज,
महाशून्य यह पाया क्यों?
    मुझसे तो ये पादप अच्छे,
    प्यार मनुज का जो पाते;
    ये दूर्वादल, ये लतिकाएं;
    जिनके गीत मधुप गाते!
यहाँ मानवों की गति दुर्लभ,
पंछी भी न कभी आते;
ऐसा मेरा द्वार, जिधर से
कोई पथिक नहीं जाते!
    पहुँच न पाती यहाँ धरा की
    आर्त्त-गिरा, करुणा-वाणी;
    देख न सकतीं दीन-जनों को
    मेरी आँखें पाषाणी!
रखता तरल तुषार-राशि में
अन्तर के अंगार जुगा;
यह अजेय हिम का मरु, जिसपर
कोई भी अंकुर न उगा!
    हाय, शून्यता ही लेकर मैं
    अन्तिम बार मरूँगा क्या?
    ऐसी पुंजीभूत अहंता
    पाकर प्रभो, करूँगा क्या?
आज मुझे अपनी ही महिमा
नाग-पाश में बाँध रही;
दे दो वही बिछौना मेरा,
फूलों की सुकुमार मही!
    जो जग के बदले अपने को
    मैं पहचान कहीं पाता;
    इच्छा के अनुकूल जगत के
    कूल-कूल से उड़ आता!
अधिक सुखी होता तो ऐसी
जड़ता से निश्चय भगवन!
किसने पंगु बनाया मुझको?
छीन लिये उर के लोचन!
    मेरे ही शिखरों पर रवि-शशि का
    अन्तिम क्षय, प्रथम उदय;
    फिर भी मेरे मनसा-जग से
    तमसा हुई न अन्तर्लय!
मुझे तिरस्कृत ही रहने दो,
एक अकिंचन कण बनकर;
परिणत कर दो कुलिश-कलेवर
मेरा परिमल में मृदुतर!
    झुक जाऊँ चरणों में जग के—
    आज, मुझे ऐसा वर दो;
    देव, विपुलता मेरी लघुतम
    रजकण में सीमित कर दो!
नहीं नगेश, तुम्हारा जीवन
सदा तुम्हींमें है सार्थक;
ले रज की तनिमा तुम जीवित
रह सकते हो प्रिय, कबतक?
    लघुता काम्य नहीं जीवन में,
    भाव हृदय के हों लघुतर;

श्रेष्ठ न क्या संसार-त्याग से
कर्म और कर्त्तव्य अमर ?
विपुल तुम्हारे गुहा-नीड में
कितने प्राण सदा पलते ;
महच्छाय अंचल में निशि-दिन
जीव-जन्तु कितने चलते !
पयोमुखी सरिताएं चिर-नव
भूतल का सिंचन करतीं ;
गिरे, तुम्हारे हृदय-कोष से
महा-महासागर भरतीं !
बन्धु , न ऐसी दुर्बलता लो ,
जो जीवन का शाप बने ;
एक श्वास में तुम उड़ जाओ ,
हलकापन ही पाप बने !
होते तुम न कहीं महिमामय ,
करता कौन धरा-धारण ?
तुम लघु होकर भी महान हो ,
गुरु होकर भी साधारण !
सहता वज्र-प्रहार वक्ष पर
कौन इसे कर प्रिय , वारण ?
हाय , रत्नगर्भा कहलाती
वसुधा क्यों , किसके कारण ?
धोते रहो कालिमा भव की ,
करो कलुष का प्रक्षालन ;
जिनसे इतने उच्च हुए हो ,
उन धूलों का भी पालन !
स्वयं न तुम रजकण बन जाओ ;
किन्तु , करो राजस को रज !
देखोगे जग को उतना ही ,
ऊपर उसे उठोगे तज !
प्रिय , महान होकर भी तुमने
सेवा-भाव नहीं छोड़ा ;
उठ कर भी तो नभ में
मुँह न कभी भू से मोड़ा !
तुम्हीं रोक पथ पाथोदों का
विवश बरसने को करते ;
लेकर स्नेह तुम्हारे उर का
पवन ताप भव का हरते !
यह हिम, व्यर्थ जिसे तुम कहते,
कनक-किरीट बना जग का !
रजकण होकर बन सकते क्या
आश्रय अहि-मृग हरि-खग का?
गरिमा ही तो धर्म तुम्हारा ,
लघिमा की इच्छा न करो ;
मरण श्रेय होता स्वधर्म में ,
किन्तु नहीं परधर्म वरो !
यह विरक्ति होगी जीवन से ,
ऐसे जग की चाह न हो ;
जहाँ धूल से ठोकर खाकर
उड़ते चारों ओर रहो !

रूप की हाट

आज , यहाँ बाजार लगा है ; अलबेलों का मेला है !
क्रय-विक्रय चालू है—गाँहक , सौदो में झमझेला है !
कटते केवल चाँदी–सोना !
पैसे–धेलों से क्या होना ?
यहाँ धूल में मोहर मिलते ;
इतर-फुलेलों से पद धोना !
लुट जाती कुबेर की दौलत एक मिनट में—रेला है !
आज , यहाँ बाजार लगा है ; अलबेलों का मेला है !
राजा आते , मंत्री आते , आते देहाती—नागर ,
सेठ–रईस , सिपाही–राह , मालिक–नौकर , सौदागर !

खीमे खड़े, पड़ाव बसेरा ;
जगह–जगह पर तम्बू-डेरा।
बचा न कोई कहीं अछूता ;
साधू–चोर, महंत–लुटेरा।
भीड़–लड़ाई और शोर–गुल ; चारों ओर भरा सागर ;
राजा आते, मंत्री आते, आते देहाती––नागर।

परियों का जमघट, यह उत्सव यक्षों का, नन्दनवन है ;
विकसित है वसन्त तरु–तरु में, मलय-पवन का स्पन्दन है।
मत्त सभी सुरपुर के प्राणी ;
शिथिल निकुंजों में रति-रानी।
लेटे सुख से शची-शचीपति ;
मीनकेतु कह रहा कहानी।
नाच रही उर्वशी–मेनका ; गन्धर्वों का गायन है।
परियों का जमघट, यह उत्सव यक्षों का, नन्दन-वन है।

सुन्दरता की इस दुनिया में रंजोगम का नाम नहीं ;
यहाँ सभी मनचले मुसाफिर, भिखमंगों का काम नहीं।
टूट रहे हैं प्याली-प्याले ;
सभी एक-से एक निराले।
जगमग करते मानिक-पन्ने ;
खा ले, पी ले, मौज उड़ा ले।
चले इशारे, कहीं अदाएं—क्षण भर का विश्राम नहीं।
सुन्दरता की इस दुनिया में रंजोगम का नाम नहीं।

शीरीं औ फरहाद डोलते, लैला—मजनूँ भटक रहे।
विश्वमोहिनी की चितवन पर जटा धुर्ज्जटी पटक रहे।
दौड़ रहे हैं पाँव-पियादे,
शाहजादियाँ औ शहजादे ;
पर्दा नहीं, नकाब नहीं कुछ ;
पड़ती कसमें—होते वादे।
अलमस्ती का आलम, नैना दोनों छवि पर अटक रहे ;
शीरीं औ फरहाद डोलते, लैला-मजनूँ भटक रहे।

रूपनगर की गली–गली में आज प्रणय–लीला होती,
कण्ठहार लिपटा चिथड़ों में, मिट्टी में हीरा मोती।
मखमल पर भी पड़ते छाले ;
सभी पिये–यौवन मद ढाले।
रूपसियों के मुख के आगे
दिखते शत-शत शशि भी काले।
प्याले सजते, पायल बजते, मानस की स्थिरता खोती।
रूपनगर की गली–गली में आज प्रणय–लीला होती।

आज, मत्स्यगन्धा के पद पर लोट रहा संन्यास कहीं ;
मधुराका में गोपीपति का मचा गोपिका–रास कहीं।
सभी कुमारी, चंचल, गोरी ;
कमसिन, राग-रंग में बोरी।
जोड़ी बनी यथोचित सबकी ;
युवती-युवा, किशोर-किशोरी।
सब उन्मत्त, सभी दीवाने ; हास कहीं, उल्लास कहीं।
आज, मत्स्यगन्धा के पद पर लोट रहा संन्यास कहीं।

मुक्त प्राण हैं, मुक्त कण्ठ हैं ; आज यहाँ पर मुक्त प्रणय।
सबके दिल के राज खुले हैं, खुले नयन हैं, खुला हृदय।
भय न किसीका, कहीं न संशय ;
वाधा-हीन निरंकुश परिचय।
शासन नहीं–नहीं संत्राशन ;
सीमा नहीं, नियंत्रण निर्दय।
आँखमिचौनी खेल रहे कुछ, कुछ करते नाटक-अभिनय।
मुक्त प्राण हैं, मुक्त कण्ठ हैं, आज यहाँ पर मुक्त प्रणय।

करते मोद-बिनोद बीरबल, तानसेन की तान कहीं।
राधा की वह गोपन-लीला, गिरिजा का व्रत-ध्यान कहीं।
लिखते हाफिज, उमर रुबाई ;
सूर—बिहारी की मधुराई।
कालिदास, विद्यापति, भारवि
सुना रहे अपनी कविताई।

बजती वीण-मृदङ्ग-बाँसुरी, गलबहियों का दान कहीं;
करते मोद-विनोद बीरबल, तानसेन की तान कहीं!

आशिक-माशूकों का जल्वा; शोखी, नाजुकपन, नखरे!
इंगित और कटाक्षों के शर, नाज और अन्दाज बड़े!

हँसना और मचलना क्षण-क्षण;
आलिङ्गन, अवगुण्ठन, चुम्बन!
आज, जवानी है गदराई;
माँगो काच, मिलेगा कंचन!

प्रेम-प्रीति के पुतले लाखों लिपटे—पड़े उमङ्ग—भरे!
आशिक-माशूकों का जल्वा; शोखी, नाजुकपन, नखरे!

घूँट-घूँट पीता सलीम है; साकी बनी अनारकली!
आज जहाँआरा के दिल की रुद्ध रागिनी फूट चली!

खुला हुआ मैफिल मैखाना;
मचल रहा लौ पर परवाना!
ढलती है शीराजी, करता
हाथों में छल—छल पैमाना!

हँसी-खुशी है, चहल-पहल है, कुंज-कुंज में रंगरली!
घूँट-घूँट पीता सलीम है; साकी बनी अनारकली!

नाच रहीं छम-छम षोडशियाँ; परियाँ गूँथ रहीं माला!
तोशक औ कालीन-गलीचा; पान लगाती सुरबाला!

झूल रहीं सखियाँ झूलों में;
मुसकाती-खिलतीं फूलों में!
बाँदी कौन? कौन पटरानी?
एक रङ्ग—मन भ्रम-भूलों में!

मिलन-प्यार, दिलदार—दिलरुबा; बना चराचर मतवाला!
नाच रहीं छमछम षोडशियाँ; परियाँ गूँथ रहीं माला!

शैशव और यौवन

तुम कहते हो जिसको शैशव,
वह तो मेरे मन का स्वभाव;
तुम जिसे होश कहते भाई,
उसका मुझमें बिल्कुल अभाव!

यौवन इठला कर आया है;
मुझसे शैशव भी गया नहीं!
ये बहुत पुरानी बातें हैं,
यह बचपन भी तो नया नहीं!

मैं बह जाता हूँ उसी ओर,
जिस ओर खींचता है बहाव;
मैंने न छिपाया कुछ भी जब,
क्यों करे जगत मुझसे दुराव?

शैशव मुझको बहलाता है,
देता असीम आनन्द मुझे;
यौवन भी मुझको भाता है,
करता सशक्त, स्वच्छन्द मुझे!

दोनों से मुझको प्रेम और
दोनों के प्रति मेरा झुकाव;
ये कूल नदी के हैं दोनों,
यह जीवन की बह रही नाव!

शिशुता से मैंने सीखा है
निर्लोभ, सरलता, प्रेम, हास;
यौवन से मैंने पाया है
बल, तेज, प्रगति, इच्छा, विकास!

शैशव रखता मुझको प्रसन्न,
यौवन देता है मुझे चाव;
तुम कहते हो जिसको 'बचपन',
वह तो मेरे मन का स्वभाव!

ठोकर

हम करते हैं गलती कोई,
तब लगती है हमको ठोकर;
जो वीर, सँभल बढ़ जाते वे,
कापुरुष बैठ रहते रो कर!

वे ही गिरते हैं, जो निर्भय
हो कर घोड़े पर चढ़ते हैं;
आते हैं काम वही पहले,
जो सैनिक आगे बढ़ते हैं!

ठोकर लगने से रुक जाये,
ऐसी भी कोई इच्छा है?
वीरों के लिये यहाँ तो बस,
ठोकर ही एक परीक्षा है!

गिरते हैं सभी, मगर कायर
गिर कर न कभी उठ पाते हैं;
सचमुच हैं वही बहादुर, जो
गिरते हैं, फिर उठ जाते हैं!

लगती है ठेस, लगे; आगे
बढ़ना है हमें अचल होकर!
हम विघ्नों के भी विघ्न बनें,
ठोकर को दे दें हम ठोकर!

जब ध्यान न देते नियमों पर,
हम रोगी तब हो जाते हैं;
ठोकर से हमको ईश्वर भी
अपनी गलती बतलाते हैं!

औषधि की हमें जरूरत है,
हमको चंगा कर देने को!
ठोकर की हमें जरूरत है,
हममें हिम्मत भर देने को!

सच्चे न किसीसे डरते हैं;
ठोकर से कभी न घबराते;
कर जाते काम वही जग में,
मरनेवाले हैं मर जाते!

जो बढ़नेवाले हैं, ठोकर से
आगे ही बढ़ जाते हैं;
जो चढ़नेवाले हैं, वे तो
पर्वत पर भी चढ़ जाते हैं!

ठोकर लगते ही रुक जाये,
वह भी क्या कोई जीवन है?
चलते—चलते जो थक जाये,
वह भी क्या कोई यौवन है?

रुक जाती पेड़ों को उखाड़
आँधी भी टकरा गिरिवर से,
सोने की जाँच कसौटी पर
होती, वीरों की ठोकर से!

ठोकर जीना सिखलाता है,
मुर्दा न बनें जीवन खो कर;
मुर्दे सो जाते चिर—दिन को,
जीवित उठ जाते हैं सो कर!

ठोकर लगनें पर हम देखें,
अपनी कमजोरी को जानें;
ठोकर खाने का मतलब है,
हम अपने को पहले पहचानें!

फिर लक्ष्य हमारा यदि ध्रुव है;
हम सफल रहेंगे ही हो कर;
बाधा हमको कर सकती क्या?
क्या कर सकती हमको ठोकर?

राजा—रानी

रोज शाम को मेरे आँगन में
दो बच्चे आ जाते ;
और नाचते झूम-झूम कर ;
कभी जोर से चिल्लाते !

इनमें एक सयानी लड़की ,
और एक छोटा लड़का !
दोनों बच्चे कितने खुश , मैं
कैसे दूँ इनको टरका ?

लड़का कहता—'रानी बन तू ;
मैं बन जाऊँगा राजा !
राजा बनकर खाजा खायें
और बजायेंगे बाजा !'

कहती लड़की—'ना रे' नन्हें !
नहीं बनूँगा मैं रानी ;
रानी बनकर मुझे पड़ेगा
भरना सौ—सौ मन पानी ! '

'पानी ?' कहता लड़का हँसकर-
'साबो , तुम ऐसा न कहो ! '
'तो' लड़की कहती - 'मैं रानी
हूँ ; तुम राजा बने रहो !'

'पर, देखो !' कहती फिर लड़की-
'झगड़ पड़ोगे तो न कहीं ?'
मुसुका कर कहता लड़का तब-
'साबो रानी , कभी नहीं !'

राजा के कानों में बाली ,
रानी का घुँघरू रुन—झुन ;
राजा को मोती की माला ,
रानी की हँसली ठुनमुन !

राजा के कपड़े भड़कीले ;
रानी की मैली साड़ी !
तेल नहीं रानी के सिर में ;
राजा राज—मुकुट—धारी !

राजा चढ़ जाते घोड़े पर ,
रानी चलती है पैदल ;
राजा धीरे—से मुसकाते ,
रानी हँसती है खल-खल !

राजा का है राज बड़ा-सा ;
रानी को न सहेली भी !
राजा के घर सोना—चाँदी ,
रानी को न अधेली भी !

रानी लेती आँख मूँद ,
राजा जब धूल उड़ाते हैं ;
और , पकाती खाना रानी ,
राजा साहब खाते हैं !

राजा साहब रूठ गये , लो ,
रानी उन्हें मनाती है !
राजा साहब नाच रहे हैं ,
रानी बैठी गाती है !

राजा साहब बड़े शिकारी ,
वे जंगल की ओर चले ;
'तुम तबतक बैठो घर ही में !'
रानी को कह , छोड़ चले !

'मैं न रहूँगी कभी अकेली ,
मैं भी वन में जाऊँगी !'
'वन में रहते बाघ !' 'बाघ को
मैं ही मार गिराऊँगी !'

बात-बात पर बिगड़ी रानी ,
उलझ गये फिर राजा भी ;

रानी बोली– 'खबरदार !' फिर
राजा बोले— 'आ जा भी !'
उठा लिया राजा ने पत्थर,
रानी ने मारा थप्पड़ ;
रानी का सिर फूटा, राजा
उठा लिये सिर पर छप्पड़ !

रोते—धोते राजा भागे,
भाग गई रोती रानी !
'भैया ! भैया !' करते राजा,
रानी कह – ' नानी ! नानी !'
सूरज डूब चुका था तब-तक,
मैंने जब उठकर देखा—
राजा रानी दोनों गायब,
सिर्फ चाँदनी की रेखा !

राज बनाकर रोज मिटाती
दो बच्चों की नादानी ;
यों, मेरे आँगन का राजा,
मेरे आँगन की रानी !

आज-कल

आज, पहुँचा हूँ तुम्हारे पास यह अवदान लेकर;
चिर-निराशा की निशा में मधु-उषा का गान लेकर।
मौतकी दुनिया चितानल में शलभ-सी जल रही जब,
मैं चला हूँ आज, मरघट में मधुर मुस्कान लेकर।
शक्ति दो सहचरि, तुम्हारा साथ जिससे दे सकूँ मैं।
धो चुके हैं जो हृदय मेरे दृगों के अश्रु-जल में ;
वे न हों विस्मित निरख यह रूप मेरा आज-कल में।

आज तो तुम हो, मधुर मधुयामिनी, मधु भी निराला;
कल, न जानें, छीन लेगा कौन मुँह से हाय, प्याला ?
आज तो आबाद मदिरालय सुरा के प्रेमियों से ;
कल, न जानें, चल किधर दे मधु-प्रिया तज गन्ध-शाला ?
आज तो सागर, न जानें, कल सुलभ हो बूँद भी क्या ?
इसलिये तो आज ही पी लो, मिटा लो कण्ठ-ज्वाला ;
कल, न जानें, मिल सकेगी क्या सुराही और हाला ?

आज तो मधुमास, वन-वन कोकिला का विकल कलरव;
मञ्जरी-परिमल रसालों का जगाता कामना नव !
हाय, कल ही तो अनल बन जायगा जल-जल धरातल;
ग्रीष्म से मूच्छित पड़ा होगा धरा पर दग्ध पल्लव !
आज मलयज की सुरभि, कल पश्चिमानल रक्तशोषक!
इसलिये तो, आज ही कर लो प्रिये, उन्मत्त-नर्त्तन ;
कल, न जानें, कौन सा हो जाय वसुधा में विवर्त्तन।

आज तो सौन्दर्यमय लगता हमें यह विश्व सारा ;
कल, न जानें, रूप होगा कौन इसका सर्व-हारा ?
प्रेम-धारा आज तो अनुकूल कूलों से प्रवाहित ;
कल, न जानें, हाय होगा कौन-सा इसका किनारा ?
आज तो आनन्द-उत्सव, वेदना आ जायगी कल ;
इसलिये तो, आज गा लो मुक्त-मंगल गीत क्षण-भर;
कल, न जानें, रह सकेगा क्या तुम्हारा यह मधुर-स्वर।

आज के संसार का कल कौन-सा इतिहास होगा ?
आज मेरा घर, किसीका कल इसीमें वास होगा।
आज तो सालस पड़ी हो तन्वि, मेरे सामने तुम ;
कल, न जानें, कौन शय्या पर तुम्हारे पास होगा ?
व्यर्थ-सा आकाश भी, यदि पास में तुमको न पाऊँ ;
इसलिये, तो, आज ही दे दो हृदय का प्यार सारा ;
कल, न जानें, कौन होगा हाय फिर मेरा सहारा ?

आज जो मिट्टी - बनेगा कल वही अनमोल कंचन ;
आज का नूतन जगत, हो जायगा कल ही पुरातन !
यह सनातन का नियम; अभ्यस्त–सा संसार इसका !
हाय, फिर भी क्यों सभी के लोचनों में अश्रु के कण।
एक करुणा-मय निरोदन व्याप्त सब के मनोवन में।

इसलिये तो आज ही हँस लो, तुम्हें जितना बिहँसना ;
कल न तुमको भी नियति के पंक में पड़ जाय फँसना !

आज का सम्राट भी कल लोटता रज में अकेला ;
कल वही वीरान-सा , लगता जहाँ पर आज मेला !
व्योम का मध्याह्न-रवि भी अस्त हो जाता जलधि में !
हाँ, उषा जिसको जिलाती, मार देती सांध्य—वेला !
नाश का यह क्रम अचल, शाश्वत प्रलयकी ध्वंस-छाया;
इसलिये तो, आज ही, सो जायँगें हम एक हो कर ;
अलि, न जानें, उठ सकेंगे या नहीं कल-सुबह सोकर ?

तितलियों के राज्य में भी पुतलियाँ अपनी न खोलूँ !
गुदगुदी लग जाय, हँसकर और फिरभी मैं न बोलूँ!
यह नहीं मुमकिन कि तुम दो और मैं इनकार कर दूँ !
स्वर्ग की परियाँ बुलावें—और मैं सिहरूँ न डोलूँ !
आजहीतो हाय, सबकुछ; कल नहीं, कुछभी नहीं कल !
इसलिये तो आज ही हो जाय जो कुछ प्राण, होना ;
कल, न जानें, कब हमें ढँक ले जगत का कौन कोना ?

जा न सकता मैं सहज ही छोड़ कर यह विश्व सुन्दर ;
प्यास तो ऐसी कि ले लूँ गोद में सम्पूर्ण सागर !
और, शूली पर तुम्हारा नाम लेकर मैं पुकारूँ ;
कर उठूँ चीत्कार , दे दो एक प्याला और भर कर !
मूँद कर आँखें चलूँ बाजार में, सम्भव नहीं यह ;
इसलिये तो आज ही लुट जाय, कल का कौन लेखा !
आज तो प्रत्यक्ष, कल का कब किसीने रूप देखा ?

किन्नरों का देश—क्षण भर क्यों न इनमें घूम लूँ मैं !
आज यौवन की सुरा पी क्यों न पागल झूम लूँ मैं !
इन गुलाबों के अधर तो प्यार की ही चीज सचमुच;
आज तो यह कामना-प्रिय, कंटकों को चूम लूँ मैं !
पर, न कल्पित स्वर्ग पर कल के, भुला दूँ आजका सुख;
इसलिये तो आज ही उर-कुंज में मकरन्द भर लो !
फिक्र क्या उस पार की-इस पार तो आनन्द कर लो !

कौन कहता, बह रही जग के दृगों से वारि-धारा !
आज तो पागल बना हँस-हँस अरे, संसार सारा !
बेलियाँ हँसतीं, हँसीं कलियाँ, बिहँसते चाँद-तारे ;
हास्य-कलकल से विकल भर दी किसीने विश्व-कारा !
आज तो उन्मुक्त; कर ले कल, न जानें कौन वन्दी !
इसलिये तो, आज ही खुल जाँय बन्धन, द्वार मेरा !
हँस सकूँ यदि मैं न, क्या तब रुदन का अधिकार मेरा ?

आज, बन आया भुवन में आप ही अपना विधाता ;
और, अपनी भाग्यलिपि को मैं स्वयं लिखता मिटाता !
मर चुका संसार कितनी बार जीवन-ज्योति में ही ;
और, मैं मर-मर तुम्हारे पास जीता, गीत गाता !
रो लिया कल-ही बहुत; लो, आज तो हँसता सवेरा !
इसलिये तो, आज-ही आ जाँय सुख की मिलन-घड़ियाँ!
कसमसातीं हाय, हाथों में प्रणय की फूल-कड़ियाँ !

मौज करने के लिये दुनिया, हमारा ध्येय जीना !
इन रँगीली क्यारियों को तुम न समझो गन्ध-हीना !
आज यों उन्माद—घर घर में बहा दूं प्रेम—सरिता !
आज मेरा काम केवल मधु पिलाना और पीना !
'आज' मुट्ठी में—प्रिये, 'कल' मुक्त नभका एक पंछी;
इसलिये तो, आज-ही का है हमारा सिर्फ दावी !
कल, न जानें, कौन-सी भवितव्यता, अलि ! कौन भावी ?

जिन्दगी यदि कैद, तो उल्लास से वंचित रहो क्यों ?
यह अगर वरदान, तो फिर व्यर्थ कष्टों को सहो क्यों ?
कैद हों, आजाद हों, या; हम सदा खुशियाँ मनायें !
बज उठें जब बेड़ियाँ, तब पैर में नूपुर न हो क्यों ?
करतलागत आज को कल के लिये हम तज न सकते ;
इसलिये अलि , आज ही मेरा मधुर गुंजार होगा !
हाय, कल तो काल भी तट पर खड़ा लाचार होगा !

प्रेम से यदि तुम पिलाओ, मैं न कर लूँ पान कैसे ?
हाय, इस अलकापुरी में मैं लगाऊँ ध्यान कैसे ?

प्रिय, हमारे ही लिये यह सृष्टि में सौन्दय इतना !
प्रेम की स्वीकृति न दे इसका करूँ अपमान कैसे ?
श्वास क्षण-भंगुर, चपल जीवन, प्रिये, यौवन चपल-तर;
इसलिये तो आज मेरे प्राण ये वैभव-विलासी !
कल, न जानें, हाय, कब हो जाँय ये एकान्त-वासी !

फूल ये खिलते विपिन में आज जो, झड़ जाँयगे कल;
और, अभिनव डालियों में पत्र कोमल आँयगे कल !
उड़ गई है जिस चमन को छोड़कर अलि आज बुलबुल;
कर उसे गुलजार लाखों कीर-कोकिल गाँयगे कल !
एक हम ही-हाय, वापिस हो सकेंगे फिर न जाकर !
इसलिये तो प्राण, दे दो-दे सको जो आज अपना !
कल, न जानें, कौन यह सुख भी कहीं हो जाय सपना !

खोजता फिरता मुझे सर्वत्र सत्यानाश मेरा ;
कौन लेगा छीन सहसा क्षुद्र मुख का ग्रास मेरा ?
आज तो चलता, न जानें; क्या चलेगा पथिक कलभी ?
हाय, कब उड़ जायगा यह विहग-सा निःश्वास मेरा ?
आज की गति देख, हो विश्वास कैसे कुटिल कल पर ?
इसलिये तो आज ही अरमान कर लो प्राण, पूरे ;
कल, न जानें, अधखिले रह जाँय ये योंही अधूरे !

आज सुख है, आ गया कल दुःख भी यदि, हम वरेंगे;
किन्तु, कैसे प्रेम के उपहार को ठुकरा सकेंगे ?
हँस दिये मधु-मास में यदि हम कभी सुखसे विकल हो;
रो हमीं पतझार में तो फिर किसी दिन हाय, लेंगे !
विश्व के वरदान को अभिशाप पर, बनने न दूँगा ;
इसलिये तो आज ही मिल लें हृदय को खोल कर हम;
कल, न जानें, फेंक दे किस तीर पर वह काल निर्मम !

एक क्षण में जल-प्रलय, हो जायगा विस्तीर्ण जग लय;
एक क्षण भूकम्प, लोकालय अचिर हो जायगा क्षय !
हिल उठेगी मेदिनी, आकाश भी होगा विकम्पित ;
एक ही क्षण में जगत को लूट लेगा काल निर्भय !

आज-कल में तो पड़ा अन्तर अयुत पाताल नभ का ;
इसलिये तो, आजही-इस क्षण-अभी-भरलो हृदय-घट;
कल, न जानें, घूँट भी मिल जायगा या रिक्त तलछट !

देखता आता युगों से मैं प्रलय का यह तमाशा ;
क्यों, न जानें, किन्तु फिर होती नहीं मुझको निराशा !
आज आया वासना का मैं यहाँ तूफान लेकर ;
विश्व-पारावार में यह अमिट-सी मेरी पिपासा !
आज तो पाया, न जानें, कल तुम्हें किस वक्त खो दूँ;
इसलिये तो, आज ही दे दो मुझे आश्लेष कोमल ;
कल, न जानें, शेष भी रह जायगा क्या बाहु में बल ?

आज तो हँसते चिता की गोद में भी प्राण मेरे ;
इस पराजय-लग्न में भी जीत के अभिमान भरे !
मृत्यु के वन में खिली मुस्कान मेरी फूल बन कर ;
कल, न जानें, ये अधर हो जाँयगे क्या म्लान मेरे ?
आज तो मैं हूँ यहाँ-कल का ठिकाना कौन जाने ?
इसलिये तो आज ही धारण करो सौभाग्य-कंकण ;
कल न जानें, अलि, हृदयका हाय, कब रुक जाय धड़कन !

आज तो मखमल मिला, कल शूल से तलवा छिलेगा !
कब न जानें, फूल फिर इन क्यारियों में अलि ! खिलेगा ?
आज तो सुख स्वर्ग का है; कल नरक भी भोग लेंगे !
आज के अभिसार का फल कल न जानें क्या मिलेगा ?
आज रस है, तो मधुप भी नाचते मकरन्द पी कर !
इसलिये तो, आज ही ले लो प्रिये, तुम एक चुम्बन;
कल, न जानें, इन कपोलों पर कहीं पड़ जाय सिकुड़न !

आज विद्युत-स्फूर्ति, कल हो जायगा सर्वांग दुर्बल ;
आज कुंचित-कृष्ण कबरी, काश-सा कल शुष्क उज्ज्वल!
भ्रष्ट होने दो न यों ही आज का शृङ्गार सुन्दर ;
खींच ले कब मृत्यु, मण्डप से प्रणय के पकड़ करतल !
आज तो नौका यहाँ, किस पार कल होगा, न जानें ?
इसलिये तो आज ही हो जाय त्रिभुवन-लास्य दो क्षण !
कल, न जानें, हाय दुर्लभ भी कहीं हो जाय दर्शन !

कल हमें शैशव मिला था, आज यह उन्मत्त यौवन;
आज यह यौवन, मिलेगा कल जरा का जीर्ण आनन!
आज, जो सौन्दर्य पाया; कल, न जानें, क्या रहेगा?
बढ़ रहा द्रुत-वेग से यह विश्व लय की ओर प्रतिक्षण!
आज मुस्काते जिसे देखा उसीको कल बिलखते!
इसलिये तो आज ही कर दो प्रिये, सर्वस्व-अर्पण!
कल, न जानें, बन्द कब हो जाँय प्यासे ही विलोचन!

आज तो बस, चाँदनी मृदु; हो अमा की लाज भी कल;
है नहीं चिन्ता मुझे कुछ भी, गिरे यदि गाज भी कल!
मैं न सोचूँगा, मुझे कल कौन-सा परिणाम होगा?
आज तुमको छोड़, लूँगा मैं न जग का राज भी कल!
आज तो बहती सुधा की धार, कल दुष्प्राप्य जल भी;
इसलिये तो आज ही दे दो मुझे मधु का निमंत्रण!
कल, न जानें, हाय क्या हो जाय यह सुकुमार यौवन!

नाश निश्चित यदि यहाँ तो क्या मिलेगा नित्य रोकर?
मैं न सींचूँगा लता तकदीर की, दृग में डुबो कर!
मौत को भी द्वार पर अलि, एक पल मैं रोक लूँगा!
मैं जगा दूँ सुप्त निश्चल भाग्य को भी मार ठोकर!
आज तो किस्मत खिली, कल आ रहा दुष्काल, आये;
कल चलूँगा, आज तो रुक जाय टुक अवसान मेरा!
आज गाने दो, भले मिट जाय कल यह गान मेरा!

तरुणी

हे सुन्दर, चिर-सुन्दर नारी,
मैंने तुमको प्यार किया है;
और, तुम्हारे मुख-मण्डल का
लज्जा से शृङ्गार किया है!
मदिरा और वारि-सा मैंने
पान किया है अधरामृत का!
फाल्गुन-वन की कुंज-वीथि में
तुमसे निशि-अभिसार किया है!

शिशुओं को भी मैंने देखा;
उनका भी जी बहलाया है!
उन्हें गोद में लेकर चूमा,
और गीत भी तो गाया है!
चंदा-मामा को लाया है
आसमान से भूमण्डल पर!
मुझको वे लगते हैं वन के
पुष्पों से भी अधिक मनोहर;
फिर भी, तुममें ही पाई है
पृथिवी की मोहकता सारी;
मैं करता हूँ प्रेम तुम्हींसे,
हे सुन्दर, चिर-सुन्दर नारी!

हे सलज्ज, सुन्दर, सुकुमारी,
मुझको मिला तुम्हारा यौवन!
मधुर लगा है मुझे तुम्हारा
चिर-मदान्ध, मादक आकर्षण!
बारम्बार तुम्हारे सम्मुख
मैं आया चिर-वाँछित होकर!
आ जाते ज्यों नीरज-दल पर
लाँछित होकर भी मधुकर-गण!
मैंने वृद्धों को देखा है;
श्वेत-केश, उत्साह-रहित मन!
अकर्मण्य, दिग्मूढ़ जरा में
नीरस, अलस, प्रशान्त, अचेतन!
मैंने उनका अनुभव पाया,
किया ज्ञान का भी संचय है;
त्याग, योग, संयम है सीखा;
माया का पाया परिचय है!
फिर भी वह उपदेश व्यर्थ-सा;
मैं तुमपर होता बलिहारी!
मेरे मानस की कलहंसिनि,
हे सलज्ज, सुन्दर, सुकुमारी!

हे युवती, चिर-सुन्दर युवती,
तुम मेरे अन्तर की वाणी!
पुण्य-हृदय-मन्दिर में स्थापित,
देवी की प्रतिमा कल्याणी!

तुमने की उद्बुद्ध पिपासा;
और उसे फिर शान्त किया है!
तुम मेरी आत्मा हो, मेरे
निर्जन मनोराज्य की रानी!

युवकों को मैंने देखा है
कारा में आनन्द मनाते!
हँसते जाते बलि के पथ पर,
तोपों के आगे मुसकाते!
मैंने भी जय-घोष किया है;
मतवालों को ललकारा है!
देश-भक्ति का मैं पागल हूँ,
विद्रोही मुझको प्यारा है!

फिर भी जब सौन्दर्य-शिखा तव
मधुर-मधुर जीवन में जगती;
मैं हो जाता सलभ तुम्हारा,
हे युवती, चिर-सुन्दर युवती!

हे सुहासिनी, हे चिर-कामिनि,
मैं निशि-दिन यौवन का कामी;
रहा सदैव तुम्हारे चरणों का
मैं आजीवन अनुगामी!
भिक्षुक रहा तुम्हारी छवि का,
प्रार्थी मैं तव प्रिय-दर्शन का;
नारि, तुम्हारे रोम-रोम का
प्रेमी मेरा अन्तर्यामी!
दीनों को मैंने देखा है,
मैं सुनता हूँ जग का क्रन्दन;
नवयुग को करता आमंत्रित,
करता मैं विप्लव का वन्दन!
और शोषितों का करुणामय
हाहाकार सुना है मैंने!
चिता बुझाई है निःश्वासों से,
अंगार चुना है मैंने!
फिर भी मैं हूँ विवश तुम्हारे
सम्मुख, हे जीवन की स्वामिनि!
प्रेम चाहता हूँ मैं तुमसे
हे सुहासिनी, हे चिर-कामिनि!

देवालय में झुका न जो शिर,
तुम्हें देख कर वह अवनत है;
जिस भुज-बल से काल काँपता,
वही तुम्हारे पद में रत है!
वज्र-हृदय जो महा-प्रलय में
भी न कभी हो सकता कातर,
एक तुम्हारे भ्रुकुटि-लास से
व्याकुल है, वह मर्माहत है!
मेरा गौरव-मुकुट तुम्हारी
शय्या के नीचे लुण्ठित है;
धनुष-विशिख निष्फल हैं मेरे,
असि की यह धारा कुण्ठित है!
मेरे जीवन-मरण तुम्हीं हो,
पथ के एक-मात्र तुम सम्बल;
स्वर्ग तुम्हीं, हो तुम्हीं मुक्ति भी;
तुमसे ही परिचित मैं केवल!
सखि, खोकर मैं तुमको शव हूँ;
पाकर मैं तुमको हूँ अस्थिर!
चिर-पवित्र तव चरण-रेणु से,
देवालय में झुका न जो शिर!

हे रमणी, चिर-तरुणी नारी,
मैं अनन्त सौन्दर्य-पिपासी!
तुम सुन्दर हो, सुन्दरतम हो;
मैं आकुल, उद्भ्रान्त, विलासी!

महा-वासना की ज्वाला ले
मैं धू-धू करने आया हूँ!
और तुम्हारा रूप अमृत है;
यौवन अमर, प्रणय अविनाशी!

मैं दोषी हूँ, क्योंकि मृगेक्षणि,
मैंने तुमको प्रेम किया है!
मेरा यह अपराध कि तुमको
मैंने अपना हृदय दिया है!

यही एक दुर्बलता मेरी
है जो, मैं तुमपर मरता हूँ;
यही एक है पाप, सुहासिनि,
स्वेच्छा से मैं जो करता हूँ!

और नहीं तो मैं मानव हूँ;
चिर-कृतज्ञ हूँ, चिर-आभारी!
मेरा प्रेम प्रकट है तुमसे,
हे रमणी, चिर-तरुणी नारी!

हे नारी, चिर-युवती नारी,
केवल तुम्हीं मुझे जानोगी;
मैं क्या हूँ, वास्तव में इसका
भेद-मर्म भी तुम मानोगी!

यों, दुर्बोध, जटिल हूँ, अस्थिर;
जग मुझको अज्ञेय समझता!
किन्तु, सोचता हूँ मैं, मुझको
भली-भाँति तुम पहचानोगी!

भ्रम कर सकता विश्व; प्रिये, तुम
किन्तु, न भ्रम में कभी पड़ोगी!
कर सकता है भूल जगत, तो
क्या तुम भी सन्देह करोगी?

तुम मुझको पहचान सकोगी,
मेरा यह विश्वास चिरन्तन;
समझ सकोगी तुम, जीवन में
मुझको एक यही आश्वासन!

सदा तुम्हारे मदिर-रूप की
पूजा का मैं हूँ अधिकारी!
मुझे न भूलो तुम क्षण-भर भी,
हे नारी, चिर-युवती नारी!

जिस दिन मेरे उर-शतदल पर
अपना कोमल चरण-कमल धर,
प्रथम बार आईं तुम प्रेयसि,
मेरे मानस को चंचल कर!

थर-थर कर सखि, प्राण-प्राणको,
अंग-अंग को रोमांचित कर,
एक दृष्टि ही मुझे तुम्हारी
सहसा गई अवाक विकल कर!

तब से कितनी बार, न जानें,
दक्षिण-पवन यहाँ आया है!
कूक उठा है कोकिल, ऋतुपति ने
सौरभ-मधु बरसाया है!

राका के निशीथ में ज्योत्सना
पल्लव-शय्या पर सोई है;
प्रेम-सुरा पी मस्त, झूमता
कुंजों से आया कोई है!

मेरा कल्पित स्वर्ग उतर कर
उस दिन आया इस भूतल पर,
पद-रेखा अंकित की तुमने
जिस दिन मेरे उर-शतदल पर!

क्या होता, यदि आज न होतीं
तुम, पूछो मत प्रश्न अमंगल!
रवि-शशि के दीपक बुझ जाते,
महा-सिन्धु हो जाता निर्जल!

खिलते पुष्प न, लता न हिलती,
मलयानिल न डोलता वन में!
मर जाता संसार अभागा,
मानव का जीवन ही निष्फल!

प्राण निकल जाते वर्षा के,
लपटों में वसन्त जल जाता!
और ऊब एकाकी लेता
आत्म-घात कर स्वयं विधाता!

हे भुजंगिनी, प्रेम-फणों से
तुम करती हो जिस क्षण दंशन,
बन जाता है अमृत गरल भी,
और मरण बन जाता जीवन!

भूमि न होती, व्योम न होता,
आकुल दशों दिशाएं रोतीं;
हो जाता सम्पूर्ण जगत मरु
नारी, तुम न आज यदि होतीं!

मैं प्रत्यक्ष मरण अपनाऊँ
पहना कर तुमको जय-माला;
धधक उठी मेरे अन्तर में
पुंजी-भूत तृषा की ज्वाला!

और, तुम्हारी कवरी में है
गूँथा मैंने सुमनों का मन;
हे सौन्दर्यवती, यौवन-मयि,
देखो, यह रज-रज मतवाला!

मैं हूँ एक विलुब्ध उपासक;
मैं गायक हूँ मुग्ध तुम्हारा!

तव दृग-शर से विद्ध-हिरण-सा
वन-वन में फिरता मैं मारा!

तुम्हीं मुझे रखती हो जीवित,
उर भावुक है, अधर सरस हैं;
तप, साधन, प्रतिभा, आराधन;
तव सेवा में सभी विवश हैं!

ईश्वर से कर द्रोह, जगत में
सम्भव है, जीवित रह जाऊँ!
किन्तु, तुम्हारा मोह छोड़ क्या
मैं प्रत्यक्ष मरण अपनाऊँ?

मुग्ध शिखी-सा नृत्य किया है
मैंने तव अंगुलि-इंगित पर;
बजती हैं मेरी इच्छाएं
तव चरणों में नूपुर बन कर!

मेरे प्राणों में कस्तूरी
बन कर तुम उद्भूत हुई हो,
मैं उसकी निर्बन्ध गन्ध से
दौड़ रहा हूँ वन में दुस्तर!

मेरे नभ-ललाट पर आई
राजलक्ष्मि, बन संध्या-तारा!
तुम फूलों की हथकड़ियाँ हो,
यह संसार स्वर्ण की कारा!

किस पाषाण-गुहा में दारुण
निद्रित मैं, प्रपात की धारा;
एक रश्मि-सी तुम आईं, मैं
तोड़ चला चिर-बन्धन-हारा!

अपने केश-पाश से तुमने
सारा जीवन बाँध लिया है;
सदा तुम्हारे सम्मुख मैंने
मुग्ध शिखी-सा नृत्य किया है!

यह जीवन युग से प्यासा है ;
युग-युग से यह तृषा अमर है !
नारी के प्रति मोह-भावना ,
मेरी यह ममता अक्षर है !
फैली हैं मेरी युग—बाँहें ,
निर्निमेष लोचन हैं दोनों ;
वक्षस्थल पीड़ित मिलने को ,
किन्तु , मूक-सा मेरा स्वर है !
मेरा यह अभिमान तुम्हारे
चरणों से मर्दित , विदलित है;
ज्ञान-ध्यान , विज्ञान-तेज , सब
अभिमानिनि , तुमसे विचलित है !
मेरी शक्ति , महत्ता , प्रभुता ;
सब पर है अधिकार तुम्हारा !
भुवन-विजयिनी , तुममें खोया
साहस मेरा , पौरुष सारा !
मैं निराश यद्यपि हूँ जग से ;
लेकिन, कुछ तुमसे आशा है !
भूखा है युग से यह जीवन ,
यह यौवन युग से प्यासा है !

भावी साहित्यिक

ये भावी 'कवि' हैं भारत के ;
इन्हें प्रणाम करो झुक कर !
रवि ठाकुर की प्रतिभा इनमें ,
कालिदास की बुद्धि प्रखर !
बाल बढाये छायावादी ,
छाये हैं कैसे शिर पर !
ले आये हैं गीत बना कर
तुम्हें सुनाने को सुन्दर !

कवि—सम्मेलन में जायेंगे ;
कहलायेंगे ये 'कपि—वर' !
ये भावी कवि हैं भारत के ,
इन्हें प्रणाम करो झुक कर !

ये भावी सम्पादकजी हैं ;
इन्हें प्रणाम करो झुक कर !
जहाँ रुष्ट ये हुए कि हो
जायेगा सारा गुड़ गोबर !
खादी की धोती पहनेंगे ;
कुर्त्ता , टोपी औ चादर !
पत्रों में नवयुग लायेंगे ,
इधर—उधर से ले मैटर !
एक नाम के चार आदमी ;
पीर , बवर्ची , भिश्ती , खर !
ये भावी सम्पादकजी हैं ,
इन्हें प्रणाम करो झुक कर !

ये भावी आलोचकजी हैं ;
इन्हें प्रणाम करो झुक कर !
लख कर इनकी तोप कलम की,
काँप रहे लेखक थर—थर !
ये चेले हैं पद्मसिंह के ;
तुम न करो कोई गड़बड़ !
लाठी लेकर जिधर निकल ये
पड़ते , मच जाती भगदड़ !
इनका लोहा सभी मानते ;
क्या मुसोलिनी ? क्या हिटलर ?
ये भावी 'आलूचक' जी हैं ;
इन्हें प्रणाम करो झुक कर !

ये भावी हैं औपन्यासिक ;
इन्हें प्रणाम करो झुक कर !

शरच्चन्द्र हैं मात, कभी के
प्रेमचंद के ये गुरुवर!
बड़े—बड़े पोथे लिख डाले,
जिनको दीमक रहा कुतर!
घर भर गया किताबों से;
अबतक न एक भी छपी मगर!
आशा है, फिर भी, लेंगे ये
'नोबुल प्राइज' नाक रगड़!
ये भावी हैं औपन्यासिक;
इन्हें प्रणाम करो झुक कर!

ये भावी हैं गल्पकारजी;
इन्हें प्रणाम करो झुक कर!
कुत्ते और बिल्लियों को भी
गल्प सुनाते हैं पढ़ कर!
सदा नोट-बुक पाकिट में, रखते
हैं जिसमें प्लाट पकड़;
दिन-भर में दस बार शहर का
लगा लिया करते चक्कर!
कभी ऊँट की टाँग बनाते;
लिखते चींटी के अक्षर!
ये भावी हैं गल्पकारजी;
इन्हें प्रणाम करो झुक कर!

लूसी का बच्चा

मा, मेरी लूसी का बच्चा
ए० बी० सी० डी० पढ़ता है!
कभी उछल कर नीचे आता,
कभी पीठ पर चढ़ता है!
बहुत शरारत करता वह,
दिन-भर उत्पात मचाता है!
मैं क्या उसे पढ़ाऊँगा मा,
मुझको वही पढ़ाता है!

पटती है न किसी लड़के से,
सबसे रोज झगड़ता है!
मा, मेरी लूसी का बच्चा
ए० बी० सी० डी० पढ़ता है!

मैं कहता जब 'ए' कहने को,
वह कहता है तब 'आऊ'!
मैं कहता जब 'बी' बोलो, वह
कहता मुँह बाकर 'बाऊ'!
'जी' कहने पर वह जोरों से
औरों पर गुर्राता है!
'ओ' कहने पर, वह झट उठकर,
झाँव—झाँव चिल्लाता है!
मैं कहता हूँ, अजी! कहो 'के';
वह तो 'कें—कें' करता है!
मा, मेरी लूसी का बच्चा
ए० बी० सी० डी० पढ़ता है!

वह है मेरा छात्र और मैं
उसका हूँ मास्टर साहब!
वह प्रणाम करता जब, मैं भी
बिठा गोद में लेता तब!
मेरी पोथी के पन्नों को
उलट-पुलट लगता करने!
कलम पकड़ना उसे सिखाया
दाँतों से किस बन्दर ने?
पिट जायेगा एक रोज सच,
मुझसे तनिक न डरता है;
मा, मेरी लूसी का बच्चा
ए० बी० सी० डी० पढ़ता है!

उसके लिये मँगा दो पुस्तक,
और स्लेट-पेन्सिल ला दो;

आरसी

कोट मँगा दो , पैन्ट सिला दो ,
घड़ी-छड़ी दो , चश्मा दो !
पीने को सिगरेट उसे दो ,
पैरों में जूता भारी ;
साइकिल पर हिश ! वह न चढ़ेगा ;
वह लेगा मोटर—गाड़ी !
सच पूछो तो , उसका हिन्दी
पढ़ना मुझे अखरता है !
मा , मेरी लूसी का बच्चा
ए० बी० सी० डी० पढ़ता है !

दिन में पाठ पढ़ाता हूँ जो ,
उसे रात में जाता भूल !
इतना बड़ा हो गया , फिर भी
जा न अकेले सकता स्कूल ?
तुम्हीं उसे समझा दो , वर्ना
दर्जे से कर दूँ बाहर ;
क्यों कि, छात्र है वह मेरा औ
मैं तो हूँ उसका 'टीचर' !
जो चाहूँ मैं , कर दूँ फौरन ,
मुझ पर कौन बिगड़ता है ?
मा , मेरी लूसी का बच्चा
ए० बी० सी० डी० पढ़ता है !

मेरी शाला से बढ़ कर वह
जायेगा पढ़ने कालेज !
गिटपिट कर , अँगरेजी पढ़कर
वह बन जायेगा अँगरेज !
फिर भेजूँगा उसे विलायत ,
पढ़-लिख कर होगा विद्वान ;
और वहाँ से हाकिम होकर
लौट आयगा हिन्दुस्तान !

वह भौंकेगा , कालों पर
गोरा जिस तरह घुड़कता है !
मा , मेरी लूसी का बच्चा
ए० बी० सी० डी० पढ़ता है !

वह घर का रखवाला होगा ,
वह खेतों का चौकीदार ;
वह होगा सर , रायबहादुर ;
और बनेगा वह सरकार !
'सदा आपका आज्ञाकारी' ;
खायेगा बिस्कुट—हलवा !
पूँछ हिलावेगा मालिक के
आगे , चाटेगा तलवा !
दबा अभी से दुम , गुलाम वह
बनने का दम भरता है !
मा , मेरी लूसी का बच्चा
ए० बी० सी० डी० पढ़ता है !

सौन्दर्य

नव वसन्त की मादक संध्या तरु-कुञ्जों में उतर चुकी थी ।
जला शुक्र का दीप आरती ले कर में दिग्वधू झुकी थी ।
तरुणी-तरुण प्रफुल्ल हृदय से देख रहे थे यह अनुपम छवि ।
जिसका वर्णन कर छन्दों में श्रान्त न होता प्रियदर्शी कवि !
उपवन में सस्मित कुसुमों से कौतुक करता था कुसुमाकर— ;
छू प्रेमी के वक्षःस्थल को कहा प्रेमिका ने मुसकाकर—
'प्रियतम, सच बोलो; क्या मुझको करते हो तुम प्यार हृदय से ?
अथवा भ्रम में डाल रहे हो मुझे प्रणय के इस अभिनय से ?'
'अभिनय ?' बोला प्रेमी हँस कर- 'सरले, यह तुम क्या कहती हो ?
तुम मेरे प्राणों में निशि-दिन संज्ञा-सी घुल-मिल रहती हो !'
'प्रेम किया क्यों तुमने मुझसे ? मुझमें कौन, कहो आकर्षण ?'
कहा तरुण ने—'सखी, तुम्हारी अतुलित सुन्दरता के कारण !'
'सुन्दर तो होता हिमकर भी, क्यों न खींच वह तुमको लेता ?'

'पूर्ण-चन्द्र इतने समीप तुम, कौन ध्यान तव उस पर देता !'
'और, मेघ-माला को प्रियतम ! क्या न कहोगे तुम आकर्षक ?'
'पर, उसकी क्यों मुझे चाह हो; खुले तुम्हारे कुन्तल जबतक ?'
'किन्तु, सुधा तो परम मधुर प्रिय !' 'दुर्लभ जग में अमृत-कलश है !
पाया मैंने प्रिये, तुम्हारे अधरों का मायावी रस है !'
विह्वल हो कर बोली युवती- 'प्रियतम ! तुम कितने सुन्दर हो !'
कहा युवक ने- 'प्रिये, स्वयं ही सुन्दर हो तुम, सुन्दरतर हो !'
'क्या मेरा स्वर' कहा प्रिया ने—'प्राणेश्वर तुमको भाता है ?'
'देवि, वही तो कोकिल को पंचम में गान सिखाता है !'
लेट गई प्रमदा प्रेमी के मृदुल अंक में–'प्रियतम, प्रियतम !'
'प्रिये, तुम्हारा तन गुलाब का मानो, एक फूल हो अनुपम !'
'क्या कोयल इतनी मीठी है ?' 'नहीं; नहीं वह तुमसे बढ़ कर !'
'क्या गुलाब मोहक है इतना ?' 'अधिक नहीं वह तुमसे सुन्दर !'
रोमांचित हो गई सुन्दरी, अभी-अभी यौवन आया था ;
अंग-अंग में नव अनंग का अद्भुत उद्दीपन पाया था !
सन्ध्या - पुंजीभूत हुई, वन-उपवन में बढ़ चला अँधेरा ;
एक कालिमा के अंचल ने आ सम्पूर्ण जगत को घेरा !
'प्रिय, पुरुषों की सहज मुखरता पर मुझको विश्वास न होता !'
'प्रिये, तुम्हारे उर से बहता जो जीवन का पावन सोता ;
'उसके निर्मल वारि-कणों से मेरे प्राण हुए हैं शीतल !'
'तुम मेरे मन की वीणा हो !' 'तुम वीणा की झंकृति कोमल !'
'किन्तु, तुम्हारे लिए देव ! यह विपुल विधाता की रचना है !'
'और तुम्हारे विना व्यर्थ-सा हृदयेश्वरि, पाषाण बना है !'
तरुणी शिथिल पड़ी थी सम्मुख; और तरुण निश्चेष्ट अचल था !
किन्तु, न जाने किस रहस्यमय सुख से उसका हृदय विकल था ,
'प्रेम-बाँसुरी बजा रहे तुम प्रियतम ! मेरे मनमोहन हो !
मेरे मन के तुम अधिकारी; तुम मेरे चिर-जीवन-धन हो !'
पुलकित था दक्षिण - समीर के मन्द-मन्द विहरण से तरु-वन ;
सोच रहा था युवक भाव की चपल तरंगों में मन ही मन !
'यह जग विष की लतिका, जिसमें सुख-भुजंग लिपटे रहते हैं !'
एक बूँद के लिए अभागे मानव कष्टों को सहते हैं !'
'सृष्टि प्रेम की की नारी ने; और, प्रेम ने उसे बनाया !
नारी और प्रेम; से ही तो इस संसार-चक्र की माया !
'होती कहीं न नारी तो, क्या फल पाता नर जग में जी कर ?
प्रेम न होता, तो मर जाता मानव घूँट गरल का पी कर !
'पुरुष खिलौना बने तुम्हारे हाथों में , तुम उन्हें नचाती !
लीलामयि, तुम मृग-मरीचिका में नर को वन-वन भटकाती !
'यह अपूर्व सौन्दर्य मिला सखि, जिस दिन तुमको विधि के कर से ;
उसी रोज से काँप रहा नर थर-थर सर्वनाश के डर से !
'तुमने छवि का जाल बिछाया, पुरुष ज्ञान है अपना खोता ;
प्रेम - प्रेम रटता है पागल, लौह - शृंखलाओं में तोता !
'और, अबोध पुरुष ने समझा उसी कैद को सच्चा जीवन ;
उन कड़ियों को देख बढ़ाया हाथ, समझ फूलों का बन्धन !'
'यह मानव की कायरता है ? या प्रेमी का आत्म - समर्पण ?
पुरुषों को वन्दीगृह भाया; नारी को नर का आकर्षण !
'पाप न कौन किया पुरुषों ने ? नारी के हित प्रलय मचाया !
नाम प्रेम का लेकर रण में अपना ही विध्वंस कराया !
'वही रक्त शोणित की धारा; सुन ललनाओं की ललकारें !
पुरुष जाति पर ही पुरुषों ने और, उठाई तब तलवारें !
'नारी के नयनों में चंचल महाप्रलय के वशीकरण हैं !
लंका-काण्ड और भारत-रण; ये दो जलते उदाहरण हैं !
'परम्परा के प्रति पुरुषों ने जब-जब रण-विद्रोह किया है ;
नारी ने तब-तब आगे बढ़ वीरों का पथ रोक लिया है !
'मोहित नर, रथ वापस करता; नारी शय्या - स्वप्न सजाती !
और, गले में बाँह डाल कर मधुर प्रेम का गीत सुनाती !
'नारि, चिरन्तन रूपमयी हो; तुम न कन्यका, भगिनी, माता ;
इस जग से सुकुमारि, तुम्हारा एक प्रेयसी का ही नाता !'
मृदु रसाल-तरु से इतने में कोई चपल कुहकनी बोली !
'कुहू-कुहू' की अविकल प्रतिध्वनि विकल-विकल वन-वन में डोला !
पुष्पों की मकरन्द - सुरभि को लाया मलय-समीर उड़ा कर ,
नव - गुलाब की पंखड़ियों से परिमल का उपहार चुरा कर !
'देखो !' चौंकी रमणी- 'प्रियतम ! आज समय है कितना सुन्दर;
विवश हुई जाती हूँ मैं तो, बाहु-पाश में लो मुझको भर !'

प्रथम-प्रथम उस दिन ऋतुपति ने जग के आँगन में था झाँका;
और, मलय की उँगली से सुमनों पर प्रणय-चिन्ह था आँका!
निकला शुक्ल-पक्ष दशमी का शशि धीरे-धीरे उज्वल!
पीले - पीले पत्ते डोले; किसलय नीले - नीले कोमल!
सोच रही थी कोयल मन में 'सचमुच क्या मैं इतनी सुन्दर?
पाया है केवल मैंने ही क्या विधि से सुन्दरता का वर?
'मैं सुन्दर हूँ; सुन्दरतम हूँ; सबसे मीठा मेरा स्वर है!
सबसे ऊँचे पर मैं रहती; आसमान में मेरा घर है!'
और बगीचे के कोने में वह गुलाब खिलखिला रहा था!
अन्तरिक्ष के तारों को पृथ्वी के तल से मिला रहा था!
थी फैली सर्वत्र चाँदनी मक्खन-सी मृदु फल-फूलों पर!
लहरें खेल रही थीं निर्मल सरिता के दोनों कूलों पर!
देख चाँदनी रात मनोहर जगी लालसा उसके मन में!
कोयल उड़ती - उड़ती आई अनायास - ही उस उपवन में!
'कुहू-कुहू!' डोली कानन की लता वल्लरी, डाली - डाली!
आँखमिचौनी लगी खेलने कौन, न जाने, काली - काली!
मृदु गुलाब ने सुना, आह! यह इतनी किसकी मीठी बोली?
इतने में फिर वह रातवाली 'कुहू - कुहू!' चिल्ला कर डोली!
'आज कौन मेरे आँगन में यह मधु का सन्देश सुनाता?
मुझे प्रेम की सुरा पिला कर आज कौन बेहोश बनाता?
'मैं बेसुध - सा, मैं विह्वल - सा; मेरे प्राण हुए हैं चंचल!
खींच रहा है कौन मुझे यों छू-छू कर मेरा अन्तस्थल।'
अब गुलाब से रहा न जाता; कहता वह— 'आ जाओ, रानी!
बैठो मेरे पास आज तुम; मुझे सुनाओ प्रेम - कहानी!'
'आज रात कितनी मादक है!' कोयल पास खिसक कर आई;
'इसी लिए, तो भर दो प्रेयसि! दोनों के अन्तर की खाई!'
कोयल भी उस दिवस विवश थी; कारण का कुछ पता नहीं था!
किसने चुम्बक बन कर खींचा? हृदय कहीं, मन और कहीं था!
मंजरि - भरी आम की डाली से उतरी वह व्याकुल होकर!
और, टहनियों पर गुलाब की बैठ गई वह सुध-बुध खो कर!
इतना मीठा; इतना मादक; लगा कि जैसे शीतल चन्दन!
पहली बार, भरे जीवन में आज खिला था उसका नन्दन!

एक सुन्दरी का नव यौवन, इतना निकट, प्रवाह निराला;
नारी का इतने समीप से स्पर्श, कहें क्या इसको ज्वाला?
ज्वाला से कोमल गुलाब की लगी विकल रोमावलि जलने!
एक अपूर्व पुलक से पीड़ित होकर कहा चकित कोयल ने—
'प्रिय, देखो तो कितनी सुन्दर मैं हूँ; मेरा मोहक स्वर है।
नारी के सन्मुख सच कहती, लगता कितना भद्दा नर है!'
जगा पुरुष का दर्प, कहा हँस कर गुलाब ने तब अभिमानी—
'मेरी सुन्दरता के आगे ठहर सकेगी क्या तू रानी?
'मैं सुन्दर हूँ, मैं मंजुल हूँ; मेरे अंग - अंग हैं कोमल!
वैसे तो कर भी न तुम्हारे, जैसा मेरा सुन्दर पद - तल!
'मेरी लाली से ईश्वर ने कामिनियों का गाल रचा है!
यह तो वह अनुराग, जगत को देकर जो अवशेष बचा है!'
बोली कोयल—'मेरे स्वर से दुनिया यह उपमा पाती है!
मैं जाती हूँ जब कुंजों में, जगती विह्वल हो जाती है!
'मेरी एक तान में पागल! जितनी व्याकुल मादकता है;
शत-शत गन्ध-भार क्या तेरा! उसकी समता कर सकता है?'
'अरी नर्त्तकी, समझा, तुम हो मीठी तान सुनानेवाली;
किन्तु, जरा दर्पण में देखो अपनी सूरत तो यह काली!'
'धृष्ट' कहा कोयल ने जलकर—'अरे, तुम्हारा इतना साहस!'
'जाने दे इन बातों को अब; रानी, ले ले जीवन का रस!'
कोयल किन्तु, तिनक कर बोली-'मूर्ख! तुम्हें किसने बहकाया?'
'सखि!' गुलाब ने कहा-'तुम्हीं ने तो है मुझको प्रेम सिखाया!'
'सचमुच?' 'हाँ, क्या तब मैं तुमसे इन घड़ियों में झूठ कहूँगा?
किन्तु, तुम्हारा गर्व देख कर मैं चुप भी बैठा न रहूँगा!'
'तो, जाओ.... मैं चली!' 'चंचले, ठहरो, तनिक ठहर तो जाओ!
आज, एक क्षण मेरे प्राणों में तुम बैठ गीत कुछ गाओ!'
'दुष्ट! बुला कर तुमने मेरा आज घोर अपमान किया है!
हटो, मुझे जानेदो....' 'पगली, कहाँ?.... प्रेम का घूँट पिया है!
'प्रेम-कलह को तुमने रूपसि, क्यों विवाद का रूप दिया है?'
'तिरस्कार की विकट आग से किन्तु, यहाँ जल रहा हिया है!'
कोयल उड़ी; बाँधना चाहा तब गुलाब ने उसको कसकर;
'आज, चली जाओगी कैसे प्यारी, इन आँखों में बसकर?'

उड़ी कि, सहसा चीख उठी कोयल काँटों में आह उलझ कर!
लिपट गया अपनी ही छाया से गुलाब प्रेमिका समझ कर!
विस्मित हो कर उसने निर्मल ज्योत्स्ना में कोयल को देखा;
निकट आम्र-पल्लव में चमकी एक चपल कज्जल - सी रेखा!
'कौन अधिक सुन्दर है, पहले आज इसीका हो ले निर्णय;
फिर, हम दोनों में सम्भव है प्रेम-मिलन या परिणय-परिचय!'

और, उधर तरुणी विभोर थी चिन्ता में—'क्यों नर है निष्ठुर?
दिया विधाता ने क्यों इतना हाय नारियों को कोमल उर?
'नर ने नारी पर सदियों से दुर्दम अत्याचार किया है!
क्षमा-शील नारी ने पुरुषों को बदले में प्यार किया है!
'बहनों की ममता दी उसने और, अपत्यों की वत्सलता;
प्रतिहिंसक मानव - समाज को दीं नारी ने निज कोमलता!
'करुणा, प्रेम, दया को लेकर आज बना जो उन्नत मानव;
नारी अगर न होती; तो नर निश्चय ही हो जाता दानव!
'अपने अन्तर के प्रकाश से उसने दी पुरुषों को आशा;
और, बुझाई हृदय - रक्त से उसकी भीषण युद्ध - पिपासा!
'नारी ने ही रखा नरों को पशु की श्रेणी से मानव में;
ओर, नहीं तो उन्हें पूछता कौन आज इस विस्तृत भव में?
'उर के नील-रत्न-मणियों से पुरुषों का शृंगार किया है!
कौन गिनावे, नारी ने कितना नर का उपकार किया है!
'अपने आँसू से पुरुषों का नारी ने अभिषेक किया है;
नर जो सिंह बना है, वह तो जननी का ही दूध पिया है!
'इन चीजों के बदले नारी ने लेकिन, नर से क्या पाया?
पुरुष बना शासक; नारी ने उनके आगे शीश झुकाया!
'लोहे के बल पर पुरुषों ने नारी पर अधिकार जमाया;
दुर्बल नारी ने उनकी प्रभुता का गीत प्रेम से गाया!
'और प्रेम के सम्बोधन से नर ने उसको भ्रम में डाला;
श्यामा-सी पुरुषों ने नारी को चिर - कारा - गृह में पाला!
'हुआ न जब संतोष स्वर्ण से तब नख-शिख तक उसे सजाया!
मुख से हृदयेश्वरी बोल कर, पैरों से उसको ठुकराया!
'पतिव्रता हो नारी; लेकिन, नर की मुक्त-प्रणय लीला हो!
और, सती भी नारी ही हो; पर, न पुरुष का दृग गीला हो!
'बैठ गईं रमणियाँ चिता पर; औ' पुरुषों ने आग लगाई!
अश्रु बहायी जब नारी ने, तब पुरुषों ने बीन बजाई!
'नूपुर दिया मधुर चरणों में, भाँति-भाँति का रूप बनाया;
और, पुरुष ने काम-वासना में अतृप्त आनन्द उठाया!'
अर्द्ध-रात्रि के मध्य - गगन में झूम रहा था चन्द्र निराला;
कली-कली को चूम रहा था वन में मलयानिल मतवाला!
बजा रहा था कोई बंशी मधुर तान से नदी - किनारे,
अपलक देख रहे थे वन की शोभा को अम्बर से तारे!
उन तारों की शीतल छाया में खोई - सी थी सुकुमारी!
सहसा आ रख दिया कण्ठ में बाहु-पाश प्रेमी ने — 'प्यारी!'
प्रियतम! पावन प्रेम-सूत्र में हम दोनों बँध जायेंगे कल!'
'बना रही उसकी स्मृति लेकिन मुझे अभी से सुख से विह्वल!
'हाय, प्रेम क्यों इतना चंचल? सुन्दरता क्यों है क्षण-भंगुर?'
'सूख न जाए जिससे मानव-कुल की इच्छाओं का अंकुर!'
'प्रियतम! वहाँ किसी अभिमानी मानव का कंकाल पड़ा है!
और उसी के निकट गर्व से यह कदम्ब का पेड़ खड़ा है!
'छोड़ो आज मौत की चर्चा; प्रिये, प्रेम का दान करो तुम!
रजनी आज चन्द्रिका - पुलकित; चिर-यौवन का गान करो तुम!
'क्या न हमारा मधुर-प्रेम का बन्धन होगा अमर प्राणधन?'
'हाय, नारि! कब रही धरा में सदा एक ही वस्तु चिरन्तन!
'कभी एक दिन जो कानन में रस की धारा बरसाती है!
ऋतुपति के जाते ही कोयल चीख-चीख कर मर जाती है!
'और गुलाब विजन में रोता; झड़ जातीं सारी पंखड़ियाँ!
वीथि-वीथि में आग लगाती आतीं सर्वनाश की घड़ियाँ!'
'रुक न सकेगा हाय, हमारा क्षण-भर भी क्या उन्मद यौवन?'
'मुग्धे, कौन समर्थ रोक दे जो यह काल-स्रोत का प्लावन?'
'यह संसार पतन के अभिमुख प्रतिपल बढ़ता ही जाता है!
एक-एक क्षण महा-मृत्यु को निकट खींचता-सा लाता है!
'जिस दिन मरण स्वयं मर जायगा, न अमृत की धार बहेगी;
मैं न रहूँगा, तुम न रहोगी; उस दिन यह दुनिया न रहेगी!
'महाकाश में यह जो सुन्दर विमल चन्द्र का पुष्प खिला है;

हाय, इसे भी चिर परिवर्त्तन का दारुण अभिशाप मिला है!
'लेकिन, हमें मृत्यु की चिन्ता क्यों हो? जग में प्रेम अमर है!
प्रेम नगर में सखि, न किसीको मरने की शंका है, डर है!
धधक उठी उस पार नदी के तट पर एक चिता-सी तत्क्षण!
और, शृगालों ने हा-हा की ध्वनि से मुखरित किया महा-वन!
तरुणी हो भयभीत तरुण के वक्षःस्थल में गई समा-सी!
एक बार गुंजित हो नीड़ों में सो रहे विहग वनवासी!

फाल्गुन-वन में मन्द-मन्द था डोल रहा उन्मत्त समीरण;
सुन पड़ता था दूर किसीके जल चरणों का नूपुर-शिंजन!
और, उधर से मलयानिल का एक सरस-सा झोंका आया!
'सुनो, सुनो!' कोयल ने सहसा मृदु-गुलाब को चटुल जगाया!
सोया था बेखबर प्रकृति के अंचल में गुलाब दीवाना;
जब गुलाब ने आँखें खोलीं, तब कोयल का स्वर पहिचाना!
'इतनी रात? अकेली तुम री, कैसे यहाँ चली आई हो?
इस एकान्त तपोवन में यह कैसी मादकता लाई हो?
'आओ, जरा पास तो बैठो; समाचार बतलाओ अपना!'
'अरे, देख कर आई हूँ मैं, एक दृश्य जैसे हो सपना!'
इतना कहकर लगी बिहँसने कोयल एक मधुर चितवन से!
औ' गुलाब को लगा, उड़ा सा जाता हो ज्यों मुक्त गगन से!
छन-छन कर आ रही चाँदनी भी पत्तों से कुंज भवन में!
तृष्णा का बाजार लगा था औ' गुलाब के व्याकुल मन में!
रंग-बिरंगी दुनिया बनती और बिगड़ती थी क्षण-क्षण में!
यौवन की थी छिड़ी रागिनी उपवन में, वन के कण-कण में!
'सो, क्या? सो, क्या?' तब गुलाबने कहा चौंककर अति-विस्मयसे!
'अरे, वही तो मैं कहती हूँ; मरो न तुम संशय से, भय से!'
'संशय, भय, मुझको छिः! जाओ; तुम भी अद्भुत हास्य-कुशल हो!
हाँ, फिर कहो···कहो क्या देखा?' प्राणेश्वर! तुमतो पागल हो!
'नदी-किनारे अभी-अभी मैं बैठी थी उन्मन कदम्ब पर;
दो तरुणी-तरुणों को देखा, शुभ्र-चन्द्रिका में अति सुन्दर!'
'अति सुन्दर थे क्या वे दोनों?' 'नहीं, चाँदनी थी अति सुन्दर!
और, नदी की लहरें आपस में कलोल करती थीं तट पर!

'एक दूसरे के दर्शन में दोनों मौन मग्न थे निश्छल!
मैंने देखा, और वहीं पर जल-प्रवाह करता था कल-कल!
'मानव कितने प्रेमी होते; आओ, हम भी प्रेम करेंगे!
कैसे प्रेम किया जाता है; हम मानव को शिक्षा देंगे!
'तुम्हें सुमति दे ईश्वर ऐसी, मरता हूँ मैं अहह! विरह से;
समझ लिया था उस दिन मैंने, रूठ गईं तुम प्रेम कलह से!
'तो क्या सचमुच मैं कुरूप हूँ?' कहा कोकिला ने चिल्लाकर—
'नदी-किनारे जिसको देखा, मैं उस नारी से हूँ सुन्दर!'
'और, मुझे क्या कुत्सित कहती हो? गुलाब बोला मुस्काकर–
'नदी-किनारे जिसको देखा, मैं उस नर से भी हूँ सुन्दर!'
'चुप-चुप!' कहा पिकी ने–'किसकी आहट यह वन-पथ से आई!
इतने में आवाज किसीके हँसने की पड़ गई सुनाई!
'ओ गुलाब! लो मुझे सँभालो; दो शरीर का सुखद सहारा!'
उसी समय सुकुमार किसीने डाली से 'पी कहाँ!' पुकारा!
प्रेमी और प्रेमिका दोनों ही आये इस ओर टहलते!
एक दूसरे के हाथों में हाथ परस्पर दे कर चलते!
'यह गुलाब कितना सुन्दर है!' तरुणी ने जब कहा विकल हो,
खींच वक्ष के निकट पिकी को बोला तब बगुला चंचल हो—
'सुनो, सुनो!' वह क्या कहती है, मैं सचमुच कितना सुन्दर हूँ!'
कोयल की आँखों में आँसू भर आये–'तो क्या मैं जड़ हूँ?'
इतने में फिर कहा युवक ने–'और, सुनो तो कोयल का स्वर!
कितनी मीठी इसकी बोली; कितनी मादक, कितनी सुन्दर!'
'हे गुलाब! क्या सुना न तुमने?' कोयल तत्क्षण बोली खिलकर-
क्या कहता वह तरुण, अरे मैं मीठी हूँ, मादक हूँ, सुन्दर!
'कर सकते हो तुम क्या स्पर्द्धा मेरी?' कोयल सुख-समोद है!
हाँ!' गुलाब ने कहा-'तुम्हारा प्रियम्वदे, अच्छा विनोद है!'

युवती और युवक दोनों बँध जायेंगे परिणय-बन्धन में!
'क्या दूँ मैं उपहार?' युवक यह सोच रहा था अपने मन में!
सहसा याद उसे हो आया- 'यह गुलाब कितना सुन्दर है!'
यह तो उसके ही जीवन की सदासंगिनी का प्रिय स्वर है!
स्मृति की रक्षा के हित इससे बढ़कर कौन मिलेगा प्यारा?

मुग्ध न हो क्यों कान्ता मेरी, जिसपर मोहित भूतल सारा!
और, पड़ी सी उधर सोंच में नवल प्रेमिका – 'मैं क्या पाऊँ?
जिसे आज अपने प्रियतम की सेवा में, पूजा में लाऊँ!
'सुना, उन्हें मीठी लगती है बहुत-बहुत कोयल की बोली!
उन्हें भेंट में दूँगी निश्चय; आज रहेगी एक ठठोली।
सुबह-सुबह ही बजी द्वार पर मधुर भैरवी की शहनाई!
नृत्य-गीत-छन्दों से उस दिन गूंज उठी सारी अमराई!
दोनों ने अपनी चिर-इच्छित वस्तु मनोवाँछित थी पाई;
बजे मृदंग, नगाड़े गरजे; नाचे घर के लोग-लुगाई!
मधुकर भी न अभी आया था, पूरब में न कनक की थाली;
आँखें खोली थीं गुलाब ने, सुबह-सुबह ही पहुँचा माली!
उसके हाथों में डाली थी फूलों की, जिसमें बहुरंगी
फूल पड़े थे ताजे – ताजे; सिसक रहे थे साथी – संगी!
काँप उठा माली को लखकर नव-विकसित गुलाब का तन-मन;
हाय, तोड़ने के पहले ही कुम्हला गया गुलाबी आनन!
"दया! दया! मुझको जीने दो; माली, आह न मुझको तोड़ो!
सुन्दर मैं, शृंगार तुम्हारे उपवन का मैं, मुझको छोड़ो!
'दो दिन भी तो हाय, निठुर! हँस लेने दो मुझको कानन में;
कर लेने दो इस सुन्दरता का उपभोग तनिक उपवन में!'
पर, न वधिक को करुणा होती; छिन्न गुलाब हुआ तरु-वर से!
और, रखा वह गया सजाकर डाली में माली के कर से!
वकुल, चमेली और मोतिया; बेला, जुही, केतकी, चम्पक!
वहाँ और भी कितने सुन्दर रोते थे सुमनों के कोरक!
इस कानन से उस कानन में, इस तरु से उस तरु पर गिरती;
विपिन-विपिन में कूक-कूककर कोयल भागी-भागी फिरती!
आखिर, कबतक उड़ती रहती वधिकों के हाथों से बचकर?
थककर एक डाल पर बैठी, अस्त हुआ ज्यों नभ से दिनकर!
परमानन्दित हुई हृदय में युवती कितना उसको पाकर!
और, उसे रख दिया प्रेम से सोने के पिंजड़े में लाकर!
युवती की सुन्दर ग्रीवा में नव गुलाब का हार सुहाया!
और, युवक ने मधुर-मधुर उपहार एक कोयल का पाया!
मिलन-सेज पर जहाँ-जहाँ प्रेमी के कर प्रमदा पर पड़ते!
मसल-कुचल जाता गुलाब का तन, कल-कोमल-दल झड़ पड़ते!
भीनी-भीनी गन्ध-वायु की लहरों से था कक्ष हिलोरित;
पर, गुलाब का जीवन क्षण-क्षण झंझानिल-सा था झकझोरित!
इधर मची थीं मधु-रँगरलियाँ; और, उधर कलियाँ मरती थीं!
हा! गुलाब के मृत्यु-शयन पर घड़ियाँ भी क्रीड़ा करती थीं!

बन्द हुईं युवती की आँखें, श्रम से शिथिल नींद में खोई;
सोने के पिंजड़े में जैसे, तड़प उठी घायल-सी कोई!
'गा; कोयल! तू चुप क्यों बैठी?' कहा युवक ने उत्सुक होकर!
'एक बूँद दो..प्यास! प्यास!..मैं मरती!' बोली कोयल रोकर!
किन्तु, युवक उन्मत्त बना था; सुनी नहीं उसने वह वाणी!
'गा, कोयल! तू चुप क्यों? यह सुहाग की रजनी, रानी!'
'पानी..निर्मम! कीर नहीं मैं.. ओ गुलाब, क्या तुम रोते हो?
'सचमुच तुम सौभाग्य-शील हो; उसकी बाँहों में सोते हो!'
नहीं, नहीं; तुम सुन्दर हो!' बोला गुलाब यों आँसू भरकर!
कहा पिकी ने-'मैं अभागिनी; तुम निश्चय प्रियतम हो, सुन्दर!'
प्रीति-रीति में रजनी बीती; युवती के दृग खुले मनोहर!
आकुल हो मुख-चन्द निहारा; सालस, खिन्न युवक ने उठकर!
'हँसो, गुलाब!' कहा तरुणी ने-'गा कोयल!' बोला प्रेमी नर!
दोनों ने दोनों को देखा, चिर अवाक, विस्मय में भरकर!
छिन्न हार; थी सूखी माला; था गुलाब का मुँह कुम्हलाया!
और, उधर कोयल के तन पर पड़ी विवर्ण मरण की छाया!
'यह परिणाम रूप का मोहक; यह सुन्दरता का कटु फल है!'
विरह-व्यथित रो रहा आज भी वनवासी पथिकों का दल है!

आरसी

आज, आओ; प्रिय, तुम्हें
उपहार दूँ मैं आरसी का!
लो, करो परिचय मधुर तुम
प्राप्त मेरी प्रेयसी का!
शर्वरी नव-कुन्द-मुकुलोज्वल,
शरद — निर्मल, मनोहर;
तैरती आकाश-सरि में
चन्द्रमा यह द्वादशी का!
दूर से आती किसीके
नूपुरों की कलित-कलना;

आरसी

विजन-वन में नृत्य होता
मुक्त-केशी उर्वशी का ;
आज, आओ ; प्रिय, तुम्हें
उपहार दूँ मैं आरसी का !

युग-युगान्तर से, न जानें,
हाय कितनी अश्रु-पीड़ा
काच के कोमल मुकुर में
संनिहित-सी हास्य-क्रीड़ा !

एक निरवधि-काल से
नीरव अधर, निस्पन्द लोचन ;
गुप्त कितने प्राणियों की
प्रणय-लीला-छवि अधीरा !

चित्र-सा अंकित जगत—
इतिहास इसके लघु-हृदय में !
मिट गये पद-चिह्न कितने
समय-सरि में नित्य-नीरा ;
युग-युगान्तर से, न जानें,
हाय कितनी अश्रु-पीड़ा !

आज, यदि होती कहीं इन
स्थावरों को कंठ-वाणी !
बोलते यदि शैल ये, पाषाण ये,
ये पथ— वनानी !
तो, न जानें, आज कितनी
वेदना——कितना निरोदन ;
खोल देते एक नूतन
पृष्ठ ये चिर-मौन ध्यानी !
एक पल भी आज यदि ये
नद-उदधि वाचाल होते ;
तो, न जानें, लोग सुनते
कौन-सी अद्भुत कहानी !
आज, यदि होती कहीं
इन स्थावरों को कंठ-वाणी !

तुम इसे समझो भले-ही
काच का दर्पण अकिंचन ;
किन्तु, इसके भी हृदय,
मष्तिष्क, रसना और लोचन !
स्पर्श का अनुभव किया
उन्मत्त इसने भी किसीका ;
और, इसको भी मिले निज
देवता के पुण्य-दर्शन !
खिल उठीं शत-बार इसके
बिम्ब में वह रूप-छाया ;
हाय, पल-भर भी वदन-श्री—
हास यदि वह बाँध पाता ;
तो, जगत के सामने कुछ
दूसरा ही दृश्य आता !

तब, न जानें, कौन-सा
आकार था इसका निराला ?
देखती मुख-कान्ति होगी
कौन इसमें देव—बाला ?
सृष्टि के आदिम क्षणों में
कौन-सा था रूप इसका ?
यह न जगती के किसी
तत्त्वज्ञ ने अबतक निकाला !
पर्वतों पर, काननों में,
कन्दराओं में भयानक ;
कल्प-शत एकान्त-जीवन
मौन-मुख इसने बिताया !
पुत्र-वत्सल आत्म-जननी-सी
प्रकृति का प्यार पाया !

हो गया ज्यों भग्न, देखा,
एक दिन वह स्वप्न सुखकर ;
भेद तम का आवरण घन
आ गया जग एक सुन्दर !

गोद में पहुँचा अचानक
वह किसी सुर-सुन्दरी की ;
और, उसने यत्न-पूर्वक
रख दिया उसको शयन पर !

नित्य उस दिन से मुकुर का
शीलमय सौभाग्य चमका ;
घोर वन-वासी हुआ
शृङ्गार अन्तर्वासिनी का ;
धन्य हो जाता वदन
अवलोक कोमल-हासिनी का !

किस कुतूहल के वशीकृत
हो इसे सम्मुख उठाया ?
कौन-सी सीमन्तिनी का
हाय, इसने मन चुराया ?
देख पाया और, पहली
बार अपना रूप इसमें ;

किस प्रिया ने आरसी से
गुप्त अन्तःपुर सजाया ?
पद्म-सुरभित श्वास से निज
कर इसे कल वाष्प-व्याकुल

हाय, पहली बार देखा
कौन-सा उन्माद-सपना ?
क्या उठी होगी हृदय में
भावना, मुख देख अपना ?

शिल्पियों ने चतुर फिर
इस पर दिखाया हस्त-कौशल ;
और, रसिकों के लिये
इसको दिया सौन्दर्य निर्मल !

सभ्यता के साथ ही करता
गया उन्नति मुकुर भी ;
हो चला इसका कलेवर
चन्द्रिका-सा धवल-उज्वल !

सुन्दरों ने कामना-अनुकूल
ही सुन्दर बनाया ;
और, फिर तो बन गया यह
तितलियों की कंठ-माला ;
शून्य-सी लगती बिना जिसके
जगत की रूप-शाला !

दीप्त करता आ रहा निज
दर्प से उत्तप्त-कंचन
कामिनी का लोल लीला-कक्ष
तब से स्फीत दर्पण !
प्रति फलित शत-बार इसमें
हो गई मुसकान मीठी ;

लालिमा फैला गया इसमें
किसीका प्रेम-चुम्बन !
कण्टकित-सा हो गया है
छू कपोलों से सलज्जित ;

हाय, वह चिर-मूक फिर भी
आज तक कुछ भी न बोला ;
आज पहली-बार ही
उसने हृदय का द्वार खोला !

आज, पहली बार इसके
प्रिय, खुलेंगे अधर-पल्लव ;
आयगा इन लोचनों के
सामने संसार अभिनव !

आज खोजेगा युगों का
प्रथम अनुभव आत्म-ज्ञापन ;
और, नीरव-भाव शब्दों में
करेंगे कान्त-कलरव !

जो सुना इतने दिनों तक,
और जो देखा दृगों ने ;
व्यक्त कर देंगे जगत को
आज जो-कुछ गुप्त लेखा ;

आरसी

खिँच चुकी अबतक नियति—
पाषाण पर जो काल-रेखा !

कण्व-कन्या के लिये
गुंजित किया इसने तपोवन ;
सुख दिया शत-कोटि
वधुओं को दिखा रजनीकरानन !
हो नहीं दर्पण जहाँ ,
ऐसा न भव में भवन कोई ;
स्वर्ग के प्रासाद में भी
ले शची करती प्रसाधन ;
आ रहा बनता अपरिमित
कल्प से प्रियतम भुवन का ;
दुःख में , सुख में , शयन में ,
स्वप्न में , क्रीड़ा-सदन में ;
श्वास-सा यह साथ देता
प्रति दिवस प्रत्येक क्षण में !

प्रिय , इसीमें हो रहा
गौरव सफल चम्पक-वदन का ;
सरल-शिशु-हित भूमि पर
प्रति बार उतरा शशि गगन का !
काच के दिल पर पड़ी है
छाप कोमल उँगलियों की ;
कौन जाने प्रेममय
उन्माद इसके तृषित मन का !
मध्य—निशि में है सुना
इसने प्रिया का वक्ष-स्पन्दन ;
वे नशीली चितवनें ;
ऐसे मनोहर अश्रु किसके ?
और , उन अँगड़ाइयों में
खो गये हैं प्राण इसके !

लोग तब भी क्या यही थे ,
जब न जगती में मुकुर था ;
उस पुरातन लौह-युग के
वक्ष में क्या तब न उर था ?
कौन-सा मधु-प्रात , कैसी
हाय , होती शिशिर-संध्या ?
और , तब भी क्या मनुज—
जीवन बना इतना मधुर था ?
तब न निज को देखने की
थी किसीको लालसा क्या ?
किस हृदय में झाँकती
होगी प्रिया तल्लीन होकर ?
क्या दशा संसार की थी
तब मुकुर से हीन होकर !

दूर इसको कर न सकते
तुम कभी अपने हृदय से ;
कर लिया सम्बन्ध अनुपम
आज इसने भी प्रलय से !
रख इसे सकते न विस्मृति की
कभी तुम बेड़ियों में ;
निशि-दिवस निश्चिन्त रहता
यह पराजय और भय से !
विश्व के परमाणु में
इसका मधुर आभास मिलता ;
एक कण भी रह नहीं
सकता कभी इससे अलक्षित ;
पा न सकते मुक्ति इसकी
ज्योति से नक्षत्र अगणित !

चन्द्रमा—तारक—दिवाकर ;
और यह आकाश-मण्डल !
निर्झरी , सागर , जलाशय ,
हिम-धवल गिरि-मेरु-शृंखल !
ये सभी दर्पण प्रकृति के ;
सब उसीकी देह—छाया !

आरसी

तुम प्रदर्शित पा सकोगे
ज्योति उसकी एक चंचल !
अप्रभावित है न उससे
मेदिनी की वस्तु कोई ;
कर रही संस्पर्श सबको
एक उज्वल रश्मि-धारा ;
और मुकुराधार-सा लगता
विपुल ब्रह्माण्ड सारा !

पास में निशि-दिन रहेगा
यह तुम्हारा मित्र बन कर ;
और उतरेगा हृदय में
प्राणधन का चित्र बन कर !
क्रोध के आवेश में पड़
जब कभी तुम फेंक दोगे ;
टूट कर भी यह उड़ेगा
तव पवित्र-चरित्र बनकर !
प्रेम में प्रतिमूर्ति, करुणा में
सुछवि होगी तुम्हारी ;
रख इसे एकान्त में जब
बन्धु, दोगे कभी सम्मुख ;
बोल देगा मुख तुम्हारा
देख यह तत्काल दुख-सुख !

कर रहे इसका समादर
स्नेह से नर और नारी ;
यह सभी से प्रेम-पूजित ;
विश्व का प्रेमाधिकारी !
भूप से लेकर भिखारी तक
इसे सम्मान करते ;
देखते सम-भाव से इसको
अकिंचन— छत्रधारी !
संग में रहता सदा यह
अंग का बन राग-भूषण ;
मुद्रिका में, हार में, केयूर में,
नूपुर-वलय में ;
यह चिरन्तन वास करता
हासमय मानव-हृदय में !

तुम न समझो शून्य इसको
क्षुद्रतम निर्जीव शीशा !
हाय, सुन हो जायगा दो
टूक इसका उर कली-सा !
हो रहे हैं प्राण इसमें
भी मृदुल-स्पन्दित निमिष-पल ;
फूकता नव-मंत्र गृह-गृह में
किसीकी बाँसुरी-सा !
यह प्रणय का पर्व, जीवन
का प्रथम मंगल-दिवस मम ;
स्वर्ण-उत्सव-काल मेरी
बाल-कविता-रूपसी का ;
आज, आओ ; प्रिय, तुम्हें
उपहार दूँ मैं आरसी का !



